

तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ-शाखाभूत-
वैदिक-संशोधन-मण्डलेन प्रकाशितः

श्रौतकोशः

श्रौतयज्ञानुषङ्गिवचनसंकलनरूपः श्रौतसूत्रानुवादरूपश्च

ŚRAUTAKOŚA

Encyclopædia of Vedic Sacrificial Ritual comprising the two complementary
Sections, namely, the Sanskrit Section and the English Section



VAIDIKA SAMŚODHANA MANDALA
POONA

श्रौतकोशः

प्रथमो ग्रन्थः

तस्यायं

संस्कृतविभागः



[प्रकरणानुसारेण संकलितानि संहिताब्राह्मणारण्यकान्तर्गतश्रौत-
यज्ञानुषङ्गिचनानि बोधायनीयश्रौतसूत्राणि च]

सप्त हविःसंस्थाः काम्यप्रायश्चित्तप्रकरणयुताः पितृमेधश्च

वैदिक-संशोधन-मण्डलम्, पुणे

शाके १८८०

अनुक्रमणिका

| | |
|-------------------------------|---------|
| विषयः | पृष्ठम् |
| अग्न्याधेयम् | १-३३ |
| आधानोपकल्पनम् १ | |
| अग्निमन्थनम् ७ | |
| आधानम् ११ | |
| आधानाङ्गेष्टयः २० | |
| पुनराधानम् २७ | |
| बौ० अग्न्याधेयम् | ३४-५४ |
| आधानोपकल्पनम् ३४ | |
| गोपितृयज्ञः ४१ | |
| अग्निमन्थनम् ४४ | |
| आधानम् ४६ | |
| आधानाङ्गेष्टयः ४९ | |
| पुनराधेयं तृतीयाधानं च ५१ | |
| पुनराधेयहौत्रम् ५३ | |
| अग्न्याधेयप्रायश्चित्तानि | ५४ |
| अग्निहोत्रहोमः | ५५-८३ |
| ऋग्वेद० ५५ | |
| तैत्तिरीय० ५६ | |
| मैत्रायणी० ६२ | |
| काठक० ६८ | |
| कपिष्ठलकठ० ७२ | |
| वाजसनेय० ७३ | |
| शांखायन० ७९ | |
| गोपथ० ८१ | |
| जैमिनीय० ८२ | |
| अग्निहोत्रप्रायश्चित्तानि | ८३-१०३ |
| बौ० अग्निहोत्रहोमः | १०४-११० |
| बौ० अग्निहोत्रप्रायश्चित्तानि | १११-१२१ |
| काम्यहोमाः | १२२-१४१ |
| जयहोमाः १२२ | |
| अभ्यातानहोमाः १२२ | |
| राष्ट्रभृद्धोमाः १२३ | |
| क्षतुर्होतारः १२५ | |
| कृष्माण्डहोमाः १३३ | |

| | |
|--|---------|
| विषयः | पृष्ठम् |
| बौ० काम्यहोमाः | १४२-१४४ |
| जयहोमाः १४२ | |
| अभ्यातानहोमाः १४२ | |
| समस्तहोमाः १४२ | |
| राष्ट्रभृद्धोमाः १४३ | |
| दर्शपूर्णमासौ | १४५-२४९ |
| अन्वाधानम् १४५ | |
| वत्सापाकरणम् १५१ | |
| इध्माबर्हिंराहरणम् १५३ | |
| सार्यदोहः १५६ | |
| पात्रासादनप्रणीताप्रणयने १६० | |
| हविर्निर्वापः १६२ | |
| हविःकण्डनादिकपालोपधानान्तम् १६६ | |
| पुरोडाशश्रपणम् १७२ | |
| वेदिकरणम् १७५ | |
| सुक्संमार्गः पत्नीसंनहनमाज्यग्रहणं च १८० | |
| बर्हिंरास्तरणं सुगासादनं च १८६ | |
| हविरासादनम् १९३ | |
| आधारादिप्रवरान्तम् १९४ | |
| सामिधेन्यादिप्रवरान्तं हौत्रम् १९८ | |
| प्रयाजा आज्यभागौ च २०३ | |
| प्रयाजाज्यभागहौत्रम् २०६ | |
| प्रधानं स्विष्टकृच्च २०८ | |
| प्रधानस्विष्टकृद्धौत्रम् २१० | |
| इडोपाह्वानम् २१४ | |
| इडोपाह्वानहौत्रम् २१९ | |
| अन्वाहार्यचरुः २२१ | |
| अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकाः २२२ | |
| अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकहौत्रम् २३० | |
| पत्नीसंयाजाः २३२ | |
| पत्नीसंयाजहौत्रम् २४२ | |
| विष्णुक्रमः २४४ | |
| दर्शपूर्णमासप्रायश्चित्तानि | २४९-२५८ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| बौ० दर्शपूर्णमासौ | २५९-२९६ |
| अन्वाधानम् २५९ | |
| वत्सापाकरणम् २६१ | |
| हृध्माबर्हिंराहरणम् २६२ | |
| सार्यदोहः २६४ | |
| पान्नासादनप्रणीताप्रणयने २६६ | |
| हविर्निर्वापः २६८ | |
| हविःकण्डनादिकपालोपधानान्तम् २७० | |
| पुरोडाशप्रणयनम् २७३ | |
| वेदिकरणम् २७४ | |
| सुक्त्समागः पत्नीसंनहनमाज्यग्रहणं च २७६ | |
| बर्हिंरास्तरणं सुगासादनं च २७९ | |
| हविरासादनम् २८० | |
| आधारादिप्रवरान्तम् २८२ | |
| सामिधेन्यादिप्रवरान्तं हौत्रम् २८३ | |
| प्रयाजा आज्यभागौ च २८४ | |
| प्रयाजाज्यभागहौत्रम् २८५ | |
| प्रधानं स्विष्टकृच्च २८५ | |
| इडोपाह्वानम् २८७ | |
| इडोपाह्वानहौत्रम् २८८ | |
| अन्वाहार्यचरुः २८९ | |
| अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकाः २९० | |
| अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकहौत्रम् २९२ | |
| पत्नीसंयाजाः २९२ | |
| पत्नीसंयाजहौत्रम् २९५ | |
| विष्णुक्रमः २९५ | |
| बौ० दर्शपूर्णमासप्रायश्चित्तानि | २९६-३०५ |
| पिण्डपितृत्यज्ञः | ३०६-३०८ |
| बौ० पिण्डपितृत्यज्ञः | ३०९-३११ |
| बौ० पिण्डपितृत्यज्ञप्रायश्चित्तम् | ३११ |
| वैमृधेष्टिः | ३१२ |
| बौ० वैमृधेष्टिः | ३१२ |
| आग्रयणेष्टिः | ३१३-३१७ |
| आग्रयणेष्टिप्रायश्चित्तम् | ३१७ |
| बौ० आग्रयणेष्टिः | ३१८-३१९ |
| बौ० आग्रयणेष्टिप्रायश्चित्तम् | ३१९ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|--------------------------------|---------|
| काम्या दर्शपूर्णमासाः | ३२०-३२३ |
| आम्नावैष्णवीष्टिः ३२० | |
| साकंप्रस्थायीष्टिः ३२० | |
| सुमना नामेष्टिः ३२० | |
| दाक्षायणयज्ञः ३२१ | |
| इडादधः ३२२ | |
| सार्वसेनियज्ञः ३२२ | |
| शौनकयज्ञः ३२२ | |
| वसिष्ठयज्ञः ३२२ | |
| मुन्ययनम् ३२३ | |
| तुरायणम् ३२३ | |
| बौ० काम्या दर्शपूर्णमासाः | ३२४-३२६ |
| आम्नावैष्णवीष्टिः ३२४ | |
| साकंप्रस्थायीष्टिः ३२४ | |
| सुमना नामेष्टिः ३२४ | |
| दाक्षायणयज्ञः ३२५ | |
| इडादधः ३२५ | |
| चतुश्चक्रः ३२६ | |
| काम्या इष्टयः | ३२७-४५९ |
| बौ० काम्या इष्टयः | ४६०-४८५ |
| चातुर्मास्यानि | ४८६-५३६ |
| वैश्वदेवपर्व ४८६ | |
| वैश्वदेवपर्वहौत्रम् ४९१ | |
| वरुणप्रवासपर्व ४९७ | |
| वरुणप्रवासपर्वहौत्रम् ५०४ | |
| साकमेधपर्व ५०७ | |
| साकमेधपर्वहौत्रम् ५२४ | |
| शुनासीरीयपर्व ५३३ | |
| शुनासीरीयपर्वहौत्रम् ५३५ | |
| चातुर्मास्यप्रायश्चित्तम् | ५३७ |
| बौ० चातुर्मास्यानि | ५३८-५५५ |
| वैश्वदेवपर्व ५३८ | |
| वरुणप्रवासपर्व ५४२ | |
| साकमेधपर्व ५४६ | |
| शुनासीरीयपर्व ५५४ | |
| बौ० चातुर्मास्यप्रायश्चित्तानि | ५५५ |

विषयः पृष्ठम्
निरूढपशुबन्धः ५५६-५८६

यूपनिर्माणम् ५५६
अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तम् ५५८
अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तं हौत्रम् ५५८
पर्यग्निकरणान्तम् ५६१
पर्यग्निकरणान्तं हौत्रम् ५६१
वपायागः ५७४
वपायागहौत्रम् ५७५
पुरोडाशयागहविर्यागौ ५७८
पुरोडाशहविर्यागहौत्रम् ५७८
अनूयाजादि ५८३
अनूयाजादिहौत्रम् ५८३

बौ० निरूढपशुबन्धः ५८७-६०२

यूपच्छेदनम् उत्तरवेदिनिवपनं च ५८७
अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तम् ५९०
पर्यग्निकरणान्तम् ५९३
पर्यग्निकरणान्तं हौत्रम् ५९५
वपायागः ५९५
पुरोडाशयागहविर्यागौ ५९७
अनूयाजादि ६००

बौ० पशुप्रायश्चित्तानि ६०२-६०५

काम्याः पशवः ६०६-६१४

बौ० काम्याः पशवः ६१५-६१७

सौत्रामणी ६१८-७५५

तैत्तिरीय०

कौकिलसौत्रामणी ६९८
कौकिलसौत्रामणीहौत्रम् ७०४
चरकसौत्रामणी ७१६
चरकसौत्रामणीहौत्रम् ७१७

मैत्रायणी०

कौकिलसौत्रामणी ७१८
कौकिलसौत्रामणीहौत्रम् ७२१
चरकसौत्रामणी ७२५
चरकसौत्रामणीहौत्रम् ७२७

विषयः पृष्ठम्

काठक०

कौकिलसौत्रामणी ७२७
कौकिलसौत्रामणीहौत्रम् ७३०
चरकसौत्रामणी ७३२
चरकसौत्रामणीहौत्रम् ७३३

वाजसनेय०

कौकिलसौत्रामणी ७३४
कौकिलसौत्रामणीहौत्रम् ७४४
चरकसौत्रामणी ७५३
चरकसौत्रामणीहौत्रम् ७५५

शांखायन०

गोपथ०

कौकिलसौत्रामणी ७५५

बौ० चरकसौत्रामणी ७५६-७५९

बौ० परिभाषा ७५९-७६३

पितृमेघः ७६४-७९९

अन्त्येष्टिः ७६४

अस्थिसंचयनम् ७८१

लोष्टचितिः ७८४

ब्रह्ममेघः ७९८

बौ० पितृमेघः ८००-८२३

अन्त्येष्टिः ८०२

अस्थिसंचयनं पुनर्दहनं च ८०९

लोष्टचितिः ८११

ब्रह्ममेघः ८१६

बौ० पितृ० द्वितीयप्रश्नशेषः ८१६

दहनकल्पः ८१८

परिशिष्टम् ८२४

सूची ८२५-८५७

शुद्धिपत्रम् ८५८-८६६

ग्रन्थशेषः ८६७-८७६

बौ० शुक्लसूत्रम् ८६७

बौ० प्रवरसूत्रम् ८६९

उक्तानुक्तचिन्ता ८७७-८८८

संक्षेपचिह्नानि

| | | | |
|------------|------------------------|-------------|---------------------------|
| असं | अथर्ववेदशौनकसंहिता | बौ० | } बौधायनश्रौतसूत्रम् |
| अपैसं | अथर्ववेदपैप्पलादसंहिता | बौश्रौ० | |
| आपश्रौ | आपस्तम्बश्रौतसूत्रम् | बौधायनश्रौ० | |
| आश्वश्रौ | आश्वलायनश्रौतसूत्रम् | माश्रौ | मानवश्रौतसूत्रम् |
| ऋसं | ऋग्वेदसंहिता | मैसं | मैत्रायणीसंहिता |
| ऐव्रा | ऐतरेयब्राह्मणम् | वाकासं | वाजसनेयकाण्वसंहिता |
| कपिसं | कपिष्ठलकठसंहिता | वासं | वाजसनेयमाध्यन्दिनसंहिता |
| कात्याश्रौ | कात्यायनश्रौतसूत्रम् | वैश्रौ | वैतानश्रौतसूत्रम् |
| काशब्रा | काण्वशतपथब्राह्मणम् | शाब्रा | माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम् |
| कासं | काठकसंहिता | शांब्रा | शाङ्खायनब्राह्मणम् |
| कासंक | काठकसंकलनम् | शांश्रौ | शाङ्खायनश्रौतसूत्रम् |
| गोब्रा | गोपथब्राह्मणम् | ० | अनुद्धृतब्राह्मणभागबोधकम् |
| जैब्रा | जैमिनीयब्राह्मणम् | ... | मन्त्रभागसमानत्वबोधकम् |
| तैआ | तैत्तिरीयारण्यकम् | ≡ | पूर्णतः सादृश्यम् |
| तैब्रा | तैत्तिरीयब्राह्मणम् | ≡ | अंशतः सादृश्यम् |
| तैसं | तैत्तिरीयसंहिता | --- | एकाधिकमन्त्रसमानत्वबोधकम् |
| | | × × × × | त्रुटितो ग्रन्थः |

श्रौतकोशः

अम्याधेयम्

आधानोपकल्पनम्

तैब्रा [१.२.१]—

उद्धन्यमानमस्या अमेध्यमप पाप्मानं यजमानस्य हन्तु ।
शिवा नः सन्तु प्रदिशश्चतस्रः शं नो माता पृथिवी तोकसाता ॥
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॥
वैश्वानरस्य रूपं पृथिव्यां परिस्रसा । स्योनमाविशन्तु नः ॥
यदिदं दिवो यददः पृथिव्याः संजज्ञाने रोदसी संबभूवतुः ।
उषान् कृष्णमवतु कृष्णमूषा इहोभयोर्यज्ञियमागमिष्ठाः ॥
ऊतीः कुर्वाणो यत्पृथिवीमचरो गुहाकारमाखुरूपं प्रतीत्य ।
तत्ते न्यक्तमिह संभरन्तः शतं जीवेम शरदः सवीराः ॥
ऊर्जं पृथिव्या रसमाभरन्तः शतं जीवेम शरदः पुरुचीः ।
वप्रीभिरनुवित्तं गुहासु श्रोत्रं त उर्व्यवधिरा भवामः ॥
प्रजापतिसृष्टानां प्रजानां क्षुधोपहत्यै सुवित्तं नो अस्तु ।
उपप्रभिन्नमिषमूर्जं प्रजाभ्यः सूदं गृहेभ्यो रसमाभरामि ॥
यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद्गुहा प्रविष्टाः सरिरस्य मध्ये ।
तस्येदं विहतमाभरन्तोऽच्छम्बट्कारमस्यां विधेम ॥
यत्पर्यपश्यत्सरिरस्य मध्य उर्वीमपश्यज्जगतः प्रतिष्ठाम् ।
तत्पुष्करस्यायतनाद्धि जातं पर्णं पृथिव्याः प्रथनं हरामि ॥
याभिरदहज्जगतः प्रतिष्ठामुर्वीमिमां विश्वजनस्य भर्त्रीम् ।
ता नः शिवाः शर्कराः सन्तु सर्वाः ॥
अग्ने रेतश्चन्द्रं हिरण्यमद्भ्यः संभूतममृतं प्रजासु ।
तत्संभरन्नुत्तरतो निधायातिप्रयच्छन् दुरिति तरेयम् ॥
अश्वो रूपं कृत्वा यदश्वत्थेऽतिष्ठः संबत्सरं देवेभ्यो निलाय ।
तत्ते न्यक्तमिह संभरन्तः शतं जीवेम शरदः सवीराः ॥

ऊर्जः पृथिव्या अध्युत्थितोऽसि वनस्पते शतवल्शो विरोह ।
 त्वया वयमिषमूर्जं मदन्तो रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥
 गायत्रिया हियमाणस्य यत्ते पर्णमपतत्तृतीयस्यै दिवोऽधि ।
 सोऽयं पर्णः सोमपर्णाद्धि जातस्ततो हरामि सोमपीथस्यावरुध्यै ॥
 देवानां ब्रह्मवादं वदतां यदुपाशृणोः सुश्रवा वै श्रुतोऽसि ।
 ततो मामाविशतु ब्रह्मवर्चसं तत्संभरंस्तदवरुन्धीय साक्षात् ॥
 यया ते सृष्टस्याग्रेहेतिमशमयत् प्रजापतिः ।
 तामिमामप्रदाहाय शमीं शान्त्यै हराम्यहम् ॥
 यत्ते सृष्टस्य यतो विकङ्कतं भा आर्च्छज्जातवेदः ।
 तया भासा संमित उरुं नो लोकमनुग्रभाहि ॥
 यत्ते तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दज्जातवेदो मरुतोऽद्भिस्तमयित्वा ।
 एतत्ते तदशनेः संभरामि सात्मा अग्रे सहृदयो भवेह ॥
 चित्रियादश्वत्थात् संभृता बृहत्यः शरीरमभिसंस्कृताः स्थ ।
 प्रजापतिना यज्ञमुखेन संमितास्तिस्रस्त्रिवृद्धिर्मिथुनाः प्रजात्यै ।
 अश्वत्थाद्व्यवाहाद्धि जातामग्रेस्तनूं यज्ञियां संभरामि ।
 शान्तयोनिं शमीगर्भमग्नये प्रजनयितवे ॥
 यो अश्वत्थः शमीगर्भ आरुरोह त्वे सचा ।
 तं ते हरामि ब्रह्मणा यज्ञियैः केतुभिः सह ॥
 यं त्वा समभरज्जातवेदो यथाशरीरं भूतेषु न्यक्तम् ।
 स संभृतः सीद शिवः प्रजाभ्य उरुं नो लोकमनुनेषि विद्वान् ॥
 प्र वेधसे कत्रये मेघ्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
 यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवान् यजे हेड्वान् ॥
 समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥
 उप त्वाग्रे हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥
 तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥
 समिध्यमानः प्रथमो नु धर्मः समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
 शोचिष्केशो घृतनिर्णिक पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥
 घृतप्रतीको घृतयोनिरग्निर्घृतैः समिद्धो घृतमस्यान्नम् ।
 घृतप्लुषस्त्वा सरितो वहन्ति घृतं पिबन्त्सुयजा यक्षि देवान् ॥

आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेषि ।
 घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमम् ॥
 त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहम् ।
 उरुज्जयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्वति ॥
 त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतेन सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
 स वावृधान ओषधीभिरुक्षित उरु ज्ञयाः सि पार्थिवा वितिष्ठसे ॥
 घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋज्जते ।
 इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यः सते धियम् ॥

तैत्रा [१.१.२; ४; ९]—

कृत्तिकास्वग्निमादधीत० यो रोहिण्यामग्निमाधत्ते । ऋघ्नोत्येव० यः पुरा भद्रः सन्
 पापीयान्त्स्यात् । स पुनर्वसोरग्निमादधीत० यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति । स
 पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत० यः कामयेत भगी स्यामिति । स उत्तरयोः फल्गुन्योरग्नि-
 मादधीत० यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् । स चित्रायामग्निमादधीत० वसन्ता ब्राह्मणोऽग्निमादधीत०
 ग्रीष्मे राजन्य आदधीत० शरदि वैश्य आदधीत० न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत० उत्तरयो-
 रादधीत० अथो खलु । यदेवैनं यज्ञ उपनमेत् । अथादधीत० । द्वादशसु विक्रामेष्वग्निमादधीत०
 चक्षुर्निमित्त आदधीत । इयद्द्वादशविक्रामाः इति० ब्रह्मौदनं पचति० प्राश्नन्ति ब्राह्मणा
 ओदनम्० यदाज्यमुच्छिष्यते । तेन समिधोऽभ्यज्यादधाति० तिस्र आदधाति मिथुनत्वाय ।
 इयतीर्भवन्ति० आर्द्रा भवन्ति० चित्रियस्याश्रत्यस्यादधाति० घृतवतीभिरादधाति० गायत्री-
 भिर्ब्राह्मणस्यादध्यात्० त्रिष्टुम्भी राजन्यस्य० जगतीभिर्वैश्यस्य० तः संवत्सरं गोपायेत्० यद्येनः
 संवत्सरे नोपनमेत् । समित्रः पुनरादध्यात्० न माः समश्नीयात् । न स्त्रियमुपेयात्० ताः
 संवत्सरे पुरस्तादादध्यात्० यदि संवत्सरे नादध्यात् । द्वादश्यां पुरस्तादादध्यात्० यदि द्वादश्यां
 नादध्यात् । त्र्यहे पुरस्तादादध्यात् ॥

तैसं [३.५.७]—

यस्य खादिरः सुवो भवति० यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति । आश्वत्थ्युपभृत्० यस्य
 वैकङ्कती ध्रुवा भवति० ॥

मैसं [१.६.१]—

प्र वो वाजा अभिघवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवान् जिगाति सुम्नयुः ॥
 उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥

उदग्रे तव तद्दृष्टादर्ची रोचता आहुतम् । निसानं जुहो मुखे ॥

प्रजा अग्रे संवासयेहाशाश्च पशुभिः सह ।

राष्ट्राण्यस्मिन् धेहि यान्यासन्तसवितुः सवे ॥

मैसं [१.६.९; १०; १३; ३; १२]—

फल्गुनीपूर्णमासे ब्राह्मणस्यादध्यात्० ग्रीष्मे राजन्यस्यादध्यात्० शरदि वैश्यस्यादध्यात्० तद्यस्येत्येतत् फल्गुनीपूर्णमास एव तस्यादध्यात्० द्व्यहे वा पुरैकाहे वाधेयः० कृत्तिकासु ब्राह्मणस्यादध्यात्० रोहिण्यां पशुकामस्यादध्यात्० रोहिण्यां स्वर्गकामस्यादध्यात्० यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात्स चित्रायामग्निमादधीत० यः कामयेत भग्यन्नादः स्यामिति स पूर्वसु फल्गुनीष्वग्निमादधीत० अथ यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति स उत्तरासु फल्गुनीष्वग्निमादधीत० तासु राजन्यस्यादध्यात्० यत्पौर्णमास्यां वामावास्यायां वाग्निमाधत्ते० चतुर्विंशत्यां प्रक्रमेष्वाधेयः० तद्यस्येत्येतदपरिमित एव तस्यादध्यात्० ॥० प्राचीनप्रवण आधेयः० प्राचीनं मध्यमाद्विंशताधेयः० ॥० एतावद्वा अस्या अनभिमतं यावद्वेदिः परिगृहीता । तामुद्धृत्याप उपसृज्याग्निमाधत्ते । यज्ञियामेवैनानां मेध्यां कृत्वाधत्ते० ॥० सैवत्सरमुत्सृजेताग्निमाधास्यमानः । नास्याग्निं गृहाद्धरेयुर्नान्यता आहरेयुः० द्वादश रात्रोरुत्सृजेत० तिस्र उत्सृजेत० एकामुत्सृजेत० ॥

कासं [७.१२]—

प्र वेधसे कवये वेद्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यजेहीड्यानि ॥

समिधाग्निं दुवस्यत.... ॥ उदग्रे तव तत्.... ॥ उप त्वा जुहो मम.... ॥

प्रजा अग्रे संवासयाशाश्च पशुभिस्सह ।

राष्ट्राण्यस्मा आधेहि यान्यासन् सवितुस्सवे ॥

सै वस्सृजामि हृदये सैसृष्टं मनो अस्तु वः ॥

सैसृष्टास्तन्वस्सन्तु वस्सैसृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥

सं या वः प्रियास्तन्वस्संप्रिया हृदयानि वः ।

आत्मा वो अस्तु संप्रियस्संप्रियास्तन्वो मम ॥

यो अश्वत्थश्शमीगर्भ आरुरोह त्वय्यपि ।

तं ते गृह्णामि यज्ञियैः केतुभिस्सह ॥

मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निं रायस्पोषेण सह वर्चसेह देवाः ।

मयि प्रजां मयि पुष्टिं दधामि मदेम शतहिमास्सुवीराः ॥

यो नो अग्निः पितरो हृस्वन्तरमर्थो मर्त्यो आविवेश ।

तमात्मनि परिगृह्णीमहे वयं मैषो अस्मानवहाय परागान्मा वयमेतमवहाय

परागाम ॥

कासं [८.१; ३; १०; ७.१५]—

० यत् कृत्तिकास्त्रिमाधत्ते० रोहिण्यामाधेयः० यच्चित्रायामग्निमाधत्ते० पूर्वासु फल्गुनीष्वदधीत यः कामयेत भगी स्यामिति० उत्तरास्त्रादधीत यः कामयेत दानकामा मे प्रजास्स्युरिति० राजन्यस्यादध्यात्० वसन्ता ब्राह्मणेनाधेयः० ग्रीष्मे राजन्येनाधेयः० शरदि वैश्येनाधेयः० सोमेन यजा इति वा अग्निमाधत्ते । यस्मिन्नेव कस्मिंश्चर्ता आदधीत सोमेन यक्ष्यमाणः० फल्गुनीपूर्णमास आधेयः० शिशिर आधेयः० पूर्णमासे वामावस्यायां वादधीत०॥० अष्टासु प्रक्रमेषु ब्राह्मणेनाधेयः० एकादशसु प्रक्रमेषु राजन्येनाधेयः० द्वादशसु प्रक्रमेषु वैश्येनाधेयः० अपरिमित आधेयः० यावति चक्षुषा मन्येत तावत्यादधीत०॥० यदारोहस्यारणी भवतः०॥० य एष ओदनः पच्यत आरम्भणमेवैतत्क्रियते० प्रादेशमात्रीस्समिधो भवन्ति० अग्नेर्वै या यज्ञिया तनूरश्चत्थे तथा समगच्छत० यद्धृतेन समिधोऽनक्ति० निर्मार्गस्यादधाति० यत्पुरा संवत्सरादग्नौ समिध आदधाति० द्वादशसु रात्रीषु पुराधेयाः० अथो तिसृष्वथो द्वयोरथो पूर्वेष्वुराधेयाः० यदुच्छिष्टेन समिधोऽनक्ति० ॥

कासंक [१.१-११]^१

ब्रह्मणे त्वा प्राणाय जुष्टं निर्वपामि । ब्रह्मणे त्वाऽपानाय जुष्टं निर्वपामि । ब्रह्मणे त्वा व्यानाय जुष्टं निर्वपामि । ब्रह्मणे त्वा समानाय जुष्टं निर्वपामि० चतुःशरावो भवति० यद्वत्विजः प्राश्रन्ति तद्ब्रह्मौदनस्य ब्रह्मौदनत्वम् । निशि चर्मन् ब्रह्मा ब्रह्मौदनं निर्वपति० जीवतण्डुलो भवति संपद्भवै । अपूतो वा एषोऽमेध्योऽयज्ञियोऽनृतमूचिवान् य ऋणान्यनवदायाग्निमाधत्ते । तमन्वारम्भयित्वा यदेवा देवहेडनं यददीव्यन्तृणमहमित्येता आहुतीराज्येन जुहोति० एकविंशतिरेता आहुतीर्जुहोति० य एवं विद्वानेतमोदनमासाधैता आहुतीराज्येन जुहोति० प्र वेधसे कवय इत्युक्त्वौदनस्य जुहोति० धारयत्येतमग्निम् । न मांसमश्नीयात् न स्त्रियमुपेयात् अधः शयीत न विप्रसेन्नास्य गृहादग्निं हरेयुर्नाहरेयुरन्यत आत्मनो गोपीथाय० गारो वा एषोऽग्नीनां यत् गार्हपत्यः० तस्य योऽग्नेस्तृतीयो भागस्तं देवाः श्वो भूते प्राञ्चमनयन् । स देवेभ्य आहवनीयोऽभवत्० तस्माच्छ्वः स्वः प्राङ् प्रणीयते । तस्य योऽग्नेस्तृतीयो भागस्तं देवपितरः पर्यगृह्णन् दक्षिणतोऽनयन् स दक्षिणाग्निरभवत्० अथ यः कामयेतामपक्वं मे पितृभ्यो भागधेयं

१. मुद्रितपुस्तके अग्न्याधेयब्राह्मणे ११ कण्डिका दृश्यन्ते । अन्तिमायाः कण्डिकाया अन्ते ' ९ ' इति संख्या दत्ता । अयं परिगणनदोषो मुद्रणदोषो वा स्यात् ।

भवत्विति गार्हपत्यादग्निं प्रणीयाहुतीर्जुहुयात्० मण्डलं गार्हपत्यस्य लक्षणं कुर्यात्० अष्टाविंशत्यङ्गुलो भवति० दक्षिणाग्नेश्चन्द्रार्धं० द्वात्रिंशदङ्गुलो भवति० चतुरश्रमाहवनीयस्य कुर्यात्० अरन्निमात्रो भवति० तदश्वत्थोऽजायत० एवमेष स शमीगर्भस्तच्छमीगर्भस्य शमीगर्भत्वं० अयमग्निर्मिथुनात्संभवत्यथो अरण्या अथोत्तरादिति० एतद्वै विष्णुरूपम् । यदुत्तरारणिस्तद्वायव्या रूपं० द्वादशाङ्गुल उत्तरो भवति० त्रयोदशाङ्गुलं छत्रं भवति० त्रिषवणं नेत्रं भवति० चतुर्विंशत्यङ्गुलारणिर्भवति० तस्या यान्यग्ने चत्वार्यङ्गुलानि तच्छिरो यदन्यानि चत्वार्यङ्गुलानि सा ग्रीवा यदन्यानि चत्वार्यङ्गुलानि तदुरः स्तनो बाहू पार्श्वे पृष्ठमुदरं च यदन्यानि चत्वार्यङ्गुलानि सा श्रोणी यदन्यानि चत्वार्यङ्गुलानि तदूरु जानुनी यदन्यानि चत्वार्यङ्गुलानि तज्जङ्घे पादा इति । एतावतैवारणिः सवैरङ्गैः संपूर्णा भवति० यच्छ्रोण्यां मन्यति तत्सर्वैर्वा देवानाम् । तेन यजमानः स्वर्ग्यो भवति० प्रथमे मन्यने स्थानकल्पा नानेतरेषु० ॥

कपिसं [६.२]—

यो अश्वत्थः शमीगर्भ आरुरोह त्वय्यपि । तं ते हरामि यज्ञियैः केतुभिः सह ॥ मयि गृह्णाम्यह.... ॥ यो नो अग्निः पितरो....परागात् ॥ सै वः सृजामि.... ॥ सं या वः.... ॥ समिधाग्निं दुवस्यत.... ॥ उदग्ने तव तत्....॥ घृतेनाग्निः समिध्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः ॥

कपिसं [६.५-८]

य एष ओदनः पच्यत आरम्भणमेवैतत्० प्रादेशमात्रीः समिधो भवन्ति० यदघृतेन समिधोऽनक्ति० यत् पुरा संवत्सरादग्नौ समिध आदधाति० द्वादशसु रात्रीषु पुराधेयाः० अथो तिसृष्वथो द्वयोरथो पूर्वैश्चुराधेयाः० यदुच्छिष्टेन समिधोऽनक्ति०.... ॥

वासं [३.१-४]—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥

शब्रा [२.१.१-३]—

स यद्वा इतश्चेतश्च संभरति० यत्र यत्राग्नेर्यत्कं ततस्ततः संभरति० अथोल्लिखति । तद्यदेवास्त्यै पृथिव्या अभिष्ठितं वा अभिष्ठयूतं वा तदेवास्या एतदुद्धन्ति० अथाद्भिरभ्युक्षति । एष वा अपां संभारो यदद्भिरभ्युक्षति० अथ हिरण्यं संभरति० अथोषान् संभरति०

अंथाखुकीषं संभरति० अथ शर्कराः संभरति० तान् वा एतान् पञ्च संभारान्संभरति० कृत्तिकास्वग्नी आदधीत० रोहिण्यामग्नी आदधीत० मृगशीर्षेऽग्नी आदधीत० फल्गुनीष्वग्नी आदधीत० पूर्वयोरादधीत० उत्तरयोरादधीत० हस्तेऽग्नी आदधीत० चित्रायामग्नी आदधीत० तस्मादेतत्क्षत्रिय एव नक्षत्रमुपेत्येत० तस्माद् सूर्यनक्षत्र एव स्यात्० य एवं विद्वान् देवाः पितर इति ह्वयति० स यत्रोदङ्ढावर्तते तर्ह्यग्नी आदधीत० तस्माद् ब्राह्मणो वसन्त आदधीत० तस्मात् क्षत्रियो ग्रीष्म आदधीत० तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत० स यः कामयेत ब्रह्मवर्चसी स्यामिति वसन्ते स आदधीत० अथ यः कामयेत क्षत्रं श्रिया यशसा स्यामिति ग्रीष्मे स आदधीत० अथ यः कामयेत बहुः प्रजया पशुभिः स्यामिति वर्षासु स आदधीत० यदैवैनं कदा च यज्ञ उपनमेदथाग्नी आदधीत न श्वःश्वमुपासीत । को हि मनुष्यस्य श्वो वेद० । शत्रा [११.१.१]— स योऽमावास्यायामग्नी आधत्ते० तस्मान्न नक्षत्र आदधीत । यदहरेवैष न पुरस्तान्न पश्चाद् दृश्येत तदहरुपवसेत्० यासौ वैशाखस्यामावास्या तस्यामादधीत । सा रोहिण्या संपद्यते० ॥

वाकासं [३.१.] ≡ वासं

काशत्रा [१.१.१-३; १३.१.१] ≡ शत्रा

गोत्रा [१.२.१५-१६]—

य एष ओदनः पच्यत आरम्भणमेवैतत्क्रियते० प्रादेशमात्रीः समिधो भवन्ति० अग्नेर्वै या यज्ञिया तनूरश्चत्ये तथा समगच्छत० यद् घृतेन समिधोऽनक्ति० यत् संवत्सर ऋचाग्नौ समिधमादधाति० द्वादशसु रात्रीषु पुरा संवत्सरस्याधेयाः० अथो तिसृष्वथो द्वयोरथो पूर्वे-
द्युराधेयाः० यदुच्छिष्टेन समिधोऽनक्ति० प्रजापतिरथर्वा देवः स तपस्तप्त्वैतं चातुःप्राश्यं ब्रह्मौदनं निरमिमीत० तस्मान्मन्त्रवन्तमेव ब्रह्मौदनमुपेयान्नामन्त्रवन्तमिति ब्राह्मणम् ॥

अग्निमन्थनम्

तैत्रा [१.२.१]—

प्रजा अग्ने संवासयाशाश्च पशुभिः सह ।

राष्ट्राण्यस्मा आधेहि यान्यासन्तसवितुः सवे ॥

मही विश्वत्नी सदने ऋतस्यार्वाची एतं धरुणे रयीणाम् ।

अन्तर्वत्नी जन्यं जातवेदसमध्वराणां जनयथः पुरोगाम् ॥

आरोहतं दशतः शकरीर्ममर्तेनाग्र आयुषा वर्चसा सह ।
 ज्योग्जीवन्त उत्तरामुत्तराः समां दर्शमहं पूर्णमासं यज्ञं यथा यज्ञै ॥
 ऋत्विग्वती स्थो अग्निरेतसौ गर्भं दधाथां ते वामहं ददे । तत्सत्यं यद्वीरं
 विभृथो वीरं - जनयिष्यथः । ते मत्प्रातः प्रजनिष्येथे ते मा प्रजाते
 प्रजनयिष्यथः । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सुवर्गे लोके ॥ अनृतात्सत्यमुपैमि ।
 मानुषादैव्यमुपैमि । दैवीं वाचं यच्छामि ॥
 शल्कैरग्निमिन्धान उभौ लोकौ सनेमहम् ।
 उभयोर्लोकयोर्ऋद्वातिमृत्युं तराम्यहम् ॥
 जातवेदो भुवनस्य रेत इह सिञ्च तपसो यज्जनिष्यते ।
 अग्निमश्वात्थादधि हव्यवाहं शमीगर्भाज्जनयन् यो मयोभूः ॥
 अयं ते योनिर्ऋत्विगो यतो जातो अरोचथाः ।
 तं जानन्नग्र आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥
 अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
 अदादिदं यमो वसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥
 अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि ॥
 संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ॥
 सं वः सृजामि हृदयानि । सः सृष्टं मनो अस्तु वः सः सृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥
 सं या वः प्रियास्तनुवः संप्रिया हृदयानि वः ।
 आत्मा वो अस्तु संप्रियः संप्रियास्तनुवो मम ॥
 कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधीः ।
 कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥
 येऽग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ।
 वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु ॥
 दिवस्त्वा वीर्येण पृथिव्यै महिम्ना । अन्तरिक्षस्य पोषेण सर्वपशुमादधे ॥
 अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्त्रेमाणं तरणिं वीडुजम्भम् ।
 दश स्वसारो अग्रवः समीचीः पुमांसं जातमभि सः रभन्ताम् ॥
 प्रजापतेस्त्वा प्राणेनाभिप्राणिमि । पूष्णः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शत-

शारदाय । शत५ शरद्भ्य आयुषे वर्चसे जीवात्वे पुण्याय ॥ प्राणे त्वामृत-
मादधाम्यन्नादमन्नाद्याय गोप्तारं गुप्त्यै ॥

तैत्रा [१.१.३; ९]—

उद्धन्ति । यदेवास्या अमेध्यम् । तदपहन्ति । अपोऽवोक्षति शान्त्यै । सिकता
निवपति० ऊषान्निवपति० अथो संज्ञान एव० यददश्चन्द्रमसि कृष्णम् । ऊषान्निवपन्नदो
ध्यायेत्० यदाखुकरीष५ संभारो भवति० यद्वल्मीकवपा संभारो भवति० यस्य सूदः संभारो
भवति० यद्वराहविहत५ संभारो भवति० शर्करा भवन्ति धृत्यै० यद्विरण्यमुपास्यति० उत्तरत
उपास्यति० अतिप्रयच्छति० यदाश्वत्थः संभारो भवति० यदौदुम्बरः संभारो भवति० यस्य
पर्णमयः संभारो भवति० यच्छमीमयः संभारो भवति० यद्वैकङ्कतः संभारो भवति० यदशनि-
हतस्य वृक्षस्य संभारो भवति० ॥० अथाधास्यमानो ब्रह्मोदनं पचति० शल्कैस्ता५ रात्रिमग्नि-
मिन्धीत । तस्मिन्नुपव्युषमरणी निष्टपेत्० अपोदूह्य भस्माग्निं मन्यति० तं मथित्वा प्राश्चमुद्धरति०
शमीगर्भादग्निं मन्यति० ॥

मैसं [१.६.१]—

अयं ते योनिः.....ततो नो वर्धया रयिम् ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीत्.....पुरः ।..... ॥

त्रिंशद्भामा विराजति वाक्पतङ्गाय हूयते । व्यक्शन् महिषो दिवम् ॥

अन्तश्चरत्यर्णवे अस्य प्राणादपानतः । प्रति वाँ सूरु अहभिः ॥

इतो जज्ञे प्रथमं स्वाद्योनेरधि जातवेदाः ।

स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्या बहत्तु प्रजानन् ॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्यं आविवेश ।

तमात्मनि परिगृह्णीमसीह नेदेषो अस्मानबहाय परायत् ॥

दोह्या च ते दुग्धभृच्चोर्वरी ते ते भागधेयं प्रयच्छामि ताभ्यां त्वादधे ॥

धर्मः शिरः..... पशुभिर्भव । पुरीषमसि ।

यत्ते शुक्रं शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमशीथाः ॥

मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निं सह प्रजया वर्चसा धनेन ।

मयि क्षत्रं मयि रायो दधामि मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥

मैसं [१.६.१२; ३; १०; ४]—

यस्या रात्र्याः प्रातरग्निमाधास्यमानः स्यात्तौ रात्री चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्म

णेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत्० यदुज्जिष्टे विवर्तयित्वा समिध आदधाति०॥० यद्वराहविहतमुपा-
स्याग्निमाधत्ते० यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्ते० यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्ते० यत्सिकता उप-
कीर्याग्निमाधत्ते० यज्शर्करा उपकीर्याग्निमाधत्ते० यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेत्० यदाखुकिरि-
मुपकीर्याग्निमाधत्ते० ॥ न पुरा सूर्यस्योदेतोर्मन्थितवै० उद्यत्सु रश्मिषु मध्यः० क्षौमे वसाना
अग्निमादधीयाताम्० ॥

कासं [७.१२]—

मही विश्पत्नी सदनी ऋतस्यार्वाची एतं धरुणे रयीणाम् ।
अन्तर्वती जन्यं जातवेदसमध्वराणां जनयतं पुरोगाम् ॥
उत्समुद्रान्मधुमी ऊर्मिरागात्साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं चेषमूर्जं मधुमत्संभरेम ॥
इत्यग्र आसीरदो देवि प्रथमाना पृथग्यत् ।
देवैर्नुत्ता व्यसर्पो महित्वा अद्वैहथाशर्कराभिस्त्रिविष्टपि ।
अजयो लोकान् प्रदिशश्चतस्रः ॥
उदेह्यग्रे अधि मातुः पृथिव्या विश आविश महत्सधस्थात् ।
आशुं त्वाजौ दधिरे देवयन्तो हव्यवाहं शुवनस्य गोपाम् ॥
यदीदं दिवो यदि वा पृथिव्यास्संबभूव सुकृतो रराणयोः ।
तयोः पृष्ठे सीदतु जातवेदाः प्रजामस्मभ्यं जनयन् रयिं च ॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथे हरित्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥
यत्पृथिव्या अनामृती संबभूव त्वे सचा ।
तदग्निरग्नये ददत्तस्मिन्नाधीयतामयम् ॥ यदन्तरिक्षस्य.... ॥
यद्विषो अनामृती संबभूव त्वे सचा ।
तदग्निरग्नये ददत्तस्मिन्नाधीयतामयम् ॥

कासं [८.२; १२]—

यदूषा भवन्ति० यज्जर्करा भवन्ति० यद्वल्मीकवपा भवति० यद्वराहविहतं भवति०
यदप उपसृजति० पञ्चैते संभाराः० यदौदुम्बराणि भवन्ति० यच्छमीमयानि भवन्ति०
यदाश्वत्थानि भवन्ति० यद्वृक्षस्याशनिहतस्य भवन्ति० पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति० ॥
आधेयोऽग्नीर्नाधेया इति मीमीसन्ते । श्वोऽग्निमाधास्यमानेना इत्याधेय एव० अजो

बद्धस्तां रात्रीं वसेत्० कल्माषस्त्यात्० यस्ती श्वोऽग्निमाधास्यन् स्यात्स तां रात्रीं व्रतं चरेत्
न मीसमश्नीयान्न क्षियमुपेयात्० ॥

कासंक [१.३; १०]—

श्व आधास्यमान रात्रीं जाग्रति० शिल्पैर्गायन्ति० ॥० तस्मादध्वर्युः प्रत्यङ्मुखोऽग्निं
मन्यति० त्वेषस्ते धूम ऋष्वतीति यद्धूमे साम गायति० गातुवित्तममिति यदग्नौ साम गायति०
तस्मादन्याधेये सामानि न गीयन्ते । तस्मात् सोमे गेयानि न प्राक्सोमे० ॥

कपिसं [६.२]—

यत्पृथिव्या अनामृते.... ॥ यदन्तरिक्षस्य.... ॥ यद्विषो.... ॥

कपिसं [६.७; ७.७] ≡ कासं

शत्रा [२.१.४; २.२.२]—

यदहरस्य श्वोऽग्न्याधेयं स्यात् दिवैवाश्नीयात्० तद्वपि काममेव नक्तमश्नीयात्० नो
ह्यनाहिताग्नेर्नतचर्यास्ति० तद्वैकेऽजमुपबध्नन्ति० तदु तथा न कुर्यात् । यद्यस्याजः स्यादग्नीध
एवैनं प्रातर्दद्यात्० अथ चातुष्प्राश्यमोदनं पचन्ति० तदु तथा न कुर्यात्० तस्य सर्पिरासेचनं
कृत्वा सर्पिरासिच्याश्चर्यास्तिन्नः समिधो घृतेनान्वज्य समिद्धतीभिर्धृतवतीभिर्हृग्भिरभ्यादधति०
अथ जाग्रति० तद्वपि काममेव स्वप्यात्० तद्वैकेऽनुदिते मथित्वा तमुदिते प्राञ्चमुद्धरन्ति० तदु
तथा न कुर्यात्० स य उदित आहवनीयं मन्येत् स ह तत्पर्याप्नुयात्० ॥ तद्यत्रैनमदो मन्यन्ति
तज्जातमभिप्राणिति० तमुद्दीप्य समिन्धे० ॥

काशत्रा [१.१.४] ≡ शत्रा

आधानम्

तैत्रा [१.१.७; १.२.१]—

धर्मः शिरस्तदयमग्निः संग्रियः पशुभिर्भुवत् ।

छर्दिस्तोकाय तनयाय यच्छ ॥

अहं त्वदस्मि मदसि त्वमेतन्ममासि योनिस्तव योनिरस्मि ।

ममैव सन् बह हन्यान्यग्ने पुत्रः पित्रे लोककृज्जातवेदः ॥

सुगार्हपत्यो विदहन्नरातीरुषसः श्रेयसीः श्रेयसीर्दधत् ।

अग्ने सपत्ना५ अपवाधमानो रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासु धेहि ॥

वातः प्राणस्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भुवत् ।

स्वदितं तोकाय तनयाय पितुं पच ॥

इमा उ मासुपतिष्ठन्तु राय आभिः प्रजाभिरिह संवसेय ।

इहो इडा तिष्ठतु विश्वरूपी मध्ये वसोर्दीदिहि जातवेदः ॥

ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृषणे शुष्मायायुषे वर्चसे । सपत्नतूरसि वृत्रतूः ।

यस्ते देवेषु महिमा सुवर्गो यस्त आत्मा पशुषु प्रविष्टः ।

पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे तया नो अग्ने जुषमाण एहि ॥

दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वातात्पशुभ्यो अघ्योषधीभ्यः ।

यत्र यत्र जातवेदः संबभूथ ततो नो अग्ने जुषमाण एहि ॥

प्राचीमनु^१ प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह ।

विश्वा आशा दीद्यानो विभाहूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

विक्रमस्व महा९ असि वेदिषन्मानुषेभ्यः । त्रिषु लोकेषु जागृहि ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततान ॥

यदिदं दिवो यददः पृथिव्याः संविदाने रोदसी संबभूवतुः ।

तयोः पृष्ठे सीदतु जातवेदाः शंभूः प्रजाभ्यस्तनुवे स्योनः ॥

प्राणं त्वामृत आदधाम्यन्नादमन्नाद्याय गोप्सारं गुप्त्यै ॥ अर्कश्चक्षुस्तदसौ

सूर्यस्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भुवत् । यत्ते^१ शुक्रं शुक्रं वर्चः शुक्रा तनूः

शुक्रं ज्योतिरजस्रं तेन मे दीदिहि तेन त्वादधेऽग्निनाग्ने ब्रह्मणा ॥ आनशे^१

व्यानशे सर्वमायुर्व्यानशे ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च

ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ सम्राट्

चाभिभूश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ

विभूश्च परिभूश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे

तनुवौ प्रभ्वी च प्रभूतिश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ यास्ते

अग्ने शिवास्तनुवस्ताभिस्त्वादधे ॥ यास्ते अग्ने घोरास्तनुवस्ताभिरमुं गच्छ ॥

नर्यं प्रजां मे गोपाय । अमृतत्वाय जीवसे ।

जातां जनिष्यमाणां च । अमृते सत्ये प्रतिष्ठिताम् ॥

अथर्व पितुं मे गोपाय । रसमन्नमिहायुषे ।
 अदब्धायोऽशीततनो । अविषं नः पितुं कृणु ॥
 श५स्य पशून्मे गोपाय । द्विपादो ये चतुष्पदः ।
 अष्टाशफाश्च य इहाग्रे । ये चैकशफा आशुगाः ॥
 सप्रथ सभां मे गोपाय । ये च सभ्याः सभासदः ।
 तानिन्द्रियावतः कुरु । सर्वमायुरुपासताम् ॥
 अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय । यमृषयस्त्रयिविदा विदुः ।
 ऋचः सामानि यजू५षि । सा हि श्रीरमृता सताम् ॥
 पञ्चधाग्नीन् व्यक्रामत् । विराट् सृष्टा प्रजापतेः ।
 ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः ॥

तैब्रा [१.१.४; ५; ८; ६]—

तस्मादाहिताग्निर्नृत्तं वदेत् । नास्य ब्राह्मणोऽनाश्चान् गृहे वसेत्० नक्तं गार्हपत्य-
 मादधाति० दिवाहवनीयम्० अर्धोदिते सूर्य आहवनीयमादधाति० गार्हपत्यमग्र आदधात्०
 अथान्वाहार्यपचनम्० अथाहवनीयम्० भृगूणां त्वाङ्गिरसां व्रतपते व्रतेनादधामीति भृग्वङ्गि-
 रसामादध्यात् । आदित्यानां त्वा देवानां व्रतपते व्रतेनादधामीत्यन्यासां ब्राह्मणीनां प्रजानाम् ।
 वरुणस्य त्वा राज्ञो व्रतपते व्रतेनादधामीति राज्ञः । इन्द्रस्य त्वेन्द्रियेण व्रतपते व्रतेनादधामीति
 राजन्यस्य । मनोस्त्वा ग्रामण्यो व्रतपते व्रतेनादधामीति वैश्यस्य । ऋभूणां त्वा देवानां
 व्रतपते व्रतेनादधामीति रथकारस्य । यथादेवतमग्निराधीयते० ॥० भूर्भुवः सुवरित्याह । एतद्वै
 वाचः सत्यम् । य एतेनाग्निमाधत्ते० भूरित्याह० भुव इत्याह० सुवरित्याह० त्रिभिरक्षरैर्गार्ह-
 पत्यमादधाति० सर्वैः पञ्चभिराहवनीयम्० उपरीवाग्निमुदगृह्णीयादुद्धरन्० यदश्वं पुरस्तान्नयति०
 पुनरावर्तयति० सोऽश्वः पूर्ववाङ् भूत्वा प्राञ्चं पूर्वमुदवहत्० अधोऽधः शिरो हरति० इयत्यग्रे
 हरति । अथेत्यथेयति० यत् त्रेधाग्निराधीयते० पुनरावर्तयति० यदश्वस्य पदेऽग्निमादध्यात्०
 पार्श्वत आक्रमयेत् । यथाहितस्याग्नेरङ्गारा अभ्यववर्तेरन्० ॥० घर्मः शिर इति गार्हपत्यमादधाति ।
 वातः प्राण इत्यन्वाहार्यपचनम् । अर्कश्चक्षुरित्याहवनीयम्० रथन्तरमभिगायते गार्हपत्य आधीय-
 माने० वामदेव्यमभिगायत उद्ग्रियमाणे० बृहदभिगायत आहवनीय आधीयमाने० यद्वावन्तीय-
 मभिगायते० श्यैतेन श्येतीकुरुते० आनशे व्यानश इति त्रिरुदिङ्गयति० तत्तथा न कार्यम्०
 उद्ग्रत्यैवाधायामिमन्यः० यास्ते अग्ने घोरास्तनुवस्ताभिरमुं गच्छेति ब्रूयाद्यं द्विष्यात्० ॥०
 रथचक्रं प्रवर्तयति० ब्रह्मवादिनो वदन्ति । होतव्यमग्निहोत्राम्३ न होतव्या३मिति । यद्यजुषा
 जुहुयात् । अयथापूर्वमाहुती जुहुयात् । यन्न जुहुयात् । अग्निः परा भवेत् । तूष्णीमेव होतव्यम्० ॥

मैसं [१.६.१-२]—

भूर्भुवोऽङ्गिरसां त्वा देवानाँ व्रतेनादधे ॥ अग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधे ॥
इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादधे ॥ मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधे ॥ आछदि
त्वा छन्दो दधे द्यौर्महासि भूमिर्भूना । तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्ना-
दमग्निमन्नपत्यायादधे ॥ अग्रा आयूँषि पवसे.... ॥ अग्निर्ऋषिः.... ॥
अग्ने पवस्व.... ॥ या वाजिन्नग्नेः पवमाना प्रिया तनूस्तामावह ॥ या
वाजिन्नग्नेः पावका प्रिया तनूस्तामावह ॥ या वाजिन्नग्नेः शुचिः प्रिया
तनूस्तामावह ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येना ते पक्षा हरिणोत बाहू उपस्तुत्यं जनिम तत्ते अर्वन् ॥
ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृष्णे शुष्माय सपत्नतूरसि वृत्रतूः ॥
प्राचीमनु....दीद्यद्विभाहूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

अभ्यस्थाँ विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।
बृहस्पतिः सवितेन्द्रस्तदाह पूषा ना आधात्सुकृतस्य लोके ॥

भुवः स्वरङ्गिरसां त्वा देवानाँ व्रतेनादधे ॥ अग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधे ॥
इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादधे ॥ मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधे ॥ आछदि
त्वा छन्दो दधे.... ॥ यत्ते शुक्र शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादधे ॥
इडायास्त्वा पदे वयं.... ॥

सम्राट् च स्वराट् चाग्ने ये ते तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जं यछ ॥ विराट् च
प्रभूश्चाग्ने ये ते तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जं यछ ॥ विभूश्च परिभूश्चाग्ने ये ते
तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जं यछ ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमं उदारदुपाँशुना सममृतत्वमानद् ।

घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।

उप ब्रह्मा शृणवञ्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्रौर एतत् ॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रेधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्य आततान ॥

ये अग्रयः समनसा ओषधीषु वनस्पतिषु प्रविष्टाः ।

ते विराजमभिसँयन्तु सर्वा ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।

सप्त ऋत्विजः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त होत्रा ऋतुथा नु विद्वान्सप्त

योनीराष्ट्रणस्व घृतेन स्वाहा ॥

ये अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः समागच्छन्तीषमूर्जं वसानाः ।

ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा

यथालोकं पुनरस्तं परेत स्वाहा ॥

धर्मः शिरस्तदयं.....पशुभिर्भव । पुरीषमसि । यछा तोकाय तनयाय शं योः॥

अर्को ज्योतिस्तदयं..... शं योः ॥

वातः प्राणस्तदयं..... अविषं नः पितुं पच ॥

कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापा ओषधयः । कल्पन्तां.....सव्रताः ॥

ये अग्नयः समनसा ओषधीषु वनस्पतिषु प्रविष्टाः ।

ते विराजमभिसंयन्तु सर्वा ऊर्जं नो धत्त द्विपदे चतुष्पदे ॥

मैसं [१.६.४-७; १०; ११]—

यदश्वं पुरस्तान्नयन्त्यभिजित्यै० न पराडवसृज्यः० प्रत्यवगृह्याधेयः० न पद आधेयः० पार्श्वत इतो वेतो आधेयः० हिरण्यं सुवर्णमुपास्याग्निराधेयः० तन्न निरस्तवै० ॥० तथे वनस्पतय आरण्या आद्यं फलं भूयिष्ठं पच्यन्ते तस्य पर्णान्यै यवमयश्चापूपो व्रीहिमयश्च संगृह्योपास्याधेयः० इतः खलु वा एतं प्राञ्चमुद्धरन्ति तस्माद्यवमयः पश्चोपास्यो व्रीहिमयः पुरः० तद्यो ब्राह्मण आङ्गिरसः स्यात्तस्यादध्यात् भूर्भुवोऽङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादधा इति पश्चा । भुवः स्वरिति पुरः । द्विः पश्चा द्विः पुरः० अथ यो ब्राह्मणो वैश्वानरः स्यात्तस्यादध्यात् भूर्भुवोऽग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधा इति पश्चा । भुवः स्वरिति पुरः । द्विः पश्चा द्विः पुरः० अथ राजन्यस्यादध्यात् भूर्भुवा इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादधा इति पश्चा । भुवः स्वरिति पुरः । द्विः पश्चा द्विः पुरः० अथ वैश्यस्यादध्यात् भूर्भुवो मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधा इति पश्चा । भुवः स्वरिति पुरः । द्विः पश्चा द्विः पुरः० यदाग्नेयपावमानीभिराश्वत्थीः समिध आदधाति० यज्जामीमीः समिध आदधाति० यदौदुम्बरीं समिधमादधाति० ॥० तद्वाचयेद्धर्मः शिरस्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव पुरीषमसीति० यत्ते शुक्रं शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमशीथा इति० स दक्षिणत एव हार्यः । स यदा समयाध्वं गच्छेदथ यजमानो वरं दद्यात् । तद्विराजं मध्यतोऽधित० तमग्निं सृष्टमधो न्यदधात्० तं कुल्फदध्नमुदगृह्णात्० तं जानुदध्नं तं नाभिदध्नं तमसदध्नं तं कर्णदध्नमुदगृह्णात्० तं कर्णदध्नं नात्युदगृह्णात्० तमनिधायैवाथ जानुदध्नमुदगृह्णीयादथ नाभिदध्नमसदध्नं० यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात्तस्य रथचक्रं त्रिरनुपरिवर्तयेयुः० ॥०

यत्पूर्णां सुचं जुहोति प्रजापतिमेवाप्नोति सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इति० शमीमयी-
स्तिस्रः समिधा आदधाति घृतान्वक्ता घृतस्तोम्याभिः० तज्जुहुयाद् ये अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः
समागच्छन्तीषमूर्जं वसानाः । ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा
यथालोकं पुनरस्तं परेत स्वाहेति० तद्वाचयेद् धर्मः शिरस्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्मव पुरीष-
मसीति० यत्ते शुक्रं शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादधा इति सतेजसमेवैनमाधत्ते ।
इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि । जातवेदो निधीमह्यग्रे हव्याय वोढवे इति० तद्य
एवं विद्वान् वारवन्तीयं गायते० य एवं विद्वान् वामदेव्यं गायते० यद्यज्ञायज्ञियं गायते० ॥०
अयाग्निहोत्रं होतव्यमिति० तन्नैवं कर्तव्ये० ॥ यं कामयेत पशुमान्त्स्यादिति यो बहुपुष्टस्तस्य
गृहादग्निमाहरेयुः० अथ यं कामयेतान्नादः स्यादिति तस्य भ्रष्टादक्षिणाग्निमाहरेयुः० स
मथ्य एव० ॥

कासं [७.१३-१४]—

इत एव प्रथमं जज्ञे अग्निरेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।

स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥

सहाग्ने अग्निना जायस्व सह रय्या सह पुष्ट्या सह प्रजया सह ब्रह्मवर्च-
सेनाजन्त्यग्निर्होता पूर्वः पूर्वभ्यः पवमानः पावकश्शुचिरीड्योऽसुरसि प्रथमजा
असुर्नामासुरुच्यसेऽसुरहमसुस्त्वं किमद्यासुरसुं करदसोरसुं प्रतीतन
संजानीध्वम् ॥ भूर्भुवर्ज्जिरसां त्वा देवानां व्रतेनादधे ॥ आदित्यानां त्वा
देवानां व्रतेनादधे ॥ द्यौर्महासि भूमिर्भूम्ना तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽ-
न्नादमन्नाद्यायान्नपत्यायादधे ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ॥

अग्ने गृहपतेऽहे बुध्न्य परिषद्य दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं विन्द
यजमानाय पृथिव्या मूर्धन् सीद यज्ञिये लोके यो नो अग्ने निष्टथो
योऽनिष्टथोऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि ॥

यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवि याः पृथिव्याम् ।

ताभिस्संभूय सगणस्सजोषा हिरण्ययोनिर्वह हव्यमग्ने ॥

सं त्वमग्ने दिव्येन ज्योतिषा भाहि समन्तरिक्ष्येण सं पार्थिवेन वैश्वानर्या
समिधा दीदिहि न ऊर्जस्वत्या वर्चस्वत्या भास्वत्या रश्मिवत्या
ज्योतिष्मत्या ॥ या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः पशुषु पवमाना तामावह तया
मा जिन्व ॥ या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूरप्सु पावका तामावह तया मा

जिन्व ॥ या वाजिन्नग्रेः प्रिया तनूस्त्वय्ये शुक्रा शुचिमती तामावह तया मा
जिन्व ॥ ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृष्णे शुष्माय । अशस्तितूरसि वृत्रतूः ।
अस्मान् पथो ज्यैष्ठ्यान्मा योषम् ॥

प्राचीमनु प्रदिशं ग्रेहि विद्वानग्रेग्रे पुरो अग्रे भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यद्विभाहूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
भुवरङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादधे ॥ आदित्यानां त्वा.... ॥
द्यौर्महासि.... ॥

अस्य प्राणादपानत्यन्तश्चरति रोचना । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥
अग्रे नय मयोभो सुशेव दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं.... ॥
यास्ते शिवास्तन्वो.... ॥ सं त्वमग्रे दिव्येन.... ॥ नाकोऽसि ब्रध्नः प्रतिष्ठा
संक्रमणम् ॥ भूर्भुवस्स्वरङ्गिरसां त्वा देवानां.... ॥ आदित्यानां त्वा.... ॥
द्यौर्महासि.... ॥

त्रिंशद्भाम विराजति वाक्पतङ्गा अशिश्त्रयुः । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥
अग्रे संराडजैकपादाहवनीय दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं.... ॥ यास्ते
शिवास्तन्वो.... ॥ सं त्वमग्रे दिव्येन.... ॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वविवेश ।
यत्र यत्र बिभ्रतो जातवेदा अग्रे ततो द्रविणोदा न एहि ॥
मनुष्वत्त्वा निधीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्रे मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥

सप्त ते अग्रे समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्रा अनु विद्वान् सप्त योनीं रापृणस्वा घृतेन ॥

या ते अग्रे पवमाना तनूः पृथिवीमन्वाविवेश याग्नौ या रथन्तरे या गायत्रे
छन्दसि या त्रिवृति स्तोमे यान्ने तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा ॥ या ते
अग्रे पावका तनूरन्तरिक्षमन्वाविवेश या वाते या वामदेव्ये या त्रैष्टुभे छन्दसि
या पञ्चदशे स्तोमे या पशुषु तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा ॥ या ते अग्रे
शुचिस्तनूर्दिवमन्वाविवेश या सूर्ये या बृहति या जागते छन्दसि या सप्तदशे
स्तोमे याप्सु तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा ॥ वातः प्राणस्तदयमात्मा
पुरीषमसि संग्रियः पशुभिर्यच्छा तोकाय तनयाय शं योः प्रजां मे यच्छ ॥
धर्मशिरस्तदयमग्निः पुरीषमसि संग्रियः पशुभिस्त्वादितं नः पितुं पच

पशून्मे यच्छ ॥ अर्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्यः पुरीषमसि संप्रियः पशुभिः ॥
यत्ते शुक्रं शुक्रं धाम शुक्रा तनूश्शुक्रं ज्योतिरजस्रं यत्तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्टं
तेन त्वादधे ॥ वर्चो मे यच्छ ॥

येऽग्नयो दिवो येऽन्तरिक्षाद्ये पृथिव्यास्समाजग्गुरिषमूर्जं वसानाः ।
तेऽस्मा अग्नये द्रविणानि दत्त्वा तृप्ताः प्रीताः पुनरस्तं परेत ॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी.... ॥

येऽग्नयस्समनसस्सचेतस ओषधीष्वप्सु प्रविष्टाः ।
ते सम्राजमभिसंयन्तु सर्व ऊर्ज.... ॥

अयमग्निश्चेष्टतमोऽयमस्तु यशस्तमः ।

अयं सहस्रसातमस्सुकृतं योनिमासदत्ततो वरान् वृणीमहे ॥

कासं [८.३-५; १२-१३]—

० पूर्वाह्ण आधेयः ० व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः ० अनुदितेऽपर आधेय उदिते
पूर्वः ० सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि सप्त होत्रा अनु विद्वान्सप्त
योनीं रापृणस्वा घृतेनेति ० पूर्णया क्षुचा मनसा प्रजापतये जुहोति ॥ अङ्गिरसां त्वा देवानां
व्रतेनादध इति ब्राह्मणेनाधेयः ० इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादध इति राजन्येनाधेयः ० मनोस्त्वा
ग्रामण्यो व्रतेनादध इति वैश्येनाधेयः ० सा गार्हपत्यमग्न आदधादयौदनपचनमथाहवनीयं ० स
त्रिव्यां हरिर्भूर्भुवस्स्वरिति ० य एवं विद्वानेतेनाधत्ते ० भूर्भुवस्स्वरिति पर आधेयः ० भूर्भुवस्स्वरिति
पूर्वः ० ॥ ० यदश्वं पुरो नयन्ति ० यदश्वमभ्यावर्तयन्ति ० यदश्वमाक्रमयति ० अश्वो देयः ० वही
देयः ० यद्भिरण्यमुपास्यति ० ॥ एतस्माद्ध्येषोऽधिसृज्यते यस्तमुद्धरति । यो दक्षिणो ब्रह्मवर्च-
सयैवैष मथ्यते ० दुर्गोपस्त्वहरहरस्य मन्येयुर्यत एव कुतश्चाहरेत् ० यत्र दीप्यमानं परापश्येत्तत
आहरेत् ० भृञ्जनादाहरेदन्नकामस्य ० यो ब्राह्मणो वा वैश्यो वा पुष्टोऽसुर इव स्यात् तस्य
गृहादाहरेत् ० गृहे त्वस्य ततो नाश्रीयत् । त्रिरुद्यच्छते ० यत् प्राडुद्भवति ० नाधाय पुनरुद्-
गृहीयात् ० नाधो दध्नुयात् ० यजन्यमुष्मिन् जुह्वत्यस्मिन् पचन्यमुष्मिन् ॥

कासं [१.४-५]—

अग्निमेतमाधाय समिदाधानान्तं कुर्यात् । वरं ददानीति वाचं विसृजते ० रथन्तरं
गार्हपत्य आधीयमाने गायति ० वामदेव्यं दक्षिणाग्रा आधीयमाने गायति ० बृहदाहवनीय आधीय-
माने गायति ० वत्सा हि सामान्यग्नीनाम् । तेऽस्मै न सर्वा आशिषो दुहे । तस्मात् सामानि
न गेयानि ० सोमस्य वा एताः प्रियास्तन्वो यत् सामानि । यदन्यत्र गीयेरन् सोमं प्रियाभिस्तन्-
भिर्व्यधेयेरन्ननुपनामुक एनं सोमः स्यात् । तस्मात् सामानि न गेयानि ॥

कपिसं [६.२-४]—अग्ने गृहपते.... ॥

यास्ते शिवास्तन्वो.... ॥ या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः पशुषु.... ॥ या
वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूरप्सु.... ॥ या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः सूर्ये.... ॥
ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृष्णे शुष्माय । सपत्नतूरसि वृत्रतूः ॥ प्राचीमनु.... ॥
नाकोऽसि ब्रध्नोऽसि प्रतिष्ठा संक्रमणः ॥ सं त्वमग्ने दिव्येन.... ॥ येऽग्नयो
दिवो ये.... ॥ कल्पेतां द्यावापृथिवी.... ॥ ये अग्नयः समनसः.... ॥ या
ते अग्ने पवमाना.... त्रिवृति स्तोमे तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा ॥ या
ते अग्ने पावका.... तस्यै स्वाहा ॥ या ते अग्ने शुचिस्तनूः.... तस्यै स्वाहा ॥
वातः प्राणः.... तनयाय शं योः ॥ धर्मः शिरः.... ॥ अर्कश्चक्षुः.... ॥ यत्ते
शुक्र शुक्रं.... द्यौर्महासि.... ॥ आयं गौः पृथिरक्रमीत्.... ॥ अस्य प्राणाद-
पानती.... ॥ त्रिंशद्दाम विराजति.... ॥

कपिसं [६.८-९; ७.१-२] ≡ कासं

वासं [३.५-८]—

भूर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिष्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि
पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यादधे ॥

आयं गौः पृथिरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्तस्वः ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥

त्रिंशद्दाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥

शत्रा [२.१.४]—

स वै भूर्भुव इत्येतावतैव गार्हपत्यमादधाति० तैः सर्वैः पञ्चभिराहवनीयमादधाति
भूर्भुवः स्वरिति० यत्राग्निं मन्थिष्यन्त्स्यात् तदश्चमानेतवै ब्रूयात् । स पूर्वेणोपतिष्ठते० स वै
पूर्ववाट् स्यात्० यदि पूर्ववाहं न विन्देदपि य एव कश्चाश्वः स्यात् । यद्यश्वं न विन्देदप्य-
नड्वानेव स्यात्० तं यत्र प्राञ्चं हरन्ति तत्पुरस्तादश्वं नयन्ति० तं वै तथैव हरेयुर्यथैनमेष
प्रत्यङ्मुपाचरेत्० अथाश्वमाक्रमयति । तमाक्रमय्य प्राञ्चमुन्नयति । तं पुनरावर्तयति । तमुदञ्चं
प्रमुञ्चति० तमश्वस्य पद आधत्ते० स वै तूष्णीमेवाग्र उपस्पृशति । अथोद्यच्छति । अथोप-
स्पृशति । भूर्भुवः स्वरित्येव तृतीयेनादधाति० अथेदं द्वितीयम् । तूष्णीमेवाग्र उपस्पृशति ।
अथोद्यच्छति । भूर्भुवः स्वरित्येव द्वितीयेनादधाति० प्रथमेनैवोद्यत्यादध्यात् भूर्भुवः स्वरिति०
अतो यतमथा कामयेत तथा कुर्यात् । अथ पुरस्तात्परीत्य पूर्वार्द्धमुल्मुकानामभिपद्य जपति
द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिष्णेति० स यदि कामयेत जपेत् । यद्यु कामयेत अपि नाद्रियेत०

अथ सर्पराज्ञ्या ऋग्भिरुपतिष्ठत आयं गौः पृश्निरकमीत्....॥ अन्तश्चरति....॥ त्रिंशद्वाम....
इति० तदाहुर्न सर्पराज्ञ्या ऋग्भिरुपतिष्ठेतेति० ॥ उद्धृत्याहवनीयं पूर्णाहुतिं जुहोति० स्वाहाकारेण
जुहोति० तस्यां वरं ददाति० तदाहुः एतामेवाहुतिं हुत्वाथोत्तराणि हवींषि नाद्रियेत० ॥

वाकासं [३.१] ≡ वासं

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना भूमिरिव वरिम्णा.... ॥

काशत्रा [१.१.४; १.२.१] ≡ शत्रा

गोत्रा [१.२.१८-२१]—

सोऽग्नौ प्रणीयमाणेऽश्वेऽन्वारब्धं ब्रह्मा यजमानं वाचयति यदक्रन्दः प्रथमं जायमान
इति पञ्च । तं ब्राह्मणा उपवहन्ति तं ब्रह्मोपाकुरुते । एष ह वै विद्वान्सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गि-
रोविदिति ब्राह्मणम् ० तद्वा एतदथर्वणो रूपं यदुष्णीषी ब्रह्मा ० तस्मादश्वो वहेन रथं न भवति
(वहति ?) पृष्ठेन सादिनम् । स देवानागच्छत् । स देवेभ्योऽन्वातिष्ठत् । तस्मादेवा अबिभयुः ।
तं ब्रह्मणे प्रायच्छत् । तमेतयर्चाशमयत् । अग्निं त्वाहुर्वैश्वानरं सदनान् प्रदहन्वगाः । स नो
देवत्राधिब्रूहि मा रिवा मा वयं तवेति । तमेताभिः पञ्चभिर्ऋग्भिरुपाकुरुते यदक्रन्दः प्रथमं
जायमान इति० तस्मात् अग्निपदमश्वं ब्रह्मणे ददाति० तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते०
स देवानागच्छत् । स देवेभ्योऽन्वातिष्ठत् । तस्मादेवा अबिभयुः । तं ब्रह्मणे प्रायच्छत् ।
तमेतयर्चाज्याहुत्याम्यजुहोत् । इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकमिति रथमभिहुत्य तमेतयर्चातिष्ठद् वनस्पते
वीड्वङ्गो हि भूया इति । तस्मादाग्न्याधेयिकं रथं ब्रह्मणे ददाति० तस्मादाग्न्याधेयिकां
चातुःप्रास्यां धेनुं ब्रह्मणे ददाति० तस्मादाग्न्याधेयिकं हिरण्यं ब्रह्मणे ददाति० ॥

आधानाङ्गेष्वयः

ऋसं^१—

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति॥८.४४.१६
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्णं जिह्वामग्रे चकृषे हव्यवाहम् ॥ १०.८.६

१. आश्वलायनशाङ्खायनसूत्रानुसारेणैते हौत्रमन्त्राः संगृहीताः । तेषां विनियोगस्तत्र तत्र
सूत्रे द्रष्टव्यः ।

अग्न आयुंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥९.६६.१९
 अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयि मयि पोषम् ॥९.६६.२१
 स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥३.११.२
 अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥३.११.१
 तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतञ्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥५.१४.३
 ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ई पुण्यन्त इन्धते ॥४.८.५
 अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥८.४४.१२
 सोम गीर्मिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥१.९१.११
 स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥१.१२.१०
 अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥५.२६.१
 अग्निः शुचिब्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥८.४४.२१
 उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीर्ष्यर्चयः ॥८.४४.१७
 साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३.११.६
 अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१.१.१
 अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विशपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥१.१२.२
 अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाइ जुह्वास्यः ॥१.१२.६
 पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाद् ॥३.२७.५
 तं सबाधो यतस्रुच इत्थाधिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥३.२७.६
 अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥१.१.३
 गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१.९१.१२
 त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥५.१३.४
 सोम यास्ते मयोभुव उतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥१.९१.९
 उत त्वामदिते मद्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥८.६७.१०
 प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ठ ।
 त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥७.१.३
 इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
 प्रति न ई सुरभीणि व्यन्तु ॥७.१.१८
 अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३.२४.३
 उप त्वा जुहो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥८.४४.५
 अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त उतये ॥५.१३.१

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥५.१४.१
 विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत् ॥२.४१.१३
 स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
 अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥६.५२.१७
 विश्वेभिरग्रे अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१.२६.१०
 अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥३.२४.४
 पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१.३.१०
 पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
 आभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥६.४९.७
 पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥७.९६.६
 दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
 अभीषतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥१.१६४.५२
 आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥८.१०२.६
 स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥७.१५.११
 पावका नः सरस्वती.... ॥१.३.१०
 इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
 तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥७.९५.५
 जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥७.९६.४
 स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
 स वाजिनं मधवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥७.९५.३
 त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥७.१५.१२
 त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
 अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥६.१३.२
 त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्व । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥८.११.१
 यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
 अग्निष्टद्विधमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥१०.२.४

तैत्रा [१.१.५-६]—

त्रीणि हवींषि निर्वपति० अग्नये पवमानाय । अग्नये पावकाय । अग्नये शुचये०

तेऽग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपन्० तेऽग्नये पावकाय० तेऽग्नये शुचये० ब्रह्मवादिनो वदन्ति । तनुवो वावैता अन्याधेयस्य । आग्नेयो वा अष्टाकपालोऽन्याधेयमिति० उभयानि सह निरुप्याणि० ऐन्द्राग्नमेकादशकपालमनुनिर्वपेत् । आदित्यं चरुं० घृते भवति० चत्वार आर्षेयाः प्राश्नन्ति० द्वादशसु रात्रीष्वनुनिर्वपेत्० एकं निरुप्य । उत्तरे समस्येत्० अग्नीध्रे ददाति० उपबर्हणं ददाति० अश्वं ब्रह्मणे० धेनुं५ होत्रे० अनड्वाहमध्वर्यवे० मिथुनौ गावौ ददाति० वासो ददाति० आ द्वादशभ्यो ददाति० काममूर्ध्वं देयम्० ॥

तैसं [३.५.१]—

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवा अधि संवसन्त उत्तमे नाक इह मादयन्ताम् ॥
यत्ते देवा अदधुर्भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
सा नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥
निवेशनी संगमनी वसूनां विश्वा रूपाणि वसूत्यावेशयन्ती ।
सहस्रपोषं सुभगा रराणा सा न आ गन् वर्धसा संविदाना ॥
अग्नीषोमौ प्रथमौ वीर्येण वसून् रुद्रानादित्यानिह जिन्वतम् ।
माध्यं हि पौर्णमासं जुषेथां ब्रह्मणा वृद्धौ सुकृतेन सातावथास्मभ्यं
सहवीरां रयिं नि यच्छतम् ॥

दर्शपूर्णमासावालभमान एतौ होमौ पुरस्ताज्जुहुयात्० सारस्वतौ होमौ पुरस्ताज्जुहुयात्० आग्नवैष्णवमेकादशकपालं पुरस्तान्निर्वपेत्सरस्वत्यै चरुं५ सरस्वते द्वादशकपालं० मिथुनौ गावौ दक्षिणा समुद्धयै ॥

मैसं [१.६.२]—

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुकतुः ॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु न एना राजन् हविषा मादयस्व ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओक्तांसि चक्रिरे ॥

१ दर्शपूर्णमासेष्टयाः प्रागन्वारभ्रणीयेष्टिर्विधातव्या । तत्र निर्वापात् पूर्वं सारस्वतहोमार्था इमे मन्त्राः । होत्रमन्त्राः सुत्रेषु द्रष्टव्याः ।

मैसं [४.१०.१]—

अग्राविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्राविष्णू महि धाम ग्रियँ वां.... ॥ पावका
नः सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा.... ॥ ये ते सरस्व
उर्मयो.... ॥ यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे.... ॥ अग्निः प्रत्नेन मन्मना.... ॥
सोम गीर्भिष्ट्वा वयँ.... ॥ त्वमग्ने वीरवद्यशो.... ॥ त्वं भगो ना आ
हि.... ॥ प्रेद्धो अग्ने.... ॥ इमो अग्ने.... ॥ अग्रा आयँषि पवसे.... ॥
अग्निर्ऋषिः पवमानः.... ॥ तँ हि शश्वन्ता ईडते.... ॥ अग्निमग्निँ
हवीमभिः.... ॥ अग्ने पावक रोचिषा.... ॥ स नः पावक दीदिवो.... ॥
अग्निः शुचिव्रततमः.... ॥ उदग्ने शुचयस्तव.... ॥ स हव्यवाडमर्त्यः.... ॥
अग्निँ स्तोमेन बोधय.... ॥ किमिच्छे विष्णो परिचक्ष्यं भूत्.... ॥ प्र
तत्ते अद्य शिपिविष्ट नाम.... ॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसँ.... ॥
महीमू षु मातरँ सुव्रतानां.... ॥ अग्नीषोमा सवेदसा.... ॥ युवमेतानि
दिवि रोचनानि.... ॥

मैसं [१.६.११; ८; १०; ४]—

०मध्याधिदेवने राजन्यस्य जुहुयाद्वारुण्य ऋचा० हिरण्यं निधाय जुहोति०
शतमस्मा अक्षान् प्रयच्छेत् । तान् विचिनुयात्० गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः । तस्याः
पलँषि न हिँस्युः । ताँ सभासद्भ्या उपहरेत् । तया यद् गृह्णीयात्तद् ब्राह्मणेभ्यो देयम् ॥
यत् पवमानाय निर्वपति० यत्पावकाय० यञ्शुचये० यं कामयेतापतरं पापीयान्त्स्यादिति
तस्यैकमेकँ हवीँषि निर्वपेत्० यं कामयेत न वसीयान्त्स्यान्न पापीयानिति तस्य सर्वाणि
साकँ हवीँषि निर्वपेत्० यं कामयेतोत्तरँ वसीयाञ्ज्रेयान्त्स्यादिति तस्याग्नये पवमानाय
निरुप्याथ पावकाय च शुचये च । उत्तरे हविषी समानबर्हिषी निर्वपेत्० तद्यस्येत्सेन्द्रायत्र्या
एव तस्य सँयाज्ये कुर्यात्० आग्रावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्० विष्णवे शिपिविष्टाय
त्र्युद्धौ घृते चरुं निर्वपेत्० आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत् पशुकामः ० अग्नीषोमीयं पुरोडाशं
द्वितीयमनुनिर्वपेत्० तद्योऽसा आदित्यो घृते चरुस्तं ब्राह्मणे परिहरेयुस्तं चत्वारः प्राश्रीयुस्तेभ्यः
समानो वरो देयः ॥ अथ योऽश्ममग्न्याधेये ददाति विभक्त्यै० यदजमग्न्याधेये ददाति० अग्नीधे
देयः० धेनुं चानड्वाहं च ददाति० तद्येषां पशूनां भूयिष्ठं पुष्टिं कामयेत तेषां दिलौहीँ वयसो
दद्याद् दिल्यवाहं च मुष्करं० उपबर्हणँ सर्वसूत्रं देयं० हिरण्यं ददाति० शतमानं भवति०
पूर्वयोर्हविषोर्द्वे त्रिँ शन्माने देये । उत्तरस्मिँश्चत्वारिँ शन्मानं० क्षौमे वसाना अग्निमादधीयाताम् ।

ते अध्वर्यवे देये ॥ हवींष्येव पूर्वाणि निरुप्याथ सायमग्निहोत्रं जुहुयात्० यः सोमेनायक्ष्यमाणोऽग्निमादधीत न पुरा सँवत्सराद्धवींषि निर्वपेत् । रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्यात् । एते वै पशवो यद् व्रीहयश्च यवाश्च । तेषां चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत् । तद्याभ्यो देवताभ्योऽग्निमाधत्ते यत्ताभ्यो न जुहुयात्ताभ्या आवृश्चेत्० ताभ्या आज्यस्य होतव्यम्० सँवत्सरे हवींषि निर्वपति० सँवत्सरमग्निहोत्रमहौषीत् ॥ [१.४.१४-१५]—
आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्दर्शपूर्णमासा आलप्स्यमानः० जयानु त्वो जुह्वति० आकूतं चाकूतिश्च इति० चित्तं च चित्तिश्च इति० आधीतं चाधीतिश्च इति० विज्ञातं च विज्ञातिश्च इति० भगश्च ऋतुश्च इति० दर्शश्च पूर्णमासश्च इति० प्रजापतिः प्रायलज्जयानिन्द्राय वृष्ण उग्रः पृतनासु जिष्णुः । तेभिर्वाजं वाजयन्तो जयेम तेभिर्विश्वाः पृतना अभिष्याम इति त्रयोदशीमाहुतिं जुहुयात्० अग्ने बलद सहा ओजः क्रममाणाय मे दा अभिशस्तिः कृतेऽनभि-
शस्तेन्याय ॥ अस्या जनतायाः श्रैष्ठ्याय स्वाहा इति जुहुयाद्यत्र कामयेत चित्रमस्यां जनतायां स्यामिति० अग्नये भगिनेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत भग्यनादः स्यामिति० उभौ सह दर्शपूर्णमासा आलभ्यौ० दर्शो वा एतयोः पूर्वः पूर्णमासा उत्तरोऽथ पूर्णमासं पूर्वमालभन्ते तदयथापूर्वं क्रियते । तत्पूर्णमासमालभमानः सरस्वत्यै चरुं निर्वपेत्सरस्वते द्वादशकपालम्० ॥

कासं [७.१४]—

निषसाद धृतव्रतो.... ॥ प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं.... ॥

कासं [८.७-१०; ५]—

निरुषी हविरुपसन्नमप्रोक्षितं भवत्यथ मध्याधिदेवनमवोक्ष्याक्षान्युप्य जुहोति निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुरिति० प्रत्येव तिष्ठति० धर्मधृत्या जुहोति० गां घ्नन्ति । तां विदीव्यन्ते । तां सभासद्भ्य उपहरन्ति० प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिरिति आमन्त्रणे जुहोति० तमभिसमेत्य मन्त्रयन्ते० तस्मादामन्त्रणीं सु प्रातर्गच्छेत्० तस्मादामन्त्रणं नाहूत एयात् । तस्मादामन्त्रणे नानृतं वदेत्० त्रीणि हवींषि भवन्ति० त्रिविराड् व्यक्रमत० यत्पवमानं० यत्पावकं० यच्छुचये० यदग्नये पवमानाय० यदग्नये पावकाय० यदग्नये शुचये० एतानि हवींषि नानाबर्हिंषि भवन्ति० समानबर्हिषी उत्तरे कार्ये० सँवत्सरे अनुनिरुप्यं० अन्न एवानुनिरुप्यं० यदेतानि हवींषि निरुप्यन्ते ता एवास्यै तत्तन्वस्संभरति० गायत्रीस्संयाज्या भवन्ति० अग्निनाग्निस्समिष्यत इत्युत्तरयोर्हविषोरनुवाक्यां कुर्यात्० ॥० अदित्यै घृते चरुममा-
वस्यायां पशुकामोऽनुनिर्वपेत्० चातुष्प्रादयो भवति० अग्नीषोमीयमेकादशकपालं पूर्णमासेऽनु-
निर्वपेत्० तस्मादग्नीषोमा एवाग्र आज्यभागौ यजन्ति० ॥ अजो देयः० वासो देयी० वर्धमाना दक्षिणा देया० उपाहरन्ती दक्षिणा देया । धेनुर्वा उपाहरन्त्युप ह्येषा पय आहरति० धेनुर्होत्रे

देया० अनङ्गवानध्वर्यवे० रथो देयः० मिथुनौ गावौ देयौ० षड् देयाः० द्वादश देयाः० चतुर्विंशतिं दद्यात्० ॥ हिरण्यं देयं सतेजस्त्वाय शतमानं० त्रिंशन्माने पूर्वयोर्हविषोर्देये चत्वारिंशन्मानमुत्तमे० ॥

कासंक [१.४-५]—

अग्निमादधानः सायमतिथिं ब्राह्मणं नापरुन्धीत सूर्येण सहेयिवांसम्० नास्यानाश्वान् ब्राह्मणो गृहे वसेत्० सायं प्रातरुदितेऽग्ना अहुते नाश्नीयात्० ऋबीसेन पक्वं नाश्नीयात्० स्वकृत इरिणे नावस्येत् । क्लिन्नं दारुं नाभ्यादध्यात्० नाव्युदकं नाचामेत्० नानृतं वदेत्० द्वादशरात्री-राज्येनाग्निहोत्रं जुहुयात्० अजस्रोऽग्निर्भवति० अहतं वसीत० अध्वर्यवे वाससी परिहिते ददाति० पत्या रसने ददाति१० मिथुनौ गावौ देयौ० ॥

कपिसं [७.३-४; ६.६] ≡ कासं

शब्रा [२.२.१-२]—

स वा अग्नये पवमानाय निर्वपति० अथाग्नये पावकाय निर्वपति० अथाग्नये शुचये निर्वपति० तदु निर्वपेदेवोत्तराणि हवींषि० केवलबर्हिः प्रथमं हविर्भवति समानबर्हिषी उत्तरे० अष्टाकपालाः सर्वे पुरोडाशा भवन्ति० गायत्र्यो याज्यानुवाक्या भवन्ति० अथादित्यै चरुं निर्वपति० तस्यै विराजौ संयाज्ये स्यातामित्याहुः० तस्यै घेनुर्दक्षिणा० अथेदं द्वितीयम् । आग्नेयमेवाष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपति० अथादित्यै चरुं निर्वपति० तस्मादक्षिणा ददाति० ता वै षट् दद्यात्० द्वादश दद्यात्० चतुर्विंशतिं दद्यात्० दद्यात्वेव यथाश्रद्धम्० तस्मादु सत्यमेव वदेत्० न वा आहिताग्निना नृतं वदितव्यम्० [११.१.१]— पौर्णमास्यामन्वारमेत ॥

काशब्रा [१.२.१-२] ≡ शब्रा

अथ द्वितीयमग्नय एवाष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपति० तस्य मूर्धन्वत्यौ याज्यानुवाक्ये भवतः० ॥

शांब्रा [१.१]—

(देवाः) अप्सु पवमानामदधुः वायौ पावकामादित्यै शुचिम्० एता वा अग्नेस्तन्वः० ता वै तिस्रो भवन्ति० पौर्णमासं प्रथमायै तन्त्रं भवत्यामावास्थं द्वितीयायै० ईडितवत्यौ हव्य-वाङ्वत्यौ प्रथमायै संयाज्ये० बभ्री द्वितीयायै० सप्तदशसामिधेनीका तृतीया० सद्ब्रन्तावाज्यभागौ भवतः० विराजौ संयाज्ये० गायत्र्यो भवन्ति० ता वा उपांशु भवन्ति० अभिरूपा भवन्ति० द्वादश दद्यात्० अश्वं त्रयोदशं ददाति० ॥

१ 'पत्या रसने ददाति' इति मुद्रितपाठः । परं तत्रस्था संपादकीयटिप्पणी द्रष्टव्या ।

गोत्रा [२.१.१२]—

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्दर्शपूर्णमासावारिप्समाणः० उभौ सहारम्भा-
वित्याहुः । उदिन्नु शृङ्गे सितो मुच्यत इति । दर्शो वा एतयोः पूर्वः पौर्णमास उत्तरः । अथ
यत्परस्तात्पौर्णमास आरभ्यते तद्यथापूर्वं क्रियते । तद्यत् पौर्णमासमारभमाणः सरस्वत्यै चरुं
निर्वपेत्सरस्वते द्वादशकपालं० ॥

पुनराधानम्

ऋसं^१—

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१.९८.२
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥८.४४.१
एह्यु षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥६.१६.१६
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥६.१६.३४
अग्न आयुंषि पवस.... ॥ ९.६६.१९
अघा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्कृतस्य बृहतो बभूथ ॥४.१०.२
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४.१०.४
एभिर्नो अकैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्णं ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४.१०.३
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४.१०.१
अग्निं स्तोमेन बोधय.... ॥ ५.१४.१ अग्न आयुंषि पवस.... ॥ ९.६६.१९
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः.... ॥ ४.१०.१
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४.१.४
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ४.१.५

तैसं [१.५.३]—

भूमिर्भूम्ना द्यौर्वरिणान्तरिक्षं महित्वा । उपस्थे ते देव्यदितेऽग्निमन्नाद-
मन्नाद्यायादधे ॥

आयं गौः पृथिरक्रीदसनन्मातरं पुनः । पितरं च प्रयन्त्सुवः ॥

त्रिंशद्द्वाम वि राजति वाक् पतङ्गाय शिश्रिये । प्रत्यस्य वह द्युभिः ॥

अस्य प्राणादपानत्यन्तश्चरति रोचना । व्यख्यन् महिषः सुवः ॥

यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या ।

सुकल्पमग्रे तत्तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥

यत्ते मन्युपरोत्तस्य पृथिवीमनु दध्वसे ।

आदित्या विश्वे तद्देवा वसवश्च समाभरन् ॥

मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।

बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् ॥

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।

सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेन ॥

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्र इषायुषा । पुनर्नः पाहि विश्वतः ॥

सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्त्तिया विश्वतस्परि ॥

लेकः सलेकः सुलेकस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु ॥ केतः सकेतः

सुकेतस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु ॥ विवस्वा अदितिर्देव-

जूतिस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु ॥

तैसं [१.५.१; २; ४]—

भागधेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पशून् यजमानस्योप दोद्राव । उद्रास्य
पुनरा दधीत० पुनर्वस्वोरा दधीत० दधैरा दधाति० पञ्चकपालः पुरोडाशो भवति० पङ्क्त्यो
याज्यानुवाक्या भवन्ति० शताक्षरा भवन्ति० यदाग्नेयं सर्वं भवति० विभक्त्यो भवन्ति०
उपांशु यजति० अग्निं प्रति स्विष्टकृतं निराह० विभक्तिमुक्त्वा प्रयाजेन वषट्करोति० यदभितः
पुरोडाशमेते आहुती जुहोति० कृतयजुः संभृतसंभार इत्याहुर्न संभृत्याः संभारा न यजुः
कर्तव्यमिति० अथो खलु संभृत्या एव संभाराः कर्तव्यं यजुः० पुनर्निष्कृतो रथो दक्षिणा पुन-
रुत्स्यूतं वासः पुनरुत्सृष्टोऽनङ्वान्० सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्यग्निहोत्रं जुहोति०
आग्निवारुणमेकादशकपालमनु निर्वपेत् ॥ सर्पराज्ञिया ऋग्भिर्गार्हिपत्यमा दधाति० बृहस्पति-

वत्यर्चोप तिष्ठते० पुनरूर्जा सह रय्येत्यभितः पुरोडाशमाहुती जुहोति० यः पुराचीनं पुनराधेयादग्निमादधीत स एतान् होमान् जुहुयात् ॥

तैसं [२.२.५]—

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैश्वानरं द्वादशकपालमग्निमुद्वासयिष्यन्० ॥

तैसं [१.५.११]—

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥ वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥^१ ऋतावानं वैश्वानरम्.... ॥ वैश्वानरस्य द१सनाभ्यो बृहत्.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्या.... ॥ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः.... ॥ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान.... ॥ अस्माकमग्ने मधवत्सु धारया.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥^१

मैसं [१.७.१]—

यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युना सुमनस्तर ।
सुकल्पमग्ने तत्तव पुनस्त्वोदीपयामसि ॥
यत्ते मन्यु०.... । आदित्या विश्वे तद्देवा वसवः पुनराभरन् ॥
यत्ते भामेन विचकरानीशानो हृदस्परि ।
पुनस्तदिन्द्रश्चाग्निश्च वसवः समचीकृतपन् ॥
पुनस्त्वादित्या.... वसुधीते अग्ने ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥
त्रयस्त्रिंशत्तन्तवो यँ वितन्वत इमं च यज्ञं सुधया ददन्ते ।
तेभिश्छिद्रमपि दध्मो यदत्र स्वाहा यज्ञो अप्येतु देवान् ॥
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
इमं यज्ञं सप्ततन्तुं ततं ना आ देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥
बृहस्पतिर्नो हविषा घृतेन विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
या इष्टा उषसो याश्च याज्यास्ताः संदधामि मनसा घृतेन ॥
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मावर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥

अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः ।

अथा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥

पुनरूर्जा.... पुनर्नः पाहँहसः ॥ सह रय्या.... ॥

सलिलः सलिंगः सगरस्ते न आदित्या हविषो जुषाणा व्यन्तु स्वाहा ॥

केतः सुकेतः सकेतस्ते न आदित्या हविषो जुषाणा व्यन्तु स्वाहा ॥

देवजूते विवस्वन्नादित्य ते नो देवाः सत्यां देवहूर्ति देवेष्वासुवध्व-
मादित्येभ्यः स्वाहा ॥

[४.१०.२]—

अग्ना आयाहि वीतये.... ॥ अग्निं दूतं वृणीमहे.... ॥ अग्निनाग्निः

समिध्यते.... ॥ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्.... ॥ अग्निं स्तोमेन बोधय.... ॥

अग्ना आयूषि पवसे.... ॥ अग्ने तमद्याश्वं.... ॥ आभिष्टे अद्य.... ॥

एभिर्नो अकैः.... ॥ अधा ह्यग्ने.... ॥ अग्नेः स्तोमं मनामहे.... ॥ अग्ना

यो मर्त्यो दुवो.... ॥

मैसं [१.७.२-५]—

अग्नेर्वै भागः पुनराधेयम् । एतं वै भागं ग्रेप्सन् व्यर्धयति । यद्यादधानो मन्येत
वि स्या ऋध्यता इत्युत्साद्य पुनरादधीत० सर्वमेवाग्नेयं क्रियते० न संभाराः संभृत्या न यजुः
कर्तव्या इत्याहुः० तदाहुः संभृत्या एव संभाराः कार्यं यजुरिति । पुनरुत्स्यूतं वासो देयं
पुनर्णवो रयः पुनरुत्सृष्टोऽनड्वान्० यद्दर्भा उपोलपा भवन्ति० तस्मात्पुनर्वसा आधेयः० स
तस्मादनुराधास्वाधेया ऋच्यै० अग्निर्वा उत्सीदन्सैवत्सरमभ्युत्सीदति । सप्तदश सामिधेनीः
कार्याः० पञ्चदश सामिधेनीः कार्या न सप्तदशेति० तद्यस्येत्सैतस्योपरिष्ठात्प्रयाजानां विभक्तीः
कुर्यात्० नानाग्नेयं क्रियते० पुनरूर्जा निवर्तस्व.... इति पुरस्तात्प्रयाजानां जुहुयात् । सह रय्या....
इत्युपरिष्ठादनुयाजानां जुहुयात्० अथ कस्मादाज्यभागा इज्येते इति । चक्षुषी वा एते यज्ञस्य
यदाज्यभागौ० अग्ना आयूषि पवसा इति सोमस्य लोके कुर्यात् । यदाग्नेयी तेनाग्नेयी यत्
पावमानी तेन सौमी० अग्निर्मूर्धा दिवः ककुदिति प्रजाकामो वा पशुकामो वा सोमस्य लोके
कुर्यात्० अष्टाकपालः कार्यः० तन्न सूक्ष्मं० पञ्चकपाल एव कार्यः० यदेताः शताक्षराः पङ्क्तयो
भवन्ति० यद्विरण्यं ददाति० शतमानं भवति० सलिलः सलिंगः.... स्वाहा । केतः सुकेतः....
स्वाहा । देवजूते विवस्वन्नादित्य.... स्वाहेति । तद्यदेतैः पुनराधत्तेऽथ ऋभोति० ॥

कासं [८.१४]—

पुनराधेय आधीयते देवानां ज्योतिषा सह ।

अग्ने सहस्रमाभर रूपं रूपं वयो वयः ॥

यत्ते मन्युं ॥ यत्ते क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या । ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवस्समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुधीतमग्ने ।

इहैव धेह्यधि दक्षमुग्रमश्वावद्गोमघवमत सुवीर्यम् ॥

पुनस्त्वा मित्रावरुणौ पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।

पुनस्त्वा विश्वे देवा ब्राह्मणा उददीदिपन् ॥

पुनरूर्जा निवर्तस्व ॥ सह रय्या ॥

केतस्सुकेतस्सकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा ॥

सलिलस्सलिलगस्सगरस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा ॥

दिवो ज्योतिर्विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु सत्यां देवहूतिमासुवध्व-
मादित्येभ्यस्स्वाहा ॥

कासं [८.१५; ९.१-३]—

यद्याधाय मन्येत व्यूष्यतेऽस्य इति पुनरादधीत० सर्वमाग्नेयं क्रियते० न संभृत्या-
स्संभारा इत्याहुर्न यजुष्कार्यमिति । संभृतसंभारो ह्येष कृतयजुः । तत् तन्न सूर्यं संभृत्या एव
संभाराः कार्यं यजुः । पुनरुत्स्यूतं वासो देयं पुनरुत्सृष्टोऽनड्वान् पुनर्निष्कृतो रथः० यद्भीर्मा
उपोलपा भवन्ति० पुनर्वसा आधेयः० अनूराधेष्वधेयः० ॥ अग्निर्वा उत्सीदन् सैवत्सरमनूत्सीदति ।
सप्तदश सामिधेनीः कार्याः० तदाहुः पञ्चदशैव कार्या न सप्तदशेति० तस्मात् षड् विभक्तयः०
यं कामयेतर्धुयादिति तस्योपरिष्ठात् प्रयाजानां विभक्तीः कुर्यात्० नानाग्नेयं क्रियत इत्याहुः०
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्नं इषायुषा पुनर्नः पाहीहस इति पुरस्तात्प्रयाजानां जुहुयात् । सह
रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया विश्वप्स्या विश्वतस्परीत्युपरिष्ठादनुयाजानां जुहुयात्० नानाग्नेय
क्रियत इत्याहुः० अग्न आथीषि पवस इत्येती सोमस्याज्यभागस्य लोके कुर्यात् । यदाग्नेयं
तेनाग्नेयी यत्पावमानं तेन सौमी० अग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्येती सोमस्याज्यभागस्य लोके
कुर्यात् प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य वा० यदेताश्शताक्षरा अक्षरपङ्क्तयो भवन्ति० यद्विरण्यं
शतमानं ददाति० तदाहुर्गृध्राकपाल एव कार्यो न पञ्चकपाल इति० तन्न सूर्यम् । पञ्चकपाल
एव कार्यः० य एवं विद्वानेतमाधत्ते केतस्सुकेतस्सकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो

व्यन्तु स्वाहा । सलिलस्सालिगस्सगरस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा ।
दिवो ज्योतिर्विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु सत्यां देवहूतिमासुवध्वमादित्येभ्यस्स्वाहेति० ॥
[१०-४]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेदग्निमुत्सादयिष्यन्० ॥

कपिसं [८.२-६] ≡ कासं

शत्रा [२.२.३; २.१.२]—

तस्मै कं पुनराधेयमादधीत० स वै वर्षास्वादधीत० ॥ तस्मादु मध्यंदिन एवा-
दधीत० तं वै दमैरुद्धरति० अर्कपलाशाभ्यां व्रीहिमयमपूपं कृत्वा यत्र गार्हपत्यमाधास्यन् भवति
तन्निदधाति । तद्गार्हपत्यमादधाति । अर्कपलाशाभ्यां यवमयमपूपं कृत्वा यत्राहवनीयमाधास्यन्
भवति तन्निदधाति । तदाहवनीयमादधाति० तदु तथा न कुर्यात्० आग्नेयमेव पञ्चकपालं
पुरोडाशं निर्वपति । तस्य पञ्चपदाः पङ्क्तयो याज्यानुवाक्या भवन्ति० सर्व आग्नेयो भवति०
तेनोपांशु चरन्ति० उच्चैरुत्तममनुयाजं यजति० स आश्राव्याह समिधो यज इति० अग्नीन् यज
इति त्वेव ब्रूयात्० स यजति अग्न आज्यस्य व्यन्तु वौशक्, अग्निराज्यस्य वेतु वौशक्,
अग्निराज्यस्य व्यन्तु वौशक्, अग्निराज्यस्य वेतु वौशक् इति । अथ स्वाहाग्निमित्याह । आग्नेय-
माज्यभागं स्वाहाग्निं पवमानमिति । यदि पवमानाय ध्रियेरन् स्वाहाग्निमिन्दुमन्तमिति । यद्यग्नय
इन्दुमते ध्रियेरन् स्वाहाग्निं स्वाहाग्नीनाज्यपान् जुषाणो अग्निराज्यस्य वेत्विति यजति । अथा-
हाग्नेऽनुब्रूहि इत्याग्नेयमाज्यभागम् । सोऽन्वाहाग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधदिति० जुषाणो अग्निराज्यस्य वेत्विति यजति० अथ यदग्नये पवमानाय
ध्रियेरन्नग्नये पवमानायानुब्रूहीति ब्रूयात् । सोऽन्वाहाग्ने आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् इति० जुषाणो अग्निः पवमान आज्यस्य वेत्विति यजति० अथ यद्यग्नय
इन्दुमते ध्रियेरन्नग्नय इन्दुमतेऽनुब्रूहीति ब्रूयात् । सोऽन्वाहेष्टु षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्येतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिरिति० जुषाणो अग्निरिन्दुमानाज्यस्य वेत्विति यजति० अथाहाग्नेऽनुब्रूहीति ।
हविषोऽग्निं यज । अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि । अग्निं स्विष्टकृतं यजेति । अथ यदेवान् यजेति ।
अग्नीन् यजेत्येवैतदाह । स यजत्यग्नेर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु वौशक्, अग्नौ वसुवने वसुधेयस्य वेतु
वौशक्, देवो अग्निः स्विष्टकृदिति स्वयमाग्नेयस्तृतीयः । एवं वा आग्नेयाननुयाजान् करोति०
ता वा एताः षड् विभक्तीर्यजति चतस्रः प्रयाजेषु द्वे अनुयाजेषु० तस्य हिरण्यं दक्षिणा
अनड्वान् वा० ॥

काशत्रा [१.२.३] ≡ शत्रा

....स यजति अग्न आज्यस्य व्यन्तु वौषळिति.... ॥

शांत्रा [१.३-५]—

तदाहुः कस्मिन्तृतौ पुनरादधीतेति । वर्षास्विति हैक आहुः० मध्यावर्षे पुनर्वसू नक्षत्रमुदीक्ष्य पुनरादधीत० यैवैषाऽऽषाढ्या उपरिष्टादमावास्या भवति तस्यां पुनरादधीत सा पुनर्वसुभ्यां संपद्यते० पञ्चकपालः पुरोडाशो भवति० विभक्तिभिः प्रयाजानुयाजान् यजति० अग्न आ याहि वीतये, अग्निं दूतं वृणीमहे, अग्निनाऽग्निः समिध्यते, अग्निर्वृत्राणि जड्घनत्, अग्नेः स्तोमं मनामहे, अग्ना यो मर्त्यो दुव इत्येतासामृचां प्रतीकानि विभक्तयः । ता वै षड् भवन्ति० यथायथमुत्तमौ प्रयाजानुयाजौ० वार्त्रघ्नः पूर्वं आज्यभागः० पौर्णमासात् तन्त्रादनितं भवत्यग्निं स्तोमेन बोधयेति । अग्नये बुद्धिमते पूर्वं कुर्यादिति हैक आहुः० अग्न आयूंषि पवस इत्युत्तरस्य पुरोनुवाक्या० पदपङ्क्तयो याज्यापुरोनुवाक्याः० व्यतिषक्ता भवन्ति० सा सर्वैव सप्तमिधेनीकोपांशु भवति । आ पूर्वाभ्यामनुयाजाम्यामाज्यतो विभक्तयोऽनुप्रोता भवन्ति० उच्चैस्त्वैवोत्तमेनाऽनुयाजेन यजति । उच्चैः सूक्तवाकशंयोर्वाकावाह० त्रयमु हैक उपांशु कुर्वन्ति विभक्तीरुत्तरमाज्यभागं हविरिति० सर्वाग्नयं हैके कुर्वन्ति । न तथा कुर्यात् । तस्यै पुनरुत्स्यूतो जरत्संव्यायः पुनः संस्कृतः कद्रथोऽनड्वान् हिरण्यं वा दक्षिणा० ॥

अग्न्याधेयविधौ विनियोक्तव्या अथर्ववेदस्थाः केचन मन्त्रा अत्रोद्भियन्ते—

आऽयं गौः पृश्निरक्रमीत्....^१ ६.३१.१ ॥ यत्त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुः....^२ १२.२.५ ॥ समध्वरायोषसो नमन्त....^३ ३.१६.६ ॥ इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं....^४ ६.१२५.३ ॥ वनस्पते वीडवङ्गो हि भूया....^५ ६.१२५.१ ॥ उप त्वा नमसा वयं....^६ ३.१५.७ ॥ इदमुग्राय बभ्रवे....^७ ७.१०९.१ ॥ सरस्वति व्रतेषु ते....^८ ७.६८.१ ॥ यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे....^९ ७.४०.१ ॥ पवमानः पुनातु मा....^{१०} ६.१९.२ ॥ त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु....^{११} १८.४.५९ ॥ अग्नी रक्षांसि सेधति...^{१२} ८.३.२६ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षं....^{१३} ७.६.१ ॥ अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं....^{१४} ७.२९.१ ॥

१. आहवनीयस्यानुमन्त्रणार्थो मन्त्रः २. अग्नेः प्रणयनार्थो मन्त्रः ३. अश्वपदस्यानुमन्त्रणार्थो मन्त्रः ४. रथोपरि आज्याहुत्यर्थं मन्त्रः ५. रथारोहणार्थो मन्त्रः ६. पूर्णाहुत्यर्थो मन्त्रः ७. अक्षप्रदानार्थो मन्त्रः ८. सरस्वत्या यागस्यानुमन्त्रणार्थो मन्त्रः ९. सरस्वतो यागस्यानुमन्त्रणार्थो मन्त्रः १०. अग्नेः पवमानस्य यागे पुरोनुवाक्या ११. अग्नेः पावकस्य यागे पुरोनुवाक्या १२. अग्नेः शुचेः यागे पुरोनुवाक्या १३. अदित्या यागे पुरोनुवाक्या १४. अन्वारम्भणीयेष्ट्यामग्नाविष्णवोः यागे याज्या

अभ्याधेयम्

आधानोपकल्पनम्

बौधायनश्रौ० [२.१२; १; ३; ४; २; ६-७; १३-१४; २०.१६; २४.१२-१६; १४.२२]—

१. [अथातोऽग्न्याधेयं व्याख्यास्यामः ।] अग्नीनाथास्यमानो भवति स उप-
कल्पयत ऊषाश्च सिकताश्चाऽऽखूत्करं च वल्मीकवर्पां च सूदं च वराहविहतं च पुष्करपर्णं च
शर्कराश्चेत्यष्टौ पार्थिवाः । अथ वानस्पत्या अश्वत्थश्चोदुम्बरश्च पर्णश्च शमी च विकङ्कतश्चाऽ-
शनिहतश्च शमीगर्भावरणी मुञ्जकुलायं चित्रियस्याऽश्वत्थस्य तिस्रः समिध आर्द्राः सपलाशाः
सप्रारोहाः प्रादेशमात्रीरप्रतिशुष्काग्राः षड्दिरण्यशल्काः स्त्रीन् सौवर्णाः स्त्रीन् राजतानश्वं
पूर्ववाहं रथचक्रं ब्राह्मौदनिकान् व्रीहीन् सर्वौषधं रोहितं चर्माऽऽनडुहं नवानि यज्ञ-
पात्राणीति । [संभारेष्विति ॥ सूत्रं राथीतराणाम् ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो नाऽशनि-
हतं कुर्वीत घोररूपमिति ॥ कुर्वीतैवाऽशनिहतम् । न तु मुञ्जकुलायम् । न ह्येतस्याऽ-
नुख्या विज्ञायत इति शालीकिः ॥] [ऊषाश्च सिकताश्चेति । ये भस्मरा इवोषाः स्युस्ता-
नाहारयेत् । आरण्यस्य वराहस्य विहतादाहारयेत् । आरण्यस्याऽऽखोत्करादाहारयेत् ।
योऽनुपदासी सूदः स्यात्तत आहारयेत् । सूदेऽविद्यमाने कुलीरसुषिरादाहारयेत् । अशनि-
हतेऽविद्यमाने शीतहतमाहारयेद्वातहतं वा । चित्रियस्याऽश्वत्थस्येति । येन ग्रामो वा नगरं
वा नदी वा तीर्थं वा ज्ञायते तत आहारयेत् । अश्वं पूर्ववाहमिति । युवानमित्येवेदमुक्तं
भवति । त्रीन् हिरण्यशल्कानिति । षडिमान् कारयेत् । सौवर्णा उपासनार्था राजता अति-
प्रदानार्थाः ।] [एवमेवैताः सुचो यथैतद्ब्राह्मणम् ।] [पात्राणां करण इति । स ह
स्माऽऽह बौधायनस्त्वक्तआसेचनानि कारयेद्यतःपुष्कराणि । एवमस्य प्राचीनपुष्कराः
सुचः सन्ना भवन्तीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिस्त्वक्तआसेचनानि कारयेन्मूलतः-
पुष्कराणि । एवमस्य प्रतीचीनपुष्कराः सुचः सन्ना भवन्तीति । विज्ञायते तस्मादवा-
चीनाग्रा वनस्पतयः पृथिवीं क्षियन्तीति ॥ सुचां प्रमाण इति ॥ बाहुमात्राः स्युरिति
बौधायनः ॥ अरत्निमात्रा इति शालीकिः ॥ प्रादेशमात्रा इत्यौपमन्यवः ॥ सुचामाकृति-
विकार इति ॥ हस्त्योष्ठयः स्युरिति बौधायनः ॥ वायसपुच्छा इति शालीकिः ॥ हंस-
मुखप्रसेचना इत्यौपमन्यवः ॥]

२. अथातो नक्षत्राणामेव मीमांसा । कृत्तिकास्वग्निमादधीत । रोहिण्या-
मग्निमादधीत । पुनर्वसोरग्निमादधीत । पूर्वयोः फल्गुण्योरुत्तरयोः फल्गुण्योश्चित्रायामिति ।
अथात ऋतूनामेव मीमांसा । वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । ग्रीष्मे राजन्यः । शरदि
वैश्यः । वर्षासु रथकार इति । अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथाऽऽदधीत । सैवाऽस्यर्द्धिरिति ।

१. 'प्राचीनपुष्कराः' इति मुद्रितपुस्तकपाठः । 'प्रतीचीन' इति पाठः केषुचित् पुस्तकेषूप-
लभ्यते । स एव युक्तः ।

तदेतदार्तस्याऽतिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य । अथ वे ब्राह्मणं भवति यो रोहिण्यामग्निमाधत्त ऋध्नोत्येव सर्वान् रोहान् रोहतीति । सा या वेशाख्याः पौर्णमास्या उपरिष्ठादमावास्या भवति सा सकृत् संवत्सरस्य रोहिण्या संपद्यते तस्यामादधीतेति । [अथात ऋतुनक्षत्राणामेव मीमांसा । ऋतूनेवाऽग्रे व्याख्यास्यामोऽथ छन्दासीति । वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यो वर्षासु रथकार इति । सर्वेषां त्वेव वसन्त आधानं सर्वेषां रोहिण्याम् । यथावर्णं त्वेव छन्दासि । अपि तु नु खलु कामनियुक्तान्यग्न्याधेयानि भवन्ति । यथैतद्भवति कृत्तिकास्वग्निमादधीत रोहिण्यामग्निमादधीत पुनर्वसोरग्निमादधीत पूर्वयोः फल्गुन्योरुत्तरयोः फल्गुन्योश्चित्रायामिति । सद्यस्कालान्येतानि भवन्ति । ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्य इति नैते सद्यस्काले भवतः । अथात आर्त्तिजान्यग्न्याधेयानि व्याख्यास्यामः । विपक्ष आपूर्यमाणपक्षे विपक्षेऽपक्षीयमाणपक्ष इति । विपक्ष आपूर्यमाणपक्ष आदधानो यावानत्राऽवकाशः स्यात्तमभिविदधीत । पौर्णमास्यां तु सद्यस्कालम् । विपक्षेऽपक्षीयमाणपक्ष आदधानो नात्राऽवकाशः काङ्क्षणाय विद्यते । सर्वमेवैतदहः सद्यस्कालं कुर्याच्चतुर्होतारं सारस्वतौ होमावन्वारम्भेष्टिमिति । अथ पौर्णमासवेष्ट्याभ्यामिष्ट्वाऽमावास्यामेव ततः काङ्क्षेत् । अथ चेदमावास्यायां सद्यस्कालममावास्यान्तम् ।]

३. अथोपव्याहरणम् । विज्ञायते क्त्वादौ क्रतुकामं कामयीत यज्ञाङ्गादौ यज्ञाङ्गकामम् इति । प्राक्तूलां दर्भान् सस्तीर्य तेषु प्राङ्मुखो यजमान उपविश्य जपति याः पुरस्तात् प्रस्रवन्त्युपरिष्ठात् सर्वतश्च याः । तामी रश्मिपवित्राभिः श्रद्धां यज्ञमारभे ॥ देवा गातुविदो गातुं यज्ञाय विन्दत । मनसस्पतिना देवेन वाताद्यज्ञः प्रयुज्यताम् इति । श्रद्ध एहि सत्येन त्वा ह्वयामि इति । आकृत्या वेदनं करोति आकृत्य त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा पुरो दधे । अमृतत्वाय जीवसे ॥ आकृतिमस्यावसे काममस्य समृध्यै । इन्द्रस्य युजते धियः ॥ आकृतिं देवीं मनसः पुरो दधे यज्ञस्य माता सुहवा मे अस्तु । यदिच्छामि मनसा सकामो विदेयमेनद्रुदये निविष्टम् इति । मनसा त्रिः संकल्पयते त्रिरुद्धे । सर्वकामोऽम्रोनाघास्ये इत्यग्न्याधेये । स्वर्गकामो दर्शपूर्णमासाभ्यां यक्ष्ये इति दर्शपूर्णमासयोः । स्वर्गकामश्चातुर्मास्यं यक्ष्ये इति चातुर्मास्येषु । स्वर्गकामः पशुना यक्ष्ये इति पशुबन्धे । स्वर्गकामः सोमेन यक्ष्ये इति सोमे । स्वर्गकामोऽग्निं चेष्ये इत्यग्निचये । अहीनेऽहर्गणे वा यथाकामो यत्कामो वा यजते । तन्म ऋध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्मे संपद्यतां कामः इति । अथत्विजां प्रतिवचनं तत् ऋध्यतां तत् समृध्यतां तत् संपद्यतां कामः इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् ।

४. अथत्विजां वरणम् । विज्ञायते ब्राह्मणा ऋत्विजो योनिगोत्रश्रुतवृत्तसंपन्ना अविगुणाङ्गा अत्रिकिणिनः । न परिखातिक्रान्ता नाऽन्तगवा नाऽन्तजा^१ नाऽननूचानाः । हालेयवालेयपुत्रिकापुत्रपरक्षेत्रसहोदकानोनाऽऽनुजावरद्विप्रवरान् परिहाप्य । आङ्गिरसोऽध्वर्युर्वासिष्ठो ब्रह्मा वैश्वामित्रो होताऽयास्य उद्राता कौषीतकः सदस्यः । अवशिष्टा भृगवोऽङ्गिरसो वा । योनिवृत्तं विद्या च प्रमाणमित्येके । तांश्चेद्वृणीताऽव्यापन्नाङ्गानेव

वृणीत । अकुनखिनमध्वर्युमकिलासिनं ब्रह्माणमखण्डं होतारमकरालमुद्रातारमशिपिविष्टं
 सदस्यम् । अथ प्रतिप्रस्थाता नेष्ट्रोनेतेत्यध्वर्युपुरुषाः । ब्राह्मणाच्छं स्याग्नीध्रः पोतेति ब्रह्मणः ।
 मैत्रावरुणोऽच्छावाको ग्रावस्तुदिति होतुः । प्रस्तोता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्य इत्युद्रातुः । अभिगरो
 ध्रुवगोपः सः श्राव इति सदस्यस्य । स्वप्रधानाः । अस्वप्रधाना इत्येके । दश वैकादश
 वा चमसाध्वर्यवः । अन्यदक्षिणाभिः परिक्रीता भवन्तीति । विज्ञायते तस्मादग्निहोत्रस्य
 यज्ञकतोरक ऋत्विक् । दर्शपूर्णमासयोश्चत्वार ऋत्विजोऽध्वर्युर्ब्रह्मा होताऽऽग्नीध्र इति ।
 चातुर्मास्येषु प्रतिप्रस्थाता पञ्चमः । पशुबन्धे मैत्रावरुणः षष्ठः । सर्वे सौम्येऽध्वरे ।
 तान् कर्मणः कर्मणो वृणीत । एकैकमुपसंगृह्य चोदयेत् असावहमाध्वर्यवेण त्वा गच्छामि
 याजयतु मां भवान् इति । ब्रह्मत्वेन हौत्रेणौद्रात्रेण सादस्येन इति । न सदस्यो विद्यत इत्येके ।
 स्वेन स्वेन कर्मणा होत्रकान् । न होत्रकानित्येके । तत्पुरुषा होत्रकाश्चमसाध्वर्यवश्च ।
 अध्वर्युर्वा ऋत्विजां प्रथमो युज्यते तेन स्तोमो योक्तव्यः इति । [अथाप्यग्न्याधेय एवत्विजां
 वरणं प्रथममुदाहरामः । तस्य चेत् पूर्वपुरुषैर्वृताः स्युस्तानेव नाऽतिवृणीताऽव्यवच्छिन्नाश्चेत्
 कौलेनाऽध्ययनेन मानुषेण शीलवृत्ताभ्यां स्युरिति । किं गत उ खल्वतिवरणं वाऽवरणं
 वा भवतीति । स्तेयमचारीदभ्यमः स्यादयाज्यमयाजयत् सादितं कर्म तदु हाऽऽस्थित
 इत्येतेषामेकस्मिन्नतिवरणं वाऽवरणं वा भवतीति । तांश्चेद्वृणीताऽव्यापन्नाङ्गानेव वृणीत ।
 कं नु खल्वेषां प्रथमं वृणीत । योऽस्य सः स्तुततमः स्यात्तं प्रथमं वृणीत । तेन सचिवे-
 नाऽन्यान् लिप्सेत । यद्यु वै यथाज्येष्ठम्^१ । ब्रह्माणं प्रथमं वृणीताऽथ होतारमथोद्रातार-
 मथाऽध्वर्युम् । ब्रह्मणो वाऽनन्तरमध्वर्युम् । पूर्वं वोत्तरं वा यथाकर्म चेत् स्यात् । सृष्टेन
 धनेनत्विजः प्रतिसंवसीत । त्रीण्यधिकरणान्यृत्विजां विनापि यक्ष्येऽज्याशिषि भार्याम-
 कृषीति । को नु खल्वृत्विक्षु धर्म इति । य आचार्य इति । कथमर्हण इति । आगम-
 आगम इत्येकम् । ऋतुमुखऋतुमुख इत्येकम् । संवत्सरस्य पार इत्येकम् । यज्ञाधिगम
 इत्येतदपरम् । को नु खल्वृत्विजां धर्म इति । न न्यस्तमात्विज्यं कुर्यात् । नाऽनुध्यातम् ।
 नाऽवक्रीतो याजयेत् । नाऽवृतो याजयेत् । नाऽतिवृतो याजयेत् । नाऽनूद्देश्यं याजयेत् । न
 नीतदक्षिणं याजयेत् । नाऽपरपक्षे याजयेत् । नाऽऽर्तं याजयेत् । न मृतं याजयेत् । न
 त्रिकिणिनं याजयेत् । न परिखातिक्रान्तं याजयेत् । नाऽन्तगं याजयेत् । नाऽन्तजं^२ याजयेत् ।
 नाऽननूचानं याजयेत् । अपि वैतेषां तं याजयेद्यः कपालान्युपहन्याद् वृत्तिप्रक्षेऽवर्तमाने ।
 तदपि दाशतये विज्ञायते^३ 'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्दितारम् ।
 अपश्यं जायाममहीयमानामाधा मे श्येनो मध्वाजभार' इति । नैतेषामयाज्यः सहस्रदक्षिण
 इति ।] आदित्यो देवो दैवोऽध्वर्युः स मेऽध्वर्युरध्वर्योऽध्वर्यु त्वा वृणे इत्यध्वर्युम् । आदित्यो देवो
 दैवोऽध्वर्युः स तेऽध्वर्युस्तेनाऽनुमतः कर्मैवाऽहं करिष्यामि इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । चन्द्रमा
 देवो दैवो ब्रह्मा स मे ब्रह्मा ब्रह्मन् ब्रह्माणं त्वा वृणे इति ब्रह्माणम् । चन्द्रमा देवो दैवो ब्रह्मा स ते
 ब्रह्मा तेनाऽनुमतः कर्मैवाऽहं करिष्यामि इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । अभिदैवो दैवो होता स

१. अत्र सूत्रच्छेदो मास्तिवति विकल्पः । २. एवं भवस्वामिभाष्ये सुबोधिन्यां च, 'नान्त्यजम्'
 इति सुप्रतिपाठः । इत्यर्ता वी. २.३. ३. ऋसं. ४.१८.१३.

मे होता होताहीतारं त्वा वृणे इति होतारम् । अग्निदेवो दैवो होता स ते होता तेनाऽनुमतः कर्मैवाऽहं करिष्यामि इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । पर्जन्यो देवो दैव उद्गाता स म उद्गातोद्गातश्चातारं त्वा वृणे इत्युद्गातारम् । पर्जन्यो देवो दैव उद्गाता स त उद्गाता तेनाऽनुमतः कर्मैवाऽहं करिष्यामि इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । आकाशो देवो दैवः सदस्यः स मे सदस्यः सदस्य सदस्यं त्वा वृणे इति सदस्यम् । आकाशो देवो दैवः सदस्यः स ते सदस्यस्तेनाऽनुमतः कर्मैवाऽहं करिष्यामि इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । आपो देव्यो दैव्या होत्राशंसिन्यस्ता मे होत्राशंसिन्यो होत्रका होत्रकान् वो वृणे इति होत्रकान् । आपो देव्यो दैव्या होत्राशंसिन्यस्तास्ते होत्राशंसिन्यस्ताभिरनुमताः कर्मैव वयं करिष्यामः इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । रश्मयो देवा दैवाश्चमसाध्वर्यवस्ते मे चमसाध्वर्यवश्चमसाध्वर्यवश्चमसाध्वर्यून् वो वृणे इति चमसाध्वर्यून् । रश्मयो देवा दैवाश्चमसाध्वर्यवस्ते ते चमसाध्वर्यवस्तैरनुमताः कर्मैव वयं करिष्यामः इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । वृतोवृतो जपति महन्मेऽवोचो यशो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो भगो मेऽवोचस्तपो मेऽवोचस्तोमं मेऽवोचः क्लृप्तिं मेऽवोचो भुक्तिं मेऽवोचो विश्वं मेऽवोचः सर्वं मेऽवोचः सर्वं मे कल्याणमवोचस्तन्माऽवतु तन्माऽऽविशतु तन्मा जिन्वतु तेन भुक्षिषीय देवो देवमेतु सोमः सोममेतु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् ।

५. अथर्विजो देवयजनं याचते । अध्वर्यो देवयजनं मे देहि इत्यध्वर्युम् । आदित्यो देवो दैवोऽध्वर्युः स ते देवयजनं ददातु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । ब्रह्मन् देवयजनं मे देहि इति ब्रह्माणम् । चन्द्रमा देवो दैवो ब्रह्मा स ते देवयजनं ददातु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । होतर्देवयजनं मे देहि इति होतारम् । अग्निदेवो दैवो होता स ते देवयजनं ददातु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । उद्गातर्देवयजनं मे देहि इत्युद्गातारम् । पर्जन्यो देवो दैव उद्गाता स ते देवयजनं ददातु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । सदस्य देवयजनं मे देहि इति सदस्यम् । आकाशो देवो दैवः सदस्यः स ते देवयजनं ददातु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । होत्रका देवयजनं मे दत्त इति होत्रकान् । आपो देव्यो दैव्या होत्राशंसिन्यस्तास्ते देवयजनं ददतु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । चमसाध्वर्यवो देवयजनं मे दत्त इति चमसाध्वर्यून् । रश्मयो देवा दैवाश्चमसाध्वर्यवस्ते ते देवयजनं ददतु इति । ॐ तथा इति प्रतिवचनम् । अपि वा न देवयजनं याचते । आदित एव तीर्थं स्नात्वोदेत्याऽहतं वासः परिधाय शुद्धो हवैव शुचिः पूतो मेध्यो विपाप्मा ब्रह्मचारी सहकारिप्रत्यय आ चतुर्थार्त्त कर्मणोऽभिसमीक्षमाणो वेदकर्माणि प्रयोजयेत् । प्रागपवर्गाण्युदगपवर्गाणि वा प्राङ्मुखः प्रदक्षिणं यज्ञोपवीती दैवानि कर्माणि करोति । दक्षिणामुखः प्रसव्यं प्राचीनावीती पित्र्याणि । तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा यथान्यायम् । छन्दोगब्राह्मणम्—यथा वै दक्षिणः पाणिरेवं देवयजनम् । यथा सव्यस्तथा पितृयजनम् । यथा पितृयजनं तथा श्मशानकरणम् । यथा श्मशानकरणं तथाऽभिचरणीयेष्विष्टिपशुसोमेषु । आदित एव पुरोदकं देवयजनं यस्मादन्यत् पुरस्तात् समन्तिकं देवयजनं न विन्देयुः । उत्तरतो देवयजनमात्रमतिशिनष्टि ।

६. अथास्यैतत् पुरस्तादेव जुष्टे देवयजनेऽगारं वा विमितं वा कारितं भवति ।

तस्य द्वे द्वारौ कुर्वन्ति प्राचीं च दक्षिणां च । मध्ये गार्हपत्यस्याऽऽयतनं कुर्वन्ति । पुरस्ताद्द्वादशसु विक्रामेधाहवनीयस्य । अपि वा चक्षुर्निमिते । दक्षिणतो विषुवत्यन्वाहार्य-पचनस्य । अपि वा यथा द्वौ भागौ प्राक् स्यातामेकः पश्चादित्येवम् । त्रेधोद्धत्याऽवोक्ष्य केशश्मश्रु वपते । नखानि निहन्तते । एवं पत्नी केशवर्जम् । उभौ मानुषेणाऽलंकारेणाऽलंकृतौ भवतोऽहतवाससौ । [उभौ मानुषेणाऽलंकारेणाऽलंकृतौ भवतोऽहतवाससाविति । सर्वं एवाऽन्यो मानुषोऽलंकारोऽन्यत्र नलदात् । आत्तयैवैतदुदाहरन्ति । सजमु हैके प्रतिषेधयन्ति ।] अथाऽऽभ्यां व्रतोपायनीयं पाचयति । तस्याऽशितौ भवतः सर्पिर्मिश्रस्य पयोमिश्रस्य ॥

७. अथाऽधिवृक्षसूर्यं याचति सर्वौषधमाज्यस्थालीं स्रुवां स्रुचं बर्हिर्वासो दीप्याञ्छकलानिति । एतत् समादाय संप्रच्छन्ना अम्बरीषं वोत्तपनीयं वाऽभिप्रव्रजन्ति । [अम्बरीषस्य करण इति ॥ उत्तरतोऽग्न्यगारस्याऽम्बरीषं कुर्यादिति बौधायनः ॥ यत्रैवाऽम्बरीषः स्यात्तद्वच्छेदिति शालीकिः ॥] [संप्रच्छन्ना अम्बरीषं वोत्तपनीयं वाऽभिप्रव्रजन्ति । अपि वौपासनमेवाऽभिप्रव्रजन्ति । अर्धमौपासनं कुर्वन्ति सर्वं वा । ब्राह्मो-दनिकमौपासनं कुर्वन्ति । सोऽत्र वैव हि हूयत इति । समानं कर्मा संभारनिवपनात् ।] तस्मिन् दीप्याञ्छकलान् संप्रकीर्य बर्हिषा परिस्तीर्याऽऽज्यं विलाप्योत्पूयाऽञ्जलिनोपस्तीर्णा-भिघारितं सर्वौषधं जुहोति अग्नये सर्वौषधाय पुष्ट्यै प्रजननाय स्वाहा इति । अथ जयान-भ्यातानान् राष्ट्रभृत इति हुत्वाऽमात्यहोमाञ्जुहोति । अथ स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा प्राजापत्यां जुहोति प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽनुख्यां जुहोति अन्वग्निरुषसामप्रमुख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्वावापृथिवी आततान स्वाहा इति । अथैतानङ्गारान् सते वा शरावे वा यजमानो गृह्णाति आयुषे वो गृह्णामि तेजसे वो गृह्णामि तपसे वो गृह्णामि वीर्याय वो गृह्णामि ब्रह्मवर्चसाय वो गृह्णामि इति । अथैतानादायोपोत्तिष्ठति आयुर्मांमाविशतु भूतिर्मांमाविशतु ब्रह्मवर्चसं मामाविशतु इति । तान-ध्वर्यवे संप्रदायोदायन्त्यन्वारब्धे यजमाने । एतेनैव यथेतमेत्योत्तरेणाऽगारं परीत्य पूर्वया द्वारा प्रपाद्य गार्हपत्यस्याऽऽयतने न्युप्योपसमादधाति । [अग्न्यगारस्य परिक्रम इति ॥ दक्षिणेनेति बौधायनः ॥ उत्तरेणेति शालीकिः ॥] परिस्तृणन्ति । दक्षिणत उपविशतो ब्रह्मा च यजमानश्च ।

८. अथैतद्रोहितं चर्माऽऽनडुहं जघनेनाऽग्निं प्राचीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति । [रोहिते चर्मणीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अप्यरोहितं स्यादिति शालीकिः ॥] तस्य वहसः काले चतुरः पात्रान् व्रीहीन्निर्वपति ब्रह्मणे जुष्टं निर्वपामि इति वा तूष्णीं वा । [ब्रह्मोदनस्य मन्त्रामन्त्र इति ॥ मन्त्रवान् स्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीक इति शालीकिः ॥ ब्रह्मोदनस्य निर्वपण इति ॥ पवित्रवता पात्रेण मन्त्रवन्तमिति बौधायनः ॥ अपवित्रेण तूष्णीकमिति शालीकिः ॥] अथ निरुत्तानभिमुशति आकृत्य त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा इति । अथैतान् व्रीहीञ्छूर्पे समुप्याऽद्भिरभ्युक्ष्य चर्मोदूहति । अथैतस्मिन्नेव चर्मण्युल्लखलमुसले निधायऽवहन्ति । अथैतेनैव पात्रेण चतुर उदपात्रानानयति यदि व्रीडिता स्थाली भवति ।

यंशु वा अवीडिता पश्च वा भूयसो वा । स समोदकः संपद्यते । तं य एव कश्च कुशलः परीन्धेन श्रपयित्वाऽभिघार्योदश्चमुद्रासयति । [ब्रह्मौदनस्य श्रपण इति ॥ पयसि श्रपयेदिति बौधायनः ॥ अस्त्विति शालीकिः ॥ नैवाऽस्मिन्नासिञ्चेन्न निःषिञ्चेदिति बौधायनः ॥ काममस्मिन्नासिञ्चेन्न निःषिञ्चेदिति शालीकिः ॥ विस्राव्य तं सूपवन्तमित्यौपमन्यवः ॥]

९. अथैनमायतिगव ऋत्विग्भ्यः प्राहुः । उपसंगच्छन्त एनमेत ऋत्विजः । अथैतां पार्त्रीं निर्णिज्योपस्तीर्य तस्यामेनमसंघ्नन्निबोद्धरति । [ब्रह्मौदनस्योपस्तरण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नोपस्तृणीतेति शालीकिः ॥] सर्पिरासेचनं कृत्वा प्रभूतमाज्यमानीय । अथैतस्यैवौदनस्योपघातं जुहोत्युपतिष्ठते वा प्र वेधसे कवये मेध्याय वचो वन्दाव वृषभाय वृषगे । यतो मयमभयं तन्नो अस्त्वव देवान् यजे हेड्यान् स्वाहा इति । अथैतांश्चतुर आर्षेयानुत्तरतोऽनुदिशमुपवेद्य ताननुपूर्वमाचमय्य तेभ्य एनं भूमिं स्पृशन्ननुच्छिन्दन्निबोपोहति । [ब्रह्मौदनस्योद्वासन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अत्रैव पर्युपविशेयुरिति शालीकिः ॥ ब्रह्मौदनस्योपोहन इति ॥ यज्ञो मोपनमतु इति वा तूष्णीं वेति । पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥ ब्रह्मौदनस्य प्राशन इति ॥ आर्षेया एव ब्रह्मौदनं प्राश्नीयुरिति बौधायनः ॥ य एव के च नियतपाना इति कात्यः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो महत्त्विज एव ब्रह्मौदनं प्राश्नीयुः । अत्र होवैते सतानुनग्निणो भवन्तीति ॥] त्रिः प्राश्य प्रशंसन्ति राक्षसे ब्रह्मौदनः इति । तेभ्यः साण्डं वत्सतरं ददाति । अथैष उत्तरत आसीनो ब्राह्मणः क्षामकार्षं प्राश्नाति । तस्मै यदस्योपकल्पते तद्ददाति । अथ यदाज्यमुच्छिष्यते तेन समिधोऽभ्यज्याऽऽदधाति समिधोऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयताऽतिथिम् । आऽस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ उप त्वाऽग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम स्वाहा ॥ तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा इति गायत्रीभिर्ब्राह्मणस्य । त्रिष्टुभी राजन्यस्य जिघर्म्यग्निं, आ त्वा जिघर्मि, आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाण इति । जगतीभिर्वैद्यस्य जनस्य गोपा अजनिष्ठ जागृविः, त्वामग्ने मानुषीरीडते विशः, सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः इति । समित्सु वत्सतरीं ददाति । [समिधामभ्याधान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सकृत्प्राशितेऽप्रत्यवमृष्टे समिधोऽभ्यज्याऽऽदध्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽत्रैवेनाः पार्श्वतः समज्य सादयेत् । ते यदा सर्वं प्राश्नीयुरथैतां पार्त्रीं निर्णिज्योपस्तीर्य यत् स्थात्यामाज्यमवशिष्टं स्यात्तत् सकृदभ्युनीय तेन समिधोऽभ्यज्याऽऽदध्यादिति ॥] [ताः संवत्सरे पुरस्तादादध्यादिति । ज्यहे षडहे द्वादशाहे वा । संवत्सरेऽपर्यवेत उद्वायति कथं तत्र कुर्यादिति । पुनरेव ब्रह्मौदनं समुत्थापयेदा समिधामभ्याधानात् । न तु केशश्मश्रु वापयीत । पुरस्तात्स्वेवैतत्संवत्सरं संचक्षीत । प्रायश्चित्तार्थ एष उक्तो भवति । स यावत्कृत्व उद्वायेदेवमेव कुर्यात् । पर्यवेते नोपनमेदेवमेव कुर्यात् । उपनमत्युपवसथगविप्रभृति कर्म ताथते । द्विब्रह्मौदनमु द्वैके नृवत उच्छेषणीयो हेतरः सान्त्वकरण उत्तरः ।]

१०. [अग्नीनाधास्यमानः प्रज्यमात्मानं कुर्वीत । येनाऽस्याऽकुशलं स्यात्तेन

कुशलं कुर्वीत । यान्यृणान्युत्थितकालानि स्युस्तानि व्यवहरेदनुज्ञापयति वा ।] [अथेद-
मग्न्याधेयम् । तस्य कः कर्मण उपक्रमो भवतीति । उक्तान्यृतुनक्षत्राण्युक्तमात्मनः पुर-
श्चरणम् । कथमत्राऽऽनुपूर्व्यं भवति । स्नानपवनमन्त्राचमनमन्त्रप्रोक्षणपुण्याहवाचनानि
श्रद्धामाहूयाऽऽकृत्या वेदनं कृत्वोपव्याहृत्यत्विजो वृत्वाऽर्हयित्वा देवयजनं याचित्वा देवयजन
मादाय स्फ्यमादायाऽन्तरेण वेद्युत्कराबुद्देशेन प्रपद्य जघनेन गार्हपत्यं तिष्ठन् प्राचीनः स्फ्येन
गार्हपत्यस्याऽऽयतनमुद्धन्ति उद्धन्यमानमस्या अमेध्यमप पाप्मानं यजमानस्य हन्तु । शिवा नः सन्तु
प्रदिशश्चतस्रः शं नो माता पृथिवी तोकसाता इति । अथैनद्द्विरवोक्षति शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु
पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः इति । एवमेवाऽन्वाहार्यपचनस्याऽऽयतनमुद्धन्ति । एवमेवाऽऽ-
हवनीयस्य । एवमितरयोर्यदि करिष्यन् भवति ।] [अथाऽन्तरेण वेद्युत्कराबुद्देशेनोदङ्कु-
पनिष्कम्य तां दिशं यन्ति यत्राऽस्य संभारा उपकल्लता भवन्ति । अपि वोत्तरेण शालायाः
सर्वे संभारा उपकल्लता भवन्ति । अपि वाऽन्तर्वेदि प्राचीनम् । तान् मन्त्रानुपूर्व्यमेकैकं
संभारमेकैकेन यजुषा संभरति । वैश्वानरस्य रूपं पृथिव्यां परिस्रसा स्योनमाविशतु नः इति
सिकताः संभृत्य निदधाति । एवमेवोत्तरमुत्तरः संभारमुत्तरेणोत्तरेण यजुषा संभृत्य संभृत्यैव
निदधाति । ऊषाश्च सिकताश्चाऽऽखूत्करं च वल्मीकवपां च सूदं च वराहविहतं च पुष्कर-
पर्णं च शर्कराश्चेत्यष्टौ पार्थिवाः । अथोत्तरेण यजुषा षड्दिरण्यशल्कानाहरति । अथ
वानस्पत्याभिर्वानस्पत्याः । शाखा आर्द्राः सपलाशाः सप्रारोहाः प्रादेशमात्रीरप्रतिशुष्काग्रा
आहरति । अपि वा यथालाभम् । पर्णं द्वाभ्याम् । चित्रियस्याऽश्वत्थस्य तिस्रः समिध
आर्द्राः सपलाशाः सप्रारोहाः प्रादेशमात्रीरप्रतिशुष्काग्रा आहरति । चित्रियादश्वत्थात् संभृता
बृहत्यः शरीरमभिसंस्कृताः स्थ । प्रजापतिना यज्ञमुखेन संमितास्तिस्रस्त्रिद्विर्मिथुनाः प्रजात्यै इति ।
अथ मुञ्जकुलायमाहरति या ते अग्न ओजस्विनी तनूरोषधीषु प्रविष्टा । तां त इह संभरामि इति ।
अथैतान् सुसंभृतान् संभारान् पुनरेव संभरति यं त्वा समभरं जातवेदो यथा शरीरं भूतेषु न्यक्तम् ।
स संभृतः सीद शिवः प्रजाभ्य उदं नो लोकमनुनेषि विद्वान् इति ।] अथाऽस्मा अरणी आहरति
यो अश्वत्थः शमीगर्भ आरुह त्वे सचा । तं ते हरामि ब्रह्मणा यज्ञियैः केतुभिः सह इति । [अथाऽस्मा
अरणी आहरत्याश्वत्थीः शमीगर्भीमप्यशमीगर्भी वा चतुरङ्गुलमुत्सेधां द्वादशाङ्गुलं
विस्तीर्णाः षोडशाङ्गुलमायतामपि वा प्रादेशमात्रीः सर्वतः समां चतुरङ्गुलमेवोत्सेधाम् ।
तस्या उत्तानाया अनुलोममधस्तात् प्रतीचीनप्रवणं प्रजननं कुर्वन्ति । तावतीमेवोत्तरा-
रणिम् । अथैने आहरति अश्वत्थाद्व्यवाहाद्वि जातामग्नेस्तनूं यज्ञियाः संभरामि । शान्तयोनिः
शमीगर्भमग्नये प्रजनयितवे ॥ यो अश्वत्थः शमीगर्भ आरुह त्वे सचा । तं ते हरामि ब्रह्मणा यज्ञियैः
केतुभिः सह इति ॥]

गोपितयज्ञः

बौधायनश्रौ० [२, ८-११; ५; १५; २०.१६; २४.१२-१३]—

१. अथाऽग्न्याधेयस्योपवसथ इत्युपकल्पयते गामः सलामहतं वासश्चतुर उदकुम्भाः स्त्रीनौदुम्बराञ्छूलानौदुम्बरीं दर्वीमेकां वपाश्रपणीमविशाखामौदुम्बरीमेव सर्वानेवाऽन्यान् स्थालीपाकात् पैतृयज्ञिकान् संभारानेरकोपबर्हणे आञ्जनाभ्यञ्जने आज्यं तृणमुष्टिः स्फ्यः सूत्रमिति । दक्षिणत एतत् परिश्रितं भवति । तस्यैतस्मिन् परिश्रिते प्राङ्मातृत्तस्य केशान्तं करोति तूष्णीम् । त्रीणि दर्भपुञ्जीलान्युपनियत्य वपति वपे प्रवपे देवेन सवित्रा प्रसूतो ब्रह्मणा सः शितोऽहं, यानि म इत ऊर्ध्वं लोमानि तानि मे स्वस्तये सन्तु इति । अथैन-मुत्तकेशश्मश्रुं निकृत्तनखमुदकुम्भेनाऽभ्यवनयन् वाचयति इमा म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे । शुद्धाः प्रयुजीमहि ऋतून् इति । स्नातः प्राङ्मातृत्तस्याऽहतं वासः परिधायाऽलंकृत्याऽऽङ्के । अथैनमेकविंशत्या दर्भपुञ्जीलैस्त्रिधा विभक्तैः सप्तभिः सप्तभिस्तूष्णीं पवयित्वोदपात्रमादायेमां दिशं नीत्वा चतुष्पथ एतस्मिन्नेवोदपात्रेऽवेक्षमाणं पाप्मनो विनिधीन् वाचयति सिंहे मे मन्युर्व्याघ्रे मेऽन्तरामयः इति । [सिंहे मे मन्युः । व्याघ्रे मेऽन्तरामयः । वृके मे क्षुत् । अश्वे मे घसिः । धन्वनि मे पिपासा । राजगृहे मेऽशनाया । अश्वनि मे तन्निद्रः । गर्दभे मेऽर्शः । शल्यके मे ह्रीः । अश्वत्थे मे वेपथुः । कूर्मे मेऽङ्गरोगः । बस्ते मेऽपसर्या । अप्रिये मे मृत्युः । भ्रातृव्ये मे पाप्मा । सपत्ने मे निर्ऋतिः । दुष्कीर्तौ मे व्युद्धिः । परस्वति मेऽसमृद्धिः । खड्गे म आर्तिः । गवये म आन्ध्यम् । गौरे मे बाधिर्यम् । ऋक्षे मे शोकः । गोधायां मे खेदः । जरायां मे हिमः । कृष्णशकुनौ मे भीरुता । कशे मे पापो गन्धः । उल्लेके मे श्वभ्यशः । क्लोके म ईर्ष्या । मर्कटे मे दुर्कृद्धिः । कुलले मे मः स्या । उलले मे प्रध्या । उष्ट्रे मे तृष्णा । ऋश्ये मे श्रमः । अव्यां म आव्यम् । कोशे मे गन्धः । कुमार्यां मेऽलंकारः । सुकरे मे ऋदधुः । पृदाकुनि मे स्वप्नः । अजगरे मे दुःस्वप्नः । विद्युति मे स्मयशः । लोभायां मे क्लेदः । शलमे मे पाप्मालक्ष्मीः । स्त्रीषु मेऽनृतम् । अजासु मे कर्कशः । प्रात्ये म ईत्या । शूद्रे मे स्तेयम् । वैश्ये मेऽकार्मकृत्यम् । राजन्यबन्धुनि मेऽज्ञानम् । नैषादे मे ब्रह्महत्या । कुलिङ्गे मे क्षवथुः । उलले मे विलासः । उद्विणि मे वमतिः । किपुष्वे मे रोदः । द्वापिनि मे निष्ठपत् । हस्तिनि मे किलासः । शुनि मे दुरिप्रम् । स्नावन्येषु मे म्लेच्छः । विदेहेषु मे शीपथः । महावर्षेषु मे ग्लौः । मूजवत्सु मे तप्रा । दुन्दुभौ मे कासिका । इक्ष्वाकुषु मे पित्तम् । कलिङ्गेषु मेऽमेध्यम् । अश्वतर्यां मेऽप्रजस्ता । पुंश्चल्यां मे दुश्चरितम् । आबुनि मे दन्तरोगः । मक्षिकायां मे श्वल्कशः । शुके मे हरिमा । मयूरे मे जल्प्या वृषे मे जरा । चाषे मे पापवादः । अप्सु मे श्रमः । ब्रह्मोज्जे मे किल्बिषम् । अपेहि पाप्मन् पुनरपनाशितो भवा नः पाप्मन् सुकृतस्य लोके पाप्मन् धेह्यविहृतो यो नः पाप्मन् जहाति तमु त्वा जहिमो वयमन्यत्राऽस्मज्जिविशताः सहस्राक्षो अमर्त्यो यो नो द्वेष्टि स रिष्यतु यमु द्विष्मस्तमु जहि इति । अथाऽञ्जलिनाऽप उपहन्ति सुमित्रा न आप ओषधयः सन्तु इति । तां दिशमेता अप उत्तिञ्चति

१. इदं प्रकरणं संहिताब्राह्मणविभागे नास्ति । एतत्संबन्धीनि कानिचन विधिवाक्यानि 'आधानाङ्गेष्टयः' इति प्रकरणे द्रष्टव्यानि । अत्रोपयुक्ताः केचन मन्त्रा आधानोपकल्पनसंबन्धिमन्त्र-विभागोऽवलोकनीयाः । बौधायनसूत्रं वर्जयित्वान्येषु श्रौतसूत्रेष्वत्रस्थो विधिर्नोपदिष्टः ।

यस्यामस्य दिशि द्वेष्टो भवति दुर्मित्रास्तस्मै भूयाद्युषोऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति । अथाऽप उपस्पृश्य यथेतं प्रविशन्ति ।] आन्तमेतमनुवाकं निगद्य निनीयाऽपः परास्थ पात्रमन-
वेक्षमाणा आयन्ति । हस्तपादान् प्रक्षाल्यैतेनैव यथेतमेत्य पवमानः सुवर्जनः इत्येतमनुवाकं
यजमानं वाचयन्नद्धिर्मार्जयति ।

२. आमात्यादिधमादीप्याऽन्वाहार्यपचनवेलायाः सादयित्वा शोधयित्वा बर्हिषा
परिस्तीर्याऽऽज्यं विलाप्योत्पूयोत्तरत एतानुपसादयति चतुर उदकुम्भाः स्त्रीनौदुम्बराञ्छ-
लानौदुम्बरीं दर्वीमेकां वपाश्रपणीमविशाखामौदुम्बरीमेव दक्षिणतः सर्वनिवाऽन्यान् स्थाली-
पाकात् पैतृयज्ञिकान् संभारानेरकोपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने आज्यं तृणमुष्टिः स्फ्यः सूत्रमिति ।
दक्षिणतोऽधिदेवनं करोति । तदेकाश्रपञ्चाशतोऽक्षाश्रिवपति । अथ स्फ्यमादाय सकृदेव
दक्षिणोद्धन्ति अपहता असुरा रक्षाः सि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवीमनु । अन्यत्रेतो गच्छन्तु यत्रैषां
गतं मनः इति । अथैनदद्भिरवोक्षति उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य
ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु इति । अथोत्सुकमादत्ते य आददानाः स्वधया नवानि
पित्र्याणि रूपाण्यसुराश्चरन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्ठानस्मात् प्रणुनोतु यज्ञात् इति । तेनो-
द्धतमभितपति अभिः पावकः सुदिनानि कृष्यन्ति तोऽसुराश्चुदताद्दूरमोकसः । पितृणां ये वर्णं कृत्वेह
भागमिच्छन्तः इति । तदत्रैव व्यन्तं करोति । तस्मिन्नुत्सुक आज्यस्तोकं प्रश्नोतयति ।
तदक्षिणाग्रं बर्हिः स्तृणति सकृदाच्छिन्नं बर्हिरूर्णामृदु स्योनं पितृभ्यस्त्वा भराम्यहम् । अस्मि-
न्सीदन्तु मे पितरः सोम्याः पितामहाः प्रपितामहाश्चाऽनुगैः सह इति । अथ पितृनावाहयति उदीराणा
इह सन्तु नः सोम्याः पितरः पितामहाः प्रपितामहाश्चाऽनुगैः सह । असुंगमाः सत्ययुजोऽवृकास आ नो
हवं पितरोऽद्याऽऽगमन्तु ॥ एह गच्छन्तु पितरो हविषे अत्तवे । अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य मा वीरः प्र मा
युनक् इति । अथैभ्य एरकोपबर्हणे निवेदयते आसनः शयनं चेमे तयोः सोम्यास आगताः । प्रिया
जनाय नो भूत्वा शिवा भवत शंकराः इति । अथैभ्यः पानान्याहारयति मधुपानं क्षीरपानं
सक्तुपानं यद्वा भवति । अन्यद्वाहणेभ्यो ददाति । अन्यदुपनिनयति एतद्वः पितरः पितामहाः
प्रपितामहाः पानम् इति । अत्रैकेनोदकुम्भेन मार्जयति तूष्णीम् ।

३. तदक्षान् पर्युपविशन्ति चत्वारः पितापुत्राः । पिता पुरस्ताज्ज्येष्ठो दक्षि-
णतोऽनुजः पश्चात् कनिष्ठ उत्तरतः । द्वादशाक्षान् पिता प्रच्छिनत्ति । तद्विजयते । द्वादश
ज्येष्ठः । तद्विजयते । द्वादशाऽनुजः । तद्विजयते । अथ येऽतिशिष्यन्ते तान् कनीयाः समुप-
समूहन्ति । अथ यदि द्वौ भवतो द्विरायामः पिता । अथ यद्येको जाया तृतीया । अथ यदि
नैव भवन्त्युभौ द्विरायामौ जायापती । एष एव त्रिषु न्यायः । एष एव द्वयोः । कृतं
कृतम् इत्येव व्यपगच्छन्ति । द्यूता गीः इत्युक्त्वोत्तिष्ठन्ति ।

४. अथैभ्यो बर्हिरादाय गामुपाकरोति पितृभ्यस्त्वा पितामहेभ्यस्त्वा प्रपितामहेभ्यस्त्वा
जुष्टामुपाकरोमि इति । तूष्णीमित्येके । अथैनामद्भिः प्रोक्षति पितृभ्यस्त्वा पितामहेभ्यस्त्वा प्रपिता-
महेभ्यस्त्वा जुष्टां प्रोक्षामि इति । तूष्णीमित्येके । तामत्रैव प्रतीचीनशिरसीं दक्षिणापदीं
संज्ञयन्ति । [तदाहुर्नाऽन्याधेये गां कुर्वीत घोररूपमिति । अपि कुर्वीतैवाऽपि त्वेव न
कुर्वीत । अपि बह्वीरपि कुर्वीत । अनु चैतस्य भवेत् पुण्या प्रशंसति कात्यः ॥]

[गोः करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥ अपि बह्वीरपि कुर्वीत । अनु चैतस्य भवेत् पुण्या प्रशंसेति कात्यः ॥] [अथ वै भवति इन्द्रो वृत्रं हत्वाऽसुरान् पराभाव्य सोऽमावास्यां प्रत्यागच्छत् । ते पितरः पूर्वेंदुरागच्छन् । पितृन् यज्ञोऽगच्छत् । तं देवाः पुनरयाचन्त । तमेभ्यो न पुनरददुस्तेऽब्रुवन् वरं वृणामहा अथ वः पुनर्दास्यामोऽस्मभ्यमेव पूर्वेंदुः क्रियाता इति । तमेभ्यः पुनरददुः । तस्मात् पितृभ्यः पूर्वेंदुः क्रियते । यत् पितृभ्यः पूर्वेंदुः करोति पितृभ्य एव तद्यज्ञं निष्क्रीय यजमानः प्रतनुत इति ब्राह्मणम्^१ । अथ यदि गां न लभते मेषमजं वाऽऽलभते । अपि वां द्यूतमोदनं पक्त्वा तस्योपरिष्ठात् प्रभूतमाज्यं पयो वाऽऽनीय तस्मादेतत् सर्वं करोति यद्ववा कार्यम् । विज्ञायते च धेन्वे वा एतद्रेतो यदाज्यं पयो वा अनडुहस्तण्डुला इति । गौरेवाऽङ्गसामान्यात् ॥] तस्यै संज्ञप्ताया अङ्गिरभिषेकं प्राणानाध्याययति तूष्णीम् । - तूष्णीं वषामुत्तिष्ठ हृदयमुद्धरति प्रज्ञातानि चाऽवदानानि प्रज्ञातौ च मतस्नू तान्येतेष्वेव शूलेषूपनिक्ष्यैतस्मिन्नेवाऽग्नौ श्रपयन्ति । श्रुतायां वषायां पञ्च सुवाहुतीर्जुहोति याः प्राचीः संभवन्त्याप उत्तरतश्च याः । अङ्गिर्विश्वस्य भुवनस्य धर्त्रीभिरन्तरन्यं पितुर्दधे स्वधा नमः स्वाहा ॥ अन्तर्दधे पर्वतैरन्तर्मह्या पृथिव्या । दिवा दिग्भिरन्ताभिरुतिभिरन्तरन्यं पितामहाद्दधे स्वधा नमः स्वाहा ॥ अन्तर्दधे ऋतुभिः सर्वैरहोरात्रैः सुसंधिकैः । अर्धमासैश्च मासैश्चाऽन्तरन्यं प्रपितामहाद्दधे स्वधा नमः स्वाहा ॥ यन्मे माता प्रभुलोभ चरत्यननुव्रता । तन्मे रेतः पिता वृङ्क्षामाभुरन्योऽपपद्यता^२ स्वधा नमः स्वाहा ॥ यद्रः क्रव्यादङ्गमदहल्लोकान्नयन् प्रणयजातवेदाः । तद्वोऽहं पुनरावेशयाम्यरिष्टाः सर्वैरङ्गैः संभवत पितरः स्वधा नमः स्वाहा इति । त्रेधा वषां विच्छिद्यौदुम्बर्या दर्व्या जुहोति सोमाय पितृमते शुष्मिणे जुहुमो हविः । वाजिचिदं जुषस्व नः स्वजा हव्यं देवेभ्यः पितृभ्यः स्वधा नमः स्वाहा ॥ अङ्गिरस्वन्तमृतये यमं पितृमन्तमाहुवे । वैवस्वतेदमद्भि नः स्वजा हव्यं देवेभ्यः पितृभ्यः स्वधा नमः स्वाहा ॥ यदग्ने कव्यवाहन पितृन् यक्ष्यतावृधः । प्र देवेभ्यो ब्रह्मा हव्यं पितृभ्यश्च स्वजा हव्यं देवेभ्यः पितृभ्यः स्वधा नमः स्वाहा इति । तूष्णीं दर्वीमभ्याधाय पिण्डानामावृतैतान्यवदानानि ददाति हृदयमेवाऽग्रेऽथ सव्यं मतस्नुमथ दक्षिणम् । एतत्ते तताऽसौ ये च त्वामनु याश्च त्वमत्राऽन्वस्येषा ते तत स्वधाऽक्षितिर्यावती पृथिवी तावती ते मात्रा तावती त एतां मात्रां भूतां ददामि पृथिव्या मितमसि तताय मा क्षेष्टाः इति । द्वितीयं ददाति एतत्ते पितामहाऽसौ ये च त्वामनु याश्च त्वमत्राऽन्वस्येषा ते पितामह स्वधाऽक्षितिर्यावदन्तरिक्षं तावती ते मात्रा तावती त एतां मात्रां भूतां ददाम्यन्तरिक्षेण मितमसि पितामहाय मा क्षेष्टाः इति । तृतीयं ददाति एतत्ते प्रपितामहाऽसौ ये च त्वामनु याश्च त्वमत्राऽन्वस्येषा ते प्रपितामह स्वधाऽक्षितिर्यावती द्यौस्तावती ते मात्रा तावती त एतां मात्रां भूतां ददामि दिवा मितमसि प्रपितामहाय मा क्षेष्टाः इति । अत्र पितरो यथाभागं मन्दध्वम् इत्युक्त्वाऽत्रैकेनोदकुम्भेन मार्जयति तूष्णीम् । अथैभ्यो गामुपपरेत्य लोहितमुपप्रवर्तयति यानि रक्षास्यसृग्भागानि ये चाऽपि पितरो हरन्तां विहरन्तां तृप्यन्तु रुधिरस्य ते ॥ ये नः पतिता गर्भा असृग्भाज उपासते । तेभ्यः स्वजा स्वधा नमस्तृणुवन्तु मदन्तु च ॥ य आमा ये च पका ये च

दुष्टाः पतन्ति नः । तेभ्यः स्वजा स्वधा नमस्तृण्वन्तु मदन्तु च ॥ ये कुमारः याः स्त्रियो येऽविज्ञाताः पतन्ति नः । तेभ्यः स्वजा स्वधा नमस्तृण्वन्तु मदन्तु च इति । आगत्याऽऽञ्जनं ददाति । अथाऽभ्यञ्जनं ददाति । अथ वासांसि ददाति । अथ षड्भिर्नमस्कारैर्विपर्यासमुपतिष्ठते । अथ वीरं याचते । अथैनानुत्थाप्य प्रवाह्य तिसृभिर्मन आह्वयते मनो न्वाहुवामहे..., आ न एतु मनः पुनः..., पुनर्नः पितरो मनः... इति । अत्रैतदहृतं वास एवंचिदे ब्राह्मणाय दत्त्वाऽन्यदसनीयं वासः परिधाय दक्षिणोपपरेत्याऽङ्गिर्माज्यते यासु गन्धा रसा वर्णा बलं च निहिते उमे । ता म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे ॥ या ऊर्जमभिषिञ्चन्ति देवप्रेषिता महीम् । ता म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे ॥ यासां निष्क्रमणे सर्वमिदं जायते जगत् । ता म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे ॥ यासामिमे त्रयो लोकास्तेजसा यशसाऽऽवृताः । ता म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे ॥ याः प्रार्चय्या दक्षिणा याः प्रतीचय्या उदीचय्या ऊर्ध्वा रेवतीर्मधु-मतीरापः स्रवन्ति शुक्राः । ता म आपः शिवाः सन्तु दुष्कृतं प्रवहन्तु मे इति । अत्रैतदसनीयं वासो विमुच्याऽन्यत् परिधाय प्राजापत्ययर्चाऽग्नेरुदेति प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः इति । अथोल्लुक्-मपि सृजति अभूद् दूतो हविषो ज्ञातवेदा अवाङ्मन्यानि सुरभीणि कृत्वा । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन् प्रजानन्नग्रे पुनरप्येहि देवान् इति । अत्रैतान्यवदानानि ब्राह्मणेभ्यो ददाति हृदय-मेवाऽग्नेऽथ सव्यं मतस्तुमथ दक्षिणम् । यथाश्रद्धमन्नं कुरुते । गामेतामशशः कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो वरं ददाति । स ये ह के चैतस्यै मासं लभन्ते सर्वे ह वा अस्यै ते गोभाजशो भवन्ति । आमात्ये जयानभ्यातानान् राष्ट्रभृत् इति हुत्वाऽमात्यहोमाञ्जुहोति । एष ह वा उपवसथः । उप ह्यस्मिन् देवा वसन्ति प्रातर्जंथ्यामो वामं वस्विति । एतद्ध वै देवानां वामं वसु यदाग्नेयोऽष्टाकपालः । उप हैनं वामं वसु गच्छति यस्य ह वा एतामेवंचिद्वान् गां कल्पयते । सर्वं पाप्मानं तरति । तरति ब्रह्महत्याम् । अप पुनर्मृत्युं जयतीति होवाच प्रजापतिः । तानि ह वा एतानि कूष्माण्डानीत्याचक्षते काजवानीति वाऽमात्यहोमा इति वाऽतीमोक्षा इति वा । स यत्किंचाऽस्मिन् लोके पापं कर्म करोति सर्वस्मात्तस्मान्निर्मुच्याऽनृणः स्वर्गं लोकमेतीति होवाच प्रजापतिः ॥

अग्निमन्थनम्

बौधायनश्रौ० [२.१५-१६; ७; २०.१६; २४.१४-१५]—

१. अथाऽस्मा अरणी प्रयच्छन्नाह वाचंयमो भविष्यसि सञ्ज्ञाधि यत्ते सञ्शिष्यम् इति । स आह ब्राह्मणानाशयताऽश्वं गोपायत संभाराञ्जिधत् इति । तस्य सुभिक्षमग्न्याधेयं भवति । साऽग्न्याधेयस्य समृद्धिः । अथाऽस्मा अरणी प्रयच्छति । [अरण्योः प्रदान इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽपररात्र एवाऽस्मा अरणी प्रयच्छेत् । वरं ददामीत्येव वाचं विसृजेदिति ॥] ते प्रतिगृह्णाति मही विश्वती सद्ने ऋतस्याऽर्वाची एतं धरुणे रयीणाम् । अन्तर्वत्नी जन्यं ज्ञातवेदसमध्वराणां जनयथः पुरोगाम् ॥ आरोहत् दशतं शकरीर्ममतेनाऽम आयुषा

वर्चसा सह । उद्योगजीवन्त उत्तरामुत्तराः समां दर्शमहं पूर्णमासं यज्ञं यथा यज्ञे इति । अथैने उपनि-
गृह्णाति ऋत्विग्वती स्थो अभिरेतसौ गर्भं दधाथां ते वामहं ददे । तत्सत्यं यद्वीरं बिभृथो वीरं
जनयिष्यथः ॥ ते मत्प्रातः प्रजनिष्येथे ते मा प्रजाते प्रजनयिष्यथः । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सुवर्गे
लोके इति । अथैनमनृतात्सत्यमुपनयति मानुषाद्वैव्यमुपनयति इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि मानु-
षाद्वैव्यमुपैमि दैवीं वाचं यच्छामि इति । तं वाचंयमः रात्रिं जागरयन्त आसते । शल्कैस्ताः
रात्रिमग्निमिन्धते शल्कैरग्निमिन्धान उभौ लोकौ सनेमहम् । उभयोलोकयोर्ऋक्षाऽति मृत्युं तराम्यहम्
इति । उत्तरेण गार्हपत्यस्याऽऽयतनं कल्माषमजं बध्नाति । तेनैनमाध्यास्यमानः संख्यापयति
प्रजा अग्ने संवासयाऽऽशाश्च पशुभिः सह । राष्ट्राण्यस्मा आधेहि यान्यासन्सविबुः सवे इति ।

२. अथाऽध्वर्युरपररात्र आद्रुत्याऽरणीं निवृपति जातवेदो भुवनस्य रेत इह सिञ्च तपसो
यज्जनिष्यते । अग्निमश्वत्थादधि हव्यवाहः शमीगर्भाज्जनयन् यो मयोभूः ॥ अयं ते योनिर्ऋत्विग्यो
यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्ने आरोहाऽथा नो वर्धया रयिम् इति । अथैतमग्निः सते समुप्य
दक्षिणतो ज्वलयन्त आसते । अथैतान्यग्न्यायतनानि शकृत्पिण्डेन परिलेपयति । [अग्न्या-
यतनानां परिलेपन इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो गार्हपत्यायतनमेवैकं
परिलिम्पेत् । तद्धि विदग्धं भवतीति ॥] अथ तृतीयः संभाराणामादाय गार्हपत्यस्याऽऽयतने
निवपति यत्पृथिव्या अनामृतः संबभूव त्वे सचा । तदग्निरग्नयेऽददात्तस्मिन्नाधीयतामयम् इति ।
[संभाराणां निवपन इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो गार्हपत्यायतन
पवैनान् सर्वैर्मन्त्रैः परिनिष्ठाप्य त्रेधा निवपेदिति ॥] स यत्रोषानुपाधिगच्छति तज्जपति
यददश्चन्द्रमसि कृष्णं तदपीह इति । [अथ संभारेषूषाशिवपन् यददश्चन्द्रमसि कृष्णं तन्मनसा
ध्यायेत् तदपीहेति ।] अथैनानादधाति दिवस्त्वा वीर्येण पृथिव्यै महिम्ना । अन्तरिक्षस्य पोषेण
सर्वपशुमादधे इति । अथैनान् संप्रयौति सं वः सज्जामि हृदयानि सःसृष्टं मनो अस्तु वः । सः-
सृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥ सं या वः प्रियास्तनुवः संप्रिया हृदयानि वः । आत्मा वो अस्तु संप्रियः
संप्रियास्तनुवो मम इति । अथैनान् कल्पयति कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधीः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ्गम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ येऽग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी । वासन्तिकावृत्
अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु इति । अथाऽतिशिष्टानां संभाराणामर्धानादाय
दक्षिणया द्वारोपनिर्हृत्याऽन्वाहार्यपचनस्याऽऽयतने निवपति यदन्तरिक्षस्याऽनामृतः संबभूव त्वे
सचा । तद्वागुरग्नयेऽददात्तस्मिन्नाधीयतामयम् इति । स यत्रोषानुपाधिगच्छति तज्जपति यददश्चन्द्रमसि
कृष्णं तदपीह इति । तथाऽऽदधाति । तथा संप्रयौति । तथा कल्पयति । अथैतेनैव यथेत-
मेत्याऽतिशिष्टान् संभाराणादाय पूर्वया द्वारोपनिर्हृत्याऽऽहवनीयस्याऽऽयतने निवपति
यदिवोऽनामृतः संबभूव त्वे सचा । तदादित्योऽग्नयेऽददात्तस्मिन्नाधीयतामयम् इति । स यत्रोषानु-
पाधिगच्छति तज्जपति यददश्चन्द्रमसि कृष्णं तदपीह इति । तथाऽऽदधाति । तथा संप्रयौति ।
तथा कल्पयति । [अथ तृतीयः संभाराणां त्रेधा विभज्य सभ्यावसथ्ययोः । आहवनीये
वा सभ्यावसथ्ययोः संकल्पः । समानं कर्मा समिदाधानात् ।] अथ गोसारः समा-
दिशति । स आह विहता अग्नयो मा कश्चनाऽन्तरेण संचारीत् इति ।

३. अथाऽध्वर्युः प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखाद्रुत्या गार्हपत्यस्याऽऽयतन उपरि

संभारेषु मुञ्जकुलायं निदधाति । तस्मिन् प्रतोचीनप्रजननामरणिं निधाय दशहोत्रोत्तरारणि-
मवदधाति । स आह मन्यत इति । यजमानः प्रथमो मन्यति । यजमान उत्तमो मन्यति ।
जनयति । जाते वरं ददामि इति वाचं विसृजते । अथैनमुपतिष्ठते अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्तेमाणं
तरणिं वीडुजम्भम् । दश स्वसारो अग्रवः समीचीः पुमांसं जातमभिसंभ्रमन्ताम् इति । अथैन-
मभिप्राणिमिति प्रजापतेस्त्वा प्राणेनाऽभिप्राणिमि पूष्णः पोषेण मह्यम् । दीर्घायुत्वाय शतशारदाय शत-
शरद्वय आयुषे वर्चसे जीवात्वे पुण्याय ॥ प्राणे त्वाऽमृतमादधाम्यन्नादमन्नाद्याय गोप्ताय गुप्स्यै इति ॥

आधानम्

बौधायनश्रौ० [२.१६-१८; २.७; २०.१७-१८; २४.१५-१७]—

१. अथोद्गातारमाह रथन्तरं ब्रूहि इति । अथैनमादधाति । भूर्भुवो धर्मः शिरस्तद-
यमग्निः संप्रियः पशुभिर्भुवत् । छर्दिस्तोकाय तनयाय यच्छ ॥ भृगूणां त्वाऽङ्गिरसां व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि
इति भृग्वङ्गिरसामादध्यात् । आदित्यानां त्वा देवानां व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इत्यन्यासां ब्राह्मणीनां
प्रजानाम् । वरुणस्य त्वा राज्ञो व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इति राज्ञः । इन्द्रस्य त्वेन्द्रियेण व्रतपते व्रतेनाऽऽ-
दधामि इति राजन्यस्य । मनोस्त्वा ग्रामण्यो व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इति वैश्यस्य । ऋभूणां त्वा
देवानां व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इति रथकारस्येति । यथर्वि यथागोत्रम् । गायत्रेण छन्दसा इति ।
उत्तरतो हिरण्यशल्कमुपास्यति स्वया तनुवा संभव इति । अथैतं राजतं वृषलाय वाऽज्ञाताय
वाऽतिप्रयच्छति । आर्तिमेवाऽतिप्रयच्छतीति ब्राह्मणम् । अथैनमुपतिष्ठते अहं त्वदस्मि मदसि
त्वमेतन्ममाऽसि योनिस्तव योनिरस्मि । ममैव सन् वह हव्यान्यग्ने पुत्रः पित्रे लोककृजातवेदः ॥
सुगार्हपत्यो विदहन्नरातीरुषसः श्रेयसीःश्रेयसीर्दधत् । अग्ने सपत्नाऽपबाधमानो रायस्पोषमिषमूर्ज-
मस्मासु घेहि इति ।

२. अथैतमग्निमाददते य एष सते समुप्तो भवति । तं दक्षिणया द्वारोपनिर्हृत्याऽ-
न्वाहार्यपचनमादधाति भूर्भुवो वातः प्राणस्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भुवत् । स्वदितं तोकाय तनयाय
पितुं पच ॥ अमीषां त्वा देवानां व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इति । यथर्वि यथागोत्रम् । गायत्रेण छन्दसा
इति । उत्तरतो हिरण्यशल्कमुपास्यति स्वया तनुवा संभव इति । अथैतं राजतं वृषलाय
वाऽज्ञाताय वाऽतिप्रयच्छति । आर्तिमेवाऽतिप्रयच्छतीति ब्राह्मणम् । अपि वा गार्हपत्या-
देवाऽन्वाहार्यपचनमादधाति । प्रजापतिरग्निमसृजत । सोऽभिमेत् प्र मा धक्ष्यतीति । तस्य
त्रेधा महिमानं व्यौहच्छान्त्या अप्रदाहायेत्येतस्माद्ब्राह्मणात् । अथैनमुपतिष्ठते इमा उ
मामुपतिष्ठन्तु राय आभिः प्रजाभिरिह संवसेय । इहो इडा तिष्ठतु विश्वरूपी मध्ये वसोर्दीदिहि
जातवेदः इति ।

३. अथैतेनैव यथैतमेत्याऽभ्यादधातीधमं प्रणयनीयम् । तं तथाऽभ्यादधाति यथा
मन्यतेऽर्धोदिते सूर्य आहवनीय आधीयमानः संपत्स्यत इति । तस्य तथा संपद्यते । [अथ
येदिध्मेऽभ्याहिते दृश्येत कथं तत्र कुर्यादिति । पूर्णाहुत्यन्तं कर्म कृत्वा कर्मन्तिनोपरमेत् ।
भ्यो भूते परिनिस्तिष्ठेदिति ।] उपोपयमनीः कल्पयन्ति । अथ एष पूर्ववाद् पदपूजितः

पुरस्तात्तिष्ठति । अथोद्गातारमाह वामदेव्यं ब्रूहि इति । अथैनमुद्यच्छते ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे
वृषणे शुष्मायाऽऽगुषे वर्चसे । सपत्नतूरसि वृत्रत् ॥ यस्ते देवेषु महिमा सुवर्गो यस्त आत्मा पशुषु प्रविष्टः ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे तथा नो अग्ने जुषमाण एहि ॥ दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वातात् पशुभ्यो
अध्योषधीभ्यः । यत्रयत्र जातवेदः संबभूथ ततो नो अग्ने जुषमाण एहि इति । इयत्यग्रे हरति ।
अथेयति । अथेयति । अधोऽधः शिरो हरतीति ब्राह्मणम् । [इध्मस्य हरण इति ॥ स ह
स्माऽऽह बौधायनो जानुदघ्ने प्रथमं हरेदथ नाभिदघ्नेऽथ ग्रीवदघ्ने । प्राणांस्तु नाऽतिहरे-
दिति ॥] आददान एवैता मात्रा अभिसंपादयेदित्येतदपरम् । [आददान एवैता मात्रा
अभिसंपादयेत् । प्राणांस्त्वेव नाऽतिहरेदिति शालीकिः ॥] अश्वं पूर्वं नयन्ति । तमनु-
मन्त्रयते प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह । विश्वा आशा दीद्यानो विभाह्यूर्ज नो
धेहि द्विपदे चतुष्पदे इति । विषुवत्युपरमन्ति विक्रमस्व महाः असि वेदिषन्मानुषेभ्यस्त्रिषु लोकेषु
जागृहि इति । अथोपातिरन्ति अन्वगिन् षषसामप्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य
पुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततान इति । अथैतेनाऽश्वेन प्राचोत्तरतः पार्श्वतः संभाराणा-
माक्रमयति यथाऽऽहितस्याग्नेरङ्गारा अभ्यववर्तैरञ्जिति । [संभाराणामाक्रमण इति ॥ सूत्रं
शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन एवमेवैतेन पुरस्तात् प्रत्यगावृत्तेन दक्षिणेन पूर्वपदे-
नोत्तरतः पार्श्वतः संभाराणामाक्रमयेद्यथाऽऽहितस्याग्नेरङ्गारा अभ्यववर्तैरञ्जिति ॥] अथैनं
प्रदक्षिणमावर्त्याद्भिरभ्युक्ष्योदश्रुमुत्सृजति । स एषोऽध्वर्योर्भवति । अन्यं ब्रह्मणे ददाति ।
[अश्वस्य दान इति ॥ अध्वर्यव एतमग्निपदमश्वं दद्यादन्यं ब्रह्मण इति बौधायनः ॥ एतं
ब्रह्मणेऽन्यमध्वर्यव इति शालीकिः ॥] अथ प्रदक्षिणमावृत्येध्मं प्रतिष्ठापयति यदिदं दिवो
यददः पृथिव्याः संविदाने रोदसी संबभूवतुः । तयोः पृष्ठे सीदतु जातवेदाः शंभूः प्रजाभ्यस्तनुवे
स्योनः ॥ प्राणं त्वाऽमृत आदधाम्यन्नादमन्नाद्याय गोप्तारं गुप्त्यै इति । [इध्मस्य निधान इति ॥
सूत्रं बौधायनस्य ॥ तूष्णीमेवेध्मं निदध्यादिति शालीकिः ॥] [तस्य चेदादधानस्य पुरस्ता-
च्चन्द्रमा दृश्येत कथं तत्र कुर्यादिति । यः कर्मान्त आरब्धः स्यात्तं परिनिष्ठाप्य कर्मान्ते-
नोपरमेत् । श्वो भूते परिनिस्तिष्ठेदिति ।] अथोद्गातारमाह बृहद्वारवन्तीयं श्वैतमिति गाय
इति । सर्वाणि संप्रेष्यति । [सामानि चेन्न प्रत्यधीयीत योनीर्निगदेदपि वा व्याहृतीभिरपि
वा हिंकारेण ।] बृहति गीयमान आहवनीयमादधाति भूर्भुवः सुवरकंश्चक्षुस्तदसौ सूर्यस्तदयमग्निः
संप्रियः पशुभिर्भुवत् । यत्ते शुक्र शुक्रं वर्चः शुक्रा तनूः शुक्रं ज्योतिरजस्रं तेन मे दीदीह तेन त्वाऽऽदधेऽग्नि-
नाऽग्ने ब्रह्मणा अमीषां त्वा देवानां व्रतपते व्रतेनाऽऽदधामि इति । यथर्षि यथागोत्रम् । गायत्रेण
छन्दसा इति । उत्तरतो हिरण्यशल्कमुपास्यति स्वया तनुवा संभव इति । अथैतं राजतं
वृषलाय वाऽज्ञाताय वाऽतिप्रयच्छति । आर्तिमेवाऽतिप्रयच्छतीति ब्राह्मणम् । अथैनमुपतिष्ठते
आनशे व्यानशे सर्वमागुर्व्यानशे इति । अत्रैतावन्नी आदधाति सभ्यं चाऽऽवसथीयं च । [सभ्याव-
सथ्ययोः करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥ सभ्याव-
सथ्ययोर्विहरण इति ॥ आहवनीयादेवैनौ विहरेदिति बौधायनः ॥ ग्रामाग्नेरिति शालीकिः ॥
निर्मन्थ्यौ स्यातामित्यौपमन्यवः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवीपुत्रः सभायामेव सभ्यं व्यपदिशो-
दावसथ आहवनीयं पर्वणि जैनयोः स्थालीपाकौ श्रपयित्वा ब्रह्मणे जुहुयादिति ॥ एतदपि

न कुर्यादित्याजीगविः ॥] रथचक्रं प्रवर्तयति संततं गार्हपत्यादाऽऽहवनीयात् । [रथचक्रस्य करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो रथमेवैतं संयुक्तं प्राञ्चं प्रवर्तयेत् । तमृत्विग्भ्यो दद्यादिति ॥ एतदपि न कुर्यादित्याजीगविः ॥] [प्रणीतालोकेन रथचक्रं प्रवर्तयेत् ।]

४. सर्वोषधेन व्याहृतीभिरग्नीञ्छमयित्वा पञ्चपञ्च नानावृक्ष्याः समिधोऽभ्यज्याऽभिदधाति समिध्यमानः प्रथमो नु धर्मः इत्येताभिः पञ्चभिः आगुर्दा अग्ने हविषो जुषाणः इत्येतामपोदृत्य । [पञ्चपञ्च नानावृक्ष्याः समिधोऽभ्यज्याऽऽदधाति । कथमत्राऽऽनुपूर्व्यं भवति । अभ्वत्थश्चोदुम्बरश्च पर्णश्च शमी च विकङ्कतश्चेत्येतदत्राऽऽनुपूर्व्यं भवति ।] अथ प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखादुत्थ जघनेन गार्हपत्यं तिष्ठःस्तनूभि रूपतिष्ठते ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ सम्राट् चाऽभिभूश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विभूश्च परिभूश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ ये ते अग्ने शिवे तनुवौ प्रभूश्च च प्रभूतिश्च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् ॥ यास्ते अग्ने शिवास्तनुवस्ताभिस्त्वाऽऽदधे इति । सर्वाभिर्गार्हपत्यम् । सर्वाभिरन्वाहार्यपचनम् । सर्वाभिराहवनीयम् । अथ घोरास्तनूरनुदिशति यास्ते अग्ने घोरास्तनुवस्ताभिरमुं गच्छ इति । अत्र यं यजमानो द्वेष्टि तं मनसा ध्यायति । [तनूनामनुदेश इति ॥ प्रत्यधीत्याऽनुदिशेदिति बौधायनः । यास्ते अग्ने घोरास्तनुवस्ताभिरमुं गच्छेत्येव ब्रूयादिति शालीकिः ॥] अथाऽप उपस्पृश्य विराजक्रमैरुपतिष्ठते । नर्यं प्रजां मे गोपाय । अमृतत्वाय जीवसे । जातां जानिष्यमाणां च । अमृते सत्ये प्रतिष्ठिताम् इति गार्हपत्यम् । अथर्वं पितुं मे गोपाय । रसमन्नामिहाऽऽयुषे । अदब्धायोऽशीततनो । अविषं नः पितुं कृणु इत्यन्वाहार्यपचनम् । शंस्य पशून् मे गोपाय । द्विपादो ये चतुष्पदः । अष्टाशफाश्च य इहाऽग्ने । ये चैकशफा आशुगाः इत्याहवनीयम् । सप्रथं सभां मे गोपाय । ये च सभ्याः सभासदः । तानिन्द्रियावतः कुरु । सर्वमायुरुपासताम् इति सभ्यम् । अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय । यमृषयस्त्रयिविदा विदुः । ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम् इत्यावसथीयम् । [विराजक्रमेष्विति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नर्यं प्रजां मे गोपाय इत्येव ब्रूयादिति शालीकिः ॥] अथ गार्हपत्यं आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वत्याहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोति सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः इति । [कथमु खलु पूर्णाहुतिं जुहुयात् । अग्नये पृथिव्यै वायवेऽन्तरिक्षाय सूर्याय दिवे वरुणायाऽद्भ्यः स्वाहा इति जुहुयात् ।] पूर्णाहुतौ वरं ददाति । [पूर्णाहुत्यै हवन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ परिश्रित एव पूर्णाहुतिं जुहुयादिति शालीकिः ॥] अथैतान्यग्निहोत्रपात्राणि प्रक्षालितान्युत्तरेण गार्हपत्यमुपसादयति कूर्चं वा सूनायां वा स्थालीं सस्रुवां स्रुचमभिद्योतनं समिधमिति । [पूर्णाहुतौ तूष्णीमग्निहोत्र इति ॥ सूत्रं रायीतराणाम् ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः पूर्णाहुतिमेव जुहुयान्न तूष्णीमग्निहोत्रमिति ॥ तूष्णीमग्निहोत्रमेव जुहुयान्न पूर्णाहुतिमिति शालीकिः ॥] अथैतामग्निहोत्रां दक्षिणत उदीचीं स्थापयित्वा ब्राह्मणो दोग्धि । पूर्वो दुह्यात् । अपरौ दुह्यात् । न संमृशेत् । द्वयोर्दुह्यात् पशुकामस्येति । अधिश्रित्योत्तरमानयति । अथैतदग्निहोत्रमग्रेणाऽऽहवनीयं पर्याहृत्य पूर्वया द्वारा प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमुपसाद्य तस्मिन्नग्निहोत्रविधिं चेष्टित्वा

समिधमुपयत्य प्राङ् हरति । जघनेनाऽऽहवनीयमुपसादयति कूर्चैः । अत्रैतां समिधं मध्यत आहवनीयस्याऽभ्यादधाति तूष्णीम् । तस्यामादीतायां प्रतिमुखं द्विर्जुहोति उच्च माष्टर्येव च मार्ष्टि । उभयमवाप्नोतीति ब्राह्मणम् । द्विरङ्गुल्या प्राश्योदङ् पर्यावृत्य प्राचीनदण्डया सुचा भक्षयति । निर्णिज्य सुचं निष्टप्याऽद्भिः पूरयित्वोदगुद्दिशति । सप्तर्षीनेव प्रीणातीति ब्राह्मणम् । हुत्वोपसमिन्द्रे ब्रह्मवर्चसस्य समिद्धयै । अपो निनयत्यवभृथस्यैव रूपमकरिति ब्राह्मणम् । [अथेदं तूष्णीमग्निहोत्रमग्निसंस्कारार्थं दृष्टं भवति । तदाज्येनैव जुहुयात् । अवाचीनमवभृज्योर्ध्वमुन्मार्ष्टि । उमे एवैते सायंप्रातरग्निहोत्रे प्रतिजुह्वन्मन्येतौपवसथिकायै रात्रेः ।]

आधानाङ्गेष्वयः^१

बौधायनश्रौ० [२.१९-२१; २.७; २०.१८; २४.१६-१७; ३.१७]—

१. अथ परिकर्मिणं बर्हिर्लावं प्रहिणोति । आहृतं वा यजुषा करोति । अथ पृष्ठ्यां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वप्यन् दशहोतारं व्याचक्षीत । सामिधेनी-रनुवक्ष्यन् दशहोतारं व्याचक्षीत । [दशहोतुर्व्याख्यान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यत्र क्व च हविर्निर्वप्यन् स्यात् सामिधेनीर्वाऽनुवक्ष्यन् व्याचक्षीतैव तत्र दशहोतारमिति ॥ एष्वेवै-तदान्याधेयिकेषु तन्त्रेषु दृष्टं भवतीति शालीकिः ॥ अस्मिन्नेवैतदाग्नेयेऽष्टाकपाले दृष्टं भवती-त्यौपमन्यवः ॥] [सामिधेनीरनुवक्ष्यन् दशहोतारं व्याख्याय व्याहृतीकृत्वाऽथ हिंक्रुर्या-दथाऽनुब्रूयादेतदत्राऽऽनुपूर्व्यं भवति ।] श्रपयित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रच्चावाज्यभागौ । अथ हविषः अग्निमूर्धा..., भुवो... इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । [तन्त्रकरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः पञ्चदशसामिधेनीकाः स्युर्वार्त्रच्चावाज्यभागा-बुच्चैर्देवता इति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सप्तदशसामिधेनीकाः स्युर्वृधन्वन्तावाज्य-भागान्बुपां शुदेवता इति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यव आग्नेयेऽष्टाकपाले वार्त्रच्चावाज्यभागौ स्यातां वृधन्वन्तावैन्द्राग्रादित्यो रयिमन्तौ पुष्टिमन्तौ पवमानहविःषु वीतवन्तावन्वा-रम्मेष्ट्यामिति ॥ याजमानस्य करण इति ॥ अभीनामं याजमानं कुर्यादिति बौधायनः ॥ कुर्याद्यथावकाशं याजमानमिति शालीकिः ॥] अन्वाहार्यमासाद्याऽग्न्याधेयदक्षिणा ददाति । आ द्वादशभ्यो ददाति । कामं भूयसीर्ददाति । [दक्षिणानां दान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सर्वा एवेता इष्टीर्दक्षिणावतीः कुर्यात् । तिस्रस्तिस्र एकैकस्यां दद्यान्मिथुनावुत्तमायामिति ॥] [प्रसिद्धा अग्न्याधेयदक्षिणा ददाति । ताश्चेन्नाऽधिगच्छे-द्वासां स्येतावन्ति मन्थान् वौदनान् वेतावतो दद्यात् । तेनो हैवेतं काममवाप्नोतीति । अप्येकां गां दक्षिणां दद्यादिति पेङ्गलायनिब्राह्मणं भवति । न त्वेवाऽनाहिताग्निः स्यात् । विज्ञायते च देवानां वा एषोऽन्यतमो य आहिताग्निरिति । अथ यदस्याऽग्निमुद्धरति सहस्रं

तेन कामदुघोऽवरुद्धे । अथ यदग्निहोत्रं जुहोति सहस्रं तेनेति । अपरिमितमेवेदमुक्तं भवति ।] संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते व्रतम् ।

२. अथ तदानीमेव पृष्ठ्याः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपत्या-
दित्यं चरुम् । घृत एष चरुर्भवति । शृते नेदीयसि वाऽऽज्यमानयति । श्रपयित्वाऽऽसादयति ।
तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रच्चावाज्यभागौ । अथ हविषोः इन्द्राग्नी रोचना
दिवः..., अथद्वयम्... इत्यैन्द्राग्नस्य । अदितिर्न उरुष्यतु..., महीम् षु मातरम्... इत्यादि-
त्यस्य । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्याऽथैतं चरुं व्युद्धृत्य चत्वार आर्बेयाः प्राश्नन्ति ।
दिशामेव ज्योतिषि जुहोतीति ब्राह्मणम्^१ । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते
व्रतम् । [कथमु खल्वैन्द्राग्नदित्ययोरन्त इति । ऐन्द्राग्नदित्ययोरन्त उदश्वपदिकः सृजेत् ।
ततोऽन्यं दशहोत्रं मुद्धरेदिति । तन्त्रसमास एवैतदुपपद्यते नाऽन्यत्र प्रणीतस्याऽग्ने-
लौकिकत्वात् । यस्मिन् होत्रा हुतः स्यात् सोऽग्निः । कर्मान्तं तस्य धारणमिति । अपवृत्ते
कर्मणि लौकिकः संपद्यते ।]

३. अत्रैतद् द्वादशाहं व्रतं चरति । तस्यैतद् व्रतम् । नाऽनृतं वदति न माः समश्नाति ।
न स्त्रियमुपैति । नाऽस्य पल्पूलनेन वासः पल्पूलयन्ति । अमृन्मयपाय्यशूद्रोच्छिष्टी । स्वयं
पादौ प्रक्षालयते । न लवणमश्नाति । न कौशीधान्यमन्यत्र तिलेभ्यः । प्राङ्मुखाः स्वयं
समिध आहरमाणोऽग्नीनामन्ते संविशति । अजस्रा अस्यैते द्वादशाहमग्नयो भवन्ति ।
नाऽस्य ब्राह्मणोऽनाश्वान् गृहे वसति । अग्निहोत्रोच्छेषणव्रतो वा यजमानो भवति । भक्तमु
पत्न्या आहरन्ति । अथ द्वादशसु व्युष्टासु पृष्ठ्याः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽग्नये पवमानाय पुरो-
डाशमष्टाकपालं निर्वपति । श्रपयित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा
वार्त्रच्चावाज्यभागौ । अथ हविषः अग्न आयूषि पवसे..., अग्ने पवस्व... इति । त्रिष्टुभौ
संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्य त्रिंशन्मानं हिरण्यं ददाति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्र-
विष्णुकमा । विसृजते व्रतम् । अथ तदानीमेव पृष्ठ्याः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽग्नये पावकाय
पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपत्यग्नये शुचये । श्रपयित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः
पञ्च प्रयाजा वार्त्रच्चावाज्यभागौ । अथ हविषोः अग्ने पावकः..., स नः पावकः..., अग्निः
शुचिव्रततमः..., उदग्ने शुचयस्तव... इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्य त्रिंशन्मान-
चत्वारिंशन्माने हिरण्ये ददाति । [तन्त्रसमास इति ॥ नास्ति तन्त्रसमास आचार्ययोः ॥
अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यव आग्नेयोऽष्टाकपालोऽग्नये पवमानाय तत्प्रथमं तन्त्रं स्यात् ।
अथाऽग्नये पावकायाऽग्नये शुचये तद् द्वितीयम् । अथैन्द्राग्नश्चाऽऽदित्यश्च चरुन्तं परीयाता-
मिति ॥ दक्षिणानां दान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ आख्यातं बौधायनस्य ॥ अत्रो ह
स्माऽऽहौपमन्यवः सर्वा एवैता इष्टीर्दक्षिणावतीः कुर्याच्चतस्रश्चतस्र एकैकस्यां दद्यान्मिथु-
नाबुत्तमायामिति ॥] संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते व्रतम् । [प्रसिद्धानि
तनूहवीषि ।]

४. अथातोऽन्वारम्भस्यैव मीमांसा । अन्वारम्भं पौर्णमास्याः समानोपवसथं करोति । [अनन्वारब्धदर्शपूर्णमासस्य प्रायश्चित्तकरण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पुराऽपां प्रणयनाद्गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा चतुर्होतारं मनसाऽनुद्वुत्याऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सारस्वतौ होमौ जुहोति । पूर्णा पश्चात्... इत्यनुद्वुत्य अग्नीषोमौ... इति जुहोति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वा निवेशनी संगमनी वसूनाम्... इत्यनुद्वुत्य यत्ते देवा अदधुर्भागधेयम्... इति जुहोति । [अथ सारस्वतौ होमौ जुह्वद्वचैवर्चमुपसंदध्यात् । एवं पूर्णदर्वे । एवं वास्तोष्पतीये ।] [अन्वारम्भेष्ट्यामिति ॥ चतुर्होतारं सारस्वतौ होमावन्वारम्भेष्टिमित्येतदुपवसथे कुर्यादथेतरेदिष्ट्यहनि कुर्यादिति बौधायनः ॥ चतुर्होतारं सारस्वतौ होमावित्येतदुपवसथे कुर्यादथेतरेदिष्ट्यहनि कुर्यादिति शालीकिः ॥ चतुर्होतारमेवोपवसथे कुर्यादथेतरेदिष्ट्यहनि कुर्यादित्यौपमन्यवः ॥ सर्वमेवेतदिष्ट्यहनि कुर्यादित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] अथ पृष्ठ्याऽस्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽऽग्नावेष्णवमेकादशकपालं निर्वपति सरस्वत्यै चरुं सरस्वते द्वादशकपालमिति । श्रपयित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रं च्चावाज्यभागौ । अथ हविषाम्—अग्नाविष्णू..., अग्नाविष्णू..., प्र णो देवी..., आ नो दिवः..., पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं..., ये ते सरस्व ऊर्मयः... इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्य मिथुनौ गावौ ददाति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा । विसृजते व्रतम् । अथ पौर्णमासवैमृधाभ्यां यजते । संतिष्ठतेऽग्न्याधेयं संतिष्ठतेऽग्न्याधेयम् । [कथमु खल्वग्न्याधेये सोम इति । पूर्णाहुत्यन्तं कर्म कृत्वा शालामध्यवस्येत् । दीक्षणीयामग्नेयोऽष्टाकपालोऽनुवर्तेत । प्रायणीयामेन्द्राग्नश्चाऽऽदित्यश्च चरुः । आतिथ्यामग्नये पवमानाय पुरोडाशोऽष्टाकपालः । अग्नीषोमीयस्य पशुपुरोडाशमग्नये पावकायाऽग्नये शुचये । प्रातःसवनीयानन्वारम्भेष्टिः । अपि वा सर्वाण्येवाग्न्याधेयिकानि हवींषि परिनिष्ठाप्य शालामध्यवस्येत् । उदवसानीयामन्वारम्भेष्टिरिति ।] अथ वै भवति दर्शपूर्णमासावात्ममान एताभिर्व्याहृतीभिर्हवींष्यासादयेत् । यज्ञमुखं वै दर्शपूर्णमासौ ब्रह्मैता व्याहृतयः । यज्ञमुख एव ब्रह्म कुरुते । संवत्सरे पर्यागत एताभिरेवाऽऽसादयेत् । ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परिगृह्णातीति ब्राह्मणम् ।]

पुनराधेयं तृतीयाधानं च

बौधायनश्रौ० [३.१-३; २०.१९; २४.१८-१९; २५.३]—

१. [अथातः पुनराधेयं व्याख्यास्यामः ।] [अथेदं पुनराधेयम् । कियन्तु खलु पुनराधेयं भवतीति । अग्नीनाथाय पापीयानभूवमज्याशिषि पुत्रो मे मृत इत्येतसि स्त्वेवेतत्संवत्सरे दृष्टं भवति ।] अग्नीन् पुनराधास्यामानो भवति । तदाहुः कृतयजुः संभृतसंभारो भवति न संभृत्याः संभारा न यजुः कर्तव्यमिति । अथो खलु संभृत्या एव संभाराः कर्तव्यं यजुः पुनराधेयस्य समृद्धये इति । स उपकल्पयते पुनर्निष्कृतं रथं पुनरुत्स्यूतं वासः

पुनरुत्सृष्टमनइवाहं दर्भकुलायं तिस्रो दर्भमयीर्विसूर्मिकाः । प्रज्ञाता आग्न्याधेयिकाः संभाराः । सा याऽऽषाढ्याः पौर्णमास्याः पुरस्तादमावास्या भवति सा सकृत् संवत्सरस्य पुनर्वसुभ्यां संपद्यते तस्यामादधीतेति । तस्या उपवसथेऽरण्योरश्रीन् समारोह्योदवसाय मथित्वाऽश्रीन् विहृत्याऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति वैश्वानरं द्वादशकपालमग्निमुद्रासयिष्यन्ति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथ तदानीमेवाऽद्विरश्रीन् समुक्ष्य ब्रह्मौदनं श्रपयित्वोपवसति । [कस्मिन्नु खल्वेनत् काले समुत्थापयेदिति । सा याऽऽषाढ्याः पौर्णमास्याः पुरस्तादमावास्या भवति सा सकृत्संवत्सरस्य पुनर्वसुभ्यां संपद्यते तस्यामादधीतेति । तस्या उपवसथेऽरण्योरश्रीन् समारोह्योदवसाय मथित्वाऽश्रीन् विहृत्योद्रासन्येष्ट्येष्ट्वाऽश्रीन् समारोप्य गच्छेत् । पुनरेतदग्न्यगारं स संस्कारयेदन्यद्वा नवं कारयेत् । पुनरेतानि यज्ञपात्राणि संलेखयेदन्यानि वा नवानि कारयेत् । पुनर्निष्कृतो रथो दक्षिणेति पुनः स संस्कृत एवैव उक्तो भवति । पुनरुत्स्यूतं वास इति पुनः स संस्कृतमेवैतदुक्तं भवति । पुनरुत्सृष्टोऽनइवानित्यवशीर्णगव एवैव उक्तो भवति । अथेमान्युपां शुधर्माणि भवन्ति यथैतदग्न्याधेयं पुनराधेयं पितृयज्ञो दीक्षणीया^१ प्रायणीयातिथ्योपसदः^२ प्रातरनुवाकः^३ पत्नीसंयाजा^४ अवभृथ^५ उदयनीयोदवसानीया^६ चित्तिप्रणयनीयं^७ त्वाष्ट्रो यूपविरोहणीयोऽष्टापदी^८ गर्भवती च । सहकारिप्रत्यया भवन्ति ।] अथ प्रातराग्न्याधेयिकं कर्म ताथते । एतावदेव नाना । यदमुत्र मुञ्जकुलायं तदिह दर्भकुलायम् । योऽमुत्रेध्मः प्रणयनीयः स इह दर्भमयीर्विसूर्मिकाः । दर्भैर्गार्हपत्यमादधाति दर्भैरन्वाहार्यपचनं दर्भैराहवनीयम् । दर्भैर्गार्हपत्यमादधाति । आधाने सर्पराज्ञीर्ऋचोऽनुवर्तयति । भूमिर्भूम्ना द्यौर्वरिणा... इति चतस्रो गार्हपत्ये तिस्र आहवनीये । [सर्पराज्ञीष्विति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सर्पराज्ञिया ऋग्भिर्गार्हपत्यमादधातीति तं षड्भिराधाय सप्तम्योपतिष्ठेतेति ।] [यथो एतद्वैधायनस्य कल्पं वेदयन्ते सर्पराज्ञिया ऋग्भिर्गार्हपत्यमादधातीति । अपोद्धृत्य घर्मशिर एतस्य स्थाने सर्पराज्ञीरावपेत् । नित्येनोपस्थाय पौनराधेयिकेनोपतिष्ठेत् । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ।] समानं कर्मा रथचक्रात् । [पूर्णाहुत्यै करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] एतावदेव नाना । यदमुत्र तूष्णीमग्निहोत्रं तदिह सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः... इति जुहोति ।

२. योऽमुत्राऽऽग्नेयोऽष्टाकपालः स इहाऽऽग्नेयः पञ्चकपालः । [तन्त्रकरण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन उभयानि तन्त्राणि कारयेत् पौनराधेयिकानि चाऽऽग्न्याधेयिकानि च । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् । तस्याऽसमुदितेऽग्न्याधेयदक्षिणा दद्यात् । अथाऽऽग्नेयं पञ्चकपालम् । तस्याऽसमुदिते पुनराधेयदक्षिणा दद्यात् । अथैन्द्राग्नं

१. अस्मिन्नेव पुस्तके चातुर्मास्ययागप्रकरणं द्रष्टव्यम् । २. श्रौतकोशद्वितीयभागेऽग्निष्टोम-यागप्रकरणं द्रष्टव्यम् । ३. अस्मिन्नेव पुस्तके दर्शपूर्णमासेष्टिप्रकरणं द्रष्टव्यम् । ४. अस्मिन्नेव पुस्तके चातुर्मास्ययागप्रकरणं द्रष्टव्यम् । ५. चयनप्रकरणं द्रष्टव्यम् । ६. श्रौतकोशद्वितीयभागे पक्षिकादशिनी-प्रकरणं द्रष्टव्यम् ।

वाऽऽदित्यं च चरुम् । अथाऽऽग्निवारुणम् । पारे द्वादशाहस्य तन्व इति ॥] अथ पुनरूर्जा... सह रथ्या... इत्यमितः पुरोडाशमाहुती जुहोति । [पुरोडाशस्य परिहोम इति ॥ दैवतं परिजुहुयादिति बौधायनः ॥ सस्विष्टकृत्कमिति शालीकिः ॥] अन्वाहार्यमासाद्य पुनराधेय-दक्षिणा ददाति पुनर्निष्कृतं रथं पुनरुत्स्यूतं वासः पुनरुत्सृष्टमनइवाहम् । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते व्रतम् ॥ अथ तदानीमेव पृष्ठथाऽस्तीर्त्वाऽपः प्रणीया-ऽऽग्निवारुणमेकादशकपालमनुनिर्वपति । श्रपयित्वाऽऽसादयति । अन्वाहार्यमासाद्याऽ-नइवाहं ददाति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते व्रतम् । संतिष्ठते पुनरा-धेयम् । इति नृद्धिपुनराधेयम् । [ईजानस्य पुनरादधानस्य संनयेऽन्न संनयेऽदिति । संनयेदित्येक आहुः । अथ हैक आहुर्न संनयेदिति । शरीरसः स्पर्शी ह यज्ञो भवति यदैव पुनर्यजेताऽथ संनयेत् ।]

३. अथ वै भवति यः पराचीनं पुनराधेयादग्निमादधीत स एतान् होमाञ्जुहुया-दिति । तृतीयमादधानं^१ आग्नेयस्य पञ्चकपालस्य पुरस्तात् स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति लेकः सलेकः सुलेकस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु स्वाहा ॥ केतः सकेतः सुकेतस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु स्वाहा ॥ विवस्वाः अदितिर्देवजूतिस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु स्वाहा इति । संतिष्ठते तृतीयमादधानम् । अथाऽपहृताग्नेर्नष्टारणीकस्य च ब्रह्मोदनेनैव प्रतिपद्यते । सिद्धमग्न्याधेयम् । [अथाऽपहृताग्नेर्नष्टारणीकस्य चेति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः कामं नष्टेषु वाऽपहृतेषु वाऽग्निषु नाऽऽद्विधेताऽग्न्याधेयम् । आधानप्रभृति यजमान एवाऽग्नयो भवन्ति । तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो व्यान आहवनीयः । काम-मुपाचरोह्य जुहुयादिति ॥] [अथेदं तृतीयाधेयम् । कतरन्तु खत्विदमुपनिश्रयतीत्यग्न्याधेयं वा पुनराधेयं वेति । अग्न्याधेयमित्येव ब्रूयात् । अथाऽपहृताग्नेर्नष्टारणीकस्य च ब्रह्मोदनेनैव प्रतिपद्यते । सिद्धमग्न्याधेयम् ।] [सर्वमेवाऽग्न्याधेयच्छन्दो याजमानमग्न्याधेये ।]

पुनराधेयहौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.२-३, २०.१९]—

२. तस्य^२ प्रयाजेषु चतस्रो विभक्तीर्दधाति अग्न आयाहि वीतये समिधो अग्न आज्यस्य वियन्तु । अग्निं दूतं वृणीमहे तनूनपादम् आज्यस्य वेतु । अग्निनाऽग्निः समिधये इडो अग्न आज्यस्य वियन्तु । अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् बर्हिःरग्न आज्यस्य वेतु इति । स्वयं संपन्न उत्तमः प्रयाजः । [विभक्तीनां धान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सर्वाः सर्वामृच-मुक्त्वा यजेतेति ॥ आग्नेयीर्द्व्यक्षरा विभक्तीर्दध्यादित्यौपमन्यवः ॥] अथाऽत आज्यभाग-योरेव मीमांसा । वार्त्रघ्नावाज्यभागौ स्यातामित्येके । वृधन्वन्तावाज्यभागौ स्याता-

१. एवं केषुचित् लिखितपुस्तकेषु । 'तृतीय आधान' इति मुद्रितपाठः । २. आग्नेयस्य पञ्चकपालस्य ।

मित्येके । अग्निं स्तोमेन बोधय..., त्वं नः सोम... इत्येतौ स्यातामित्येके । अग्न आयुःपि पवस..., अग्ने पवस्व... इत्येतौ स्यातामित्येके । यत्पवमानं तत्सोमरूपम् । पङ्क्त्यौ हविषः अग्ने तमद्य..., अथा ह्यग्न... इति । [शताक्षरा भवन्तीति । अक्षरपङ्क्त्य एताश्चतस्र एकैका पञ्चविंशत्यक्षरा । तच्छतम् ।] अग्निं प्रति स्विष्टकृतं निराह आभिष्टे अद्य..., एभिर्नो अकैः... इति संयाज्ये । [स्विष्टकृतो निर्वचन इति ॥ स्वे स्थाने निर्ब्रूयादिति बोधायनः ॥ स्वे स्थाने निरुच्य कामं तत ऊर्ध्वं निर्ब्रूयादिति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवः पञ्चैतानि स्विष्टकृतस्थानानि भवन्तीति । तेषु सर्वेषु निर्ब्रूयादिति ॥] तस्याऽनूयाजेषु^१ विभक्ती दधाति अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्यं इषं वुरीतावसे । देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ अग्नेः स्तोमं मनामहे सिधमद्य दिविस्पृशः । देवस्य ब्रविणस्यवः । देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वेतु इति । स्वयं संपन्न उत्तमोऽनूयाजः । तस्याः^२ पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्वन्नावाज्यभागौ । अथ हविषः त्वं नो अग्ने..., स त्वं नो अग्ने... इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये ॥

अग्न्याधेयप्रायश्चित्तानि

सर्वमौपासनमभिप्रव्रजेयुः

बौ. २९.१२— अथ यद्यग्न्याधेये सर्वमौपासनमभिप्रव्रजेयुः पुनस्त्वादित्या ब्र्वा वसवः समिन्धताम् इत्येतया सुवाहुतिं हुत्वा लौकिकेऽग्नौ गृह्याणि कर्माणि प्रयुञ्जीत यद्यर्धमवशिष्येत ।

ब्राह्मौदनिके पाकादूर्ध्वमुद्राते

बौ. २९.१२— तथोद्गाते पाकादूर्ध्वं जयादींश्च जुहुयात् ।

गार्हपत्यमनाहितमादित्योऽभ्युदियात्

बौ. २९.१२— अथ यदि गार्हपत्यमनाहितमादित्योऽभ्युदियादादित आरभ्याऽन्यस्मिन् काल आदध्यात् ।

मध्ये चेदग्निविनाशः

बौ. २९.१२— मध्ये चेदग्निविनाश एतदेव (आदित आरभ्याऽन्यस्मिन् काल आदध्यात्) ।

पत्नीमृत्त्वियं विन्देत

बौ. २९.१२— अथ यदि पत्नीमृत्त्वियं विन्देत प्राग्दक्षिणाया एतदेव (आदित आरभ्याऽन्यस्मिन् काल आदध्यात्) । अत ऊर्ध्वमपरोधः ।

अभिहोत्रहोमः

ऋसं१—

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
 अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥१०.५३.६
 ता अस्य स्रद्धदोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
 जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥८.६९.३
 अग्न आयुंषि पवस.... ॥
 अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥
 अग्ने पवस्व स्वपा.... ॥९.६६.१९-२१

अग्न्युपस्थानम्

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाऽग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१.७४.१
 अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥८.७५.४
 उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्वै ।
 उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥६.६०.१३
 अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
 तं जानन्नग्न आ सीदाऽथा नो वर्धया गिरः ॥३.२९.१०
 अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
 यमग्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥४.७.१
 अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अहयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥९.५४.१
 उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥
 राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥
 स नः पितेव सूनवेऽग्ने स्रूपायनो भव ।
 सचस्वा नः स्वस्तये ॥१.१.७-९
 अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूध्यः ॥
 वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥५.२४.१-२
 सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥

१. आश्वलायनशाङ्खायनसूत्रानुसारेण अभिहोत्रहोमे विनियुक्ता ऋद्धमन्त्रा अत्र संगृह्यन्ते ।
 विनियोगस्तु सूत्रयोर्दृष्टव्यः ।

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषवतु यस्तुरः ॥
 मा नः शंसो अरुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥१.१८.१-३
 महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्याऽर्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥
 नहि तेषाममा चन नाऽध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥
 यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।
 ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥१०.१८५.१-३
 तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३.६२.१०
 कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्वसि दाशुषे ।
 उपोषेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८.५१.७
 परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥४.९.८

तैब्रा [२.१.११; ५; २; ९]—

० ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि० सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि० सजूर्देवैः
 सायंयावभिः० सजूर्देवैः प्रातर्यावभिः० स्वाहा० अग्निज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः
 स्वाहा० सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा० ॥

अग्न्युपस्थानम्

तैसं [१.५.५-६]—

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाऽग्रये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥
 अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अहयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥
 अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतां सि जिन्वति ॥
 अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेण्वीज्यः ।
 यमप्रवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभुवं विशेषे ॥
 उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्वै ।
 उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥
 अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
 तं जानन्नग्र आ रोहाऽथा नो वर्धया रयिम् ॥
 अग्र आयूषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
 अग्रे पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत्पोषं रयिं मयि ॥
 अग्रे पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाः इहाऽऽवह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥
 अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुचीं रोचत आहुतः ॥
 उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीः प्यर्चयः ॥
 आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि तनूपा अग्नेऽसि
 तनुवं मे पाद्वग्ने यन्मे तनुवा ऊनं तन्म आ पृण ॥ चित्रावसो स्वस्ति
 ते पारमशीय ॥ इन्धानास्त्वा शतं हिमा द्युमन्तः समिधीमहि वयस्वन्तो
 वयस्कृतं यशस्वन्तो यशस्कृतं सुवीरासो अदाम्यम् । अग्ने सपत्नदम्भनं
 वर्षिष्ठे अधि नाके ॥ सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसाऽगथाः समृषीणाः स्तुतेन
 सं प्रियेण धाम्ना । त्वमग्ने सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा
 प्रजया सृज ॥
 सं पश्यामि प्रजा अहमिडप्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥
 अम्भः स्थाम्भो वो भक्षीय महः स्थ महो वो भक्षीय सहः स्थ सहो वो
 भक्षीयोजः स्थोजं वो भक्षीय ॥ रेवती रमध्वमस्मिँल्लोकेऽस्मिन् गोष्ठेऽस्मिन्
 क्षयेऽस्मिन् योनाविहैव स्तेतो माऽप गात बह्वीर्मे भूयास्त ॥ सः हिताऽसि
 विश्वरूपीरा मोर्जा विशाऽऽ गौपत्येनाऽऽ रायस्पोषेण सहस्रपोषं वः पुण्यासं
 मयि वो रायः श्रयन्ताम् ॥
 उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे....॥ राजन्तमध्वराणां....॥ स नः पितेव सूनवे....॥
 अग्ने त्वं नो अन्तमः । उत त्राता शिवो भव बरूध्यः ॥
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः । सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥
 वसुरग्निर्वसुश्रवाः । अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥
 ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण
 मा पश्यतेडाः स्थ मधुकृतः स्योना माऽऽविशतेरा मदः । सहस्रपोषं वः
 पुण्यासं मयि वो रायः श्रयन्ताम् ॥
 तत् सवितुर्वरेण्यं.... ॥
 सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औंशिजम् ॥
 कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सशसि दाशुषे ।
 उपोपेन्तु मधवन् भूय इन्तु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
 परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
 धृषद्वर्णं दिवेदिवे भेत्तारं भङ्गुरावतः ॥
 अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिर्मया त्वं

गृहपतिना भूयाः शतं हिमास्तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीं
तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीम् ॥

प्रवासोपस्थानम्

तैसं [१.५.१०]—

मम नाम प्रथमं जातवेदः पिता माता च दधतुर्यदग्रे ।
तत्त्वं बिभृहि पुनरा मदैतोस्तवाऽहं नाम बिभराण्यग्रे ॥
मम नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानौ ये चरावः ।
आयुषे त्वं जीवसे वयं यथायथं वि परि दधावहै पुनस्ते ॥
नमोऽग्नयेऽप्रतिविद्धाय नमोऽनाष्टृष्टाय नमः सम्राजे ।
अषाढोऽग्निर्बृहद्वया विश्वजित् सहन्त्यः श्रेष्ठो गन्धर्वः ॥
त्वत्पितारो अग्रे देवास्त्वामाहुतयस्त्वद्विवाचनाः ।
सं मामायुषा सं गौपत्येन सुहिते मा धाः ॥
अयमग्निः श्रेष्ठतमोऽयं भगवत्तमोऽयं सहस्रसातमः । अस्मा अस्तु सुवीर्यम् ॥
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
या इष्टा उषसो निमृचश्च ताः सं दधामि हविषा घृतेन ॥

तैसं [३.४.१०]—

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
वास्तोष्पते शग्मया सः सदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
आ वः क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

अग्निहोत्रहोमविधिः

तैत्रा [२.१]—

अङ्गिरसो वै सत्रमासत । तेषां पृश्निर्धर्मधुगासीत् । सर्जीषेणाऽजीवत् । तेऽब्रुवन् ।
कस्मै नु सत्रमास्महे । येऽस्या ओषधीर्न जनयाम इति । ते दिवो वृष्टिमसृजन्त । यावन्तः
स्तोका अवापद्यन्त । तावतीरोषधयोऽजायन्त । ता जाताः पितरो विषेणाऽलिम्पन् । तासां
जग्ध्वा रुप्यन्यैत् । तेऽब्रुवन् । क इदमित्यमकरिति । वयं भागधेयमिच्छमाना इति पितरोऽ-
ब्रुवन् । किं वो भागधेयमिति । अग्निहोत्र एव नोऽप्यस्त्वित्यब्रुवन् । तेभ्य एतद्भागधेयं प्रायच्छन् ।
यद्भुत्वा निमार्ष्टि । ततो वै त ओषधीरस्वदयन् । य एवं वेद । स्वदन्तेऽस्मा ओषधयः । ते

वत्समुपावासृजन् । इदं नो हव्यं प्रदापयेति । सोऽब्रवीद्वरं वृणै । दश मा रात्रीर्जातं न दोहन् । आसंगवं मात्रा सह चराणीति । तस्माद्वत्सं जातं दश रात्रीर्न दुहन्ति । आसंगवं मात्रा सह चरति । वारे वृत्तं ह्यस्य । तस्माद्वत्सं सः सृष्टधयं रुद्रो घातुकः । अति हि संधां धयति ।

प्रजापतिरग्निमसृजत । तं प्रजा अन्वसृज्यन्त । तमभाग उपास्त । सोऽस्य प्रजा-
भिरपाक्रामत् । तमवरुरुत्समानोऽन्वैत् । तमवरुधन्नाऽशक्नोत् । स तपोऽतप्यत । सोऽग्निरुपा-
मताऽतापि वै स्य प्रजापतिरिति । स रराटादुदमृष्ट । तद् घृतमभवत् । तस्माद्यस्य दक्षिणतः केशा
उन्मृष्टाः । तां ज्येष्ठलक्ष्मीं प्राजापत्येत्याहुः । यद्रराटादुदमृष्ट । तस्माद्राटे केशा न सन्ति ।
तदग्नौ प्रागृह्णात् । तद् व्यचिकित्सत् । जुहवानीऽमाहौषाऽमिति । तद्विचिकित्सयै जन्म ।
य एवं विद्वान् विचिकित्सति । वसीय एव चेतयते । तं वागभ्यवदज्जुहुधीति । सोऽब्रवीत् ।
कस्त्वमसीति । स्वैव ते वागित्यब्रवीत् । सोऽजुहोत् स्वाहेति । तत् स्वाहाकारस्य जन्म । य
एवः स्वाहाकारस्य जन्म वेद । करोति स्वाहाकारेण वीर्यम् । यस्यैवं विदुषः स्वाहाकारेण
जुहति । भोगायैवाऽस्य हुतं भवति । तस्या आहुत्यै पुरुषमसृजत । द्वितीयमजुहोत् । सोऽश्वम-
सृजत । तृतीयमजुहोत् । स गामसृजत । चतुर्थमजुहोत् । सोऽविमसृजत । पञ्चममजुहोत् ।
सोऽजामसृजत । सोऽग्निरबिभेत् । आहुतीभिर्वै माऽऽप्नोतीति । स प्रजापतिं पुनः प्राविशत् । तं
प्रजापतिरब्रवीत् । जायस्वेति । सोऽब्रवीत् । किं भागधेयमभिजनिष्य इति । तुभ्यमेवेदं हूयाता
इत्यब्रवीत् । स एतद्भागधेयमभ्यजायत । यदग्निहोत्रम् । तस्मादग्निहोत्रमुच्यते ।

तद्व्यमानमादित्योऽब्रवीत् । मा हौषीः । उभयेर्वै नावेतदिति । सोऽग्निरब्रवीत् ।
कथं नौ होष्यन्तीति । सायमेव तुभ्यं जुहवन् । प्रातर्मह्यमित्यब्रवीत् । तस्मादग्नये सायं हूयते
सूर्याय प्रातः० उदिते सूर्ये प्रातर्जुहोति । तथाऽग्नये सायं हूयते । सूर्याय प्रातः० प्रजापति-
रकामयत प्रजायेयेति । स एतदग्निहोत्रं मिथुनमपश्यत् । तदुदिते सूर्येऽजुहोत् । यजुषाऽन्यत् ।
तूष्णीमन्यत् । ततो वै स प्राजायत । यस्यैवं विदुष उदिते सूर्येऽग्निहोत्रं जुहति । प्रैव जायते ।
अथो यथा दिवा प्रजानन्नेति । तादृगेव तत् । अथो खल्वाहुः । यस्य वै द्वौ पुण्यौ गृहे
वसतः । यस्तयोरन्यः राधयत्यन्यं न । उभौ वा वसतावृच्छतीति । अग्निं वावाऽऽदित्यः सायं
प्रविशति । तस्मादग्निर्दूरान्तं ददृशे । उभे हि तेजसी संपद्येते । उद्यन्तं वावाऽऽदित्यमग्निरनु-
समारोहति । तस्माद्भूम एवाऽग्नेर्दिवा ददृशे । यदग्नये सायं जुहुयात् । आ सूर्याय वृश्चेत ।
यत्सूर्याय प्रातर्जुहुयात् । आऽग्नये वृश्चेत । देवताभ्यः समदं दध्यात् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिः
सूर्यः स्वाहेत्येव सायं होतव्यम् । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति प्रातः । तथोभाम्याः
सायं हूयते । उभाम्यां प्रातः । न देवताभ्यः समदं दधाति० तूष्णीमुत्तरामाहुतिं जुहोति ।
मिथुनत्वाय प्रजात्यै ।

यदुदिते सूर्ये प्रातर्जुहुयात् । यथाऽतिथये प्रदुताय शून्यायाऽऽवसथायाऽऽहार्यः

हरन्ति । तादृगेव तत् । क्वाऽह ततस्तद्भवतीत्याहुः । यत्स न वेद । यस्मै तद्भरन्तीति । तस्माद्यदौषसं जुहोति । तदेव संप्रति० ॥० दक्षिणत उपसृजति० प्राचीमावर्तयति० उदीची-
मावृत्य दोग्धि० पूर्वौ दुह्याज्येष्ठस्य ज्यैष्ठिनेयस्य । यो वा गतश्रीः स्यात् । अपरौ दुह्यात्
कनिष्ठस्य कानिष्ठिनेयस्य । यो वा बुभूषेत् । न संमृशति० ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति सायं
परिषिञ्चति । सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामीति प्रातः० उदीचोऽङ्गारानिरूह्याऽधिश्नयति पत्नियै
गोपीथाय । व्यन्तान् करोति० यदग्निहोत्रम् । प्रतिषिञ्चेत् पशुकामस्य० न प्रतिषिञ्चेत् ब्रह्मवर्चस-
कामस्य० अथो खलु । प्रतिषिञ्च्यमेव । यत्प्रतिषिञ्चति । तत्पशव्यम् । यज्जुहोति । तद्ब्रह्मवर्चसि ।
उभयमेवाऽकः० अभिद्योतयति । अभ्येवैनद्वारयति० पर्यग्नि करोति । रक्षसामपहत्यै । त्रिः पर्यग्नि
करोति० उदीचीनमुद्रासयति । एषा वै देवमनुष्याणां शान्ता दिक्० वर्त्म करोति । यज्ञस्य
संतत्यै । निष्ठपति । उपैव तत् स्तृणाति । चतुरुन्नयति० सर्वान् पूर्णानुन्नयति० अनूच उन्नयति०
संमृशति व्यावृत्यै । नाऽहोष्यन्नुपसादयेत् । यदहोष्यन्नुपसादयेत् । यथाऽन्यस्मा उपनिधाय ।
अन्यस्मै प्रयच्छति । तादृगेव तत् । आऽस्मै वृश्च्येत । यदेव गार्हपत्येऽधिश्नयति । तेन गार्हपत्यं
प्रीणाति० समिधमादधाति० अथो अग्निहोत्रमेवेध्मवत्करोति । आहुतीनां प्रतिष्ठियै । ब्रह्म-
वादिनो वदन्ति । यदेकां समिधमाधाय द्वे आहुती जुहोति । अथ कस्यां समिधि द्वितीया-
माहुतिं जुहोतीति० एकां समिधमाधाय । यजुषाऽन्यामाहुतिं जुहोति । उमे एव समिद्धी
आहुती जुहोति । नाऽस्मै भ्रातृव्यं जनयति । आदीप्तायां जुहोति० चतुरुन्नयति । द्विर्जुहोति०
यं कामयेत वसीयान् स्यादिति । कनीयस्तस्य पूर्वं हुत्वा । उत्तरं भूयो जुहुयात्० हुत्वोपसाद-
यत्यजामित्वाय । अथो व्यावृत्यै । गार्हपत्यं प्रतीक्षते० एष वा अग्निहोत्रस्य स्थाणुः । यत्पूर्वाऽऽ-
हुतिः । तां यदुत्तरयाऽभिजुहुयात् । यज्ञस्थाणुमृच्छेत् । अतिहाय पूर्वामाहुतिं जुहोति । यज्ञस्थाणु-
मेव परिवृणक्ति० अवाचीनं सायमुपमार्ष्टि० ऊर्ध्वं प्रातः० ब्रह्मवादिनो वदन्ति । चतुरुन्नयति ।
द्विर्जुहोति । अथ क्व द्वे आहुती भवत इति । अग्नौ वैश्वानर इति ब्रूयात् । एष वा अग्निवैश्वानरः ।
यद्वाह्यणः । हुत्वा द्विः प्राश्नाति । अग्नावेव वैश्वानरे द्वे आहुती जुहोति । द्विर्जुहोति ।
द्विर्निमार्ष्टि । द्विः प्राश्नाति० उदङ् पर्यावृत्याऽऽचामति० निर्णेनेक्ति शुद्धयै । निष्ठपति स्वगा-
कृत्यै । उद्दिशति । सप्तर्षीनेव प्रीणाति । दक्षिणा पर्यावर्तते० हुत्वोपसमिन्वे० न बर्हिर्नु-
प्रहरेत्० अपो निनयति । अवभृथस्यैव रूपमकः० ॥

द्वयोः पयसा जुहुयात् पशुकामस्य० अधिश्रित्योत्तरमानयति० आज्येन जुहुयात्तेज-
स्कामस्य० पयसा पशुकामस्य० दध्नेन्द्रियकामस्य० यवाग्वा ग्रामकामस्य० चतुरुन्नयति०
उपरीव हरति० द्विर्जुहोति० सायंयावानश्च वै देवाः प्रातर्यावाणश्चाऽग्निहोत्रिणो गृहमागच्छन्ति ।
तान् यज्ञ तर्पयेत् । प्रजयाऽस्य पशुभिर्वितिष्ठेरन् । यत्तर्पयेत् । तृप्ता एनं प्रजया पशुभिस्तर्पयेयुः ।
सज्जैः सायंयावभिरिति सायं संमृशति । सज्जैः प्रातर्यावभिरिति प्रातः० तस्माद्यद्गार्ह-

पत्येऽधिश्चित्याऽऽहवनीयमभ्युद्भवति । वायुमेव तेन प्रीणाति० तस्माद्यस्यैवं विदुषः । उतैकाह-
मुत ब्रह्मं न जुहति । हुतमेवाऽस्य भवति० रौद्रं गवि । वायव्यमुपसृष्टम् । आश्विनं दुह्यमानम् ।
सौम्यं दुग्धम् । वारुणमधिश्चितम् । वैश्वदेवा भिन्दवः । पौष्णमुदन्तम् । सारस्वतं विष्यन्द-
मानम् । मैत्र५ शरः । धातुरुद्धासितम् । बृहस्पतेरुन्नीतम् । सवितुः प्रक्रान्तम् । द्यावा-
पृथिव्य५ ह्रियमाणम् । ऐन्द्राग्रमुपसन्नम् । अग्नेः पूर्वाऽऽहुतिः । प्रजापतेरुत्तरा । ऐन्द्र५ हुतम्० ॥

यदग्निमुद्धरति । वसवस्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति । वसुष्वेवाऽस्या-
ऽग्निहोत्र५ हुतं भवति । निहितो धूपायञ्छेते । रुद्रास्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति ।
रुद्रेष्वेवाऽस्याऽग्निहोत्र५ हुतं भवति । प्रथममिधमर्चिरालभते । आदित्यास्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य
तथाविधे जुहति । आदित्येष्वेवाऽस्याऽग्निहोत्र५ हुतं भवति । सर्व एव सर्वश इध्म आदीप्तो भवति ।
विश्वे देवास्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति विश्वेष्वेवाऽस्य देवेष्वग्निहोत्र५ हुतं भवति ।
नितरामर्चिरुपावैति लोहिनीकेव भवति । इन्द्रस्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति
इन्द्र एवाऽस्याऽग्निहोत्र५ हुतं भवति । अङ्गारा भवन्ति । तेभ्योऽङ्गारेभ्योऽर्चिरुदेति । प्रजापति-
स्तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति । प्रजापतावेवाऽस्याऽग्निहोत्र५ हुतं भवति । शरोऽङ्गारा
अध्यूहन्ते । ब्रह्म तर्ह्यग्निः । तस्मिन् यस्य तथाविधे जुहति । ब्रह्मणेवाऽस्याऽग्निहोत्र५ हुतं
भवति । वसुषु रुद्रेष्वदित्येषु विश्वेषु देवेषु । इन्द्रे प्रजापतौ ब्रह्मन् । अपरिवर्गमेवाऽस्यैतासु
देवतासु हुतं भवति । यस्यैवं विदुषोऽग्निहोत्रं जुहति । य उ चैनदेवं वेद ।

अग्न्युपस्थानम्

तैसं [१.५.७; ९]—

उपप्रयन्तो अध्वरमित्याह० षड्भिरुप तिष्ठते० षड्भिरुत्तराभिरुप तिष्ठते । द्वादश
सं पचन्ते० संवत्सरस्य परस्तादाग्निपावमानीभिरुप तिष्ठते० इन्धानास्त्वा शत५ हिमा इत्याह०
यदेतया समिवमादधाति० स५ हितासि विश्वरूपीरिति वत्समभि मृशति० प्र वा एषोऽस्मा-
ल्लोकाच्यवते य आहवनीयमुप तिष्ठते । गार्हपत्यमुप तिष्ठतेऽस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति । अथो
गार्हपत्यायैव नि हुते । गायत्रीभिरुप तिष्ठते० तृचमन्वाह० द्विपदाभिर्गार्हपत्यमुप तिष्ठते० पुत्रस्य
नाम गृह्णाति० तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रोऽजातः स्यात् ।
तेजस्येवाऽस्य ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जायते । तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य
पुत्रो जातः स्यात्० अग्निहोत्रं जुहोति० यत्सायं जुहोति । रेत एव तत्सिञ्चति । प्रैव
प्रातस्तनेन जनयति० बह्वीभिरुप तिष्ठते० नक्तमुप तिष्ठते न प्रातः० उपस्थेयोऽग्नी३ नोपस्थेया३
इत्याहुः० अथ को देवानहरहर्याचयिष्यतीति तस्मान्नोपस्थेयः । अथो खल्वाहुराशिषे वै कं
यजमानो यजत इत्येषा खलु वा आहिताग्नेराशीर्यदग्निमुप तिष्ठते तस्मादुपस्थेयः० यो वा अग्निं

प्रत्यङ्ङुप तिष्ठते प्रत्येनमोषति यः पराङ् विष्वङ् प्रजया पशुभिरेति । कवातिर्यङ्ङिबोप तिष्ठेत ।
नैनं प्रत्योषति न विष्वङ् प्रजया पशुभिरेति० ॥

प्रवासोपस्थानम्

तैसं [३.४.१०]—

तस्माद्यत्र दशोषित्वा प्रयाति तद्यज्ञवास्तु । अवास्त्वेव तद्यत्ततोऽर्वाचीनम् । रुद्रः
खलु वै वास्तोष्पतिः । यदहुत्वा वास्तोष्पतीयं प्रयायाद्भुद्र एनं भूत्वाऽग्निरनूत्याय हन्यात् ।
वास्तोष्पतीयं जुहोति । भागधेयेनैवैनं शमयति । नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानः० दक्षिणो युक्तो
भवति सव्योऽयुक्तोऽथ वास्तोष्पतीयं जुहोति० यदेकया जुहुयाद्विहोमं कुर्यात् । पुरोनुवाक्या-
मनूच्य याज्यया जुहोति सदेवत्वाय । यद्धुत आदव्याद्भुद्रं गृहानन्वारोहयेत् । यदवक्ष्णान्य-
संप्रक्ष्णाय प्रयायाद्यथा यज्ञवेशसं वाऽऽदहनं वा तादृगेव तत् । अयं ते योनिर्ऋत्विय इत्यरण्योः
समारोहयति० अथो खत्वाहुर्यदरण्योः समारूढो नश्येदुदस्याऽग्निः सीदेत्पुनराधेयः स्यादिति ।
या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहेत्यात्मन्समारोहयते ॥

मैसं [१.८.१-७]—

स्वाहा० उद्भवः स्थ । उदहं प्रजया पशुभिर्भूयासम्० आयुर्म यच्छ०
वर्चो मे यच्छ० भूर्भुवः स्वः० अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा० अनामो मृड
धूर्ते नमस्ते अस्तु रुद्र मृड० पूषासि० अग्ने गृहपते परिषद्य जुषस्व स्वाहा०॥

अग्न्युपस्थानम्

मैसं [१.५.१-४]—

उपप्रयन्तो अघ्वरं.... ॥ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ उभा वामिन्द्राग्नी
आहुवध्वै.... ॥ अयमिह प्रथमो धायि धातुभिः.... ॥ अस्य प्रत्नामनु
द्युतं.... ॥ अयं ते योनिर्ऋत्वियो....ततो नो वर्धया रयिम् ॥ दधिक्राव्णो
अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्र ना आयूँषि
तारिषत् ॥ अग्रा आयूँषि पवसा.... ॥ अग्निर्ऋषिः पवमानः.... ॥
अग्ने पवस्व स्वपा.... ॥ अग्ने पावक रोचिषा.... ॥ स नः पावक
दीदिवोऽग्ने.... ॥ अग्निः शुचिव्रततमः.... ॥ उदग्ने शुचयस्तव.... ॥

अग्नीषोमा इमँ सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥

अग्निस्तिग्मस्तिग्मतेजाः प्रति रक्षो दहतु सहतामरातिम् ।

अपाऽवशँसं नुदताम् ॥

अग्ने सपत्नसाह सपत्नान् मे सहस्व । मा मा तितीर्षन् तारीत् ॥ त्वमग्ने
 सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा सृज ॥ सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषा-
 ऽगथाः । समृषीणाँ स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सँ वर्चसा सं
 प्रजया सँ रायस्पोषेण ग्मीय ॥ इन्धानास्त्वा.... । वयस्कृतँ सहस्वन्तः
 सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनँ सुवीरासो अदाभ्यम् ॥ अग्नेः समिदस्य-
 भिशस्त्या मा पाहि ॥ सोमस्य समिदसि परस्पा म एधि ॥ यमस्य
 समिदसि मृत्योर्मा पाहि ॥ आयुर्धा अग्नेऽस्यायुर्मे धेहि । वर्चोधा अग्नेऽसि
 वर्चो मे धेहि । चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि । श्रोत्रपा अग्नेऽसि श्रोत्रं मे
 पाहि । तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । यन्मे अग्र ऊनं तन्वस्तन्मा आपृण ॥
 अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
 अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रतिशोच यो अस्मान्.... ॥ अग्ने यत्ते
 अर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो अस्मान्.... ॥ अग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रतिहर यो
 अस्मान्.... ॥ अग्ने यत्ते तेजस्तेन तं प्रतितितिग्धि यो अस्मान्.... ॥
 अग्ने रुचां पते नमस्ते रुचे मयि रुचं धाः ॥ चित्रावसो स्वस्ति ते
 पारमशीयाऽर्वाग्वसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ अम्भः स्थाम्भो वो भक्षीय
 महः स्थ महो वो भक्षीयोर्जः स्थोर्ज वो भक्षीय रायस्पोषः स्थ रायस्पोषँ
 वो भक्षीय ॥ रेवती रमध्वमस्मिन् योना अस्मिन् गोष्ठे । अयँ वो बन्धुरितो
 माऽपगात बह्वीर्भवत मा मा हासिष्ट ॥ सँहिताऽसि विश्वरूपा मोर्जा विशा
 गौपत्येना प्रजया रायस्पोषेण ॥ मयि वो रायः श्रयन्ताँ सहस्रपोषँ
 वोऽशीय ॥ उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे.... ॥ राजन्तमध्वराणाँ.... ॥ स नः
 पितेव सूनवे.... ॥ अग्ने त्वं नो अन्तम.... ॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः.... ॥
 वसुरग्निर्वसुश्रवा.... ॥

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या नो अघायतः समस्मात् ॥

अभ्यस्ताँ विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।

बृहस्पतिः सवितेन्द्रस्तदाह पूषा ना आधात् सुकृतस्य लोके ॥

ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत । रय्या वः पश्यामि रय्या मा पश्यत ॥

संपश्यामि प्रजा अहमिदप्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥

इडाः स्थ मधुकृतः स्योना माऽऽविशतेरंमदः । सहस्रपोषँ वोऽशीय ॥

भुवनमसि सहस्रपोषपुषि तस्य नो रास्व तस्य ते भक्तिवानो भूयास्म ।

इडाऽसि व्रतभृत् त्वयि व्रतँ व्रतभृदसि ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्याऽर्थेभ्यः । दुराध्वर्षं वरुणस्य ॥
 नहि तेषाममा सतां नाऽध्वसु वारणेषु च । ईशे रिपुर्घशंसः ॥
 ते हि पुत्रासो अदितेऽच्छुर्दिर्यच्छन्त्यजस्रम् । प्र दाशुषे वार्याणि ॥
 सोमानं स्वरणं....औशिजः ॥

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यः शिवः ॥
 मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसि । द्युमं चित्रश्रवस्तमम् ॥
 कदा च न स्तरीरसि.... ॥ कदा च न प्रयुछसि.... ॥
 परि ते दृढभो रथोऽस्मं अश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥
 निम्रदोऽसि न्यहं तं मृद्यासं यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
 अभिभूरस्यभ्यहं तं भूयासं यो अस्मान्.... ॥ प्रभूरसि प्राऽहं तमति-
 भूयासं यो अस्मान्.... ॥ पूषा मा पथिपाः पातु पूषा मा पशुपाः पातु
 पूषा माऽधिपाः पातु ॥ प्राची दिगग्निर्देवता । यो मैतस्या दिशो अभि-
 दासादग्निं सा ऋछतु ॥ दक्षिणा दिगिन्द्रो देवता । यो मैतस्या दिशो
 अभिदासादिन्द्रं सा ऋछतु ॥ प्रतीची दिङ् मरुतो देवता । यो मैतस्या
 दिशो अभिदासान्मरुतः सा ऋछतु ॥ उदीची दिङ् मित्रावरुणौ देवता ।
 यो मैतस्या दिशो अभिदासान्मित्रावरुणौ सा ऋछतु ॥ ऊर्ध्वा दिक्सोमो
 देवता । यो मैतस्या दिशो अभिदासात्सोमं सा ऋछतु ॥ धर्मो मा धर्मणः
 पातु विधर्मो मा विधर्मणः पात्वायुश्च प्रायुश्च चक्षुश्च विचक्षुश्च प्राङ्
 चाऽपाङ् चोरुक उरुकस्य ते वाचा वयं सं भक्तेन गमेमद्यग्रे गृहपते ॥

प्रवासोपस्थानम्

[१.५.१४]—

पशून् मे शंस्य पाहि तान् मे गोपायाऽस्माकं पुनरागमात् ॥ अग्ने सहस्राक्ष
 शतमूर्धञ्शतं ते प्राणाः सहस्रमपानास्त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै
 ते विधेम वाजाय ॥ प्रजां मे नर्य पाहि तां मे गोपायाऽस्माकं पुनरा-
 गमात् ॥ अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिस्त्वं
 मया गृहपतिना भूयाः ॥ अन्नं मे बुध्य पाहि तन्मे गोपायाऽस्माकं
 पुनरागमात् ॥

इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवम् ।

अविनष्टानविहृतान् पूषेनानभिरक्षत्वाऽस्माकं पुनरागमात् ॥

अग्निहोत्रहोमविधिः

मैसं [१.८.१-७]—

प्रजापतिः प्रजा असृजत् । स वा अग्निमेवाऽग्रे मूर्धतोऽसृजत् । स यतोऽग्निमसृजत् तत् पर्यमार्द्धं । ततो लोहितमवाहरत् । तन्न्यमार्द्धं । तत् उदुम्बरः समभवत् । तस्मादुदुम्बरः प्राजापत्यः । तस्माल्लोहितं फलं पच्यते । सोऽस्मात्सृष्टः पराङ्गैर्द्वागधेयमिच्छमानः । स तदेव नाऽविन्दत् प्रजापतिर्यदहोष्यत् । स स्वं चक्षुरादायाऽजुहोत् अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा इति । तद्वा अदश्चक्षुर्मन्यन्ते यदसा आदित्यः । अमुं वा एतदस्मिन् जुहोतो मन्यन्ते । सत्यं वै चक्षुः । सत्येनाऽग्निहोत्रं जुहोति य एव विद्वान् जुहोति । भविष्युः सत्यं भवति य एव वेद । कस्मै कमग्निहोत्रं हूयता इति । ब्रह्मवादिनो वदन्त्यग्नये वा एतद्भृत्यै गुप्त्यै हूयते । यत्सायं जुहोति रात्र्यै तेन दाधार । यत् प्रातः अह्ने तेन । अग्नौ सर्वान् यज्ञान्त्संस्थापयन्ति । अथ कस्मादेतदेवाऽग्निहोत्रमुच्यता इति । ब्रह्मवादिनो वदन्ति । होत्रा वै देवेभ्योऽपाक्रामन्नग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानाः । यद् अग्निहोत्रम् इत्याह तेन होत्रा आभजति । तेनैना भागिनीः करोति । एषा वा अग्रेऽग्ना आहुतिरहूयत । तदग्निहोत्रस्याऽग्निहोत्रत्वम् । सोऽस्मात् सृष्टः पराङ्गैर्द्वागधेयमिच्छमानः । स तदेव नाऽविन्दत् प्रजापतिर्यदहोष्यत् । तं स्वा वागभ्यवदत् जुहुधि इति । स इत् एवोन्मृज्याऽजुहोत् स्वाहा इति । स्वा ह्येनं वागभ्यवदत् । तत्स्वाहाकारस्य जन्म । तस्मादग्निहोत्रे स्वाहाकारः । तस्माल्लालटे च पाणौ च लोम नास्ति । अतो हि स तदादायाऽजुहोत् । तस्माच्चस्य दक्षिणतः केशा उन्मृष्टास्तमाहुर्ज्यैष्ठिलक्ष्मीति । प्रजापतिर्ह्येतदग्रे ज्येष्ठ उदमृष्ट ।

अनेन संमितां सुक्कार्यां तस्माद्भवींषि प्रोक्षताऽग्निरभि न प्रोक्ष्यः पशूनां वा एतत्पयो यद् व्रीहियवौ । तस्मादेतज्जुहोति । नाऽतिशृतं कार्यम् । यद्विष्यन्देतोन्मादुकोऽस्य प्रजायामाजायेत० समुदन्तं होतव्यम् । स्थाल्या दुहति । अनया वा एतदुपसीदन्ति । नहीमामितो नेतः स्कन्दत्यस्कन्नत्वाय । आर्यकृती भवत्यूर्ध्वकपाला सदेवत्वाय० असुर्यं वा एतत्पात्रं यत् कुलालकृतं चक्रवृत्तम्० अप्रतिषेक्यं स्यात्तेजस्कामस्य ब्रह्मवर्चसकामस्याऽथो तुस्तर्षमाणस्याऽथो यः कामयेत वीरो मा आजायेतेति० आज्येन होतव्यं यस्याऽप्रतिषेक्यं स्यात्० तस्मात् प्रतिषेक्यमेव स्यात्० गांदोहसंनेजनेन प्रतिषिच्यम्० ओदनेन होतव्यं यस्य प्रतिषेक्यं स्यात्० निम्नुक्ते सूर्ये वाग्यन्तव्याऽथो दुह्यमानायामथो अधिश्रिते । उन्नीयमान एव यन्तव्यास्तदवक्लृप्ततमम् (यन्तव्या तदव० ?) । उद्भवः स्थ इत्यवेक्षेत । उदहं प्रजया पशुभिर्भूयांसमिति प्रजायाः पशूनां सृष्ट्यै । अथो अभ्येवैनद्वारयति मेध्यत्वाय । अग्निहोत्रे वै दम्पती व्यभिचरेते पूर्वो यजमानस्य लोकोऽपरः पत्न्याः० ब्रह्मवादिनो वदन्त्युदीचीनमेवोद्वाप्त्यम्० चतुरुन्नयति० द्विर्जुहोति० यं कामयेताऽनुज्येष्ठं प्रजया ऋन्नुयादिति तस्य पूर्णमग्रा उन्नयेदथ कनीयोऽथ कनीयः० संमितमेवाऽग्रा उन्नयेदथ

भूयोऽथ भूयः । पूर्णमुत्तमं यज्ञस्याऽभिक्रान्त्यै० यदि कामयेत सर्वे सदृशाः स्युरिति सर्वान्समा-
वदुन्नयेत्० न पश्चादुपसादयेत् । यत्रैवोन्नयेत्तत्सादयेत्० तस्मात्पुरोऽनुद्रुत्य जुहोति । आयुर्मे यच्छ
इति सादयति० वर्चो मे यच्छ इति सादयति० द्वे समिधौ कार्ये० एकैव कार्या० भूर्भुवः स्वः
इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेत्० अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा इति० यद्वाचा च जुहोति यजुषा च
तन्मिथुनम् । यत्तूष्णीं जुहोति मनसा च तन्मिथुनम्० अतिहाय पूर्वामाहुतिमुत्तरा होतव्या०
उत्तराहुतिर्भूयो होतव्या यज्ञस्याऽभिक्रान्त्यै० इयं होतव्याऽथ परा । अथ पुनरवस्तात् प्रातः०
तन्न सूक्ष्मम् । परापरैव होतव्या यज्ञस्याऽभिक्रान्त्यै । उदङ्ङुदिशति अनाभो मृड धूर्ते नमस्ते
अस्तु रुद्र मृड इति० अवाचीनं सायमवमार्ष्टि० ऊर्ध्वं दिवोन्मार्ष्टि० प्राडासीनो जुहोति०
हुत्वोऽग्निं श्रति० उदङ्ङुदिशति० दक्षिणतो निमार्ष्टि० प्राश्नाति० अङ्गुल्या प्राश्नाति सदत्वाय ।
न दतो गमयेत्० पूषाऽसि इति यजुर्वदेत्० यदग्निहोत्रहवर्णीं निष्टपत्यशान्तस्तेन । अग्निहोत्रहवर्णीं
प्रतप्य हस्तोऽवधेयः । हस्तो वा प्रतप्याऽग्निहोत्रहवर्ण्यामवधेयः० होतव्यं गार्हपत्याऽन्न होतव्याऽ-
मिति मीमांसन्ते० होतव्यमेव । अग्ने गृहपते परिषद्य जुषस्व स्वाहा इति जुहुयात् । तेनैवैनं
शमयति० अथ यत्पूर्वामाहुतिं हुत्वोत्तरां होष्यन् प्रतीक्षते तेनैवैनं शमयति० द्वे दुहन्त्यग्नि-
होत्राय० यत्स्थाल्या च दोहनेन च दुहन्ति मिथुनादेव प्रजायते । सज्जर्जातवेदो दिवा पृथिव्या
जुषाणो अस्य हविषो वीहि स्वाहा इति जुहुयात्० यदि तदति शमायेत अग्ने दुःशीर्ततनो जुषस्व
स्वाहा इति जुहुयात्० यदि तदति शमायेत द्वादश रात्रीः सायं सायं जुहुयात्० स वत्सरो वा
अग्निर्वैश्वानरः । तमाहिताग्नयो दर्शपूर्णमासिन इन्धते । तेषां वा ऋतव एव दारुणि । ये स्थविष्ठा
अङ्गारास्ते मासाः । ये क्षोदिष्ठास्तेऽर्धमासाः । अहोरात्राणि मुर्मुराः । यत् सधूमं ज्योतिस्तद्वैश्व-
देवम् । यल्लोहितं तद्वारुणम् । यत्सुवर्णं तद्वार्हस्पत्यम् । यन्न लोहितं न सुवर्णं तन्मैत्रम् ।
यदङ्गारेषु व्यवशान्तेषु लेलायद् वीव भाति तदेवानामास्यम् । अथो अमुष्य च वा एतदादि-
त्यस्य तेजो मन्यन्तेऽग्नेश्च । तस्मात्तर्हि होतव्यम्० न समिदभिहोतवै० तत्तथैव होतव्यं
यथाग्निं व्यवयेयात्० तस्मान्महानग्निहोत्रस्येध्मः कार्यः० भूर्भुवः स्वः इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेत्०
संस्थाप्याऽन्न संस्थाप्याऽमिति मीमांसन्ते । अग्निहोत्रं यत्संस्थापयेत्तृणमक्त्वाऽनुग्रहरेत् ।
सा ह्यग्निहोत्रस्य संस्थितिः । तदाहुयदा वै जीयते यदा प्रमीयते यदाऽऽर्तिमार्छत्यथाऽग्निहोत्रं
संतिष्ठता इति । तन्न संस्थाप्यम्० होतव्यं राजन्यस्याऽग्निहोत्राऽन्न होतव्याऽमिति मीमांसन्ते ।
आमादिव वा एष यद्राजन्यः । बहु वा एषोऽयज्ञियममेध्यं चरत्यत्यनन्नं जिनाति ब्राह्मणम् ।
तस्माद्राजन्यस्याऽग्निहोत्रमहोतव्यम् । ऋतं वै सत्यमग्निहोत्रम् । ब्राह्मण ऋतं सत्यम् । तस्मा-
द्ब्राह्मणस्यैव होतव्यम् । अथो ब्राह्मणायैवाऽस्याऽप्रतो गृह आहरेयुः । तद्धुतमेवाऽस्याऽग्निहोत्रं
भवति । अथो य ऋतमिव सत्यमिव चरेत्तस्य होतव्यमनुसंतत्यै ॥

[१.५.५-१४]—

उपप्रयन्तो अध्वरमिति० षड्भिरुपतिष्ठते० दधिकाव्यो अकारिषमिति दधिकावत्योप-
तिष्ठते० सप्तभिरुपतिष्ठते० तदेतान्येवाऽग्न्याधेयस्य हवींषि सँवत्सरे सँवत्सरे निर्वपेत्० तन्न
सूर्यम् । एताभिरेवाऽऽग्नेयपावमानीभिरग्न्याधेयस्य याज्यानुवाक्याभिरुपस्थेयः० द्वादशभिरुप-
तिष्ठते० अग्नीषोमीयया त्रयोदशोपस्थेयः० ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सायमग्निमुपतिष्ठन्ते कस्मात्
प्रातर्नैति । असौ वा आदित्यः सायमासुवति । तस्मात् सायमुपतिष्ठन्ते । एष प्रातः प्रसुवति । तस्मात्
प्रातर्नोपतिष्ठन्ते । तस्मात्सायमद्भुतेऽग्निहोत्रेऽग्निहोत्रिणा नाऽशितव्यम् । तस्माद् प्रातरद्भुते
नाऽशितव्यम् । तस्मात्सायमतिथये प्रत्येनसः । पुण्यत्वात् प्रातर्ददति । प्रातरवनेगेन प्रातरुपस्थेयः ।
अधिश्रित उन्नीयमाने वा हस्ता अवनेनिजीत । तत्र विहव्यस्य चतस्रा ऋचो वदेत् प्रातरवनेगे
चतस्रः० अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपस्थेयः० ऐन्द्राग्न्याऽपरपक्ष उपस्थेयः० इन्धानास्त्वा शतँहिमा
इति पृतनाजिद्वयाद्भुतिः । तथा राजग्न्या उपतिष्ठेत्० परा पाप्मानं भ्रातृव्यं भावयति य एवँ
विद्वानेताः समिध आदधात्यग्नेः समिदस्यभिःशस्त्या मा पाहीति० चित्रावसो स्वस्ति ते
पारमशीयेति० त्रिराह० अम्भः स्याऽम्भो वो भक्षीयेति० वत्समालभते० सँहिताऽसि विश्वरूपेति०
नामाऽऽसामग्रहीन्मित्रमाभिरकृत० उप त्वाऽग्ने दिवे दिवा इति यदेतेन गायत्रेण तृचेनोपतिष्ठते०
अग्ने त्वं नो अन्तमा इति० चतसृभिर्द्विपदाभिरुपतिष्ठते० महि त्रीणामवोऽस्त्विति प्राजापत्येन
तृचेनोपतिष्ठते० सोमानँ स्वर्णमिति ब्राह्मणस्पत्योपतिष्ठते० मित्रस्य चर्षणीधृता इति
मैत्र्योपतिष्ठते० कदा च न स्तरीरसीत्यैन्द्रीभ्यां बृहतीभ्यामुपतिष्ठते० निम्रदोऽसि न्यहँ तं
मृद्यासँ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति पाण्ड्याऽवगृहीयाद्यदि पापीयसा स्पर्धेत ।
अभिभूरस्यभ्यहँ तं भूयासँ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति दक्षिणतः पदोऽवगृही-
याद्यदि सदृशेन स्पर्धेत । प्रभूरसि प्राऽहँ तमिति भूयासँ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म
इति प्रपदेनाऽवगृहीयाद्यदि श्रेयसा स्पर्धेत० पूषा मा पथिपाः पात्वितीयमेव । पूषा मा
पशुपाः पात्वित्यन्तरिक्षमेव । पूषा माऽधिपाः पात्वित्यसा एव० धर्मो मा धर्मेणः पातु....
चोरुक् इति० अग्ने गृहपतेऽग्निँ समिन्धे यजमानः० ज्योतिषे तन्तवे त्वेत्यन्तराऽग्नी उपविश्य
वदेत्० यद्यत्कामयेत तत्तदग्निहोत्र्यग्निँ याचेत् । उप हैनं तन्नमति० अग्नीषोमीयायाः पुरस्ता-
द्विहव्यस्य चतस्रा ऋचो वदेत् । आग्नेयस्य पुरोडाशस्य द्वे याज्यानुवाक्ये कुर्यात् । एतेनैव
हवीँष्यासन्नान्यभिमृशेत्० ॥

प्रवासोपस्थानम्

यत्र पञ्च रात्रीः सँहिता वसेत्तज्जुहुयात् । पञ्च रात्रयः पञ्चाऽहानि सा दशत्संपद्यते ।
तन्नैवं कर्तवै । अयतं तत् । दशत्सवे रात्रिष्वन्तमँ होतव्यम् । तथा यतं क्रियते । न सर्वेषु

युक्तेषु होतव्यम् । वास्तौ जुहुयात् । नाऽयुक्तेषु । अयतं क्रियते । सर्वाण्यन्यानि युक्तानि स्युः । अग्निष्ठस्य दक्षिणो युक्तः स्यात् । सव्यस्य योक्त्रं परिहृतम् । अथ जुहुयात् । न वास्तौ जुहोति । यतमुत्क्रियते । तन्न सूर्यम् । सर्वेष्वेव युक्तेषु होतव्यम् । वास्तोष्पत्यँ ह्येतत् । न हीनमन्वा-
हर्तवै । रुद्राय हि तद्धीयते । यद्धीनमन्वाहरेयू रुद्रं भूतमन्वाहरेयुः । यद्यनुवाहः स्यात्पूर्वं तं प्रवहेयुरप वोद्धरेयुः । यद्धीयेत हीयेतैव तत् । अथ जुहुयात् अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा
रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो
भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ पशून्मे शँस्य
पाहि तान् मे गोपायाऽऽस्माकं पुनरागमादित्याहवनीयमुपतिष्ठते० अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धन्निति०
प्रजां मे नर्य पाहि तां मे गोपायाऽऽस्माकं पुनरागमादिति गार्हपत्यमुपतिष्ठते० अग्ने गृहपते....
इति० अन्नं मे बुध्य पाहि तन्मे गोपायाऽऽस्माकं पुनरागमादिति दक्षिणाग्निमुपतिष्ठते० इमान् मे
मित्रावरुणौ....पुनरागमादिति । अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ । पशवः पूषा । अहोरात्राभ्यां
चैव मित्रावरुणाभ्यां च गृहान् परिदाय प्रैति । अग्निं समाधेहि इत्याह । भस्म त्वा उपतिष्ठते ॥
पशून्मे शँस्याऽजुगुपस्तान्मे पुनर्देहि इत्याहवनीयं पुनरेत्योपतिष्ठते० अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्शतं
ते प्राणाः सहस्रमपानास्त्वँ साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय ॥ प्रजां मे
नर्याऽजुगुपस्तान् मे पुनर्देहि इति गार्हपत्यं पुनरेत्योपतिष्ठते० अग्ने गृहपते....अन्नं मे बुध्या-
ऽजुगुपस्तान्मे पुनर्देहि इति दक्षिणाग्निं पुनरेत्योपतिष्ठते० इमान् मे मित्रावरुणौ....पुनरागमात् ॥०
अहोरात्राभ्यां चैव मित्रावरुणाभ्यां च गृहान् गुप्तानात्मन् धत्ते ॥

कांसं [६.१-७]—

उद्भवस्स्थोदहं प्रजया प्र पशुभिर्भूयासम्० पशून् मे यच्छ० आयुर्मे यच्छ
वर्चो मे यच्छ प्रजां मे यच्छ० स्वाहा० भूर्भुवस्स्वरग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्नौ०
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः० रुद्र मृडाऽनाभेव मृड धूर्ते नमस्तेऽस्तु०
सजूरग्निर्दिवा पृथिव्या० सजूर्देवेन सवित्रा० सजूरः पूष्णाऽन्तरिक्षेण० सजूर
रात्र्येन्द्रवत्या स्वाहा० सजूरहेन्द्रवता स्वाहा० अग्नेऽदाम्य जुषस्व स्वाहा०
अपिग्नेग्ने स्वां तन्वमयाद् द्यावापृथिवी ऊर्जमस्मासु धेहि० अग्ने गृहपते
जुषस्व स्वाहा० ॥

अग्न्युपस्थानम्

कांसं [६.९]—

उपप्रयन्तो अघ्वरं.... ॥ अस्य प्रत्नामनु द्युती....॥ अग्निर्मूर्धा दिवः
ककुत्.... ॥ उभा वामिन्द्राग्नी आहुव्या.... ॥ अयमिह प्रथमो धायि
धातुमि.... ॥ अयं ते योनिर्ऋत्विग्यो.... ॥ दधिक्राव्णो अकारिषं.... ॥

त्वमग्ने सूर्यवर्चास्सं मामायुषा.... ॥ सं त्वमग्ने सूर्यस्य.... ॥ इन्धानास्त्वा
शतं हिमा.... वयस्वन्तो वयस्विनं यशस्वन्तो यशस्विनम् । सुवीरासो
अदाभ्यमग्ने सपत्नदम्भनम् ॥ आयुर्धा अग्नेऽस्यायुर्मे धेहि वयोधा अग्नेऽसि
वयो मे धेहि तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥ यन्मे अग्र ऊनं तन्वस्तन्म
आपृण ॥ अग्नेस्समिदस्यभिःस्त्या मा पाहि ॥ सोमस्य समिदसि परस्पा
म एधि ॥ यमस्य समिदसि मृत्योर्मा पाहि ॥ अग्ने यत्ते तपस्तेन तं
प्रतितप योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं
प्रतिशोच योऽस्मान्.... ॥ अग्ने यत्ते तेजस्तेन तं प्रतितित्यग्धि
योऽस्मान्.... ॥ अग्ने यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान्.... ॥ अग्ने
यत्ते हरस्तेन तं प्रतिहर योऽस्मान्.... ॥ अग्ने रुचां पते नमस्ते रुचे
मयि रुचं धेहि ॥ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीयाऽर्वाग्वसो स्वस्ति ते
पारमशीय ॥

[७.१-३]—

अम्भस्स्थाऽम्भो वो भक्षीय महस्स्थ महो वो भक्षीयोर्जस्स्थोर्जं वो भक्षीय
रायस्पोषस्स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ रेवती रमध्वं.... मा मा हासिष्ट
बह्वीर्मे भवत ॥ सीहिताऽसि विश्वरूपा.... सहस्रपोषं वः पुषेयम् ॥ सं-
पश्यामि.... बह्वीर्भवन्तु नो गृहे ॥ उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे.... ॥ राजन्त-
मध्वराणां.... ॥ स नः पितेव स्रनवे.... ॥ अग्ने त्वं नो अन्तमः.... ॥
तं त्वा शोचिष्ट दीदिवः.... ॥ वसुरग्निर्वसुश्रवा.... ॥ स नो बोधि
श्रुधी हवं.... ॥ ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि
रायस्पोषेण मा पश्यत । इडास्स्थ मधुकृतस्स्योना मा विशतेरमदो मयि वो
रायश्श्रयन्ती सहस्रपोषं वः पुषेयम् ॥ महि त्रीणामवोऽस्तु.... ॥ नहि
तेषाममा चन.... ॥

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥

सोमानी स्वरणं.... ॥ यो रेवान् यो.... यस्तुरः ॥

मा नश्शीसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥

कदा चन स्तरीरसि.... ॥ परि ते दृढभो रथो.... ॥ अच्छिन्नो

दैव्यस्तन्तुर्मा मनुष्यश्छेदि ॥ निम्रदोऽसीदमहं तं निमृणामि योऽस्मान्

द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ अभिभूरस्यभ्यहं तं भूयासं योऽस्मान्.... ॥

प्रभूरसि प्राऽहं तमतिभूयासं योऽस्मान्.... ॥ पूषा मा प्रपथे पातु पूषा

मा पशुपाः पातु पूषा माऽधिपतिः पातु ॥ प्राची दिगग्निर्देवता । अग्निं
स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदासति ॥ दक्षिणा दिगिन्द्रो देवता । इन्द्रं
स ऋच्छतु.... ॥ उदीची दिङ् मित्रावरुणौ देवता । मित्रावरुणौ स
ऋच्छतु.... ॥ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिर्देवता । बृहस्पतिं स ऋच्छतु.... ॥
इयं दिगदितिर्देवता । अदितिं स ऋच्छतु.... ॥ ज्योतिषे तन्तव आशिषमा-
शासेऽसा अनु मा तनु ॥

प्रवासोपस्थानम्

धनं मे शीस्य पाहि । तन्मे गोपाय ॥
मम नाम प्रथमं जातवेदो माता पिता च दधतुर्व्यग्रे ।
तत्त्वं गोपायाऽऽ पुनर्मदैतोर्वयं विभराम तव नाम ॥
प्रजां मे नर्य पाहि । तां मे गोपाय ॥ इमान् मे मित्रावरुणौ.... ॥ अन्नं
मे पुरीष्य पाहि । तन्मे गोपाय ॥ धनं मे शीस्याऽजुगुपः । तन्मे पुनर्देहि ॥
अग्रे सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेजश्शतं ते प्राणास्सहस्रं व्यानाः ॥ त्वं साहस्रस्य
राय ईशिषे तस्य नो रास्व तस्य ते भक्तिवानो भूयास्म ॥
मम च नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानौ चरावः ।
ते बिभृवो दक्षसे जीवसे च यथायथं नौ तन्वौ जातवेदः ॥
प्रजां मे नर्याऽजुगुपः । तां मे पुनर्देहि ॥ अग्रे गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया
गृहपतिना भूयासी सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः ॥ अस्थूरि णौ
गार्हपत्यं दीदायच्छती हिमा द्रायु ॥ अन्नं मे पुरीष्याऽजुगुपः । तन्मे पुनर्देहि ॥
अग्निहोत्रहोमविधिः

कासं [६.१-८; ७.४-११]—

प्रजापतिर्वा इदमासीत् । तस्मादग्निरध्यसृज्यत । सोऽस्य मूर्ध्न ऊर्ध्व उदब्रवत् ।
तस्य यल्लोहितमासीत्तदपामृष्ट । तद्भूम्यां न्यमार्त् । तत उदुम्बरोऽजायत । तस्मात् स लोहितं
पच्यते । स प्राङ् प्राद्ववत् । ती स्वा वागैष्ट जुहुधीति । स इतः पर्यमृष्ट । तत् स्वाहेत्यजुहोत् ।
तस्मादेषैवमाहुतिः । स्वा ह्येनं वागैष्ट । तस्मान्न ललाटे लोमाऽस्ति न पाण्योः ।

तस्मादरलिमात्री सुग्भवति० तस्मात् प्रोक्षन्नग्निं न प्रापयेत्० तत्पयसाऽग्निहोत्रं
जुहोति० यद्यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति० तस्मादचक्रवृत्तामग्निहोत्रतपर्नीं कुर्वीत । न क्षीरेण
प्रतिषिञ्चेन्नोदकेन० दोहने सैन्नावमुच्छिष्य तेनोदकमिश्रेण प्रतिषिञ्चेत्० प्रतिषिक्तमन्यद-
प्रतिषिक्तमन्यत् । प्रतिषिक्तं पशुकामस्याऽप्रतिषिक्तं ब्रह्मवर्चसकामस्य० यदप्रतिषिक्तेन
जुहोति ब्रह्मवर्चसी भवति । यदि पयो न विन्देदाज्येन जुहुयात्० यदि पयो न

विन्देद्यवाग्वा जुहुयात्० अग्निहोत्रे वै जायापती व्यभिचरेते० संप्रत्युदीचीनमुद्रासयेत्० पूर्णमग्र
उन्नयेदथ संमितमथ संमिततममुत्तमम् । अनुज्येष्ठमेवाऽस्य पुत्रा ऋन्नुवन्ति । संमितमग्र
उन्नयेदथ भूयोऽथ भूयोऽथ पूर्णमुत्तमम् । भूयोभूय एवाऽन्नाद्यमभ्युत्क्रामति । कनिष्ठस्त्वस्य
पुत्राणामर्धुको भवति । सर्वान् समावदुन्नयेद्यः कामयेत सर्वे मे पुत्रास्समावद्वन्नुयुरिति०
चतुरुन्नयति० पशून्मे यच्छेति पश्वादुपसादयेत्० न पश्वादुपसादयेत्० उत्तरादुपसादयेत्०
यत्समयाऽग्निं हरति० तस्मादग्निहोत्रं पश्वादधिश्रित्य पुरो जुहति । पुर एवाऽन्यानि हवींषि
शृतानि कुर्वन्ति । पुरो जुहति० यत्समिधमादधाति० बहुद्वीकरोति० एकैव कार्या० आयुर्मे
यच्छ वचो मे यच्छ प्रजां मे यच्छेति पुर उपसादयेत्० अग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्ना इति सायमग्नि-
होत्रं जुहुयात्० सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिस्सूर्य इति प्रातः० यन्निरुक्तं चाऽनिरुक्तं च तन्मिथुनम् ।
यद्यजुषा च मनसा च तन्मिथुनम्० अमनस्सूर्ये निमृक्ते सायमग्निहोत्रं जुहुयात् । उपोदयं
सूर्यस्य प्रातः० एषा वा अग्निहोत्रस्य स्थाणुर्या पूर्वाहुतिः । तामतिहाय जुहुयात्० अभिक्रामे सायं
होतव्यम्० प्रतिकामं प्रातः० तदादुरभिक्राममेव होतव्यम्० तस्माद् द्वे होतव्ये यजुषा मनसा
च० न राजन्यस्याऽग्निहोत्रमस्ति । अवत्यो हि सः । हन्ति व्रतम् । न विच्छिन्वात् । पौर्णमासीं
च रात्रीममावस्यां च जुहुयात् । ते हि व्रतं गोपायति (? तः) । यान्यहानि न जुहुयात्तान्यस्य
ब्राह्मणायाऽग्रे गृह उपहरेयुः० भूर्भुवस्स्वरग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्ना इत्यग्निहोत्रं जुहुयात्० वाचं
यच्छेदग्निहोत्र उन्नीयमाने० यर्हि बिन्दव इव स्युस्तर्ह्यवेक्षेतोद्भवस्थोदहं प्रजया प्र पशुभिर्भूया-
समिति० अग्निनाऽवेक्षते० न सुशृतं कुर्यात्० नो अशृतम् । अन्तरेणैव स्यात् । रुद्र मृडाऽनार्भव
मृड धूर्ते नमस्तेऽस्त्विति हुत्वोदङ्बुद्धिशेत्० यर्हयं देवः प्रजा अभिमन्येत सज्जर्जातवेदो
दिवा पृथिव्या हविषो वीहि स्वाहेति द्वादश रात्रीरग्निहोत्रं जुहुयात्० ॥ संवत्सरं वा एतन्मिन्ध-
तेऽग्निं वैश्वानरम् । न वा एतस्य संवत्सरेऽप्यस्ति न वैश्वानरे योऽनाहिताग्निः । यानि
दारूणि ते मासाः । ये स्थूला अङ्गारास्ते ऋतवः । ये अणीयीसस्तेऽर्धमासाः । मुर्मुरा
अहोरात्राणि । यत्सुवर्णं ज्योतिस्तद्गार्हस्पत्यम् । यन्न सुवर्णं न लोहितं तन्मैत्रम् । यल्लोहितं
तद्वारुणम् । यत्सधूमं तद्वैश्वदेवम् । यत्राऽङ्गारेष्वग्निर्लैलायेव तदस्याऽऽस्यम् । आविर्नाम
तद्ब्रह्म । तस्मिन् होतव्यम् । मुखेन वा अश्नाति, अङ्गान्यवति, आविः प्रजासु भवति,
श्शश्चो वसीयान् भवति यस्यैवमग्निहोत्रे हूयते । ओदनपचनो गार्हपत्य आहवनीयो मध्याधिदेव-
नमामन्त्रणमेषा वै विराट् पञ्चपदा० न स्वाहाकुर्यात् । यर्हि वाक् प्रवदेत्तर्हि जुहुयात्०
सजरग्निर्दिवा पृथिव्येति द्यावापृथिवी अग्निम्० सजूर्देवेन सवित्रेति० सजः पूष्णाऽन्तरिक्षेणेति०
सज् रात्र्येन्द्रवत्या स्वाहेति० सजरहेन्द्रवता स्वाहेति० अग्नेऽदाम्य जुषस्व स्वाहेत्युत्तरामाहुतिं
जुहोति० अपिप्रेरग्ने स्वां तन्वमयाङ् द्यावापृथिवी ऊर्जमस्मासु धेहीति तृणमङ्क्त्वाऽनुप्रहरति०
अग्ने गृहपते जुषस्व स्वाहेति स्तुवेण गार्हपत्ये जुहोति० ॥

अग्न्युपस्थानम्

अग्निहोत्रे स्तोमो योक्तव्यः० अग्न्याघेयस्यग्निरुपस्थेयः० अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपतिष्ठेत० ऐन्द्राग्न्याऽपरपक्षे० सायमुपतिष्ठते न प्रातः० संपश्यामि प्रजा अहमिति० उप त्वाऽग्ने दिवे दिव इति० राजन्तमध्वराणां....इति० स नः पितेव....इति० आभिरुपस्थेयः । अग्ने त्वं नो अन्तम....इति० द्विपदाभिः० तिस्रः पूर्वाश्चतस्र एतास्तास्तस० मयि वो रायश्श्रयन्ती सहस्रपोषं वः पुषेयमिति० वत्सं पराहन्ति० महि त्रीणामवोऽस्त्वित्येष प्राजापत्यस्त्रिचः० सोमानीं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पत इति ब्राह्मणस्पत्या० वैश्वदेवीर्वा एताः० यं कामयेत स्वस्ति पुनरागच्छेदिति तमेताभिरन्वीक्षेत । स्वस्त्येव पुनरागच्छति । कदा चन स्तरीरसि, परि ते दूडभो रथ इति० यद्विच्छन्दोभिरुपतिष्ठते । यदेषा गायत्र्युत्तमा० निम्रदोऽसीत्यव तं गृह्णाति योऽस्य पश्चाद्भ्रातृव्यः । अभिभूरसीत्यभि तं भवति य एनेन सहङ् । प्रभूरसि प्राऽहं तमतिभूयासमित्यति तं क्रामति य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यः० अग्निं समिन्वेऽनुसंतत्यै० ज्योतिषे तन्तव आशिषमाशास इत्याशिषमेवाऽऽशास्ते । योऽस्य प्रियः पुत्रस्तस्यात्तस्य नाम गृह्णीयात्० तस्माच्छन्दोभिर्नक्तमग्निरुपस्थेयः० ॥

प्रवासोपस्थानम्

धनं मे शीस्य पाहि तन्मे गोपायेति प्रवत्स्यन्नाहवनीयमुपतिष्ठेत० मम नाम प्रथमं जातवेद इति० प्रजां मे नर्य पाहि तां मे गोपायेति० इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायंतं युवमिति० अन्नं मे पुरीष्य पाहि तन्मे गोपायेति० धनं मे शीरयाऽजुगुपस्तन्मे पुनर्देहीति० अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेज इति० मम च नाम तव च जातवेद इति० प्रजां मे नर्याऽजुगुपस्तां मे पुनर्देहीति० अग्ने गृहपत इति० अन्नं मे पुरीष्याऽजुगुपस्तन्मे पुनर्देहीति० ॥

कपिसं [४.८; ५.१-३] = कासं

--- वयोधा अग्नेऽसि वयो मे धेहि वर्चोधा अग्नेऽसि वर्चो मे धेहि तनूपा अग्नेऽसि.... ॥ --- मा मा हासिष्ट बह्वीर्मे भवन्तु.... ॥ मयि ते रायश्श्रयन्ती सहस्रपोषं ते पुष्यासम् ॥ संपश्यामि प्रजा अहमिदप्रजसो मानवीः । ॥ --- मयि वो रायश्श्रयन्ती सहस्रपोषं वः पुष्यासम् ॥ --- मम च नाम तव च.... । ते बिभ्रवो महसे जीवसे च.... ॥ --- सहस्रं व्यानाः साहस्रो वाजोऽसि । तस्य नो रास्व.... ॥ अस्थूरि णौ गार्हपत्यं दीदायच्छते हिमाः ॥ अन्नं मे.... ॥

[३.१२; ४.१-७; ५.३-९; ६.१] = कासं

वासं [३.९-४३]—

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः
सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ सज्रुर्देवेन सवित्रा सज्रु राज्येन्द्रवत्या ।
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ सज्रुर्देवेन सवित्रा सज्रुरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः
सूर्यो वेतु स्वाहा ॥

अग्न्युपस्थानम्

उपप्रयन्तो.... ॥ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ उभा वामिन्द्राग्नी
आहुवध्या.... ॥ अयं ते योनिर्ऋत्वियः.... ॥ अयमिह प्रथमो धायि
धातुभिः.... ॥ अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं.... ॥ तनूपा अग्नेऽसि
तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ इन्धानास्त्वा शतं हिमा
द्युमन्तं समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम् ।
अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥ चित्रावसो.... ॥ सं त्वमग्ने
सूर्यस्य....सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया स
रायस्पोषेण गिमषीय ॥ अन्ध स्थाऽन्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो
भक्षीयोर्ये स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥
रेवती रमध्वमस्मिन् योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये । इहैव स्त
माऽपगात ॥ संहिताऽसि विश्वरूप्यूजा माऽऽविश गौपत्येन ॥ उप त्वाऽग्ने
दिवेदिवे.... ॥ राजन्तमध्वराणां.... ॥ स नः पितेव सूनवे.... ॥ अग्ने
त्वं नो अन्तम.... ॥ वसुरग्निं....द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ तं त्वा शोचिष्ठ
दीदिवः.... ॥ स नो बोधि श्रुधी हवश्रुध्या णो अधायतः समस्मात् ॥
इड एहदित एहि काम्या एत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ सोमानं
स्वरणं.... औशिजः ॥

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥
महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्याऽर्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥
नहि तेषाममा चन नाऽध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥
ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥
कदा चन स्तरीरसि.... ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं.... ॥

परि ते दृढभो रथोऽस्माँ अश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याँ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

प्रवासोपस्थानम्

नर्यं प्रजां मे पाहि शँस्य पशून् मे पाह्यथर्यं पितुं मे पाहि ॥ आगन्म
विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्रे सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥
अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्रे गृहपतेऽभि द्युम्नमभि
सह आयच्छस्व ॥ अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्रे पुरीष्याऽभि
द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥

गृहा मा विभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि ।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवँ शग्मँ शंयोः शंयोः ॥

अग्निहोत्रहोमविधिः

शब्रा [२.३.१-४; २.४.१]—

स यत्सायमस्तमिते जुहोति० यत्प्रातरनुदिते जुहोति० स यः पुराऽदित्यस्याऽस्त-
मयादाहवनीयमुद्धरति० समेवाऽन्ये यज्ञास्तिष्ठन्ते । अग्निहोत्रमेव न संतिष्ठते० तद् दुग्ध्वाऽधिश्रयति ।
शृतमसदिति० तद्वै नोदन्तं कुर्यात्० अधिश्रित्यैव जुहुयात्० तदवज्योतयति शृतं वेदानीति ।
अथाऽपः प्रत्यानयति० अथ चतुरुनयति० अथ समिधमादायोदाद्वति समिद्धहोमायैव ।
सोऽनुपसाद्य पूर्वामाहुतिं जुहोति० उपसाद्य उत्तराम्० स वै द्विरग्नौ जुहोति द्विरुपमार्ष्टि द्विः
प्राश्नाति चतुरुनयति तदश० सा या पूर्वाऽऽहुतिः साऽऽत्मानमभिहूयते । तां मन्त्रेण जुहोति०
अथ योत्तरा सा प्रजामभिहूयते । तां तूष्णीं जुहोति० स जुहोत्यग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति०
तदु हैतदेवाऽऽरुणये ब्रह्मवर्चसकामाय तक्षाऽनूवाच अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः, सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः
इति० तदु होवाच जीवलश्चैलकिः० स एतेनैव सायं जुहुयात् । अथ प्रातः ज्योतिः सूर्यः
सूर्यो ज्योतिः स्वाहेति० अनेनैव जुहुयात्सजूर्देवेन सवित्रेति० सजू रात्र्येन्द्रवत्येति० जुषाणो
अग्निर्वेतु स्वाहेति० अथ प्रातः सजूर्देवेन सवित्रेति० सजूरुषसेन्द्रवत्येति० जुषाणः सूर्यो वेतु
स्वाहेति० स यत्सुचि परिशिनष्टि तदग्निहोत्रोच्छिष्टम् । अथ यत्स्याल्यां यथा परीणहो निर्वपेदेवं
तत् । तस्मात्तद्य एव कश्चन पिबेत् । तद्वै नाऽब्राह्मणः पिबेत्० ॥

अथैष भ्रातृव्यदेवत्यो यदन्वाहार्यपचनः । तस्मादेतं नाऽहरहराहरेयुः० उपवसथ
एवैनमाहरेयुः । यत्रैवाऽस्मिन् यक्ष्यन्तो भवन्ति० नवावसथे वैनमाहरेयुः । तस्मिन् पचेयुः ।
तद् ब्राह्मणा अश्रीयुः । यद्यु तन्न विन्देत् यत् पचेदपि गोरेव दुग्धमधिश्रयितवै ब्रूयात् ।
तस्मिन् ब्राह्मणान् पाययितवै ब्रूयात्० तद्यत्रैतत् प्रथमं समिद्धो भवति धूप्यत इव तर्हि हैष
भवति रुद्रः । स यः कामयेत यथेमा रुद्रः प्रजा अश्रद्धयेव त्वत् सहसेव त्वत् निघातमिव
त्वत् सचते एवमन्नमद्यामिति, तर्हि ह स जुहुयात्० अथ यत्रैतत् प्रदीप्ततरो भवति तर्हि हैष
भवति वरुणः । स यः कामयेत यथेमा वरुणः प्रजा गृह्णन्निव त्वत् सहसेव त्वत् निघातमिव
त्वत् सचते एवमन्नमद्यामिति, तर्हि ह स जुहुयात्० अथ यत्रैतत् प्रदीप्तो भवति उच्चैर्धूमः
परमया जूत्या बल्बलीति तर्हि हैष भवतीन्द्रः । स यः कामयेतेन्द्र इव श्रिया यशसा स्यामिति,
तर्हि ह स जुहुयात्० अथ यत्रैतत् प्रतितरामिव तिरश्चीवाऽर्चिः सःशाम्यतो भवति तर्हि
हैष भवति मित्रः । स यः कामयेत मैत्रेणेदमन्नमद्यामिति यमाहुः सर्वस्य वा अयं ब्राह्मणो
मित्रम्, न वा अयं कंचन हिनस्तीति, तर्हि ह स जुहुयात्० अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाकशन्त
इव, तर्हि हैष भवति ब्रह्म । स यः कामयेत ब्रह्मवर्चसी स्यामिति तर्हि ह स जुहुयात्०
एतेषामेकं संवत्सरमुपेत्यैतत् स्वयं जुह्वद्यदि वाऽस्याऽन्यो जुहुयात्० स वै कनीय इव पूर्वामाहुतिं
जुहोति भूय इवोत्तरां भूय इव स्रुचि परिशिनष्टि० पूर्वेणाऽऽहवनीयं परित्याऽन्तरेण गार्हपत्यं
चैति० उत्तरतो वा अग्निहोत्रस्य द्वारम्० नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम् । तस्या एतस्यै
नावः स्वर्ग्याया आहवनीयश्चैव गार्हपत्यश्च नौमण्डे । अथैष एव नावाजो यक्षीरहोता० ॥

अग्न्युपस्थानम्

यदेव सायंप्रातराहवनीयमुप च तिष्ठत उप चाऽऽस्ते तदेव तस्योपस्थानम् ।
अथ यदेव प्रतिपरेत्य गार्हपत्यमास्ते वा शेते वा तदेव तस्योपस्थानम् । अथ यत्रैव संव्रजन्-
न्वाहार्यपचनमुपस्मरेत्तदेव तं मनसोपतिष्ठेत तदेव तस्योपस्थानम् । अथ प्रातरनशित्वा
मुहूर्तं सभायामासित्वाऽपि कामं पत्ययेत तदेव तस्योपस्थानम् । अथ यत्रैव भस्मोद्धृतमुपनि-
गच्छेत्तदेव तस्योपस्थानम्० सायमुपतिष्ठेत० स आह उपप्रयन्तो अध्वरमिति० अग्निर्मूर्धा
दिवः ककुत्.... इति० अथेन्द्राग्नी । उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या.... इति० अयं ते योनि-
र्ऋत्वियो.... इति० अयमिह प्रथमो धायि धातृभिः.... इति० अस्य प्रत्नामनु द्युतं.... इति०
तदेतत्समाहार्यं षडृचम् । तस्योपवती प्रथमा प्रत्नवत्युत्तमा० स वै त्रिः प्रथमां जपति त्रिरुत्तमां०
तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि.... इति० इन्धानास्त्वा शतं हिमा.... इति० चित्रावसो स्वस्ति
ते पारमशीयेति त्रिरेतज्जपति० अथाऽऽसीनः । सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसाऽगथा.... इति० अथ
गामम्यैति अन्ध स्थाऽन्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयेति० रेवती रमध्वमिति० अथ
गामभिमृशति संहिताऽसि विश्वरूपीति० अथ गार्हपत्यमग्यैति । स गार्हपत्यमुपतिष्ठते उप

त्वाऽग्ने दिवेदिवे.... इति० राजन्तमध्वराणां.... इति० स नः पितेव सूनवे.... इति० अथ द्विपदाः । अग्ने त्वं नो अन्तम.... ॥ वसुरभिर्वसुश्रवा.... ॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः.... ॥ स नो बोधि श्रुधी हव०.... इति० अथ गामग्यैति । इड एह्यदित एहीति० अथाऽन्तरेणाऽऽहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नग्निमीक्षमाणो जपति । सोमानं स्वरणं.... ॥ यो रेवान् यो अमीवहा.... ॥ मा नः शशंसो.... इति० महि त्रीणामवोऽस्तु.... ॥ न हि तेषाममा चन.... ॥ ते हि पुत्रासो अदितेः.... इति० अथैन्द्री० कदा चन स्तरीरसि.... इति० अथ सावित्री० तत्सवितुर्वरेण्यं.... इति । अथाऽऽग्नेयी० परि ते दूडभो रथो.... इति० त्रिरेतज्जपति । अथ पुत्रस्य नाम गृह्णाति । इदं मेऽयं वीर्यं पुत्रोऽनुसंतनवदिति । यदि पुत्रो न स्यादप्यात्मन एव नाम गृह्णीयात्० ॥ अथ हुतेऽग्निहोत्र उपतिष्ठते । भूर्भुवः स्वरिति० एतेन न्वेव वयमुपचराम इति ह स्माऽऽहाऽऽसुरिः० ॥

[११.८.१.३]— ०अग्निहोत्रं हुत्वा मह इत्युपतिष्ठेत्० ॥

[११.३.१.२-४]—

तद्धैतज्जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ । वेत्याऽग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या३ इति । वेद सम्राडिति । किमिति । पय एवेति । यत्पयो न स्यात् केन जुहुया इति । व्रीहियवाभ्यामिति । यद् व्रीहियवौ न स्यातां केन जुहुया इति । या अन्या ओषधय इति । यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति । या आरण्या ओषधय इति । यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति । वानस्पत्येनेति । यद्वानस्पत्यं न स्यात् केन जुहुया इति । अद्विरिति । यदापो न स्युः केन जुहुया इति । स होवाच न वा इह तर्हि किंचनाऽऽसीत् । अथैतदह्यतैव । सत्यं श्रद्धायामिति । वेत्याऽग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच ॥

[११.३.२.१]—

तस्मादस्य पत्नीवदग्निहोत्रं स्यात्० तस्मादस्य पुंवत्साऽग्निहोत्री स्यात्० ॥

प्रवासोपस्थानम्

[२.४.१]—

अथ प्रवत्स्यन् गार्हपत्यमेवाऽग्र उपतिष्ठतेऽथाऽऽहवनीयम् । स गार्हपत्यमुपतिष्ठते नर्यं प्रजां मे पाहीति० अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते शशंस्य पशून्मे पाहीति० अथ प्र वा व्रजति प्र वा धावयति । स यत्र वेलां मन्यते तत् स्यत्त्वा वाचं विसृजते । अथ प्रोष्य परेक्ष्य यत्र वेलां मन्यते तद्वाचं यच्छति । स यद्यपि राजाऽन्तरेण स्यान्नैव तमुपेयात् । स आहवनीयमेवाऽग्र उपतिष्ठते । अथ गार्हपत्यम्० स आहवनीयमुपतिष्ठते आगन्म विश्ववेदसं.... इति । अथोपविश्य तृणान्यपलुम्पति । अथ गार्हपत्यमुपतिष्ठते अयमग्निर्गृहपतिः.... इति । अथोपविश्य तृणान्यप-

लुम्पति० स वै खलु तूष्णीमेवोपतिष्ठेत्० अथाऽतो गृहाणामेवोपचारः । एतद्ध वै गृहपतेः प्रोषुष आगतात् गृहाः समुत्त्रस्ता इव भवन्ति । किमयमिह वदिष्यति किं वा करिष्यतीति० अथ यो ह तत्र न वदति न किंचन करोति तं गृहा उपसंश्रयन्ते न वा अयमिहाऽवादीत् न किंचनाऽकरदिति । स यदिहाऽपि सुक्रुद्ध इव स्यात् श्व एव ततस्तत्कुर्याद्वदिष्यन् वा करिष्यन् वा स्यात् । एष उ गृहाणामुपचारः० ॥

[११.३.१.५-८]—तदप्येते श्लोकाः—किंस्विद्विद्वान् प्रवसत्यग्निहोत्री गृहेभ्यः । कथं स्विदस्य काव्यं कथं संततो अग्निभिः इति० यो जविष्ठो भुवनेषु स विद्वान् प्रवसन् विदे । तथा तदस्य काव्यं तथा संततो अग्निभिः इति० यत् स दूरं परेत्याऽथ तत्र प्रमाद्यति । कस्मिन् साऽस्य हुताहुतिः गृहे यामस्य जुहति इति० यो जागार भुवनेषु विश्वा जातानि योऽबिभः । तस्मिन् साऽस्य हुताहुतिः गृहे यामस्य जुहति इति० ॥

वाकासं [३.२-४]—

अग्निज्योतिषं त्वा वायुमर्ती प्राणवतीम् । स्वर्ग्यां स्वर्गायोपदधामि भास्वतीम् ॥ अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यज्योतिषं त्वा वायुमर्ती.... भास्वतीम् ॥ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ सज्जूर्देवेन सवित्रा.... ॥ इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजां रमयतु प्रजापतिः । अग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा ॥ अग्नयेऽन्नादायाऽन्नपतये स्वाहा ॥ अनमित्रं मे अधरागनमित्रमुदक्कृधि । इन्द्राऽनमित्रं पश्चान्मेऽनमित्रं पुरस्कृधि ॥ इन्द्रः पश्चादिन्द्रः पुरस्तादिन्द्रो अस्मां अभि पातु विश्वतः । इन्द्रो जिघांसतां मनांसि विषूचीना व्यस्यतात् ॥ समिदसि समिद्धो मे अग्ने दीदिहि । समेद्धा ते अग्ने दीद्यासम् ॥

अग्न्युपस्थानम्

उपप्रयन्तो अध्वरं.... ॥ अग्निर्मूर्धा.... ॥ उभा वामिन्द्राग्नी.... । उभा दातारा इषां.... ॥ अयं ते योनिः.... ॥ अयमिह प्रथमो.... ॥ अस्य प्रत्नामनु.... ॥ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि.... ॥ इन्धानास्त्वा शतं हिमा.... ॥ चित्रावसो.... ॥ सं त्वमग्ने सूर्यस्य.... ॥ अन्ध स्थान्धो वो.... ॥ रेवती रमध्वं.... योना अस्मिन् गोष्ठेऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् लोके । इहैव स्तेतो माऽपगात् ॥ संहिताऽसि.... ॥ उप त्वाग्ने दिवेदिवे.... ॥ राजन्तमध्वराणां.... ॥ स नः पितेव.... ॥ अग्ने त्वं नो.... ॥ तं त्वा शोचिष्ठ.... ॥ इळ एह्यदित एहि काम्य एहि.... ॥ सोमानं स्वर्णं.... ॥

यो रेवान् यो.... ॥ मा नः शंसो.... ॥ महि त्रीणामवोऽस्तु.... ॥
 नहि तेषाममा.... ॥ ते हि पुत्रासो अदितेः.... ॥ कदा चन स्तरीरसि.... ॥
 तत्सवितुर्वरेण्यं.... ॥ परि ते दूळभो रथो.... ॥ समिद्धो मा समर्धय
 प्रजया च धनेन च ॥ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजया भूयासम् । सुवीरो
 वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

प्रवासोपस्थानम्

नर्यं प्रजां मे पाहि शंस्य पशून् मे पाहि ॥ आगन्म विश्ववेदस.... ॥
 अग्रे सम्राळभि.... ॥ अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजावान् वसुवित्तमः.... ॥
 गृहा मा बिभीत.... ॥ येषामध्येति.... ॥ उपहूता इह.... ॥

काशत्रा [१.३.१; १.४.१-२; १३.३.१; १३.८.१] ≡ शत्रा

ऐत्रा [५.२६; ३१; ३०]—

उद्धराऽऽहवनीयमित्यपराह आह० उद्धराऽऽहवनीयमिति प्रातराह० रौद्रं गवि
 सद्रायव्यमुपावसृष्टमाश्विनं दुह्यमानं सौम्यं दुग्धं वारुणमधिश्रितं पौष्णं समुदयन्तं मारुतं विष्यन्दमानं
 वैश्वदेवं बिन्दुमन्मैत्रं शरोगृहीतं द्यावापृथिवीयमुद्रासितं सावित्रं प्रक्रान्तं वैष्णवं ह्रियमाणं
 बार्हस्पत्यमुपसन्नमग्नेः पूर्वाऽऽहुतिः प्रजापतेरुत्तरैन्द्रं हुतम् । एतद्वा अग्निहोत्रं वैश्वदेवं षोळाशकलं
 पशुषु प्रतिष्ठितम्० भूर्भुवःस्वरोऽमग्निय्योतिर्य्योतिरग्निरिति सायं जुहोति । भूर्भुवःस्वरोऽम
 सूर्यो ज्योतिर्य्योतिः सूर्य इति प्रातः० तस्मादुदिते होतव्यम्० तस्माद्योऽल्मग्निहोत्राय स्यात्
 जुहुयात् । तस्मादाहुर्न सायमतिथिरपरुष्य इति० । [७.१२]—तदाहुः कथमग्नीन् प्रवत्स्य-
 न्नुपतिष्ठेत् प्रोष्य वा प्रत्येत्याऽहरहर्वेति । तूष्णीमित्याहुः० अथाऽप्याहुरहरहर्वा एते यज-
 मानस्याऽश्रद्धयोद्वासनात् प्रप्लावनाद्विम्यति । तानुपतिष्ठेतैवाऽभयं वोऽभयं मेऽस्त्विति० ।
 [७.८-१०]—‘तदाहुरपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्, नाहरेत् इति । आहरेदित्याहुः । यदि

१. एतद्ब्राह्मणस्य सम्यग्ज्ञानार्थं सायणाचार्याणां ऐत्राभाष्यस्य पर्याप्तोऽशोऽधो दीयते—
 ‘पुरुषे जीवति सति यदा भार्या म्रियते तदानीमाहितैरग्निभिर्भार्याया दाह इत्येकः पक्षः ।...
 आहितेभ्योऽग्निभ्योऽन्येनाग्निना भार्या दहेदिति द्वितीयः पक्षः ।...अस्मिन् पक्षे पुनरपि विवाहेच्छा-
 रहितत्वाद्यमपत्नीक एव वर्तते सोऽग्निहोत्रमाहरेदनुतिष्ठेन्न वेति प्लुतिद्वयं विचारार्थम्...तस्मान्मृत-
 भार्योऽपि स्वकीयानग्नीनवस्थाप्याग्निहोत्रमाहरेत् ।...पूर्वमपत्नीकस्याग्निहोत्रादिहविर्यज्ञानुष्ठानं प्रति-
 पादितम् । अथ तस्यैवापत्नीकस्य वाचिकं मानसं च द्विविधमग्निहोत्रं प्रतिपादनीयम् । तत्र
 वाचिकविषयं प्रश्नमुद्भावयति—“ तदाहुर्वाचाऽपत्नीकोऽग्निहोत्रं कथमेव जुहोति ” इति । योऽपत्नीकः
 पुरुषस्तस्य वाचा निष्पाद्यं यद्यग्निहोत्रं तत्केन प्रकारेणानुष्ठातव्यमिति प्रश्नः । तमेव प्रश्नं पुनर्वि-
 (अग्निं पृष्ठं द्रष्टव्यम्)

नाऽऽहरेदनद्धा पुरुषः । कोऽनद्धा पुरुष इति न देवान् पितॄन् मनुष्यानि । तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् । तदेवाऽभि यज्ञगाथा गीयते । यजेत् सौत्रामण्यामपत्नीकोऽप्यसोमपः । मातापितृभ्यामनृणार्थाद्यजेति वचनाच्छ्रुतिरिति । तस्मात् सौम्यं याजयेत् ० तदाहुर्वाचाऽपत्नीकोऽग्निहोत्रं कथमेव जुहोति । निविष्टे मृता पत्नी नष्टा वाऽग्निहोत्रं कथमग्निहोत्रं जुहोति । पुत्रान् पौत्रान्पुनित्याहुरस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्चाऽस्मिँल्लोकेऽयं स्वर्गोऽस्वर्गेण स्वर्गं लोकमारुरोहेत्यमुष्यैव लोकस्य संततिं धारयति यस्यैषां पत्नी नैच्छेत् । तस्मादपत्नीकस्याऽऽधानं कुर्वन्ति । अपत्नीकोऽग्निहोत्रं कथमग्निहोत्रं जुहोति । श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः । श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम् । श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गाँल्लोकाञ्जयतीति ।

शांभ्रा [२]—

स वै सायं च प्रातश्च जुहोति । अग्नये सायं सूर्याय प्रातः ० पयसा जुहुयात् ० तदु वा आहुर्यदशनस्यैव जुहुयात् । सर्वं वा इदमग्नेरन्नं स्वेन वैतदन्नेनाऽग्नीन् प्रीणातीति । गार्हपत्येऽधिश्रित्याऽऽहवनीये जुहुयात् ० व्यन्तानङ्गारान् करोति ० यदधिश्रित्याऽवज्योतयति । श्रपयत्येवैनत् । तदथ यदपः प्रत्यानयति ० अथ यत् पुनरवज्योतयत्यप एव तच्छ्रपयति । त्रिरुपसादमुद-

(पूर्वस्मात् पृष्ठात्)

स्पष्टयति—“ निविष्टे मृता पत्नी नष्टा वाऽग्निहोत्रं कथमग्निहोत्रं जुहोति ” इति । नैष्ठिकब्रह्मचर्यादावप्यपत्नीकत्वमस्ति तत्राग्निहोत्रप्रसङ्ग एव नास्ति विध्यभावात् । अतोऽपत्नीकत्वं विशेष्यते । विवाहादूर्ध्वमग्निहोत्रे निविष्टेऽनुष्ठातुमुपक्रान्ते सति पश्चात्पत्नी मृता भवति । तादृशोऽत्रापत्नीकः । तस्याग्निहोत्रं नष्टा वा नष्टमेव भवति पूर्वसिद्धैरग्निभिः पत्नीदाहपक्षे पुनरग्निहोत्रहेतूनामग्नीनामभावात् । अतोऽपत्नीकः कथमग्निहोत्रं जुहोतीति प्रश्नः । तस्योत्तरमाह—“ पुत्रान् पौत्रान्...” इति । योऽपत्नीकोऽग्निरहितः स्थविरत्वेनानुष्ठातुमशक्तश्च तादृशः पुमान् पुत्रादीन् प्रत्येवं ब्रूयात् । आहुरिति बहुवचनं छान्दसम् । हे पुत्रपौत्रप्रपौत्राः शृणुत । अस्मिँल्लोकेऽमुष्मिन् स्वर्गं लोके च श्रेयः संपादनीयम् । अस्मिँल्लोके तु स्थितैः पुरुषैर्योऽयं स्वर्गः शास्त्रेण श्रुत इति शेषः । तं स्वर्गलोकमस्वर्गेण स्वर्गविलक्षणेन कामकर्मानुष्ठानेनाऽऽरूरोहाऽऽरोहेदित्येवं पुत्रादीन् प्रति वाचोपदिशति । एतदेव वाजसनेयिभिर्विस्पष्टमानायते—“ तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः । तस्मादेनमनुशासति ” इति । अनेन पुत्राद्यनुशासनेनामुष्यैव लोकस्य संततिमविच्छेदं धारयति संपादयति । कुलपरंपरयाग्निहोत्रानुष्ठानेन सर्वेषां स्वर्गप्राप्तौ तद्विच्छेदाभावात् । यस्य यः पुमानेषां पत्नी नैच्छेत् । स्वस्यानुष्ठातुमशक्तत्वेन पुनर्विवाहसाध्यामेतां पत्नीं नापेक्षेत । तस्मात्स्थापत्नीकस्य वाचा प्रेरिताः पुत्रपौत्रादय आधानं कुर्वते । तदाऽऽधानपूर्वकमग्निहोत्रमपत्नीकस्य वाचिकमित्युच्यते । अथ मानसमग्निहोत्रं प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शयति—“ अपत्नीको...जयतीति ” इति । पूर्वोक्तस्थविरोऽपत्नीकोऽग्निहोत्रं स्वयमेव मनसा जुहोमीति यदीच्छेदिति शेषः । तदानीं केन प्रकारेण तस्य मानसो होम इति प्रश्नः । श्रद्धेत्यादिकं तदुत्तरम्... ।’

(अग्निं पृष्ठं द्रष्टव्यम्)

गोमीयमुद्रासयति० अथोपवेष्टेण दक्षिणतोऽङ्गारानुपस्पृशति नमो देवेभ्य इति० अङ्गारानु
प्रत्युहेत्० चतुरुनयेत्० पञ्चकृत्व उनयेत्० उनीयोत्तरेण गार्हपत्यमुपसादयति० आहवनीये
होष्यन् द्वितीयम् । हुत्वा तृतीयम्० पालाशीं समिधमभ्यादधाति० प्रादेशमात्री भवति०
द्वयङ्गुलं समिधोऽतिहृत्याऽनुदमन्निवाऽभिजुहोति० धूमायन्त्यां ग्रामकामस्य जुहुयात् । ज्वलन्त्यां
ब्रह्मवर्चसकामस्य । अङ्गारेषु पशुकामस्य । अभ्याधायेति त्वेव स्थितम्० अग्निज्योतिर्ज्योति-
रग्निरिति० अथ स्वाहेति जुहोति० अथ प्रातर्जुहोति सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति० उदिते
होतव्याऽमनुदित इति मीमांसन्ते० तस्मादनुदिते होतव्यम्० तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिः
सायमस्तमिते पुरा तमसस्तस्मिन् काले जुहुयात्० प्रातः पुरोदयादपहते तमसि तस्मिन् काले
जुहुयात्० उमे आहुती हुत्वा जपति या यज्ञस्य समृद्धस्याऽऽशीः सा मे समृध्यतामिति०
उत्तरावतीराहुतीर्जुहुयात्० सुचो बुध्नेनाऽङ्गारानुपस्पृशति० द्विरुदीचीं सुचमुधच्छति० तस्माद्भू-
यमानस्योत्तरतो न तिष्ठेत्० तामुत्तरतः सायमुपमार्ष्टि प्रतीचीम्० दक्षिणत ऊर्ध्वा प्रातः०

(पूर्वस्मात् पृष्ठात्)

एतावता भार्यायां मृतायामाहिताग्निभिस्तस्या दाहे सति आहिताग्नेर्वाचिकं मानसं
चाग्निहोत्रं सिद्धं भवति, आहिताग्निभ्योऽन्येनाग्निना दाहेऽग्निहोत्रं होतव्यमेवेति सायणा-
चार्याणामाशयः । ऐब्रा. ७.१०-११ खण्डविषये सायणाचार्यैरुक्तं—‘अत ऊर्ध्वं खण्डद्वयं
(अध्यायक्रमेण ३२.९-१०) देशविशेषेण केचिदामनन्ति केचिन्नामनन्ति । अत एव पूर्व-
निबन्धकाराः पाठरहितदेशानुसारेण तद्व्याख्यानमुपेक्षितवन्तः । अस्माभिस्तु पाठोपेतदेशानुसारेण
तद्व्याख्यायते ।’ अनन्तरं च तैः ७.११, १० इति क्रमेणैतौ खण्डौ व्याख्यातौ । ऐब्रा. ७.१०
इत्यस्य पाठोऽशतोऽशुद्ध इति कीथमहोदयानां मतम् (Cf. *Rgveda Brāhmaṇas Translated*,
Harvard University Press, 1920, pp. 296-7) । उपर्युक्तायां यज्ञगाथायां ‘सौत्रामण्याम-
पत्नीको’ इत्यस्य स्थाने ‘सौत्रामण्यामपत्नीको’ इति स्यादिति तैः सूचितम् । तथा च
‘मातापितृभ्यामनृणार्थाद्यजेति’ अत्र ‘०मनृणी यजेति’ इति आउफ्रेल्टमहोदयैः सूचितः पाठोऽपि
तैर्निर्दिष्टः । ऐब्रा. ७.१० इत्यस्य कीथमहाशयैः कृत आङ्ग्लभाषानुवादः सायणभाष्याद्विज्ञः ।
अतः सौऽशतोऽत्र दीयते—

They say ‘why does a man without a wife offer at command the Agnihotra?’ ‘If one has commenced (the sacrifice), and his wife dies or disappears, how does he offer the Agnihotra?’ ‘Sons, grandsons and great grandsons (he wins)’ they say ‘in this and yonder world ; in this world is yonder (world) of heaven, by that which is not heaven one mounts to the world of heaven.’ He maintains the continuity of yonder world. Therefore they perform the piling for one without a wife....

‘यस्यैषां पत्नी नैच्छेत्’ इत्यस्य स्थाने ‘य एषां पत्नी नैच्छेत्’ इति साधु इति
कीथमहोदयानां मतम् । हाउग्महोदयैः कृत ऐब्रा—अनुवादोऽपि द्रष्टव्यः ।

यत्पूर्वमुपमाष्टिं तत्कूर्चे निलिम्पति यद् द्वितीयं तदक्षिणेन कूर्चमुत्तानं पाणिं निदधाति० अथ यद् द्विः प्रदेशिन्या प्राश्नाति० अथ यत् सुचा भक्षयति० अथ यत् सुचं निर्लेढि० अथ यत् सुचं मार्जयते० अथ यत् प्रागुदीचीरप उत्तिञ्चति० अथ यत् प्रागुदीचीं सुचमुद्दिशति० आहवनीय एव जुहुयादिति हैक आहुः । सर्वेषु त्वेव जुहुयात् । होमाय हेत आधीयन्ते । चतस्रो गार्हपत्ये चतस्रोऽन्वाहार्यपचने द्वे आहवनीये । ता दश संपद्यन्ते० अथ यद्भुत्वाऽग्नीनुप-
तिष्ठते० यद्वेव वत्सं स्पृशति तस्माद्वात्सप्रम्० अथ यदप आचम्य व्रतं विसृजते० ॥

अथ यत् प्रवत्स्यंश्च प्रोषिवांश्चाऽग्नीनुपतिष्ठते० अथ यदरण्योरग्नीन् समारोहयते० यद्वेव पुनः पुनर्निर्भन्थते तेनो हैवाऽस्य पुनराधेयमुपासं भवति० ॥

गोत्रा [१.३.११-१२]—

अथ ह प्राचीनयोग्य आजगामाऽग्निहोत्रं भवन्तं पृच्छामि गौतमेति इति । पृच्छ प्राचीनयोग्येति । किदेवत्यं ते गवीडायां, किदेवत्यमुपहूतायां, किदेवत्यमुपसृष्टायां, किदेवत्यं वत्स-
मुन्नीयमानं, किदेवत्यं वत्समुन्नीतं, किदेवत्यं दुह्यमानं, किदेवत्यं दुग्धं, किदेवत्यं प्रक्रम्यमाणं, किदेवत्यं ह्रियमाणं, किदेवत्यमधिश्रीयमाणं, किदेवत्यमधिश्रितं, किदेवत्यमभ्यवज्वालयमानं, किदेवत्यमभ्यव-
ज्वालितं, किदेवत्यं समुद्धान्तं, किदेवत्यं विष्यन्नं, किदेवत्यमद्भिः प्रत्यानीतं, किदेवत्यमुद्वास्यमानं, किदेवत्यमुद्वासितं, किदेवत्यमुन्नीयमानं, किदेवत्यमुन्नीतं, किदेवत्यं प्रक्रम्यमाणं, किदेवत्यं ह्रियमाणं, किदेवत्यमुपसाद्यमानं, किदेवत्यमुपसादितं, किदेवत्यां समित्, किदेवत्यां प्रथमामाहुतिमहौषीः, किदेवत्यं गार्हपत्यमवेक्षिष्ठाः, किदेवत्योत्तराहुतिः, किदेवत्यं हुत्वा सुचं त्रिरुदञ्चमुदनैषीः, किदेवत्यं बर्हिषि सुचं निधायोन्मृज्योत्तरतः पाणी निर्माक्षीः, किदेवत्यं द्वितीयमुन्मृज्य पितृमुपवीतं कृत्वा दक्षिणतः पितृभ्यः स्वधामकार्षीः, किदेवत्यं प्रथमं प्राशीः किदेवत्यं द्वितीयं, किदेवत्यमन्ततः सर्वमेव प्राशीः, किदेवत्यमप्रक्षालितयोदकं सुचा न्यनैषीः, किदेवत्यं प्रक्षालितया, किदेवत्यमपरेणाऽऽहवनीयमुदकं सुचा न्यनैषीः, किदेवत्यं सुवं सुचं च प्रत्यताप्सीः, किदेवत्यं रात्रौ सुग्दण्डमवामाक्षीः, किदेवत्यं प्रातरुदमाक्षीरिति । एतच्चेद्वेत्य गौतम हुतं ते, यद्यु न वेत्याऽहुतं त इति ब्राह्मणम् ।

स होवाच रौद्रं मे गवीडायां, मानव्यमुपहूतायां, वायव्यमुपसृष्टायां, वैराजं वत्स-
मुन्नीयमानं, जागतमुन्नीतं, आश्विनं दुह्यमानं, सौम्यं दुग्धं, बर्हिस्पत्यं प्रक्रम्यमाणं, द्यावापृथिव्यं ह्रियमाणम्, आग्नेयमधिश्रीयमाणं, वैश्वानरीयमधिश्रितं, वैष्णवमभ्यवज्वालयमानं, मारुतमभ्यवज्वालितं, पौष्णं समुद्धान्तं, वारुणं विष्यन्नं, सारस्वतमद्भिः प्रत्यानीतं, त्वाष्ट्रमुद्वास्यमानं, धात्रमुद्वासितं, वैश्वदेवमुन्नीयमानं, सावित्रमुन्नीतं, बर्हिस्पत्यं प्रक्रम्यमाणं, द्यावापृथिव्यं ह्रियमाणम्, ऐन्द्रमुप-
साद्यमानं, बलायोपसन्नम्, आग्नेयी समित्, यां प्रथमामाहुतिमहौषं मामेव तत्त्वर्गे लोकेऽधा, यद्गार्हपत्यमवेक्षिष्वस्य लोकस्य संतत्यै, प्राजापत्योत्तराहुतिः तस्मात् पूर्णतरा मनसैव सा,

यद्धृत्वा सुचं त्रिरुदश्चमुदनैष रुद्रास्तेनाऽग्रैषं, यद्वर्हिषि सुचं निधायोन्मृज्योत्तरतः पाणी निरमार्क्ष-
मोषधिवनस्पतीस्तेनाऽग्रैषं, यद् द्वितीयमुन्मृज्य पितृयुपवीतं कृत्वा दक्षिगतः पितृभ्यः स्वधामकार्ष-
पितृस्तेनाऽग्रैषं, यत्प्रथमं प्राशिषं प्राणास्तेनाऽग्रैषं, यद् द्वितीयं गर्भास्तेन, तस्मादनश्नन्तो गर्भा-
जीवन्ति, यदन्ततः सर्वमेव प्राशिषं विश्वान् देवास्तेनाऽग्रैषं, यदप्रक्षालितयोदकं सुचा न्यनैषं
सपेंतरजनास्तेनाऽग्रैषं, यत्प्रक्षालितया सर्पपुण्यजनास्तेन, यदपरेणाऽऽहवनीयमुदकं सुचा न्यनैषं
गन्धर्वाप्सरसस्तेनाऽग्रैषं, यत् सुचं सुचं च प्रत्यताप्सं सप्तऋषीस्तेनाऽग्रैषं, यद्रात्रौ सुगदण्ड-
मवामार्क्ष ये रात्रौ संविशन्ति दक्षिणांस्तानुदनैषं, यत्प्रातरुदमार्क्ष ये प्रातः प्रव्रजन्ति दक्षिणांस्ता-
नुदनैषमिति ब्राह्मणम् ॥

जैत्रा [१.१-४५]—

अग्निहोत्रहोमविधिः

तद्वा अपराजितं यदग्निहोत्रम् ० स यत्पुरस्तादप उपस्पृशति ० अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः
स्वाहा इत्यष्टाक्षरेण जुहोति ० मनसा निष्केवत्येनोत्तरामाहुतिं जुहोति ० उपरिष्टादप
उपस्पृशति ० स यदेते सायमाहुती जुहोति ० अथ यदेते प्रातराहुती जुहोति ० तदेतदपर्यन्तं
यदग्निहोत्रम् ० अथ पशुकामः सायं पशुषु समेतेष्वग्निहोत्रं जुहुयात् ० अविस्पृष्टेषु प्रातः ० अथ
स्वर्गकामः द्वौ समुद्रावचर्यौ विततौ महान्तावा वरीवर्तेते चर्येव पादौ इति ० अस्तमिते पुरा
तमिस्त्रायै सुव्युष्टायां पुरोदयात् ० स यद्ब्राह्मणोऽग्निहोत्रपात्राणि निर्णेनेक्ति ० अथ यत्पयो
दुहन्ति ० अथ यदङ्गारान् निरूहति ० अथ यत्तृणेनाऽवद्योतयति ० अथ यदपः प्रत्यानयति ०
अथ यत्समिधमभ्यादधाति ० सोमाहुतिघट्टः । प्राणाय त्वा इति समिधमभ्यादधाति । अपानेऽ-
मृतमधां स्वाहा इति जुहोति । अथ सुचमभिमृशति हृदयं प्रेतिर्मनः संततिश्चक्षुरानतिः
श्रोत्रमुपनतिर्वागागतिः ॥ प्रतीतं देवेभ्यो जुष्टं हव्यमस्थात् ॥ अमृते मामधात् ॥ आ मां प्राणा
विशन्तु भूयसे सुकृतायेति ० तद्वा जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ वेत्याऽग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य
इति । वेदेति होवाच । किमिति । पय इति । यत्पयो न स्यात् केन जुहुया इति । ब्रीहि-
यवाम्यामिति । यद्ब्रीहियवौ न स्यातां केन जुहुया इति । यदन्यद्वाग्यं तेनेति । यदन्यद्वाग्यं
न स्यात् केन जुहुया इति । आरण्याभिरोषधीभिरिति । यदारण्या ओषधयो न स्युः केन
जुहुया इति । अद्भिरिति । यदापो न स्युः केन जुहुया इति । स होवाच न वा इह तर्हि
किंचनाऽऽसीदथैतदु हूयत इव सत्यं श्रद्धायामिति । तं होवाच वेत्याऽग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य
नमस्तेऽस्तु सहस्रं भगवो दद्यु इति ० रौद्रं गवि, वायव्यमुपस्पृष्टमाश्विनं दुह्यमानमग्नीषोमीयं
दुग्धं, पौष्णाः प्रेन्दवो, मैत्रः शरो, वारुणमधिश्रितं, वैष्णवं प्रतिष्ठाप्यमानं, वैश्वदेवमुन्नीतं, सवितुः
प्रक्रान्तं, द्यावापृथिव्योरुपसन्नम्, इन्द्राग्न्योः पूर्वाहुतिः, प्रजापतेरुत्तरा । तदेतत् सप्तदशमग्नि-
होत्रम् ० तद्वैतदग्निहोत्रं द्वादशाहं ब्रह्म जुहुवांचकार । द्वादशाहं प्रजापतिर्द्वादशाहं देवाश्चर्ययश्च ।

तद् द्वादशाहं द्वादशाहं हुत्वा कामान् निकामानापुः । किमु य एनं यावज्जीवं जुहुयात्०
 उपसृज्याऽग्निहोत्रीमित्याह उपसृष्टे द्वावापृथिवी । रुद्रा उपगृह्णन्ति वसूनां दुग्धम् । भूतकृत
 स्थ निरूढं जन्यं भयमित्यङ्गारान् निरूहति । अथाऽधिश्चयति वैश्वानरस्याऽधिश्चित्तमसि ॥
 अग्निस्ते तेजो मा प्रतिधाक्षीत् ॥ सत्याय त्वा इति । अथाऽवद्योतयति सं ज्योतिषा ज्योतिरिति ।
 अथाऽपः प्रत्यानयति यस्ते अप्सु रसः प्रविष्टस्तेन संपृच्यस्व इति । स यदेवाऽस्य तत्र दिशो
 प्रसन्ते तदेवाऽस्य तत्समन्वानयति अन्तरितं रक्षोऽन्तरिता अरातय इति । त्रिः पर्यग्नि
 करोति । अथोद्वासयति दिवं दंहाऽन्तरिक्षं दंह पृथिवीं दंह प्रजां पशून् जुहोती मे दंह इति ।
 भूतकृत स्थ प्रत्यूढं जन्यं भयमित्यङ्गारान् प्रत्यूहति । अथ सुवं च सुचं चाऽऽदाय निष्ठपति
 प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातय इति । अथ सुचं संमार्ष्टि सजूर्देवेभ्यः सायंयावभ्य इति सायम् ।
 सजूर्देवेभ्यः प्रातर्यावभ्य इति प्रातः । सुवर्णां त्वां सुवर्णमयीम् ॥ हिरण्ययष्टिरस्यमृतपलाशा
 स्रोतो यज्ञानाम् इति० अथाऽऽह उन्नेष्यामि इति । ओं मामहं स्वर्गं लोकमभि इति
 ब्रूयात् । स यं प्रथमं सुवमुन्नयति० अथ यं द्वितीयं सुवमुन्नयति० अथ यं तृतीयं सुव-
 मुन्नयति० अथ यं चतुर्थं सुवमुन्नयति० अथ समिधमादाय प्राङ् प्रैति । पुरुष इत्समिद् ।
 तमन्नमिन्वे अन्नस्य मा तेजसा स्वर्गं लोकं गमय ॥ यत्र देवानामृषीणां प्रियं धाम तत्र म
 इदमग्निहोत्रं गमय इति । तूष्णीमुपसादयति । अथ समिधमभ्यादधाति स्वर्गस्य त्वा लोकस्य
 संक्रमणं हिरण्मयं वंशं दधामि स्वाहा इति । अथ जुहोति । स यां प्रथमां जुहोति देवांस्त-
 याऽऽप्नोति । अथ यां द्वितीयां जुहोत्यृषींस्तयाऽऽप्नोति । अथोपमार्ष्टि । स यत्प्रथममुपमार्ष्टि०
 अथ यद्द्वितीयमुपमार्ष्टि० अथ यद्द्विरङ्गुल्या प्राश्नाति० अथ यत्सुचा प्राश्नाति० अथ यत्सुचं
 निरश्नाति० अथ यत्सुचः संक्षालनं निनयति० अथ या एतास्सुचो निर्णिज्योदीचीरप उत्ति-
 ष्चति० अथ यत्स्थालीसंक्षालनं निनयति० अथ यत् पश्चाद्वा पुरस्ताद्वा परिक्रम्य दक्षिणतोऽ-
 ग्नीनामास्ते प्रजापतिरेव तद् भूत्वाऽऽस्ते कमहमस्मि कं मम इति० ॥

अग्निहोत्रप्रायश्चित्तानि

अग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रोचति

तैत्रा [१.४.४.]—यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रोचति । दर्भेण हिरण्यं
 प्रबध्य पुरस्ताद्धरेत् । अथाऽग्निम् । अथाऽग्निहोत्रम्० अग्निहोत्रमुपसांवाऽऽ तमितोरासीत्० यस्या-
 ऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रोचति । पुनः समन्य जुहोति० यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रो-
 चति । वारुणं चरुं निर्वपेत्० ॥

मैसं [१.८.७]—यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रोचेद्यो ब्राह्मणो बहुवित्स
 उद्धरेत्० अग्निहोत्रेणाऽनुद्धवेत्० वरो दक्षिणा० ॥

शत्रा [१२.४.४.६]—यस्याऽऽहवनीयमनुद्धृतमादित्योऽभ्यस्तमियात्० तत्रेत्यं कुर्यात्० हरितं हिरण्यं दर्भं प्रबध्य पश्चाद्धर्तवै ब्रूयात्० अथेधमादीप्य प्राञ्चं हर्तवै ब्रूयात्० तमुपसमाधाय प्रतिपरेत्य गार्हपत्य आज्यमधिश्रित्योद्वाप्त्योत्पूयाऽवेक्ष्य चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा समिधमुपसंगृह्य प्राहुदाद्रवति । अथाऽऽहवनीये समिधमभ्याधाय दक्षिणं जान्वाच्य जुहोति विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति० ॥

काशत्रा [१४.७.४.५] ≡ शत्रा

(दृश्यताम् ऐत्रा ७.११ 'अग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति')

जैत्रा [१.६२]—अथो खल्वाहुर्गदाहवनीयमनुद्धृतमभ्यस्तमियात् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति० स दर्भेण सुवर्णं हिरण्यं प्रबध्य पश्चाद्धरेत्० अथेधमादीप्य प्राञ्चं हरेयुः । तमुपसमाधाय चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति जुहुयात्० ॥

अग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति

तैत्रा [१.४.४]—यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । चतुर्गृहीतमाज्यं पुरस्ताद्धरेत् । अथाऽग्निम् । अथाऽग्निहोत्रम्० यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । उषाः केतुना जुषतां यज्ञं देवेभिरिन्वितम् । देवेभ्यो मधुमत्तम् स्वाहेति प्रत्यङ् निषद्याऽऽज्येन जुहुयात्० अग्निहोत्रमुपसाद्याऽऽ तमितोरासीत्० यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । मैत्रं चरुं निर्वपेत्० ॥

शत्रा [१२.४.४.७]—यस्याऽऽहवनीयमनुद्धृतमादित्योऽभ्युदियात्० तत्रेत्यं कुर्यात् । रजतं हिरण्यं दर्भं प्रबध्य पुरस्ताद्धर्तवै ब्रूयात्० अथेधमादीप्याऽन्वञ्चं हर्तवै ब्रूयात्० तमुपसमाधाय प्रतिपरेत्य गार्हपत्य आज्यमधिश्रित्योद्वाप्त्योत्पूयाऽवेक्ष्य यथागृहीतमाज्यं गृहीत्वा समिधमुपसंगृह्य प्राहुदाद्रवति । अथाऽऽहवनीये समिधमभ्याधाय दक्षिणं जान्वाच्य जुहोति विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति० ॥

काशत्रा [१४.७.४.६] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.११]—यस्याऽग्निमनुद्धृतमादित्योऽभ्युदियाद्वाऽभ्यस्तमियाद्वा प्रणीतो वा प्राग्घोमादुपशाम्येत्० हिरण्यं पुरस्कृत्य सायमुद्धरेत्० रजतमन्तर्धीय प्रातर्द्धरेत्० पुरा संभेदाच्छायानामाहवनीयमुद्धरेत्० ॥

जैत्रा [१.६२-६३]—अथो खल्वाहुर्गदाहवनीयमनुद्धृतमभ्युदियात् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति० स दर्भेण रजतं हिरण्यं प्रबध्य पुरस्ताद्धरेत्० अथेधमादीप्याऽन्वञ्चं हरेयुः । तमुपसमाधाय चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति जुहुयात्० ॥

अग्नावग्निमभ्युद्धरेयुः

तैस [२.२.४]—अग्नयेऽग्निवते पुरोडाशमष्टाकपाठं निर्वपेद्यस्याऽग्नावग्निमभ्युद्धरेयुः० ॥

[१.४.४६]—अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाङ् जुह्वास्यः ॥ त्वँ ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता । सखा सख्या समिध्यसे ॥

मैसं [१.८.८-९]—अग्नयेऽग्निमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्ना अग्निमभ्युद्धरेयुः० अन्वग्निरुषसामग्रमक्शदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ इत्यभिमन्त्रयेत् ।

[४.१०.२]—अग्निनाऽग्निः समिध्यते.... ॥ त्वँ ह्यग्ने अग्निना.... ॥

शत्रा [१२.४.३.४-५]—यस्याऽग्नावग्निमभ्युद्धरेयुः० तदभिमन्त्रयेत् । समितँ संकल्पेथाँ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभिसंवसानौ ॥ सं वां मनाँसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याऽधिपा भव त्वन्न इषमूर्जं यजमानाय घेहीति० यद्यु अस्य हृदयं व्येव लिखेत् । अग्नयेऽग्निमतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्याऽऽवृत् । सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात् । वार्त्रग्नावाज्यभागौ । विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यानुवाक्ये—अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाङ् जुह्वास्य इति । अथ याज्या—त्वँ ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता । सखा सख्या समिध्यसे इति० ॥

काशत्रा [१४.७.३.४] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.६]—यस्याऽग्नावग्निमुद्धरेयुः० स यद्यनुपश्येदुदूह्य पूर्वमपरं निदध्यात् । यद्यनानुपश्येत्सोऽग्नयेऽग्निवतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत्तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ अग्निनाऽग्निः समिध्यते ’ (ऋसं १.१२.६) ‘ त्वं ह्यग्ने अग्निना ’ (ऋसं ८.४३.१४) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयाद् अग्नयेऽग्निवते स्वाहेति० ॥

जैत्रा [१.६५]—अथो खल्वाहुयदग्नावग्निमभ्युद्धरेत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । अग्नयेऽग्निमत इष्टिं निर्वपेत् । एता एव पञ्चदश सामिधेनीर्वार्त्रग्नावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यापुरोनुवाक्ये—अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाङ् जुह्वास्यः इति । अथ याज्या—त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता । सखा सख्या समिध्यसे इति । अथो हैनया ब्रह्मवर्चसकामो यजेत० ॥

अग्निहोत्री दोह्यमानोपविशेत्

तैत्रा [१.४.३]—यस्याऽग्निहोत्री निषीदति । तामुत्थापयेत् । उदस्थोदेव्यदितिरिति० उदस्थोदेव्यदितिर्विश्वरूप्यायुर्यज्ञपतावधात् । इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय च० यस्याऽग्निहोत्र्युपसृष्टा निषीदति । तां दुग्ध्वा ब्राह्मणाय दद्यात् । यस्याऽन्नं नाऽद्यात्० दुग्ध्वा ददाति । न ह्यदृष्टा दक्षिणा दीयते ॥

मैसं [१.८.८]—याऽग्निहोत्रायोपसृष्टा निषीदेद्यस्याऽन्नं नाऽद्यात्तस्मै तां दद्यात्०
गृहे तु तस्य ततः परो नाऽश्रीयत् ॥

शत्रा [१२.४.१.९-१०]—यस्याऽग्निहोत्री दोह्यमानोपविशेत्० तां हैके
यजुषोत्थापयन्ति । उदस्थादेव्यदितिरिति० तां तस्यामाहुत्यां ब्राह्मणाय दद्यात् यमनभ्यागमिष्यन्
मन्येत० तदु होवाच याज्ञवल्क्यः० इत्थमेव कुर्यात् । दण्डेनैवैनां विपिष्योत्थापयेदिति० ॥

काशत्रा [१४.७.१.७] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.३]—यस्याऽग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमानोपविशेत्० तामभिमन्त्रयेत् ।
यस्माद्धीषा निषीदसि ततो नो अभयं कृधि । परशून्ः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीळहुष
इति । तामुत्थापयेत् उदस्थादेव्यदितिरायुर्यज्ञपतावधात् । इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय
चेति । अथाऽस्या उदपात्रमूषसि च मुखे चोपगृह्णीयात् । अथैनानां ब्राह्मणाय दद्यात्० ॥

जैत्रा [१.५८-५९]—तदाहुर्देतस्य दीर्घसन्निधोऽग्निहोत्रं जुह्वतोऽग्निहोत्री दुह्य-
मानोपविशेत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । तामु हैके यजुषोत्थापयन्ति० तामुत्थापयन्त्यु-
दस्थादेव्यदितिरिति० तां तस्यामेवाऽऽहुतौ हुतायां ब्राह्मणाय ददति । यं संवत्सरमनभ्यागमिष्यन्तो
भवन्ति० इत्थमेव कुर्यात् । दण्डमेव लब्ध्वा तेनैनां विपिष्योत्थापयेत्० ॥

अग्निहोत्री दोह्यमाना वाश्येत

शत्रा [१२.४.१.१२]—यस्याऽग्निहोत्री दोह्यमाना वाश्येत० स्तम्बमाच्छिद्य
प्रासयेत्० ॥

काशत्रा [१४.७.१.९] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.३]—यस्याऽग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमाना वाश्येत० तामन्नमप्यादथे-
च्छान्त्यै० सूयवसांद्भगवती हि भूयात् (ऋसं १.१६४.४०) इति० ॥

अग्निहोत्री लोहितं दुहीत

शत्रा [१२.४.२.१]—यस्याऽग्निहोत्री लोहितं दुहीत० व्युत्क्रामतेत्युक्त्वा मेक्षणं
कृत्वा । अन्वाहार्यपचनं परिश्रयितवै ब्रूयात् । तस्मिन्नेनच्छ्रपयित्वा । तस्मिंस्तूर्णीं जुहुयात्०
तां तस्यामाहुत्यां ब्राह्मणाय दद्याद्यमनभ्यागमिष्यन् मन्येत० यदन्यद्विन्देत् । तेन जुहुयात्० ॥

काशत्रा [१४.७.२.१] ≡ शत्रा

जैत्रा [१.६०]—अथो खत्वाहुर्देवा लोहितं दुहीत किं तत्र कर्म का प्राय-
श्चित्तिरिति० स व्युत्क्रामतेत्युक्त्वाऽन्वाहार्यपचनं परिच्छादयितवै ब्रूयात् । तदधिश्रित्य मेक्षणं
कृत्वा श्रपयेत् । तत्तदेव तूर्णीं निनयेत्० अथो भूर्भुवः स्वरित्येतामिर्व्याद्वितिभिः० ॥

अग्निहोत्रं स्कन्दति

तैत्रा [१.४.३]—यस्याऽग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति । यदद्य दुग्धं पृथिवीमसक्तं यदोषधीरप्यसरद्यदापः । पयो गृहेषु पयो अग्नियासु पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयीत्याह । अप उपसृजति० अथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

मैसं [१.८.३]—यत्र स्कन्देत्तदपो निनयेत्० यद्यधिश्रितं स्कन्देद्यद्युद्रास्यमानं यद्युद्रासितं यद्युनीयमानं यद्युनीतं यदि पुरः पराहृतं होमाय पुनरवनीयाऽन्याऽभिदुह्या० वारुणीमृचमनूच्य वारुण्या होतव्यम् ॥

कासं [६.३]—स्कन्नं वाव तत् परि चेदाकरोति । या स्थात्यग्निहोत्रतपनी तया दुह्यात्० अद्भिः प्रतिषिञ्चति० यद्यधिश्रीयमाणं यद्यधिश्रितं स्कन्देदन्यामभिदुह्याऽधिश्रित्योनीय जुहुयात्० यद्युनीयमानं यद्युनीतं यदि पुर उपसन्नमहुतं स्कन्देत्पुनरवनीयाऽन्यामभिदुह्याऽधिश्रित्योनीय जुहुयात्० यत्र स्कन्देत्तदपो निनयेत्० ॥

कपिसं [४.२] ≡ कासं

शत्रा [१२.४.१.६]—यस्याऽग्निहोत्रं दोह्यमानं स्कन्देत्० स्कन्नप्रायश्चित्तेनाऽभिमृश्य । अद्भिरुपनिनीय परिशिष्टेन जुहुयात्० ॥

काशत्रा [१४.७.१.५] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.३]—यस्याऽग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमाना स्पन्देत्० सां यत्तत्र स्कन्देत्तदभिमृश्य जपेत् यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृतं यदोषधीरत्यसृपद्यदापः । पयो गृहेषु पयो अन्यायां पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयीति । तत्र यत्परिशिष्टं स्यात्तेन जुहुयाद्यद्यं होमाय स्यात् । यद्यु वै सर्वं सितं स्यादथाऽन्यामाहूय तां दुग्ध्वा तेन जुहुयात्० ॥

जैत्रा [१.५३]—तदाहुर्यदेतस्य दीर्घसत्रिणोऽग्निहोत्रं जुह्वतोऽग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्देत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । यदेव तत्र स्थात्यां परिशिष्टं स्यात्तेन जुहुयात् ॥

(द्रष्टव्यं 'अग्निहोत्रं सुच्युनीतं स्कन्देत्' 'उद्धृतस्य स्कन्देत्')

दुह्यमानाऽवभिन्धात्

मैसं [१.८.३]—यदि दुह्यमानाऽवभिन्धादन्यया स्थात्या निर्णिज्य दोह्या० ॥

कासं [६.३]—यदि दुह्यमानाऽवभिन्धादन्यया स्थात्या दुह्यात्० ॥

कपिसं [४.२] ≡ कासं

शत्रा [१२.४.१.६-८]—यद्यु नीची स्थाली स्यात् । यदि वा भिद्येत । स्कन्नप्रायश्चित्तेनैवाऽभिमृश्याऽद्भिरुपनिनीय । यदन्यद्विन्देतेन जुहुयात्० अथ यत्र स्कन्नं स्यात् । तदभिमृशेत् । अस्कन्नधित प्राजनीति० अथ यत्राऽवभिन्नं स्यात्तदुदस्थालीं वैवोद-

कमण्डलुं वा निनयेत्० भूर्भुवः स्वरित्येताभिर्व्याहृतिभिः० तानि कपालानि संचिन्य । यत्र भस्मोद्धृतं स्यात् । तन्निवपेत्० ॥

काशब्रा [१४.७.१.५] ≡ शब्रा

जैब्रा [१.५३-५४]—यद्यु नीची स्थाली स्यादपि वा भिद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । स्कन्नप्रायश्चित्त्यै वाऽभिमृश्य अस्कन्नधित इति । अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात्० अथो यत्रैतद्विभिन्नं तदुदपात्रं वैवोदकमण्डलुं वोपनिनयेद् भूर्भुवः स्वः इत्येताभिर्व्याहृतिभिः० अथैतानि कपालानि संचिन्य (? °त्य) यत्राऽऽहवनीयस्य भस्मोद्धृतं स्यात्तदुप-
निकिरेत् । एतदेवाऽत्र कर्म ॥

कीटोऽवपद्येत

तैब्रा [३.७.२]—यत्कीटावपन्नेन जुहुयात् । अप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् । यदनायतने निनयेत् । अनायतनः स्यात् । मध्यमेन पर्णेन द्वावापृथिव्ययर्चाऽन्तःपरिधि निनयेत्० तत्कृत्वा । अन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कासं [३५.१८]—यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानस्स्यात् । यदनायतने निनयेदनायतनस्स्यात् । मध्यमेन पर्णेन द्वावापृथिव्ययर्चाऽन्तःपरिधि निनयेत्० ॥

कपिसं [४८.१६] ≡ कासं

कासं [३५.१९]—यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानस्स्यात् । यत्र जुहुयादार्तिमाच्छेत् । प्राजापत्ययर्चा कल्मीकवपायामवनयेत्० तद्धुत्वाऽथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कपिसं [४८.१७] ≡ कासं

अग्निहोत्रं दोह्यमानममेध्यमापद्येत

शब्रा [१२.४.२.२]—यस्याऽग्निहोत्रं दोह्यमानममेध्यमापद्येत० तद्वैके होतव्यं मन्यन्ते० इत्यमेव कुर्यात् । गार्हपत्यादुष्णं भस्म निरुह्य । तस्मिन्नेनदुष्णे भस्मंस्तूष्णीं निनयेत् । अद्विरुपनिनयति० यदन्यद्विन्देत् । तेन जुहुयात्० ॥

काशब्रा [१४.७.२.२] ≡ शब्रा

जैब्रा [१.५५]—तदाहुयदेतस्य दीर्घसत्रिणोऽग्निहोत्रं जुह्वतोऽग्निहोत्रं दुह्यमानममेध्यमापद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । तदु वैके होतव्यमेव मन्यन्ते० तदु तथा न विद्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । गार्हपत्यस्यैवोष्णं भस्म निरुह्य तस्मिन्नेनतूष्णीं निनयेत्० अद्विरनुनिनयेत्० अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात् ॥

अग्निहोत्रं दोहितममेध्यमापद्येत

शत्रा [१२.४.२.३]—यस्याऽग्निहोत्रं दोहितममेध्यमापद्येत० य एवैतेऽङ्गारा निरूढाः । येष्वधिश्रयिष्यन् भवति । तान् प्रत्युह्य तस्मिन्नेनदुष्णे भस्मस्तूष्णीं निनयेत् । अद्विरुपनिनयति० अथ यदन्यद्विन्देत् । तेन जुहुयात्० ॥

काशत्रा [१४.७.२.३] ≡ शत्रा

जैत्रा [१.५५]—अथो खल्वाहुयददुग्धममेध्यमापद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । येष्वङ्गारेष्वधिश्रयिष्यन् स्यात्तानेव प्रत्युह्य तेष्वेवैनतूष्णीं निनयेत्० अद्विरनु-
निनयेत्० अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात् ॥

अग्निहोत्रं विष्यन्देत

तैत्रा [३.७.२]—यद्विष्यण्णेन जुहुयात् । अग्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् । यदनायतने निनयेत् । अनायतनः स्यात् । प्राजापत्ययर्चा बल्मीकवपायामवनयेत्० भूरित्याह० तत्कृत्वा । अन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

ऐत्रा [७.५]—यस्याऽग्निहोत्रमधिश्रितं स्कन्दति वा विष्यन्दते वा० तदद्विरुप-
निनयेच्छान्त्यै० अथैनदक्षिणेन पाणिनाऽभिमृश्य जपति दिवं तृतीयं देवान् यज्ञोऽगात्ततो मा
द्रविणमाष्ट । अन्तरिक्षं तृतीयं पितृन् यज्ञोऽगात्ततो मा द्रविणमाष्ट । पृथिवीं तृतीयं मनुष्या-
द्यज्ञोऽगात्ततो मा द्रविणमाष्ट । ययोरोजसा स्कमिता रजांसीति वैष्णुवारुणीमृचं जपति० ॥

अग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत

शत्रा [१२.४.२.४]—यस्याऽग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत० य एवैतेऽङ्गारा निरूढाः । येष्वधिश्रितं भवति । तेष्वेनतूष्णीं जुहुयात्० अद्विरुपनिनयति० अथ यदन्यद्विन्देत् तेन जुहुयात् ॥

काशत्रा [१४.७.२.४] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.५]—यस्याऽग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत० सर्वमेवैनत् क्षुच्यभिपर्यासिष्य
प्राङ्मुदेत्याऽऽहवनीये हैतां समिधमभ्यादधाति । अथोत्तरत आहवनीयस्योष्णं भस्म निरूह्य
जुहुयान्मनसा वा प्राजापत्यया वर्चा । तद्भुतं चाऽहुतं च । स यद्येकस्मिन्नुनीते यदि द्वयोरेष
एव कल्पः । तच्चेद्व्यपनयितुं शक्नुयान्निःषिच्यैतद्दुष्टमदुष्टमभिपर्यासिष्य तस्य यथोनीती स्यात्तथा
जुहुयात्० ॥

जैत्रा [१.५५]—अथो खल्वाहुयदधिश्रितममेध्यमापद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । येष्वङ्गारेष्वधिश्रितं स्यात्तानेव प्रत्युह्य तेष्वेवैनतूष्णीं निनयेत्० अद्विरनु-
निनयेत्० अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात् ॥

अग्निहोत्रेऽधिश्रिते आ वा अनो वा रथो वाऽन्तराऽग्नी धावति

तैत्रा [१.४.३]—यस्याऽग्निहोत्रेऽधिश्रिते आऽन्तरा धावति० यदपोऽन्वति-

विश्वेत्० गार्हपत्याद्भस्माऽऽदाय इदं विष्णुर्विचक्रम इति वैष्णव्यर्चाऽऽहवनीयाद् ध्व५ सयन्नु-
द्ववेत्० भस्मना पदमपिवपति शान्त्यै ॥

तैत्रा [१.४.४]—यस्याऽनो वा रथो वाऽन्तराऽग्नी याति । आहवनीयमुद्राप्य ।
गार्हपत्यादुद्धरेत् । यदग्ने पूर्वं प्रभृतं पद५ हि ते । सूर्यस्य रस्मीनन्वाततान । तत्र रयिष्ठामनु-
संभरैतम् । सं नः सृज सुमत्या वाजवत्येति० त्वमग्ने सप्रथा असि....इत्याह० अग्नये पथिकृते
पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्० अनड्वान् दक्षिणा । वही ह्येष समृद्धयै० ॥

मैसं [१.८.९]—त्रयस्त्रिंशत्तन्त्वो य० वितन्वत इमं च यज्ञ० सुधया ददन्ते ।
तेभिश्चिद्धमपिदध्मो यदत्र स्वाहा यज्ञो अप्येतु देवान् ॥ इति जुहुयाद्यद्यनो वा रथो वाऽन्तरा
वियायात्० एतद्ध स्म वा आहुर्दाक्षायणास्तन्तून्समवृक्षद् गामन्वत्यावर्तयेति । गौहिं यज्ञिया
मेध्या । इदं विष्णुर्विचक्रमा इति पद० योपयति० अपोऽन्वतिषिञ्चति शान्त्यै ॥

शत्रा [१२.४.१.४-५]—त्रयो ह त्वाव पशवोऽमेध्याः । दुर्वराह एडकः
श्वा । तेषां यद्यधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽन्तरेण कश्चित् संचरेत्० तद्वैके गार्हपत्याद्भस्मोपहत्याऽऽहवनीया-
न्निवपन्तो यन्ति ' इदं विष्णुर्विचक्रमे ' (वासं ५.१५) इत्येतयर्चा० तदु तथा न कुर्यात्०
इत्यमेव कुर्यात् । उदस्थाली वैवोदकमण्डलं वाऽऽदाय । गार्हपत्यादग्र आऽऽहवनीयान्निय-
न्रियात् । इदं विष्णुर्विचक्रम इत्येतयर्चा० ॥

काशत्रा [१४.७.१.४] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.१२]—यस्य गार्हपत्याहवनीयावन्तरेणाऽनो वा रथो वा श्वा वा
प्रतिपद्येत० नैतन्मनसि कुर्यादित्याहुरात्मन्यस्य हि ता भवन्तीति । तच्चेन्मनसि कुर्वीत गार्ह-
पत्यादविच्छिन्नामुदकधारां हरेत् ' तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ' (ऋसं. १०.५३.६)
इत्याऽऽहवनीयात्० ॥

जैत्रा [१.५१-५२]—तदाहुयदेतस्य दीर्घसत्रिणोऽग्नि (? °ग्निहोत्रं) जुह्वतोऽ-
ग्नीनन्तरेण युक्तं वा वियायात्सं वा चरेयुः किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति० कुर्वीत हैव
निष्कृतिमपि हेष्टया यजेत । तदु तथा न विद्यात्० स विद्याद्यदि मेऽपि ग्राम एवाऽग्नी-
नन्तरेणाऽयासीन्नैव म आर्तिरस्ति न रिष्टिः का चनेति । त्रयो ह त्वै ग्राम्याः पशवोऽजुष्टा
दुर्वराह एडकः श्वा । तेषां यदि कश्चिदन्तरेण सन्नेजीयेत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति ।
तदु हैके छादिमुष्टिमेव निवपन्तो यन्ति । गार्हपत्यादाऽऽहवनीयान्नियन्रियात् इदं विष्णु-
र्विचक्रमे इत्येतयर्चा । तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । उदपात्रं वैवोदकमण्डलं वाऽऽदाय
गार्हपत्यादाऽऽहवनीयान्नियन्रियात् इदं विष्णुर्विचक्रमे इत्येतयर्चा ॥

अधिश्रितेऽग्निहोत्रे यजमानो म्रियेत

शब्रा [१२.४.२.५]—यदधिश्रितेऽग्निहोत्रे यजमानो म्रियेत० तदेवैनदभि-
पर्याधाय विष्यन्दयेत्० ॥

काशब्रा [१४.७.२.५] ≡ शब्रा

ऐत्रा [७.१]—य आहिताग्निरधिश्रितेऽग्निहोत्रे सांनार्ये वा हविःषु वा म्रियेत०
अत्रैवान्यनुपर्यादध्याद्यथा सर्वाणि संदह्येरन्० ॥

जैत्रा [१.५७]—अथो खल्वाहुर्यदधिश्रिते यजमानो म्रियेत किं तत्र कर्म
का प्रायश्चित्तिरिति । पर्याधायैवैनद्विष्यन्दयेत् । एतदेवाऽत्र कर्म० ॥

अग्निहोत्रं सुच्युनीतं स्कन्देत्

शब्रा [१२.४.२.६-८]—यस्याऽग्निहोत्रं सुच्युनीतं स्कन्देत्० स्कन्नप्राय-
श्चित्तेनाऽभिमृश्याऽद्विरुपनिनीय परिशिष्टेन जुहुयात् । यद्यु नीची सुक् स्यात् । यदि वा भिद्येत ।
स्कन्नप्रायश्चित्तेनैवाऽभिमृश्याऽद्विरुपनिनीय यत्स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात् । तेन जुहुयात् ।
तद्वैके प्रतिपरेत्य यत्स्थाल्यां परिशिष्टं भवति तेन जुह्वति । तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव
कुर्यात् । तदेवोपविशेत् । यत्स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात् । तदस्मा उन्नीयाऽऽहरेयुः । तद्वैक
उपवल्हन्ते । हुतोच्छिष्टं वा एतत्० नैतस्य होतव्यमिति । तदु तन्नाऽऽद्वियेत० अथैतद्वि-
रातश्चनं कुर्वते । तस्माद्यत्स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात् । तदस्मा उन्नीयाऽऽहरेयुः । यद्यु तत्र न
स्यात् । यदन्यद्विन्देत् । तदग्नावधिश्रित्याऽवज्योत्याऽपः प्रत्यानीयोद्वास्य । तददो हैवोन्नेष्यामीत्युक्तं
भवति । अथाऽत्र यथोनीतमेवाऽस्मा उन्नीयाऽऽहरेयुः तेन कामं जुहुयात्० ॥

काशब्रा [१४.७.२.६] ≡ शब्रा

जैत्रा [२.४१]—तस्माद्यदग्निहोत्रस्य वाऽऽज्यस्य वाऽवस्कन्देत् तदभिमृशेद्
भूपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा, भूतानां पतये स्वाहेति० ॥

जैत्रा [१.५४]—यद्यु नीची सुक् स्यादपि वा भिद्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्ति-
रिति । तस्योक्तः प्रत्यभिमर्शः । तदु हैके तत एव प्रत्येत्योन्नयन्ति । तदु तथा न कुर्यात्०
इत्यमेव कुर्यात् । यत्रैव स्कन्देत्तदुपविशेत् । अथाऽस्मिन् स्थालीमाहरेयुः सुवं च सुचं च
निर्णिज्य० अथ यथोनीतमुन्नीय समिधमादाय प्राक् प्रेयात्० तदु तथा न विद्यात् । यदा वा
एतदयातयामं भवत्यथैतस्याऽपि हविरातश्चनं कुर्वन्ति ॥

अग्निहोत्रं सुच्युनीतममेध्यमापद्येत

शब्रा [१२.४.२.९]—यस्याऽग्निहोत्रं सुच्युनीतममेध्यमापद्येत० तद्वैके होतव्यं
मन्यन्ते० तद्वैक उत्सिष्य च्छर्दयन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । आहवनीये

समिधमभ्याधायाऽऽहवनीयादेवोष्णं भस्म निरुह्य तस्मिन्नेनदुष्णे भस्मंस्तूष्णीं निनयेत् । अद्वि-
रूपनिनयति० अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात् ॥

काशब्रा [१४.७.२.७] ≡ शब्रा

अग्निहोत्रमववर्षेत्

तैब्रा [३.७.२]—यदववृष्टेन जुहुयात् । अपरूपमस्याऽऽत्मज्जायेत । किलासो
वा स्यादर्शसो वा । यत्प्रत्येयात् । यज्ञं विच्छिन्धात् । स जुहुयात् । मित्रो जनान्कल्पयति
प्रजानन् । मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् । मित्रः कृष्टीरनिमिषाऽभिचष्टे । सत्याय हव्यं
घृतवज्जुहोतेति० तत्कृत्वा । अन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कासं [३.५.१९]—यदववृष्टेन जुहुयादपरूपमस्याऽऽत्मज्जायेत । यत्प्रत्येयात्
पापीयान् स्यात् । यन्न जुहुयादार्तिमाच्छेत् ॥ मित्रो जनान् यातयति प्रजानन् मित्रो दाधार
पृथिवीमुत द्याम् । मित्रः कृष्टीरनिमिषाऽभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवद्विधेम ॥ इति मैत्र्यर्चा
समिधमाधाय होतव्यम्० तद्भुत्वाऽथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कपिसं [४८.१७] ≡ कासं

शब्रा [१२.४.२.१०]—यस्याऽग्निहोत्रं सुच्युन्नीतमुपरिष्ठादववर्षेत्० तद्विद्या-
दुपरिष्ठान्मा शुक्रमागन्तुप मां देवाः प्राभूवञ्छेयान् भविष्यामीति । तेन कामं जुहुयात्० ॥

काशब्रा [१४.७.२.८] ≡ शब्रा

जैब्रा [१.५६]—अथो खल्वाहुर्यदववर्षेत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति ।
स विद्याद् उपरिष्ठान्मा शुक्रमागात् प्रजातिर्मे भूयस्यभूच्छेयान् भविष्यामीति । तथा हैव स्यात् ॥

अग्निहोत्रं सवेत्

तैब्रा [३.७.३]—गर्भं स्रवन्तमगदमकः । अग्निरिन्द्रस्त्वष्टा बृहस्पतिः ।
पृथिव्यामवचुश्चोतैतत् । नाऽभिप्राप्नोति निर्ऋतिं पराचैः ॥ रेतो वा एतद्वाजिनमाहिताग्नेः ।
यदग्निहोत्रम् । तद्यत् सवेत् । रेतोऽस्य वाजिनं सवेत् । गर्भं स्रवन्तमगदमकरित्याह० ॥

ऐब्रा [७.५]—अथ यदि सुग्मिद्येत० अन्यां सुचमाहृत्य जुहुयात् । अथैनां
सुचं भिन्नामाहवनीयेऽभ्यादध्यात् प्राग्दण्डां प्रत्यक्पुष्कराम्० ॥

उद्धृतस्य स्कन्देत्

तैब्रा [१.४.३]—यद्युद्धृतस्य स्कन्देत् । यत्ततो हुत्वा पुनरेयात्० यत्र
स्कन्देत् । तन्निषद्य पुनर्गृहीयात् । यत्रैव स्कन्दति । तत् एवैनत्पुनर्गृह्णाति । तदेव यादृक्कीदृक्च
होतव्यम् । अथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

ऐब्रा [७.५]—यस्याऽग्निहोत्रमधिष्ठितं प्राङ्मुदायन् स्वलते वाऽपि वा भ्रंशते०

स यद्युपनिवर्तयेत् स्वर्गाल्लोकाद्यजमानमावर्तयेत् । अत्रैवाऽस्मा उपविष्टायैतमग्निहोत्रपरीशेष-
माहरेयुः । तस्य यथोनीती स्यात्तथा जुहुयात् ॥

जैत्रा [१.५४]—अथो खल्वाहुर्द्यत् प्राच उद्द्रुतस्य स्कन्देत् किं तत्र कर्म का
प्रायश्चित्तिरिति । यदेव तत्र स्रुचि परिशिष्टं स्यात्तेन जुहुयात् ॥

प्रागुद्द्रुतममेध्यमापद्येत

जैत्रा [१.५६]—अथो खल्वाहुर्द्यत् प्रागुद्द्रुतममेध्यमापद्येत किं तत्र कर्म का
प्रायश्चित्तिरिति । तदु हैके होतव्यमेव मन्यन्ते प्रेतमेतन्नैतस्याऽहोमः कल्पत इति वदन्तः ।
अथ हैकेऽद्विरभ्यासिच्य परासिञ्चन्ति । तदु तथा न कुर्यात् ० इत्यमेव कुर्यात् । आहवनीय
एव समिधमभ्याधायाऽऽहवनीयस्यैवोष्णं भस्म निरूह्य तस्मिन्नेनतूष्णीं निनयेत् ० अद्विरनु-
निनयेत् ० अथ यदन्यद्विन्देत्तेन जुहुयात् ॥

प्राच्युद्द्रुते यजमानो म्रियेत

जैत्रा [१.५७]—अथो खल्वाहुर्द्यत् प्राच्युद्द्रुते यजमानो म्रियेत किं तत्र कर्म
का प्रायश्चित्तिरिति । यदेवादय(?)श्चतुर्गृहीतमादिष्टं स्यात्तत्रैवैनदभ्युजयेत् । एतदेवाऽत्र कर्म ॥

अग्निहोत्रमहुतमादित्योऽभ्यस्तमियात्

मैसं [१.८.७]—परा वा एतस्याऽग्निहोत्रं पतति यस्य प्रदोषं न जुह्वतीति ।
यदि मन्येत ऋतुमत्यनैषमिति भूर्भुवः स्वः इति पुरस्ताद्धोतोर्वेदेत् ० दोषावस्तोर्नेमः स्वाहा इति
जुहुयात् ॥

कासं [६.८]—यदि सायमग्निहोत्रस्य कालोऽतिपद्येत दोषा वस्तोस्त्वाहेति
जुहुयात् ॥

कपिसं [४.७] ≡ कासं

अग्निहोत्रमहुतं सूर्योऽभ्युदेति

तैत्रा [२.१.९]—यस्याऽग्निहोत्रमहुतं सूर्योऽभ्युदेति । यद्यन्ते स्यात् । उनीय
प्राहुदाद्रवेत् । स उपसाधाऽऽ तमितोरासीत् । स यदा ताभ्येत् । अथ भूः स्वाहेति जुहुयात् ॥

मैसं [१.८.९]—यस्याऽहुतमग्निहोत्रं सूर्योऽभ्युदियादग्निं समाधाय वाचं यत्वा
दम्पती सर्वाह्ममुपासीयाताम् । द्वयोर्गवोः सायमग्निहोत्रं जुहुयात् ० अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं
निर्वपेत् ॥ यस्याऽहुतमग्निहोत्रं सूर्योऽभ्युदियात् ० तदुपस्थेयः ॥ इहैव क्षेम्य एधि मा प्रहासी-
र्मानमुमामुष्यायणम् इति ० मैत्रं चरुं निर्वपेत्सौर्यमेककपालं यस्याऽहुतमग्निहोत्रं सूर्योऽ-
भ्युदियात् ० ॥

[४.१०.२]—अ स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्.... ॥ अनमीवासा ईडया

मदन्तो.... ॥ तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं.... ॥ भद्रा अश्वा हरितः
सूर्यस्य.... ॥ त्वमग्ने व्रतपा असि.... ॥ यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि.... ॥

मैसं [१.८.७]—यस्याऽहुतमग्निहोत्रं सूर्योऽभ्युदियाद्धोतव्यमेव० यदि मन्येत
ऋतुमत्यनैवमिति भूर्भुवः स्वः इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेत्० प्रातर्वस्तोर्नमः स्वाहा इति जुहुयात्० ॥

कासं [६.८]—यदि प्रातरग्निहोत्रस्य कालोऽतिपद्येत दिवा वस्तोस्स्वाहेति
जुहुयात् ॥

कपिसं [४.७] ≡ कासं

आहवनीयेऽनुद्धाते गार्हपत्य उद्धायेत्

तैत्रा [१.४.४]—यस्याऽऽहवनीयेऽनुद्धाते गार्हपत्य उद्धायेत् । यदाहवनीय-
मनुद्धाप्य गार्हपत्यं मन्येत् । विच्छिन्नात् । भ्रातृव्यमस्मै जनयेत् । यद्वै यज्ञस्य वास्तव्यं क्रियते ।
तदनु । रुद्रोऽवचरति । यत्पूर्वमन्ववस्येत् । वास्तव्यमग्निमुपासीत० आहवनीयमुद्धाप्य । गार्हपत्यं
मन्येत् । इतः प्रथमं जज्ञे अग्निः । स्वाद्योनेरधि जातवेदाः । स गायत्रिया त्रिष्टुभा जगत्या ।
देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्निति० गार्हपत्यं मन्यति० इषे रय्यै रमस्व । सहसे धुम्नाय । ऊर्जेऽ-
पत्यायेत्याह० सारस्वतौ त्वोत्सौ समिन्धातामित्याह० सम्राडसि विराडसीत्याह० ॥

शत्रा [१२.४.३.६—१२.४.४.१]—यस्याऽऽहवनीयेऽननुगते गार्हपत्योऽनु-
गच्छेत्० तथैव हैके तत एव प्राञ्चमुद्धरन्ति० तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैके प्रत्यञ्चमाहरन्ति०
तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैकेऽन्यं गार्हपत्यं मन्यन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ
हैकेऽनुगमय्याऽन्यं मन्यन्ति० इत्यमेव कुर्यात् । अरण्योरग्नी समारोह्योदङ्ङुदवसाय निर्मथ्य
जुह्वदसेत् । तथा ह न कांचन परिचक्षां करोति । नवावसान उ अस्याऽभितो रात्रे हुतं
भवति । अथ प्रातर्भस्मान्युद्धृत्य गोमयेनाऽऽलिप्याऽरण्योरेवाऽग्नी समारोह्य प्रत्यवस्यति । मथित्वा
गार्हपत्यमुद्धृत्याऽऽहवनीयमाहृत्याऽन्वाहार्यपचनमग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् ।
तस्याऽऽवृत् । ता एव सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयाद्वात्रैर्गवाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते
याज्यानुवाक्ये—वेत्या हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो इति । अथ
याज्या—आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छुक्त्वाम तदनुप्रवोढुम् । अग्निर्विद्वान्स यजात्सेदु होता
सो अध्वरान्स ऋतून् कल्पयातीति० ॥

काशत्रा [१४.७.३.५-९] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.५]—यस्याऽऽहवनीये हाऽग्निर्विद्येताऽथ गार्हपत्य उपशाम्येत्० स
यदि प्राञ्चमुद्धरेत् प्राऽऽयतनाच्छ्यवेत् । यत् प्रत्यञ्चमसुरवद्यज्ञं तन्वीत् । यन्मन्येत् भ्रातृव्यं
यजमानस्य जनयेत् । यदनुगमयेत्प्राणो यजमानं जह्यात् । सर्वमेवैनं सहभस्मानं समोप्य गार्ह-
पत्यायतने निधायाऽथ प्राञ्चमाहवनीयमुद्धरेत्० ॥

जैत्रा [१.६१]—अथो खल्वाहुर्वदाहवनीय उद्धृते गार्हपत्योऽनुगच्छेत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । तमु हैके तत एव प्राञ्चमुद्धरन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० तमु हैके तत एव प्रत्यञ्चमाहरन्ति० तमु हैके गार्हपत्य एवमवधित्वोपसमादधति । तदु तथा न कुर्यात्० तमु हैकेऽनुगम्य मन्थन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । अरण्योरेव समारोहयेत अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाऽथा नो वर्धया रयिमथा नो वर्धया गिरः इति । वास उदवसाय जुह्वसेत्० स प्रातर्भस्मोद्धृत्य शकृत्पिण्डेन परिलिप्य यथायथमग्नीनादधीत । एतदेवाऽत्र कर्म ॥

गोत्रा [१.३.१३]—सभस्मकमाहवनीयं दक्षिणेन दक्षिणाग्निं परिहृत्य गार्हपत्यस्याऽऽयतने प्रतिष्ठाप्य तत आहवनीयं प्रणीय उदीचोऽङ्गारानुद्धृत्योदानरूपाभ्यां स्वाहेति जुहुयात् । अथ प्रातर्यथास्थानमग्नीनुपसमाधाय यथापुरं जुहुयात् ॥

अहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेत्

मैस [१.८.८]—यस्याऽहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेत्त एव प्राञ्चमुद्धृत्याऽन्ववसायाऽग्निहोत्रं जुहुयात् । अथाऽभिमन्त्रयेत भवतं नः समनसौ समोकसौ सचेतसा अरेपसा इति० ॥

कासं [६.६]—यदि प्रातरहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेदनुगमयित्वा पूर्वं मथित्वाऽपरमुद्धृत्य जुहुयात्० यदि त्वरेत पूर्वमग्निमन्ववसाय ततः प्राञ्चमुद्धृत्य जुहुयात्० जामि नु तद्योऽस्य पूर्वोऽग्निस्तमपरं करोति । अन्यत्रैवाऽवसायाऽग्निं मथित्वोद्धृत्य जुहुयात्० ततस्त्वोऽग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवत इष्टिं निर्वपेत्० ॥

कपिसं [४.५] ≡ कासं

शत्रा [१२.४.३.३]—यस्य गार्हपत्योऽनुगच्छेत्० तथै हैक उल्मुकादेव निर्मन्यन्ति० तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । उल्मुकादङ्गारमादाय । तमरण्योरभिविमभीयात्० ॥

काशत्रा [१४.७.३.४] ≡ शत्रा

अग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेत्

तैसं [२.२.४]—अग्नये ज्योतिष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेत् । अपर आदीप्याऽनूद्धृत्य इत्याहुः । तत्तथा न कार्यम् । यद्वागधेयमभि पूर्वं उद्घ्रियते किमपरोऽभ्युद्घ्रियेतेति । ताभ्येवाऽवक्षाणानि संनिधाय मन्थेदितः प्रथमं जज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरधि जातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्निति ॥

[१.४.४६]—उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीः-
प्यर्चयः ॥ वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥

मैस [१.८.८]—यस्याऽहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेदग्निना च सहाऽग्निहोत्रेण
चोद्द्रवेत् ० अथाऽभिमन्त्रयेत इत एव प्रथमं जज्ञे अग्निरेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्याऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्या वहतु प्रजानन् इति ० इषे राये रमस्व
सहसे द्युम्नायोर्जेऽपत्याय इति ० सम्राडसि स्वराडसि सुप्रदा सीद इति ० सारस्वतौ त्वोत्सौ
प्रावताम् इति ० अग्नये ज्योतिष्मतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्वारुणं यवमयं चरुं यस्याऽग्निहोत्रे
पूर्वोऽग्निरनुगच्छेत् ॥

[४.१०.२]—त्वमग्ने सप्रथा असि.... ॥ वृषा सोम द्युमं असि.... ॥
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यून् ज्योतिषा तमः । अविन्दद्वा अपः स्वः ॥
अग्ने बृहत्.... ॥ इमं मे वरुण श्रुधी.... ॥ तच्चा यामि.... ॥

मैस [१.८.९]—यस्याऽग्निरनुगच्छेत्तेभ्य एवाऽवक्षाणेभ्योऽधिमन्यितव्यः ० यदि
न तादृशानि वाऽवक्षाणानि स्युर्भस्मनाऽरणी संपृश्य मन्यितव्यः ० अग्नये तपस्वते जनद्वते
पावकवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्निरनुगच्छेत् ० ॥

[४.१०.२]—आयाहि तपसा जनिष्व.... ॥ आ नो याहि तपसा
जनिष्व.... ॥

कासं [६.६]—यदि सायमहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेदग्निहोत्रमग्नित्रियोन्नी-
याऽग्निना पूर्वोणोद्द्रुत्याऽग्निहोत्रेणाऽनूद्द्रवेत् ० यो ब्राह्मणो बहुवित् स्यात् स उद्धरेत् ० यत्पुरा
धनमदायी स्यात्तद्वधात् ० ॥

शब्रा [१२.४.३.२]—यस्याऽऽहवनीय उद्धृतः पुराऽग्निहोत्रादनुगच्छेत् ० गार्ह-
पत्यादेवैनं प्राञ्चमुद्धृत्योपसमाधायाऽग्निहोत्रं जुहुयात् । स यद्यपि शतमेव कृत्वः पुनः पुनरुद्धृतो-
ऽनुगच्छेत् । गार्हपत्यादेवैनं प्राञ्चमुद्धृत्योपसमाधायाऽग्निहोत्रं जुहुयात् ० ॥

काशब्रा [१४.७.३.२] ≡ शब्रा

शब्रा [११.५.३]—० शौचेयो ज्ञप्तः । प्रक्ष्यामि त्वेव भगवन्तमिति । पृच्छैव
प्राचीनयोग्येति । स होवाच यस्मिन् काल उद्धृतास्तेऽग्नयः स्युः, उपावहृतानि पात्राणि,
होष्यन्तस्याः । अथ त आहवनीयोऽनुगच्छेत् ० का प्रायश्चित्तिरिति । प्राण उदानमप्यगात्
इति गार्हपत्य आहुतिं जुहुयाम् । सैव प्रायश्चित्तिः ० स होवाच यत्र त एतस्मिन्नेव काले
गार्हपत्योऽनुगच्छेत् ० का प्रायश्चित्तिरिति । उदानः प्राणमप्यगात् इत्याहवनीय आहुतिं
जुहुयाम् । सैव प्रायश्चित्तिः ० स होवाच यत्र त एतस्मिन्नेव कालेऽन्वाहार्यपचनोऽनुगच्छेत् ०

का प्रायश्चित्तिरिति । व्यान उदानमप्यगात् इति गार्हपत्य आहुतिं जुहुयाम् । सैव प्रायश्चित्तिः० स होवाच यत्र त एतस्मिन्नेव काले सर्वेऽग्नयोऽनुगच्छेयुः० का प्रायश्चित्तिरिति । पुराऽचिरादग्निं मथित्वा यां दिशं वातो वायात् तां दिशमाहवनीयमुद्धृत्य वायव्यामाहुतिं जुहुयाम् । सैव प्रायश्चित्तिः० स होवाच यत्र त एतस्मिन्नेव काले सर्वेऽग्नयोऽनुगच्छेयुः० का प्रायश्चित्तिरिति । पुराऽचिरादग्निं मथित्वा प्राश्चमाहवनीयमुद्धृत्य जघनेनाऽऽहवनीयमुपविश्याऽहमेवैनत् पित्रेयम्० सैव प्रायश्चित्तिः० ॥

काशत्रा [१३.५.३] ≡ शत्रा

जैत्रा [१.६१]—अथो खल्वाहुर्ददाहवनीय उद्धृतोऽनुगच्छेत् किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । अनुगतो वा एष तावद्भवति यावद्गार्हपत्यो नाऽनुगच्छति । स यद्यपि बह्वि कृत्योऽनुगच्छेत् पुनः पुनरेवैनमुद्धरेत् एतदेवाऽत्र कर्म ॥

आहवनीय उद्धायात्

गोत्रा [१.३.१३]—गार्हपत्यादध्याहवनीयं प्रणीय प्रतीचोऽङ्गारानुद्धृत्य समानव्यानाभ्यां स्वाहेति जुहुयात् । अथ प्रातर्यथास्थानमग्नीनुपसमाधाय यथापुरं जुहुयात् ॥

दक्षिणाग्निरुद्धायात्

गोत्रा [१.३.१३]—गार्हपत्यादधि दक्षिणाग्निं प्रणीय प्राचोऽङ्गारानुद्धृत्य प्राणापानाभ्यां स्वाहेति जुहुयात् । अथ प्रातर्यथास्थानमग्नीनुपसमाधाय यथापुरं जुहुयात् ॥

उभावनुगतावभिनिम्रोचेदभ्युदियाद्वा

मैसं [१.८.७]—यस्योभा अनुगता अभिनिम्रोचेद्यस्य वाऽभ्युदियात् पुनराधेयमेव तस्य प्रायश्चित्तिः० ॥

अग्नयोऽनुगच्छेयुः

जैत्रा [१.६१]—अथो खल्वाहुर्ददग्नयोऽनुगच्छेयुः किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । तमु हैक उल्मुकादेव निर्मथ्यन्ति० तदु तथा न विद्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । उल्मुकादेवाऽपच्छिद्याऽरण्योरभिविमन्थेत्० ॥

गोत्रा [१.३.१३]—आनडुहेन शकृत्पिण्डेनाऽग्न्यायतनानि परिच्छिप्य होम्यमुपसाद्याऽग्निं निर्मथ्य प्राणापानाभ्यां स्वाहा, समानव्यानाभ्यां स्वाहा, उदानरूपाभ्यां स्वाहेति जुहुयात् । अथ प्रातर्यथास्थानमग्नीनुपसमाधाय यथापुरं जुहुयात् ॥

अग्निर्मथ्यमानो न जायेत

तैत्रा [३.७.३]—यस्याऽऽहिताग्नेरग्निर्मथ्यमानो न जायते । यत्राऽन्यं पश्येत् ।

तत आहृत्य होतव्यम्० यद्यन्यं न विन्देत् । अजायाः होतव्यम्० अजस्य तु नाऽश्रीयात् । यदजस्याऽश्रीयात् । यामेवाग्नावाहुतिं जुहुयात् । तामद्यात् । तस्मादजस्य नाऽऽश्रयम् । यद्यजां न विन्देत् । ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते होतव्यम्० ब्राह्मणं तु वसत्यै नाऽपरुन्ध्यात्० यदि ब्राह्मणं न विन्देत् । दर्भस्तम्बे होतव्यम्० दर्भास्तु नाऽध्यासीत० यदि दर्भान्न विन्देत् । अप्सु होतव्यम्० आपस्तु न परिचक्षीत० ॥

नाऽग्निं जनयितुं शक्नुयुर्न कुतश्चन वातो वायात्

गोत्रा [१.३.१३]—आनडुहेनैव शकृत्पिण्डेनाऽग्न्यायतनानि परिलिप्य होम्य-मुपसाद्य वात आ वातु भेषजमिति (ऋसं १०.१८६) सूक्तेनाऽऽत्मन्येव जुहुयात् । अथ प्रातरग्निं निर्मथ्य यथास्थानमग्नीनुपसमाधाय यथापुरं जुहुयात्० ॥

पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामुत्तराऽऽहुतिः स्कन्देत्

तैत्रा [३.७.२]—यत्पूर्वस्यामाहुत्याः हुतायामुत्तराऽऽहुतिः स्कन्देत् । द्विपाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यूध्येत । यदुत्तरयाऽभिजुहुयात् । चतुष्पाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यूध्येत । यत्र वेत्य वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामयेति वानस्पत्ययर्चा समिधमाधाय । तूष्णीमेव पुनर्जुहुयात्० तत्कृत्वा । अन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कासं [३.५.१९]—यदि पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामुत्तराहुतिस्स्कन्देद् द्विपाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यूध्येत । यदभिजुहुयात् चतुष्पाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यूध्येत ॥ यत्र वेत्य वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय इति वानस्पत्ययर्चा समिधमाधाय होतव्यम्० तद्भुत्वाऽथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्० ॥

कपिसं [४.८.१७] ≡ कासं

पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामग्निरनुगच्छेत्

शत्रा [१२.४.३.१]—यत्पूर्वस्यामाहुत्याः हुतायामग्नाऽग्निरनुगच्छेत्० यं प्रतिवेशः शकलं विन्देत्तमभ्यस्याऽभिजुहुयात् दारौ दारावग्निरिति वदन्० यद्यु अस्य हृदयं व्येव लिखेद्विरण्यमभिजुहुयात्० ॥

काशत्रा [१४.७.३.१] ≡ शत्रा

जैत्रा [१.५६]—अथो खत्वाहुर्त्यत्पूर्वस्यामाहुतौ हुतायामङ्गारा अनुगच्छेयुः कोत्तरा जुहुयादिति । य एव तत्र शकलोऽन्तिकः स्यात्तमभ्यस्यन् जुहुयात् । दारौ दारौ ह्यग्निः । स यदि तस्यां न तिष्ठेद्विरण्यमभिजुहुयात्० ॥

पूर्वस्यामाहुतौ हुतायां यजमानो म्रियेत

जैत्रा [१.५७]—अथो खत्वाहुर्त्यत्पूर्वस्यामाहुतौ हुतायां यजमानो म्रियेत किं

तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । तदु हैके होतव्यमेव मन्यन्ते कृत्स्नं वा एतस्याऽग्निहोत्रं हुतं भवति यस्य पूर्वाऽऽहुताऽऽहुतिर्भवतीति वदन्तः । तदु तथा न विद्यात् । न वै प्रेतस्याऽग्निहोत्रं जुहोति । यदेवादय(?)श्चतुर्गृहीतमादिष्टं स्यात्तत्रैवैनदम्युनयेत् । एतदेवाऽत्र कर्म ॥

अग्निरपक्षायेत्

तैब्रा [३.७.१]—यस्याऽऽहिताग्नेरग्निरपक्षायति । यावच्छ्रम्यया प्रविध्येत् । यदि तावदपक्षायेत् । त५ संभरेत् । इदं त एकं पर उत एकम् । तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व । संवेशनस्तनुवै चारुरेधि । प्रिये देवानां परमे जनित्र इति० यदि परस्तरामपक्षायेत् । अनु-प्रयायाऽवस्येत् ॥

मैसं [१.८.९]—यस्याऽग्निरपक्षायेद्यत्रैवैनमनुपरागच्छेत्तत्समाधायाऽन्ववसायाऽग्निहोत्रं जुहुयात्० अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्निरपक्षायेत्० अनड्वान् दक्षिणा० ॥

[४.१०.२]—अग्ने नय सुपथा राये.... ॥ आ देवानामपि पन्था-मगन्म.... ॥

कासं [३५.१७]—यस्याऽऽहिताग्नेरग्निरपक्षायति स यावच्छ्रम्यया पराविध्येद्यदि तावदपक्षायेत् संभरेत् इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व । संवेशनस्तन्वे चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे इति० यदि परस्तरामपक्षायेदनुप्रयाय वसेत्० वायव्यां यवागूं निर्वपेत्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्० ॥

कपिसं [४८.१५] ≡ कासं

गार्हपत्याहवनीयौ मिथः संसृज्येयाताम्

ऐब्रा [७.६]—यस्य गार्हपत्याहवनीयौ मिथः संसृज्येयाताम्० सोऽग्नये वीतयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ अग्न आ याहि वीतये, ‘ यो अग्निं देव-वीतये ’ (ऋसं ६.१६.१०; १.१२.९) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये वीतये स्वाहेति० ॥

जैब्रा [१.६५]—अथो खत्वाहुयदाहवनीयगार्हपत्यौ संसृज्येयातां किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति । अग्नये वीतय इष्टिं निर्वपेत् । एता एव पञ्चदश सामिधेनीर्वार्त्रावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यापुरोनुवाक्ये—अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सस्ति बर्हिषि इति । अथ याज्या—यो अग्निं देववीतये हविष्म आविवासति । तस्मै पावक मृडय इति ॥

अग्नयः संसृज्येरन्

शत्रा [१२.४.४.२-३]—यस्याऽग्नयः सँसृज्येरन्० स यदि परस्तादहन्न-
भीयात् तद्विद्यात्परस्तान्मा शुक्रमागन्नुप मां देवाः प्राभूवञ्छेयान्भविष्यामीति । यद्यु अस्य हृदयं
व्येव लिखेदग्नये विविचयेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्याऽऽवृत् । ता एव सप्तदश
सामिधेनीरनुब्रूयाद्वात्रैर्गन्नावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यानुवाक्ये—वि ते विष्वग्वात-
जूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति । तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता
रुजन्त इति । अथ याज्या—त्वामग्ने मानुषीरीडते विशो होत्राविदं विविचिँ रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तँ सुभग विश्वदर्शतं तुविष्मणसँ सुयजं घृतश्रियमिति ॥ यद्वयमितो दहन्न-
भीयात्तद्विद्यादमि द्विषन्तं भ्रातृव्यं भविष्यामि श्रेयान् भविष्यामीति । यद्यु अस्य हृदयं व्येव लिखे-
दग्नये संवर्गायाऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्याऽऽवृत् । ता एव सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूया-
द्वात्रैर्गन्नावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यानुवाक्ये—परस्या अधि संवतोऽवरँ२ऽ
अभ्यातर । यत्राऽहमस्मि तँ२ऽ अवेति । अथ याज्या—मा नो अस्मिन् महाधने परावर्गं भार-
भृद्यथा । संवर्गँ सँ रयिं जयेति ॥

काशश्रा [१४.७.४.२-३] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.६]—यस्य सर्व एवाऽग्नयो मिथः संसृज्येरन्० सोऽग्नये विविचयेऽ-
ष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ स्वर्णं वस्तोरुषसामरोचि ’, ‘ त्वामग्ने
मानुषीरीळते विशः ’ (ऋसं ७.१०.२; ५.८.३) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये
विविचये स्वाहेति० ॥

जैत्रा [१.६४-६५]—अथो खल्वाहुः यदग्नयः संसृज्येरन् किं तत्र कर्म का
प्रायश्चित्तिरिति । स यदि परस्तादन्योऽभिदहन्नेयात् स विद्यात्परस्तान्मा शुक्रमागात् प्रजातिर्मे
भूयस्यभूच्छेयान् भविष्यामीति । तथा हैव स्यात् । यदि त्वस्य हृदयं विलिखेदग्नये विविचय
इष्टिं निर्वपेत् । एता एव पञ्चदश सामिधेनीर्वात्रैर्गन्नावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्या-
पुरोनुवाक्ये—वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति । तुविम्रक्षासो दिव्या
नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः इति । अथ याज्या—त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं
विविचिँ रत्नधातमम् । गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्मणसं सुयजं घृतश्रियम् इति०
यदि त्वयमितोऽभिदहन्नेयादग्नये संवर्गायेष्टिं निर्वपेत् । एता एव पञ्चदश सामिधेनीर्वात्रैर्गन्ना-
वाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यापुरोनुवाक्ये—मा नो अस्मिन् महाधने परावर्गं भार-
भृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय इति । अथ याज्या—परस्या अधि संवतो अवर्गं अभ्या तर ।
यत्राऽहमस्मि तं अब इति । अथो हैनया यद् भ्रातृव्यस्य संविदृक्षेत तत्कामो यजेत० ॥

अन्यैरग्निभिरग्नयः संसृज्यन्ते

तैत्रा [३.७.३]—यस्याऽऽहिताग्नेरन्यैरग्निभिरग्नयः स० सृज्यन्ते । अग्नये विविचये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्० अग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्० ॥

मैसं [१.८.९]—अग्नये शुचयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽभ्यादाव्येन स० सृज्येत० ॥

[४.१०.२]—अग्निः शुचिव्रततमः.... ॥ उदग्ने शुचयस्तव.... ॥

शत्रा [१२.४.४.४]—यस्य वैद्युतो दहेत्० तद्विद्यादुपरिष्ठान्मा शुक्रमागन्नुप मां देवाः प्राभूवञ्छेयान् भविष्यामीति । यद्यु अस्य हृदयं व्येव लिखेदग्नयेऽप्सुमतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्याऽऽवृत् । ता एव सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयाद्वात्रैर्वावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यानुवाक्ये—अप्स्वग्ने सधिष्ठव सौषधीरनुरुच्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनरिति । अथ याज्या—गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याऽग्ने गर्भो अपामसीति० ॥

काशत्रा [१४.७.४.३] ≡ शत्रा

शत्रा [१२.४.४.५]—यस्याऽग्नयोऽमेध्यैरग्निभिः स० सृज्येरन्० अग्नये शुचयेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्याऽऽवृत् । ता एव सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयाद्वात्रैर्वावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये । अथैते याज्यानुवाक्ये—अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुत इति । अथ याज्या—उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीः पृथ्व्यर्चय इति० ॥

काशत्रा [१४.७.४.४] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.६]—यस्याऽग्नयोऽन्यैरग्निभिः संसृज्येरन्० सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः ’ ‘ अथा यथा नः पितरः परासः ’ (ऋसं. १०.४५.४; ४.२.१६) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये क्षामवते स्वाहेति० ॥

ऐत्रा [७.७]—यस्याऽग्नयो ग्राम्येणाऽग्निना संदह्येरन्० सोऽग्नये संवर्गायाऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ कुवित्सु नो गविष्ठये ’, ‘ मा नो अस्मिन् महाधने ’ (ऋसं ८.७५.११; १२) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये संवर्गाय स्वाहेति० ॥

यस्याऽग्नयो दिव्येनाऽग्निना संसृज्येरन्० सोऽग्नयेऽप्सुमतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘ अप्स्वग्ने सधिष्ठव ’ ‘ मयो दधे मेधिरः पूतदक्ष ’ (ऋसं. ८.४३.९; ३.१.३) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नयेऽप्सुमते स्वाहेति० ॥

यस्याऽग्नयः शवाग्निना संसृज्येरन्० सोऽग्नये शुचयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘अग्निः शुचित्रततमः’ ‘उदग्ने शुचयस्तव’ (ऋसं. ८.४४.२१; १७) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये शुचये स्वाहेति० ॥

यस्याऽग्नय आरण्येनाऽग्निना संदह्येरन्० समेवाऽऽरोपयेदरणी वोल्मुकं वा मोक्षयेद्यथाहवनीयाद्यदि गार्हपत्यात् । यदि न शक्नुयात् सोऽग्नये संवर्गायाऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य उक्ते याज्यानुवाक्ये (ऋसं. ८.७५.११; १२) । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये संवर्गाय स्वाहेति० ॥

सर्व एवाऽग्नय उपशाम्येरन्

ऐत्रा [७.८]—यस्य सर्व एवाऽग्नय उपशाम्येरन्० सोऽग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘आ याहि तपसा जनेषु’ ‘आ नो याहि तपसा जनेषु’ (आश्वश्रौ ३.१२) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते स्वाहेति० ॥

प्रातरस्नातोऽग्निहोत्रं जुहुयात्

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्यदि प्रातरस्नातोऽग्निहोत्रं जुहुयात्० सोऽग्नये वरुणायऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्’ ‘स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती’ (ऋसं. ४.१.४-५) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये वरुणाय स्वाहेति० ॥

आहिताग्निः सन् प्रवसेत्

मैसं [२.१.१०]—अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन् प्रवसेत् । बहु वा एष व्रतमतिपादयति य आहिताग्निः सन् प्रवसति व्रत्ये ह्यहनि क्षियं वोपैति मांसं वाऽश्नाति० ॥

[४.११.४]—त्वमग्ने व्रतपा असि.... ॥ यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि....॥

गोत्रा [२.१.१४]—अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन् प्रवसेत् । बहु वा एष व्रतमतिपातयति य आहिताग्निः सन् प्रवसति व्रत्येऽहनि क्षियं वोपैति मांसं वाऽश्नाति० ॥

आहिताग्निः सन्नश्रु कुर्यात्

मैसं [२.१.१०]—अग्नये व्रतभृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नश्रु कुर्यात्० ॥

[४.११.४]—

त्वमग्ने व्रतभृञ्शुचिरग्ने देवं इहाऽऽवह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥

व्रता नु बिभ्रद् व्रतपा अदब्धो यजानो देवो अजरः सुवीरः ।

दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेदः ॥

गोत्रा [२.१.१५]—अग्नये व्रतभृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निरार्तिजमश्नु
कुर्यात् ॥

जीवे मृतशब्दं शृण्वीत

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्जीवे मृतशब्दं श्रुत्वा० सोऽग्नये सुरभिमतेऽष्टा-
कपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—‘अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयान्’, ‘साध्वी-
मकर्देववीतिं नो अद्य’ (ऋसं ५.१.६; १०.५३.३) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये
जुहुयादग्नये सुरभिमते स्वाहेति० ॥

अग्निहोत्रहोमः

बौधायनश्रौ० [३.४-९; १३; १४; १७; १४.१९; २०. १९; २०; २३; २४; २४.२९-३१; ३३; २८.१२; २९.९; १२]—

१. पुराऽऽदित्यस्याऽस्तमयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायाऽन्वाहार्यपचनमाहृत्य ज्वलन्त-
माहवनीयमुद्धरति सायमाहुतये । पुराऽऽदित्यस्योदयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायाऽन्वाहार्य-
पचनमाहृत्य ज्वलन्तमाहवनीयमुद्धरति प्रातराहुतये । [अथेदमग्निहोत्रं सायमुपक्रमं प्रात-
रपवर्गमाचार्यां वृषते ।] वाचा त्वा होत्रा प्राणेनोद्गात्रा चक्षुषाऽध्वर्युणा मनसा ब्रह्मणा श्रोत्रेणाऽ-
ग्नीधैतैस्त्वा पञ्चभिर्देवैर्ऋत्विग्भिर्बद्धरामि भूर्भुवः सुवर्द्धयमाण उद्धर पाप्मनो मा यदविद्वान् यच्च
विद्वान्श्चकार । अहा यदेनः कृतमस्ति पापं सर्वस्मान्मोद्धृतो मुञ्च तस्मात् इति सायम् । रात्रिया
यदेनः कृतमस्ति पापं सर्वस्मान्मोद्धृतो मुञ्च तस्मात् इति प्रातः । अग्निं निदधाति अमृताहुतिममृतायां
जुहोम्यग्निं पृथिव्याममृतस्य जित्यै । तयाऽनन्तं काममितो जयेम प्रजापतिर्यं प्रथमो जिगायाऽग्निमग्नौ
वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा इति सायम् । सूर्यमग्नौ वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा इति प्रातः ।
[अग्नीनां विहरण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ आधानप्रभृत्येवैतैऽजस्राः स्युरिति
शालीकिः ॥] [तत्रोदाहरन्ति ज्योतिषी इमे संनिपतिते भवत आदित्यस्य चाऽग्नेश्च ।
ते न व्यवेष्यात् । सायमाहवनीयमुद्धरन् पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखो निवपेत्, प्रातराहवनीयमुद्धरन्
पश्चात् प्राङ्मुखो निवपेत् । सायमग्निहोत्रं होष्यन्नग्रेण परीत्य जुहुयात्, प्रातरग्निहोत्रं
होष्यन्नपरेण परीत्य जुहुयात् । एवमस्यैते ज्योतिषी अव्यवेते भवतः । अथाऽयमुद्धरणमन्त्रः
वाचा त्वा होत्रा प्राणेनोद्गात्रा चक्षुषाऽध्वर्युणा मनसा ब्रह्मणा श्रोत्रेणाऽग्नीधैतैस्त्वा पञ्चभिर्देवैर्ऋत्विग्भि-
र्बद्धरामि भूर्भुवः सुवर्द्धयमाण उद्धर पाप्मनो मा यदविद्वान् यच्च विद्वान्श्चकार । अहा यदेनः
कृतमस्ति पापं सर्वस्मान्मोद्धृतो मुञ्च तस्मात् इति सायम् । रात्रिया यदेनः कृतमस्ति पापं सर्व-
स्मान्मोद्धृतो मुञ्च तस्मात् इति प्रातः । अग्निं निदधाति अमृताहुतिममृतायां जुहोम्यग्निं पृथिव्याममृतस्य
जित्यै । तयाऽनन्तं काममितो जयेम प्रजापतिर्यं प्रथमो जिगायाऽग्निमग्नौ वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा
इति सायम् । सूर्यमग्नौ वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा इति प्रातः । एतद्ध वा अग्नेरग्निहोत्रं पयोहोत्र-
मितरत् ।] सायंप्रातरेवैषा पत्न्यन्वास्ते । सायं सायमित्येके । अथैतान्यग्निहोत्रपात्राणि
प्रक्षालितान्युत्तरेण गार्हपत्यमुपसादयति कूर्चं वा सूनायां वा स्थालीं सप्तुवां सुचमभि-
द्योतनं समिधमिति । [पात्राणां सादन इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
बौधायनः कूर्चं वा तृणेषु वा पात्राणि सादयेत् । अपशव्यं दारुणा दारु संलीयमानं भवतीति ।]

२. अथैतामग्निहोत्रां दक्षिणत उदीचीं स्थापयित्वा ब्राह्मणो दोग्धि । [न शङ्क-
गव्या अग्निहोत्रं जुहुयान्नाऽऽहितायै न मृतवत्सायै न वहल्लायै न वाहिन्यै न वान्यायै न
वान्यवत्सायै नाऽनुदेश्यप्रतिगृहीतायै नाऽनुस्तरणीप्रतिगृहीतायै ।] पूर्वो दुह्याज्ज्येष्ठस्य
ज्यैष्ठिनेयस्य यो वा गतश्रीः स्यात् । अपरौ दुह्यात् कनिष्ठस्य कनिष्ठिनेयस्य यो वा बुभूषेत् ।

न संमृशेत् । द्वयोर्दुह्यात् पशुकामस्येति । अधिश्रित्योत्तरमानयति । [नैकस्यै दुग्धेन बहवो जुहुयुर्न बह्वीनामेवैकः । दुग्धं लभमानस्योपसादनप्रभृति स्कन्धानुमन्त्रणं भवति ।] अथैतदग्निहोत्रमग्रेणाऽऽहवनीयं पर्याहृत्य पूर्वया द्वारा प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमुपसाद्याऽथ परिषिञ्चति । ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि इति सायं परिषिञ्चति । सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि इति प्रातः । एवमेव हुत्वा परिषिञ्चति । [होष्यन् यथाऽऽहितमग्नीन् परिषिञ्चेद्भुत्वाऽऽहवनीयमेवैकं परिषिञ्चेत् । होष्यन्श्चैव हुत्वा चाऽऽहवनीयमेवैकं परिषिञ्चेत् । नैव परिषिञ्चेदित्येतदपरम् ।] अथ प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुद्रुत्वा जघनेन गार्हपत्यमुपविश्योदीचोऽङ्गाराभिर्ब्रह्म व्यन्तान् कृत्वा तेष्वधिश्रित्याऽभिद्योतनेनाऽभिद्योतयति अग्निस्ते तेजो मा प्रतिधाक्षीत् इति । [अभिज्वलन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ गार्हपत्यादङ्गारेणाऽभिज्वालय त्रिः पर्यग्निं कुर्यादिति शालीकिः ॥] सुवेणाऽपः प्रत्यानयति अमृतमसि इति । पुनरेवाऽभिद्योत्य त्रिः पर्यग्निं करोति अन्तरितः रक्षोऽन्तरिता अरातयः इति । वर्त्म कुर्वन्नुदगुद्रास्य प्रत्यूह्याऽङ्गारानादत्ते दक्षिणेन सुवं५ समिधं च सव्येनाऽग्निहोत्रहवर्णी देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इति । [वर्त्म कुर्वन्नुदगुद्रासयतीति ॥ सूत्रं५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्तत्रैव त्रिः प्रतिष्ठापयन्निबोद्रासयेत् । त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठतीति ॥] गार्हपत्ये प्रतितपति प्रत्युष्टः रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः इति त्रिः । अथ कूर्चं सुवं निधाय यजमानमामन्त्रयते ॐमुञ्चेध्यामि इति । ओमुञ्चय इति यजमानोऽनुजानाति । अथ चतुरः सुवानुञ्चयति पूर्णान् वाऽनूचो वा भूरिडा, भुव इडा, सुवरिडा, भूर्भुवः सुवरिडा इति । [अनुञ्चय इति ॥ पूर्णान् वाऽनूचो वेति । पूर्वः कल्पो बौधायनस्य । उत्तरः शालीकेः ॥] स्थात्या५ सुवं प्रत्यवधायाऽथैने संमृशति सजूर्दैवैः सायंयावभिः सायंयावानो मा देवाः स्वस्ति संपारयन्तु पशुभिः इति सायम् । सजूर्दैवैः प्रातर्यावभिः प्रातर्यावाणो मा देवाः स्वस्ति संपारयन्तु पशुभिः इति प्रातः । [संमर्श इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन उभय५ संमृशेद्यच्च स्थात्या५ सुग्तं चेति ॥ सुग्तमेवेति शालीकिः ॥] अत्रैता५ समिध५ सुगदण्ड उपसंगृह्य जघनेन गार्हपत्यमुपसादयति कूर्चं नम ईशानाय प्रजाः पशवो मे वर्धन्तामहं यजमानो मा रिषम् इति । [अथ जघनेन गार्हपत्यमुपसादयतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अग्रेणाऽतिहायेति शालीकिः ॥] दशहोत्रोद्भुत्य प्राङ् हरति भूर्भुवः सुवर्धन्तरिक्षमन्विह्ययं पन्था विततो देवानो येनाऽयन्नृषयः स्वर्गकामास्तेन गच्छामि परमं व्योम यथा न हीये सुकृताः सकाशात् इति । जघनेनाऽऽहवनीयमुपसादयति कूर्चं नम ईशानाय प्रजा मे वर्धतामहं यजमानो मा रिषम् इति । [अथ भूर्भुवः सुवः इत्यग्निहोत्रमेताभिर्व्याहृतीभिरुपसादयेत् । यज्ञमुखं वा अग्निहोत्रं ब्रह्मैता व्याहृतयः । यज्ञमुख एव ब्रह्म कुरुते । संवत्सरे पर्यागत एताभिरेवोपसादयेत् । ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परिगृह्णातीति ब्राह्मणम् ।] [अथ भूर्भुवः सुवरित्यग्निहोत्रमेताभिर्व्याहृतीभिरुपसादयेदिति ॥ स एवमेव संवत्सरे संवत्सर इति सूत्रं५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो यस्या५ राज्यामादित उपसादयेत् संवत्सरे पर्यवेते तस्यामुपसाद्य न तत ऊर्ध्वमाद्रियेतेति । अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽभ्यारूढः खत्वस्यैव संवत्सरो भवति । यस्या५ राज्यामादित उपसादयेत् संवत्सरे पर्यवेते या ततः पूर्वा रात्रिः स्यात्तस्यामुपसाद्य न तत ऊर्ध्वमाद्रियेतेति ॥]

३. अत्रैताः समिधं मध्यतः आहवनीयस्याऽभ्यादधाति रजतां त्वाऽभिज्योतिषं वायुमतीः स्वर्गाः स्वर्गाय लोकाय रात्रिमक्षितिमिष्टकामुपदधेऽमृतं प्राणे दधामि प्रजापतिस्त्वा सादयतु इति । तथादेवतं करोति तथा देवतयाऽङ्गिरस्वदधुवा सीद इति । अथ सूददोहसं करोति ता अस्य सूददोहसः सोमः श्रृणन्ति पृश्नयः । जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः इति सायम् । अथ प्रातः हरिणीं त्वा सूर्यज्योतिषं वायुमतीः स्वर्गाः स्वर्गाय लोकायाऽहरक्षितिमिष्टकामुपदधेऽमृतमपाने दधामि प्रजापतिस्त्वा सादयतु इति । तथादेवतं कृत्वा सूददोहसं करोति । तस्यामादीप्तायां प्रतिमुखं जुहोति अभिज्योतिज्योतिः सूर्यः स्वाहा इति सायम् । सूर्यो ज्योतिज्योतिरग्निः स्वाहा इति प्रातः । इति नु सः सृष्टम् । अथाऽसः सृष्टम् अभिज्योतिज्योतिरग्निः स्वाहा इति सायम् । सूर्यो ज्योतिज्योतिः सूर्यः स्वाहा इति प्रातः । [हवन इति ॥ स्वयं व्यचेत्य जुहुयादिति बौधायनः ॥ यद्यस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वाऽलंकर्मणः स्यात् स दक्षिणत आसीनो जुहुयादिति शालीकिः ॥] [दीव्यमानेष्वह्यमानेषु यावन्त्यग्निहोत्राण्यभ्यतिक्रान्तानि स्युस्तानि प्रतिसंख्याय प्रतियुहुयात् । स यद्यनस्तमिते जुहुयात् पुनरेवाऽस्तमिते जुहुयात् । अथ यदि महारात्रे जुहुयात् पुनरेवौषसं जुहुयादिति ।] [अथातोऽनुग्रहान् व्याख्यास्यामः । सायः होमं चोपोदयं जुहुयात् प्रातर्होमं चोपास्तमयं कालेन कालमनतिक्रम्य । कालो दर्शपूर्णमासयोरग्निहोत्रस्य च न स्कन्दते न व्यथत इति विज्ञायते । आ प्रातराहुतिकालात् सायमाहुतिकालो नातीयादा सायमाहुतिकालात् प्रातराहुतिकालः ।] अथ सकृदतिवात्य कूर्चं सुचं निधाय दक्षिणावृद्धार्हपत्यं प्रतीक्षते उपप्रेत संगच्छध्वं मा भागिनां भागधेयं प्रमायि । सप्तर्षीणां सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेमे यज्ञं यजमानं च धत्त इति । अतिहाय पूर्वामाहुतिमुत्तरां भूयः समिध्येव जुहोति प्रजापतये स्वाहा इति मनसा । [आहुत्योर्होम इति ॥ पूर्वापरे जुहुयादिति बौधायनः ॥ प्रष्टी इति शालीकिः ॥]

४. अथ त्रिरतिवात्य कूर्चं सुचं निधायऽवाचीनमवमृज्य प्रतीचा नीचा पाणिनौषधीषु लेपं निमार्ष्टि ओषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्व इति । एवमेव द्वितीयमवमृज्यौषधीष्वेव निमार्ष्टि दक्षिणतः प्राचीनावीती पितृभ्यस्त्वा पितृजिन्व इति सायम् । [द्विरुपमृज्य द्विर्निमृजेदिति बौधायनः ॥ सकृदुपमृज्य द्विर्निमृजेदिति शालीकिः ॥] अथ प्रातरूर्ध्वमुन्मृज्य प्राचोत्तानेन पाणिनौषधीषु लेपमुन्मार्ष्टि ओषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्व इति । एवमेव द्वितीयमुन्मृज्यौषधीष्वेवोन्मार्ष्टि दक्षिणतः प्राचीनावीती पितृभ्यस्त्वा पितृजिन्व इति । अथाऽप उपस्पृश्य द्विरङ्गुल्या प्राश्नाति प्रजा ज्योतिः इति । अथोदङ् पर्यावृत्य प्राचीनदण्डया सुचा भक्षयति इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरः सर्वगणः स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसन्यभयसनि लोकसनि वृष्टिसनि ॥ अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वजं पयो रेतो अस्मासु धत्त । रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासु दीधरत् स्वाहा इति सायम् । सूर्यः प्रजां बहुलां मे करोतु इति प्रातः । [द्विरङ्गुल्या प्राश्योदङ् पर्यावृत्य प्राचीनदण्डया सुचा भक्षयतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ उदीचीनदण्डया भक्षयेदिति शालीकिः ॥] निर्णिज्य सुचमद्भिः पूरयित्वोदगुद्दिशति सप्तर्षीन् प्रीणीहि सप्तर्षीन्

जिन्व सप्तर्षिभ्यः स्वाहा इति । सप्तर्षीनेव प्रीणातीति ब्राह्मणम् । अथ जघनेन गार्हपत्यमपो निनयति इदमहमग्नौ वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा इति । अक्षित्यामक्षिताहुतिं जुहोमि स्वाहा इत्यन्तर्वेदि निनयति । हुत्वोपसमिन्द्रे ब्रह्मवर्चसस्य समिद्धया अपो निनयत्यवभृथस्यैव रूपमकरिति ब्राह्मणम् । [निर्णिज्य सुचं निष्टप्याऽग्निः पूरयित्वोदगुद्दिशतीति ॥ जघनेन गार्हपत्यमपो निनयति इदमहमग्नौ वैश्वानरेऽमृतं जुहोमि स्वाहा इति अक्षित्यामक्षिताहुतिं जुहोमि स्वाहा इति वेति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] [किंदक्षिणमग्निहोत्रं वर्षापूर्वमासौ काम्या इष्टयः पशुबन्ध इति । उपदोहदक्षिणमग्निहोत्रमित्येके । शरावदक्षिणमग्निहोत्रमित्येके । यत्सायं जुहोति रात्रिमेव तेन दक्षिण्यां कुरुते । यत्प्रातरहरेव तेन दक्षिण्यं कुरुते । यत्ततो ददाति सा दक्षिणेति । यदहोरात्रयोर्ददातीत्येवेदमुक्तं भवति ।]

५. अथ सायं हुतेऽग्निहोत्रे यज्ञोपवीत्यप आचम्य यजमानायतने तिष्ठन्नाहवनीयमुपतिष्ठते उपप्रयन्तो अध्वरम् इति षडभिरनुच्छन्दसम् । षडभिरुत्तराभिराग्निपावमानीभिराहवनीयमेवोपतिष्ठते अग्न आयूँ षि पवसे, अग्ने पवस्व, अग्ने पावक, स नः पावक, अग्निः शुचिब्रततमः, उदमे शुचयस्तव इति । अथाऽऽहवनीयमेवोपतिष्ठते आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वचोदा अग्नेऽसि वचो मे देहि तनूपा अग्नेऽसि तनुवं मे पाह्यमे यन्मे तनुवा ऊनं तन्म आपृण इति । [आग्निपावमानीभिरुपस्थान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः संवत्सरं यथोपस्थितमाहवनीयमुपस्थाय तत आग्निपावमानीभिर्गार्हपत्यमुपतिष्ठेताऽथ गायत्रीभिरथ द्विपदाभिरथ श्वो भूते यथायथमिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यत्पाक् चोर्ध्वं चाऽऽग्निपावमानीभ्यस्तेन संवत्सरं यथोपस्थितमाहवनीयमुपस्थाय तत आग्निपावमानीभिर्गार्हपत्यमुपतिष्ठेताऽथ गायत्रीभिरथ द्विपदाभिरथ श्वो भूते यथायथमिति ॥ एवमौपमन्यवो न चाऽस्याऽत ऊर्ध्वमाग्निपावमान्य आहवनीयमागच्छेयुर्न गार्हपत्यम् । स्वाध्यायार्था एवाऽस्याऽत ऊर्ध्वं स्युरिति ॥ व्याहृतीभिरुपस्थाय भर्तु वः शकेयं श्रद्धा मे मा विगात् इत्येव ब्रूयादित्याङ्गीगविः ॥] अथ रात्रिमुपतिष्ठते चित्रावसो स्वास्त ते पारमशीय इति । अथाऽऽहवनीये समिधमादधाति इन्धानास्त्वा शतं हिमा द्युमन्तः समिधीमहि वयस्वन्तो वयस्कृतं यशस्वन्तो यशस्कृतं सुवीरासो अदाभ्यम् । अग्ने सपत्नदम्भनं वर्षिष्ठे अधि नाके स्वाहा इति । अथाऽऽहवनीयमेवोपतिष्ठते सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसाऽगथाः समृषीणां स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना ॥ त्वमग्ने सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा प्रजया सृज इति । अथ वै भवति यथा वै पुरुषोऽश्वो गौर्जीर्यत्येवमग्निराहितो जीर्यति संवत्सरस्य परस्तादाग्निपावमानीभिरुपतिष्ठत इति । स संवत्सरस्य परस्तादाग्निपावमानीभिर्गार्हपत्यमुपतिष्ठते । पुनर्नवमेवैनमजरं करोतीति ब्राह्मणम् । अथ गृहाः पशूँश्चोपतिष्ठते संपश्यामि प्रजा अहमिदं प्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥ अन्म स्थाम्मो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीय सह स्थ सहो वो भक्षीयोर्जं स्थोर्जं वो भक्षीय । रेवती रमध्वमस्मिन् लोकेऽस्मिन् गोष्टेऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् योनाविहैव स्तेतो माऽपगात् बह्वीमे भूयास्त इति । अथाऽग्निहोत्रियै वत्समभिमृशति संहिताऽसि विश्वरूपीरा मोजा विशा गौपत्येना रायस्योषेण । सहस्रपोषं वः पुष्यासं मयि वो रायः श्रयन्ताम् इति । अथ द्विपदत्रिपदाभिर्गार्हपत्य-

मुपतिष्ठते उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सुपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्त्ये ॥ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः ॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्राय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ वसुरभिर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि शुभ्रतमो रयिं दाः इति । अथ गृहाः ५ अथ पशूः ५ अथोपतिष्ठते ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण मा पश्यतेडा स्थ मधुकृतः स्योना माविशतेरा मदः । सहस्रपोषं वः पुष्यासं मयि वो रायः श्रयन्ताम् इति । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते तत्सवितुर्वरेण्यं भगो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् इति । आहवनीयमेवोपतिष्ठते सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजम् इति । अथ रात्रिमुपतिष्ठते कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्वसि दाशुषे । उपोपेन्नु मधवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते इति । अथ गार्हपत्यमुपतिष्ठते परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रः सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे भेत्तारं भङ्गुरावतः इति । अथ गार्हपत्यमेवोपतिष्ठते अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासः सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः शतः हिमास्तामाशिषमाशासे मह्यममुष्मै ज्योतिष्मतां, तामाशिषमाशासेऽमुष्मा अमुष्मै इति । यावन्तोऽस्य पुत्रा जाता भवन्ति तन्तवे इत्यन्ततः । अथ वै भवति यो वा अग्निं प्रत्यङ्मुपतिष्ठते प्रत्येनमोषति । यः पराङ् विष्वङ् प्रजया पशुभिरेति । कवातिर्यङ्मुपतिष्ठतेति । स कवातिर्यङ्मुपतिष्ठते नैव प्रत्यङ् न पराङ् । [आशिःष्विति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आत्मने प्रथममाशासीताऽथ जातेभ्योऽथ तन्तव इति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिजतिभ्यः प्रथममाशासीताऽथाऽऽत्मनेऽथ तन्तव इति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽजातेष्वेवाऽऽत्मने च तन्तवे चेति ॥ काममपि सायं प्रातराशासीतेत्यौपमन्यवीपुत्रः ॥]

६. अग्निभ्यः प्रवत्स्यन् यज्ञोपवीत्यप आचम्याऽग्नेणाऽऽहवनीयं परीत्य यजमानायतने तिष्ठन्नाहवनीयमुपतिष्ठते मम नाम प्रथमं जातवेदः पिता माता च दधतुर्यदग्ने । तत्त्वं विमृहि पुनरा मदौतोस्तवाऽई नाम बिमराण्यग्ने इति । अथ वाचंयमोऽभिप्रव्रजति । अग्नीनामसकाशे वाचं विस्मृजते । [अनुपस्थाय प्रव्रजितस्येति ॥ यत्र स्मरेत् परोक्षं तत एनं नित्येनोपतिष्ठेतेति बौधायनः ॥ न चेत् स्मरेत् प्रोष्य पुनरागम्य नित्येनैवेति शालीकिः ॥] सोऽधः संवेक्ष्यमासाक्ष्यरूपपाथी प्रवसति । न द्वादशीमतिप्रवसति । नोपवसथमुपात्येति । आयन् प्रपथे समिधः कुरुते । अग्नीन् पराख्याय वाचं यच्छति । आहवनीयमेवोपतिष्ठते मम नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानो ये चरावः । आयुषे त्वं जीवसे वयं यथायथं विपरिदधावहै पुनस्ते इति । अथ गार्हपत्यमुपतिष्ठते नमोऽग्नेऽप्रतिविद्धाय नमोऽनाष्ट्राय नमः सम्राजे । अषाढो अग्निर्वृहद्वया विश्वजित् सहस्यः श्रेष्ठो गन्धर्वः इति । अथाऽन्वाहार्यपचनमुपतिष्ठते त्वत्पितारो अग्ने देवास्त्वामाहुतयस्त्वद्विवाचनाः । सं मामायुषा सं गौपत्येन सुहिते मा धाः इति । [विपरिधान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आहवनीयेनैकेन विपरिधाय प्रव्रजेत् । प्रोष्य पुनरागम्य सर्वैर्मन्त्रैराहवनीयं प्रत्युपतिष्ठेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यथोपपन्नमेवाऽग्निमिर्विपरिधाय प्रव्रजेत् । प्रोष्य पुनरागम्य सर्वैर्मन्त्रैरेकैकं प्रत्युपतिष्ठेतेति ॥] अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते अयमग्निः श्रेष्ठतमोऽयं भगवत्तमोऽयः सहस्रसातमः । अस्मा अस्तु सुवीर्यम् इति । स

यद्यस्मै यज्ञश्रेषमाचक्षते न तेऽहौवीदिति तद्गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सृचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु । या इष्टा उषसो निमृचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा इति । [प्रवसथाहुताविति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यदि कृतं प्रायश्चित्तं स्यान्नाऽऽद्रियेत तत्र होतुम् । अथ यद्यकृतं स्यात्तत्रैनां जुहुयादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्ये प्रत्याम्नातप्रायश्चित्ता श्रेषाः स्युस्तान्येव तत्र प्रायश्चित्तानि स्युः । अथ येऽप्रत्याम्नातप्रायश्चित्ता श्रेषाः स्युर्नैवैनामाद्रियेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यदि चैव कृतं प्रायश्चित्तं स्याद्यदि चाऽकृतं जुहुयादेव तत्र प्रवसथाहुतिमिति ॥] अथाऽग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । शरावं दक्षिणां ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथाऽतिपन्नाः प्रतिजुहोति । एतेन ह स्म वै पूर्वं श्रोत्रिया ऋतायवस्तेजस्कामा यशस्कामा ब्रह्मवर्चस्कामा उपातिष्ठन्त^१ । तदेतदुत्सन्नं व्रतस्यैव गरिष्णः^२ । अथाऽतो वैराजमेवोपस्थानम् । नर्यं प्रजां मे गोपाय इति गार्हपत्यम् । अथर्वं पितुं मे गोपाय इत्यन्वाहार्यपचनम् । शशं पशुन्मे गोपाय इत्याहवनीयम् । सप्रथं सभां मे गोपाय इति सभ्यम् । अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय इत्यावसथीयम् । [विराजक्रमेष्वाति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः^३ ॥] [कथमु खल्वन्तर्विराजं बहिर्विराजमन्तर्बहिर्विराजमिति जानीयात् । नित्येनोपस्थाय विराजक्रमैरुपतिष्ठेत । प्रोष्य पुनरागम्य विराजक्रमैरुपस्थाय नित्येनैवोपतिष्ठेत । एतेनैव बहिर्विराजमुक्तमन्तर्बहिर्विराजं चेति । सोऽधःसंवेक्ष्यमांसाश्चरुयुपायी प्रवसति । विपरीतनामधेय एष भवति ।] सोऽपरिमितं प्रवसति । पुनरायन् प्रपथे समिधः कुरुते । अग्नीन् पराख्याय वाचं यच्छति । आगत्यैतेनैवोपतिष्ठते । समानी प्रायश्चित्तिः । [यथो एतत्सोऽपरिमितं प्रवसति न संवत्सरमतिप्रवसतीत्यविशेषाज्जायापत्योराहितान्योरित्येवेदमुक्तं भवति । विज्ञायते चाऽर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नीति । अथ यदि प्रवसति यजमाने पत्न्याः प्रवासनिमित्तं स्यात्तद्वास्तोष्पतीयं^४ हुत्वाऽध्वर्युः समारोपयेत् अयं ते योनिर्नृत्विग्यः इति । यत्र गच्छेत्तत्राऽनो हरेत् । तत्र प्राप्याऽग्निं मथित्वा विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सृचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु । या इष्टा उषसो निमृचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा इति । अथाऽग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । शरावं दक्षिणां ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथ यदि यजमानश्चैव पत्नी चोभौ त्वेव निष्कामतो ग्रामान्ते ग्रामसीमान्ते वा वसतोऽग्निहोत्रमेव लुप्येताऽविकृतमग्न्याधेयं कुर्वीत । अग्नीन् हरन्तो नोच्छ्वसेयुः । यद्युच्छ्वसेयुरग्नयो लौकिकाः संपद्येरन् । अनो विना समारूढेष्वग्निषु नाऽऽद्रियेत शम्याप्राप्ते सत्रनिदर्शनात् ।] [अथेदं परोक्षोपस्थानं भवति इहैव सन् तत्र सतो वो अग्नयः प्राणेन वाचा मनसा बिभर्मि । तिरो मा सन्तमायुर्मा प्रहासीज्ज्योतिषा वो वैश्वानरेणोपतिष्ठ इति । अथेमां समिधं प्रवसतस्त्रूष्णीमभ्यादध्यात् । प्रवसन् याजमानं कुरुते । अथेमं समस्तहोमं यायावरधर्मेण विद्यमानमाचार्यां हुवते । तत्रोदाहरन्ति यायावरा ह वै नामर्षय

१. 'उपतिष्ठन्ते' इति मुद्रितपुस्तके ।

२. 'गरिष्णा' इति मुद्रितपुस्तकपाठः ।

आस५स्तेऽध्वन्यश्राम्य५स्ते समस्तमजुहवुः । तस्माद्यायावरधर्मेणाऽध्वनि समस्त५
होतव्यम् । तस्याऽनिमित्तो होमः । संवेशनेन वा निमीलनेन वोपसमाधानेन वाऽन्तर्दध्यात् ।]
[ऋषयो ह स्म तत्प्रयोगुगा आसन् । तेऽर्धमासायाऽर्धमासायाऽग्निहोत्रमजुहवुः । प्रतिपदि
सायं चतुर्दशगृहीतानि गृह्णाति । सकृदुच्यते हविः । एका समित् । सकृद्धोमः सकृदुप-
स्थानम् । सकृत्पाणिनिमार्जनम् । एवं प्रातः ।]

[बौ० १४.१९—अथ वै भवति यत् सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहोत्याहुतीष्टका एव
ता उपधत्ते यजमानः । अहोरात्राणि वा एतस्येष्टका य आहिताग्निः । यत् सायंप्रातर्जु-
होत्यहोरात्राण्येवाऽऽप्त्वेष्टकाः कृत्वोपधत्ते । दश समानत्र जुहोति । दशाक्षरा विराट् ।
विराजमेवाऽऽप्त्वेष्टकां कृत्वोपधत्ते । अथो विराज्येव यज्ञमाप्नोति । चित्यश्चित्योऽस्य भवति ।
तस्माद्यत्र दशोषित्वा प्रयाति तद्यज्ञवास्तु । अवास्त्वेव तद्यत्ततोऽर्वाचीनमिति । स यत्र
दशोषित्वा प्रयास्यन् भवति तदग्निष्टेऽनसि समवशमयन्ते यदस्य समवशमयितव्यं भवति ।
अवास्त्वेव तद्यत्ततोऽर्वाचीनम् । रुद्रः खलु वै वास्तोष्पतिः । यदहुत्वा वास्तोष्पतीयं
प्रयायाद्भुद्र एनं भूत्वाऽग्निरनूत्थाय हन्यात् । वास्तोष्पतीयं जुहोति । भागधेयेनैवेन५
शमयति । नाऽऽतिमाच्छंति यजमान इति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यद्युक्ते जुहुयाद्यथा
प्रयाते वास्तावाहुतिं जुहोति तादृगेव तत् । यद्युक्ते जुहुयाद्यथा क्षेम आहुतिं जुहोति
तादृगेव तत् । अहुतमस्य वास्तोष्पतीयं५ स्यात् । दक्षिणो युक्तो भवति सव्योऽयुक्तः ।
अथ वास्तोष्पतीयं जुहोतीति । स यत्र दक्षिणो युक्तो भवति सव्योऽयुक्तस्तत्प्रत्याच्छेद्यां
पर्णमय्या५ सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये वास्तोष्पतीयं जुहोति । वास्तोष्पते प्रतिजानी-
ह्यस्मान् इत्यनुदृत्य वास्तोष्पते शमया स५सदा ते इति जुहोति । अत्रेता५ सुचमुपनिधाय सव्यं
युक्त्वा प्रयाति । उभयमेवाऽकः । अपरिवर्गमेवेन५ शमयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति
यदेकया जुहुयाद्विंहोमं कुर्यात् । पुरोनुवाक्यामनूच्य याज्यया जुहोति सदेवत्वायेति
ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यद्धुत आदध्याद्भुद्रं गृह्णानन्वारोहयेत् । यदवक्षाणान्यसंप्रक्षाप्य
प्रयायाद्यथा यज्ञवेशसं वाऽऽदहनं वा तादृगेव तत् । अयं ते योनिर्ऋत्वियः इत्यरण्योः समा-
रोहयति । एष वा अग्नेर्योनिः । स्व एवेनं योनौ समारोहयति । अथो खत्वाहुत्यदरण्योः
समारूढो नश्येदुदस्याऽग्निः सीदेत् पुनराधेयः स्यादिति । या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोह
इत्यात्मन्त्समारोहयत इति । स आत्मन्त्समारोहयते या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहाऽऽत्मा-
त्मानमच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे नर्यां पुरुणि । यज्ञो भूत्वा यज्ञमासां द स्वं योनिं जातवेदो भुव आजायमानः
सक्षय एहि इति । अथैनमुपावरोहयते उपावरोह जातवेदः पुनस्त्वं देवेभ्यो हव्यं वह नः प्रजानन् ।
आयुः प्रजा५ रयिमस्मात्तु धेह्यजन्तो दीदिहि वो दुरोणे इति । यजमानो वा अग्नेर्योनिः । स्वाया-
मेवेनं योन्या५ समारोहयत इति ब्राह्मणम् ।]

अग्निहोत्रप्रायश्चित्तानि

अग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिमोचति

बौ० १४.२४—अथ वै भवति नि वा एतस्याऽऽहवनीयो गार्हपत्यं कामयते नि गार्हपत्य आहवनीयं यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिमोचति । दर्भेण हिरण्यं प्रबध्य पुरस्ताद्धरेदथाऽग्निमथाऽग्निहोत्रमिति । स यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिमोचति दर्भेण हिरण्यं प्रबध्य परिकर्मी पूर्वं प्रतिपद्यतेऽन्वग्राह्येण आर्षेय इध्मेनाऽन्वगात्मनाऽग्निहोत्रेण । अथैतद्विरण्यमाहवनीयस्याऽऽयतने सादयित्वाऽपोद्धृत्य हिरण्यं प्रदक्षिणमावृत्येधं प्रतिष्ठापयति । अथ वै भवत्यग्निहोत्रमुपसाद्य आ तमितोरासीत । व्रतमेव हतमनुम्रियते । अन्तं वा एष आत्मनो गच्छति यस्ताम्यति । अन्तमेष यज्ञस्य गच्छति ।

यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिमोचति । पुनः समन्य जुहोति । अन्तेनैवाऽन्तं यज्ञस्य निष्करोतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति वरुणो वा एतस्य यज्ञं गृह्णाति यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभिनिमोचति । वारुणं चरुं निर्वपेत् । तेनैव यज्ञं निष्क्रीणीत इति ब्राह्मणम् ॥

अग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति

बौ० १४.२४—अथ वै भवति नि वा एतस्याऽऽहवनीयो गार्हपत्यं कामयते नि गार्हपत्य आहवनीयं यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । चतुर्गृहीतमाज्यं पुरस्ताद्धरेदथाऽग्निमथाऽग्निहोत्रमिति । स यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति चतुर्गृहीतेनाऽऽज्येन परिकर्मी पूर्वं प्रतिपद्यतेऽन्वग्राह्येण आर्षेय इध्मेनाऽन्वगात्मनाऽग्निहोत्रेण । अथैतमाज्यमाहवनीयस्याऽऽयतने सादयित्वाऽपोद्धृत्याऽऽज्यमथेधं प्रतिष्ठापयति ।

अथ वै भवति पराची वा एतस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छति यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । उषाः केतुना जुषतां यज्ञं देवेभिरन्वितम् । देवेभ्यो मधुमत्तम् स्वाहा इति प्रत्यङ् निषद्याऽऽज्येन जुहुयात् प्रतीचीमेवाऽस्मै विवासयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्यग्निहोत्रमुपसाद्य आ तमितोरासीत । व्रतमेव हतमनुम्रियते । अन्तं वा एष आत्मनो गच्छति यस्ताम्यति । अन्तमेष यज्ञस्य गच्छति यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । पुनः समन्य जुहोति । अन्तेनैवाऽन्तं यज्ञस्य निष्करोतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति मित्रो वा एतस्य यज्ञं गृह्णाति यस्याऽग्निमनुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति । मैत्रं चरुं निर्वपेत्तेनैव यज्ञं निष्क्रीणीत इति ब्राह्मणम् ॥

पत्न्या विहृतम्

बौ० २७.११—दृश्यतां “लौक्ये हुतम्”

अग्नावग्निमभ्युद्धरेयुः

बौ० १३.७—अग्नयेऽग्निवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्नावग्निमभ्युद्धरेयुरिति । तस्या एते भवतः अग्निनाऽग्निः समिध्यते, त्वं ह्यमे अग्निना इति । [बौ० २६.५—यथो एतदनायुक्तोऽग्निपरिचरोऽल्पमुद्धृत्य पुनरप्युद्धरति । कथमत्र प्रायश्चित्तं सिध्यतीति न सिध्यतीति इति । सिध्यतीत्येक आहुः । अथ द्वेक आहुर्न सिध्यतीति ।

निर्दिष्टभागो वा एतयोरन्योऽनिर्दिष्टभागोऽन्य इति । उभा उ खल्विमावनिर्दिष्टभागौ भवतः । नैव सिध्यतीति ।]

अग्निहोत्री निषीदति

बौ० १४.२३—अथ वै भवतीयं वा अग्निहोत्री इयं वा एतस्य निषीदति यस्याऽग्निहोत्री निषीदति । तामुत्थापयेदिति । स यस्याऽग्निहोत्री निषीदति तामुत्थापयति उदस्थाद्देव्यदितिर्विश्वरूप्यायुर्यज्ञपतावधात् । इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय च इति ॥

अग्निहोत्र्युपसृष्टा निषीदति

बौ० १४.२३—अथ वै भवत्यवर्ति वा एषैतस्य पाप्मानं प्रतिख्याय निषीदति यस्याऽग्निहोत्र्युपसृष्टा निषीदति । तां दुग्ध्वा ब्राह्मणाय दद्याद्यस्याऽन्नं नाऽद्यादिति । स यस्याऽग्निहोत्र्युपसृष्टा निषीदति तामेतदेव दुग्ध्वा ब्राह्मणाय ददाति । न चाऽस्याऽत ऊर्ध्वमन्नमिति ॥ [बौ० २३.८—तां दुग्ध्वा ब्राह्मणाय दद्याद्यस्याऽन्नं नाऽद्यादिति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः प्राक् चेद्विजिज्ञासायै निषीदेदथैवं कुर्यादिति ॥]

अग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति

बौ० १४.२३—अथ वै भवति पृथिवीं वा एतस्य पयः प्रविशति यस्याऽग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति । तदभिमन्त्रयेतेति । स यस्याऽग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति तदभिमन्त्रयते । यदद्य दुग्धं पृथिवीमसक्त यदोषधीरप्यसरद्यदापः । पयो गृहेषु पयो अग्नियासु पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयि इत्याह । पय एवाऽऽत्मन् गृहेषु पशुषु धत्ते । अप उपसृजति । अद्भिरेवैनदामोतीति ब्राह्मणम् ॥

अथ वै भवति यो वै यज्ञस्याऽऽर्तनाऽनार्तं स सृजत्युमे वै ते तर्ह्यार्च्छतः । आच्छति खलु वा एतदग्निहोत्रं यद् दुह्यमानं स्कन्दति यदभिदुह्यादिति । स यस्याऽग्निहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति नैनदभिदोग्धि । तदेव यादक्कीदक् च होतव्यम् । अथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम् । अनार्तैर्नैवाऽऽर्तं यज्ञस्य निष्करोतीति ब्राह्मणम् ॥

द्वयोर्होमे पूर्वा भेषं नीयात्

बौ० २०.१९—द्वयोर्होम इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यदि पूर्वा भेषं नीयादुत्तरया प्रायश्चित्तं कुर्वीत । अथ यद्युत्तरा भेषं नीयादुभयं भेषकृतं स्यात् । अन्यया प्रायश्चित्तं कुर्वीत ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यतरा कतरा चिद् भेषं नीयादुभयं भेषकृतं स्यात् । अन्ययैव ततः प्रायश्चित्तं कुर्वीतेति ॥

अग्निहोत्रेऽधिष्ठिते श्वाऽन्तरा धावति

बौ० १४.२३—अथ वै भवति चि वा एतस्य यज्ञश्छिद्यते यस्याऽग्निहोत्रेऽधिष्ठिते श्वाऽन्तरा धावति । रुद्रः खलु वा एष यदग्निः । यज्ञामन्वत्यावर्तयेद्गुद्राय पशूनपि दध्यात् । अपशुर्यजमानः स्यात् । यदपोऽन्वतिषिञ्चेदनाद्यमग्नेरापोऽनाद्यमाभ्यामपि दध्यात् । गार्हपत्याद्भस्माऽऽदाय इदं विष्णुर्विचक्रमे इति वैष्णव्यर्चाऽऽहवनीयाद् ध्वं सयन्नुद्भवेदिति ।

स वेष्णव्यर्चाऽऽहवनीयाद् ध्व५स्यन्नुद्भवति । यज्ञो वै विष्णुर्गन्धेनैव यज्ञ५ संतनोतीति ब्राह्मणम् । अथ भस्मना शुनः पदमपिवपति शान्त्या इति ब्राह्मणम् ॥

अनो रथो वाऽन्तराऽग्नी याति

बौ० १४.२५—अथ वै भवति वज्रो वै चक्रम् । वज्रो वा एतस्य यज्ञं विच्छिन्नं नत्ति यस्याऽनो वा रथो वाऽन्तराऽग्नी याति । आहवनीयमुद्राप्य गार्हपत्यादुद्धरेदिति । स आहवनीयमुद्राप्य गार्हपत्यादिधममुद्धरति यदग्ने पूर्वं प्रभृतं पद५ हि ते सूर्यस्य रश्मीन्वाततान । तत्र रथिष्ठामनुसंभरेत् सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या इति । पूर्वणेवाऽस्य यज्ञेन यज्ञमनुसंतनोतीति ब्राह्मणम् । अथेनमुपतिष्ठते त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वितन्वते इति । अग्निः सर्वा देवता देवताभिरेव यज्ञ५ संतनोतीति ब्राह्मणम् । अथाऽग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । अन्वाहार्यमासाद्याऽनइवाहं ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते ॥

पुरुषो रथो... अन्तराऽग्नीन् गच्छेत्

बौ० २०.५—एतदेव यस्य पुरुषो रथोऽश्वो गौर्महिषो वराहोऽहिर्मृगः श्वा वाऽन्यद्वा श्वापदमन्तराऽग्नीन् गच्छेत् । (दृश्यतां 'अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः')

उद्दुतस्य स्कन्देत्

बौ० १४.२३—अथ वै भवति यद्युद्दुतस्य स्कन्देद्यत्ततो हुत्वा पुनरेयाद्यज्ञं विच्छिन्ध्यात् । यत्र स्कन्देत्तन्निषद्य पुनर्गृहीयादिति । स यत्रैव स्कन्दति तदेव स्थालीं निधायाऽतिशिष्टमानीय पुनरभ्युनीय तदेव यादृक्कीदृक्च होतव्यम् । अथाऽन्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम् । अनातनेवाऽऽर्ते यज्ञस्य निष्करोतीति ब्राह्मणम् ॥

अग्निहोत्रोच्छेषणात् प्रमाद्येत्

बौ० २४.२३—स यद्यु हाऽग्निहोत्रोच्छेषणात्प्रमाद्येत्तत्पुनरेवाऽग्निहोत्रं जुहुयात् ॥ आहवनीयेऽनुद्वाते गार्हपत्य उद्वायेत्

बौ० १४.२४—अथ वै भवति यस्याऽऽहवनीयेऽनुद्वाते गार्हपत्य उद्वायेद्य-
आहवनीयमुद्राप्य गार्हपत्यं मन्थेद्विच्छिन्ध्यात् । भ्रातृव्यमस्मे जनयेत् । यद्वे यज्ञस्य वास्तव्यं क्रियते तदनु रुद्रोऽवचरति । यत्पूर्वमन्ववस्येद्वास्तव्यमग्निमुपासीत । रुद्रोऽस्य पशून् घातुकः स्यात् । आहवनीयमुद्राप्य गार्हपत्यं मन्थेदिति । स आहवनीयमुद्राप्य गार्हपत्यं मन्थति इतः प्रथमं जज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरधि जातवेदाः । स गायत्रिया त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् इति । छन्दोभिरेवेन५ स्वाद्योनेः प्रजनयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति गार्हपत्यं मन्थति । गार्हपत्यं वा अन्वाहितान्नेः पशव उपतिष्ठन्ते । स यदुद्रायति तदनु पशवोऽप-
क्रामन्तीति । अथेनमुपतिष्ठते इषे रथै रमल सहसे शुम्नायोजेऽग्न्याय इति । अथेनमुपसमिद्धे सारस्वतो त्वोत्सो समिन्धाता..., सम्राडसि विराडसि... इति ॥ [बौ० २३.८—यस्याऽऽहवनीयेऽ-
नुद्वाते गार्हपत्य उद्वायेदिति ॥ सूत्र५ शालीकैः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः समस्त-
मेतमग्नि५ सते समुप्य दक्षिणेन विश्वरं पर्याहृत्य गार्हपत्यस्याऽऽयतनाद्गृह्णोद्वाप्य शकृ-
त्पिण्डेन परिलिख्य न्युप्योपसमाधाय उज्ज्वलन्तमाहवनीयमुद्वाप्यऽऽहवनीयस्याऽऽयतना-
धी.८

द्भस्मोद्वाप्य शकृत्पिण्डेन परिलिप्य न्युप्योपसमाधाय समिद्धत्याहवनीये षट् सुवाहुतीर्जुहुयाद् उद्बुध्यस्वाऽग्ने, त्वमग्ने सप्रथा असि, मनो ज्योतिर्जुषतां, तन्तुं तन्वन्, उदु त्वं, चित्रम् इति ॥]

अग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेत्

बौ० १३.७—अग्नये ज्योतिष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेत् । अपर आदीयाऽनूद्धृत्य इत्याहुः । तत्तथा न कार्यम् । यद्भागधेयमभि पूर्वं उद्घ्नियते किमपरोऽभ्युद्घ्नियेतेति । तान्येवाऽवक्षाणानि संनिधाय मन्थेदिति । स तान्येवाऽवक्षाणानि संनिधाय मन्थति इतः प्रथमं जज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरधि जातवेदाः । स गाय-त्रिया त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् इति । छन्दोभिरेवेन स्वाद्योनेः प्रजनयतीति ब्रह्मणम् । अग्नये ज्योतिष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः उदग्ने शुचयस्तव, वि ज्योतिषा इति । [बौ० २३.१—अग्नये ज्योतिष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेदिति ॥ सूत्रं शालीकैः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो मन्थनमधिमन्थनमुपसमिन्धनमित्येतान् मन्त्राग्निगदेदिति ॥]

बौ० २७.११—अथ यस्याऽग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेदिति यथासूत्रं वा कुर्यात् । अपि वा गार्हपत्यादिधमादीप्य मन्थनमधिमन्थनमुपसमिन्धनमित्येतान् मन्त्राग्निगदेत् । अपि वा ज्योतिष्मतीमिष्टिं निर्वपेदपि वा ज्योतिष्मतीभ्यामृग्भ्यां पूर्णाहुतिं जुहुयात् । अपि वा ज्योतिष्मती स्वाहाहुतिं जुहुयाद् अग्नये ज्योतिष्मते स्वाहा इति । इष्टि-पूर्णाहुतिस्सुवाहुतीनां पूर्वपूर्वं विधिं बलीया समाचार्या ब्रुवते । तत्रोदाहरन्ति—ये ये विशेषा लघवो यत्रयत्रोपलक्षिताः । कर्म तैर्न प्रसङ्गेन कुर्यादापत्सु तद्धनम् ॥ विशेषान्तसर्व-वेदेभ्यः प्रयत्नेनोपधारयेत् । कर्मणां प्रविचारार्थमापत्सु च समाप्नुयादिति ॥

अहुतेऽनुगते

बौ० २७.५—एतत्प्रायश्चित्तमनुगतेऽहुतेऽभ्युदितेऽभिनिष्ठे च । (दृश्यताम् 'अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः')

गार्हपत्याहवनीयावुद्वायेताम् अभिनिष्ठोचेदभ्युदियाद्वा

बौ० २९.१२—अथ यदि गार्हपत्याहवनीयावुद्वायेतामभिनिष्ठोचेदभ्युदियाद्वाऽन्याधेयं तत्र प्रायश्चित्तिः । पुनराधेयमित्येके ॥

अग्निरपक्षायति

बौ० २९.१०—यस्याऽऽहिताग्नेरग्निरपक्षायति यावच्छम्यया प्रविध्येद्यदि तावदपक्षायेत् संभरेद् इदं त एकं पर उत एकम् इति । संभृत्याऽनुप्रहरेदग्निहोत्रकालेषु वाऽन्येषु वा । यदि परस्तरामपक्षायेदनुप्रयायाऽवस्येदित्यनुप्रयायाऽवस्येत् । तद्यत्रैवाऽवस्येत्तत्र वोद्वासयेयुः ॥

पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामाहवनीयोऽनुगच्छेत्

बौ० २८.१२—अथ यदि पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामाहवनीयोऽनुगच्छेत् अभिर्दारौ दारावग्निः इति वदच्छकले हिरण्यं निधायोत्तरामाहुतिं जुहुयात् ॥

पत्नीमृत्विष्यं विन्देत

बौ० २९.१२—अथ यदि पत्नीमृत्विष्यं विन्देत प्राग्दक्षिणाया एतदेव । अत ऊर्ध्वमपरोधोऽग्निहोत्रे च सोमे चाऽवभृथादिषु सर्वत्रेष्टिपशुसोमेषु तावन्मात्रं पत्न्या वा सर्वम् ॥

अनुपस्थाय

बौ० २९.७—अथाऽग्निहोत्रं चतुर्भिर्लुप्यते होमोपस्थानव्रतदर्शपूर्णमासैरिति । तन्तुमत्येष्टयेष्ट्वा दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत ॥

सायमाहुतिकालोऽतीयात्

बौ० २८.१२—अथ यदि सायं सायं दोषा वस्तोर्नमः स्वाहा इत्याहुतिः हुत्वाऽग्निहोत्रं जुहुयात् ॥

अहुतेऽभिनिष्ठुक्ते

बौ० २७.५—एतत्प्रायश्चित्तमनुगतेऽहुतेऽभिनिष्ठुक्ते च । (दृश्यताम् 'अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः')

प्रातराहुतिकालोऽतीयात्

बौ० २८.१२—यदि प्रातः प्रातर्दोषा वस्तोर्नमः स्वाहा इत्याहुतिः हुत्वाऽग्निहोत्रं जुहुयात् ॥

अहुतेऽभ्युदिते

बौ० २७.५—एतत्प्रायश्चित्तमनुगतेऽहुतेऽभ्युदितेऽभिनिष्ठुक्ते च । (दृश्यताम् 'अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः')

अग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः

बौ० २७.१०-११—अथातोऽग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः । आहुतयः सः स्कारार्था दृष्टा भवन्ति । चतुर्होतार इत्येके । व्याहृतय इत्येके । मिन्दाहुती इत्येके । मनस्वतीत्येके । महाव्याहृतय इत्येके । अथ यदि सर्व एवोद्वायेयुरायतनेभ्योऽरण्योरग्नीन् समारोह्य मन्थनस्याऽऽवृता गार्हपत्यं मन्थति इतः प्रथमं जज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरधि जातवेदाः । स गायत्रिया त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यो हव्यं बहुतु प्रजानन् इति । छन्दोभिरेवैनं स्वाद्योनेः प्रजनयतीति ब्राह्मणम् । अथ यदि मथ्यमानो न जायेत यत्राऽन्यं पश्येत्तत आहृत्य होतव्यमिति । अथाऽन्यमत्वरमाणः पुनर्मन्थेत् ।

अथ यदि जात एवोद्वायेत् समारोपणमन्त्रं जपित्वा पुनरेव मन्थेत् । अथैनमुपतिष्ठते इषे रथ्यै रमस्व सहस्रे शुम्भायोजेऽपत्याय इति । अथैनमुपसमिन्दे सारस्वती त्वोत्सौ समिन्धाताः सम्राडसि विराडसि इति । अथैनमुपसमाधायाऽन्वाहार्यपचनमाहृत्य ज्वलन्तमाहवनीयमुद्धृत्य न्युप्योपसमाधाय गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा दशहोतारं मनसाऽनुदृत्य आहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने स्वाहा इति । अथ प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मावृत्य गार्हपत्ये दशात्मकं ब्राह्मण एक होता इत्येतस्याऽनुवाकस्य दश सुवाहुतीः । अथ

यद्यन्वाहार्यपचन उद्वायेद्गार्हपत्यादेनमुद्धृत्याऽन्वाहार्यपचने चतुर्होतारं जुहोति गार्हपत्ये दशात्मकम् ।

अथ यद्याहवनीय उद्वायेद्गार्हपत्यादेनमुद्धृत्याऽऽहवनीये पञ्चहोतारं जुहोति गार्हपत्ये दशात्मकम् । एतयैवाऽऽवृतैकस्मिन्नुद्वाते द्वयोर्वा प्रतिविभज्य होतृञ्जुहुयात् । व्याहृतीश्चेद् व्यस्ताः समस्ताश्च जुहुयात्तथा मिन्दाहुती जुहुयात् । मनस्वतीं चेदाहवनीये जुहुयात् । सैषाऽजसाणामन्वाहितानां सवनगतानां चाऽग्नीनामुद्वातानां प्रायश्चित्तिः । एतदेव होमकालेऽन्वाधानवर्जम् ॥

अन्वाहार्यपचन उद्वायेत्

बौ० २९.१२—भिन्नयोनिश्चेदन्वाहार्यपचन उद्वायेद् या प्रकृतिस्तत आहरणं पृथगरणी वा ॥

विच्छिन्नाग्निहोत्रः

बौ० १३.४३—अग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्विच्छिन्नाग्निहोत्रो यो वा कामयेत प्रजाये मे तन्तुर्न विच्छिद्येतेति । सोऽरण्योरग्नीन्समारोह्योदवसाय मथित्वाऽग्नीन् विहृत्याऽग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः त्वं नस्तन्तुस्त सेतुरग्ने त्वं पन्था भवसि देवयानः । त्वयाऽग्ने पृष्ठं वयमावहेम अथा देवैः सधमादं मदेम ॥ स्वयं कृष्वानः सुगमप्रवायं तिग्मशृङ्गा वृषभः शोशुवानः । प्रत्नं सधस्थमनुपश्यमान आ तन्तुमभिर्दिव्यं ततान इति । स्विष्टवत्यौ संयाज्ये—हव्यवाहमभिमतिषाहं रक्षोहणं पृतनासु जिष्णुम् । ज्योतिष्मन्तं दोद्यन्तं पुरंधिमग्निं स्विष्टकृतमाहुवेम ॥ स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणाहिं विश्वा देव पृतना अभिष्य । उरं नः पन्थां प्रदिशन् विमाहि ज्योतिष्मद्वेह्यजरं न आयुः इति ॥ (दृश्यताम् 'अनुपस्थाय' बौ० २९.७)

दीप्यमानेष्वहूयमानेषु

बौ० २४.३१—दीप्यमानेष्वहूयमानेषु यावन्त्यग्निहोत्राण्यभ्यतिक्रान्तानि स्युस्तानि प्रतिसंस्थाय प्रतिजुहुयात् ॥

षष्मासानहुतेऽग्निहोत्रे

बौ० २८.१२—अथ षष्मासानहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ॥ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे

बौ० २८.१२—अथ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पवमानायाऽग्नये पावकायाऽग्नये शुचयेऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ॥

जीर्णस्याऽशक्तस्य च

बौ० २९.५—जीर्णस्याऽशक्तस्य चाऽग्निहोत्रचेष्टायामात्मन्यग्निसमारोपणं विद्यत

इति । आत्मनि समारूढेष्वग्निषु न खादेन्न पिबेन्नोपरि शय्याः शयीत नाऽप्सु निमज्जेन्न मैथुनं व्रजेत् । कामं खादेत्कामं पिबेत्कामं त्वेवोपरि शय्याः शयीत नैवाऽप्सु निमज्जेन्न मैथुनं व्रजेदिति । प्रक्षालितपादपाणिरप आचम्य प्राङ्मुख उपविश्याऽग्निहोत्रयजुषा यावन्मात्रं व्रतयित्वा तूष्णीं भूयो व्रतयेत्प्रजापतिं मनसा ध्यायन्निति । एवमेवोपासीत आ शरीरविमोक्षणात् ॥

आपद्यग्निहोत्राणां समासः

बौ० २९.८—अथाऽऽपद्यग्निहोत्राणां समासः । तद्यथा राष्ट्रविभ्रमो व्याधयोऽध्वगमनं गुरुकुलवासो देशकालद्रव्यानुपपत्तिरन्यैश्चाऽयोगो यासु विद्यत इति । तस्य कः कर्मण उपक्रमो भवतीति । कामं पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वाऽग्निहोत्रवेलायां वा यथासूत्रं वा कुर्यात् प्रसिद्धं वा यजमानस्य आ प्रवासात् । प्रसिद्धं प्रतिपदि सायं चतुर्दश चतुर्गृहीतानि गृह्णाति सोपवसथे पार्वणे वाऽथेतरस्मिन् पञ्चदश । प्रसिद्धं सर्वं समित्प्रभृतिकर्म । मन्त्राश्चैकवत् सः स्थाप्य सायमग्निहोत्राणि हुत्वा प्रातरग्निहोत्राणि जुहुयात् । सायमुपक्रमः प्रातरपवर्गः । काले पार्वणेन यजेत । नोर्ध्वं पाक्षिकात्समासो न प्रसङ्गे नाऽश्रद्धाधानस्य । अथाऽप्युदाहरन्ति—अश्रद्धा परमः पाप्मा पाप्मा ह्यज्ञानमुच्यते । अज्ञानाल्लुप्यते धर्मो लुप्त-धर्मोऽधमः स्मृतः ॥ श्रद्धया शुध्यते बुद्धिः श्रद्धया शुध्यते मतिः । श्रद्धया प्राप्यते ब्रह्म श्रद्धा पापप्रणाशिनी ॥ तस्माच्छ्रद्धाधानेनाऽप्रसङ्गेन संपन्ने काले तन्तुमत्या यजेत । एवं लौकिकप्रयोग एवमहुत एवं विध्यपराधे च । अथाऽप्युदाहरन्ति न वृथाऽग्नीनुद्वासयेन्नैवाऽनापत्सु । वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयत इति । तस्माच्छ्रद्धाधानस्याऽप्रासङ्गिकस्य चाऽन्यत्राऽपि ।

ये ये विशेषा लघवो यत्रयत्रोपलक्षिताः ।

तैः कर्मसंस्तरे कुर्यान्न्यायोपेतं यथा भवेत् ॥

स्वशास्त्रे विद्यमाने यः परशास्त्रेण वर्तते ।

भ्रूणहत्यासमं तस्य स्वशास्त्रमवमन्यतः ॥

आर्षेयस्य स्वशास्त्रस्य प्रदेशास्तद्गुणैः समाः ।

कर्मणां प्रविचारार्थमापत्सु च समाप्नुयादिति ॥

सर्वास्वेवाऽग्निहोत्रस्याऽऽर्तिषु

बौ० २७.५—एतदेव सर्वास्वेवाऽग्निहोत्रस्याऽऽर्तिषु मनस्वत्या प्रायश्चित्तिः क्रियते । इष्ट्वा वसीयान् भवतीति ब्राह्मणम् ॥

अग्नेरेकदेशमपहरेयुः

बौ० २७.५—एतदेव यस्याऽग्नेरेकदेशमपहरेयुः (= आहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्जुषता... इति ।)

मुग्धैर्वा बालैर्हुतम्

बौ० २७.११—हव्यताम् 'लोक्ये हुतम्'

अग्निहोत्रस्य लौकिको विधिः

बौ० २९.७—अथातोऽग्निहोत्रस्य लौकिकविधिं व्याख्यास्यामः । पुराऽग्निहोत्राद्गार्हपत्यादरण्योरग्नीन् समारोपयन्ति अयं ते योनिर्ऋत्विग्य इति । अन्तर्वेद्यरणी निधाय लौकिकेऽग्नौ जुहुयात् । सायमुद्धरति सायमाहुतिः५ हुत्वा प्रातरुद्धरति१ प्रातराहुतिः५ हुत्वेति विज्ञायते ॥

लौक्ये हुतम्

बौ० २७.११—यदि प्रसङ्गेन हुतं च लौक्ये मुग्धैर्वा बालैर्हुतं५ स्याद्विद्वतं च पत्न्या तानरण्योरग्नीन् समारोह्योदवसाय मथित्वाऽग्नीन् विद्वत् पूणाहुतिस्तन्तुमती च कार्येति । अथ यद्यप्रसङ्गेन हुतं च लौक्ये मुग्धैर्वा बालैर्हुतं५ स्यात् विद्वतं च पत्न्या तान् व्याहृतीभिर्विद्वत् पूणाहुतिस्तन्तुमती च कार्येति ॥

दर्शपूर्णमासलोपे

बौ० २९.७—अथाऽग्निहोत्रं चतुर्भिर्लुप्यते होमोपस्थानव्रतदर्शपूर्णमासैरिति । तन्तुमत्येष्टयेष्ट्वा दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत । संतिष्ठते विच्छिन्नप्रायश्चित्तिः ॥

कालातिक्रमेषु

बौ० २८.१२—कालातिक्रमेष्वापद्धोमः ॥

व्रतलोपे

बौ० २९.७—इदं यतां 'दर्शपूर्णमासलोपे'

अरणी जीर्णे स्याताम्

बौ० २७.७—अथ यद्यरणी जीर्णे स्यातां जन्तुभिर्मन्थनेन वा समाने नवे अन्ये अरणी आहृत्याऽमावास्यायामुपोष्य श्वो भूते दार्शनेष्ट्वा तस्मिन्जीर्णे शकलीकृत्य गार्हपत्ये प्रक्षिप्य प्रज्वाल्य दक्षिणेनोत्तरारणिमादाय सव्येनाऽधरारणिमुपर्यग्नौ धारयन्नपति उद्बुध्यस्वाऽग्ने प्रविशस्व योनिमन्यां देवयज्यां वोढवे जातवेदः । अरण्या अरणिमनुसंक्रमस्व जीर्णां तनुमजीर्णया निर्णुदस्व इति । अयं ते योनिर्ऋत्विग्यः इत्यरण्योरग्नीन् समारोह्य मन्थनस्याऽऽवृता गार्हपत्यं मथित्वा विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञः समिधं दधातु । या इष्टा उषसो निमुचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा इति । अथाऽग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । शराचं दक्षिणां ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते ॥

अरण्योर्व्यापत्तिः

बौ० २७.८—अथाऽरण्योर्व्यापत्तिं व्याख्यास्यामः । अष्टाभिर्निमित्तैर्विनश्यत्यमेध्यश्वचाण्डालशूद्रवायसपतितरासभरजस्वलाभिश्च सःस्पर्शनेऽरण्योर्विनाशः । तयो-

कत्सृज्य समाने नवे अन्ये अरणी आहृत्याऽग्निस्त्रहमग्न्याधेयमरणिगतं पुनराधेयम् । नष्टारणी
अप्सु निमज्जति भवतं नः समनसौ इति । अथोत्तरां छित्त्वा भित्त्वा शकलीकृत्य मन्थन-
सामर्थ्यं समारोपणसामर्थ्यं मन्थनशेषं वा प्रमन्थनं च कुर्यात् समस्तशव्यधर्मम् ।
संतिष्ठतेऽरण्योर्व्यापत्तिः ॥

अरणिगतानां प्रायश्चित्तिः

बौ० २७.५—अथाऽरणिगतानामात्मगतानामजलाणामन्वाहितानां सवनगतानां
चाऽग्नीनामुद्गातानां प्रायश्चित्तिः । अरणिगतं मथित्वा विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं
विलाप्योत्पूय सृचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्बुधतामाज्यं
विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु । या इष्टा उषसो निमुचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा इति ।
एतत्प्रायश्चित्तमनुगतेऽहुतेऽभ्युदितेऽभिनिष्ठुके च । एतत् परिवित्तस्य । एतत् परिविन्नस्य ।
एतत् परिविविदानस्य । एतत् सोमवामिने सोमातिपविताय भक्षान्तरितस्य । एतद्भक्ष-
रहितस्य । एतत् परीष्टस्य । एतत् परियष्टुः । एतदेव यस्य पुरुषो रथोऽश्वो गौर्महिषो
वराहोऽहिर्धृगः श्वा वाऽन्यद्वा श्वापदमन्तराऽग्नीन् गच्छेत् ॥

अरण्योः समारूढेषु अरणिविनाशे

बौ० २९.१२—अथ यद्यात्मनि समारूढेष्वव्रत्यं चरेदरणिविनाशोक्तदोषो वा
भवेदग्न्याधेयम् । अरणिविनाशेनाऽग्निविनाश उक्तः ॥

अरण्योः समारूढेषु कर्मलोपे

बौ० २७.६—अतिक्रान्तेषु होमेषु पर्वस्वाग्रयणेषु च । अरण्योर्ध्रियमाणेषु कथं
तन्त्रं न लुप्यते ॥ शुचिश्च पावमानी च तन्तुमानथ पाथिकृत् । एता इष्टयः प्रयोक्तव्या-
स्ततस्तन्त्रं न लुप्यते ॥ शुचिः शोधयते पापं तन्तुस्तन्त्रं न लोपयेत् । पथिकृत्पन्थान-
मारोहेत्पावमानी तु पावयेत् इति नु बौधायनस्य कल्पः ॥ दर्शो व्यतीते पाथिकृती कार्या
पौर्णमासे व्यतीते वैश्वानरी कार्याभये व्यतीत उभे कार्ये बहुषु व्यतीतेष्वन्वारम्भणीया
स्यादिति शालीकिः ॥

आत्मगतानामग्नीनां प्रायश्चित्तिः

बौ० २७.५—इदयताम् 'अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः'

आत्मनि समारूढेष्वव्रत्यं चरेत्

बौ० २९.१२—अथ यद्यात्मनि समारूढेष्वव्रत्यं चरेदरणिविनाशोक्तदोषो वा भवे-
दग्न्याधेयम् ॥

अग्नयो वृथाऽग्निभिः संसृज्येरन्

बौ० १३.४३—अथ यस्याऽग्नयो वृथाऽग्निभिः ससृज्येरन्मिथो वाऽन्यस्य
वाऽग्निभिः सोऽरण्योरग्नीन् समारोहोदवसाय मथित्वाऽग्नीन् विहृत्याऽग्नये विविचये
पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपत्यग्नये व्रतपतय इति । तस्या एता भवन्ति वि ते विष्वग्वातजूतासो

अग्ने, त्वामग्ने मानुषीरीडते विशः, त्वमग्ने व्रतपा असि, यद्गो वयं प्रमिनाम व्रतानि इति । संतिष्ठन्त इष्टयः संतिष्ठन्त इष्टयः ॥ [बौ० २३.४—स५सर्गे प्रायश्चित्तकरण इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यो नु खत्वाहवनीयोऽत एवैष उद्धृतो भवति । प्रामन्योनिरन्वाहार्यपचनः । तत्रतत्र नास्ति प्रायश्चित्तम् । प्रशस्तो हि वृथाऽग्निस५सर्ग इति ॥]

सर्वेष्ट्वग्न्युपघातेषु

बौ० २७.२—सर्वेष्ट्वग्न्युपघातेषु पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम् इत्येतया समिधमादध्यादेतयैव रुवाहुतिं जुहुयात् ॥

आहिताग्निरशु कुर्यात्

बौ० १३.४३—अग्नये व्रतभृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निरशु कुर्यादिति । तस्या एते भवतः त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिर्देवा५ आसादया इह । अग्ने हव्याय वोढवे ॥ व्रता नु बिभ्रद्भवतपा अदाभ्यो यजानो देवा५ अजरः सुवीरः । दधद्रत्नानि सुविदानो अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेदः इति ॥

स्वप्ने रेतोविसर्गः स्यात्

बौ० २७.१—अथ यदि यजमानस्यत्विजां वा स्वप्ने रेतोविसर्गः स्यात् इमं मे वरुण, तत्त्वा यामि इत्येताभ्या५ रुवाहुतीं जुहुयात् ॥

परीष्टस्य

बौ० २७.५—एतत् परीष्टस्य । (दृश्यताम्—‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’)

परियष्टुः

बौ० २७.५—एतत् परियष्टुः । (दृश्यताम्—‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’)

परिवित्तस्य

बौ० २७.५—एतत् परिवित्तस्य । (दृश्यताम्—‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’)

परिविन्नस्य

बौ० २७.५—एतत् परिविन्नस्य । (दृश्यताम्—‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’)

परिविविदानस्य

बौ० २७.५—एतत् परिविविदानस्य । (दृश्यताम्—‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’)

प्रवसति यजमाने पत्न्याः प्रवासनिमित्तं स्यात्

बौ० २९.९—अथ यदि प्रवसति यजमाने पत्न्याः प्रवासनिमित्तं स्यात्तद्वास्तो-
ष्पतीय५ हुत्वाऽध्वर्युः समारोपयेत् अथ ते योनिर्ऋतविय इति । यत्र गच्छेत्तत्राऽनो हरेत् ।
तत्र प्राच्याऽग्निं मथित्वा विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाथोत्पूय रुचिं चतु-
र्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं... स्वाहा इति । अथाऽग्नये
तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । शरावं दक्षिणां ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते ॥

यजमानश्च पत्नी चोभौ निष्कामतः

बौ० २९.९—अथ यदि यजमानश्चैव पत्नी चोभौ त्वेष निष्कामतो ग्रामान्ते ग्रामसीमान्ते वा वसतोऽग्निहोत्रमेव लुप्येताऽविकृतमग्न्याधेयं कुर्वीत ॥

पत्न्यां बहिः सीमां गतायामभिनिम्रोचेदभ्युदियाद्वा

बौ० २९.१२—अथ यदि पत्नी बहिः सीमां, पुनराधानम् ॥

प्रवसति यजमाने न पत्नी प्रवसति

बौ० २९.१२—प्रवसति यजमाने न पत्नी प्रवसति, नाऽत्र प्रायश्चित्तम् ॥

ग्राममर्यादां नदीं वाऽग्नीनतिहरेयुः

बौ० २९.१२—अथ यदि ग्राममर्यादां नदीं वाऽग्नीनतिहरेयुरेतानेवाऽग्नीन् ह्वियमाणानन्वारमेयाताम् ॥

अतिप्रवसेत्

बौ० २८.२—यथो एतत्सोऽपरिमितं प्रवसतीति न संवत्सरमतिप्रवसतीत्येवेदमुक्तं भवति । स उ चेदतिप्रवसेत् पवित्रेष्टया यजेतेति ॥ (दृश्यतां 'पवित्रेष्टिः' 'काम्या इष्टयः' इति प्रकरणे)

काम्यहोमाः

जयहोमाः

तैसं [३.४.४]—

चित्तं च ॥ चित्तिश्च ॥ आकूतं च ॥ आकूतिश्च ॥ विज्ञातं च ॥ विज्ञानं
च ॥ मनश्च ॥ शक्करीश्च ॥ दर्शश्च ॥ पूर्णमासश्च ॥ बृहच्च ॥ रथन्तरं च ॥
प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त
सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बभूव ॥

देवासुराः संयत्ता आसन् । स इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावत् । तस्मा एताञ्जयान्
प्रायच्छत् । तानजुहोत् । ततो वै देवा असुरानजयन् । यदजयन् तज्जयानां जयत्वम् ।
स्पर्धमानेनैते होतव्याः । जयत्येव तां पृतनाम् ॥

अभ्यातानहोमाः

तैसं [३.४.५-६]—

अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां
पुरोधायामस्मिन् कर्मन्स्यां देवहूत्याम् ॥ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स
माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ यमः पृथिव्या अधिपतिः स माऽवत्वस्मिन्
ब्रह्मन्.... ॥ वायुरन्तरिक्षस्याऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥
सूर्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ चन्द्रमा नक्षत्राणा-
मधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स
माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ मित्रः सत्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन्
ब्रह्मन्.... ॥ वरुणोऽपामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ समुद्रः
स्रोत्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ अन्नं साम्राज्या-
नामधिपतिः तन्माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ सोम ओषधीनामधिपतिः स
माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ सविता प्रसवानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन्
ब्रह्मन्.... ॥ रुद्रः पशूनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ त्वष्टा
रूपाणामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ विष्णुः पर्वतानामधिपतिः
स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ मरुतो गणानामधिपतयस्ते माऽवन्त्व-
स्मिन् ब्रह्मन्.... ॥ पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह माऽवत ।

अस्मिन् ब्रह्मन् अस्मिन् क्षेत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मन् अस्यां देवहृत्याम् ॥

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत । ते देवा एतानभ्यातानानपश्यन् । तानभ्यातन्वत । यदेवानां कर्माऽऽसीदार्थ्यत तत् । यदसुराणां न तदार्थ्यत । येन कर्मणेतैत्तत्र होतव्याः । ऋणोत्येव तेन कर्मणा । यद्विश्वे देवाः समभरन् तस्मादभ्याताना वैश्वदेवाः । यत् प्रजापतिर्जयान् प्रायच्छत् तस्माज्जयाः प्राजापत्याः । यद्राष्ट्रभृद्भी राष्ट्राऽददत् तद्राष्ट्रभृताः राष्ट्रभृत्वम् । ते देवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वत । जयैरजयन् । राष्ट्रभृद्भी राष्ट्राऽददत् । यदेवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वत । तदभ्यातानानामभ्यातानत्वम् । यज्जयैरजयन् तज्जयानां जयत्वम् । यद्राष्ट्रभृद्भी राष्ट्राऽददत् तद्राष्ट्रभृताः राष्ट्रभृत्वम् । ततो देवा अभवन् पराऽसुराः । यो भ्रातृव्यवान्स्यात् स एतान् जुहुयात् । अभ्यातानैरेव भ्रातृव्यानभ्यातनुते । जयैर्जयति । राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रादत्ते । भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति ॥

राष्ट्रभृद्धोमाः

तैसं [३.४.७-८]—

क्रताषाडृतधामाऽग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरस ऊर्जो नाम स इदं ब्रह्म क्षेत्रं पातु ता इदं ब्रह्म क्षेत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहा ॥ संहितो विश्वसामा स्रयो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवः । स इदं ब्रह्म.... ॥ सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो बेकुरयः । स इदं ब्रह्म.... ॥ भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तवाः । स इदं ब्रह्म.... ॥ प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यैवसामान्यप्सरसो वह्नयः । स इदं ब्रह्म.... ॥ इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्याऽऽपोऽप्सरसो मुदाः । स इदं ब्रह्म.... ॥ भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च । स नो रास्वाऽज्यानि रायस्पोषः सुवीर्यः संवत्सरीणाः स्वस्तिम् ॥ परमेष्ठ्यधिपतिर्मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य विश्वमप्सरसो भुवः । स इदं ब्रह्म.... ॥ सुक्षितिः सुभृतिर्भद्रकृत् सुवर्वान् पर्जन्यो गन्धर्वस्तस्य विद्युतोऽप्सरसो रुचः । स इदं ब्रह्म.... ॥ दूरंहेतिरमृडयो मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य प्रजा अप्सरसो भीरुवः । स इदं ब्रह्म.... ॥ चारुः कृपणकाशी कामो गन्धर्वस्तस्याऽऽधयोऽप्सरसः शोचयन्तीर्नाम स इदं ब्रह्म क्षेत्रं पातु ता इदं ब्रह्म क्षेत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा

ताम्यः स्वाहा ॥ स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च । उरु
ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ ॥

राष्ट्रकामाय होतव्याः । राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रेणैवाऽस्मै राष्ट्रमव रुन्धे । राष्ट्रमेव
भवति । आत्मने होतव्याः । राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रं प्रजाः । राष्ट्रं पशवः । राष्ट्रं यच्छ्रेष्ठो
भवति । राष्ट्रेणैव राष्ट्रमव रुन्धे । वसिष्ठः समानानां भवति । ग्रामकामाय होतव्याः । राष्ट्रं
वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रं सजाताः । राष्ट्रेणैवाऽस्मै राष्ट्रं सजातानव रुन्धे । ग्राम्येव भवति ।
अधिदेवने जुहोति । अधिदेवन एवाऽस्मै सजातानव रुन्धे । त एनमवरुद्धा उप तिष्ठन्ते ।
रथमुख ओजस्कामस्य होतव्याः । ओजो वै राष्ट्रभृतः । ओजो रथः । ओजसैवाऽस्मा ओजोऽव
रुन्धे । ओजस्येव भवति । यो राष्ट्रादपभूतः स्यात् तस्मै होतव्याः । यावन्तोऽस्य रथाः
स्युः तान् ब्रूयाद् युङ्ग्वमिति । राष्ट्रमेवाऽस्मै युनक्ति । आहुतयो वा एतस्याऽक्लृप्ता यस्य राष्ट्रं
न कल्पते । स्वरथस्य दक्षिणं चक्रं प्रवृह्य । नाडीमभि जुहुयात् । आहुतीरेवाऽस्य कल्पयति ।
ता अस्य कल्पमाना राष्ट्रमनु कल्पते । संग्रामे संयत्ते होतव्याः । राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रे
खलु वा एते व्यायच्छन्ते । ये संग्रामं संयन्ति । यस्य पूर्वस्य जुहति स एव भवति जयति तं
संग्रामम् । मान्धुक इध्मो भवति । अङ्गारा एव प्रतिवेष्टमाना अमित्राणामस्य सेनां प्रति
वेष्टयन्ति । य उन्माद्येत् तस्मै होतव्याः । गन्धर्वाप्सरसो वा एतमुन्मादयन्ति य उन्माद्यति । एते
खलु वै गन्धर्वाप्सरसो यद्राष्ट्रभृतः । तस्मै स्वाहा ताम्यः स्वाहेति जुहोति । तेनैवैनाञ्छमयति ।
नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्यः प्लाक्ष इतीध्मो भवति । एते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः । ख
एवैनानायतने शमयति । अभिचरता प्रतिलोमं होतव्याः । प्राणानेवाऽस्य प्रतीचः प्रति
यौति । तं ततो येन केन च स्तृणुते । स्वकृत इरिणे जुहोति प्रदरे वा । एतद्वा अस्यै
निर्ऋतिगृहीतम् । निर्ऋतिगृहीत एवैनं निर्ऋत्या ग्राहयति । यद्वाचः क्रूरं तेन वषट्करोति ।
वाच एवैनं क्रूरेण प्र वृश्चति । ताजगार्तिमार्छति । यस्य कामयेत अन्नाद्यमा ददीयेति तस्य
सभायामुत्तानो निपद्य भुवनस्य पत इति तृणानि सं गृहीयात् । प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः ।
प्रजापतिनैवाऽस्याऽन्नाद्यमा दत्ते । इदमहममुष्याऽऽमुष्यायणस्य अन्नाद्यं हरामि इत्याह ।
अन्नाद्यमेवाऽस्य हरति । षड्भिर्हरति । षड् वा ऋतवः । प्रजापतिनैवाऽस्याऽन्नाद्यमादयर्त-
वोऽस्मा अनु प्र यच्छन्ति । यो ज्येष्ठबन्धुरपभूतः स्यात् तं स्थलेऽवसाय्य ब्रह्मौदनं चतुःशरावं
पक्त्वा तस्मै होतव्याः । वर्ष्म वै राष्ट्रभृतः । वर्ष्म स्थलम् । वर्ष्मणैर्वैनं वर्ष्म समानानां
गमयति । चतुःशरावो भवति । दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति । क्षीरे भवति । रुचमेवाऽस्मिन्
दधाति । उद्धरति शृतत्वाय । सर्पिष्वान् भवति मेध्यत्वाय । चत्वार आर्षेयाः प्राश्नन्ति ।
दिशामेव ज्योतिषि जुहोति ॥

चतुर्होतारः

तैआ [३.१-१०]—

चित्तिः^१ सुक् । चित्तमाज्यम् । वाग्वेदिः । आधीतं बर्हिः । केतो अग्निः । विज्ञातमग्निः । वाक्पतिर्होता । मन उपवक्ता । प्राणो हविः । सामाऽ-
ध्वर्युः ॥ वाचस्पते^२ विधे नामन् । विधेम ते नाम । विधेस्त्वमस्माकं
नाम । वाचस्पतिः सोमं पिबतु । आऽस्मासु नृम्णं धात्स्वाहा ॥ पृथिवी^३
होता । द्यौरध्वर्युः । रुद्रोऽग्नीत् । बृहस्पतिरुपवक्ता ॥ वाचस्पते^४ वाचो
वीर्येण । संभृततमेनाऽऽयक्ष्यसे । यजमानाय वार्यम् । आसुवस्करस्मै ।
वाचस्पतिः सोमं पिबति । जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय स्वाहा ॥ अग्निर्होता^५ ।
अश्विनाऽध्वर्यु । त्वष्टाऽग्नीत् । मित्र उपवक्ता ॥ सोमः^६ सोमस्य पुरोगाः ।
शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः । श्रतास्त इन्द्र सोमाः । वातापेर्हवनश्रुतः स्वाहा ॥
सूर्य^७ ते चक्षुः । वातं प्राणः । द्यां पृष्ठम् । अन्तरिक्षमात्मा । अङ्गैर्यज्ञम् ।
पृथिवी^८ शरीरैः ॥ वाचस्पतेऽच्छिद्रया^९ वाचा । अच्छिद्रया जुह्वा ।
दिवि देवावृध^{१०} होत्रामेयस्व स्वाहा ॥ महाहविर्होता^{११} । सत्यहवि-
रध्वर्युः । अच्युतपाजा अग्नीत् । अच्युतमना उपवक्ता । अनाधृष्यश्चाऽ-
प्रतिधृष्यश्च यज्ञस्याऽभिगरौ । अयास्य उद्गाता ॥ वाचस्पते^{१२} हृद्विधे
नामन् । विधेम ते नाम । विधेस्त्वमस्माकं नाम । वाचस्पतिः सोममपात् ।
मा दैव्यस्तन्तु^{१३} छेदि मा मनुष्यः । नमो दिवे नमः पृथिव्यै स्वाहा ॥
वाग्धोता^{१४} । दीक्षा पत्नी । वातोऽध्वर्युः । आपोऽभिगरः । मनो हविः ।
तपसि जुहोमि ॥ भूर्भुवः^{१५} सुवः । ब्रह्म स्वयंभु । ब्रह्मणे स्वयंभुवे
स्वाहा ॥ ब्राह्मण^{१६} एकहोता । स यज्ञः । स मे ददातु प्रजां पशून्
पुष्टिं यशः । यज्ञश्च मे भूयात् ॥ अग्निर्द्विहोता । स भर्ता । स मे ददातु
प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । भर्ता च मे भूयात् ॥ पृथिवी त्रिहोता । स
प्रतिष्ठा । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्रतिष्ठा च मे भूयात् ॥
अन्तरिक्षं चतुर्होता । स विष्टा । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः ।
विष्टाश्च मे भूयात् ॥ वायुः पञ्चहोता । स प्राणः । स मे ददातु प्रजां

१. दशहोता २. तस्य ग्रहः ३. चतुर्होता ४. तस्य ग्रहः ५. पञ्चहोता
६. तस्य ग्रहः ७. षडहोता ८. तस्य ग्रहः ९. सप्तहोता १०. तस्य ग्रहः ११. द्वितीयः
षडहोतृमन्त्रः १२. तस्य ग्रहः १३. दश पर्यायमन्त्राः

पशून् पुष्टिं यशः । प्राणश्च मे भूयात् ॥ चन्द्रमाः षड्होता । स ऋतून्
 कल्पयाति । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । ऋतवश्च मे कल्पन्ताम् ॥
 अन्नं सप्तहोता । स प्राणस्य प्राणः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं
 यशः । प्राणस्य च मे प्राणो भूयात् ॥ द्यौरष्टहोता । सोऽनाधृष्यः ।
 स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । अनाधृष्यश्च भूयासम् ॥ आदित्यो
 नवहोता । स तेजस्वी । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । तेजस्वी
 च भूयासम् ॥ प्रजापतिर्दशहोता । स इदं सर्वम् । स मे ददातु प्रजां
 पशून् पुष्टिं यशः । सर्वं च मे भूयात् ॥ अग्निर्यजुर्मिः^१ । सविता स्तोमैः ।
 इन्द्र उक्थामदैः । मित्रावरुणावाशिषा । अङ्गिरसो धिष्णिण्यैरग्निभिः ।
 मरुतः सदोहविर्धानाभ्याम् । आपः प्रोक्षणीभिः । ओषधयो बर्हिषा ।
 अदितिर्वेद्या । सोमो दीक्षया । त्वष्टेध्मेन । विष्णुर्यज्ञेन । वसव आज्येन ।
 आदित्या दक्षिणाभिः । विश्वे देवा ऊर्जा । पूषा स्वगाकारेण । बृहस्पतिः
 पुरोधया । प्रजापतिरुद्गीथेन । अन्तरिक्षं पवित्रेण । वायुः पात्रैः । अहं
 श्रद्धया ॥ सेनेन्द्रस्य^२ । धेना बृहस्पतेः । पथ्या पूष्णः । वाग्वायोः ।
 दीक्षा सोमस्य । पृथिव्यग्नेः । वसूनां गायत्री । रुद्राणां त्रिष्टुक् ।
 आदित्यानां जगती । विष्णोरनुष्टुक् । वरुणस्य विराट् । यज्ञस्य षड्क्तिः ।
 प्रजापतेरनुमतिः । मित्रस्य श्रद्धा । सवितुः प्रसूतिः । सूर्यस्य मरीचिः ।
 चन्द्रमसो रोहिणी । ऋषीणामरुन्धती । पर्जन्यस्य विद्युत् । चतस्रो
 दिशः । चतस्रोऽवान्तरदिशः^(?) । अहश्च रात्रिश्च । कृषिश्च वृष्टिश्च । त्विषिश्चा-
 ऽपचितिश्च । आपश्चौषधयश्च । ऊर्क् च सन्नता च । देवानां पत्नयः ॥
 देवस्य^३ त्वा सवितुः प्रसवे । अश्विनोर्बाहुभ्याम् । पूष्णो हस्ताभ्यां
 प्रतिगृह्णामि । राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणेऽग्रये हिरण्यम् ।
 तेनाऽमृतत्वमश्याम् । वयो दात्रे । मयो मह्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे । क इदं
 कस्मा अदात् । कामः कामाय । कामो दाता । कामः प्रतिग्रहीता ।
 कामं समुद्रमाविश । कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि । कामैतत्ते । एषा ते
 काम दक्षिणा । उत्तानस्त्वाऽऽङ्गीरसः प्रतिगृह्णातु ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे सोमाय वासः । तेनाऽमृतत्व° ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे रुद्राय गाम् । तयाऽमृतत्व° ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे वरुणायाऽश्वम् । तेनाऽमृतत्व° ॥ देवस्य त्वा सवितुः

प्रसवे प्रजापतये पुरुषम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे मनवे तल्पम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे त्वष्ट्रेऽजाम् । तयाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे
 पूष्णेऽविम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे निर्ऋत्या
 अश्वतरगर्दभौ । ताभ्याममृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे
 हिमवतो हस्तिनम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे
 गन्धर्वाप्सराभ्यः स्रगलंकरणे । ताभ्याममृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो धान्यम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा
 सवितुः प्रसवे वाचेऽन्नम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे ब्रह्मण ओदनम् । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे समुद्रायाऽपः । ताभिरमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा सवितुः
 प्रसवे उत्तानायाऽऽङ्गीरसायाऽनः । तेनाऽमृतत्वं ॥ देवस्य त्वा
 सवितुः प्रसवे वैश्वानराय रथम् ॥ वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहत् । दिवः
 पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः । स पूर्ववज्जनयज्जन्तवे धनम् । समानमज्मा
 परियाति जागृविः ॥ राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणे वैश्वानराय
 रथम् । तेनाऽमृतत्वमश्याम् । वयो दात्रे । मयो मह्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे ।
 क इदं कस्मा अदात् । कामः कामाय । कामो दाता । कामः प्रतिग्रहीता ।
 कामः समुद्रमाविश । कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि । कामैतत्ते । एषा ते काम
 दक्षिणा । उत्तानस्त्वाऽऽङ्गीरसः प्रतिगृह्णातु ॥

तैत्रा [२.२-३]—

०यः^१ कामयेत प्रजायेयेति स दशहोतारं मनसाऽनुदृत्य दर्भस्तम्बे जुहुयात् ० मनसा
 जुहोति ० पूर्णया जुहोति ० न्यूनया जुहोति ० दर्भस्तम्बे जुहोति ० ब्राह्मणो दक्षिणत उपास्ते ०
 ग्रहो भवति ० यं ब्राह्मणं विद्यां विद्वांसं यशो नर्च्छेत् सोऽरण्यं परेत्य दर्भस्तम्बमुदग्रथ्य
 ब्राह्मणं दक्षिणतो निषाद्य चतुर्होतृन् व्याचक्षीत ० वरस्तस्मै देयः ० अग्निमादधानो^२ दश-
 होत्राऽरणिमवदध्यात् ० तेनैवोदृत्याऽग्निहोत्रं जुहुयात् ० हविर्निर्वप्यन् दशहोतारं व्याचक्षीत ०
 सामिवेनीरनुवक्ष्यन् दशहोतारं व्याचक्षीत ० अभिचरन् दशहोतारं जुहुयात् ० स्वकृत इरिणे
 जुहोति प्रदरे वा ० यद्वाचः क्रूरम् । तेन वषट्करोति ० दर्शपूर्णमासावाल्भमानः । चतुर्होतारं
 मनसाऽनुदृत्याऽऽहवनीये जुहुयात् ० ग्रहो भवति ० चातुर्मास्यान्वाल्भमानः । पञ्चहोतारं मनसाऽ-
 नुदृत्याऽऽहवनीये जुहुयात् ० ग्रहो भवति ० पशुबन्धेन यक्ष्यमाणः । षड्होतारं मनसाऽनुदृत्याऽऽ-

हवनीये जुहुयात्० ग्रहो भवति० दीक्षिष्यमाणः । सप्तहोतारं मनसाऽनुद्रुत्याऽऽहवनीये जुहुयात्० ग्रहो भवति० यत् संभारा भवन्ति० आतिथ्यमासाद्य व्याचष्टे० पत्नीर्व्याचष्टे० उपसत्सु व्याचष्टे० यं कामयेत वसीयान्त्स्यादिति । तं पूर्वपक्षे याजयेत्० यः कामयेत वीरो म आजायेतेति । स चतुर्होतारं जुहुयात्० जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय स्वाहेति ग्रहेण जुहोति० यः सुवर्गकामः स्यात् । स पञ्चहोतारं पुरा प्रातरनुवाकादाग्नीध्रे जुहुयात्० तस्मात् सप्तदशः स्तोमो न निर्ह्यः० य एवं विद्वान् व्यावृत्य दक्षिणां प्रतिगृह्णाति० वैश्वानर्यर्चा रथं प्रतिगृह्णाति० दशमेऽहन्त्सर्पराज्ञिया ऋग्भिः स्तुवन्ति० तिसृभिः स्तुवन्ति० पृश्निवतीर्भवन्ति० मनसा प्रस्तौति । मनसोद्रायति । मनसा प्रतिहरति० चतुर्होतृन् होता व्याचष्टे० दशमेऽहन्त्सुतुर्होतृन् व्याचष्टे० वाचं यञ्छति० अह्ना रात्रिं ध्यायेत्० अधिवृक्षसूर्ये वाचं विसृजति० षड्ढोत्रा प्रायणीयमासादयति० चतुर्होत्राऽऽतिथ्यम्० पञ्चहोत्रा पशुमुपसादयति० ग्रहान् गृहीत्वा सप्तहोतारं जुहोति० बहिष्पवमाने दशहोतारं व्याचक्षीत । माध्यंदिने पवमाने चतुर्होतारम् । आर्भवे पवमाने पञ्चहोतारम् । पितृयज्ञे षड्ढोतारम् । यज्ञायज्ञियस्य स्तोत्रे सप्तहोतारम्० यः कामयेत बहोर्भूयान्त्स्यामिति । स दशहोतारं प्रयुञ्जीत० यः कामयेत वीरो म आजायेतेति । स चतुर्होतारं प्रयुञ्जीत० यः कामयेत पशुमान्त्स्यामिति । स पञ्चहोतारं प्रयुञ्जीत० यः कामयेतर्तवो मे कल्पेरन्निति । स षड्ढोतारं प्रयुञ्जीत० यः कामयेत सोमपः सोमयाजी स्याम् । आ मे सोमपः सोमयाजी जायेतेति । स सप्तहोतारं प्रयुञ्जीत० दक्षिणां प्रतिग्रहीष्यन्त्सप्तदशकृत्वोऽपान्यात्० यद्येनमार्त्विज्याद् वृतं सन्तं निर्हरेरन् । आग्नीध्रे जुहुयादशहोतारम् । चतुर्गृहीतेनाऽऽज्येन । पुरस्तात् प्रत्यङ् तिष्ठन् । प्रतिलोमं विग्राहम्० यद्येनं पुनरुपशिक्षेयुः । आग्नीध्र एव जुहुयादशहोतारम् । चतुर्गृहीतेनाऽऽज्येन । पश्चात् प्राडासीनः । अनुलोममविग्राहम्० प्रायश्चित्ती वाग्धोतेयृतुमुख ऋतुमुखे जुहोति० यत्किञ्चित् प्रतिगृह्णीयात् । तत्सर्वमुत्तानस्त्वाऽऽङ्गीरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृह्णीयात्० तस्मादग्निहोत्रस्य यज्ञक्रतोः । एक ऋत्विक्० तस्मादर्शपूर्णमासयोर्यज्ञक्रतोः । चत्वार ऋत्विजः० तस्माच्चातुर्मास्यानां यज्ञक्रतोः । पञ्चर्त्विजः० तस्मात्पशुबन्धस्य यज्ञक्रतोः । षड्त्विजः० तस्मात्सौम्यस्याऽध्वरस्य यज्ञक्रतोः । सप्तहोत्राः प्राचीर्वष्टकुर्वन्ति० तस्मात् संवत्सरे सर्वे यज्ञक्रतवोऽवरुध्यन्ते० स यः कामयेत प्रियः स्यामिति । यं वा कामयेत प्रियः स्यादिति । तस्मा एतं स्थागरमलंकारं कल्पयित्वा । दशहोतारं पुरस्ताद् व्याख्याय । चतुर्होतारं दक्षिणतः । पञ्चहोतारं पश्चात् । षड्ढोतारमुत्तरतः । सप्तहोतारमुपरिष्ठात् । संभारैश्च पत्निभिश्च मुखेऽलंकृत्य । आऽस्याऽर्धं व्रजेत् । प्रियो हैव भवति ॥

चतुर्होतारः

भैसं [१.९]—

चित्तिः सुक् । चित्तमाज्यम् । वाग्वेदिः । आधीतं बर्हिः । केतो अग्निः ।

विज्ञातमग्नीत् । वाचस्पतिर्होता । मन उपवक्ता । प्राणो हविः । सामाऽ-
ध्वर्युः । इन्द्रं गच्छ स्वाहा ॥ पृथिवी होता । द्यौरध्वर्युः । त्वष्टाऽग्नीत् ।
मित्र उपवक्ता ॥ वाचस्पते वाचो वीर्येण संभृततमेनाऽऽयक्षसे । यज्ञपतये
वार्यमा स्वस्कः । वाचस्पतिः सोममपात् । जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय ॥
सोमः सोमस्य पिबतु । शुक्रः शुक्रस्य पिबतु । श्रातास्त इन्द्र सोमा
वातापयो हवनश्रुतः ॥ अग्निर्होता । अश्विनाऽध्वर्युः । रुद्रो अग्नीत् । बृहस्पति-
रुपवक्ता ॥ वाचस्पते हिन्विधे नामन् विधेम ते नाम । विधेस्त्वमस्माकं
नाम । वाचस्पतिः सोममपात् । आऽस्मासु नृम्णं धात् ॥ सोमः सोमस्य
पिबतु । शुक्रः शुक्रस्य पिबतु । श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापयो हवन-
श्रुतः ॥ महाहविर्होता । सत्यहविरध्वर्युः । अचित्तपाजा अग्नीत् । अचित्त-
मना उपवक्ता । अनाधृष्यश्चाऽप्रतिधृष्यश्चाऽभिगरः । अयास्य उद्गाता ॥
विधे नामन् विधेम ते नाम । विधेस्त्वमस्माकं नाम । मा देवानां तन्तुच्छेदि
मा मनुष्याणाम् । नमो मात्रे पृथिव्यै ॥ अग्निर्यजुर्मिः । सविता स्तोमैः ।
इन्द्र उक्थामदैः । बृहस्पतिश्छन्दोभिः । अदितिरपश्च बर्हिश्च । आदित्या
आज्यैः । मरुतः सदोहविधानैः । विष्णुर्दीक्षातपोभ्याम् । मित्रावरुणौ
धिष्ण्यैः । अश्विना आशिः । त्वष्टा समिधा । पूषा स्वाहाकारैः । वाग्वायोः
पत्नी । पथ्या पूष्णः । पृथिव्यग्नेः । सेनेन्द्रस्य । धेना बृहस्पतेः । गायत्री
वसूनाम् । त्रिष्टुबुद्राणाम् । जगत्यादित्यानाम् । अनुष्टुम्भित्रस्य । विराड्
वरुणस्य । पङ्क्तिर्विष्णोः । दीक्षा सोमस्य ॥

प्रजापतिर्वा एक आसीत् । सोऽकामयत यज्ञो भूत्वा प्रजाः सृजेयेति । स दश-
होतारं यज्ञमात्मानं व्यधत् ० सोऽमन्यत क होष्यामीति । स तदेव नाऽविन्दत् प्रजापति-
र्यत्राऽहोष्यत् । नो अस्याऽन्यद्धोत्वमासीत् प्राणात् । स वा इन्द्रमेवाऽन्तरात्मनाऽऽयतनमचायत् ।
स इन्द्रं गच्छ स्वाहेत्यपानत् ० ते वै चतुर्होतारो न्यसीदन्सोमगृहपतया इन्द्रं जनयिष्यामा इति ०
त एकविंशमायतनमचायन् । तेनेन्द्रमजनयन् ० ते वै पञ्चहोतारो न्यसीदन् वरुणगृहपतयः ०
ते त्रिणवमायतनमचायन् । तं सेतुं कृत्वा स्वरायन् । तेन पशूनसृजन्त । तान् देवताभ्योऽ-
नयन् । यमायाऽश्वमनयन् । तस्याऽर्धमिन्द्रियस्याऽपाक्रामत् । स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् । देवस्य
त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि । यमाय त्वा मह्यं वरुणो
ददाति । सोऽमृतत्वमशीय । मयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे इति सोऽर्धमिन्द्रियस्यो-
पाधत् । अर्धमिन्द्रियस्योपधत्ते य एव विद्वानश्वं प्रतिगृह्णाति । अथ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णा-
त्यर्धमस्येन्द्रियस्याऽपाक्रामति । रुद्राय गामनयन् । तस्य तृतीयमिन्द्रियस्याऽपाक्रामत् । स एतं

प्रतिग्रहमपश्यत् रुद्राय त्वा मन्वा वरुणो ददाति । सोऽमृतत्वमशीय । मयो दात्रे भूयान्मयो महां प्रतिग्रहीत्रे इति स तृतीयमिन्द्रियस्योपाधत्त । तृतीयमिन्द्रियस्योपाधत्ते य एव विद्वान् गां प्रतिगृह्णाति । अथ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति तृतीयमस्येन्द्रियस्याऽपक्रामति । अग्नये हिरण्यमनयन् । तस्य चतुर्थमिन्द्रियस्याऽपक्रामत् । स एतं प्रतिग्रहमपश्यद् अग्नये त्वा महां वरुणो ददाति । सोऽमृतत्वमशीय । मयो दात्रे भूयान्मयो महां प्रतिग्रहीत्रे इति स चतुर्थमिन्द्रियस्योपाधत्त । चतुर्थमिन्द्रियस्योपाधत्ते य एव विद्वान् हिरण्यं प्रतिगृह्णाति । अथ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति चतुर्थमस्येन्द्रियस्याऽपक्रामति । बृहस्पतये वासोऽनयन् । तस्य पञ्चममिन्द्रियस्याऽपक्रामत् । स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ग्रास्त्वाऽकृन्तन्नपसोऽतन्वत धियोऽवयन् बृहस्पतये त्वा मन्वा वरुणो ददाति । सोऽमृतत्वमशीय । मयो दात्रे भूयान्मयो महां प्रतिग्रहीत्रे इति स पञ्चममिन्द्रियस्योपाधत्त । पञ्चममिन्द्रियस्योपाधत्ते य एव विद्वान् वासः प्रतिगृह्णाति । अथ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति पञ्चममस्येन्द्रियस्याऽपक्रामति । उत्तानायाऽऽङ्गिरसायाऽप्राणदनयन् । तस्य षष्ठमिन्द्रियस्याऽपक्रामत् । स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् उत्तानाय त्वाऽऽङ्गिरसाय मन्वा वरुणो ददाति । सोऽमृतत्वमशीय । मयो दात्रे भूयान्मयो महां प्रतिग्रहीत्रे इति स षष्ठमिन्द्रियस्योपाधत्त । षष्ठमिन्द्रियस्योपाधत्ते य एव विद्वान् प्राणत्प्रतिगृह्णाति । अथ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति षष्ठमस्येन्द्रियस्याऽपक्रामति । क इदं कस्मा अदात् कामः कामायाऽदात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामाय त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते इति । समुद्रो वै कामो दक्षिणा कामः । दक्षिणयैव दक्षिणां प्रतिगृह्णाति । यो वै तां देवतां वेद याऽग्रे दक्षिणामनयद् दक्षिणीयो ह भवति । नयति दक्षिणाम् ॥

ते वै स्वयन्तोऽब्रुवन् । अतो नो यूयं प्रयच्छत केनाऽऽयतनेनाऽत्रैव वेत्स्यथेत्यब्रुवन् । ते वै सप्तहोतारो न्यसीदन्नर्यमगृहपतयः० ते त्रयस्त्रिंशमायतनमचायस्तेनेद० समतन्वन्० दशहोत्राऽग्निहोत्रमुन्नीतमभिमृशेत्० चतुर्होत्रा दर्शपूर्णमासा अभिमृशेत्० पञ्चहोत्रा चातुर्मास्यान्यभिमृशेत्० सप्तहोत्रा सौम्यमध्वरमभिमृशेत्० दशहोतार० वदेत् पुरस्तात्सामिधेनीनाम्० चतुर्होतार० वदेत्पुरस्तात्प्रयाजानाम्० पञ्चहोतार० वदेत्पुरस्ताद्विषाम्० सप्तहोतार० वदेत्पुरस्तादनुयाजानाम्० दशहोतार० वदेत्पुरस्ताद्वहिष्पवमानस्य० चतुर्होतार० वदेत्पुरस्तादाज्यानाम् । पञ्चहोतार० वदेत्पुरस्तान्माध्यंदिनस्य पवमानस्य । सप्तहोतार० वदेत्पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्य० एते वै चतुर्होतारोऽनुसवनं तर्पयितव्याः । यद्वाह्यणा बहुविदस्तानेव तर्पयति० यः प्रजया पशुभिर्न प्रजायेत स द्वादशाहानि बरासीं परिधाय तप्तं पिबन्नधः शयीत० प्रजापतिर्वै दशहोता । ज्यायान् वै प्रजापतिर्होमात् । तस्मात्तन्न जुह्वति । प्राण्याऽपानेत्० संप्राणिं चतुर्होत्रा याजयेत् । चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा चतुर्होतार० व्याचक्षीत । पूर्वेण ग्रहेणाऽर्धं जुहुयादुत्तरेणाऽर्धम्० प्रजाकामं चतुर्होत्रा याजयेत् । चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा चतुर्होतार० व्याचक्षीत । पूर्वेण ग्रहेणाऽर्धं

जुहुयादुत्तरेणाऽर्धम्० पशुकामं पञ्चहोत्रा याजयेत् । चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारं व्याचक्षीत । पूर्वेण ग्रहेणाऽर्धं जुहुयादुत्तरेणाऽर्धम्० आतृव्यवन्तं पञ्चहोत्रा याजयेत् । चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारं व्याचक्षीत । पूर्वेण ग्रहेणाऽर्धं जुहुयादुत्तरेणाऽर्धम्० स्वर्गकामं पञ्चहोत्रा याजयेत् । चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारं व्याचक्षीत । पूर्वेण ग्रहेणाऽर्धं जुहुयादुत्तरेणाऽर्धम्० यो यज्ञस्य सःस्थामनु पापीयान् मन्येत तं सप्तहोत्रा याजयेत्० ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यदेको यज्ञश्चतुर्होताऽथ कस्मात् सर्वे चतुर्होतार उच्यन्ता इति । चत्वारो वा एते यज्ञाः । तेषां चत्वारो होतारः । तच्चतुर्होतृणां चतुर्होतृत्वम् । चतुर्णामेकः सःवत्सरं नाऽश्नीयात् । तद्व्रतम् । अन्नं वै चतुर्होतारः । अन्नवान् भवति य एव वेद । अथ यमनूचानः सन्तं नोपनमेत् सोऽरण्यं परेत्य ब्राह्मणमुपद्रष्टारं कृत्वा चतुर्होतृन् व्याचक्षीत० चतुर्होतारं वदेद्दशमेऽहन्ननकामः० होता वदति० एतैरेव जुहुयात् समृतयज्ञे । चतुर्भिश्चतुर्भिर्नवाक्षायां पुरस्तात् प्रातरनुवाकस्य० एतैरेव जुहुयात्पुरस्तादीक्षायाः० एतैरेव जुहुयात् पुरस्ताद् द्वादशाहस्य० एतैरेवाऽऽतिथ्यमभिमृशेत्० एतान्येवाऽग्नीध्रेऽनुब्रूयात् । अग्नीद्वै पालीवतस्य यजति० एतैरेव जुहुयादन्तरा त्वष्टारं च पत्नीश्च सःवत्सरं प्रजाकामः० यदि सःवत्सरं जुह्वन् विन्देन्नाऽऽद्यत्यम् ॥

कासं [९.८-१०]—

चित्तिस्सुक्.... यज्ञपतये वार्यमा स्वस्करः । वाचस्पतस्सोमं पिबतु । जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय स्वाहा ॥ सोमस्सोमस्य पुरोगाः । शुक्रश्शुक्रस्य पुरोगाः । श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापे हवनश्चुतस्स्वाहा ॥ अग्निर्होता.... वाचस्पते हृदिधे नामन् वाचस्पतस्सोममपात् । आऽस्मासु नृम्णं धात्स्वाहा ॥ सोमस्सोमस्य पुरोगाः । शुक्रश्शुक्रस्य पुरोगाः । श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापे हवनश्चुतस्स्वाहा ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि । वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे । यमायाऽश्वम् । तेनाऽमृतत्वमशीय । वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि । वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे । अग्नये हिरण्यम् । तेनाऽमृतत्वमशीय.... ॥ देवस्य त्वा.... देवि दक्षिणे । रुद्राय गाम् । तेना(तया?)ऽमृतत्वमशीय.... ॥ देवस्य त्वा.... प्रतिगृह्णामि । आस्त्वाऽकृन्तन्नपसोऽतन्वत वरुत्रीरवयन् । वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे । बृहस्पतये वासः । तेनाऽमृतत्वमशीय.... ॥ देवस्य त्वा.... देवि दक्षिणे । उत्तानायाऽऽङ्गिरसायाऽप्राणत् । तेनाऽमृतत्वमशीय.... ॥ देवस्य त्वा.... देवि दक्षिणे । प्रजापतये पुरुषम् । तेनाऽमृतत्वमशीय.... ॥

क इदं कस्मा अदात्कामः कामाय कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता काम-
स्समुद्रमाविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते ॥ महाहविर्होता....
अयास्य उद्राता वाचस्पते विधे नामन्.... मा मनुष्याणाम् ॥ अग्नि-
र्यजुर्भिः.... बृहस्पतिश्छन्दोभिर्विष्णुर्दीक्षातपोभ्यामदितिस्सदोहविर्धानाभ्या-
मादित्या आज्यैर्मित्रावरुणौ धिष्ण्येभिरग्निभिर्मरुतोऽपश्च बर्हिश्च त्वष्टा
समिधाऽश्विना आशिरा पूषा स्वगाकारैः पृथिव्यग्नेर्वाग्वातस्य सेनेन्द्रस्य
धेना बृहस्पतेः पथ्या पूष्णो गायत्री वसूनां त्रिष्टुब्जद्राणां जगत्यादित्या-
नामनुष्टुम्भित्रस्य विराड् वरुणस्य पङ्क्तिर्विष्णोर्दीक्षा सोमस्य ॥

कासं [९.११-१६] (कासं ९.११-१३ ≡ मैसं १.९.३-५)—

....यः प्रजया पशुभिरेव प्रभवेद्वरासीं परिधाय तप्तं पिबन् द्वादश रात्रीरधः शयीत ।
द्वादस्याः प्रातः प्राहुदद्रुत्य दशहोतारं व्याचक्षीत० चतुर्होत्रा याजयेत् पुत्रकामम्० वरो दक्षिणा०
चतुर्होत्रा याजयेद्राजानं संग्रामे संयते । यत्तत्र विन्दते ततो दक्षिणा समृद्धये । पञ्चहोत्रा
याजयेत् पशुकामम्० तस्य एताश्चतस्रो दक्षिणा अश्वो हिरण्यं गौर्वासः । सप्तहोत्रा याजयेद्यो
यज्ञस्य सैस्थामनु पापीयान् स्यात्० यच्चतुर्होतृननुसवनं तर्पयितव्यान् वेद० दशहोतारं
व्याख्याय बहिष्पवमानेनोद्गायेत्० चतुर्होतारं व्याख्यायाऽऽज्यैरुद्गायेत्० पञ्चहोतारं व्याख्याय
माध्यंदिनेन पवमानेनोद्गायेत्० सप्तहोतारं व्याख्यायाऽऽर्भवेण पवमानेनोद्गायेत्० दशहोतारं
सामिधेनीष्वनूच्यमानासु व्याचक्षीत० चतुर्होतारं प्रयाजानां पुरस्ताद् व्याचक्षीत० पञ्चहोतरि
हविषामवदीयमाने व्याचक्षीत० सप्तहोतारमनुयाजानामुपरिष्ठाद् व्याचक्षीत० चतुर्होत्रा पूर्णमासे
हवींभ्यासन्नान्यभिमृशेत्० पञ्चहोत्राऽमावस्यायी हवींभ्यासन्नान्यभिमृशेत्० सर्परात्र्या ऋग्भिर्दश-
मेऽहन्नुद्गातोद्गायेत्० यच्चतुर्होतृन् होता वदति० अग्न्याधेये व्याचक्षीत० समृतसोम एतेषां
चतुर्भिश्चतुर्भिः प्रचरिष्यञ्जुहुयात्० दीक्षायां वाचयेत्० द्वादशाहे वाचयेत्० यस्य पत्नीर्वि-
द्वानभिद्ववति० यस्य पत्नीर्विद्वानभित् पालीवतस्य यजति० दीक्षिष्यमाणस्सप्तहोत्रा पुरस्ता-
ञ्जुहुयात्० दर्शपूर्णमासा आलप्स्यमानश्चतुर्होत्रा पुरस्ताञ्जुहुयात्० चातुर्मास्यान्यालप्स्यमानः
पञ्चहोत्रा पुरस्ताञ्जुहुयात्० अभिचरन् दशहोत्रा जुहुयात्० स्वकृत इरिणे प्रदरे वा जुहुयात्०
वषट्करोति० यस्त्वर्गकामस्त्यास् एतं पञ्चहोतारं मनसाऽनूदद्रुत्य जुहुयात्० योऽब्राह्मणो विद्या-
मनूय नेव रोचेत स एतींश्चतुर्होतृनरण्यं परेत्य दर्भस्तम्बमुदग्रथ्य ब्राह्मणं दक्षिणतो निषाद्य
व्याचक्षीत० दर्भस्तम्बमुदग्रथ्य व्याचष्टे० अग्निमत्येव व्याचष्टे० उपद्रष्टुमत्येव व्याचष्टे० यो
दक्षिणत आस्ते तस्मै वरं दद्यात्० ॥

कपिसं [८.११-१२] ≡ कासं [९.८-९]

काम्यहोमाः

कूष्माण्डहोमाः

तैआ [२.३-६]—

यद्देवा देवहेळनं देवासश्चक्रुमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यर्तेन मामित ॥
देवा जीवनकाम्या यद्वाचाऽनृतमूदिम ।
तस्मान्न इह मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥
ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वं सरस्वति ।
कृतान्नः पाद्येनसो यत्किंचाऽनृतमूदिम ॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ सोमो धाता बृहस्पतिः ।
ते नो मुञ्चन्त्वेनसो यदन्यकृतमारिम ॥
सजातशं सादुत जामिशं साज्ज्यायसः शं सादुत वा कनीयसः ।
अनाधृष्टं देवकृतं यदेनस्तस्मात्त्वमस्माज्जातवेदो मुमुग्धि ॥
यद्वाचा यन्मनसा बाहुभ्यामूरुभ्यामष्टीवद्भ्यां शिश्नैर्यदनृतं चक्रुमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु चक्रुम यानि दुष्कृता ॥
येन त्रितो अर्णवान्निर्वभूव येन सूर्यं तमसो निर्मुमोच ।
येनेन्द्रो विश्वा अजहादरातीस्तेनाऽहं ज्योतिषा ज्योतिरानशान आक्षि ॥
यत्कुसीदमप्रतीचं मयेह येन यमस्य निधिना चरामि ।
एतत्तदग्रे अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रति तत्ते दधामि ॥
यन्मयि माता गर्भे सत्येनश्चकार यत्पिता ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु
दुरिता यानि चक्रुम करोतु मामनेनसम् ॥
यदापिपेष मातरं पितरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
अहिंसितौ पितरौ मया तत् तदग्रे अनृणो भवामि ॥
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अग्निर्मा तस्मादेनसः..... ॥
यदाशसा निशसा यत्पराशसा यदेनश्चक्रुमा नूतनं यत्पुराणम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसः..... ॥
अतिक्रामामि दुरितं यदेनो जहामि रिग्रं परमे सधस्थे ।
यत्र यन्ति सुकृतो नाऽपि दुष्कृतस्तमारोहामि सुकृतां नु लोकम् ॥
त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एतन्मनुष्येषु मामृजे ।

ततो मा यदि किञ्चिदानशे । अग्निर्मा तस्मादेनसः.... ॥
 दिवि जाता अप्सु जाता या जाता ओषधीभ्यः ।
 अथो या अग्निजा आपस्ता नः शुन्धन्तु शुन्धनीः ॥
 यदापो नक्तं दुरितं चराम यद्वा दिवा नूतनं यत्पुराणम् ।
 हिरण्यवर्णास्तत उत्पुनीत नः ॥
 इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥
 तच्चा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्मिः ।
 अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥
 त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः ।
 यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥
 स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
 अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकंसुहवो न एधि ॥
 त्वमग्ने अयाऽस्यया सन् मनसा हितः ।
 अया सन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजम् ॥
 यददीव्यन्तृणमहं बभूवाऽदित्सन् वा संजगर जनेभ्यः ।
 अग्निर्मा तस्मादिन्द्रश्च संविदानौ प्रमुञ्चताम् ॥
 यद्वस्ताभ्यां चकर किल्बिषाप्यक्षाणां वगनुमुपजिघ्रमानः ।
 उग्रंपश्ये च राष्ट्रभृच्च तान्यप्सरसावनुदत्तामृणानि ॥
 उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत् ।
 नेत्र ऋणानृणव इत्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुराय ॥
 अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्मिः ।
 क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
 अथा वयमादित्य व्रते तवाऽनागसो अदितये स्याम ॥
 इमं मे वरुण.... ॥ तच्चा यामि.... ॥ त्वं नो अग्ने.... ॥
 स त्वं नो अग्ने.... ॥
 संकुसुको विकुसुको निर्ऋथो यश्च निस्वनः ॥
 तेऽश्मद्यक्षमनागसो दूराद्दूरमचीचतम् ॥
 निर्यक्षमचीचते कृत्यां निर्ऋति च ।
 तेन योऽश्मत् समृच्छातै तमस्मै प्रसुवामसि ॥

दुःशंसानुशंसाम्यां घणेनाऽनुघणेन च ।
 तेनाऽन्योऽस्मत् समृच्छातै तमस्मै प्रसुवामसि ॥
 सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सः शिवेन ।
 त्वष्टा नो अत्र विदधातु रायोऽनुमार्ह्यु तन्वोऽयद्विलिष्टम् ॥
 आयुष्टे विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ।
 पुनस्ते प्राण आयाति परा यक्ष्मः सुवामि ते ॥
 आयुर्दा अग्रे हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
 घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमम् ॥
 इममग्र आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण सः शिशिषि ।
 मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥
 अग्र आयूषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
 अग्रे पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रथि मयि पोषम् ॥
 अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥
 अग्रे जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
 अस्मे दीदिहि सुमना अहेळञ्छर्मन् ते स्याम त्रिवरूथ उद्भौ ॥
 सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
 अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयः स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥
 अग्रे यो नोऽभितो जनो बृको वारो जिघांसति ।
 ताः स्त्वं वृत्रहञ्जहि वस्वस्मभ्यमाभर ॥
 अग्रे यो नोऽभिदासति समानो यश्च निष्टयः ।
 तं वयः समिधं कृत्वा तुभ्यमग्रेऽपिदध्मसि ॥
 यो नः शपादशपतो यश्च नः शपतः शपात् ।
 उषाश्च तस्मै निमृक्च सर्वं पापः समूहताम् ॥
 यो नः सपत्नो योऽरणोऽमर्तोऽभिदासति देवाः ।
 इध्मस्येव प्रक्षायतो मा तस्योच्छेषि किञ्चन ॥
 यो मां द्रेष्टि जातवेदो यं चाऽहं द्रेष्मि यश्च माम् ।
 सर्वाः स्तानग्रे संदह याःश्चाऽहं द्रेष्मि ये च माम् ॥

१. 'यो रणो' इति मुद्रितपुस्तके । भाष्यकारोऽपि तथैव पठति । तैब्रा ३.७.६
 अत्राप्येवमेव पाठः । परं बल्लमफील्डमहोदयानां वैदिकपादसूची द्रष्टव्या ।

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
 निन्दाद्यो अस्मान् दिप्साच्च सर्वाः स्तान् मष्मषा कुरु ॥
 सःशितं मे ब्रह्म सःशितं वीर्यां१ बलम् ।
 सःशितं क्षत्रं मे जिष्णु यस्याऽहमस्मि पुरोहितः ॥
 उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् ।
 क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ अहम् ॥
 पुनर्मनः पुनरायुर्म आगात्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात् ।
 पुनः प्राणः पुनराकूतं म आगात्पुनश्चित्तं पुनराधीतं म आगात् ।
 वैश्वानरो मेऽदब्धस्तनूपा अवबाधतां दुरितानि विश्वा ॥
 वैश्वानराय१ प्रतिवेदयामो यदीनृणः संगरो देवतासु ।
 स एतान् पाशान् प्रमुचन् प्रवेद स नो मुञ्चातु दुरितादवद्यात् ॥
 वैश्वानरः पवयान्नः पवित्रैर्यत्संगरमभिधात्राम्याशाम् ।
 अनाजानन् मनसा याचमानो यदत्रैनो अव तत्सुवामि ॥
 अमी ये सुभगे दिवि विचृतौ नाम तारके ।
 ग्रेहाऽमृतस्य यच्छतामेतद्बद्धकमोचनम् ॥
 विजिहीर्ष्व लोकान् कृधि बन्धान् मुञ्चासि बद्धकम् ।
 योनेरिव प्रच्युतो गर्भः सर्वान् पथो अनुष्व ॥
 स प्रजानन् प्रतिगृभ्णीत विद्वान् प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ।
 अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनुसंचरेम ॥
 तत् तन्तुमन्वेके अनुसंचरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनवत् ।
 अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छाहातुं चेच्छक्रवाः स स्वर्ग एषाम् ॥
 आरभेथामनुसः रभेथाः समानं पन्थामवथो घृतेन ।
 यद्वां पूर्तं परिविष्टं यदग्नौ तस्मै गोत्रायेह जायापती सः रभेथाम् ॥
 यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिःसिम ।
 अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्य उन्नो नेषद् दुरिता यानि चकृम ॥
 भूमिर्माताऽदितिर्नो जनित्रं भ्राताऽन्तरिक्षमभिश्स्त एनः ।
 द्यौर्नः पिता पितृयाच्छं भवासि जामि मित्वा मा विवित्सि लोकात् ॥
 यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ते विहाय रोगं तन्वा१ः स्वायाम् ।
 अश्लोणाङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरं च पुत्रम् ॥

यदन्नमद्वयनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत वाऽकरिष्यन् ।
यद्देवानां चक्षुष्यागो अस्ति यदेव किंच प्रतिजग्राहमग्निर्मा तस्मादनृणं कृणोतु ॥
यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं वासो हिरण्यमुत गामजामविम् । यद्देवानां..... ॥
यन्मया मनसा वाचा कृतमेनः कदाचन ।
सर्वस्मात्तस्मान्मेळितो मोग्धि त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥

तैआ [२.७-८]—

वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुः । तानृषयोऽर्थमायन् । ते
निलायमचरन् । तेऽनुप्रविशुः कूष्माण्डानि । तांस्तेष्वन्वविन्दच्छ्रद्धया च तपसा च ।
तानृषयोऽब्रुवन् कथा निलायं चरथेति । त ऋषीनब्रुवन्नमो वोऽस्तु भगवन्तोऽस्मिन् धाम्नि केन
वः सपर्यामिति । तानृषयोऽब्रुवन् पवित्रं नो ब्रूत येनाऽरेपसः स्यामेति । त एतानि सूक्तान्य-
पश्यन् यद्देवा देवहेळनं, यददीव्यन्तृणमहं बभूव, आयुष्टे विश्वतो दधदिति । एतैराज्यं जुहुत
वैश्वानराय प्रतिवेदयाम इत्युपतिष्ठत । यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मोक्ष्यध्व इति । त
एतैरजुह्वुस्तेऽरेपसोऽभवन् । कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् । पूतो देवलोकान् समश्नुते । कूष्माण्डै-
र्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत । यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनी रेतः सिञ्चति ।
यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते । यावदेनो दीक्षामुपैति । दीक्षित एतैः सतति
जुहोति । संवत्सरं दीक्षितो भवति । संवत्सरादेवाऽऽत्मानं पुनीते । मासं दीक्षितो भवति ।
चतुर्विंशतिं रात्रीर्दीक्षितो भवति । द्वादश रात्रीर्दीक्षितो भवति । षड्रात्रीर्दीक्षितो भवति ।
तिस्रो रात्रीर्दीक्षितो भवति । न मांसमश्रीयान्न स्त्रियमुपेयान्नोपर्यासीत जुगुप्सेताऽनृतात् ।
पयो ब्राह्मणस्य व्रतं, यवागू राजन्यस्य, आमिक्षा वैश्यस्य । अथो सौम्येऽप्यध्वर एतद्व्रतं ब्रूयात् ।
यदि मन्येतोपदस्यामीत्योदनं धानाः सक्तून् घृतमित्यनुव्रतयेदात्मनोऽनुपदासाय ॥

भैसं [४.१४.१७]—

यद्देवा देवहेडनं यद्वाचाऽनृतमोदिम । आदित्यास्तस्मान्मुञ्चतर्तस्य त्वेन-
माधुतः ॥ देवा जीश्वनकाम्या..... ॥ ऋतेन द्यावापृथिवी.... पाह्यहसो
यत्किंचाऽनृतमोदिम ॥ इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ.... यत्किंचाऽनृतमोदिम ॥
सजातशंसादुत.... ॥ यदन्तरिक्षं.... अग्निर्नस्तस्मादेनसो.... दुरितानि
यानि कानि च चकृम ॥ येन त्रितो.... निरमोचि ।अयाक्षि ॥
यद्द्वैव्यमृणमहं बभूव धिप्स्यं वा संचकर जनेभ्यः । अग्निर्नस्तस्मा..... ॥
यत्कुसीदमप्रतीतं.... चरावः । प्रति हस्तानृणानि ॥ यद्वस्ताभ्यां....
वग्मुमवजिघ्रमापः । उग्रं पश्याच्च राष्ट्रभृच्च तान्यप्सरसामनुदत्तानृणानि ॥
उग्रं पश्येद्राष्ट्रं..... । नेम्र ऋणानृणवानीप्समानो यमस्य लोके निधिरजराय ॥

इमं मे वरुण.... ॥ तत्त्वा यामि.... ॥ उदुत्तमं वरुण.... ॥ अव ते हेडो वरुण.... ॥ त्वं नो अग्रे.... ॥ स त्वं नो अग्रे.... ॥ संकसुको विकसुको निर्ऋतो.... ॥ निर्यक्ष्ममचीचते कृत्यां निर्ऋतिं चकार । ॥ दुःशं-सानुशंसाभ्यां घनेनाऽनुघनेन च । तेन योऽस्मत्.... ॥ स वर्चसा.... । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु नो माष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥

कासंक [पृ. १२५-१३३]—

यद्देवा देवहेळनं यद्वाचाऽनृतमूदिम । आदित्यास्तस्मान्मुञ्चतर्तस्यर्तेन मासुत ॥ देवा जीवनकाम्या.... ॥ ऋतेन द्यावापृथिवी.... ॥ इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ.... ॥ सजातशंसादुत.... ॥ यदन्तरिक्षं.... चकृम यानि दुष्कृता ॥ येन त्रितो.... निर्मुमोच । आक्षि ॥ यत्कुसीदमप्रतीतं.... चरामि । प्रति तत्ते दधामि ॥ यददीन्यन्नृणमहं बभूवाऽऽदित सन् वा सञ्जगरञ्जनेभ्यः । अग्निर्मा तस्मा.... ॥ यद्वस्ताभ्यांश्चकर किल्बिषाण्यक्षाणां वग्नमुपजिघ्रमानः । उग्रंपश्ये च राष्ट्रभृच्च तान्यप्सरस अनुदत्तामृणानि ॥ उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत् । नेत्र ऋणादृणवाँ इच्छमानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ अव ते हेळो वरुण.... ॥ उदुत्तमं वरुण.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा.... ॥ त्वं नो अग्रे.... ॥ स त्वं नो अग्रे.... ॥ संकसुको विकसुको निर्ऋतो.... ॥ निर्यक्ष्ममचीचतान् कृत्यानि निर्ति च । ॥ दुःशंसानुशंसाभ्यां.... । तेन योऽन्योऽस्मत्.... ॥ सं वर्चसा पयसा.... ॥ आयुस्ते विश्वतो.... आयातु.... ॥ इममग्र आयुषे.... ॥ अग्र आयूषि पवस.... ॥ अग्निर्ऋषिः पवमानः.... ॥ अग्रे पवस्व स्वपा.... ॥ अग्रे जातान्.... । अधि नो ब्रूहि.... ॥ सहसा जातान्.... ॥ अग्रे यो नोऽभितो.... । तं त्वं वृत्रहञ्जहि वस्वस्मभ्यमा कृधि ॥ अग्रे यो नो.... नेष्टः । ॥ यो नः शपात्.... । इध्मस्येव प्रख्यायतस्तस्य मोच्छेषि किंचन ॥ संशितं मे ब्रह्म.... ॥ उदेषां बाहू.... ॥ पुनर्मनः पुनरायुर्म आगात्पुनश्चित्तं.... पुनश्चक्षुः.... वैश्वानरो अदब्धः.... ॥ (सौत्रामन्या निचाङ्कुणस्य)—यद्देवा देवहेळनं.... ॥ यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँहसः ॥ यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँहसः ॥ (प्रायश्चित्तानि सर्वान्तीयानि शिशुशैशवयोः)—भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम.... ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-

श्रवाः.... ॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरश्शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
 अग्निजिह्वा मनवस्सूरचक्षसो विश्वे मा देवा अवसाऽऽगमन्निह ॥ शतमिन्तु
 शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो
 भवन्ति मा नो मध्या रीरिषिताऽऽयुर्गन्तोः ॥ (शेषः कोकिलस्य राजपुत्रस्य
 राज्येप्सोः)—पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः । पुनन्तु
 प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपिता-
 महाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ अग्न आयूषि पवस.... ॥
 पुनन्तु मा देवजनाः.... ॥ पवित्रेण पुनीहि मा.... ॥ यत्ते पवित्र-
 मर्चिष्यन्ते.... ॥ पवमानः स्वर्जनः.... ॥ उभाभ्यां देव सवितः.... ॥
 वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्.... ॥ (ब्रह्म यच्चाऽनिरुक्तम्)—पुनर्ममैत्विन्द्रियं
 पुनरायुः पुनर्भगः । पुनर्ब्राह्मणमैतु मा पुनर्द्रविणमैतु मा ॥ यन्मेऽद्य रेतः
 पृथिवीमस्कन् यदोषधीरघ्यसरद्यदपः । तदहं पुनरादधे ॥ यन्मे रेतः
 प्रसिच्यते यन्म आ जायते पुनः । यद्वा मे प्रतितिष्ठति तेन माममृतं
 कुरु तेन सुप्रजसं कुरु ॥ (अपां यो द्रवण इति प्रजापतेः)—रथे अक्षेषु
 वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान
 सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये गोष्वश्वेषु
 पुरुषेष्वन्तः । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥
 सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या । इन्द्रं या
 देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसे संविदाना ॥ या राजन्ये दुन्दुभा
 आयतायामश्वस्य क्रन्दे पुरुषस्य मायौ । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान
 सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ (हिरण्यवर्णा इति कश्यपस्य)—हिरण्यवर्णाः
 शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः । या अग्निं गर्भं दधिरे
 विरूपास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ यासां देवा दिवि कृण्वन्ति
 भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । या अग्निं गर्भं.... ॥ यासां राजा
 वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । या अग्निं गर्भं.... ॥
 (ॐ अग्नये नमः पश्चात् । वातरशनादौ पठेत् ।)—ॐ अग्नये नमः । वायवे
 स्वाहा । सूर्याय स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । कूष्मर्षिभ्यः
 स्वाहा । ॐ अग्ने त्वं पारयेति स्विष्टकृतम् । वैश्वानरीयेन सूक्तेन प्राङ्मुखः
 प्राञ्जलिरुपतिष्ठते जपेत् सूक्तानि पराञ्चि वैश्वानरीयं च । अस्य सूक्तस्य द्वादशर्चस्य
 ब्रह्मा ऋषिः । वैश्वानराद्या लिङ्गोक्तदेवताः । आद्ये त्रिष्टुभौ तृतीयाचतुर्थौ

अनुष्टुभौ । ततस्त्रिष्टुभः । अष्टमी पङ्क्तिः । ततो द्वे त्रिष्टुभौ । उपस्थाने
 विनियोगः । वैश्वानराय प्रतिवेदयामो यदीमृणं प्रमुञ्चन्
 मुञ्चतु ॥ वैश्वानरः पावया नः म्याश्याम् । अप तत् सुवामि ॥
 अमू ये सुभगे दिवि विभृतौ यच्छत° ॥ वि जिहीष्व लोकान्
 अनु प्यात् ॥ स प्रजानन् प्रतिगृह्णाति संतरेम ॥ ततं तन्तुमन्वेके
 संतरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायतनवत् । अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन् दातुं
 चेच्छन्नुवान् स स्वर्ग एषाम् ॥ आ रमेथामनु पन्थामवतो तस्य गुप्त्या
 इह ॥ यदन्तरिक्षं अग्निर्नस्तस्मादेनसो औपासन उन्नो नेशत् ॥
 भूमिर्माताऽदितिर्नो जनित्रं त्राताऽन्तरिक्षमभिश्नस्त्या नः । द्यौर्नः पिता
 पित्र्याच्छं भवामि जामि मृत्वा माऽव पत्सि लोकान् ॥ यत्रा सुहार्दः सुकृतो
 मदन्ति विहाय रोगं तन्वं स्वाम् । अश्रोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे लोके
 तत्र ॥ यदन्नमइयनृतेन ॥ यदन्नमग्निः गामजाविम् । ॥

कासंक [२०]—

ॐ अथ कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत यदर्वाचीनमेनो भूणहत्यायास्तस्मान्मु-
 च्येयमित्ययोनौ वा रेतः सिक्त्वाऽन्यत्र स्वप्नादरेपा वा । पवित्रकामः पौर्णमास्यमावस्यायां वा
 शुद्धपक्षस्य रोहिण्यां वा स्नातः शुचिः शुचिवासाः कृष्णाजिनवासां वा ब्रह्मचारिकल्पेन
 व्रतमुपैति संवत्सरं^१ मासं^२ द्वादशरात्रं षड्रात्रं वा । न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयान्नोपर्यासीत
 जुगुप्सेताऽनृतात् । पयोभक्ष^३ इति^४ प्रधानकल्पः । यावर्कं वोपमुञ्जानः कृच्छ्रद्वादशाहं वा भैक्ष्यं
 वा । तद्विधेषु पयो ब्राह्मणस्य व्रतं यवागू राजन्यस्याऽऽमिक्षा वैश्यस्य । सौम्येऽप्यध्वर इत्येतद्भूतं^५
 ब्रूयात् । यदि मन्येतोपदस्यामीति ओदनं धानाः सक्तून् घृतमित्यनुव्रतयेदिति । पूर्वाह्णेऽग्नि-
 मुपसमाधाय चरुं श्रपयेत् ‘यदेवा देवहेळनं’ ‘यददीव्यन्तृणमहम्’ ‘आयुस्ते विश्वतो दधत्’
 इत्येतैः सूक्तैः प्रत्यृचमाज्यं जुहुयात् । ‘यदेवा देवहेळनम्’ इति तिसृभिः, ‘भद्रं कर्णेभिः’
 इति चतसृभिः, ‘पुनन्तु मा पितरः’ इति नवभिः, ‘पुनर्माभैत्विन्द्रियम्’ इति तिसृभिः,
 ‘रथे अक्षेष्ु’ इति चतसृभिः, ‘हिरण्यवर्णाः’ इति तिसृभिः अग्नये वायवे सूर्याय ब्रह्मणे
 प्रजापतये कूष्मर्षिभ्य इति व्रतहोमः । ‘अग्ने त्वं पारया नव्य’ इति स्विष्टकृतम् । वैश्वानर्येण
 सूक्तेन प्राङ्मुखः प्राञ्जलिरुपतिष्ठते । जपेत् सूक्तानि परास्त्रि वैश्वानर्यं च । एवमोदनमासा-
 द्वाऽग्न्याधेये दशहोता दर्शपूर्णमासयोश्चतुर्होता चतुर्मास्येषु पञ्चहोता पशौ^६ षड्ढोता सोमे सप्त-
 होतेति ह विज्ञायते । कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् पूतो देवलोकान् समश्नुते इत्येतत् ।

१. ‘संवत्सरमासं’—मुद्रितपाठः । २. ‘पयो भक्षयति’—मुद्रितपाठः । ३. ‘इत्येतं’
 इति मुद्रितपाठः । अग्निमे पृष्ठे द्रष्टव्यम् । ४. ‘स’ इति मुद्रितपाठः ।

ॐ वातरशना ह वा ऋषयः श्रमिण ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुः, तानृषयोऽर्थमायन् । ते निलायमाचरन् । तान् प्रददृशुः कूष्माण्डानि । तांस्तेऽन्वपश्यन्कूष्मद्रया च तपसा च । तानृषयोऽपृच्छन् कथा निलायं चरथेति । त ऋषीनब्रुवन् नमोऽस्तु भगवन्तोऽस्मिन् धाम्नि केन वः सपर्यामिति । तानृषयोऽब्रुवन् पवित्रं नो ब्रूत येनाऽरेपसो भविष्याम इति । तेनाऽरेपसो भविष्यथेति । आज्यमजुहुस्त एतैः सूक्तान्यपश्यत् यदेवा देवहेळनं, यददीव्यन्तृणमहम्, आयुस्ते विश्वतो दददिति । एतैराज्यं जुहोति । तेनाऽरेपसो भविष्यथेति । त एतैराज्यमजुहवुः । तेऽरेपसोऽभवन् । कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् । पूतो देवलोकान् समश्नुते ।

कूष्मा ह वै नाम ऋषयो वातरशनाः । ते हंसा हिरण्यया ज्योतिष्पक्षा अजिरा भूत्वाऽचरन् । तेऽकामयन्ताऽऽण्डेषु नः प्रजा ब्रह्माऽवादिषुः । त आण्डस्था अवदन् । तस्मात् कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत । यदर्वाचीनमेनो भूणहत्यायास्तस्मान्मुच्येयमिति । अयोनौ वा रेतः सिक्त्वा जुहुयात् । यथा वै स्तेनो यथा भूणहा एवमेष भवति योऽयोनौ रेतः सिञ्चति । यदेतैराज्यं जुहोति तैरेवाऽऽत्मानं पुनीते । दीक्षामुपैति । दीक्षितः सददि जुहोति । संवत्सरं दीक्षितो भवति० मांसं दीक्षितो भवति० द्वादशरात्रीर्दीक्षितो भवति० षड्रात्रीर्दीक्षितो भवति० तस्य व्रतम् । न मांसमश्नीयात् । न स्त्रियमुपेयात् । नोपर्यासीत । जुगुप्सेताऽनृतात् । पयो ब्राह्मणस्य व्रतं यवागू राजन्यस्याऽऽमिक्षा वैश्यस्य । सौम्येऽप्यध्वर इत्येतद्व्रतं ब्रूयादोदनं धानाः सक्तून् घृतमित्यनुव्रतयेदात्मनोऽनुपदासाय ॥

[महापापापनुत्तर्य कूष्माण्डानि यजेद् द्विजः ।
कृतव्रतः पौर्णमास्यां दर्शे वा प्रातरेव हि ॥
पयो यवागूमामिक्षां द्विजातीनां व्रतं क्रमात् ।
नवां स्थालीं समाहृत्य तस्यां पायसमाश्रयेत् ॥
देवतास्तेन यष्टव्या ऋचो होम्या जपेत् च ।
कूष्माण्डानि जपेन्नित्यं जुहुयादर्शपूर्णयोः ॥
सकृज्जप्त्वा शिवं शश्च शिवसंकल्पमेव च ।
पापी पापाद्भिनिर्मुक्तः शुद्धात्मा स्वर्गमाप्नुयात् ।
प्रायश्चित्तानि हुत्वाऽथ द्विजाञ्छक्त्या प्रपूजयेत् ॥]

१. अत्रस्थः पाठोऽशुद्धः प्रतिभाति । 'त एतानि सूक्तान्यपश्यन् यदेवा...दददिति । एतैराज्यं जुहुत । तेनारेपसो' इति पाठोऽपेक्षितः । १३७ पृष्ठे तैआ-पाठो ब्रह्मव्यः ।

काम्यहोमाः

जयहोमाः

बौधायनश्रौ० [१४.१६]—

अथातो जयानामेव होमः । जयान् होष्यन्नुपकल्पयते बाधकं सुवं च सुवं च बाधकान् परिधीञ्छरमयं बर्हिर्वैभीदकमिधममिति । अथ वृथाऽग्निमुपसमाधाय शरमयं बर्हिः स्तीर्त्वा बाधकान् परिधीन् परिधाय वैभीदकमिधमभ्यज्य स्वाहाकारेणाऽभ्याधाय बाधकेन सुवेणोपघातं जुहोति चित्तं च स्वाहा, चित्तिश्च स्वाहा इति त्रयोदश सुवाहुतीः । अपि वा बाधकेन सुवेण बाधक्यां सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सर्वान् मन्त्रान् समनुद्रुत्य जुहोति चित्तं च चित्तिश्चाऽऽकृतं चाऽऽकृतिश्च विज्ञातं च विज्ञानं च मनश्च शक्नीश्च दर्शश्च पूर्णमासश्च बृहच्च रथन्तरं च प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बभूव स्वाहा इति । [बौ. २३.७—जयेष्विति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] अथ वै भवति देवासुराः संयत्ता आसन् । स इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावत् । तस्मा एताञ्जयान् प्रायच्छत् । तानजुहोत् । ततो वै देवा असुरानजयन् । यदजयन् तज्जयानां जयत्वम् । स्पर्धमानेनैते होतव्याः । जयत्येव तां पृतनामिति ब्राह्मणम् ॥

अभ्यातानहोमाः

बौधायनश्रौ० [१४.१६]—

अथ वै भवति येन कर्मणेत्येत्तत्र होतव्या इति । स यत्कर्मैत्सेदिदं मे समृध्ये-
तेति तस्मिन्नभ्यातानाञ्जुहुयादिति । अभ्यातानान् होष्यन्नुपकल्पयते पर्णमयं सुवं च सुवं च पर्णमयान् परिधीन् कुशमयं बर्हिः पर्णमयमिधममिति । अथ वृथाऽग्निमुपसमाधाय कुशमयं बर्हिः स्तीर्त्वा पर्णमयान् परिधीन् परिधाय पर्णमयमिधमभ्यज्य स्वाहाकारे-
णाऽभ्याधाय पर्णमयेन सुवेणोपघातं जुहोति अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवतु इति सप्तदश सुवाहुतीः । हुत्वा वाचयति पितरः पितामहाः इति । अपि वा पर्णमयेन सुवेण पर्णमय्यां सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सर्वान् मन्त्रान् समनुद्रुत्य हुत्वाऽन्ततो वाचयति पितरः पितामहाः इति । [बौ० २३.७—अभ्यातानेष्विति ॥ पूर्वः कल्पः शालीकेरुत्तरो बौधायनस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽभ्यातानाञ्जयान् राष्ट्रभृत इति सुवाहुतीरेवैता जुहुयाद्रच्छेयुश्च दर्श-
पूर्णमासावभ्यातानाञ्जयान् राष्ट्रभृत इति ॥]

समस्तहोमाः

बौधायनश्रौ० [१४.१६]—

अथ समस्तानामेव होमः । अभ्यातानानेवाऽग्रे जुहुयादथ जयानथ राष्ट्रभृतः ॥

राष्ट्रभृद्धोमाः

बौधायनश्रौ० [१४.१७]—

अथ वै भवति राष्ट्रकामाय होतव्या इति । राष्ट्रकामाय होष्यन्नुपकल्पयते शम्यापरिधीनिति । [बौ० २३.७—शम्यापरिधिष्विति ॥ शम्यैव शम्यापरिधीन् कुर्यादिति बौधायनः ॥ प्राकृता एवैताः स्युरिति शालीकिः ॥] अथ वृथाऽग्निमुपसमाधाय शम्यापरिधीन् परिधाय निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति ऋताषाडृतधामा इति । [बौ० २३.७—द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोतीति ॥ विग्राहं जुहुयादिति बौधायनः ॥ द्वे द्वे सुवाहुती इति शालीकिः ॥] राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रैणैवाऽस्मै राष्ट्रमवरुद्धे । राष्ट्रमेव भवतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्यात्मने होतव्या इति । आत्मने होष्यन् वृथाऽग्निमुपसमाधाय निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति । राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रं प्रजाः । राष्ट्रं पशवः । राष्ट्रं यच्छ्रेष्ठो भवति राष्ट्रैणैव राष्ट्रमवरुद्धे । वसिष्ठः समानानां भवतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति ग्रामकामाय होतव्या इति । ग्रामकामाय होष्यन्नधिदेवने वृथाऽग्निमुपसमाधाय निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति । राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतः । राष्ट्रं सजाताः । राष्ट्रैणैवाऽस्मै राष्ट्रं सजातानवरुद्धे । ग्राम्येव भवतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्यधिदेवने जुहोति । अधिदेवन एवाऽस्मै सजातानवरुद्धे । त एनमवरुद्धा उपतिष्ठन्त इति ब्राह्मणम् । [बौ० २३.७—अधिदेवने जुहोति रथमुखे जुहोति रथनाड्यां जुहोतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ एतदग्नीन्येवैतानि स्युरिति शालीकिः ॥] अथ वै भवति रथमुख ओजस्कामस्य होतव्या इति । ओजस्कामस्य होष्यन्नुपर्यग्नौ रथमुखं प्रगृह्य निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति । ओजो वै राष्ट्रभृतः । ओजो रथः । ओजसैवाऽस्मा ओजोऽवरुद्धे । ओजस्येव भवतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यो राष्ट्रादपभृतः स्यात्तस्मै होतव्याः । यावन्तोऽस्य रथाः स्युस्तान् ब्रूयात् युद्धगन्धम इति । राष्ट्रमेवाऽस्मै युनकीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्याहुतयो वा एतस्याऽक्लृप्ता यस्य राष्ट्रं न कल्पते । स्वरथस्य दक्षिणं चक्रं प्रवृह्य नाडीमभिजुहुयादिति । स स्वरथस्यैव दक्षिणं चक्रं प्रवृह्योपर्यग्नौ रथनाडीं प्रगृह्य निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति । आहुतीरेवाऽस्य कल्पयति । ता अस्य कल्पमाना राष्ट्रमनु कल्पत इति ब्राह्मणम् ।

अथ वै भवति संग्रामे संयत्ते होतव्या इति । संग्रामे संयत्ते होष्यन्नुपकल्पयते मान्धुकमिधमिति । अथ प्रत्यमित्रमग्निमुपसमाधाय मान्धुकमिधमभ्यज्य स्वाहाकारेणाऽभ्याधाय निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो जुहोति । अङ्गारा एव प्रतिवेष्टमाना अमित्राणामस्य सेनां प्रतिवेष्टयन्तीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति य उन्माद्येत्तस्मै होतव्या इति । उन्मात्ताय होष्यन्नुपकल्पयते नैयग्रोधमौदुम्बरमाश्वत्थं ग्लाक्षमिधमिति । [बौ० २३.७—नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थः ग्लाक्ष इतीधो भवतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पृथगेवैतानि इध्मान्यभ्यज्य पृथगभ्यादध्यादिति शालीकिः ॥] अथ वृथाऽग्निमुपसमाधायैतमिधमभ्यज्य स्वाहाकारेणाऽभ्याधाय निशायाः शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारः राष्ट्रभृतो

जुहोति । एते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः । स्व एवैनानायतने शमयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्यभिचरता प्रतिलोमं होतव्या इति । अभिचरन् होष्यन् स्वकृत इरिणे प्रदरे वाऽमुतोऽर्वाचो^१ वृथाऽग्निमुपसमाधाय निशायां शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारं राष्ट्रभृतो जुहोति । यद्वाचः क्रूरं तेन वषट्करोति । [बौ० २३.७—यद्वाचः क्रूरं तेन वषट्करोतीति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन उदश्वित्क्षारमिश्रमर्कपर्णेन जुहुयात्^२ । जहोति वा कडिति वा वषट्कुर्यादिति ॥] वाच एवेनं क्रूरेण प्रवृश्चति । ताजगातिमाच्छेतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यस्य कामयेताऽन्नाद्यमाददीयेति तस्य सभायामुत्तानो निपद्य भुवनस्य पते इति तृणानि संगृहीयादिति । स यस्य कामयेताऽन्नाद्यमाददीयेति तस्य सभायामुत्तानो निपद्य भुवनस्य पते इति तृणानि संगृह्णाति । अथैनान्यादाय हरति । इदमहममुष्याऽऽमुष्यायणस्याऽन्नाद्यं हरामि इत्याह । अन्नाद्यमेवाऽस्य हरति । षड्भिर्हरतीति ब्राह्मणम् । अथैनानि स्वस्यां वा सभायां स्वेषु वाऽमात्येष्वपि सृजति । प्रजापतिनैवाऽस्याऽन्नाद्यमादाय तवोऽस्मा अनुप्रयच्छन्तीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यो ज्येष्ठबन्धुरपभूतः स्यात्तं स्थलेऽवसाय्य ब्रह्मौदनं चतुःशरावं पक्त्वा तस्मै होतव्या इति । स यो ज्येष्ठबन्धुरपभूतः स्यात्तं स्थलेऽवसाय्य ब्रह्मौदनं चतुःशरावं पक्त्वा निशायां शम्यापरिधौ द्विःस्वाहाकारं राष्ट्रभृतो जुहोति । वर्षमं वै राष्ट्रभृतः । वर्षमं स्थलम् । वर्षमणेवेनं वर्षमं समानानां गमयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति चतुःशरावो भवति । दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति । क्षीरे भवति । रुचमेवाऽस्मिन् दधाति । उद्धरति शृतत्वाय । सर्पिष्वान् भवति मेध्यत्वाय । चत्वार आर्षेयाः प्राश्नन्ति । दिशामेव ज्योतिषि जुहोतीति ब्राह्मणम् ॥

दर्शपूर्णमासौ

अन्वाधानम्

ऋसं—

ममाऽग्रे वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
 मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाऽध्यक्षेण पृतना जयेम ॥
 मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
 ममाऽन्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥
 मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
 दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥
 मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
 एनो मा नि गां कतमच्चनाऽहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥
 देवीः षळ्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
 मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥
 अग्रे मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
 प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्तेऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥
 धाता धातृणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
 इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यथात् ॥
 उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
 स नः प्रजायै हर्यश्च मृळ्येन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥
 ये नः सपत्ना अप ते भवन्तिवन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
 वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥

१०.१२८.१-९

अर्वाश्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्वनजिदश्वजिद्यः ।
 इमं नो यज्ञं विहवे जुषस्वेह कुर्मो हरिवो वेदिनं त्वा ॥

खिलं ४.३ (सभाष्यस्य ऋग्वेदस्य चतुर्थभागे पृ. ९५९)

अप नः शोशुचदधमग्रे शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदधम् ॥
 सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः ॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्राऽस्माकासश्च सूरयः । अप नः ॥
 प्र यत् ते अग्रे सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः ॥
 प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः ॥
 त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः ॥
 द्विषो नो विश्वतोमुखाऽति नावेव पारय । अप नः ॥१.९७.१-७
 अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् ॥१.१८९.१
 यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
 जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥५.४.१०
 त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात् त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
 प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१०.८७.२०
 प्राऽग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥
 यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वाऽतिरोचते । स नः ॥
 यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा । स नः ॥
 यो विश्वाऽभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः ॥
 यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः ॥१०.१८७.१-५
 इमं स्तोममर्हते जातवेदसे.... ॥ --- १.९४.१-१६

तैत्रा [३.७.४-५]—

देवा गातुविदो गातुं यज्ञाय विन्दत ।
 मनसस्पतिना देवेन वाताद्यज्ञः प्रयुज्यताम् ॥
 अग्निं गृह्णामि सुरथं यो मयोभूर्य उद्यन्तमारोहति सूर्यमद्वे ।
 आदित्यं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं च यज्ञाय रमतां देवताभ्यः ॥
 वसन् रुद्रानादित्यानिन्द्रेण सह देवताः ।
 ताः पूर्वः परिगृह्णामि स्व आयतने मनीषया ॥
 इमामूर्जं पञ्चदर्शी ये प्रविष्टास्तान् देवान् परिगृह्णामि पूर्वः ।
 अग्निर्हव्यवाडिह तानावहतु पौर्णमासं हविरिदमेषां मयि ॥
 इमामूर्जं.... तानावहत्वामावास्यं हविरिदमेषां मयि ॥
 अन्तराऽग्नी पशवो देवसं सदमागमन् ।
 तान् पूर्वः परिगृह्णामि स्व आयतने मनीषया ॥
 इह प्रजा विश्वरूपा रमन्तामग्निं गृहपतिमभिसंवसानाः ।
 ताः पूर्वः परिगृह्णामि स्व आयतने मनीषया ॥

इह पशवो विश्वरूपा रमन्तामग्निं गृहपतिमभिसंवसानाः ।

तान् पूर्वः परिगृह्णामि स्व आयतने मनीषया ॥

अयं पितृणामग्निरवाङ्मव्या पितृभ्य आ ।

तं पूर्वः परिगृह्णाम्यविषं नः पितुं करत् ॥

अजस्रं त्वाꣳ सभापाला विजयभागꣳ समिन्धताम् ।

अग्ने दीदाय मे सभ्य विजित्यै शरदः शतम् ॥

अन्नमावसथीयमभिहराणि शरदः शतम् ।

आवसथे श्रियं मन्त्रमहिर्बुध्नियो नियच्छतु ॥

इदमहमग्निज्येष्ठेभ्यो वसुभ्यो यज्ञं प्रब्रवीमि । इदमहमिन्द्रज्येष्ठेभ्यो रुद्रेभ्यो

यज्ञं प्रब्रवीमि । इदमहं वरुणज्येष्ठेभ्य आदित्येभ्यो यज्ञं प्रब्रवीमि ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः ।

अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र सꣳ सृज ॥

देवा देवेषु पराक्रमध्वम् । प्रथमा द्वितीयेषु । द्वितीयास्तृतीयेषु । त्रिरेकादशा

इह माऽवत । इदꣳ शकेयं यदिदं करोमि । आत्मा करोत्वात्मने । इदं

करिष्ये भेषजम् । इदं मे विश्वभेषजा । अश्विना प्रावतं युवम् ॥ अग्ने

व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ॥ वायो व्रतपते..... ॥

आदित्य व्रतपते..... ॥ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे

राध्यताम् ॥

तैसं [१.५.१०]—

पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः ।

अपां पयसो यत् पयस्तेन मामिन्द्र सꣳ सृज ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ॥

तैसं [१.६.७]—

यो वै देवताः पूर्वः परिगृह्णाति स एनाः श्रो भूते यजते । एतद्वै देवानामायतनं

यदाहवनीयः । अन्तराऽग्नी पशूनाम् । गार्हपत्यो मनुष्याणाम् । अन्वाहार्यपचनः पितृणाम् ।

अग्निं गृह्णाति स्व एवाऽऽयतने देवताः परि गृह्णाति ताः श्रो भूते यजते० व्रतमुपैष्यन् ब्रूयादग्ने

व्रतपते व्रतं चरिष्यामीति० बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायाम्० उपस्तीर्यः पूर्वश्चाऽग्नि-

रपरश्चेत्याहुः० यद्ग्राभ्यानुपवसति तेन ग्राम्यानाव रुन्धे । यदारण्यस्याऽश्नाति तेनाऽऽरण्यान्०

अपोऽश्नाति० ॥

मैसं [१.४.१]—

ममाऽग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाऽध्यक्षेण पृतना जयेम ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमालप्स्ये तत्ते प्रब्रूमस्तन्नो गोपाय तच्छकेयम् ॥

[१.४.५]—यः पूर्वेद्युरग्निं गृह्णाति स श्रो भूते देवता अभियजते । ममाऽग्ने वर्चो विहवेष्वस्त्विति पूर्वमग्निं गृह्णाति । देवता वा एतत्पूर्वेद्युरग्रहीताः श्रो भूतेऽभियजते० हस्ता अवनिज्य दक्षिणतोऽग्निमुपतिष्ठेताऽग्ने व्रतपते व्रतमालप्स्या इति० ॥

[१.४.१०]—देवतानां वा एतदायतनं यदाहवनीयः । यदन्तराऽग्नी तत् पशूनाम् । मनुष्याणां गार्हपत्यः । पितृणामोदनपचनः । सर्वा ह वा अस्य यक्ष्यमाणस्य देवता यज्ञमागच्छन्ति य एव वेद । पूर्वं चाऽग्निमपरं च परिस्तरितवा आह० यद् ग्राम्यस्य नाऽश्नाति तेन ग्राम्यानवरुन्धे । अथ यदारण्यस्याऽश्नाति तेनाऽऽरण्यान्० न माषाणामश्नीयात्० न तस्य सायमश्नीयाद्यस्य प्रातर्यक्ष्यमाणः स्यात्० ॥

कासं [४.१४]—

ममाऽग्ने वर्चो.... ॥ अग्ने व्रतपते व्रतमालभे तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् तेनर्ध्यासम् ॥

[३१.१५]—यो वै देवताः पूर्वेद्युर्गृह्णाति तस्य श्रो भूते यज्ञमागच्छन्ति । ममाऽग्ने वर्चो विहवेष्वस्त्विति पूर्वमग्निं गृह्णाति० हस्ता अवनिज्य दक्षिणतोऽग्नेस्तिष्ठन् ब्रूयादग्ने व्रतपते व्रतमालभे इति० यदि निम्नुक्ते सूर्ये व्रतमालभेताऽग्निमुपस्थाप्यैतद्यजुर्वदेत्० ॥

वासं [१.५]—

अग्ने व्रतपते.... ॥ इदमहमनृतात्सत्यम्युपैमि ॥

शत्रा [१.१.१]—

व्रतमुपैष्यन्नन्तरेणाऽऽहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नप उपस्पृशति० सोऽग्निमेवाऽभीक्ष्माणो व्रतमुपैति० अग्ने व्रतपते.... ० अथातोऽशनानशनस्यैव० तस्मादु नैवाऽश्नीयात्० स वा आरण्यमेवाऽश्नीयात्० स आहवनीयागारे वैतां रात्रिं शयीत गार्हपत्यागारे वा० अधः शयीत० ॥

[१.६.३.३२-३४]—स वै संप्रत्येवोपवसेत्० स वा उत्तरामेवोपवसेत्० ॥

[१.६.४]—एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तान् पश्चाददृशे० तद्यदेव एतां रात्रिमिहाऽमा वसति तस्मादमावास्या नाम० अथैष एव

वृत्रो यच्चन्द्रमाः । स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तात् पश्चाद्दृशे तदेनमेतेन सर्वं हन्ति । नाऽस्य किंचन परिशिनाष्टि० तद्वैके दृष्ट्वोपवसन्ति । श्वो नोदेतेति० असोमयाजी तु क्षीरयाजी० ॥

[११.१.७]—तद्वा अदो व्रतोपायन उच्यते । यदि नाऽश्नाति पितृदेवत्यो भवति । यद्यु अश्नाति देवानत्यश्नातीति । तदारण्यमश्नीयादिति तत्र स्थापयन्ति० स्वयं हैवैते रात्री अग्निहोत्रं जुहुयात् । स यद्धुत्वा ग्राश्नाति तेनाऽपितृदेवत्यो भवति० ॥

वाकासं [१.३] ≡ वासं

काशत्रा [२.१.१; २.६.१-२; १३.१.३] ≡ शत्रा

शांत्रा [३.१]—

यद्दर्शपूर्णमासयोरुपवसति । न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति । तस्मादुपवसत्युत मे देवा हविरश्नीयुरिति । पूर्वा पौर्णमासीमुपवसेदिति पैङ्ग्यमुत्तरामिति कौषीतकम् । यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः । उत्तरां पौर्णमासीमुपवसेदनिर्ज्ञाय पुरस्तादमावास्यायां चन्द्रमसम् । यदुपवसति तेन पूर्वा प्रीणाति । यद्यजते तेनोत्तराम् । उत्तरामुपवसेत्० ॥

ऐत्रा [७.११-१२]—

यद्दर्शपूर्णमासयोरुपवसति० पूर्वा पौर्णमासीमुपवसेदिति पैङ्ग्यमुत्तरामिति कौषीतकम् । या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा सा राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः । यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः । पूर्वा पौर्णमासीमुपवसेदनिर्ज्ञाय पुरस्तादमावास्यायां चन्द्रमसं यदुपैति यद्यजते तेन सोमं क्रीणन्ति । तेनोत्तरामुत्तरामुपवसेत्० एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः । तस्मादुत्तरामुपवसेत्० तदाहुः कथमग्नीनन्वाधानोऽन्वाहार्यपचनमाहारयेत् न आहारयेत् इति । आहारयेदित्याहुः । प्राणान् वा एषोऽभ्यात्मं धत्ते योऽग्नीनाधत्ते । तेषामेषोऽन्नादतमो भवति यदन्वाहार्यपचनः । तस्मिन्नेतामाहुतिं जुहोत्यग्नयेऽन्नादायाऽन्नपतये स्वाहेति ॥

असं—

ममाऽग्ने वर्चो.... ॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।

अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥

मम देवा.... । कामायाऽस्मै ॥

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः.... । एनो.... विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥

मयि देवा.... । दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥

दैवीः.... इह मादयध्वम् ।

मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्ट्या या ॥

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि.... ॥

उरुव्यचा.... यच्छत्वस्मिन्.... पुरुक्षु । स नः.... मृडेन्द्र.... ॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताऽभिमातिषाहः ।

आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥

ये नः सपत्ना.... बाधामह एनान् ।

आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेतारमधिराजमक्रत ॥

अर्वाश्चमिन्द्रममुतो विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्च मेदी ॥ ५.३.१-११

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।

तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥ ७.७४.४

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिद्भि नः ॥ ७.४८.१

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥ ७.२१.१

कुहं देवीं सुकृतं विव्रनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।

सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ७.४९.१

यत्ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।

तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ ७.८४.१

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ७.५०.१

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।

तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥ ७.८५.१

अपैसं [५.४]—

.... ॥ १ ॥ अमैषां चित्तं बहुधा वि नश्यतु ॥ २ ॥ पवतां

कामे अस्मिन् ॥ ३ ॥ अभि रक्षन्तु मामिह ॥ ४ ॥ मयं देवा....

मम देवहूतिः । ॥ ५ ॥ देवीः षडुर्वीरुरु नस्कराथ.... प्रजया मा

धनेन मा.... ॥ ६ ॥ यच्छदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।

मृडेयेन्द्र ॥ ७ ॥ धाता विधर्ता भुवनस्य यस्पतिः सविता देवो

[अ]भिमातिषाहः । बृहस्पतिरिन्द्राग्नी.... ॥ ८ ॥ इहाऽर्वाश्चमति ह्यय इन्द्रं

जैत्राय जेतवे । अस्माकमस्तु वर्णो यतः कृणोतु वीर्यम् ॥ ९ ॥ अर्वाश्च-

मिन्द्रमवतं.... विहवे जुषस्वाऽस्माकं कृष्णो हरिवो मेदिनं त्वा ॥१०॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र.... ॥११॥ तिस्रो देवीर्महि मे शर्म यच्छन्
प्रजायै मे.... मां विशः संमनसो जुषन्तां पित्र्यं क्षत्रं प्रति जानात्व-
स्मात् ॥१२॥ यो नः शक्राऽभिमन्युनेन्द्राऽमित्रो हि जिघांसति ।
तं त्वं वृत्रहन् जहि [श]वः सोऽस्मभ्यमा भर ॥१३॥ ये नः शपन्त्यप
ते भवन्तिवन्द्राभिभ्यामप बाधाम योनिम् । मामुग्रं चेत्तारमधि-
राजमक्रन् ॥१४॥

सिनीवालि.... ॥२०.१०.१२॥ देवेषु यच्छताम्.... दाशुषे मयः
॥२०.३.९॥ कुहं देवीममृतां.... । सा नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्यै
ते देवि हविषा विधेम ॥२०.५.३॥ संवदन्तो महित्वा । सेमं यज्ञं
पशुर्विश्ववारे.... सुभगं.... ॥२०.३२.१॥ राकामहं.... ॥२०.१०.८॥
.... पौर्णमासी मध्यत उज्जिगाय । ॥१.१०.२.२॥

गोत्रा [२.२.२४]—

समृतयज्ञो वा एष यदर्शपूर्णमासौ० तस्मात् पूर्वेषुर्देवताः परिगृह्णीयात् । यो ह वै
पूर्वेषुर्देवताः परिगृह्णाति तस्य श्रो भूते यज्ञमागच्छन्ति । तस्माद्विहव्यस्य चतस्र ऋचो जपेत्० ॥

[२.१.१०]—या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिः । योत्तरा सा राका । या पूर्वाऽ-
मावास्या सा सिनीवाली । योत्तरा सा कुहः० ॥

वत्सापाकरणम्

तैसं [१.१.१]—

इषे त्वोर्जे त्वा ॥ वायवः स्थोपायवः स्थ ॥ देवो वः सविता प्रार्पयतु
श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमग्न्या देवभागमूर्जस्वतीः पयस्वतीः
प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माघशः५सः ॥ रुद्रस्य
हेतिः परि वो वृणक्तु ॥ ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः ॥ यजमानस्य
पशून् पाहि ॥

तैत्रा [३.७.४]—

इमां प्राचीशुदीचीमिषमूर्जमभिसंस्कृताम् ।

बहुपर्णमिशुष्काग्रां हरामि पशुपामहम् ॥

तैत्रा [३.२.१]—

० यत्पर्णशाखया वत्सानपाकरोति० यत्पर्णशाखया गाः प्रार्पयति० यं कामयेत पशुमान्स्यादिति । बहुपर्णां तस्मै बहुशाखामाहरेत्० प्राचीमुदीचीमाहरति० इषे त्वोर्जे त्वेत्याह० अनधः सादयति० उपरीव निदधाति० ॥

मैसं [१.१.१]—

इषे त्वा सुभूताय ॥ वायवः स्थ ॥ देवो वः.... कर्मणा आप्यायध्वमघ्न्या देवेभ्या इन्द्राय भागम् ॥ मा वः स्तेन ईशत माऽघशंसः ॥ ध्रुवा अस्मिन्.... ॥ यजमानस्य.... ॥

मैसं [४.१.१]—

यज्जामीशाखया वत्सानपाकरोति शान्त्यै । पर्णवती कार्या० यत्पर्णशाखया वत्सानपाकरोति० यत्पर्णशाखया प्रार्पयति० शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीरिति पुनात्येवैनाः । रुद्रस्य हेतिः परि वो वृणक्त्विति रुद्रादेवैनास्त्रायन्ते । पूषा वः परस्या अदितिः प्रेत्वरिपा^१ इन्द्रो वोऽघ्यक्षोऽनघः पुनरेत इति० प्रतीची^२ शाखामुपगूहति० ॥

[१.४.४]—बर्हिषा वै पूर्णमासे व्रतमुपयन्ति वत्सैरमावास्यायाम् । पुरा वत्सानामपाकर्तोर्दम्पती अश्रीयताम् ॥

कासं [१.१]—

इषे त्वोर्जे त्वा ॥ वायवस्स्थोपायवस्स्थ ॥ देवो वः.... ॥ आप्यायध्वमघ्न्या देवभागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः ॥ मा वस्स्तेन.... ॥ परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ध्रुवा अस्मिन्.... ॥ यजमानस्य.... ॥ यजमानस्य पशुपा असि ॥

[३०.१०]—यत्पर्णशाखया प्रार्पयति० यज्जामीशाखया प्रार्पयति० यद्दर्भपिञ्जलैः प्रार्पयति० प्रतीची^३ शाखामुपगूहति० ॥

[३१.१५]—बर्हिषा वै पूर्णमासे व्रतमुपयन्ति वत्सैरमावास्यायाम् । पुरा वत्सानामपाकर्तोर्दम्पती अश्रीतः ॥

कपिसं [१.१]—

--- यजमानस्य पशून् पाहि ॥ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥

[४६.८] ≡ कासं

वासं [१.१-२]—

इषे त्वोर्जे त्वा ॥ वायवः स्थ ॥ देवो.... आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय
भागं प्रजावतीरनमीवा.... माऽघशं॑सः ॥ ध्रुवा अस्मिन्.... ॥ यज-
मानस्य.... ॥ वसोः पवित्रमसि ॥

शत्रा [१.७.१]—

स वै पर्णशाखया वत्सानपाकरोति० तामाच्छिनत्ति इषे त्वोर्जे त्वेति० अथ मातृभि-
र्वत्सान्समवार्ज्जन्ति । स वत्सं॑ शाखयोपस्पृशति वायवः स्थेति० वायवः स्थेत्युपायवः स्थेत्यु-
हैक आहुः उप हि द्वितीयोऽवतीति । तदु तथा न ब्रूयात् । अथ मातृणामेकां॑ शाखयोप-
स्पृशति वत्सेन व्याकृत्य देवो वः सविता प्रार्पयत्विति० अथाऽऽहवनीयागारस्य वा पुरस्ता-
द्रार्हपत्यागारस्य वा शाखामुपगूहति । यजमानस्य पशून् पाहीति० तस्यां पवित्रं करोति वसोः
पवित्रमसीति० अथ यवाग्वैतां॑ रात्रिमग्निहोत्रं जुहोति० ॥

वाकासं [१.१] ≡ वासं

काशत्रा [२.६.३]—स वै पर्णशाखया वत्सानपाकरोति० तामाच्छिनत्तीषे त्वेति०
ऊर्जे त्वेत्यनुमार्ष्टि० अथाऽऽह मातृभिर्वत्सान् समवर्जतेति० ॥

इध्माबर्हिराहरणम्

तैसं [१.१.२]—

यज्ञस्य घोषदसि ॥ प्रत्युष्टं॑ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः ॥ प्रेयमगाद्विषणा
बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा त आ वहन्ति कवयः पुरस्ता-
द्देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासदे ॥ देवानां परिषृतमसि ॥ वर्षवृद्धमसि ॥ देव-
बर्हिर्मा त्वाऽन्वङ् मा तिर्यक्पर्व ते राध्यासम् ॥ आच्छेत्ता ते मा रिषम् ॥
देवबर्हिः शतवल्शं विरोह ॥ सहस्रवल्शा वि वयं॑ रुहेम ॥ पृथिव्याः
संपृचः पाहि ॥ सुसंभृता त्वा संभरामि ॥ अदित्यै रास्त्राऽसि ॥ इन्द्रायै
संनहनम् ॥ पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नातु ॥ स ते माऽऽस्थात् । इन्द्रस्य त्वा
बाहुभ्यामुद्यच्छे ॥ बृहस्पतेर्मूर्ध्ना हरामि ॥ उर्वन्तरिक्षमन्विहि ॥ देवं-
गममसि ॥

तैत्रा [३.७.४]—

या जाता ओषधयो देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
तासां पर्व राध्यासं परिस्तरमाहरन् ॥

अपां मेघ्यं यज्ञियं सदेवं शिवमस्तु मे ।
 आच्छेत्ता वो मा रिषज्जीवानि शरदः शतम् ॥
 अपरिमितानां परिमिताः संनद्ये सुकृताय कम् ।
 एनो मा निगां कतमचनाऽहं पुनरुत्थाय बहुला भवन्तु ॥
 यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन् ।
 ततस्त्वामेकविंशतिधा संभरामि सुसंभृता ॥
 त्रीन् परिधीं स्तिस्रः समिधो यज्ञायुरनुसंचरान् ।
 उपवेषं मेक्षणं धृष्टिं संभरामि सुसंभृता ॥
 इमौ प्राणापानौ यज्ञस्याऽङ्गानि सर्वशः ।
 आप्याययन्तौ संचरतां पवित्रे हव्यशोधने ॥
 त्रिवृत्पलाशे दर्भे इयान् प्रादेशसंमितः ।
 यज्ञे पवित्रं पोतृतमं पयो हव्यं करोतु मे ॥
 उपवेषोऽसि यज्ञाय त्वां परिवेषमधारयन् ।
 इन्द्राय हविः कृण्वन्तः शिवः शग्मो भवासि नः ॥
 तृतीयस्यै दिवो गायत्रिया सोम आभृतः ।
 सोमपीथाय संनयितुं वकलमन्तरमाददे ॥
 पवित्रे स्थो वैष्णवी वायुर्वा मनसा पुनातु ॥
 त्वया वेदिं विविदुः पृथिवीं त्वया यज्ञो जायते विश्वदानिः ।
 अच्छिद्रं यज्ञमन्वेषि विद्वान् त्वया होता संतनोत्यर्धमासान् ॥

तैब्रा [३.२.२-३]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यश्वपर्शुमादत्ते प्रसूत्यै० अश्वपर्श्वं बर्हिरच्छैति० एकं
 स्तम्बं परिदिशेत् । तं सर्वं दयात्० अयुङ्गायुङ्गान् मुष्टीक्षुनोति० पश्चात्प्राञ्चमुपगृहति०
 अनधः सादयति० उपरीव निदधाति० पूर्वेषुरिध्माबर्हिः करोति । यज्ञमेवाऽऽरम्य
 गृहीत्वोपवसति० ॥

मैसं [१.१-२]—

गोषदसि ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाऽरातिः ॥ प्रेयमगाद्विषणा.... वितष्टा ॥
 तयाऽऽवहन्ते कवयः पुरस्तात् ॥ देवानां परिषृतमसि ॥ विष्णोः स्तुपः ॥
 अतिसृष्टो गवां भागः ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो
 हस्ताभ्यां बर्हिर्देवसदनं दामि ॥ अतस्त्वं बर्हिः शतवल्शं विरोह ॥
 सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ॥ अयुपिता योनिः ॥ अदित्या रास्त्राऽसि ॥

इन्द्राण्याः संनहनम् ॥ पूषा ते.... ॥ --- उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ अदि-
त्यास्त्वा पृष्ठे सादयामि ॥

मैसं [४.१.२-३]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा इति० यदश्वपरश्चा
बर्हिर्दाति० एकं स्तम्भं परिदिशति तं सर्वं दाति० विष्णोः स्तुप इति० देवस्य त्वा
हस्ताभ्यां बर्हिर्देवसदनं दामीति० माऽधो मोपरि परुस्त ऋध्यासमिति० आच्छेत्ता ते मार्ष-
मिति० इन्द्राण्याः संनहनमिति० बर्हिः संनहति० आपस्त्वामश्विनौ त्वामृषयः सप्त मामृजुः ।
बर्हिः सूर्यस्य रश्मिभिरुषसां केतुमारभ इति० बर्हिरसि देवंगममित्यासन्नमभिमन्त्रयते । पूर्वे-
द्युरिध्माबर्हिः कुर्वन्ति० ॥

कासं [१.२]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥
गोषदसि ॥ प्रत्युष्टं रक्षः.... ॥ प्रेयमगाद्विषणा ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥
इन्द्रस्य परिषूतमसि ॥ माऽधो मोपरि परुस्त ऋध्यासम् ॥ आच्छेत्ता ते
मा रिषत् ॥ देव बर्हिः.... ॥ सहस्रवल्शा.... ॥ अदित्या रात्राऽसि ॥
इन्द्राण्याः.... ॥ पूषा ते.... ॥ स ते मा स्थात् ॥ इन्द्रस्य त्वा बाहुभ्या-
मुद्यच्छे ॥ बृहस्पतेस्त्वा मूर्ध्नाऽऽहरामि ॥ देवंगममसि ॥ तदाहरन्ति कवयः
पुरस्ताद्देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासदे ॥

[३१.१]—०यदश्वपरश्चा बर्हिर्दाति० देवस्य त्वा० एकं स्तम्भं परिदिशेत्
सर्वं दायात्० एकां वा श्रुष्टिं द्वे वोच्छिषेत्० बर्हिस्संनहति० ॥

कपिसं [१.२]—

गोषदसि ॥ निष्टमं रक्षः ॥ प्रेयमगाद्विषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया
वितष्टा ॥ ---

[४७.१] ≡ कासं

असं [१२.३.३१]—

प्र यच्छ पशुं त्वरयाऽऽ हरौषमर्हिसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवाऽमन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥

अपैसं [१७.३९.१]—

प्र यच्छ पशुं त्वरया हरन्त्वर्हिसन्त.... । सोमो यासां....वीरुधो मे भवन्तु ॥

सायंदोहः

तैसं [१.१.३]—

शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै ॥ मातरिश्वनो घर्मोऽसि ॥ द्यौरसि
 पृथिव्यसि विश्वधाया असि परमेण धाम्ना दृहस्व मा ह्वाः ॥ वसूनां
 पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥ हुतः स्तोको हुतो
 द्रप्सोऽग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ सा विश्वायुः ॥
 सा विश्वव्यचाः ॥ सा विश्वकर्मा ॥ सं पृच्यध्वमृतावरीरुर्मिणीर्मधुमत्तमा ।
 मन्द्रा धनस्य सातये ॥ सोमेन त्वाऽऽतनच्मीन्द्राय दधि ॥ विष्णो
 हव्यं रक्षस्व ॥

तैब्रा [३.७.४; ६]—

त्रयस्त्रिंशोऽसि तन्तूनां पवित्रेण सहाऽऽगहि ।
 शिवेयं रज्जुरभिधान्यघ्नियामुपसेवताम् ॥
 अग्रस्रं साय यज्ञस्योखे उपदधाम्यहम् ।
 पशुभिः संनीतं विभृतामिन्द्राय शृतं दधि ॥
 आपो देवीः शुद्धाः स्थेमा पात्राणि शुन्धत ।
 उपातङ्क्याय देवानां पर्णवल्कमुत शुन्धत ॥
 देवेन सवित्रोत्पृता वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ।
 गां दोहपवित्रे रज्जुं सर्वा पात्राणि शुन्धत ॥
 एता आचरन्ति मधुमद्दुहानाः प्रजावतीर्यशसो विश्वरूपाः ।
 बह्वीर्भवन्तीरुपजायमाना इह व इन्द्रो रमयतु गावः ॥ पूषा स्थ ॥
 अयक्ष्मा वः प्रजया सः सृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः ।
 ऊर्जं पयः पिन्वमाना घृतं च जीवो जीवन्तीरुप वः सदेयम् ॥
 द्यौश्चेमं यज्ञं पृथिवी च संदुहातां धाता सोमेन सह वातेन वायुः ।
 यजमानाय द्रविणं दधातु ॥
 उत्सं दुहन्ति कलशं चतुर्विलमिडां देवीं मधुमतीं सुवर्चिदम् ।
 तदिन्द्राग्नी जिन्वतः सनृतावत्तद्यजमानममृतत्वे दधातु ॥
 कामधुक्षः प्र णो ब्रूहीन्द्राय हविरिन्द्रियम् ।
 अमूं यस्यां देवानां मनुष्याणां पयो हितम् ॥
 बहु दुग्धीन्द्राय देवेभ्यो हव्यमाप्यायतां पुनः ।
 वत्सेभ्यो मनुष्येभ्यः पुनर्दोहाय कल्पताम् ॥

पयो गृहेषु पयो अग्नियासु पयो वत्सेषु पय इन्द्राय हविषे ध्रियस्व ।
 गायत्री पर्णवल्केन पयः सोमं करोत्विमम् ॥
 यज्ञस्य संततिरसि यज्ञस्य त्वा संततिमनु संतनोमि ॥
 अदस्तमसि विष्णवे त्वा यज्ञायाऽपिदधाम्यहम् ।
 अद्भिररिक्तेन पात्रेण याः पूताः परिशेरते ॥
 अमृण्मयं देवपात्रं यज्ञस्याऽऽयुषि प्रयुज्यताम् ।
 तिरःपवित्रमति नीता आपो धारय माऽतिगुः ॥
 अयं पयः सोमं कृत्वा स्वां योनिमपिगच्छतु ।
 पर्णवल्कः पवित्रं सौम्यः सोमाद्धि निर्मितः ॥
 इमौ पर्णं च दर्भं च देवानां हव्यशोधनौ ।
 प्रातर्वेषाय गोपाय विष्णो हव्यं हि रक्षसि ॥
 परिस्तृणीत परिधत्ताऽग्निं परिहितोऽग्निर्यजमानं भुनक्तु ।
 अपां रस ओषधीनां सुवर्णो निष्का इमे यजमानस्य
 सन्तु कामदुघा अमुत्राऽमुष्मिँल्लोके ॥
 उभावग्री उपस्तृणते देवता उपवसन्तु मे ।
 अहं ग्राम्यानुषवसामि मह्यं गोपतये पशून् ॥

तैसं [२.५.५-६]—

सोमयाज्येव संनयेत्० नाऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां च क्षियमुपेयात्० ॥

[२.५.३]—०यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां भवत्यैन्द्रं दधि० ॥

तैत्रा [३.२.३]—

०यत्सानाथ्योखे भवतः० त्रिवृत्पलाशशाखायां दर्भमयं भवति० प्राक्सायमधिनि-
 दधाति० तिर्यक् प्रातः० पवित्रवल्यानयति० अन्वारम्य वाचं यच्छति० धारयन्नास्ते० कामधुक्ष
 इत्याहाऽऽ तृतीयस्यै० अमूमिति नाम गृह्णाति० बहु दुग्धीन्द्राय देवेभ्यो हविरिति वाचं
 विसृजते० त्रिराह० अवाच्यमोऽनन्वारम्योत्तराः० न दारुपात्रेण दुह्यात्० काममेव दारुपात्रेण
 दुह्यात् । शूद्र एव न दुह्यात्० अग्निहोत्रमेव न दुह्याच्छूद्रः० न मृन्मयेनाऽपिदध्यात्०
 अयस्पात्रेण वा दारुपात्रेण वाऽपिदधाति० उदन्वद्भवति० अनधः सादयति० उपरीव
 निदधाति० ॥

तैसं [२.५.३]—

यत्पूतीकैर्वा पर्णवल्कैर्वाऽऽतज्यात् सौम्यं तत् । यत् बलै राक्षसं तत् । यत्तण्डुलै-

वैश्वदेवं तत् । यदातश्चनेन मानुषं तत् । यदध्ना तत्सेन्द्रम् । दध्नाऽऽतनक्ति सेन्द्रत्वाय ।
अग्निहोत्रोच्छेषणमभ्यातनक्ति यज्ञस्य संतत्यै० ॥

मैसं [१.१.३]—

शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे ॥ वसूनां पवित्रमसि शतधारं सहस्रधारमछिद्र-
तनुः ॥ द्यौरसि पृथिव्यसि ॥ मातरिश्वनो घर्मः ॥ विश्वहोतुर्धामन्त्सीद ॥
पोषाय त्वा ॥ अदित्या रास्त्राऽसि ॥ कामधुक्षः ॥ सा विश्वायुरस्त्वसौ ॥
कामधुक्षः ॥ सा विश्वभूरस्त्वसौ ॥ कामधुक्षः ॥ सा विश्वकर्माऽस्त्वसौ ॥
हुतः स्तोको हुतो द्रप्सोऽग्रे पाहि विग्रुषः सुपचा देवेभ्यो हव्यं पच ॥
अग्नये त्वा बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ इन्द्राय त्वा भागं
सोमेनाऽऽतनन्मि ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्व ॥ आपो जागृत ॥

[४.१.३]—पवित्रमपिदधाति० वाचं यच्छति० धारयन्नास्ते० तिस्रो यजुषाऽ-
भिमन्त्रयते० हुतः स्तोको हुतो द्रप्स इत्यभिमन्त्रयतेऽस्कन्दाय । इन्द्राय देवेभ्यो हविर्बहु दुग्धि
इति त्रिरुद्धदति० न दारुपात्रेण दुह्यात्० न शूद्रो दुह्यात्० अग्निहोत्रमेव शूद्रो न दुह्यात् ।
तद्धि नोत्पुनन्ति । संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिणा मधुमत्तमाः । पृश्नतीः पयसा पयो मन्द्रा धनस्य
सातये इति प्रतिनयति शृतत्वाय० अदस्तमसि विष्णवे त्वा इति० न मृत्पात्रेणाऽपिदध्यात्०
दारुपात्रेणाऽपिदध्यात्० उदन्वत् कार्यम्० ॥

कासं [१.३]—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥

अयक्ष्मा वः प्रजया सैसृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः ।

मधुमद्घृतवत्पिन्वमाना जीवा जीवन्तीरुप वस्सदेम ॥

मातरिश्वनो घर्मोऽसि ॥ द्यौरसि पृथिव्यसि विश्वधायाः परेण धाम्नाऽ-

हुताऽसि मा ह्याः ॥ सा विश्वायुः ॥ सा विश्वव्यचाः ॥ सा विश्वधायाः ॥

हुतस्तोको हुतो द्रप्सोऽग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम् ॥

संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिणा मधुमत्तमाः । मन्द्रा धनस्य सातयः ॥

इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनाऽऽतनन्मि ॥ अदस्तमसि विष्णवे ॥ विष्णो

हव्यं रक्षस्व ॥ आपो जागृत ॥

[३१.२]—०अहुताऽसि मा ह्यारिति दृढत्येवैनान्म् । पवित्रमपिदधाति० तिस्रो
यजुषाऽभिमन्त्रयते० हुतस्तोको हुतो द्रप्स इत्यनुमन्त्रयते० न दारुपात्रेण दुह्यात्० न शूद्रो
दुह्यात्० अग्निहोत्रमेव न शूद्रो दुह्यात्० संपृच्यध्वमृतावरीरिति प्रत्यानयति शृतत्वाय० न
मृत्पात्रेणाऽपिदध्यात्० दारुपात्रेणाऽपिदध्यात्० उदन्वत् कुर्यात्० ॥

कपिसं [१.३]—

मातरिश्वनो घर्मोऽसि ॥ --- संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिला.... ॥ --- विष्णो
हव्यं रक्षस्व ॥

[४७.२] ≡ कासं

वासं [१.२-४]—

द्यौरसि पृथिव्यसि ॥ मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि । परमेण धाम्ना
ह्वंस्व मा ह्वामा ते यज्ञपतिर्ह्वर्षीत् ॥ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः
पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥ देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण
सुप्वा ॥ कामधुक्षः ॥ सा विश्वायुः ॥ (कामधुक्षः ॥) सा विश्वकर्मा ॥
(कामधुक्षः ॥) सा विश्वधायाः ॥ इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनाऽऽ-
तनन्मि ॥ विष्णो हव्यं रक्ष ॥

शत्रा [१.७.१.१०-२१]—

उपकृतोखा भवति । अथाऽऽहोपसृष्टां प्रब्रूतादिति । यदा प्राहोपसृष्टेति
अथोखामादत्ते द्यौरसि पृथिव्यसीति० मातरिश्वनो घर्मोऽसीति । यज्ञमेवैतत्करोति । यथा घर्मं
प्रवृज्यादेवं प्रवृणक्ति० अथ पवित्रं निदधाति । तद्वै प्राङ् निदध्यात्० तस्मादुदङ् निदध्यात्०
तन्निदधाति वसोः पवित्रमसीति० अथ वाचंयमो भवत्या तिसृणां दोग्धोः० तदानीयमानमभि-
मन्त्रयते देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वेति० अथाऽऽह कामधुक्ष
इति । अमूमिति । सा विश्वायुरिति । अथ द्वितीयां पृच्छति कामधुक्ष इति । अमूमिति । सा
विश्वकर्मेति । अथ तृतीयां पृच्छति कामधुक्ष इति । अमूमिति । सा विश्वधाया इति० तिस्रो
दोग्धि० अथोत्तमां दोहयित्वा येन दोहयति पात्रेण तस्मिन्नुदस्तोकमानीय पत्यङ्ग्यं प्रत्या-
नयति० स आतनन्तीन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनाऽऽतनन्मीति० अथोदकवतोत्तानेन पात्रेणाऽपि-
दधाति० सोऽपिदधाति विष्णो हव्यं रक्षेति० ॥

[१.६.४]—०तस्मादधि० तस्माच्छृतम्० तस्माद्वै संनयेत्० तदाहुः नाऽसोम-
याजी संनयेत्० तद्गु समेव नयेत्० तद्वैके महेन्द्रायेति कुर्वन्ति० तद्विन्द्रायेत्येव कुर्यात्० ॥

वाकासं [१.२]—

द्यौरसि पृथिव्यसि.... विश्वधाः परमेण धाम्ना.... ॥ --- ॥ सोमेना-
ऽऽतनन्मि ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्व ॥

काशत्रा [२.६.२-३]—०अथोदन्वता कासेन वा चमसेन वा मृण्मयेनाऽपि-
दधाति.... ॥

पात्रासादनप्रणीताप्रणयने

तैसं [१.१.४]—कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयम् ॥

तैत्रा [३.७.४; ६]—

याः पुरस्तात्प्रस्रवन्त्युपरिष्ठात्सर्वतश्च याः ।

ताभी रश्मिपवित्राभिः श्रद्धां यज्ञमारभे ॥

भूपते भुवनपते । महतो भूतस्य पते । ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे ॥

अहं भूपतिरहं भुवनपतिः । अहं महतो भूतस्य पतिः । देवेन सवित्रा प्रसृत
आत्विज्यं करिष्यामि । देव सवितरेतं त्वा वृणते । बृहस्पतिं दैव्यं

ब्रह्माणम् । तदहं मनसे प्रब्रवीमि । मनो गायत्रियै । गायत्री त्रिष्टुभे ।

त्रिष्टुब्जगत्यै । जगत्यनुष्टुभे । अनुष्टुक् पङ्क्त्यै । पङ्क्तिः प्रजापतये ।

प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः । विश्वे देवा बृहस्पतये । बृहस्पतिर्ब्रह्मणे ।

ब्रह्म भूर्भुवः सुवः । बृहस्पतिर्देवानां ब्रह्मा । अहं मनुष्याणाम् । बृहस्पते

यज्ञं गोपाय ॥

तैत्रा [३.२.४]—यज्ञस्य संततिरसि यज्ञस्य त्वा संतत्यै स्तृणामि संतत्यै त्वा

यज्ञस्येत्याऽऽहवनीयात् संतनोति ॥

तैसं [१.६.८]—

अपः प्रणयति० मनसा प्रणयति० यज्ञायुधानि संभरति० द्वे द्वे संभरति० स्प्यश्च
कपालानि चाऽग्निहोत्रहवणीं च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोद्धखलं च मुसलं च द्यवच्चोपला
चैतानि वै दश यज्ञायुधानि० ॥

भैसं [१.१.४]—

वेषाय वां कर्मणे वा० सुकृताय वाम् ॥ देवीरापोऽग्नेगुवोऽग्नेणीयोऽग्नेऽस्य

यज्ञस्य प्रेताऽग्रं यज्ञं नयताऽग्रं यज्ञपतिं युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं

यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं प्रोक्षिताः स्थ ॥ स० सीदन्तां दैवीर्विशः ॥

[४.१.४]—अपः प्रणयति० ।

[१.४.१०]—अपः प्रणीय वाचं यच्छति० न सर्वाणि सह यज्ञायुधानि

प्रहृत्यानि० नैकमेकम्० द्वे द्वे सह प्रहृत्ये० यद्यपो गृहीयादिमां तर्हि मनसा ध्यायेत्० ॥

कासं [३१.३]—० अपः प्रणयति० ॥

कपिसं [४७.३] = कासं

वासं [१.६]—

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ॥

शब्रा [१.१.१]—

०स वै प्रातरूप एव प्रथमेन कर्मणाऽभिपद्यते । अपः प्रणयति० स प्रणयति कस्त्वा युनक्ति.... इति० ता उत्तिच्योत्तरेण गार्हपत्यं सादयति० ता उत्तरेणाऽऽहवनीयं प्रणयति० ता नाऽन्तरेण संचरेयुः० ता नाऽतिहृत्य सादयेन्नो अनाप्ताः सादयेत्० अथ तृणैः परिस्तृणाति । द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति । शूर्पं चाऽग्निहोत्रहवर्णीं च । स्फ्यं च कपालानि च । शम्यां च कृष्णाजिनं च । उल्लखलमुसले । दृषदुपले । तदश० ॥

[११.५.८.७]—तदाहुः । यदृचा हौत्रं क्रियते । यजुषाऽऽध्वर्यवम् । साम्नो-
द्गीयः । अथ केन ब्रह्मत्वमिति । अनया त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् ॥

[११.२.७.३३]—तस्मादक्षिणं वेद्यन्तमधिस्पृशेवाऽऽसीत्^१० ॥

वाकासं [२.३]—

देव सवितरेतं त्वा वृणते बृहस्पतिं ब्रह्माणम् । तदहं मनसे प्रब्रवीमि ।
मनो गायत्र्यै गायत्री त्रिष्टुभे त्रिष्टुब्जगत्यै जगत्यनुष्टुभे । अनुष्टुप् प्रजापतये
प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः । बृहस्पतिर्देवानां ब्रह्माऽहं मनुष्याणाम् । भूर्भुवः
स्वर्निर्स्तः पाप्मा । इदमहं बृहस्पतेः सदसि सीदामि ॥

[१.३]—कस्त्वा युनक्ति.... ॥

काशब्रा [२.१.१; १३.५.८.८; १३.२.२.१२] ≡ शब्रा

शब्रा [६.१०-१३]—

तेन दक्षिणतो ब्रह्माऽऽसीत्० तदाहुर्यदृचा होता होता भवति यजुषाऽऽध्वर्युर्ध्वर्युः
साम्नोद्गातोद्गाता केन ब्रह्मा ब्रह्मा भवतीति । यमेवाऽमुं त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्तेन ब्रह्मा
ब्रह्मा भवति । तदाहुः किविदं किञ्चन्दसं ब्रह्माणं वृणीतेति । अध्वर्युमित्येके । स परिक्रमाणां
क्षेत्रज्ञो भवतीति । छन्दोगमित्येके । तथा हाऽस्य त्रिभिर्वेदैर्विद्यैः संस्क्रियन्त इति ।
बह्वृचमिति त्वेव स्थितम् । एतत्परिचरणावितरौ वेदौ । अत्र न भूयिष्ठा होत्रा आयत्ता
भवन्तीति० तदाहुः कियद्ब्रह्मा यज्ञस्य संस्करोति कियदन्य ऋत्विज इति । अर्धमिति ब्रूयात् ।
द्वे वै यज्ञस्य वर्तनी वाचाऽन्या संस्क्रियते मनसाऽन्या । सा या वाचा संस्क्रियते तामन्य
ऋत्विजः संस्कुर्वन्ति । अथ या मनसा तां ब्रह्मा । तस्माद्यावदृचा यजुषा साम्ना कुर्युस्तूर्णौ
तावद्ब्रह्माऽऽसीत् । अथ यत्रैनं ब्रूयुर्ब्रह्मन् प्रणेष्यामो, ब्रह्मन् प्रचरिष्यामो^२, ब्रह्मन् प्रस्थास्यामो^३,

ब्रह्मन् स्तोष्याम^१ इत्योमित्येतावता प्रसूयात्० यद्वै यज्ञस्य स्वलितं वोल्बणं वा भवति ब्रह्मण एव तत् प्राहुः । तस्य त्रया विद्यया भिषज्यति ० अथ यद्ब्रह्मसदनात्तृणं निरस्यति० अथोपविशतीदमहमर्वावसोः सदसि सीदामीति ० अथोपविश्य जपति बृहस्पतिर्ब्रह्मेति० प्रणीतासु प्रणीयमानासु वाचं यच्छति^२ आ हविष्कृत उद्वादनात् । इष्टे च स्विष्टकृति आऽनुयाजानां प्रसवात् ॥

जैत्रा [१.३.५८]—

तदाहुर्गृह्या होतृत्वं क्रियते यजुषाऽऽध्वर्यवं साम्नोद्गीयोऽथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति । अनया त्रया विद्ययेति ह ब्रूयात् । तस्मादु यमेव ब्रह्मिष्ठं मन्येत तं ब्रह्माणं कुर्वीत । स ह वाव ब्रह्मा य एवं वेद ॥

असं [१९.१३.२]—

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥

अपैसं [७.४.२] ≡ असं [१९.१३.२]

गोत्रा [१.२.२४]—अथर्वाङ्गिरोविदमेव ब्रह्माणं वृणीष्व० ॥ [१.३.१०]—
तद्यत्राऽस्त्यैश्वर्यं स्याद्यत्र वैनमभिवहेयुरेवंविदमेव तत्र ब्रह्माणं वृणीयान्नाऽनेवंविदमिति ब्राह्मणम्० ॥
[२.१.३]—तस्माद्यो ब्रह्मिष्ठः स्यात्तं ब्रह्माणं कुर्वीत० ॥ [२.१.१]—अथ यद्ब्रह्म-
सदनात्तृणं निरस्यति० अथोपविशतीदमहमर्वावसोः सदने सीदामीति० अथोपविश्य जपति
बृहस्पतिर्ब्रह्मेति० प्रणीतासु प्रणीयमानासु वाचं यच्छति^२ आ हविष्कृत उद्वादनात्० इष्टे च
स्विष्टकृति आऽनुयाजानां प्रसवादिति० ॥

हविर्निर्वापः

तैसं [१.१.४]—

वेषाय त्वा ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः ॥ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं
धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ॥ त्वं देवानामसि
सखितमं पप्रितमं जुष्टमं वह्नितमं देवहूतममहुतमसि हविर्धानं दृक् हस्व
मा ह्याः ॥ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे मा भेर्मा सं विक्था मा त्वा
हिंसिषम् ॥ उरु वाताय ॥ देवस्य त्वा सन्नितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां

पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामि ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो-
र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नीषोमाभ्यां जुष्टं निर्वपामि' ॥ इदं देवानाम् ॥
इदमु नः सह ॥ स्फात्यै त्वा नाऽरात्यै ॥ सुवरभि वि ख्येषम् ॥ वैश्वानरं
ज्योतिः ॥ दृ५हन्तां दुर्या घावापृथिव्योः ॥ उर्वन्तरिक्षमन्विहि ॥
अदित्यास्त्वोपस्थे सादयामि ॥ अग्ने हव्य५ रक्षस्व ॥

[१.५.१०]—

अग्नि५ होतारमिह त५ हुवे देवान् यज्ञिनानिह यान् हवामहे ।
आ यन्तु देवाः सुमनस्यमाना वियन्तु देवा हविषो मे अस्य ॥

[१.१.५]—

देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥
आपो देवीरग्रेषुवो अग्रेषुवोऽग्र इमं यज्ञं नयताऽग्रे यज्ञपतिं धत्त युष्मानिन्द्रो
वृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये ॥ प्रोक्षिताः स्थ ॥ देवस्य
त्वा.... हस्ताभ्यामग्नये वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याम् ॥ शुन्धध्वं दैव्याय
कर्मणे देवयज्यायै ॥

तैब्रा [३.२.४-५]—

त्रिर्यजुषा० तूष्णीं चतुर्थम्० स एवमेवाऽनुपूर्व५ हवी५ षि निर्वपति० अस्या एवैन-
दुपस्थे सादयति० यद्वर्भैरप उत्पुनाति० द्वाभ्यामुत्पुनाति० सावित्रियर्चा० पच्छो गायत्रिया
त्रिःषमृद्धत्वाय० अग्नये वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यामित्याह । यथादेवतमेवैनान् प्रोक्षति । त्रिः
प्रोक्षति० शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्याया इत्याह० त्रिः प्रोक्षति० ॥

तैसं [१.६.८]—हविर्निरुप्यमाणमभिमन्त्रयेताऽग्नि५ होतारमिह त५ हुव इति०
तदुदित्वा वाचं यच्छति० ॥

मैसं [१.१.४-६]—

वानस्पत्याऽसि ॥ वर्षवृद्धमसि ॥ उर्वन्तरिक्ष५ वीहि ॥ प्रत्युष्ट५ रक्षः
प्रत्युष्टाऽरातिः ॥ धूरसि ध्वर ध्वरन्त५ योऽस्मान् ध्वराद्य५ वयं ध्वराम
तं ध्वर ॥ देवानामसि वह्नितम५ सखितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमं....
मा ह्वाः ॥ विष्णोः क्रमोऽसि ॥ उरु वाताय ॥ मित्रस्य वश्वक्षुषा प्रेक्षे ॥
देवस्य वः सवितुः....हस्ताभ्या५ यच्छन्तु पञ्च ॥ गोपीथाय वो नाऽरातये ॥

अग्नये वो जुष्टान्निर्वपाम्यमुष्मै वो जुष्टान् ॥ इदं देवानाम् ॥ इदमु नः सह ॥
 दृ०हन्तां दुर्याः ॥ स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ निर्वरुणस्य पाशादमुक्षि ॥
 स्वरभिव्यवशम् ॥ ज्योतिर्वैश्वानरम् ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ अदित्या व
 उपस्थे सादयामि ॥ देवो वः.... रश्मिभिः ॥ अग्नये वो जुष्टान् प्रोक्षाम्य-
 मुष्मै वो जुष्टान् ॥ यद्वो शुद्ध आलेभे तञ्जुन्धध्वम् ॥

[१.४.१]—

अग्निं होतारमुप तं हुवे देवान् यज्ञियानिह यान् यजामहे । व्यन्तु देवा
 हविषो मे अस्या देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥

मैसं [१.४.५; ६]—

अग्निं होतारमुप तं हुवा इति येन हविर्निर्वप्यन्त्यात्तदभिमृशेत्० यद्वविर्निर्व-
 प्यन्नग्नौ निष्टपति० यद्वविर्निर्वप्यन् यजमानाय ग्राह० ।

[४.१.४-६]—देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा
 इति० धूरसि ध्वर ध्वरन्तमिति । धुर्यो वै नामैषोऽग्निः । यदनालभ्याऽतीयाद्यजमानं शुचाऽर्प-
 येत्० ऊर्जं गृहीत इति० प्रभूत्यै वः इति० देवस्य वः.... इति० उर्वन्तरिक्षमन्वेमि इति ।
 यद्वीहीति ब्रूयाद्व्यायुकोऽध्वर्युः स्यात् । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि इत्यव्यायुकोऽध्वर्युर्मवति० अग्ने हव्यं
 रक्षस्व इति पुर उपसादयति० विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति० अथो यस्यै देवतायै प्रोक्षति तस्या
 एतान् जुष्टान् करोति० ॥

कासं [१.४-५]—

कर्मणे वाम् ॥ वानस्पत्यमसि ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाऽरातिः ॥
 उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं
 वयं धूर्वामस्तं च धूर्व ॥ देवानामसि वह्नितमं सल्लितमं पप्रितमं जुष्टतमं
 देवहूतमम् ॥ विष्णोः क्रमोऽसि ॥ अहुतमसि हविर्धानं दैहस्व मा ह्याः ॥
 मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे ॥ उरु त्वा वाताय ॥ देवस्य त्वा....
 हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामि ॥ यच्छन्तु त्वा पञ्च ॥ रक्षायै त्वा
 नाऽरात्यै ॥ इदं देवानामिदं नस्सह ॥ स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरम् ॥
 दृ०हन्तां दुर्यास्स्वाहा पृथिव्याम् ॥ उर्वन्तरिक्षं प्रेहि ॥ अग्ने हव्यं रक्षस्व ॥
 विष्णोर्मनसा पूते स्थः ॥ देवो वः.... रश्मिभिः ॥ देवस्य त्वा....
 हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं प्रोक्षामि ॥ शुन्धन्तां पात्राणि देवयज्यायै ॥ यद्वोऽशुद्धः
 पराजघान तद्व एतेन शुन्धन्ताम् ॥

कासं [३१.३-४]—

कर्मणे वामिति हस्ता अवनेनित्ते० देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितुप्रसूत एवैनदेवताभ्यो निर्वपत्यमुष्मै जुष्टमिति । यस्या एव देवतायै निर्वपति तस्या एनज्जुष्टं करोति० उर्वन्तरिक्षं वीहीति ब्रूयाद् व्यायुकोऽध्वर्युस्स्यात् । उर्वन्तरिक्षं प्रेहीत्यव्यायुकोऽध्वर्युर्मवति० अग्ने हव्यं रक्षस्वेत्युपसादयति० विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति पुनात्येवैने० अमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै प्रोक्षति तस्या एनज्जुष्टं करोति० ॥

कपिसं [१.४-५]—

कर्मणे वाम् ॥ वानस्पत्यमसि ॥ निष्टप्तं रक्षः ॥ उर्वन्तं --- ॥ अहुतमसि हविर्धानम् ॥ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे ॥ --- ॥ स्वरभिव्यख्यम् ॥ --- ॥ देवो वः.... रश्मिभिः ॥ अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ --- ॥ [४७.३-४]—०वानस्पत्यमसीति सुक्शूर्पमादत्ते --- ॥

वासं [१.६-१३]—

कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ॥ उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ धूरसि धूर्व.... ॥ देवानामसि वह्नितम् सस्त्रितम् पप्रितम् जुष्टतमं देवहूतमम् । अहुतमसि हविर्धानं दृष्ट्वहस्व मा ह्वामां ते यज्ञपतिर्हार्षीत् ॥ विष्णुस्त्वा क्रमताम् ॥ उरु वाताय ॥ अपहतं रक्षः ॥ यच्छन्तां पञ्च ॥ देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं गृह्णामि ॥अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ भूताय त्वा नाऽरातये ॥ दृष्ट्वहन्तां दुर्याः पृथिव्याम् ॥ उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ पृथिव्यास्त्वा नामौ सादयाम्यदित्या उपस्थे ॥ अग्ने हव्यं रक्ष ॥ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ ॥ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ देवीरापो अग्नेगुवो अग्नेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताऽग्ने यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं ॥ प्रोक्षिताः स्थ ॥ अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै ॥ यद्वोऽशुद्धाः परा-जघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥

शत्रा [१.१.२-३]—

अथ शूर्पं चाऽग्निहोत्रहवर्णीं चाऽऽदत्ते कर्मणे वां वेषाय वामिति० अथ वाचं यच्छति० अथ प्रतपति प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातय इति वा० अथ प्रैति

उर्वन्तरिक्षमन्वेमीति० स वा अनस एव गृहीयात्० उतो पात्र्यै गृह्णन्ति । अनन्तरायमु तर्हि यजूंषि जपेत् । स्प्यमु तर्ह्यस्तादुपोह्य गृहीयात्० स धुरमभिमृशति धूरसि धूर्व धूर्वन्तं.... इति० अथ जघनेन कस्तम्भीमीषामभिमृश्य जपति देवानामसि.... ०मा ते यज्ञपतिर्ह्यर्षीदिति० अथाऽऽक्रमते विष्णुस्त्वा क्रमतामिति० अथ प्रेक्षते उरु वातायेति० अथाऽपास्यति अपहतं रक्ष इति० अथाऽभिपद्यते यच्छ्रुतां पश्येति० अथ गृह्णाति देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं गृह्णामीति० अथ देवताया आदिशति० एवमेव यथापूर्वं हवींषि गृहीत्वा । अथाऽभिमृशति भूताय त्वा नाऽरातय इति० अथ प्राङ् प्रेक्षते स्वरभिविख्येषमिति० अथाऽवरोहति दृष्टं हन्तां दुर्याः पृथिव्यामिति० अथ प्रैति उर्वन्तरिक्षमन्वेमीति० स यस्य गार्हपत्ये हवींषि श्रपयन्ति गार्हपत्ये तस्य पात्राणि सँसादयन्ति । जघनेनो तर्हि गार्हपत्यं सादयेत् । यस्याऽऽ-हवनीये हवींषि श्रपयन्त्याहवनीये तस्य पात्राणि सँसादयन्ति । जघनेनो तर्ह्याहवनीयं सादयेत् पृथिव्यास्त्वा नामौ सादयामीति० अग्रे हव्यं रक्षेति० ॥ पवित्रे करोति पवित्रे स्यो वैष्णव्याविति० ते वै द्वे भवतः० अथो अपि त्रीणि स्युः० ताभ्यामेताः प्रोक्षणीरुत्पूय ताभिः प्रोक्षति० स उत्पुनाति सवितुर्वः प्रसव.... रश्मिभिरिति० ताः सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणे-नोदिङ्गयति० देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुव इति० प्रोक्षिताः स्थेति तदेताभ्यो निहुते० अथ हविः प्रोक्षति० स प्रोक्षति अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति० एवमेव यथापूर्वं हवींषि प्रोक्ष्य । अथ यज्ञपात्राणि प्रोक्षति दैव्याय कर्मणे.... ०वस्तच्छुन्धामीति० ॥

वाकासं [१.३-४]—

--- धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति धूर्व तं यं वयं धूर्वामः ॥ देवानामसि सस्त्रितमं वह्नितमं.... ॥ --- ॥ अग्रे हव्यं रक्षस्व ॥ --- इममद्य यज्ञं नयत सुधातुं यज्ञपतिं देवायुवम् ॥ --- यद्वोऽशुद्धः परा जघानै तद्वस्त-च्छुन्धामि ॥

काशब्रा [२.१.२-३] ≡ शब्रा

हविःकण्डनादिकपालोपधानान्तम्

तैसं [१.१.५]—

अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातयः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु ॥ अधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि ॥ अद्रिरसि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हव्यं सुशमि शमिष्व ॥ इषमा वदोर्जमा वद धुमद्वदत वयं

संघातं जेष्म ॥ वर्षवृद्धमसि ॥ प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु ॥ परापूतः रक्षः
परापूता अरातयः ॥ रक्षसां भागोऽसि ॥ वायुर्वो वि विनक्तु ॥ देवो वः
सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृह्णातु ॥

तैत्रा [३.७.६]—

त्रिष्फलीक्रियमाणानां यो न्यङ्गो अवशिष्यते ।

रक्षसां भागधेयमापस्तत्प्रवहतादितः ॥

[१.५.१०]—कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तु ॥

तैसं [१.१.६-७]—

अवधूतः रक्षोऽवधूता अरातयः ॥ अदित्यास्त्वगासि प्रति त्वा पृथिवी
वेत्तु ॥ दिवः स्कम्भनिरसि प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ धिषणाऽसि
पर्वत्या प्रति त्वा दिवः स्कम्भनिर्वेत्तु ॥ धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा
पर्वतिर्वेत्तु ॥ देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामधि वपामि ॥ धान्यमसि धिनुहि
देवान् ॥ प्राणाय त्वा ॥ अपानाय त्वा ॥ व्यानाय त्वा ॥ दीर्घामनु
प्रसितिमायुषे धाम् ॥ देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृह्णातु ॥
धृष्टिरसि ब्रह्म यच्छ ॥ अपाऽग्नेऽग्निमामादं जहि ॥ निष्क्रव्यादः सेध ॥
आ देवयजं वह ॥ निर्दग्धः रक्षो निर्दग्धा अरातयः ॥ ध्रुवमसि पृथिवीं
दृहः हाऽऽयुर्दृहः प्रजां दृहः सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह ॥ धर्त्रमस्यन्त-
रिक्षं दृहः प्राणं दृहः हाऽपानं दृहः सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह ॥
धरुणमसि दिवं दृहः चक्षुर्दृहः श्रोत्रं दृहः सजातानस्मै यजमानाय
पर्यूह ॥ धर्माऽसि दिशो दृहः योनिं दृहः प्रजां दृहः सजातानस्मै
यजमानाय पर्यूह ॥ चितः स्थ प्रजामस्मै रयिमस्मै सजातानस्मै यज-
मानाय पर्यूह ॥ भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥

यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः ॥

पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू वि मुञ्चताम्^१ ॥

तैत्रा [३.२.५-७]—

पुरस्तात्प्रतीचीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति मेध्यत्वाय० यत्कृष्णाजिने हविरध्यवहन्ति०
हविष्कृदेहीत्याह० त्रिह्वयति० उच्चैः समाहन्तवा आह विजित्यै० अप उपस्पृशति मेध्यत्वाय०

१. कपालविमोकार्थमयं मन्त्रः । तत्र 'वि मुञ्चताम्' इत्यस्य स्थाने 'युक्ताम्' इत्यूहं
कृतवानेन मन्त्रेण यजमानः कपालोपधानमनुमन्त्रयेदिति बौधायनसूत्राशयः ॥

त्रिफलीकर्तवा आह० पुरस्तात्प्रतीचीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति मेध्यत्वाय० यथादेवतमेवैनानधिवपति० असंवपन्ती पिष्वाऽणूनि कुरुतादित्याह मेध्यत्वाय० अग्निवत्युपदधाति । अङ्गारमधिवर्तयति० त्रीण्यग्रे कपालान्युपदधाति० एकमग्रे कपालमुपदधाति० अथ द्वे । अथ त्रीणि । अथ चत्वारि । अथाऽष्टौ । यन्त्र० यद्दश० यदेकादश० यद् द्वादश० यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधस इति चतुष्पदयर्चा विमुञ्चति० ॥

तैसं [१.६.८]—

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तिवत्याह । प्रजापतिर्वै कः । प्रजापतिर्नैवैनं युनक्ति । युङ्क्ते युञ्जानेषु ॥

मैसं [१.१.६-८]—

अदित्यास्त्वगसि ॥ अवधूतं रक्षोऽवधूताऽरातिः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ पृथुग्रावाऽसि वानस्पत्यः प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि वाचो विसर्जनमायुषे वः ॥ बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्यो देवेभ्यो हव्यं शमीष्व सुशमि शमीष्व ॥ कुटरुरसि मधुजिह्वस्त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म ॥ इषमावद ॥ ऊर्जमावद ॥ रायस्पोषमावद ॥ वर्षवृद्धमसि ॥ प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु ॥ परापूतं रक्षः परापूताऽरातिः ॥ प्रविद्धो रक्षसां भागः ॥ अदित्यास्त्वगसि ॥ अवधूतं रक्षोऽवधूताऽरातिः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ धिषणाऽसि पार्वती प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ धिषणाऽसि पार्वती प्रति त्वा पार्वती वेत्तु ॥ अदित्याः स्कम्भोऽसि ॥ धान्यमसि धिनुहि देवान् ॥ प्राणाय त्वा ॥ अपानाय त्वा ॥ व्यानाय त्वा ॥ दीर्घामनु प्रसृतिं सस्पृशेथामायुषे वः ॥ मित्रस्य वश्रक्षुषाऽवेक्षे ॥ देवो वः सविता हिरण्यपाणिरुपगृह्णातु ॥ निर्दग्धं रक्षो निर्दग्धाऽरातिः समुद्रं मा धाक् ॥ ध्रुवमसि पृथिवीं दृह ॥ अपाऽग्नेऽग्निमामादं जहि निः क्रव्यादं नुदस्व ॥ अग्ने देवयजनं वह ॥ धरुणमस्यन्तरिक्षं दृह ॥ धर्त्रमसि दिवं दृह ॥ धर्माऽसि विश्वा विश्वानि दृह ॥ चिदसि ॥ परिचिदसि ॥ विश्वासु दिक्षु सीद ॥ सजातानस्मै यजमानाय परिवेशय सजाता इमं यजमानं परिविशन्तु ॥ वसूनां रुद्राणामादित्यानां भृगूणामङ्गिरसां घर्मस्य तपसा तप्यन्त्रम् ॥ यानि घर्मे.... विमुञ्चताम् ॥

[४.१.६-८]—प्रतीचीनग्रीवं कृष्णाजिनमुपस्तृणाति० अपहृतं रक्ष इति० हविष्कृदेहीति० त्रिह्वयति० देवो वः सविता विविनक्तु इति० सुविचा विविच्यध्वमिति०

सुफलीकृतान् कुर्यात्० त्रिः फलीकरोति० प्रतीचीनग्रीवं कृष्णाजिनमुपस्तृणाति० अदित्याः स्कम्भोऽसीति शम्यामुपदधाति० यदधस्तादङ्गारमुपवर्तयति० यदुपरिष्ठात्० त्रीणि समीचीनान्युपदधाति० एकं वा अग्रे शीर्ष्णः कपालं संभवति । अथ द्वितीयमथ तृतीयमथ चतुर्थमथ पञ्चममथ षष्ठमथ सप्तममथाऽष्टमम् । यदष्टा उपदधाति० यदेकादश० यद्द्वादश० अथो सर्वाण्येव छन्दःसंभितान्युपदधाति० चितः स्थ परिचितः स्थ इति यजुष्मन्ति करोति० यानि घर्मे.... विमुञ्चतामिति यजुषैव युज्यन्ते यजुषा विमुच्यन्ते० ॥

[१.४.१०]—०अग्नेर्जिह्वाऽसि वाचो विसर्जनमिति पुरोडास्यानावपति० औल्ल-
खलाभ्यां वै दृषदा हविष्कृदेहीति० औल्लखल्योरुद्वदितोरध्वर्युश्च यजमानश्च वाचं यच्छेताम्० ॥

कासं [१.५-७]—

अवधूतं रक्षोऽवधूताऽरातिः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु ॥
अधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृह ॥ अग्ने-
स्तनूरसि वाचो विसर्जनं देवताभ्यस्त्वा देववीतये गृह्णामि ॥ बृहद्ग्रावाऽसि
वानस्पत्यस्स इदं देवेभ्यो हव्यं शमीष्व सुशमि शमीष्व ॥ अद्रिरसि
श्लोककृत् ॥ अपहतं रक्षोऽपहताऽरातिः ॥ वयं संघाती संघातं जयेम ॥
वर्षवृद्धमसि ॥ प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु ॥ परापूतं रक्षः परापूताऽरातिः ॥
निरस्तो अघशीसः ॥ वायुर्व इष ऊर्जे विविनक्तु ॥ अवधूतं रक्षोऽव-
धूताऽरातिः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु ॥ धिषणाऽसि पार्वती
प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृह ॥ धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा
पार्वती वेत्तु दिवं दृह ॥ दिवस्स्कम्भन्यसि ॥ धान्यमसि धिनुहि देवान्
धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञन्यम् ॥ प्राणाय त्वा ॥
व्यानाय त्वा ॥ अपानाय त्वा ॥ दीर्घामनु प्रसितिमायुषे त्वा ॥ देवो
वस्सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातु ॥ अदब्धेन वश्चक्षुषाऽवपश्यामि राय-
स्पोषाय सुप्रजास्त्वाय ॥ निर्दग्धं रक्षो निर्दग्धाऽरातिः ॥ अपाऽग्ने
अग्निं.... सेध ॥ आ देवयजं वह ॥ ध्रुवमसि पृथिवीं दृह । आयुर्देहि प्राणं
देहि । सजातान्.... पर्यूह ॥ धरुणमस्यन्तरिक्षं दृह । चक्षुर्देहि श्रोत्रं देहि ।
सजातान्.... पर्यूह ॥ धर्त्रमसि दिवं दृह । ओजो देहि बलं देहि ।
सजातान्.... पर्यूह ॥ धर्माऽसि दिशो दृह । रयिं देहि पोषं देहि ।
सजातान्.... पर्यूह ॥ यन्त्रमस्याशा दृह । रूपं देहि वर्णं देहि । सजातान्
.... पर्यूह ॥ चितस्स्थ परिचितो यजमानस्य सजाताः ॥ भृगूणामङ्गिरसां
तपसा तप्यध्वम् ॥ यानि घर्मे.... विमुञ्चताम् ॥

[३१.४-६]— ०अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनमिति० अथ वाचं विसृजन्ते । बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्य इति ग्रावाणमेव कृत्वा हविष्करोति० हविष्कृदेहीति० त्रिद्वयति० सुफलीकृतान् करोति० त्रिः फलीकरोति० दिवस्स्कम्भन्यसीति शम्यामुपदधाति० यदधस्तादङ्गार-मुपवर्तयति० यदुपरिष्ठादधिवर्तयति० त्रीणि समीचीनान्युपदधाति० एकं वा अग्ने शीर्ष्णः कपालि संभवति । अथ द्वितीयमथ तृतीयमथ चतुर्थमथ पञ्चममथ षष्ठमथ सप्तममथाऽष्टमम् । यदष्टौ समीचीनान्युपदधाति० यदेकादश० यद्द्वादश० ॥

कपिसं [१.५-७]—

--- वानस्पत्यं प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि ॥ बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्यः ॥ स देवेभ्यो हव्यं शमीष्व । सुशमि शमीष्व ॥ --- संघातं जयेम ॥ --- धान्यमसि धिनुहि देवान् ॥ प्राणाय त्वा --- चक्षुषाऽवपश्यामि ॥ निर्दग्धं रक्षः ॥ अपाऽग्नेऽग्निं.... ॥ आ देवयजनं वह ॥ ध्रुवमसि.... यजमानाय परिवह ॥ ---

[४७.४-६] ≡ कासं

वासं [१.१४-२०]—

शर्माऽसि ॥ अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातयः ॥ अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वाऽदितिर्वेत्तु ॥ अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावाऽसि पृथुबुध्नः प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ अग्नेस्तनूरसि.... गृह्णामि ॥ बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्यः ॥ स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व ॥ हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जेष्व ॥ वर्षवृद्धमसि ॥ प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु ॥ परापूतं रक्षः.... ॥ अपहतं रक्षः ॥ वायुर्वो विविनक्तु ॥ देवो वः सविता.... प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ धृष्टिरसि ॥ अपाऽग्ने अग्रिमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध ॥ आ देवयजं वह ॥ ध्रुवमसि पृथिवीं दृष्ट्व ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातव-न्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व ॥ धरुणमस्यन्तरिक्षं दृष्ट्व ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ धर्त्रमसि दिवं दृष्ट्व ब्रह्मवनि.... वधाय ॥ विश्वाम्यस्त्वाऽऽशाभ्य उपदधामि ॥ चित स्थोर्ध्वचितः ॥ भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ शर्माऽसि ॥ अवधूतं.... ॥ अदित्यास्त्वगसि.... ॥ धिषणाऽसि पर्वती प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ दिव स्कम्भनीरसि ॥ धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ धान्यमसि धिनुहि देवान् ॥ प्राणाय त्वा ॥ उदानाय

त्वा ॥ व्यानाय त्वा ॥ दीर्घामनु.... ॥ देवो वः.... हिरण्यपाणिः प्रति-
गृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ चक्षुषे त्वा ॥ महीनां पयोऽसि ॥

शब्रा [१.१.४; १.२.१]—

अथ कृष्णाजिनमादत्ते शर्माऽसीति० तदवधूनोति अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातय इति० तत्प्रतीचीनग्रीवमुपस्तृणाति अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वाऽदितिर्वेत्ति० अभिनिहितमेव सव्येन पाणिना भवति । अथ दक्षिणेनोद्धखलमाहरति० अथोद्धखलं निदधाति अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावाऽसि पृथुबुध्न इति वा० अथ हविरावपति अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनमिति० यां वा अमूँ हविर्ग्रीहीष्यन् वाचं यच्छति अत्र वै तां विसृजते० स यदि पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत्तत्रो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेत्० अथ मुसलमादत्ते बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्य इति० तदवदधाति स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्वेति० अथ हविष्कृतमुद्रादयति हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीति० तानि वा एतानि चत्वारि वाचः । एहीति ब्राह्मणस्य । आगह्या-
द्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्च । आधावेति शूद्रस्य० तद्ध स्मैतपुरा जायैव हविष्कृदुपोत्तिष्ठति० स यत्रैष हविष्कृतमुद्रादयति तदेको दृषदुपले समाहन्ति० स समाहन्ति कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इति० अथ शूर्पमादत्ते वर्षवृद्धमसीति० यदि नडानां यदि वेणूनां यदीषीकाणाम्० अथ हविर्निर्वपति प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्ति० अथ निष्पुनाति परापूतं रक्षः परापूता अरातय इति । अथ तुषान् प्रहन्ति अपहतं रक्ष इति० अथाऽपविनक्ति वायुर्वा विविनक्ति० अथाऽनुमन्त्रयते देवो वः सविता.... पाणिना० अथ त्रिः फलीकरोति० तद्वैके देवेभ्यः शुन्धध्वं, देवेभ्यः शुन्धध्वमिति फलीकुर्वन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० तूष्णीमेव फलीकुर्यात् । स वै कपालान्येवान्यतर उपदधाति दृषदुपले अन्यतरः । तद्वा एतदुभयं सह क्रियते० स यः कपालान्युपदधाति स उपवेशमादत्ते धृष्टिरसीति० तेन प्राचोऽङ्गारानुदूहति अपाऽग्ने-
ग्निमामादं जहि निष्कव्यादं सेधेति० अथाऽङ्गारमास्कौति आ देवयजं वहेति० तं मध्यमेन कपालेनाऽभ्युपदधाति० स उपदधाति ध्रुवमसि पृथिवीं दृष्ट्वेति० एतेनैव द्विषन्तं भ्रातृव्य-
मवबाधते ब्रह्मवनि त्वा.... भ्रातृव्यस्य वधायेति० उपदधामि भ्रातृव्यस्य वधायेति यदि नाऽभि-
चरेत् । यद्बु अभिचरेदमुष्य वधायेति ब्रूयात् । अभिनिहितमेव सव्यस्य पाणेरङ्गुल्या भवति । अथाऽङ्गारमास्कौति० अथाऽङ्गारमध्यहति अग्ने ब्रह्म गृष्णीष्वेति० अथ यत्पश्चात्तदुपदधाति धरुणमस्यन्तरिक्षं दृष्ट्वेह.... इति० अथ यत्पुरस्तात्तदुपदधाति धर्ममसि दिवं दृष्ट्वेह इति० अथ यदक्षिणतस्तदुपदधाति विश्वाम्यस्त्वाऽऽशाम्य उपदधामीति० तूष्णीं वै वेतराणि कपाल-
न्युपदधाति । चित् स्थोर्व्वचित् इति वा । अथाऽङ्गारैरभ्यहति भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्व-
मिति० अथ यो दृषदुपले उपदधाति स कृष्णाजिनमादत्ते शर्माऽसीति । तदवधूनोति अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातय इति० तत्प्रतीचीनग्रीवमुपस्तृणाति अदित्यास्त्वगसि प्रति

त्वाऽदितिर्वेत्सिति० अथ दृषदमुपदधाति धिषणाऽसि पर्वती प्रति त्वाऽदित्यास्त्ववेत्सिति०
अथ शम्यामुदीचीनाग्रामुपदधाति दिव स्कम्भनीरसीति० अथोपलामुपदधाति धिषणाऽसि
पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्सिति० अथ हविरधिवपति धान्यमसि धिनुहि देवानिति० अथ
पिनष्टि प्राणाय त्वोदानाय.... आयुषे धामिति । प्रोहति देवो वः सविता.... चक्षुषे त्वेति०
अथैक आज्यं निर्वपति० महीनां पयोऽसीति० ॥

वाकासं [१.५-७]—

शर्माऽस्यवधूतः ॥ --- बृहन् ग्रावाऽसि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो
हव्यः शमीष्व सुशमी शमीष्व ॥ हविष्कृदेहि ॥ कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व
इषमूर्जमावद । वयः संघाते संघाते जेष्म ॥ --- परापूतः रक्षः प्रतिपूता
अरातयः ॥ --- देवो वः सविता प्रतिगृह्णातु हिरण्यपाणिरच्छिद्रेण
पाणिना ॥ धृष्टिरसि ॥ अपाऽग्नौ.... ॥ --- सजातवन्युपदधामि द्विषतो
वधाय ॥ --- द्विषतो वधाय ॥ विश्वाभ्यस्त्वाऽऽशाभ्य उपदधामि द्विषतो
वधाय ॥ --- शर्माऽस्यवधूतः ॥ --- दिवः स्कम्भन्यसि ॥ धान्य-
मसि धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञन्यम् ॥
प्राणाय त्वो° --- ॥ देवो वः सविता प्रतिगृह्णातु हिरण्यपाणिरच्छिद्रेण
पाणिना ॥ चक्षुषे त्वा ॥ महीनां पयोऽसि ॥ वेदोऽसि वेद येन त्वं देव
वेद देवेभ्यो वेदोऽभवः । तेन मह्यं वेदो भव ॥

काशत्रा [२.१.३-४] ≡ शत्रा

पुरोडाशश्रपणम्

तैसं [१.१.८]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं सं
वपामि ॥ समापो अद्भिरगमत समोषधयो रसेन सः रेवतीर्जगतीभिर्मधु-
मतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वम् ॥ अद्भ्यः परि प्रजाताः स्थ समद्भिः पृच्य-
ध्वम् ॥ जनयत्यै त्वा सं यौमि ॥ अग्नये त्वाऽग्नीषोमाभ्याम् ॥ मखस्य
शिरोऽसि ॥ घर्मोऽसि विश्वायुः ॥ उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥
त्वचं गृह्णीष्व ॥ अन्तरितः रक्षोऽन्तरिता अरातयः ॥ देवस्त्वा सविता
श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाकेऽग्निस्ते तनुवं माऽसति धाक् ॥ अग्ने हव्यः
रक्षस्व ॥ सं ब्रह्मणा पृच्यस्व ॥ एकताय स्वाहा ॥ द्विताय स्वाहा ॥
त्रिताय स्वाहा ॥

तैत्रा [३.२.८]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्याह प्रसूत्यै० संवपामीत्याह । यथादेवतमेवैनानि संवपति० अद्भ्यः परि प्रजाताः स्थ समद्भिः पृच्यध्वमिति पर्याप्लावयति० अथाऽप आनीय परिमार्ष्टि० पर्यग्नि करोति० त्रिः पर्यग्नि करोति० अविदहन्तः श्रपयतेति वाचं विसृजते० भस्मनाऽभिवासयति० वेदेनाऽभिवासयति० अन्तर्वेदि निनयत्यवरुद्धयै । उल्मुकेनाऽभिगृह्णाति शृतत्वाय० ॥

तैसं [२.६.३]—

अङ्गिरसो वा इत उत्तमाः सुवर्गं लोकमायन् । तद्वषयो यज्ञवास्त्वभ्यवायन् । तेऽपश्यन् पुरोडाशं कूर्मं भूतं सर्पन्तम्० आग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाऽच्युतो भवति० उपरिष्ठादभ्यज्याऽधस्तादुपानक्ति० सर्वाणि कपालान्यभि प्रथयति० अविदहता शृतं कृत्यः० भस्मनाऽभिवासयति० वेदेनाऽभिवासयति० ॥

मैसं [१.१.९]—

देवस्य वः सवितुः.... हस्ताभ्यां संवपामि ॥ देवो वः.... रश्मिभिः ॥ समापा ओषधीर्भिर्गच्छन्तां समोषधयो रसेन । स० रेवतीर्जगतीः शिवाः शिवाभिः समसृक्षताऽऽपः ॥ सीदन्तु विशः ॥ जनयत्यै त्वा ॥ घर्मोऽसि विश्वायुः घर्मं घर्मे श्रयस्व ॥ उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥ सं ते तन्वा तन्वः पृच्यन्ताम् ॥ परि वाजपतिः कविरग्निर्विष्वान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ देवस्त्वा.... नाके पृथिव्याः । अग्ने ब्रह्म गृह्णीष्व ॥

[४.१.९]— ०पवित्रवत्संवपति । हविः करोति० अप उपसृजति० मखस्य शिरोऽसि इत्याह० उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामिति प्रथयत्येवैनम् । प्रति प्रथस्व पृथिवी-मुत धामितीमे एव प्रथयति० यत्पर्यग्निं करोति० त्रिः पर्यग्निं करोति० सुश्रुतः कार्यः० यदभिवासयति० भस्मनाऽभ्यूहति० ज्वालैरभिवासयति० यत्त्वचमग्राहयित्वा भस्मनाऽभिवासयेत् पलितंभावुकोऽध्वर्युः स्यात्० अन्तर्वेदि जुहोति० उपरिष्ठादभिघारयति शृतत्वाय० ॥

[१.४.६]— ०यदेता आपोऽतिसृज्यन्ते । अछिन्नं स्नायितव्याः० ॥

कासं [१.८]—

देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं संवपामि ॥ समाप ओषधीर्भिस्स-मोषधयो रसेन मधुना मधुमतीः पृच्यन्ताम् ॥ यद्वो रेवती रेवत्यं यद्वो हविष्या हविष्यं यद्वो जगतीर्जगत्यं तेनाऽस्मै यज्ञपतय आशासाना मधुना मधुमतीस्संपृच्यध्वम् ॥ जनयत्यै त्वा ॥ मखस्य शिरोऽसि । घर्मोऽसि विश्वायुः ॥ उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा-

ऽरातिः ॥ देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके । अग्निस्ते तन्वं मा
हिंसीत् ॥ अग्ने ब्रह्म गृहीष्व ॥ एकताय स्वाहा ॥ द्विताय स्वाहा ॥
त्रिताय स्वाहा ॥

कासं [३१.७]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितुःप्रसूत एवैनदेवताभ्यस्संवपत्यमुष्मै जुष्टमिति०
पवित्रवति संवपति० अप उपसृजति० जनयत्यै त्वेति संयौति० यत् पर्यग्निं करोति० त्रिः
परिहरति० त्वचं ग्राहयति० भस्मनाऽभिवासयति० वेदेनाऽभ्यूहति० अन्तर्वेदि निनयति०
उल्मुकेनाऽभिघारयति० ॥

कपिसं [१.८]—

--- प्रत्युष्टं रक्षः ॥ देवस्त्वा --- ॥ अग्ने ब्रह्म गृहीष्व ॥ ---

कपिसं [४७.७] ≡ कासं

वासं [१.२१-२३]—

देवस्य त्वा.... हस्ताभ्याम् । सं वपामि ॥ समाप ओषधीभिः समोषधयो
रसेन । स^५ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ता^५ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥
जनयत्यै त्वा संयौमि ॥ इदमग्नेः । इदमग्नीषोमयोः ॥ इषे त्वा ॥ घर्मोऽसि
विश्वायुः ॥ उरु प्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥ अग्निष्ठे त्वचं
मा हिंसीत् ॥ देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ मा मेर्मा
संविक्थाः ॥ अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् ॥ त्रिताय त्वा ।
द्विताय त्वा । एकताय त्वा ॥

शत्रा [१.२.२-३]—

पवित्रवति संवपति पात्र्यां पवित्रे अवधाय देवस्य त्वा हस्ताभ्याम् सं वपा-
मीति० अथाऽन्तर्वेद्युपविशति । अथैक उपसर्जनीभिरैति । ता आनयति । ताः पवित्राभ्यां प्रति-
गृह्णाति समाप ओषधीभिः इति० अथ संयौति जनयत्यै त्वा संयौमीति० अथ द्वेधा करोति
यदि द्वे हविषी भवतः । पौर्णमास्यां वै द्वे हविषी भवतः । स यत्र पुनर्न स^५हरिष्यन्त्स्यात्
तदभिमृशति इदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिति० अधिवृणक्त्येवैष पुरोडाशम्, अधिश्रयत्यसावाज्यम् । तद्वा
एतदुभयं सह क्रियते० सोऽसावाज्यमधिश्रयति इषे त्वेति० तत्पुनरुद्गासयति ऊर्जे त्वेति० अथ
पुरोडाशमधिवृणक्ति घर्मोऽसीति० तं प्रथयति उरु प्रथा उरु प्रथस्वेति० तं न सत्रा पृथुं
कुर्यात्० अश्वशफमात्रं कुर्यादित्यु हैक आहुः० यावन्तमेव स्वयं मनसा न सत्रा पृथुं मन्येत
एवं कुर्यात् । तमद्विरभिमृशति सकृद्वा त्रिर्वा० सोऽभिमृशति अग्निष्ठे त्वचं मा हिंसीदिति०
तं पर्यग्निं करोति० त^५ श्रपयति देवस्त्वा सविता श्रपयत्विति० सोऽभिमृशति मा मेर्मा

संविक्था इति० यदा शृतोऽथाऽभिवासयति० सोऽभिवासयति अतमेर्यज्ञोऽतमेर्यजमानस्य प्रजा भूयादिति० अथ पात्रिनिर्णेजनमङ्गुलिप्रणेजनमाप्येभ्यो निनयति० तन्नाना निनयति० तदभितपति तथैषाँ शृतं भवति । स निनयति त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वेति० ॥

[१.७.३.२६-२७]— ०तदाङ्गुराहवनीये हवीँषि श्रपयेयुः० उतो गार्हपत्य एव श्रपयन्ति० ॥

वाकासं [१.८]—

--- स५ रेवतीर्जगतीभिः सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ जन-
यत्यै.... ॥ --- ॥ अग्निष्टे त्वचं मा हि५सीत् ॥ अन्तरित५ रक्षोऽन्तरिता
अरातयः ॥ ---

काशत्रा [२.२.१; २.७.१]—

....अथाऽन्तर्वेदि वोपविशति जघनेन वा गार्हपत्यं.... ॥

असं—

अग्ने चर्य्यज्ञियस्त्वाऽध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांऽश्वस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुमिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥

११.१.१६-१८

परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।

धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥७.७४.१

अपैसं—

अग्ने चरुं....अभिसंहत्य भागमिमे....॥ शुद्धा [आ]पो योषितो.... । ददन्
प्रजां.... पशून् मे.... सुकृतामेति.... ॥ ब्रह्मणा शुद्धा.... सुकृतामेति.... ॥
१६.९०.६-८ परि त्वाऽग्ने.... । भिषग्वर्णं....भङ्गुरावतम् ॥१६.८.२;
१९.२७.३

वेदिकरणम्

तैसं [१.१.९]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः ॥ वायुरसि तिग्मतेजाः ॥
 पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम् ॥ अपहतोऽरुः पृथिव्यै ॥
 ब्रजं गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते द्यौः ॥ बधान देव सवितः परमस्यां
 परावति शतेन पार्श्वेयोऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥
 अपहतोऽरुः पृथिव्यै देवयजन्यै ॥ ब्रजं गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते
 द्यौः ॥ बधान देव.... मा मौक् ॥ अपहतोऽरुः पृथिव्या अदेवयजनः ॥
 ब्रजं गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते द्यौः ॥ बधान देव.... मा मौगरुस्ते
 दिवं मा स्कान् ॥ वसवस्त्वा परि गृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा ॥ रुद्रास्त्वा
 परि गृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा ॥ आदित्यास्त्वा परि गृह्णन्तु जागतेन
 छन्दसा ॥ देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्ति वेधसः ॥ ऋतमसि ॥
 ऋतसदनमसि ॥ ऋतश्रीरसि ॥ धा असि स्वधा अस्युर्वी चाऽसि वस्वी
 चाऽसि पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिन्नुदादाय पृथिवीं जीरदानुर्यामैरयञ्
 चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदृश्य यजन्ते ॥

तैब्रा [३.७.६]—

अयं वेदः पृथिवीमन्वविन्दद्गुहा सतीं गहने गह्वरेषु ।
 स विन्दतु यजमानाय लोकमच्छिद्रं यज्ञं भूरिकर्मा करोतु ॥
 चतुःशिक्षण्डा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका भुवनस्य मध्ये ।
 मर्मृज्यमाना महते सौभगाय मह्यं धुक्ष्व यजमानाय कामान् ॥
 यो मा हृदा मनसा यश्च वाचा यो ब्रह्मणा कर्मणा द्वेष्टि देवाः ।
 यः श्रुतेन हृदयेनेष्णता च तस्येन्द्र वज्रेण शिरश्छिनत्ति ॥
 इदं तस्मै हर्म्यं करोमि यो वो देवाश्चरति ब्रह्मचर्यम् ।
 मेधावी दिक्षु मनसा तपस्वी अन्तर्दूतश्चरति मानुषीषु ॥
 भूमिर्भूत्वा महिमानं पुपोष ततो देवी वर्धयते पयांसि ।
 यज्ञिया यज्ञं वि च यन्ति शं चौषधीराप इह शकरीश्च ॥

तैब्रा [३.७.७.१३]

इमां नराः कृणुत वेदिमेत्य वसुमतीं रुद्रवतीमादित्यवतीम् ।
 वर्षन् दिवो नाभा पृथिव्या यथाऽयं यजमानो न रिष्येत् ॥

तैब्रा [३.२.९-१०]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्मयमादत्ते प्रसूत्यै० स्तम्भयजुर्हरति० द्वितीयं
 हरति० तृतीयं हरति० तूष्णीं चतुर्थं हरति० ते वसवस्त्वेति दक्षिणतः पर्यगृह्णन् ।

रुद्रास्त्वेति पश्चात् । आदित्यास्त्वेत्युत्तरतः० प्राचीमुदीचीं प्रवणां करोति० प्राञ्चौ वेद्यः सावु-
नयति० प्रतीची श्रोणी० उद्वन्ति० मूलं छिनत्ति० स्प्येन छिनत्ति० इयतीं खनति०
चतुरङ्गुलं खनति० आ प्रतिष्ठायै खनति० दक्षिणतो वर्षीयसीं करोति० पुरीषवतीं करोति०
उत्तरं परिग्राहं परिगृह्णाति० ऋतमस्यूतसदनमस्यूतश्रीरसीत्याह० धा असि स्वधा असीति
योजयुष्यते शान्त्यै० प्रोक्षणीरासादय । इध्माबर्हिरुपसादय । स्रुवं च स्रुचश्च संमृड्ढि । पत्नीं
संनह्य । आज्येनोदेहीत्याहाऽनुपूर्वतायै । प्रोक्षणीरासादयति० स्प्यस्य वर्त्मन्सादयति० स्प्यमु-
दस्यन् । यं द्विष्यात्तं ध्यायेत्० पुरस्तात्तिर्यञ्चं धारयति० हस्ताववनेनिके० स्प्यं प्रक्षालयति
मेध्यत्वाय० इध्माबर्हिरुपसादयति युक्त्यै० न पुरस्तात्प्रत्यगुपसादयेत्० पश्चात्प्रागुपसादयति०
दक्षिणमिध्मम् । उत्तरं बर्हिः० ॥

तैशा [३.३.९]—

वेदेन वेदिं विविदुः पृथिवीं सा पप्रथे पृथिवी पार्थिवानि ।

गर्भं बिभर्ति भुवनेष्वन्तस्ततो यज्ञो जायते विश्वदानिः ॥

इति पुरस्तात्तम्बयजुषो वेदेन वेदिः समाह्वनुवित्यै० ॥

तैसं [२.६.४]—

०देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्प्यमा दत्ते० शतभृष्टिरसि वानस्पत्यो द्विषतो वध
इत्याह० त्वाभ्यजुर्हरति० त्रिहरति० तूष्णीं चतुर्थं हरति० उद्वन्ति यदेवाऽस्या अमेध्यं
तदप हन्ति० मूलं छिनत्ति० इयतीं खनति० आ प्रतिष्ठायै खनति० दक्षिणतो वर्षीयसीं
करोति० पुरीषवतीं करोति० उत्तरं परिग्राहं परि गृह्णाति० धा असि स्वधा असीति योजयुष्यते
शान्त्यै० प्रोक्षणीरासादयति० स्प्यस्य वर्त्मन्सादयति० यं द्विष्यात्तं ध्यायेत्० ॥

मैसं [१.१.१०]—

देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामाददे ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः
शततेजाः ॥ वायुस्तिग्मतेजाः ॥ पृथिवि देवयजनि मा हिंसिषं ता ओष-
धीनां मूलम् ॥ व्रजं गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते पर्जन्यः ॥ बधान देव
सवितः शतेन पाशैः परमस्यां परावति यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं
द्विष्मस्तमत्र बधान ॥ सोऽतो मा मोचि ॥ मा वः शिवा ओषधयो मूलं
हिंसिषम् ॥ व्रजं गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते पर्जन्यः ॥ बधान देव
सवितः.... ॥ सोऽतो मा मोचि ॥ द्रप्सस्ते दिवं मा स्कान् ॥ व्रजं
गच्छ गोस्थानम् ॥ वर्षतु ते पर्जन्यः ॥ बधान देव सवितः....सोऽतो मा
मोचि ॥ वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा ॥ रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु
त्रैष्टुभेन छन्दसा ॥ आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसा ॥ अपाऽरुहं

पृथिव्या अदेवयजनम् ॥ सत्यसदस्यूतसदसि धर्मसदसि ॥
 पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिन उदादाय पृथिवीं जीरदानुम् ।
 तामैरयश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासः कवयोऽनुदिश्याऽयजन्त ॥

मैस [४.१.१०]—

० अरुस्ते धां मा पप्तदिति० य एवं विद्वां स्तम्बयजुर्हरति० त्रिः कृत्वो हरति०
 तूष्णीं चतुर्थं हरति० यदेवमेताभिर्देवताभिर्वेदिं परिगृह्णाति० प्राचीमुदीचीं वेदिं प्रवणां
 कुर्यात्० प्राञ्चौ बाहू नयति । आहवनीयं तेन परिगृह्णाति । प्रतीची श्रोणी, गार्हपत्यं
 परिगृह्णाति० स्येन छिनत्ति० ॥

[४.१.१३]—यद्वेदेन वेदिं संमार्ष्टि० ॥

कासं [१.९]—

देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामाददे ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणस्सहस्रभृष्टि-
 श्शततेजाः ॥ वायुरसि तिग्मतेजाः ॥ पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं
 मा हिंसीषम् ॥ व्रजं गच्छ गोस्थानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव
 सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् दिप्सति यं वयं
 दिप्सामस्तमतो मा मौक् ॥ द्रप्सस्ते धां मा स्कान् ॥ व्रजं गच्छ....
 मा मौक् ॥ अरुर्ध्वा मा पप्तत् ॥ व्रजं गच्छ.... मा मौक् ॥ अपाऽरु-
 मदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहि ॥

इमां नरः कृणुत वेदिमेत देवेभ्यो जुष्टामदित्या उपस्थे ।

इमां देवा अजुषन्त विश्वे रायस्पोषा यजमानं विशन्तु ॥

वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु
 त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्द-
 साऽङ्गिरस्वत् ॥ धा असि स्वधा असि ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिन्नुदादाय पृथिवीं जीरदानुम् ।

तामैरयश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदिश्याऽयजन्त कवयः ॥

कासं [३१.८]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्फ्यमादत्ते० यदुद्गन्ति यदेवाऽस्या अमेध्यमयज्ञियं
 तदपहन्ति० यस्यैवं विदुषस्तम्बयजुर्हियते० य एवं विद्वानेताभिर्देवताभिर्वेदिं परिगृह्णाति०
 प्राचीमुदीचीं वेदिं प्रवणां कुर्यात्० प्राञ्चौ बाहू उन्नयति० प्रतीची श्रोणी० न नखेन छिन्धात्०
 स्येन छिनत्ति० ॥

कपिसं [१.९]—

--- व्रजं गच्छ गोष्ठानं --- द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् --- ॥ वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा ॥ रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा ॥ आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसा ॥ पुरा क्रूरस्य अनु-
दृश्याऽयजन्त ॥

कपिसं [४७.८]—

०वायुरसि तिग्मतेजा इत्यधस्तादनुमार्ष्टि० ॥

वासं [१.२४-२८]—

देवस्य त्वा हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि
तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिं०सिषम् ॥
व्रजं गच्छ गोष्ठानम् ॥ वर्षतु ते द्यौः ॥ बधान देव सवितः परमस्यां
पृथिव्यां शतेन पशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥
अपाऽरुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासम् ॥ व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौः ॥
बधान देव ॥ अररो दिवं मा पप्तः ॥ द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् ॥ व्रजं
गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौः ॥ बधान देव ॥ गायत्रेण त्वा छन्दसा
परिगृह्णामि ॥ त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ॥ जागतेन त्वा छन्दसा
परिगृह्णामि ॥ सुक्ष्मा चाऽसि शिवा चाऽसि ॥ स्योना चाऽसि सुषदा
चाऽसि ॥ ऊर्जस्वती चाऽसि पयस्वती च ॥
पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् ।
यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते ॥
प्रोक्षणीरासादय ॥ द्विषतो वधोऽसि ॥

शब्रा [१.२.४-५]—

स यत् स्फ्यमादत्ते० तमादत्ते देवस्य त्वा हस्ताभ्यामाददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इति०
स जपति इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिण इति० द्विषतो वध इति यदि नाऽमिचरेत् । यद्यु अभि-
चरेदमुष्य वध इति ब्रूयात्० स योऽसावग्नीदुत्तरतः पर्येति० अथ तृणमन्तर्धाय प्रहरति० स
प्रहरति पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिं०सिषमिति० व्रजं गच्छ गोष्ठानमित्यभिधास्यन्नेवै-
तदनपक्रमि कुरुते० अथ द्वितीयं प्रहरति अपाऽरुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासमिति० व्रजं गच्छ
.... मा मौक् इति० तमग्नीदभिनिदधाति अररो दिवं मा पप्त इति० अथ तृतीयं प्रहरति
द्रप्सस्ते द्यां मा स्कनिति० स वै त्रिर्यजुषा हरति० तूष्णीं चतुर्थम्० ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य
छन्दोभिरभितः पर्यगृह्णन् गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामीति दक्षिणतः । त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा

परिगृह्णामीति पश्चात् । जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामीत्युत्तरतः० तस्मात् त्र्यङ्गुला वेदिः
 स्यात्० तमनुविद्योत्तरेण परिग्रहेण पर्यगृह्णन् सुक्ष्मा चाऽसि शिवा चाऽसीति दक्षिणतः० स्योना
 चाऽसि सुषदा चाऽसीति पश्चात्० ऊर्जस्वती चाऽसि पयस्वती चेत्युत्तरतः० स वै त्रिः पूर्वं परिग्रहं
 परिगृह्णाति त्रिरुत्तरम्० षड्भिर्व्याहृतिभिः पूर्वं परिग्रहं परिगृह्णाति षड्भिरुत्तरम् । तद् द्वादश-
 कृत्वः० व्याममात्री पश्चात्स्यादित्याहुः० त्र्यरन्निः प्राची । नाऽत्र मात्राऽस्ति । यावतीमेव स्वयं
 मनसा मन्येत तावतीं कुर्यात् । अभितोऽग्निंसा उन्नयति० सा वै पश्चाद्वरीयसी स्यात् ।
 मध्ये सष्टंहारिता पुनः पुरस्तादुर्वी० सा वै प्राक्प्रवणा स्यात्० अथो उदक्प्रवणा० दक्षिणतः
 पुरीषं प्रत्युदूहति० पुरीषवतीं कुर्वीत० स प्रतिमार्ष्टिं पुरा क्रूरस्य विसृपो विरश्चिन्निति०
 अथाऽऽह प्रोक्षणीरासादयेति० उपर्युपर्येव प्रोक्षणीषु धार्यमाणास्वथ स्फ्यमुद्यच्छति । अथैतां वाचं
 वदति प्रोक्षणीरासादयेध्वं बहिरुपसादय स्रुचः संमृड्ढि पत्नीं संनह्याऽऽज्येनोदेहीति । संग्रैष
 एवैषः । स यदि कामयेत । ब्रूयादेतत् । यद्यु कामयेताऽपि नाऽऽद्रियेत० अथोदश्चष्टं स्फ्यं
 प्रहरति अमुष्मे त्वा वज्रं प्रहरामीति यद्यभिचरेत्० अथ पाणी अवनेनित्ते० ॥

वाकासं [१.९]--

देवस्य त्वा.... ॥ द्विषतो वधः ॥ पृथिव्यै वर्माऽसि ॥ पृथिवि देव-
 यजन्योषध्यास्ते.... ॥ अपाऽरुं वध्यासं पृथिव्यै देवयजनात् ॥ ---
 स्वधाभिस्तां धीरासो.... यजन्ते ॥ द्विषतो वधोऽसि ॥

काशात्रा [२.२.२-३] ≡ शत्रा

सुक्संमार्गः पत्नीसंनहनमाज्यग्रहणं च

तैसं [१.१.१०]--

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयोऽग्नेर्वस्तेजिष्ठेन तेजसा निष्टपामि ॥ गोष्ठं
 मा निर्मृशं वाजिनं त्वा सपत्नसाहं सं मार्ज्मि ॥ वाचं प्राणं मा निर्मृशं
 वाजिनीं त्वा सपत्नसाहीं सं मार्ज्मि ॥ चक्षुः श्रोत्रं मा निर्मृशं वाजिनीं
 त्वा सपत्नसाहीं सं मार्ज्मि ॥ प्रजां योनिं मा निर्मृशं वाजिनीं त्वा
 सपत्नसाहीं सं मार्ज्मि ॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं तनूम् ।

अग्नेरेनुव्रता भूत्वा सं नह्ये सुकृताय कम् ॥

सुप्रजसस्त्वा वयं सुपत्नीरूप सेदिम ।

अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥

महीनां पयोऽस्योषधीनां रसस्तस्य तेऽक्षीयमाणस्य निर्वपामि ॥ महीनां पयोऽस्योषधीनां रसोऽदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेक्षे सुप्रजास्त्वाय ॥ तेजोऽसि ॥ तेजोऽनु ग्रेहि ॥ अग्निस्ते तेजो मा वि नैत् ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि सुभृद्देवानां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे भव ॥ शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोऽसि ॥ देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ शुक्रं त्वा शुक्रायां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि ॥ ज्योतिस्त्वा ज्योतिषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि ॥ अर्चिस्त्वाऽर्चिषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि ॥

[१.६.१]—

आज्यमसि सत्यमसि सत्यस्याऽध्यक्षमसि हविरसि वैश्वानरं वैश्वदेवमुत्पूत-
शुष्मं सत्यौजाः सहोऽसि सहमानमसि सहस्वाऽरातीः सहस्वाऽरातीयतः
सहस्व पृतनाः सहस्व पृतन्यतः ॥ सहस्रवीर्यमसि तन्मा जिन्वाऽऽज्य-
स्याऽऽज्यमसि सत्यस्य सत्यमसि सत्यायुरसि सत्यशुष्ममसि सत्येन त्वाऽभि
धारयामि तस्य ते भक्षीय ॥ पञ्चानां त्वा वातानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥
पञ्चानां त्वर्तूनां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा दिशां यन्त्राय
धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥
चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥ ब्रह्मणस्त्वा तेजसे यन्त्राय
धर्त्राय गृह्णामि ॥ क्षत्रस्य त्वौजसे यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥ विशे
त्वा यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ॥ सुवीर्याय त्वा गृह्णामि ॥ सुप्रजास्त्वाय
त्वा गृह्णामि ॥ रायस्पोषाय त्वा गृह्णामि ॥ ब्रह्मवर्चसाय त्वा गृह्णामि ॥
भूरस्माकम् ॥ हविर्देवानाम् ॥ आशिषो यजमानस्य देवानां त्वा देवताभ्यो
गृह्णामि ॥ कामाय त्वा गृह्णामि ॥

तैत्रा [३.३.१-५]—

० सुचः संमार्ष्टि । सुवमग्रे ० अथ जुह्वम् । अथोपभृतम् । अथ ध्रुवाम् ० अग्रत
एवोपरिष्ठात्समृज्यात् । मूलतोऽधस्तात् ० प्राचीमभ्याकारम् । अप्रैरन्तरतः ० अधस्तात्प्रतीचीम् ।
दण्डमुत्तमतः । मूलेन मूलं प्रतिष्ठित्यै ० दिवः शिल्पमवततं पृथिव्याः ककुभि श्रितम् ।
तेन वयं सहस्रबल्येन सपत्नं नाशयामसि स्वाहा इति । सुक्संमार्जानान्यग्नौ प्रहरति ०
अङ्गिर्मार्जयित्वोत्करे न्यस्येत् ० तस्मादेतान्यग्नावेव प्रहरेत् । यतरस्मिन्समृज्यात् ० पत्न्यन्वास्ते ०
आसीना संनह्यते ० देशादक्षिणत उदीच्यन्वास्ते ० योक्त्रमेव युते ० युक्तं क्रियाता आशीः कामे
युज्याता इति ० ग्रन्थिं ग्रह्णाति ० आज्येन प्रचरन्ति ० पत्न्यवेक्षते ० गार्हपत्येऽधिश्चरति मेध्यत्वाय ।

आहवनीयमभ्युद्भवति० स्फ्यस्य वर्त्मन्सादयति० तद्वा अतः पवित्राभ्यामेवोत्पुनाति० पुनराहारम्० त्रिर्यजुषा० अथाऽऽज्यवतीभ्यामपः । यद्यजुषाऽऽज्यं यजुषाऽप उत्पुनीयात्० पच्छो गायत्रिया त्रिः षमृद्धत्वाय० यश्चक्षुषाऽऽज्यमवेक्षते । निमील्याऽवेक्षेत० आज्यं गृह्णाति० चतुर्जुह्वां गृह्णाति० अष्टावुपभृति० चतुर्ध्रुवायाम्० चतुर्जुह्वां गृह्णन् भूयो गृह्णीयात् । अष्टावुपभृति गृह्णन् कनीयः० यज्जुह्वां गृह्णाति । प्रयाजेभ्यस्तत् । यदुपभृति । प्रयाजानूयाजेभ्यस्तत् । सर्वस्मै वा एतद्यज्ञाय गृह्यते । यद् ध्रुवायामाज्यम् ॥

मैसं [१.१.११]—

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाऽरातिः ॥ आयुः प्राणं मा निर्मार्जीः ॥ चक्षुः श्रोत्रं मा निर्मार्जीः ॥ वाचं पशून् मा निर्मार्जीः ॥ यज्ञं प्रजां मा निर्मार्जीः ॥ तेजोऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि ॥ अमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ हविरसि वैश्वानरमुन्नीतशुभ्रं सत्यौजाः ॥ सहोऽसि सहस्वाऽरातिः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्यमसि तन्मा जिन्व ॥ आज्यस्याऽऽज्यमसि हविषो हविः सत्यस्य सत्यं सत्याभिघृतं सत्येन त्वाऽभिघारयामि ॥ अदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेक्षे रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय ॥ धामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं देववीत्यै त्वा गृह्णामि ॥

[१.४.४]—

पञ्चानां त्वा वातानां धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा दिशां धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा सलिलानां धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्राय गृह्णामि ॥ पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्राय गृह्णामि ॥ चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य धर्त्राय गृह्णामि ॥ धामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् । देववीत्यै त्वा गृह्णामि ॥ भूरस्माकम् ॥ हव्यं देवानाम् ॥ आशिषो यजमानस्य देवताभ्यस्त्वा देवताभिर्गृह्णामि ॥

मैसं [४.१.१२]—

०गार्हपत्येऽधिश्रयति । पत्न्यवेक्षते० आहवनीयेऽधिश्रयति० देवस्त्वा सवितोत्पुनाविति० यदाह सत्येन त्वाऽभिघारयामीति० संमील्यैतद्यजुर्वदति । न चक्षुः प्रदधाति इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा । समूढमस्य पांसुरे इति । यदोदनपचनेऽधिश्रित्याऽथ गार्हपत्येऽथाऽऽहवनीयेऽधिश्रयति० प्रत्युष्टं रक्षा इति० स्रुचः संमार्ष्टि० अनिशिताः सपत्नक्षयणीरिति० सुवः संमार्ष्टि० अथ जुहूमथोपभृतमथ ध्रुवाम्० जुहूमग्रे संमार्ष्टि० अथोपभृतम्० अथ ध्रुवाम्० तिरश्चीः संमार्ष्टि० अग्रेण मुखं संमार्ष्टिं जघनेन दण्डम्० अन्तरतो जुहूं प्राचीं

संमार्ष्टि बहिष्ठात्यतीचीम् । बहिष्ठादुपभृतं प्राचीमन्तरतः प्रतीचीम् । सर्वतः समाहार्यं ध्रुवाम् ।
चतुर्गृह्णन्नुह्वा भूया आज्यं गृह्णाति । अष्टौ गृह्णन्नुपभृति कनीयः ॥

मैसं [१.४.९]—

देवान् जनमगन् यज्ञ इति स्कन्नमभिमन्त्रयेत् ० पश्चानां त्वा वातानां धर्त्राय गृह्णामीति ० पश्चानां त्वा दिशां धर्त्राय गृह्णामीति ० पश्चानां त्वा सलिलानां धर्त्राय गृह्णामीति ० पश्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्राय गृह्णामीति ० पश्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्राय गृह्णामीति ० चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य धर्त्राय गृह्णामीति ० धामाऽसि इति ० भूरस्माक् ० यजमानस्येति ० देवताभ्यस्त्वा देवताभिर्गृह्णामीति ० ॥

क्रासं [१.१०]—

पृश्न्याः पयोऽसि ॥ तस्य तेऽक्षीयमाणस्य पिन्वमानस्य पिन्वमानं निर्वपामि ॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।

अग्नेरनुव्रता भूत्वा संनद्ये सुकृताय कम् ॥

अग्ने गृहपत उप मा ह्वयस्व ॥ देवानां पत्नीरुप मा ह्वयध्वम् ॥ अदिति-
रिव त्वा सुपुत्रोपनिषदेयमिन्द्राणीवाऽविधवा ॥ इषे त्वा ॥ अदब्धेन त्वा
चक्षुषाऽवपश्यामि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय ॥ उर्जे त्वा ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि
सुपूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने त्वा यजुषे यजुषे ॥ हविरसि वैश्वानरमुन्नीतशुष्मी
सत्यौजास्सहो नामाऽसि सहस्वाऽश्रतिं सहस्व पृतनायतस्सहस्रवीर्यमसि
तन्मा जिन्व ॥ आज्यस्याऽऽज्यमसि हविषो हविस्सत्याभिघृतमसि सत्येन
त्वाऽभिघारयामि ॥ तेजोऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि ॥ धामाऽसि प्रियं
देवानामनाधृष्टं देवयजनं देवताभ्यस्त्वा यज्ञियेभ्यो गृह्णामि ॥ प्रत्युष्टं
रक्षः प्रत्युष्टाऽश्रतिः ॥ अनिशितास्थ सपत्नक्षयणीः ॥ आयुः प्राणं मा
निर्मृक्षं वाजिनं त्वा वाजिन् वाजयत्यायै संमार्ज्मि ॥ चक्षुः श्रोत्रं मा
निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजयत्यायै संमार्ज्मि ॥ प्रजां योनिं मा
निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजयत्यायै संमार्ज्मि ॥ गोष्ठं यजमानस्य
रायस्पोषं मा निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजयत्यायै संमार्ज्मि ॥

[५.६]—

पश्चानां त्वा वातानां धर्त्रायाऽऽगृह्णामि ॥ पश्चानां त्वा सलिलानां धर्त्रा-
याऽऽगृह्णामि ॥ पश्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्रायाऽऽगृह्णामि ॥ पश्चानां त्वा
दिशां धर्त्रायाऽऽगृह्णामि ॥ पश्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्रायाऽऽगृह्णामि ॥

भूरस्माकम् ॥ हव्यं देवानाम् ॥ आशिषो यजमानस्य ॥ चरोस्त्वा पञ्च-
बिलस्य धर्त्रायाऽऽगृह्णामि ॥ धामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं
देवताभिस्त्वा देवताभ्यो गृह्णामि ॥

कासं [३१.९]—

गार्हपत्येऽधिश्रयति । पत्न्यवेक्षते० आहवनीयेऽधिश्रयति० सुचस्संमार्ष्टि० सुवमग्रे
संमार्ष्टि० अथ जुह्वमयोपभृतमथ ध्रुवाम्० चतुर्जुह्वां गृह्णन् भूय आज्यं गृह्णाति । अष्टौ गृह्णन्नुपभृति
कनीयः० ॥

कपिसं [१.१०]—

पृश्न्याः पयोऽसि ॥ तस्य ते.... ॥ इषे त्वा ॥ अदब्धेन त्वा चक्षुषाऽ-
वपश्यामि ॥ ऊर्जे त्वा ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि सुहृद्देवेभ्यः । धाम्नेधाम्ने त्वा यजुषे-
यजुषे ॥ हविरसि.... तन्मा जिन्व ॥ तेजोऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि ॥
धामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं देववीतये त्वा गृह्णामि ॥
निष्टप्तं रक्षः ॥ अनिशिताः स्थ सपत्नक्षयणीः ॥ प्राणं वाचं मा निर्मृक्षम् ।
वाजिनं त्वा वाजिन् वाजजित्यायै संमार्ज्मि ॥ चक्षुः श्रोत्रं मा निर्मृक्षम् ।
वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजजित्यायै संमार्ज्मि ॥ प्रजां योनिं मा निर्मृक्षम् ।
वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजजित्यायै संमार्ज्मि ॥

कपिसं [४७.९] ≡ कासं

वासं [१.२९-३१]—

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ॥
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्राजिनं त्वा वाजेध्यायै संमार्ज्मि ॥ प्रत्युष्टं
रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ॥ अनिशिताऽसि
सपत्नक्षिद्राजिनीं त्वा वाजेध्यायै संमार्ज्मि ॥ अदित्यै रात्राऽसि ॥ विष्णो-
र्वेषोऽसि ॥ ऊर्जे त्वा ॥ अदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवपश्यामि ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि
सुहृद्देवेभ्यो धाम्नेधाम्ने मे भव यजुषेयजुषे ॥ सवितुस्त्वा प्रसव उत्पु-
नाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्य-
च्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि ॥
धाम नामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥

शम्बा [१.३.१-२]—

स वै सुचः संमार्ष्टि० अथ पात्राणि निर्णेनिजति० अथ सुवमादत्ते । तं प्रतपति

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्ठसं रक्षो निष्ठसा अरातय इति वा० स वा इत्यग्रेरन्तरतः
संमार्ष्टि अनिशितोऽसि सपलक्षिदिति० एतेनैव सर्वाः सुचः संमार्ष्टि वाजिनीं त्वेति
सुचम् । तूष्णीं प्राशित्रहरणम् । स वा इत्यग्रेरन्तरतः संमार्ष्टि मूढैर्बाह्वतः० स वै संमृज्य
संमृज्य प्रतप्य प्रतप्य प्रयच्छति० स वै सुवमेवाऽग्रे संमार्ष्टि । अथेतराः सुचः० स वै तथैव
संमृज्याद्यथाऽग्निं नाऽभिव्युक्षेत्० तद्वैके सुवसंमार्जनान्यग्नावम्यादधति० तदु तथा न कुर्यात्०
तस्मादु परास्येदेवैतानि । अथ पत्नीं संनहति० योक्त्रेण संनहति० स वा अभिवासः
संनहति० स संनहत्यदित्यै रास्नाऽसीति० स वै न ग्रन्थि कुर्यात्० ऊर्ध्वमेवोद्ग्रहति विष्णोर्वेष्पोऽ-
सीति० तस्मादु दक्षिणत इवैवाऽन्वासीत । अथाऽऽज्यमवेक्षते० साऽवेक्षते अदब्धेन त्वा
चक्षुषाऽवपस्यामीति० अग्नेर्जिह्वाऽसीति० अथाऽऽज्यमादाय प्राहुदाद्रवति । तदाहवनीयेऽ-
धिश्नयति यस्याऽऽहवनीये हवींषि श्रपयन्ति० तस्मादु सार्धमेव विलाप्य प्रागुदाहरति अवकाश्य
पत्नीम् । यस्यो पत्नी न भवति अग्र एव तस्याऽऽहवनीयेऽधिश्नयति । तत्तत् आदत्ते ।
तदन्तर्वेद्यासादयति । तदाहुर्नाऽन्तर्वेद्यासादयेत्० तस्मादन्तर्वेधेवाऽऽसादयेत् । प्रोक्षणीषु पवित्रे
भवतः । ते तत् आदत्ते । ताम्यामाज्यमुत्पुनाति० स उत्पुनाति सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्य-
च्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिरिति० अथाऽऽज्यलिप्ताभ्यां पवित्राभ्यां प्रोक्षणीरुत्पुनाति
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिरिति० अथाऽऽज्यमवेक्षते । तद्वैके
यजमानमवल्यापयन्ति० तस्मादध्वर्युरेवाऽवेक्षते० सोऽवेक्षते तेजोऽसि शुक्रमसि अमृतमसीति०
स वै चतुर्जुह्वां गृह्णाति अष्टौ कृत्व उपभृति० स वै चतुर्जुह्वां गृह्णन् भूय आज्यं गृह्णाति ।
अष्टौ कृत्व उपभृति गृह्णन् कनीय आज्यं गृह्णाति० अथ यच्चतुर्ध्रुवायां गृह्णाति० स गृह्णाति
धाम नामाऽसि प्रियं देवानामिति० स एतेन यजुषा सकृज्जुह्वां गृह्णाति त्रिस्तूष्णीम् । एतेनैव
यजुषा सकृदुपभृति गृह्णाति सप्तकृत्वस्तूष्णीम् । एतेनैव यजुषा सकृद् ध्रुवायां गृह्णाति
त्रिस्तूष्णीम् । तदाहुर्बिब्रिरेव यजुषा गृह्णीयात्० तदु नु सकृत्सकृदेव० ॥

वाकासं [१.१०]—

प्रत्युष्टं रक्षः.... ॥ --- अदित्यै रास्नाऽसि ॥ इन्द्राण्यै संनहनम् ॥
विष्णोर्वेष्पोऽसि ॥ --- ॥ अग्नेर्जिह्वाऽसि सुभूदेवेभ्यो धाम्ने धाम्ने भव
यजुषे यजुषे ॥ --- ॥ देवानामनाष्टृष्टं देवयजनम् ॥
यस्ते प्राणः पशुषु प्रविष्टो देवानां विष्टामनु यो वितस्थे ।
आत्मन्वान्तसोम घृतवान् हि भूत्वाऽग्निं गच्छ स्वर्गजमानाय विन्द ॥

काशत्रा [२.२.४-२.३.१] ≡ शत्रा

असं—

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।

पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वाऽमृताय कम् ॥१४.१.४२
 घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
 घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने ॥७.८७.६

अपैसं—

आशासाना सौमनसं प्रजां बह्वीमथो बलम् ।
 इन्द्राण्या [अ]नुव्रता सं नह्ये अमृताय कम् ॥२०.३४.१४
 घृतं ते.... । घृतं ते देवा [अ]प्या वहन्तु.... दुहते.... ॥२०.३२.२

बर्हिस्तास्तरणं सुगासादनं च

तैसं [१.१.११]—

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्रये त्वा स्वाहा ॥ वेदिरसि बर्हिषे त्वा स्वाहा ॥
 बर्हिरसि सुग्भ्यस्त्वा स्वाहा ॥ दिवे त्वा ॥ अन्तरिक्षाय त्वा ॥ पृथिव्यै
 त्वा ॥ स्वधा पितृभ्य ऊर्गभव बर्हिषद्भ्य ऊर्जा पृथिवीं गच्छत ॥ विष्णोः
 स्तूपोऽसि ॥ ऊर्णाभ्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः ॥ गन्धर्वोऽसि
 विश्वावसुर्विंशस्मादीषतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि
 दक्षिणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परि
 धत्तां ध्रुवेण धर्मणा यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ सूर्यस्त्वा पुरस्तात्
 पातु कस्याश्चिदभिश्चस्त्याः ॥ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तः समिधीमह्यग्ने
 बृहन्तमध्वरे ॥ विशो यन्त्रे स्थः ॥ वसुना रुद्राणामादित्याना सदसि
 सीद ॥ जुहूरसि घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥
 उपभृदसि घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥ ध्रुवाऽसि
 घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥ एता असदन्तुसुकृतस्य
 लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञनियम् ॥

[१.६.२]—

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहः सजातेषु भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवित् ॥ उग्रोऽस्यु-
 ग्रोऽहः सजातेषु भूयासमुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ अभिभूरस्यभिभूरहः सजातेषु
 भूयासमभिभूश्चेत्ता वसुवित् ॥
 युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायाऽस्मै वोढवे जातवेदः ।
 इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते ॥

तैत्रा [३.७.६]—

ऊर्णामृदु प्रथमानं स्योनं देवेभ्यो जुष्टं सदनाय बर्हिः ।
 सुवर्गे लोके यजमानं हि धेहि मां नाकस्य पृष्ठे परमे व्योमन् ॥
 चतुःशिखण्डा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
 सा स्तीर्यमाणा महते सौभगाय सा मे धुक्ष्व यजमानाय कामान् ॥
 शिवा च मे शग्मा चैधि । स्योना च मे सुषदा चैधि । ऊर्जस्वती च
 मे पयस्वती चैधि ॥ इषमूर्जं मे पिन्वस्व । ब्रह्म तेजो मे पिन्वस्व ।
 क्षत्रमोजो मे पिन्वस्व । विशं पुष्टिं मे पिन्वस्व । आयुरन्नाद्यं मे पिन्वस्व ।
 प्रजां पशून् मे पिन्वस्व ॥
 अस्मिन् यज्ञ उप भूय इन्नु मेऽविक्षोभाय परिधीन् दधामि ।
 धर्ता धरुणो धरीयानग्निर्द्वेषांसि निरितो नुदातै ॥
 विच्छिनन्नि विधृतीभ्यां सपत्नान् जातान् भ्रातृव्यान् ये च जनिष्यमाणाः ।
 विशो यन्त्राभ्यां विधमाम्येनानहं स्वानामुत्तमोऽसानि देवाः ॥
 विशो यन्त्रे नुदमाने अरातिं विश्वं पाप्मानममर्तिं दुर्मरायुम् ।
 सीदन्ती देवी सुकृतस्य लोके धृती स्थो विधृती स्वधृती ।
 प्राणान् मयि धारयतं प्रजां मयि धारयतं पशून् मयि धारयतम् ॥
 अयं प्रस्तर उभयस्य धर्ता धर्ता प्रयाजानामुत्तमोऽनूयाजानाम् ।
 स दाधार समिधो विश्वरूपास्तस्मिन्सुचो अध्यासादयामि ॥
 आरोह पथो जुहु देवयानान् यत्रर्षयः प्रथमजा ये पुराणाः ।
 हिरण्यपक्षाजिरा संभृताङ्गा बहासि मा सुकृतां यत्र लोकाः ॥
 अवाऽहं बाध उपभृता सपत्नान् जातान् भ्रातृव्यान् ये च जनिष्यमाणाः ।
 दोहं यज्ञं सुदुधामिव धेनुमहमुत्तरो भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥
 यो मा वाचा मनसा दुर्मरायुर्हृदाऽरातीयादभिदासदग्ने ।
 इदमस्य चित्तमधरं ध्रुवाया अहमुत्तरो भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥
 ऋषभोऽसि शाकरो घृताचीनां स्रुः प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥
 स्योनो मे सीद सुषदः पृथिव्यां प्रथयि प्रजया पशुभिः सुवर्गे लोके ।
 दिवि सीद पृथिव्यामन्तरिक्षेऽहमुत्तरो भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥
 इयं स्थाली घृतस्य पूर्णाऽच्छिन्नपयाः शतधार उत्सः ।
 मारुतेन शर्मणा दैव्येन ॥

तैत्रा [३.३.६]—

० प्रोक्षिताः स्थेत्याह । तेनाऽऽपः प्रोक्षिताः ० दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेति बर्हिःसाद्य प्रोक्षति ० अथ ततः सह सुचा पुरस्तात्प्रत्यञ्चं ग्रन्थिं प्रत्युक्षति ० ऊर्ध्वं बर्हिषद्भ्य इति दक्षिणायै श्रोणेरोत्तरस्यै निनयति संतत्यै ० ग्रन्थिं विस्रंसयति ० ऊर्ध्वं प्राञ्चमुद्रूढं प्रत्यञ्चमायच्छति ० पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति ० इयन्तं गृह्णाति ० अपरिमितं गृह्णाति ० तस्मिन् पवित्रे अपिसृजति ० बर्हिः स्तृणाति ० अनतिदृश्रं स्तृणाति ० धारयन् प्रस्तरं परिधीन् परिदधाति ० उदीचीनाग्रे निदधाति प्रतिष्ठित्यै ॥

तैसं [२.६.५-६]—

इध्माबर्हिः प्रोक्षति ० वेदिं प्रोक्षति ० दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेति बर्हिःसाद्य प्रोक्षति ० पुरस्तात् प्रस्तरं गृह्णाति ० इयन्तं गृह्णाति ० बर्हिः स्तृणाति ० अनतिदृश्रं स्तृणाति ० उत्तरं बर्हिषः प्रस्तरं सादयति ० परिधीन् परि दधाति ० सःस्पर्शयति ० न पुरस्तात्परि दधाति ० ऊर्ध्वं समिधावा दधाति ० यजुषाऽन्यां तूष्णीमन्याम् ० द्वे आ दधाति ० ॥

मैसं [१.१.११-१२]—

देवीरापः शुद्धा यूयं देवान् युयुध्वं शुद्धा वयं सुपरिविष्टाः परिवेष्टारो वो भूयास्म ॥ कृष्णोऽस्याखरेष्टा अग्नये घृतं भव ॥ वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ बर्हिरसि वेद्यै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ स्वाहा पितृभ्यो घर्मपावभ्यः ॥ पूषा ते ग्रन्थिं विण्यतु ॥ विष्णोः स्तुपोऽसि ॥ उरु प्रथस्वोर्णम्रदम् ॥ स्वासस्थं देवेभ्यः ॥ गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मादीषमाणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्ता यजमानस्य परिधिरसीड ईडितः ॥ नित्यहोतारं त्वा कवे द्युमन्तः समिधीमहि ॥ वर्षिष्ठे अधि नाके पृथिव्याः ॥ सूर्यस्त्वा रश्मिभिः पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिःशस्त्याः ॥ विश्वजनस्य विधृती स्थः ॥ वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदोऽसि सुचा योनिः ॥ द्यौरसि जन्मना जुहूर्नाम प्रिया देवानां प्रियेण नाम्ना ध्रुवे सदसि सीद ॥ अन्तरिक्षमसि जन्मनोपभृन्नाम प्रिया देवानां प्रियेण नाम्ना ध्रुवे सदसि सीद ॥ पृथिव्यसि जन्मना ध्रुवा नाम प्रिया देवानां प्रियेण नाम्ना ध्रुवे सदसि सीद ॥ ऋषभोऽसि शाकरो वषट्कारस्य त्वा मात्रायां सादयामि ॥ ध्रुवा असदन्तृतस्य योनौ सकृत्तस्य लोके ता विष्णो पाहि । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मा यज्ञन्यम् ॥ विष्णूनि स्थ वैष्णवानि धामानि स्थ प्राजापत्यानि ॥

[१.४.१]—

युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायाऽस्मै वोढवे जातवेदः ।

इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते ॥

मैसं [४.१.१३]—

बह्वीरासादयेत् । यावतीर्वै प्रोक्षणीरासादयति० तस्माद्बह्वीरासाद्याः० कृष्णोऽस्या-
खरेष्ठा अग्नये घृतं भवेति० वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति० यदुपरिष्ठात्
प्रोक्ष्याऽधस्तात्प्रोक्षति० ऊर्जा पृथिवीं यच्छतेति० विष्णोः स्तुपोऽसीति मुखतः प्रस्तरं गृह्णाति ।
यावद्भस्तेन पर्याप्नुयात्तावन्तं गृह्णीयात्० नोर्ध्वमुन्मृज्यात्० नाऽवाचीनमवमृज्यात्० न विधू-
नुयात्० दक्षिणतः शुल्बं स्तृणाति० उरु प्रथस्वोर्णम्रदमिति प्रथयत्येवैनत्० प्रस्तरं धारयन्
परिधीन् परिदधाति० न पुरस्तात्परिदधाति० ऊर्ध्वं समिधा आदधाति० द्वे आदधाति
मिथुनत्वाय । विधृती स्था इति विधृती एवैने करोति । अदित्यास्त्वोपस्थे सादयामीति० ॥

[१.४.५]—युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेति परिधिषु परिधीयमाणेषु वदेत्० ॥

कासं [१.११]—

देवीरापो अग्रेगुवः प्रेमं यज्ञं नयत प्र यज्ञपतिं तिरत युष्मानिन्द्रोऽवृणीत
वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षितास्थ्य ॥ कृष्णोऽस्याखरेष्ठा
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ बर्हिरसि
सुगम्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ पितृणां भागधेयीस्स्थोर्जा पृथिवीं गच्छत ॥
विष्णोस्तुपोऽसि ॥ ऊर्णम्रदः प्रथस्व स्वासस्थं देवेभ्यः ॥ गन्धर्वोऽसि
विश्वावसुर्विश्वस्मादीपतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि
दक्षिणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वा परिधत्तां
ध्रुवेण धर्मणेड ईडितम् ॥ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तस्समिधीमहि । अग्रे
बृहन्तमध्वरे ॥ सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्याः ॥ वर्षिष्ठेऽधि
नाके ॥ सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणिः ॥ वसूनां रुद्राणामा-
दित्यानी सदनमसि ॥ जुह्वेहि घृताची द्यौर्जन्मनाऽदितिरच्छिन्नपत्रा
प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥ उपभृदेहि घृताच्य-
न्तरिक्षं जन्मनाऽदितिं.... सदसि सीद ॥ ध्रुव एहि घृताची पृथिवी
जन्मनाऽदितिं.... सदसि सीद ॥ ऋषभोऽसि शाकरो वायुर्जन्मनाऽ-
दितिरच्छिन्नपत्रः प्रियो देवानां.... सदसि सीद ॥ ध्रुवा असदन्नृतस्य
योनौ सुकृतस्य लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि
मां यज्ञन्यम् ॥

[४.१४]—युनज्मि त्वा.... ॥

[३१.१४]—

स्योनो मे सीद सुषदः पृथिव्यामुरुः पृथुः प्रथमानस्स्वर्गे ।

सुवोऽसि घृतादनिशितस्सपत्नक्षयणो दिवि सीदाऽन्तरिक्षे

पृथिव्यामुत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥

आरोह पथो जुहुं देवयानान् यत्रर्षयो जग्मुः प्रथमाः पुराणाः ।

हिरण्यपक्षाऽजिरा संभृताङ्गा वहीसि सा सुकृतां यत्र लोक

उत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥

अवाऽहं बाध उपभृता द्विषन्तं जातान् भ्रातृव्यान् ये च जनिष्यमाणाः ।

दुहे यज्ञं सुदुधामिव धेनुमुत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥

यो नो वाचा मनसा दुर्हणायुर्हृदाऽरातीयन्नभिदासदग्रे ।

इदमस्य चित्तमधरं ध्रुवाया उत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥

यन्मे अग्रे अस्य यज्ञस्य रिष्याद्यद्वा स्कन्दादाज्यस्योत विष्णो ।

तेन हन्मि सपत्नं दुर्हणायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थे ॥

स्तृणीत बर्हिः परिधत्त वेदिं चमि मा हिंसीरमुया शयानाम् ।

दमैस्स्तृणीत हरितैस्सुवर्णैर्निष्का एते यजमानस्य सन्तु ॥

अस्मिन् मे यज्ञ उप भूयो अस्त्वविक्षोधाय परिधीन् दधामि ।

धर्ता विधर्ता धरुणो धरीयान् विश्वा द्वेष्सीसि वीतो नुदन्ताम् ॥

चतुश्शिखण्डा युवतिस्सुपत्नी विनीयमाना महते सौभगाय ।

घृतं दुहानाऽदितिर्जनाय सा मे धुक्ष्व सर्वान् भूतिकामान् ॥

वेदेन वेदिं विविदुः पृथिव्यां सा पप्रथे पृथिवी पार्थिवाय ।

गर्भं विभर्ति भुवनेष्वन्तस्ततो यज्ञस्तायते विश्वदानीम् ॥

विशो यन्त्री नुदमाने अरार्तिं विश्वं जातमरणं दुर्हणायुम् ।

सीदन्ती देवी सुकृतस्य लोके विश्वा द्वेष्सीसि वीतो नुदेताम् ॥

कासं [३१.१०]—

० प्रोक्षणीरासादयति० तस्माद्बह्वीरासाद्याः । पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति० यावद्धस्तेन पर्याप्नुयात्तावन्तं गृह्णीयात्० न विधूनुयात्० न प्रमृज्यात्० दक्षिणतस्संनहनी स्तृणाति० प्रस्तरं धारयन् परिधीन् परिदधाति० सीहितान् परिधीन् परिदधाति० न पुरस्तात्परिदधाति० ऊर्ध्वं समिधा आदधाति० ॥

[३१.१५]—युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेति परिधिषु परिधीयमानेषु वदति ॥

कपिसं [१.११]—

देवीरापो अग्नेवः प्रेमं यज्ञं नयत.... ॥ कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टां प्रोक्षामि ॥ --- ॥ ऊर्णम्रदं प्रथस्व.... ॥ गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मा-
द्वषतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिण इड
ईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वा परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा ॥ वीतिहोत्रं त्वाऽग्रे.... ॥
--- ॥ सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणी ॥ --- ॥ ध्रुव एहि.... सदसि
सीद ॥ ध्रुवा असदन्तृतस्य योनौ । ता विष्णो पाहि.... यज्ञन्यम् ॥

[४७.१०] ≡ कासं

वासं [२.१-६]—

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां
प्रोक्षामि ॥ बर्हिरसि सुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ अदित्यै व्युन्दनमसि ॥
विष्णो स्तुपोऽसि ॥ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः ॥
गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्याऽरिष्ट्यै यजमानस्य परिधिर-
स्यग्निरिड ईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्याऽरिष्ट्यै.... ॥
मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्याऽरिष्ट्यै.... ॥
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं^५ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमंघ्वरे ॥ समिदसि ॥
सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिश्चस्त्यै ॥ सवितुर्बाहू स्थः ॥ ऊर्ण-
म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः ॥ आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः
सदन्तु ॥ घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं^५ सद आसीद ॥
घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना.... ॥ घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना.... ॥ ध्रुवा असदन्तृतस्य
योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥

शत्रा [१.३.३-४]—

प्रोक्षणीरध्वर्युरादत्ते । स इधमेवाऽग्ने प्रोक्षति कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं
प्रोक्षामीति० अथ वेदिं प्रोक्षति वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामीति० अथाऽस्मै बर्हिः
प्रयच्छति । तत्पुरस्ताद्ग्रन्थ्यासादयति । तत्प्रोक्षति बर्हिरसि सुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति०
अथ याः प्रोक्ष्यः परिशिष्यन्ते तामिरोषधीनां मूलान्युपनिनयति अदित्यै व्युन्दनमसीति० अथ
विश्वस्य ग्रन्थि पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति विष्णो स्तुपोऽसीति० अथ संनहनं विस्रष्टस्यति०
तस्मादक्षिणायाश्च श्रोणौ निदधाति । तत्पुनरभिच्छादयति० अथ बर्हिं स्तृणाति० तद्वै बहुलं

स्तृणीयादित्याहुः० त्रिवृत्स्तृणाति० अथो अपि प्रबर्हं स्तृणीयात्० अधरमूलं स्तृणाति० स स्तृणाति ऊर्णन्नदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्य इति० अथाऽग्निं कल्पयति० उपर्युपरि प्रस्तरं धारयन् कल्पयति० अथ परिधीन् परिदधाति० तद्वैके इध्मस्यैवैतान् परिधीन् परिदधाति । तद् त्वा न कुर्यात्० तस्मादन्यानेवाऽऽहरेयुः० ते वै पालाशाः स्युः० यदि पालाशान् विन्देदयो अपि वैकङ्कताः स्युः० यदि वैकङ्कतान् विन्देदयो अपि कूर्ष्मर्ममयाः स्युः० यदि कूर्ष्मर्ममयान् विन्देदयो अपि बैल्वाः स्युः । अथो खादिरा अथो औदुम्बराः । एते हि वृक्षा यज्ञियाः० ते वा आर्द्राः स्युः० स मध्यमेवाऽग्ने परिधिं परिदधाति गन्धर्वस्त्वा.... ईडित इति । अथ दक्षिणं परिदधाति इन्द्रस्य बाहुरसि.... ईडित इति । अथोत्तरं परिदधाति मित्रावरुणौ.... ईडित इति० अथ समिधमभ्यादधाति । स मध्यमेवाऽग्ने परिधिमुपस्पृशति० सोऽभ्यादधाति वीतिहोत्रं त्वा.... अचरे इति० अथ यां द्वितीयां समिधमभ्यादधाति० सोऽभ्यादधाति समिदसीति० अथाऽभ्याधाय जपति सूर्यस्त्वा.... अभिशस्त्या इति० अथ यामेवाऽमूं तृतीयां समिधमभ्यादधाति अनुयाजेषु० अथ स्तीर्णां वेदिमुपावर्तते । स द्वे तृणे आदाय तिरश्ची निदधाति सवितुर्बाहू स्थ इति० तत्रप्रस्तरं स्तृणाति ऊर्णन्नदसं.... देवेभ्य इति० तमभिनिदधाति आ त्वा.... सदन्विति । अभिनिहित एव सव्येन पाणिना भवति० अथ दक्षिणेन जुहुं प्रतिगृह्णाति० अथ जुहुं प्रतिगृह्णाति घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना.... इति० घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना... इत्युपभृतम्० घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना.... इति ध्रुवाम्० स वा उपरि जुहुं सादयति अध इतराः स्रुचः० सोऽभिमृशति ध्रुवा असदन्.... इति० तच्चजमानमाह पाहि मां यज्ञन्यमिति० ॥

वाकासं [२.१]—

--- ॥ परिधिरस्यग्निरिच्छ ईच्छितः ॥ --- ॥ घृताच्यसि जुहूर्नाम सेदं प्रियेण.... प्रिये सदसि सीद ॥ घृताच्यस्युपभृन्नाम.... प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥ घृताच्यसि ध्रुवा नाम.... प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥ ---

काशत्रा [२.३.२] ≡ शत्रा

असं—

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जार्मि मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥७.१०४.१
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥१२.१.२७
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥१६.२.६

अपैसं—

यस्यां.... ध्रुवास्तिष्ठन्तु विश्वहा । भूमिं हिरण्यवक्षसं.... ॥१७.३.८

गोत्रा [१.३.७-१०]—यत्पुरस्ताद्वेदेः प्रथमं बर्हिं स्तृणाति० यदपरमिव प्रस्तर-
मनुप्रस्तृणाति० ।

[२.१.१]—परिधीन् परिधत्ते० ॥

हविरासादनम्

तैत्रा [३.७.५]—

स्योनं ते सदनं करोमि घृतस्य धारया सुशेवं कल्पयामि ।
तस्मिन्त्सीदाऽमृते प्रतितिष्ठ ब्रीहीणां मेघ सुमनस्यमानः ॥
इदमहं सेनाया अभीत्वयै मुखमपोहामि ॥ सूर्य ज्योतिर्विभाहि महत
इन्द्रियाय ॥ आप्यायतां घृतयोनिर्ग्रिह्व्याऽनुमन्यताम् । खमङ्क्ष्व त्वच-
मङ्क्ष्व सुरूपं त्वा वसुविदं पशूनां तेजसाऽग्रये जुष्टमभिधारयामि ॥
आर्द्रः प्रथस्नुर्भुवनस्य गोपाः शृत उत्स्नाति जनिता मतीनाम् ॥
यस्त आत्मा पशुषु प्रविष्टो देवानां विष्ठामनु यो वितस्थे ।
आत्मन्वान्तसोम घृतवान् हि भूत्वा देवान् गच्छ सुवर्विन्द यजमानाय मद्यम् ॥
इरा भूतिः पृथिव्यै रसो मोत्क्रमीत् ॥

तैसं [१.६.२]—

यन्मे अग्रे अस्य यज्ञस्य रिष्याद्यद्वा स्कन्दादाज्यस्योत विष्णो ।
तेन हन्मि सपत्नं दुर्मरायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थे ॥ भूर्भुवः सुवः ॥

तैत्रा [३.७.६]—

यज्ञोऽसि सर्वतः श्रितः सर्वतो मां भूतं भविष्यच्छ्रयतां शतं मे
सन्त्वाशिषः सहस्रं मे सन्तु स्रुता इरावतीः पशुमतीः ॥ प्रजापतिरसि
सर्वतः श्रितः सर्वतो मां भूतं भविष्यच्छ्रयतां शतं मे सन्त्वाशिषः सहस्रं
मे सन्तु स्रुता इरावतीः पशुमतीः ॥ यो नः कनीय इह कामयाता
अस्मिन् यज्ञे यजमानाय मद्यम् । अप तमिन्द्राग्नी भुवनानुदेतामहं प्रजां

वीरवर्ती विदेय ॥ इदमिन्द्रियममृतं वीर्यमनेनेन्द्राय पशवोऽचिकित्सन् ।
तेन देवा अवतोपमामिहेषमूर्जं यशः सह ओजः सनेयं शृतं मयि श्रयताम् ॥
यत्पृथिवीमचरत्तत्प्रविष्टं येनाऽसिञ्चद्वलमिन्द्रे प्रजापतिः । इदं तच्छुक्रं
मधु वाजिनीवधेनोपरिष्ठादधिनोन्महेन्द्रम् । दधि मां धिनोतु ॥ अयं यज्ञः
समसदद्भविष्मानृचा साम्ना यजुषा देवताभिः । तेन लोकान्तसूर्यवतो
जयेमेन्द्रस्य सख्यममृतत्वमश्याम् ॥

तैसं [२.६.३]—अभिघार्योद्वासयति० संख्यायोद्वासयति० ॥

मैसं [१.४.८]—यद्वेदेन पुरोडाशं संमार्ष्टि० यद्वेदेन वेद्यामास्ते० ॥

[१.५.१२]—एतेनैव हवींष्यासन्नान्यभिमृशेत्० ॥

कासं [३१.१४]—

यो नः कनिष्ठमिह कामयाता अस्मिन् यज्ञे यजमानाय मह्यम् ।
अप तमिन्द्राग्नी भुवनान्नुदेतां प्रजां विदेय वाजवर्ती सुवीराम् ॥
अयं वेदः पृथिवीमन्वविन्दद्गुहा हितां गह्वरेषु ।
स मह्यं लोकं यजमानाय विन्दत्वच्छिद्रं यज्ञं भूरिरेताः कृणोतु ॥

आधारादिप्रवरान्तम्

तैसं [१.१.१२]—

भुवनमसि वि प्रथस्वाऽग्रे यष्टरिदं नमः ॥ जुह्वेद्यग्निस्त्वा ह्वयति देव-
यज्यायै ॥ उपभृदेहि देवस्त्वा सविता ह्वयति देवयज्यायै ॥ अग्नाविष्णू-
मा वामव क्रमिषं वि जिहाथां मा मा सं ताप्तं लोकं मे लोककृतौ
कृणुतम् ॥ विष्णोः स्थानमसि ॥ इत इन्द्रो अकृणोद्वीर्याणि समारभ्योर्ध्वो
अध्वरो दिविस्पृशमहुतो यज्ञो यज्ञपतेरिन्द्रावान्त्स्वाहा ॥ बृहद्वाः ॥
पाहि माऽग्रे दुश्चरितादा मा सुचरिते भज ॥ मखस्य शिरोऽसि सं ज्योतिषा
ज्योतिरङ्काम् ॥

[१.६.२]—

उच्छुष्मो अग्रे यजमानायैधि निशुष्मो अभिदासते । अग्रे देवेद्भ मन्विद्भ
मन्द्रजिह्व ॥ अमर्त्यस्य ते होतर्मूर्धन्ना जिघर्षिं रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय

सुवीर्याय ॥ मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाऽऽविश ॥ वागस्थैन्द्री
सपत्नक्षयणी वाचा मेन्द्रियेणाऽऽविश ॥

तैत्रा [३.७.६.१४]—

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजं जेष्यन्तं वाजिनं वाजजितं वाज-
जित्यायै संमाज्ज्यग्निमन्नादमन्नादाय ॥

[३.७.५]—

देवाः पितरः पितरो देवा योऽहमस्मि स सन् यजे । यस्याऽस्मि न तमन्त-
रेमि स्वं म इष्टं स्वं दत्तं स्वं पूतं स्वं श्रान्तं स्वं हुतम् । तस्य
मेऽग्निरुपद्रष्टा वायुरुपश्रोताऽऽदित्योऽनुख्याता द्यौः पिता पृथिवी माता
प्राजापतिर्बन्धुर्य एवाऽस्मि स सन् यजे ॥

तैत्रा [३.३.७]—

अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहीत्याह० एकविंशतिमिध्मदारूणि भवन्ति० पञ्चदशे-
ध्मदारूप्यभ्यादधाति० त्रीन् परिधीन् परिदधाति । ऊर्ध्वं समिधावादधाति । अनूयाजेभ्यः
समिधमतिशिनष्टि० वेदेनोपवाजयति० त्रिरुपवाजयति० वेदेनोपयत्य सुवेण प्राजापत्यमाधार-
माधारयति० अग्निमग्नीत्रिभिः संमृढ्ढीत्याह० परिधीन्संमार्ष्टि० त्रिभिः संमार्ष्टि० आसीनोऽन्य-
माधारमाधारयति । तिष्ठन्नन्यम्० असंस्पर्शयन्नत्याक्रामति० आधारमाधार्य ध्रुवां समनक्ति०
त्रिरेव समञ्ज्यात्० ॥

तैसं [२.५.११]—

०यत्तूष्णीमाधारमाधारयति० मनसाऽऽधारयति० तिर्यश्चमाधारयति० मनसा प्राजा-
पतये जुह्वति० परिधीन्सं मार्ष्टि० त्रिमध्यमम्० त्रिर्दक्षिणार्घ्यम्० त्रिरुत्तरार्घ्यम्० त्रिरुप वाजयति०
आधारमा धारयति० ऋजुमा धारयति० संततमा धारयति० आधारमाधार्य ध्रुवां समनक्ति०
एतद्वि ब्रूहीत्या श्रावयेति० अग्निर्देवो होतेति० प्रवरं प्रवृणते० ॥

मैसं [१.१.१३]—

सूयमे मेऽद्य स्तं स्वावृतौ स्रपावृतौ ॥ अग्राविष्णू विजिहाथाम् । मा मा
हिसिष्टम् । लोकं मे लोककृतौ कृणुतम् । मा मोदोषिष्टमात्मानं मे पातम् ।
शिवौ भवतमद्य नः ॥ विष्णोः स्थामाऽसि ॥ इत इन्द्रस्तिष्ठन् वीर्यम-
कृणोद्देवताभिः समारभ्य ॥ ऊर्ध्वोऽध्वरो दिविस्पृगहुतो यज्ञो यज्ञपतेः ।
इन्द्रवान्तस्ववान् बृहद्भाः । वीहि मधोर्ध्वतस्य स्वाहा ॥ सं ज्योतिषा
ज्योतिः ॥

[४.१.१४]—भुवनमसि इति भूतिमाशास्ते० विप्रथस्वेति प्रथयत्येवैनत्० जुह्वेद्यभिष्ट्वा ह्वयति देवान् यक्ष्यावो देवयज्यायै ॥ उपभृदेहि देवस्त्वा सविता ह्वयति देवान् यक्ष्यावो देवयज्यायै इति० विष्णोः क्रमोऽसीत्यतिक्रामति० ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगहुतो यज्ञो यज्ञपतेरित्युजुमूर्ध्वमाधारमाधारयति० वसुमतस्ते छायामुपस्थेषमिति० यदाधारमाधार्योपभृता समञ्ज्यात्० आज्यधान्या समनक्ति समक्तमग्निना हविः समक्तं हविषा घृतमिति० ॥

[१.४.१२]—०पूर्वार्धे होतव्यः० मध्यतो होतव्यः० आधारं भूयिष्ठमाहुतीनां जुहुयात्० संततमाधारमाधारयेत्० ऊर्ध्वमाधारमाधारयेत् स्वर्गकामस्य० अभिक्रामन्ती वा एकाऽऽहुतिरपक्रामन्त्येका प्रतिष्ठितैका । यामभिक्रामं जुहोति साऽभिक्रामन्ती यामपक्रामं जुहोति साऽपक्रामन्ती या० समानत्र तिष्ठन् जुहोति सा प्रतिष्ठिता । यं कामयेताऽभितरं वसीयाञ्ज्रेयान्त्यादिति तस्याऽभिक्रामं जुहुयात्० अथ यं कामयेताऽपतरं पापीयान्त्यादिति तस्याऽपक्रामं जुहुयात्० अथ यं कामयेत न वसीयान्त्यान् पापीयानिति तस्य समानत्र तिष्ठन् जुहुयात्० ॥

कासं [१.१२]—

भुवनमसि वि प्रथस्वाऽग्निर्यष्टेदं नमः ॥ जुह्वेद्यभिस्त्वा ह्वयति देवयज्यायै ॥ उपभृदेहि देवस्त्वा सविता ह्वयति देवयज्यायै ॥ अङ्घ्रिणा विष्णू मा वामवक्रमिषम् ॥ पाहि माऽग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भज । विजिहाथां मा मा संताप्तं लोकं मे लोककृतौ कृणुतम् ॥ विष्णोस्स्थान्न इत इन्द्रो वीर्यमकृणोत् । ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगहुतो यज्ञो यज्ञपतेः । इन्द्रवान् बृहद्भास्स्वाहा ॥ सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥

[४.१४]—

अङ्गिरसो माऽस्य यज्ञस्य प्रथमानुवाकैरवन्तु ॥ समिद्धो अग्निराहुतस्स्वाहाकृतः पिपर्तु नः ॥ मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाऽऽविश ॥ वागस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी वाचामिन्द्रियेणाऽऽविश ॥ देवाः पितरः पितरो देवा योऽस्मि स सन् यजे । तद्वः प्रब्रवीमि तस्य मे वित्तं स्वं म इष्टमस्तु शुनं शान्तीं स्वं कृतम् ॥

[३१.११; १५]—०अङ्गिरसो माऽस्य यज्ञस्य प्रथमानुवाकैरवन्त्विति सामिधेनीनामेवैष योगः० समिद्धो अग्निराहुत इति समिद्धिरेवैषा० तत्प्रवरं प्रवृणाने ब्रूयाद्देवाः पितरः पितरो देवा योऽस्मि स सन् यज इति० ॥

कपिसं [१.१२] --- ॥ जुह्वेद्यभिस्त्वा ह्वयतु देवयज्यायै ॥ ---

[४७.११] ≡ कासं

वास [२.७-९]—

अग्ने वाजजिद्राजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं^५ संमार्जिम् ॥ नमो देवेभ्यः
स्वधा पितृभ्यः ॥ सुयमे मे भूयास्तम् ॥ अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यं^५
संभ्रियासम् ॥ अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाऽवक्रमिषम् ॥ वसुमतीमग्ने ते
च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसि ॥ इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर
आस्थात् ॥ अग्ने वेहोत्रं वेदूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावा-
पृथिवी स्विष्टकृदेवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा ॥ सं ज्योतिषा
ज्योतिः ॥

शब्रा [१.४.४; १.५.१]—

स यदुपा^५ंशु क्रियते तन्मनो देवेभ्यो यज्ञं वहति । अथ यद्राचा निरुक्तं क्रियते ।
तद्राक् देवेभ्यो यज्ञं वहति । सुवेण तमाधारयति० यं मनस आधारयति० सुचा तमाधारयति यं
वाच आधारयति० तूष्णीं तमाधारयति यं मनस आधारयति० न स्वाहेति चन० मन्त्रेण तमा-
धारयति यं वाच आधारयति० आसीनस्तमाधारयति यं मनस आधारयति० तिष्ठन्तं यं वाचे०
तस्मादक्षिणतस्तिष्ठन्नाधारयति० स सुवेण पूर्वमाधारमाधार्याऽऽह अग्निमग्नीत्संमृड्ढि इति० अथ
संमार्ष्टि० युक्तो देवेभ्यो यज्ञं वहति० परिक्राम^५ संमार्ष्टि० त्रिभिः संमार्ष्टि० स संमार्ष्टि अग्ने
वाजजिद्राजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं^५ संमार्जिम् इति० अथोपरिष्टातूष्णीं त्रिः० स सुचोत्तर-
माधारमाधारयिष्यन् पूर्वेण सुचावज्जलिं निदधाति नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्य इति० सुयमे
मे भूयास्तम् इति सुचावादत्ते० अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यं^५ संभ्रियासम् इति० अङ्घ्रिणा विष्णो
मा त्वाऽवक्रमिषम् इति० वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषमिति० विष्णो स्थानमसि इति० इत
इन्द्रो वीर्यमकृणोदिति० अग्ने वेहोत्रं.... आज्येन हविषा भूत् स्वाहेति० अथाऽस^५स्पर्शय-
न्सुचौ पर्येत्य ध्रुवया समनक्ति० स समनक्ति सं ज्योतिषा ज्योतिरिति० स वै प्रवरायाऽऽ-
श्रावयति० स इध्मसंनहनान्येवाऽभिपद्याऽऽश्रावयति० तद्वैके वेदेः स्तीर्णायै बर्हिर्भिमद्याऽऽश्राव-
यन्ति इध्मस्य वा शकलमपच्छिद्याऽभिपद्याऽऽश्रावयन्ति० तदु तथा न कुर्यात्० इध्मसंनहना-
न्येवाऽभिपद्याऽऽश्रावयेत्० स आश्राव्य य एव देवानां होता तमेवाऽग्ने प्रवृणीतेऽग्निमेव० स
आह अग्निर्देवो दैव्यो होता इति० देवान् यक्षद्विद्रा^५श्चिकित्वानिति० मनुष्वद् भरतवदिति०
अथाऽऽर्षेयं प्रवृणीते० परस्तादर्वाक् प्रवृणीते० स आर्षेयमुक्त्वाऽऽह ब्रह्मण्वदिति० ब्राह्मणा अस्य
यज्ञस्य प्रावितार इति० असौ मानुष इति तदिमं मानुषं होतारं प्रवृणीते० ॥

[११.२.३.६]—०स यं मनस आधारयति० अथ यं वाच आधारयति० ॥

[११.२.४.९]—तद्वैके चरू निर्वपन्ति पौर्णमास्या^५ सरस्वतेऽमावास्याया^५
सरस्वत्यै । एतत् प्रत्यक्षं दर्शपूर्णमासौ यजामह इति वदन्तः । तदु तथा न कुर्यात्० ॥

वाकासं [२.२]—

--- ॥ अस्कन्नमद्याऽऽज्यं देवेभ्यस्संभ्रियासम् ॥ --

काशत्रा [२.४.२-३] ≡ शत्रा

असं—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान । ॥७.८५.३

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी ।

रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥६.५.२

देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ॥

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥

नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु ।

विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥६.१२३.३-५

अपैसं—

प्रजापते नहि त्वद्(एतान्य्)अन्यो विश्वा रूपाणि मतिना ? जजान ।

.... ॥२०.३१.१० ॥ सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१९.३.१४ ॥

.... योऽस्मि सोऽस्मि सोऽयमस्मि ॥ प्रशजामि शतजामि मेजते स्य ? ।

संमैष्णवस्तुष्णोश् ? शान्तं शिवं कृतं तस्मान् मावयम् ? ॥ --- ॥

१६.५१.८-१० ॥

गोत्रा [१.३.७-१०]—यदाधारौ दीर्घतरौ प्राञ्चावाधारयति० [२.१.१]—

परिधीन्त्संमार्ष्टि० त्रिर्मध्यमम्० त्रिर्दक्षिणार्ध्यम्० त्रिरुत्तरार्ध्यम्० त्रिरुपवाजयति० ॥

सामिधेन्यादिप्रवरान्तं हौत्रम्

ऋसं—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनाऽसुराँ अभि देवा असाम ।

ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम हौत्रं जुषध्वम् ॥ १०.५३.४

प्र वो वाजा अभिघवो हविष्मन्तो घृताच्या ।

देवाञ्जिगाति सुम्रयुः ॥ ३.२७.१

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥
 स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥६.१६.१०-१२
 ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिष्यते वृषा ॥
 वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥
 वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३.२७.१३-१५
 अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१.१२.१
 समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥३.२७.४
 समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥
 आ जुहोता दुवस्यताऽग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥५.२८.५-६
 सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१०.१५८.१
 नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
 यजाम देवान् यदि शक्रवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥१.२७.१३
 विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
 प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥१०.५२.१
 अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
 यजामहै यज्ञियान् हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥१०.५३.२
 तदद्य वाचः प्रथमं मसीय.... ॥१०.५३.४

तैब्रा [३.५.१-४]—

सत्यं प्रपद्य ऋतं प्रपद्येऽमृतं प्रपद्ये प्रजापतेः प्रियां तनुवमनार्तो प्रपद्ये ॥
 इदमहं पञ्चदशेन वज्रेण द्विषन्तं भ्रातृव्यमवक्रामामि योऽस्मान् द्वेष्टि
 यं च वयं द्विष्मः ॥ भूर्भुवः सुवः ॥ हिम् ॥ प्र वो वाजा अभिद्यवो.... ॥
 अग्न आ याहि वीतये.... ॥ तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो.... ॥ स नः पृथु
 श्रवाय्य°.... ॥ ईडेन्यो नमस्य°.... ॥ वृषो अग्निः समिध्यते.... ॥ वृषणं
 त्वा वयं वृषन् वृषाणः समिधीमहि । ॥ अग्निं दूतं वृणीमहे.... ॥
 समिध्यमानो अध्वरे.... ॥ समिद्धो अग्न आहुत.... ॥ आजुहोत दुवस्य-
 ताऽग्नि.... ॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
 त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
 अग्ने महा५ असि ब्राह्मण भारत ॥ असावसौ ॥ देवेद्धो मन्विद्ध ऋषिष्ठतो
 विप्रानुमदितः कविशस्तो ब्रह्मस५शितो घृताहवनः ॥ प्रणीर्यज्ञानाम् ॥

स्थीरध्वराणाम् ॥ अतूर्तो होता तूर्णिर्हव्यवाद ॥ आस्यात्र जुहूर्देवानां
चमसो देवपानोऽरा५ इवाऽग्ने नेमिर्देवा५ स्त्वं परिभूरस्यावह देवान् यज-
मानाय ॥ अग्निमग्न आवह ॥ सोममावह ॥ अग्निमावह ॥ प्रजापतिमावह^१ ॥
अग्नीषोमावावह^२ ॥ इन्द्राग्नी आवह^३ ॥ इन्द्रमावह^४ ॥ महेन्द्रमावह^५ ॥
देवा५ आज्यपा५ आवह ॥ अग्नि५ होत्रायाऽऽवह ॥ स्वं महिमानमावह ॥
आ चाऽग्ने देवान् वह सुयजा च यज जातवेदः ॥ अग्निर्होता वेत्त्वग्निर्होत्रं
वेत्तु ग्रावित्र५ स्मो वय५ साधु ते यजमान देवता ॥ घृतवतीमध्वर्यो
सुचमास्यस्व देवायुवं विश्ववारामीडामहै देवा५ ईडेन्यान् नमस्याम
नमस्यान् यजाम यज्ञियान् ॥

तैसं [२.५.७-११]—

० हिं करोति । सामैवाऽकः० त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्० संततमन्वाह०
राथन्तरीं प्रथमामन्वाह० त्रिर्विं गृह्णाति० बार्हतीमुत्तमामन्वाह० प्र वो वाजा इत्यनिरुक्तां
प्राजापत्यामन्वाह० यं कामयेत सर्वमायुरियादिति प्र वो वाजा इति तस्याऽनुच्याऽग्न आ याहि
वीतय इति संततमुत्तरमर्धर्चमालमेत० अर्धर्चौ सं दधाति० पञ्चदश सामिधेनीरन्वाह० आर्षेयं
वृणीते० परस्तादर्वाचो वृणीते० अग्निर्होतेत्याह० यद्ब्रूयाद्योऽग्नि५ होतारमवृथा इत्यग्निनो-
भयतो यजमानं परि गृह्णीयात् प्रमायुकः स्यात्० त्री५ स्तृचाननुब्रूयाद्राजन्यस्य० पञ्चदशाऽनु-
ब्रूयाद्राजन्यस्य० त्रिष्टुभा परि दध्यात्० यदि कामयेत ब्रह्मवर्चसमस्त्विति गायत्रिया परि दध्यात्०
सप्तदशाऽनुब्रूयाद्वैश्यस्य० जगत्या परि दध्यात्० एकवि५ शतिमनुब्रूयात् प्रतिष्ठाकामस्य०
चतुर्वि५ शतिमनुब्रूयाद्ब्रह्मवर्चसकामस्य० त्रि५ शतमनुब्रूयादन्नकामस्य० द्वात्रि५ शतमनुब्रूयात्प्रतिष्ठा-
कामस्य० षट्त्रि५ शतमनुब्रूयात् पशुकामस्य० चतुश्चत्वारि५ शतमनुब्रूयादिन्द्रियकामस्य०
अष्टाचत्वारि५ शतमनुब्रूयात् पशुकामस्य० सर्वाणि ञ्छन्दा५ स्यनुब्रूयाद्बहुयाजिनः० अपरिमित-
मनुब्रूयात्० निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवानाम् । उप व्ययते देवलक्ष्ममेव
तत् कुरुते । तिष्ठन्नन्वाह । तिष्ठन् ह्याश्रुततरं वदति० आसीनो यजति० यत्कौश्चमन्वाहाऽऽ-
सुरं तत् । यन्मन्द्रं मानुषं तत् । यदन्तरा तत्सदेवम् । अन्तराऽनुच्य५ सदेवत्वाय० अन्तर्वैद्यन्यः
पादो भवति बहिवैद्यन्यः० ॥

शत्रा [१.३.५-१.४.३]—

० स^१ आह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहीति० तदु हैक आहुः अग्नये समिध्यमानाय

१. पूर्णमासेष्टयां २. दर्शेष्टयामसंनयतः ३. दर्शेष्टयां संनयतः ४. दर्शेष्टयां संनयतो
यजमानस्य यदि महेन्द्रयाजी स्यात् ५. अध्वर्युः

होतरनुब्रूहीति । तदु तथा न ब्रूयात् । आग्नेयीरन्वाह । गायत्रीरन्वाह । एकादशाऽन्वाह । स वै त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुक्तमाम् । ताः पञ्चदश सामिधेन्यः संपद्यन्ते । तस्मादेतास्वनूच्य-
मानासु यं द्विष्यात्तमङ्गुष्ठान्यामववाधेत इदमहममुमववाधे इति । सप्तदश सामिधेनीरिष्ट्या अनु-
ब्रूयात् । उपांशु तस्यै देवतायै यजति यस्या इष्टिं निर्वपति । एकविंशतिं सामिधेनीरपि
दर्शपूर्णमासयोरनुब्रूयादित्याहुः । ता हैता गतश्रेरेवाऽनुब्रूयात् । त्रिरेव प्रथमां त्रिरुक्तमामनवानन्ननु-
ब्रूयात् । स यावदस्य वशः स्यादेवमेवाऽनुविवक्षेत् । स यद्येतन्नोदाशं सेत अप्येकैकामेवाऽनवान-
न्ननुब्रूयात् । ता वै संजता अव्यवच्छिन्ना अन्वाह । हिंकृत्याऽन्वाह । स वा उपांशु हिं करोति ।
स वा एति च प्रेति चाऽन्वाह । सोऽन्वाह प्र वो वाजा अभिघव इति । तन्न प्रेति भवति ।
अग्न आ याहि वीतय इति । तद्वेति भवति । तं त्वा समिद्धिरङ्गिर इति । स नः पृथु
श्रवाय्यमिति । सोऽन्वाह ईडेन्यो नमस्य इति । वृषो अग्निः समिध्यत इति । वृषणं त्वा....समिधी-
महीति । सोऽन्वाह अग्निं दूतं वृणीमह इति । तदु हैकेऽन्वाहुः होता यो विश्ववेदस इति । तदु
तथा न ब्रूयात् । तस्माद्यथैवर्चाऽनूक्तमेवाऽनुब्रूयाद्धोतारं विश्ववेदसमित्येव । तद्वैके पुरस्ताद्वाय्ये
दधति । तदु तथा न कुर्यात् । तस्मादुपरिष्ठादेव धाय्ये दध्यात् । समिध्यमानो अघ्वर इति ।
समिद्धो अग्न आहुत इति । अतः प्राचीनं सर्वमिधमम्यादध्यात् यदन्यत्समिधः । आजुहोता
दुवस्यत । अग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनमिति । अग्ने महारं असि ब्राह्मण भारत
इति । अथाऽऽर्षेयं प्रवृणीते । परस्तादर्वाक् प्रवृणीते । स आर्षेयमुक्त्वाऽऽह देवेद्धो मन्विद्ध इति ।
ऋषिष्टुत इति । विप्रानुमदित इति । कविशस्त इति । ब्रह्मसंशित इति । प्रणीर्यज्ञानां
रथीरध्वराणांमिति । अदूर्तो होता तूर्णिर्हव्यवाडिति । आस्पात्रं जुहूदेवानामिति । चमसो
देवपान इति । अरारं इवाऽग्ने नेभिर्देवांस्त्वं परिभूरसीति । आवह देवान् यजमानायेति ।
अग्निमग्न आवहेति । सोममावहेति । अग्निमावहेति । अथ यथादेवतं देवारं आज्यपारं
आवहेति । अग्निं होत्रायाऽऽवहेति । स्वं महिमानमावहेति । आ च वह जातवेदः सुयजा च
यज इति । स वै तिष्ठन्नन्वाह । आसीनो याज्यां यजति । स यद्येनं प्रथमायां सामिधेन्यामनु-
व्याहरेत्तं प्रति ब्रूयात् प्राणं वा एतदात्मनोऽग्नावाधाः प्राणेनाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यसीति । यदि
द्वितीयस्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयादपानं वा एतदात्मनोऽग्नावाधा अपानेनाऽऽत्मन आर्तिमारिष्य-
सीति । यदि तृतीयस्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयादुदानं वा एतदात्मनोऽग्नावाधा उदानेनाऽऽत्मन
आर्तिमारिष्यसीति । यदि चतुर्थ्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयाच्छ्रोत्रं वा एतदात्मनोऽग्नावाधाः श्रोत्रे-
णाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यसि बधिरो भविष्यसीति । यदि पञ्चम्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयाद्वाचं वा
एतदात्मनोऽग्नावाधा वाचाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यसि मूको भविष्यसीति । यदि षष्ठ्यामनुव्याहरेत्तं
प्रति ब्रूयान्मनो वा एतदात्मनोऽग्नावाधा मनसाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यसि मनोमुषिगृहीतो मोमुघ-
श्चरिष्यसीति । यदि सप्तम्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयाच्छुर्वा एतदात्मनोऽग्नावाधाश्चक्षुषाऽऽत्मन

आर्तिमारिष्यस्यन्धो भविष्यसीति० यद्यष्टम्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयान्मध्यं वा एतत्प्राणमात्मनोऽ-
ग्नावाधा मध्येन प्राणेनाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यस्युद्धमाय मरिष्यसीति० यदि नवम्यामनुव्याहरेत्तं
प्रति ब्रूयाच्छिश्रं वा एतदात्मनोऽग्नावाधाः शिश्वेनाऽऽत्मन आर्तिमारिष्यसि क्लीबो भविष्यसीति०
यदि दशम्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयादवाश्रं वा एतत्प्राणमात्मनोऽग्नावाधा अवाचा प्राणेनाऽऽत्मन
आर्तिमारिष्यस्यपिनद्धो मरिष्यसीति० यद्येकादश्यामनुव्याहरेत्तं प्रति ब्रूयात्सर्वं वा एतदात्मान-
मग्नावाधाः सर्वेणाऽऽत्मनाऽऽर्तिमारिष्यसि क्षिप्रेऽमुं लोकमेष्यसीति० ॥

[१.५.१-२]—०स प्रवृत्तो होता जपति, देवता उपधावति० तत्र जपति
एतत्त्वा देव सवितर्वृणत इति० अग्निं होत्रायेति० सह पित्रा वैश्वानरेणेति० अग्ने पूषन्
बृहस्पते प्र च वद प्र च यजेति० वसूनां रातौ स्याम रुद्राणामुर्व्यां स्वादित्या अदितये
स्यामाऽनेहस इति० जुष्टामद्य देवेभ्यो वाचमुद्यासमिति० जुष्टां ब्रह्मभ्य इति० जुष्टानरा-
शंसयेति० यदद्य होतृवर्यं जिह्वं चक्षुः परापतत् । अग्निष्टत् पुनराभियाज्जातवेदा विचर्षणि-
रिति० अथाऽध्वर्युं चाऽऽग्नीध्रं च संमृशति० तत्र जपति षण्मोर्वीरं हसस्पान्तु अग्निश्च पृथिवी
चाऽऽपश्च वातश्चाऽहश्च रात्रिश्चेति० अथ होतृषदनमुपावर्तते । स होतृषदनादेकं तृणं निरस्यति
निरस्तः परावसुरिति० अथ होतृषदन उपविशति इदमहमर्वावसोः सदने सीदामीति० तत्र
जपति विश्वकर्मस्तनूपा असि मा मोदोषिष्ठं मा मा हिंसिष्टमेष वां लोक इति । उदङ्ङे-
जति । अन्तरा वा एतदाहवनीयं च गार्हपत्यं चाऽऽस्ते० अथाऽग्नीमिक्षमाणो जपति विश्वे देवाः
शास्तन मा यथेह होता वृत्तो मनवै यन्निषद्य । प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा
हव्यमा वो वहानीति० अग्निर्होता वेत्वग्नेर्होत्रमिति० वेत्तु प्रावित्रमिति० साधु ते यजमान
देवता इति० घृतवतीमध्वर्यो सुचमास्यस्व इति० देवयुवं विश्ववारामिति० ईडामहै देवा ई
ईडेन्यान्नमस्याम नमस्यान् यजाम यज्ञियानिति० ॥

[११.२.१]—ता वा एता एकादश सामिधेनीरन्वाह० तासामेकादशानां त्रिः
प्रथमामन्वाह । त्रिरुत्तमाम् । ताः पञ्चदश सामिधेन्यः० ॥

काशात्रा [२.३.३-४; २.४.१; ३; ४] ≡ शत्रा

शात्रा [३.२-३]—

अथ यत्पुरस्तात्सामिधेनीनां जपति० हिङ्कृत्य सामिधेनीरन्वाह० त्रिर्हिं करोति०
एकादश सामिधेनीरन्वाह० त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया । पञ्चदश संपद्यन्ते० ता वै गायत्र्यो
भवन्ति० उत्तमायै तृतीये वचने प्रणवेन निगदमुपसंदधात्यग्ने महौ असि ब्राह्मण भारतेति०
अथ यद्यजमानस्याऽऽर्वेयमाह० अथैतं पञ्चदशपदं निगदमुपसंदधाति० पञ्चदश हि सामिधेन्यः०

तस्य सप्त पदानि समस्याऽवस्थेत्० अथ चत्वार्यथ चत्वारि० अथ यद्वयवग्राहं देवता आवाह-
यति० अथ यदग्निमग्निनाऽऽवाहयति० यदाहाऽग्निमग्न आवहेति० अथ यदेवाँ आज्यपाँ आवाह-
यति० अथ यदग्निं होत्रायाऽऽवाहयति० अथ यत्त्वं महिमानमावाहयति० आ च वह जातवेदः
सुयजा च यजेत्याह० अथ यत्पुरस्तात्सामिधेनीनां जपति० पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च । अथ यत् सुगा-
दापनेन सुचावादापयति० ॥

असं—

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४.२३.१

अपैसं [४.३३.१] ≡ असं

गोत्रा [१.३.९]—यजपं जपित्वाऽभिहिंङ्कणोति ० यत्सामिधेनीः संतन्वन्नन्वाह
० यत् सामिधेन्यः काष्ठहविषो भवन्ति० ॥

प्रयाजा आज्यभागौ च

तैसं [२.६.१-२]—

समिधो यजति० तनूनपातं यजति० इडो यजति० बर्हिर्यजति० स्वाहाकारं
यजति० समानयत उपभृतः० अभिक्रामं जुहोति० प्रयाजानिष्ट्वा हवींष्यभि धारयति०
चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ पूर्वाधे जुहोति० प्रबाहुग् जुहोति० उत्तरार्धेऽग्नये जुहोति
दक्षिणार्धे सोमाय० अग्नीषोमावन्तरा देवता इज्येते० ॥

तैसं [१.६.११]—

आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं, यजेति द्व्यक्षरं, ये यजामह इति
पञ्चाक्षरं, द्व्यक्षरो वषट्कारः ॥

तैसं [१.६.२]—

वसन्तमृतूनां ग्रीणामि स मा ग्रीतः ग्रीणातु ॥ ग्रीष्ममृतूनां ग्रीणामि स
मा ग्रीतः ग्रीणातु ॥ वर्षा ऋतूनां ग्रीणामि ता मा ग्रीताः ग्रीणन्तु ॥
शरदमृतूनां ग्रीणामि सा मा ग्रीता ग्रीणातु ॥ हेमन्तशिशिरावृतूनां ग्रीणामि
तौ मा ग्रीतौ ग्रीणीताम् ॥ अग्नीषोमयोरहं देवयज्यया चक्षुष्मान् भूयासम् ॥

मैसं [१.४.१२-१३]—

० ऋतवो वै प्रयाजाः । समानत्र होतव्याः० याऽग्नेराज्यभागस्य सोत्तरार्धे होतव्या०

या सोमस्याऽऽज्यभागस्य सा दक्षिणार्धे होतव्या० एतद्वा अन्तराऽऽहुतीनां लोकः० उमै ज्योतिष्मति होतव्ये० व्यूषतेव होतव्यम्० यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा व्यायेत्० पशवो वा आहुतयो रुद्रोऽग्निः स्विष्टकृत् । न सह होतव्यम्० ॥

कासं [४.१४]—

वसन्तमृतूनां ग्रीणामि स मा ग्रीतः ग्रीणातु । वसन्तस्याऽहं देवयज्ययोर्ज-
स्वान् पयस्वान् भूयासम् ॥ ग्रीष्ममृतूनां ग्रीणामि स मा ग्रीतः ग्रीणातु ।
ग्रीष्मस्याऽहं देवयज्ययौजस्वीस्तेजस्वान् भूयासम् ॥ वर्षा ऋतूनां ग्रीणामि
ता मा ग्रीताः ग्रीणन्तु । वर्षाणामहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान्
भूयासम् ॥ शरदमृतूनां ग्रीणामि सा मा ग्रीता ग्रीणातु । शरदोऽहं
देवयज्ययाऽन्नवान् वर्चस्वान् भूयासम् ॥ हेमन्तमृतूनां ग्रीणामि स मा
ग्रीतः ग्रीणातु । हेमन्तस्याऽहं देवयज्यया सहस्वान् वीर्यावान् भूयासम् ॥

[५.१]—

अग्नीषोमाभ्यां यज्ञश्चक्षुष्मीस्तयोरहं देवयज्यया चक्षुषा चक्षुष्मान् भूयासम् ॥

[३१.१५]—वसन्तमृतूनां ग्रीणामीति । पञ्च वा ऋतवः० ॥

शब्रा [१.५.३-४]—

ऋतवो ह वै प्रयाजाः । तस्मात्पञ्च भवन्ति० ते वा आज्यहविषो भवन्ति० स
यत्रैव तिष्ठन् प्रयाजेभ्य आश्रावयेत्त एव नाऽपक्रामेत्० तस्मादभितरामभितरामेव क्रामेदभि-
तरामभितरामाहुतीर्जुहुयात् । तदु तथा न कुर्यात् । यत्रैव तिष्ठन् प्रयाजेभ्य आश्रावयेत्त एव
नाऽपक्रामेत्० यत्रो एव समिद्धतमं मन्येत तदाहुतीर्जुहुयात्० स आश्राव्याऽऽह समिधो यज इति०
अथ यज यज इत्येवोत्तरानाह० स वै समिधो यजति१० अथ तनूनपातं यजति१० अथेडो
यजति१० अथ बर्हिर्यजति१० अथ स्वाहा स्वाहेति यजति१० स वै व्यन्तु वेत्विति यजति१०
अथ चतुर्थे प्रयाजे समानयति बर्हिषि० स वा अनवमृशन्तसमानयति० अथोत्तरां जुहुमध्यूहति०
अथ यथादेवतं स्वाहा देवा आज्यपा इति० तस्मादुत्तमं प्रयाजमिष्ट्वा यथापूर्वम् हवींश्च्यभि-
धारयति० तस्माद्यस्य कस्य च हविषोऽवद्यति पुनरेव तदभिधारयति, अथ यदा स्विष्ट-
कृतेऽवद्यति न ततः पुनरभिधारयति । नो हि ततः कांचन हविषोऽग्रावाहुतिं होष्यन्
भवति० तस्मात्प्रथमे प्रयाज इष्टे ब्रूयात् एको मम इति । एका तस्य यमहं द्वेष्मि इति ।
यशु न द्विष्यात् योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति ब्रूयात् । द्वौ मम इति द्वितीये
प्रयाजे । द्वे तस्य । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति । त्रयो ममेति तृतीये प्रयाजे ।

तिष्ठस्तस्य । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति । चत्वारो मम इति चतुर्थे प्रयाजे । चतस्रस्तस्य । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति । पञ्च ममेति पञ्चमे प्रयाजे । न तस्य किञ्चन । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति० ॥

[१.६.१]—स यद्येनं पुरस्ताद्यज्ञस्याऽनुव्याहरेत् तं प्रति ब्रूयान्मुख्यामार्तिमारिष्य-
स्यन्धो वा बधिरो वा भविष्यसीति० यदि मय्यतो यज्ञस्याऽनुव्याहरेत् तं प्रति ब्रूयादप्रजा
अपशुर्भविष्यसीति० यद्यन्ततो यज्ञस्याऽनुव्याहरेत् तं प्रति ब्रूयादप्रतिष्ठितो दरिद्रः क्षिप्रेऽमुं
लोकमेष्यसीति० ॥

[१.६.३]—० तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्निर्वपन्ति, तत्पुरस्तादाज्यभागा-
वग्नीषोमाभ्यां यजन्ति । तन्न सौम्येऽध्वरे न पशौ० अग्नीषोमयोरेवाऽऽज्यभागावग्नीषोमयोऽरुपाँशु-
याजोऽग्नीषोमयोः पुरोडाशः० ऋचमनूच्य जुषाणेन यजति^१, ऋचमनूच्य ऋचा यजति^१०
उपाँश्व्राज्यस्य यजत्युच्चैः पुरोडाशस्य० तस्मात्तस्याऽनुष्टुभमनुवाक्यामन्वाह^१० चक्षुषी ह वा एते
यज्ञस्य यदाज्यभागौ । तस्मात्पुरस्ताज्जुहोति० उत्तरार्धपूर्वार्धे हैक आग्नेयमाज्यभागं जुहति ।
दक्षिणार्धपूर्वार्धे सौम्यमाज्यभागम्० तदु तदा अविज्ञान्यमिव० यत्रो एव समिद्धतमं मन्येत
तदाहुतीर्जुहुयात्० स वा ऋचमनूच्य जुषाणेन यजति^१० ॥

[११.४.२]—

अथाऽतः सुचोरादानस्य । तद्वैतदेके कुशला मन्यमाना दक्षिणेनैव जुहूमाददते
सव्येनोपभृतम् । न तथा कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । उभाम्यामेव पाणिभ्यां जुहूं परिगृह्योपभृत्यधि-
निदध्यात्० ते असँशिक्षयन्नाददीत० अथाऽतोऽतिक्रमणस्य । वज्रेण ह वा अन्योऽध्वर्युर्यज-
मानस्य पशून् विधमति । वज्रेण हाऽस्मा अन्य उपसमूहति । एष ह वा अध्वर्युर्वज्रेण यजमानस्य
पशून् विधमति य आश्रावयिष्यन् दक्षिणेनाऽतिक्रामति सव्येनाऽऽश्राव्य । अथ हाऽस्मा एष
उपसमूहति य आश्रावयिष्यन् सव्येनाऽतिक्रामति दक्षिणेनाऽऽश्राव्य । एष हाऽस्मा उपसमूहति ।
अथाऽतो धारणस्य । तद्वैतदेके कुशला मन्यमानाः प्रगृह्य बाहू सुचौ धारयन्ति । न तथा
कुर्यात्० तस्मादु तमुपन्यच्चेवैव धारयेत् । अथाऽत आश्रावणस्य । षड् ह वा आश्रावितानि
न्यक् तिर्यक् ऊर्ध्वं कृपणं बहिःश्रि अन्तःश्रि० स वै मन्द्रमिवोरसि परास्तस्य उभयतो बर्हित-
मुच्चैरन्ततो निदध्यात्० अथाऽतो होमस्य । तद्वैतदेके कुशला मन्यमानाः प्राचीं सुचमुपावह्य
हुत्वा पर्याहृत्योपभृत्यधिनिदधति । न तथा कुर्यात्० पार्श्वत उ हैके सुचमुपावह्य हुत्वा पर्या-
हृत्योपभृत्यधिनिदधति । न तथा कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । प्राचीमेव सुचमुपावह्य हुत्वा
तेनैवाऽधिहृत्योपभृत्यधिनिदध्यात्० ॥

[११.२.७.११]—

स प्रथमं प्रयाजमनुमन्त्रयते त्विषिमान् भूयासमिति । अपचितिमान् भूयासमिति द्वितीयम् । यशस्वी भूयासमिति तृतीयम् । ब्रह्मवर्चसी भूयासमिति चतुर्थम् । अत्रादो भूयास-
मिति पञ्चमम् ॥

काशत्रा [२.५.१-३; २.६.१; १३.४.२; १३.२.१.१०] ≡ शत्रा

ऐत्रा [७.१२]—अन्तरेण गार्हपत्याहवनीयौ होष्यन् संचरेत० ॥

असं—

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षाः स्विते नो दधात ।

आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्वः शरणे स्याम ॥६.५५.२

अहं जजान पृथिवीश्रुत द्यामहमृतं रजनयं सप्त सिन्धून् ।

अहं सत्यमनृतं यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥६.६१.३

अपैसं—

वसन्तो ग्रीष्मो मधुमन्तो वर्षाः शरद्धेमन्तः ऋतवो नो जुषन्ताम् ।

आ नो गोषु विशन्त्वा प्रजायां शर्मण्येषां त्रिवरूथे स्याम ॥१.१०६.३

गोत्रा [१.३.७-१०]—

यच्चतुर्थे प्रयाजे समानयति० ०द्वावाज्यभागावाग्नेय आज्यभागानां प्रथमः सौम्यो
द्वितीयः० ॥

प्रयाजाज्यभागहौत्रम्

ऋसं^१—

^१अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥६.१६.३४

^२त्वं सोमाऽसि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि ऋतुः ॥१.९१.५

^३अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥८.४४.१२

^४सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृच्छीको न आ विशः ॥१.९१.११

तैत्रा [३.५.५-६]—

समिधो अग्र आज्यस्य वियन्तु ॥ तनूतपादग्र आज्यस्य वेतु ॥ इडो

अग्र आज्यस्य वियन्तु ॥ बर्हिरग्र आज्यस्य वेतु ॥ स्वाहाऽग्निः स्वाहा

सोमः स्वाहाऽग्निः^१ स्वाहा प्रजापतिः स्वाहाऽग्निषोमौ^२ स्वाहेन्द्राग्नीः^३
स्वाहेन्द्रः^४ स्वाहा महेन्द्रः^५ स्वाहा देवाः आज्यपाः स्वाहाऽग्निः होत्रा-
ज्जुषाणा अग्न आज्यस्य वियन्तु ॥ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्.... ॥ जुषाणो
अग्निराज्यस्य वेतु ॥ त्वः सोमाऽसि सत्पतिः^६.... ॥ जुषाणः सोम आज्यस्य
हविषो वेतु ॥ अग्निः प्रत्नेन जन्मना.... ॥ जुषाणो अग्निराज्यस्य वेतु ॥
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं.... ॥ जुषाणः सोम आज्यस्य हविषो वेतु ॥

तैसं [२.५.२]—तस्माद्वात्रेजी पूर्णमासेऽनूच्येते वृधन्वती अमावास्यायाम् ॥

[२.६.२]—ऋचमनूच्याऽऽज्यभागस्य जुषाणेन यजति ॥

शान्ना [१.५.२]—

० स यदाश्रावयति ० अथ यत् प्रत्याश्रावयति ० सोऽनुब्रूहीत्येवोक्त्वाऽध्वर्युर्नाऽपव्या-
हरेन्नो एव होताऽपव्याहरेत् । आश्रावयत्यध्वर्युस्तदग्नीधं यज्ञ उपावर्तते । सोऽग्नीन्नाऽपव्याहरेत्
आप्रत्याश्रावणात् ० सोऽध्वर्युर्नाऽपव्याहरेत् आयज इति वक्तोः ० स होता नाऽपव्याहरेत्
आवषट्कारात् ० ता वा एताः पञ्च व्याहृतयो भवन्ति ओ श्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज, ये
यजामहे, वौषट् इति ० ॥

कारान्ना [२.४.४] ≡ शान्ना

शान्ना [३.४-५]—

प्रयाजान् यजति ० ते वै पञ्च भवन्ति ० समिधो यजति वसन्तमेव ० तनूनपातं
यजति ग्रीष्ममेव ० इडो यजति वर्षा एव ० बर्हिर्यजति शरदमेव ० स्वाहाकृतिमन्तं यजति
हेमन्तमेव ० यदेव चतुर्थे प्रयाजे समानयति^१ ० अथ यदुत्तमे प्रयाजे देवताः समावपति ०
नाऽत्राऽग्निं होत्रादित्याह । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्विति हैक आहुः ।
न तथा कुर्यात् ० तस्मात् स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य हविषो व्यन्वित्येव
ब्रूयात् ० अथ यत्पौर्णमास्यां वार्त्रघ्नावाज्यभागौ भवतः ० अथ यदमावास्यायां वृधन्वन्तौ ० तौ वै
जुषाणयाज्यौ भवतः ० येयजामहो निगदो वषट्कारः ० तौ न पशौ न सोमे करोति ० अथ
यदावत्यो हूतवत्यः पुरोनुवाक्या भवन्ति, प्रवत्यः प्रत्तवत्यो याज्याः ० ता वै गायत्रीत्रिष्टुभो
भवन्ति ० ऋगन्ते वषट्करोति ० भूर्भुव इति पुरस्ताद्येयजामहस्य जपति । ओजः सहः सह
ओजः स्वरित्युपरिष्टाद्वषट्कारस्य ० ॥

१. पूर्णमासेष्टयां—स्वाहाग्निः स्वाहा प्रजापतिः स्वाहाग्निषोमौ २. असंनयतो दर्शेष्टयां—
स्वाहाग्निः स्वाहेन्द्राग्नी ३. संनयतो दर्शेष्टयां—स्वाहाग्निः स्वाहेन्द्रः ४. संनयतो महेन्द्रयाजिनो
दर्शेष्टयां—स्वाहाग्निः स्वाहा महेन्द्रः ५. अध्वर्युः

गोत्रा [१.३.१०]—

० यत् प्रयाजा अपुरोनुवाक्यावन्तो भवन्ति० यत् प्रयाजा आज्यहविषो भवन्ति० यदृचाऽनूच्य यजुषा यजति० ओम् श्रावयेति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् । ये यजामह इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वै वषट्कारः । सैषा पङ्क्तिः पञ्चपदा सप्तदशाक्षरा० ॥

प्रधानं स्विष्टकृच्च

तैत्रा [३.७.५]—

मा भेर्मा संविक्था मा त्वा हिंसिषं मा ते तेजोऽपक्रमीत् ॥ भरतमुद्धरे-
मनुषिश्चाऽवदानानि ते प्रत्यवदास्यामि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥

यदवदानानि तेऽवद्यन् विलोमाऽकार्षमात्मनः ।

आज्येन प्रत्यनज्म्येनत्तत् आप्यायतां पुनः ॥

ऋषभं वाजिनं वयं पूर्णमासं यजामहे ।

स नो दोहताꣳ सुवीर्यꣳ रायस्पोषꣳ सहस्रिणं

प्राणाय सुराधसे पूर्णमासाय स्वाहा ॥

अमावास्या सुभगा सुशेवा धेनुरिव भूय आप्यायमाना ।

सा नो दोहताꣳ सुवीर्यꣳ रायस्पोषꣳ सहस्रिणमपानाय

सुराधसेऽमावास्यायै स्वाहा ॥

तैसं [१.६.२]—

अग्नेरहं देवयज्ययाऽन्नादो भूयासम् ॥ दन्धिरस्यदब्धो भूयासमष्टं दमेयम् ॥

अग्नीषोमयोरहं देवयज्यया वृत्रहा भूयासम् ॥ इन्द्राग्नियोरहं देवयज्य-

येन्द्रियाव्यन्नादो भूयासम् ॥ इन्द्रस्याऽहं देवयज्ययेन्द्रियावी भूयासम् ॥

महेन्द्रस्याऽहं देवयज्यया जेमानं महिमानं गमेयम् ॥ अग्नेः स्विष्टकृतोऽहं

देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् ॥

तैसं [२.६.६]—

यदन्वञ्चौ पुरोडाशानुपाꣳ शुयाजमन्तरा यजति० यदग्नये स्विष्टकृतेऽवद्यति० सकृत्
सकृदव द्यति० उत्तरार्धादव द्यति० द्विरभि धारयति चतुरवत्तस्याऽऽप्त्यै० अतिहाय पूर्वा
आहुतीर्जुहोति० ॥

[२.५.३]—ब्रह्मवादिनो वदन्ति दध्नः पूर्वस्याऽवदेयं दधि हि पूर्वं क्रियत इति । अनादृत्य तच्छृतस्यैव पूर्वस्याऽवचेत् ॥

कासं [५.१-२]—

अग्निरन्नस्याऽन्नपतिस्तस्याऽहं देवयज्ययाऽन्नस्याऽन्नपतिर्भूयासम् ॥ दधि-
रस्यदध्नो भूयासममुं दमेयम् ॥ अग्नीषोमौ वृत्रहणौ तयोरहं देवयज्यया
वृत्रहा भूयासम् ॥ इन्द्राभ्योरहं देवयज्ययौजस्वान् वीर्यावान् भूयासम् ॥
इन्द्रस्याऽहं देवयज्ययेन्द्रियावान् भूयासम् ॥ महेन्द्रस्याऽहं देवयज्यया
जेहमानं भूमानं गमेयम् ॥ इन्द्रस्याऽहं विमृधस्य देवयज्ययाऽसपत्नो-
भूयासम् ॥ अग्नेरहं स्विष्टकृतो देवयज्ययाऽऽयुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥

अतीतृपद्यज्ञे यज्ञमयाद् देवी अरंकृतः ।

सोमस्ते मित्रो अर्यमा रायस्पोषं दधातन ॥

[३२.१]—०अग्निरन्नस्याऽन्नपतिरिति ० ॥

शत्रा [१.६.१-४]—

०स आज्यस्योपस्तीर्य द्विहविषोऽवदायाऽथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभिघारयति ० एत्
पुरोडाशमेव कूर्मं भूत्वा सर्पन्तम् ० स एष उभयत्राऽच्युत आग्नेयोऽष्टाकपालः पुरोडाशो भवति ।
स न पौर्णमासं हविः नाऽऽमावास्यम् । अग्नीषोमीय एव पौर्णमासं हविः सांनाय्यमामा-
वास्यम् ० तस्मादग्नीषोमीय एकादशकपालः पुरोडाशो भवति ० तस्मादैन्द्राग्नौ द्वादशकपालः
पुरोडाशो भवति ० ॥

[१.७.२-३]—०तद्वै चतुरवत्तं भवति । इदं वा अनुवाक्याऽथ याज्याऽथ वषट्-
कारोऽथ सा देवता चतुर्थी यस्यै देवतायै हविर्भवति ० उतो पञ्चावत्तमेव भवति ० स वै
यावन्मात्रमिवैवाऽवचेत् ० स आज्यस्योपस्तीर्य द्विहविषोऽवदायाऽथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभिघारयति ०
स वा उत्तरार्धादवद्यति । उत्तरार्धे जुहोति ० स वा अभ्यर्धे इवेतराभ्य आहुतिभ्यो जुहोति ० ॥

[११.४.२.१६-२०]—०प्रदग्धाहुतिर्ह वा अन्योऽध्वर्युः । आहुतीर्हान्यः
संतर्पयति अथ हैना एष संतर्पयति । योऽयमाज्यं हुत्वाऽवदानानि जुहोति । अथ पुनरन्तत
आज्येनाऽभिजुहोति ० तद्दु होवाच याज्ञवल्क्यः । यद्वा उपस्तीर्याऽवदायाऽभिघारयति ।
तदेवैनाः संतर्पयति ० तस्मादेवंविदमेवाऽध्वर्युं कुर्वीत । नाऽनेवंविदम् ॥

[११.१.२]—०तद्दशता आहुतीः संपादयेत् ० अथो अपि नव स्युः ० अथो
अप्येकाऽतिरिक्ता स्यात् ० अथो अपि द्वे अतिरिक्ते स्याताम् ० अथो अपि तिस्रोऽतिरिक्ताः
स्युः ० अथो अपि चतस्रोऽतिरिक्ताः स्युः ॥

काशत्रा [२.५.३-२.६.२; ४; २.७.१; १३.४.२.१३-१५] ≡ शत्रा

असं—

येनेन्द्राय समभरः पर्यास्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।

तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥१९.३

मा वर्नि मा वाचं नो वीत्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।

सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरतिं प्रति हर्यत ॥५.७.६

इन्द्रेमं प्रतरं.... ॥६.५.२

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।

तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुहति जुहत्तस्त्वेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१७.१.१८

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याऽभीवर्गे कृणुतं युज

उत्तरम् ॥६.५४.२॥ आ देवानामपि.... ॥१९.५९.३

अपैसं—

येनेन्द्राय समभरन् पर्यास्युत्तरेण.... रायस्पोषं श्रैष्ठ्यमा धेह्यस्मै ॥१.१९.३

मा नो वर्नि मा वाचं वीत्सीरुग्राविन्द्राग्नी न आ भजतां वसूनि । ॥

७.९.८

इन्द्रेमं.... ॥१९.३.१४॥ त्वमिन्द्रस्त्वं विष्णुस्त्वं.... । जायते....

स्वधायां नो.... ॥१८.३२.२॥ अस्य क्षत्रमग्नीषोमावस्य वर्धयतो रयिम् ।

अथो.... ॥१९.८.५॥ आ देवानामपि.... पारयाति ॥१९.४७.६

गोत्रा [१.३.७-१०]—यन्मध्ये हविषां दध्ना च पुरोडाशेन च प्रचरन्ति० ॥

प्रधानस्विष्टकृच्छौत्रम्

असं—

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् ।

अपाँ रेतांसि जिन्वति ॥८.४४.१६

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।

दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१०.८.६

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥८.७५.४

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूहमस्य पांसुरे ॥१.२२.१७

त्रिदैवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
 प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥७.१००.३
 अग्नीषोमा सवेदसा सहृती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥१.९३.९
 युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
 युवं सिधूरभिश्चस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥१.९३.५
 इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥७.९४.७
 गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईद्रे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
 इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥७.९३.४
 एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये भर ॥१.८.१
 प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
 इन्द्रा भर दक्षिणेना वस्त्रनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥१०.१८०.१
 महौ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमां इव ।
 स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥८.६.१
 भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
 भुवो नृञ्च्यौतनो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥१०.५०.४
 अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
 तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥१.९३.२
 आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभाराऽमग्रादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
 अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥१.९३.६
 अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
 प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१.९३.१
 वषट् ते विष्णवासा आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
 वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७.९९.७
 महौ इन्द्रो नृवदा चर्षणिग्रा उत द्विबर्ही अमिनः सहोभिः ।
 अस्मद्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत ॥६.१९.१
 पिप्रीहि देवां उशतो यविष्ठ विद्रौ ऋतूर्ऋतुपते यजेह ।
 ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्रे त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः ॥१०.२.१
 अग्रे यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
 ऋता यजासि महिना वि यद् भूर्हव्या बह यविष्ठ या ते अद्य ॥६.१५.१४

तैत्रा [३.५.७]—

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सनुर्भुवत् स भुवत्पुनर्मघः ।

स धामौर्णोदन्तरिक्षं स सुवः स विश्वा भुवो अभवत् स आभवत् ॥

अग्नीषोमा सवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि रोचनानि.... ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥

श्रथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।

इरज्यन्ता वसन्त्यस्य भूरः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥

एन्द्र सानसि रयि.... ॥ प्रससाहिषे पुरुहूत शत्रून्.... ॥

महां इन्द्रो य ओजसा.... ॥

महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिग्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।

अस्मद्द्रियग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥

पिप्रीहि देवा उशतो यविष्ठ.... ॥ अग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः प्रिया

धामान्ययाद् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाद् प्रजापतेः

प्रिया धामान्ययाडग्नीषोमयोः प्रिया धामान्ययाडिन्द्राग्नियोः प्रिया

धामान्ययाडिन्द्रस्य प्रिया धामान्ययाष्महेन्द्रस्य प्रिया धामान्ययाद्

देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि । यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं

महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषतां हविरग्ने

यदद्य विशो.... ॥

तैसं [२.६.२]—

ऋचमनूष्य हविष ऋचा यजति० मूर्धन्वती पुरोनुवाक्या भवति० नियुत्वत्या यजति० पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोनुवाक्या भवति० उपरिष्टाल्लक्ष्मा याज्या० अपगूर्य वषट्करोति० गायत्री पुरोनुवाक्या भवति त्रिष्टुप् याज्या० त्रिपदा पुरोनुवाक्या भवति० चतुष्पदा याज्या० द्व्यक्षरो वषट्कारः० ॥

मैसं [१.५.१२]— ०आग्नेयस्य पुरोडाशस्य द्वे१ याज्यानुवाक्ये कुर्यात्० ॥

कासं [३२.१]—

० अयाडग्निरग्नेः प्रिया धामानीति० सोमस्याऽयाट् प्रिया धामानीति० अग्नीषोमयो-
रयाट् प्रिया धामानीत्युपींश्चनिरुक्तं तेनाऽवरुद्धे । अग्नीषोमयोरयाट् प्रिया धामानीत्युच्चैर्निरुक्तं
तेन । अनिरुक्तं च वा इदं निरुक्तं च तस्यैवोभयस्याऽवरुद्धैः० देवानामाज्यपानामयाट् प्रिया
धामानीति० ॥

शत्रा [१.७.२-३]—

सोऽनुवाक्यामनूच्य याज्यामनुदुत्य पश्चाद्वषट्करोति० असौ वा अनुवाक्या इयं याज्याः ।
सा वै गायत्रीयं, त्रिष्टुबसौ० स वा अङ्गयन्निवैवाऽनुवाक्यामनुब्रूयात्० सा या पुरस्ताल्लक्षणा
साऽनुवाक्या स्यात्० अथ योपरिष्टाल्लक्षणा सा याज्या स्यात्० सा ह न्वेव समृद्धाऽनुवाक्या
यस्यै प्रथमात्पदादेवतामभिव्याहरति । सो एव समृद्धा याज्या यस्या उत्तमात् पदादेवताया अधि
वषट्करोति० सोऽनुवाक्यामनूच्य संपश्यति ये तथाऽग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः प्रिया धामा-
नीति० अयाट् सोमस्य प्रिया धामानीति० अयाडग्नेः प्रिया धामानीति० अथ यथादेवतम्, अयाट्
देवानामाज्यपानां प्रिया धामानीति० यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानीति० तद्धैके देवतां पूर्वा
कुर्वन्त्ययाट्कारात् अग्नेरयाट् सोमस्याऽयाडिति । तदु तथा न कुर्यात्० तस्मादयाट्कारमेव पूर्वं
कुर्यात्० यक्षत्वं महिमानमिति० आ यजतामेज्या इष इति० सोऽध्वरा जातवेदा जुषतां
हविरिति० पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ इति० अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतरिति० ते वै
त्रिष्टुभौ भवतः० उतो अनुष्टुभावेव भवतः० ॥

[१.६.२]— ० स यदीष्टि कुर्वीत सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात् । उपांशु देवतां
यजति । तद्धैष्टिरूपम् । मूर्धन्वत्यौ याज्यानुवाक्ये स्याताम्, वार्त्रन्नावाज्यभागौ, विराजौ संयाज्ये ।

[११.२.२]— ० गायत्रीमनुवाक्यामन्वाह० अथ त्रिष्टुभा यजति० द्वषक्षरो
वषट्कारः० ॥

काशत्रा [२.६.४-२.७.१; २.५.४] ≡ शत्रा

शत्रा [३.६]—

अथ यदग्निं प्रथमं देवतानां यजति० अथ यत्पौर्णमास्यामग्नीषोमौ यजति० तौ वा
उपांशु निरुक्तौ भवतः० अथ यदमावास्यायामिन्द्राग्नी यजति० अथ यत्संनयन्मावास्यायामिन्द्रं
यजति० अथ यदसंनयन् पुरोडाशावन्तरेणोपांश्चाज्यस्य यजति । अथ यत्संनयन् सांन्नाय्यस्या-
ऽन्तरेणोपांश्चाज्यस्य यजति तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यदग्निं स्विष्टकृतमन्ततो यजति० तस्य
संछन्दसौ याज्यापुरोनुवाक्ये निगदो व्यवैति० वषट्कृत्याऽप उपस्पृशति० ॥

गोत्रा [१.३.९]—

यद्वर्षीषि पुरोनुवाक्यावन्ति भवन्ति० यद्वायव्याऽनूच्य त्रिष्टुभा यजति० यत् संयाज्ये सच्छन्दसी० ॥

इडोपाह्वानम्

तैसं [१.६.३]—

अग्निर्मा दुरिष्ठात् पातु सविताऽघशः सात् ॥ यो मेऽन्ति दूरेऽरातीयति तमेतेन जेषम् ॥ सुरूपवर्षवर्ण एहीमान् भद्रान् दुर्याः अभ्येहि मामनुव्रता न्यु शीर्षाणि मृद्वमिड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि रन्तिरसि रमतिरसि सन्नर्यसि जुष्टे जुष्टि तेऽशीयोपहृत उपहवं तेऽशीय सा मे सत्याशीरस्य यज्ञस्य भूयादरेडता मनसा तच्छक्रेयं यज्ञो दिवः रोहतु यज्ञो दिवं गच्छतु यो देवयानः पन्थास्तेन यज्ञो देवाः अप्येत्वस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् राय उत यज्ञाः सचन्तामस्मासु सन्त्वाशिषः सा नः प्रिया सुप्रतूर्तिर्मघोनी ॥ जुष्टिरसि जुषस्व नो जुष्टा नोऽसि जुष्टि ते गमेयम् ॥ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञः समिमं दधातु ।

बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् ॥

ब्रध्न पिन्वस्व ददतो मे मा क्षायि कुर्वतो मे मोप दसत् ॥

तैत्रा [३.७.५-६]—

अज्यायो यवमात्रादाव्याधात् कृत्यतामिदम् ।

मा रूरुपाम यज्ञस्य शुद्धः स्विष्टमिदः हविः ॥

मनुना दृष्टां घृतपदीं मित्रावरुणसमीरिताम् ।

दक्षिणार्धादसंभिन्दन्नवद्याम्येकतोमुखाम् ॥

इडे भार्गं जुषस्व नो जिन्व गा जिन्वाऽर्वतः ।

तस्यास्ते भक्षिवाणः स्याम सर्वात्मानः सर्वगणाः ॥

मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं.... ॥ ब्रध्न पिन्वस्व ददतो मे मा क्षायि कुर्वतो मे मोपदसत् दिशां कृत्तिरसि दिशो मे कल्पन्तां कल्पन्तां मे दिशो दैवीश्च मानुषीश्चाऽहोरात्रे मे कल्पेतामर्धमासा मे कल्पन्तां मासा मे कल्पन्ता-
मृतवो मे कल्पन्ताः संवत्सरो मे कल्पतां कृत्तिरसि कल्पतां म आशानां

त्वाऽऽशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्य इदं भूतस्याऽध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् । भजतां भागी भागं माऽभागो भक्त निरभागं भजामोऽपस्वि-
न्वौषधीर्जिन्व द्विपात्पाहि चतुष्पादव दिवो वृष्टिमेरय ब्राह्मणानामिदं
हविः सोम्यानां सोमपीथिनां निर्भक्तोऽब्राह्मणो नेहाऽब्राह्मणस्याऽस्ति ॥
उपहूतो द्यौः पितोष मां द्यौः पिता ह्यतामग्निराग्नीध्रादायुषे वर्चसे
जीवात्वै पुण्याय ॥ उपहूता पृथिवी माता उप मां माता पृथिवी ह्यता-
मग्निराग्नीध्रादायुषे वर्चसे जीवात्वै पुण्याय ॥

तैसं [१.७.१]—

०तामाहियमाणामभि मन्त्रयेत सुरूपवर्षवर्ण एहीति० यर्हि होतेडामुपह्वयेत तर्हि
यजमानो होतारमीक्षमाणो वायुं मनसा ध्यायेत्० यं कामयेत पशुमान्त्यादिति प्रतीचीं तस्येडा-
मुपह्वयेत० सामि प्राश्नन्ति सामि मार्जयन्ते० ॥

तैत्रा [३.३.८]—

०पुरोडाशमपगृह्य संचरत्यध्वर्युः० पुरस्तात्प्रत्यङ्गुडासीन इडाया इडामादधाति ।
हस्त्यां होत्रे० द्विरङ्गुलावनक्ति पर्वणोः० सकृदुपस्तृणाति । द्विरादधाति । सकृदभिधारयति०
मुखमिव प्रत्युपह्वयेत० तस्मात् साऽन्वारभ्या । अध्वर्युणा च यजमानेन च । उपहूतः
पशुमानसानीत्याह० यद्यजमानभागं निधाय पुरोडाशं बर्हिषदं करोति० चतुर्धा करोति ।
चत्वारो होते हविर्यज्ञस्यविजः । ब्रह्मा होताऽध्वर्युरग्नीत् । तमभिमृशेत् । इदं ब्रह्मणः । इदं
होतुः । इदमध्वर्योः । इदमग्नीध इति० अग्नीधे प्रथमायाऽऽदधाति० सकृदुपस्तीर्य द्विरादधत् ।
उपस्तीर्य द्विरभिधारयति । षट् संपद्यन्ते० वेदेन ब्रह्मणे ब्रह्मभागं परिहरति० अथ काममन्येन ।
ततो होत्रे० अथाऽध्वर्यवे० अन्या दक्षिणा नीयन्ते० ॥

तैसं [२.६.९]—अग्नीध आ दधाति० ।

तैसं [२.६.८]—

०प्राश्नन्ति । अद्विर्मार्जयन्ते० यवमात्रमव धेत्० यदुप च स्तृणीयादभि च धारयेत्०
अवदायाऽभि धारयति द्विः सं पद्यते० अग्नेण परि हरति तीर्थेनैव परि हरति० सूर्यस्य त्वा
चक्षुषा प्रति पस्यामीत्यब्रवीत्० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति
गृह्णामीत्यब्रवीत्० अग्नेस्त्वाऽऽस्येन प्राश्नामीत्यब्रवीत्० ब्राह्मणस्योदरेणेत्यब्रवीत्० बृहस्पतेर्ब्रह्मणेति०
यः प्राश्नित्रं प्राश्नात्यद्विर्मार्जयित्वा प्राणान्तं मृशते ॥

मैसं [४.२.५]—

वसीयस्येहि श्रेयस्येहि भूयस्येहि चित्ता एहि दधृष्येहीडा एहि सूनृता

एहि चिदसि मनाऽसि धीरसि वस्वी रन्तिः सुमनाः ॥ सन्नरि विश्वा त्वा
भूताऽनुप्राणन्तु विश्वा त्वं भूताऽनुप्राण भूयस्यायुरसीष्टिरसि सरूपवर्षा
एहि ॥

एमामनु सर्पतेमौ भद्रौ धुर्या अभि । नीव शीर्षाणि मृद्वम् ॥
सा नः सुप्रतूर्तिः प्रिया नः सुहार्णः प्रियवनिर्मघवनि रन्ता एहि जुष्टा
एहीडा एह्यदिता एह्युपहूत उपहवं तेऽशीय सुहवा ना एहि सह राय-
स्पोषेण देवीर्देवीरभि मा निवर्तेध्वम् ॥

स्योना स्योनेन घृतेन मा समुक्षत ॥

न मे तदुपदम्भिषट्षिर्ब्रह्मा यद्दौ । समुद्रादुदचन्निव स्रुचा ॥

वाग्रे विप्रस्य तिष्ठति शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशम् ॥

[१.४.१]—

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।

अस्माकं सन्त्वाशिषः ॥

आमाशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो हवामहे । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥

मैत्रं [४.२.६-७]—०वसीयस्येहीति । ब्रह्म वै वसीयो ब्रह्म वा एतदत्याह्वयति०
यदिडामुपह्वयन्ते० ॥

[१.४.५]—०अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वितीडायामुपह्वयमानायाँ वदेत्० ॥

[१.४.१२]—०ब्रह्म पाहि इति पुरोडाशमभिमृशेत् भजतां भागी माऽभागो भक्त
ब्राह्मणानामिदं हविः सोम्यानाँ सोमपानां नेहाऽब्राह्मणस्याऽप्यस्ति कुर्वतो मे मा क्षेष्ट ददतो
मे मोपदसदिति ॥

कासं [५.२]—

बृहतो मा वाजेन वाजय । वामदेवस्य मा वाजेन वाजय । रथन्तरस्य
मा वाजेन वाजय । जुष्टे जुष्टि ते गमेयम् । उपहूत उपहवं तेऽशीय ।
सुहवामेहि सह प्रजया सह रायस्पोषेण ॥

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानस्सचन्ताम् ।

अस्माकं सन्त्वाशिषः ॥

आशीर्म ऊर्जमुत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणी सवर्चसम् ।

संजयन् क्षेत्राणि सहसाऽहमिन्द्र कुर्वाणो अन्या अधरान्त्सपत्नान् ॥

ब्रह्म तेजो मे पिन्वस्व क्षत्रमोजो मे पिन्वस्व प्रजां वृष्टि मे पिन्वस्व पशून्

विशं मे पिन्वस्वेषमूर्जं मे पिन्वस्व ॥ मयि त्यदिन्द्रियं महन्मयि द्युम्न
उत क्रतुः । त्रिशुग्धर्मस्सदमिन्मे विभाति विराड् ज्योतिषा सह । तस्य
दोहमशीय ॥ ब्रह्म पिन्वस्व कल्पन्तां दिशो यजमानस्याऽऽयुषे । ददतो
मे मा क्षायि कुर्वतो मे मोषदसद्भजतां भागी माऽभागो भक्त ये ब्राह्मणाः
सोम्यास्तेषामिदं हविर्नाऽसोम्यस्याऽप्यस्ति निर्भक्तो यं द्विष्मः ॥

कासं [३२.२]—०यामब्राह्मणः प्राश्नाति सा स्कन्नाऽऽहुतिः । तस्या वै वसिष्ठ
एव प्रायश्चित्तिं विदांचकार । ब्रह्म पिन्वस्वेति पुरोडाशमभिमृशति० ॥

वासं [२.१०-११]—

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकं
सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी
माता ह्ययतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्ययता-
मग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥ अग्नेष्ट्वा-
ऽऽस्येन प्राश्नामि ॥

शत्रा [१.७.४-१.८.१]—

०स यत्प्राशिन्नमवद्यति० अथाऽप उपस्पृशति० अथेडां पशून्समवद्यति । स वै
यावन्मात्रमिवैवाऽवद्येत्० अन्यतरत आज्यं कुर्यादधस्ताद्वा उपरिष्ठाद्वा० स आज्यस्योपस्तीर्य
द्विर्हविषोऽवदाय अथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभिघारयति । तत्प्रतिगृह्णाति१ देवस्य त्वा....हस्ताभ्यां
प्रतिगृह्णामीति० तत्प्राश्नाति१ अग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्नामीति० तन्न दद्भिः खादेत्१० अथाऽप
आचामति१० अथाऽस्मै ब्रह्मभागं पर्याहरन्ति० मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्येति० ॥ अथ यत्पूर्वार्धं
पुरोडाशस्य प्रशीर्य पुरस्ताद्भुवायै निदधाति० सर्वे प्राश्नन्ति० पञ्च प्राश्नन्ति० अथ यत्र
प्रतिपद्यते तच्चतुर्धा पुरोडाशं कृत्वा बर्हिषदं करोति० अथ यत्राऽऽह उपहूते द्यावापृथिवी इति,
तदग्नीध आदधाति । तदग्नीत् प्राश्नाति उपहूता पृथिवी माता उप मां पृथिवी माता ह्ययतामग्नि-
राग्नीध्रात्स्वाहा । उपहूतो द्यौः पितोप मां द्यौः पिता ह्ययतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा इति । अथ
यत्राऽऽशिषमाशास्ते तज्जपति१ मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष इति० अथ पवित्रयोर्मार्जयन्ते० अथ ते पवित्रे
प्रस्तरेऽपिसृजति० ॥

वाकासं [२.२-३]—

उपहूता पृथिवी.... ॥ उपहूतो द्यौः.... ॥ मयीदमिन्द्र.... ॥ मित्रस्य

त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे । देवस्य त्वा.... प्रतिगृह्णामि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ
सादयाम्यदित्या उपस्थे ॥ देवस्य त्वा.... हस्ताभ्यामाददे ॥ अग्नेष्ट्वा-
ऽऽस्येन प्राश्रामि बृहस्पतेर्मुखेन या अप्सवन्तर्देवतास्ता इदं शमयन्तु ॥
स्वाहाकृतं जठरमिन्द्रस्य गच्छ ॥ घसिना मे मा संपृक्था ऊर्ध्व मे नाभेः
सीद ॥ इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि ॥

काशत्रा [२.७.२-३]—०परिक्षाल्य पात्रं ब्रह्मभागं परिहरति० ॥

शात्रा [६.१४]—

०तत्^१ प्रतीक्षते^२ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति० अथैनत्प्रतिगृह्णाति^३ देवस्य त्वा
सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामीति० तद्वयुह्य तृणानि प्राग्दण्डं
स्थण्डिले निदधाति^३ पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थ इति० तत्तत् आदाय प्राश्राति^३
अग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्रामीति० अथाऽपोऽन्वाचामति^३ शान्तिरसीति० अथ प्राणान् संमृशति^३०
इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामीति नाभिमन्ततोऽभिमृशति^३० ॥

असं—

इडेवाऽस्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्करी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥७.२८.१
उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥७.११५.३
आपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्षमहि ।
पयस्वानग्र आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥
सं माऽग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥
इदमापः प्र बहताऽबधं च मलं च यत् ।
यच्चाऽभिदुद्रोहाऽनृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥७.९४.१-३

अपैसं—

इडेवाऽस्मिन्.... । घृतवती.... ॥२०.१२.६॥ उपैनं.... । यजमानाय
सुन्वते सर्वं तं रीरधासि नः ॥२०.१२.४॥ आपो अद्याऽन्वचारिषं रसेन
समगन्महि । ॥ प्रजया च बहुं कृधि । ॥ । यच्च
दुद्रोहाऽनृतं.... ॥१.३३.१-३

गोत्रा [२.१.२-४]—

प्रजापतिर्वै रुद्रं यज्ञानिरभजत् । सोऽकामयत मेयमस्मा आकूतिः समर्द्धि यो मा यज्ञानिरभाक्षीदिति । स यज्ञमभ्यायम्याऽविध्यत् । तदाविद्धं निरकृन्तत् । तत् प्राशित्रमभवत् । तदुदयच्छत् । तद्गगाय पर्यहरन् । तत्प्रत्यैक्षत० तत्सवित्रे पर्यहरन् । तत् प्रत्यगृह्णात् । तस्य पाणी प्रचिच्छेद० तत्पूष्णे पर्यहरन् । तत् प्राश्नात्० तद् बृहस्पतय आङ्गिरसाय पर्यहरन् । सोऽबिमेत् बृहस्पतिरित्यं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति । स एतं मन्त्रमपश्यत् । सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इत्यब्रवीत् । नहि सूर्यस्य चक्षुः किं चन हिनस्ति । सोऽबिमेत्प्रतिगृह्णन्तं मा हिंसिष्यतीति । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा प्रतिगृह्णामीत्यब्रवीत्० तद् व्यूह्य तृणानि प्राग्दण्डं स्थण्डिले निदधाति१ पृथिव्यास्त्वा नामौ सादयामीति० सोऽबिमेत् प्राश्नन्तं मा हिंसिष्यतीति । अग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्नामीत्यब्रवीत्० सोऽबिमेत् प्राशितं मा हिंसिष्यतीति । इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामीत्यब्रवीत्० वरुणस्योदर इति० अथो आहुर्ब्राह्मणस्योदर इति । आत्माऽस्यात्मनाऽऽत्मानं मे मा हिंसीः स्वाहेति० प्राशितमनुमन्त्रयते१ योऽभिर्नृमणा नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः । तस्मिन्म एतत् सुद्धतमस्तु प्राशित्रं तन्मा मा हिंसीत् परमे व्योमन्निति० अप वा एतस्मात् प्राणाः कामन्ति य आविद्धं प्राश्नाति । अङ्घ्रिर्मार्जयित्वा प्राणान्संस्पृशते१ वाङ्म आस्यन्निति० यवमात्रं भवति० यदधस्तादभिघारयति० यदुपरिष्टादभिघारयति० यदुभयतोऽभिघारयति० अग्नेण परिहरति । तीर्थेनैव परिहरति । वि वा एतच्चङ्चिच्छद्यते यत्प्राशित्रं परिहरति० ॥

इडोपाह्वानहौत्रम्

तैत्रा [३.५.८]—

उपहूत५ रथन्तर५ सह पृथिव्या उप मा रथन्तर५ सह पृथिव्या ह्ययता-
मुपहूतं वामदेव्य५ सहाऽन्तरिक्षेणोप मा वामदेव्य५ सहाऽन्तरिक्षेण ह्ययता-
मुपहूतं बृहत्सह दिवोप मा बृहत्सह दिवा ह्ययतामुपहूताः सप्त होत्रा
उप मा सप्त होत्रा ह्ययतामुपहूता धेनुः सहर्षमोप मा धेनुः सहर्षभा
ह्ययतामुपहूतो भक्षः सखोप मा भक्षः सखा ह्ययतामुपहूता५३हो । इडोप-
हूतोपहूतेडोपो अस्मा५ इडा ह्ययतामिडोपहूतोपहूतेडा । मानवी घृतपदी
मैत्रावरुणी ब्रह्म देवकृतमुपहूतं दैव्या अध्वर्यव उपहूता उपहूता मनुष्याः ।

य इमं यज्ञमवान् ये यज्ञपतिं वर्धानुपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावरी देवी देवपुत्रे । उपहूतोऽयं यजमान उत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूतो भूयसि हविष्करण उपहूतो दिव्ये धामन्नुपहूत इदं मे देवा हविर्जुषन्तामिति तस्मिन्नुपहूतो विश्वमस्य प्रियमुपहूतं विश्वस्य प्रियस्योपहूतस्योपहूतः ॥

तैसं [२.६.८]—०पशवो वा इडा । स्वयमादत्ते० वाचस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह० सदसस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह स्वगाकृत्यै । चतुरवत्तं भवति० ॥

शत्रा [१.८.१]—

०सा वै पञ्चावत्ता भवति० स समवदायेडां पूर्वाधं पुरोडाशस्य प्रशीर्यं पुरस्ताद्भुवायै निदधाति^१ । ताँ होत्रे प्रदाय दक्षिणाऽत्येति^१ । स^१ होतुरिह निलिम्पति० तद्धोतौष्ठयोर्निलिम्पते मनसस्पतिना ते हुतस्याऽश्रामीषे प्राणायेति । अथ होतुरिह निलिम्पति । तद्धोतौष्ठयोर्निलिम्पते वाचस्पतिना ते हुतस्याऽश्राम्यूर्जे उदानायेति० अथ होतुः पाणौ समवद्यति^१० अथोपाँशूपह्वयते० स उपह्वयते उपहूतँ रथन्तरँ सह पृथिव्योप माँ रथन्तरँ सह पृथिव्या ह्वयताम् । उपहूतं वामदेव्यँ सहाऽन्तरिक्षेणोप मां वामदेव्यँ सहाऽन्तरिक्षेण ह्वयताम् । उपहूतं बृहत्सह दिवोप मां बृहत्सह दिवा ह्वयतामिति० उपहूता गावः सहर्षभा इति० उपहूता सप्तहोत्रा इति० उपहूतेडा ततुरिरिति० उपहूतः सखा भक्ष इति० अथ प्रतिपद्यते इडोपहूतोपहूतेडोपो अस्माँ इडा ह्वयतामिडोपहूतेति० मानवी घृतपदीति० उत मैत्रावरुणीति० ब्रह्मा देवकृतोपहूतेति० उपहूता दैव्या अध्वर्यव उपहूता मनुष्या इति० य इमं यज्ञमवान् ये च यज्ञपतिं वर्धानिति० उपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावरी देवी देवपुत्रे इति० उपहूतोऽयं यजमान इति० तद्यदत्र नाम न गृह्णाति० उत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूत इति० भूयसि हविष्करण उपहूत इति० देवा म इदं हविर्जुषन्तामिति० तां वै प्राश्नन्त्येव नाऽमौ जुह्वति० ॥

काशत्रा [२.७.३] ≡ शत्रा

शत्रा [३.७]—

अथ यत्प्रदेशिन्यामिडायाः पूर्वमञ्जनमधरौष्ठे निलिम्पत्युत्तरमुत्तरौष्ठे० तद्यत्प्राश्नाति० अथ यदिडामुपह्वयते० तस्यां चतुरवानिति० अथ यदिडामुपह्वयाऽवघ्राति० अथ यदध्वर्युर्बर्हिषदं पुरोडाशं करोति० अथ यजपेनोत्तरेडां प्राश्नाति० अथ यत्पवित्रवति मार्जयन्ते० ॥

अन्वाहार्यचरुः

तैस [१.६.३]—

प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानव्यानौ मे पाह्यक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वा मा मे क्षेष्ठा अमुत्राऽमुष्मिँहोके ॥

तैआ [३.१०]—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणे ब्रह्मण ओदनं तेनाऽमृतत्वमभ्यां वयो दात्रे मयो मद्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे क इदं कस्मा अदात् कामः कामाय कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्त एषा ते काम दक्षिणोत्तानस्त्वाऽऽङ्गीरसः प्रतिगृह्णातु^१ ॥

तैस [१.७.३]—०यदन्वाहार्यमाहरति० अथो दक्षिणैवाऽस्यैषा० देवदूता वा एते यद्विजः । यदन्वाहार्यमाहरति देवदूतानेव प्रीणाति० अपरिमितो निरुप्यः० प्रजापतेर्भागोऽसीत्याह० यदेवमभिमृशति^२० ॥

तैत्रा [२.२.५]—०य एवं विद्वान् व्यावृत्य दक्षिणां प्रतिगृह्णाति० ॥

तैत्रा [२.३.२]—दक्षिणां प्रतिग्रहीष्यन्त्सदशकृत्वोऽपान्यात्० यत्किंच प्रतिगृहीयात् । तत्सर्वमुत्तानस्त्वाऽऽङ्गीरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृहीयात्० बर्हिषा प्रतीयाद्वां वाऽश्वं वा० ॥

मैस [१.४.६]—०यदन्वाहार्यमन्वाहरति० दक्षिणतः सद्गधः परिहर्तवा आह^३० ॥

कासं [५.५]—

प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वानक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वाऽक्षितो नामाऽसि मा मे क्षेष्ठाः प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेह्या मा गम्याः^४ ॥

शत्रा [१.२.३]—तस्मान्नाऽदक्षिणेन हविषा यजेत० ततो देवा एतां दर्शपूर्णमासयोर्दक्षिणामकल्पयन् यदन्वाहार्यम्० ॥

[११.१.३.७]—दर्शपूर्णमासयोर्द्वैवैषा दक्षिणा यदन्वाहार्यः० ॥

१. निखिलाः प्रतिग्रहमन्त्राः १२६-१२७ पृष्ठयोर्द्वैष्टव्याः २. ब्रह्मा ३. प्रतिग्रहमन्त्र-ब्राह्मणं १२९-१३० पृष्ठयोर्द्वैष्टव्यम् ४. प्रतिग्रहमन्त्राः १३१-१३२ पृष्ठयोर्द्वैष्टव्याः

वाकासं [२.३]—

प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे
पाह्युदानव्यानौ मे पाह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेह्यक्षितिरसि मा मे क्षेष्टा अमुत्रा-
ऽमुष्मिँल्लोक इह च ॥

काशत्रा [२.२.१] ≡ शत्रा

शात्रा [३.७]—अथ यदन्वाहार्यमाहरन्ति ० ॥

गोत्रा [२.१.५-७]—

न वै पौर्णमास्यां नाऽमावास्यायां दक्षिणा दीयन्ते । य एष ओदनः पच्यते दक्षिणैषा
दीयते यज्ञस्यद्भ्यै ० यदन्वाहार्यमन्वाहरति ० दक्षिणतः सद्भ्यः परिहर्तवा आह ० प्रजापतेर्भागोऽ-
स्यूर्जस्वान् पयस्वानक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वा मा मे क्षेष्टाः । अमुत्राऽमुष्मिँल्लोक इह च । प्राणापानौ मे
पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाहि । ऊर्गस्यूर्जं मे धेहि । कुर्वतो मे मा क्षेष्टाः ।
ददतो मे मोपदसः । प्रजापतिमहं त्वया समक्षमृध्यासमिति ० ॥

अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकाः

तैत्रा [३.७.६]—

यं ते अग्न आवृश्चाम्यहं वा क्षिपितश्चरन् ।

प्रजां च तस्य मूलं च नीचैर्देवा निवृश्चत ॥

अग्ने यो नोऽभिदासति समानो यश्च निष्टयः ।

इष्मस्येव प्रक्षायतो मा तस्योच्छेषि किंचन ॥

यो मां द्वेष्टि जातवेदो यं चाऽहं द्वेष्मि यश्च माम् ।

सर्वाँस्तानग्ने संदह याँश्चाऽहं द्वेष्मि ये च माम् ॥

अग्ने वाजजिद्राजं त्वा संसृवाँसं वाजं जिगिवाँसं वाजिनं वाजजितं
वाजजित्यायै संमाज्म्यग्निमन्नादमन्नाद्याय ॥

[३.७.६]—

वेदिर्बर्हिः श्रितँ हविरिष्मः परिधयः स्रुचः ।

आज्यं यज्ञं ऋचो यजुर्याज्याश्च वषट्काराः

सं मे संनतयो नमन्तामिष्मसंनहने हुते ॥

तैसं [१.१.१३]—

वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।

अथा सपत्नाँ इन्द्रो मे निग्राभेणाऽधराँ अकः ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।

अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥

वसुभ्यस्त्वा ॥ रुद्रेभ्यस्त्वा ॥ आदित्येभ्यस्त्वा ॥ अक्तः रिहाणाः ॥

वियन्तु वयः ॥ प्रजां योनिं मा निर्मृक्षम् ॥ आप्यायन्तामाप ओषधयो

मरुतां पृषतयः स्थ दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय ॥ आयुष्पा अग्नेऽ-

स्यायुर्मे पाहि चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ ध्रुवाऽसि ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्वीयमाणः ।

तं त एतमनु जोषं भरामि नेदेष त्वदपचेतयातै ॥

यज्ञस्य पाथ उपसमितम् ॥ सः स्रावभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हि-

षदंश्च देवा इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

[१.६.४]—

बर्हिषोऽहं देवयज्यया प्रजावान् भूयासम् ॥ नराशः सस्याऽहं देवयज्यया

पशुमान् भूयासम् ॥ अग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन

प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ अग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥ सोमस्याऽहमुज्जितिमनू-

ज्जेषम् ॥ अग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥ अग्नीषोमयोरहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥

इन्द्राग्नियोरहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥ इन्द्रस्याऽहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥ महेन्द्र-

स्याऽहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥ अग्नेः स्विष्टकृतोऽहमुज्जितिमनूज्जेषम् ॥

वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।

अथा सपत्नाः इन्द्रो मे निग्राभेणाऽधराः अकः ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।

अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥

एमा अगमन्नाशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो वनामहे धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥

रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु ॥ हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयतु ॥ एतश्चेन

त्वा सूर्यो देवतां गमयतु ॥

वि ते मुञ्चामि रशना वि रश्मीन् वि योवत्रा यानि परिचर्तनानि ।

धत्तादस्मासु द्रविणं यच्च भद्रं प्र णो ब्रूताद्भागधान् देवतासु ॥

विष्णोः शंयोरहं देवयज्यया यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् ॥

तैब्रा [३.७.६]—

दिवः खीलोऽवततः पृथिव्या अध्युत्थितः ।

तेन सहस्रकाण्डेन द्विषन्तः शोचयामसि ।

द्विषन्मे बहु शोचत्वोषधे मो अहं शुचम् ॥

यज्ञ नमस्ते यज्ञ नमो नमश्च ते यज्ञ शिवेन मे संतिष्ठस्व स्योनेन मे संतिष्ठस्व
सुभूतेन मे संतिष्ठस्व ब्रह्मवर्चसेन मे संतिष्ठस्व यज्ञस्यर्द्धिमनु संतिष्ठस्वोप
ते यज्ञ नम उप ते नम उप ते नमः ॥

तैस [२.६.९]—

समिधमा दधात्युत्तरासामाहुतीनां प्रतिष्ठित्यै । अथो समिद्वत्येव जुहोति । परिधीन्त्सं
मार्ष्टि । पुनात्येवैनान् । सकृत्सकृत्सं मार्ष्टि० ब्रह्मन् प्र स्थास्याम इत्याह० प्रतिष्ठेत्येव ब्रूयात्०
देव सवितरेतत्ते प्राहेत्याह० बृहस्पतिर्ब्रह्मेत्याह० स यज्ञं पाहि स यज्ञपतिं पाहि स मां
पाहीत्याह० आश्राव्याऽऽह देवान् यजेति० यदनूयाजान् यजति० ॥

[२.६.५]—०अनक्ति० त्रेधाऽनक्ति० न प्रतिशृणाति० उपरीव प्र हरति० नि
यच्छति० नाऽत्यग्रं प्र हरेत्० न पुरस्तात्प्रत्यस्येत्० प्राञ्चं प्र हरति० न विष्वञ्चं वि युयात्०
ऊर्ध्वमुच्चौति० हस्तेन योयुप्यते० प्रस्तरमाहवनीये प्रहरति० बर्हिरनु प्र हरति० ध्रुवाऽसीतीमामभि
मृशति० अगा३नग्नीदित्याह । यद् ब्रूयादगन्नग्निरित्यग्नावग्निं गमयेन्निर्यजमानः सुवर्गाल्लोकात्
भजेत् । अग्नित्येव ब्रूयात्० ॥

[१.७.४]—०दर्शपूर्णमासयोरेव देवतानां यजमान उज्जितिमनूजयति० यर्हि
होता यजमानस्य नाम गृह्णीयातर्हि ब्रूयाद् एमा अग्नन्नाशिषो दोहकामा इति० रोहितेन त्वाऽग्नि-
देवतां गमयत्वित्याह० यदेतैः प्रस्तरं प्रहरति० ॥

तैत्रा [३.३.२]—

यो भूतानामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा ।

पशून्स्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा ॥

इत्यग्निसंमार्जनान्यग्नौ प्रहरति ॥

[३.३.८-९]—अग्निमग्नीत्सकृत्सकृत्संमृद्धीत्याह० इषिता दैव्या होतार इत्याह०
भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहीत्याह० स्वगा दैव्या होतृभ्य इत्याह०
स्वस्तिर्मानुषेभ्य इत्याह० शंयोर्ब्रूहीत्याह० अथ सुचावनुष्टुभ्यां वाजवतीभ्यां व्यूहति० प्राचीं
जुहूमूहति० प्रतीचीमुपभृतम्० सुक्षु प्रस्तरमनक्ति० त्रेधाऽनक्ति० अभिपूर्वमनक्ति० परिधीन्
प्रहरति० सुचौ संपन्नावयति० जुह्वामुपभृतम्० ॥

मैसं [१.१.१३]—

वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजिग्रभत् ।
 अथा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाऽधरं अकः ॥
 उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवं अवीवृधत् ।
 अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥
 वसुरसि ॥ उपावसुरसि ॥ विश्वावसुरसि ॥ अप्तुमी रिहाणा व्यन्तु वयः ॥
 वशा पृश्निर्भूत्वा मरुतो गच्छ ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥
 सँसावभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हिषदश्च देवाः ।
 इमाँ वाचमभि विश्वे गृणन्तः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥

[१.४.१]—

सा मे सत्याशीर्देवान् गम्याज्जुष्टाज्जुष्टतरा पण्यात् पण्यतरा ।
 अरेडता मनसा देवान् गच्छ यज्ञो देवान् गच्छतु यज्ञो देवान् गम्यात् ॥
 वि ते मुञ्चामि रशनाँ वि रश्मीन् वि योक्त्राणि परिचर्तनानि ।
 धत्तादस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्र मा ब्रूताद्भागादां देवतासु ॥
 इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्दा वसुभिः ।
 अङ्गिरसो मे अस्य यज्ञस्य प्रातरनुवाकैरहोषुः ॥
 तस्य मा यज्ञस्येष्टस्य वीतस्य द्रविणेहाऽऽगम्याद्वसुर्यज्ञो वसुमान् यज्ञस्तस्य
 मा यज्ञस्य वसोर्वसुमतो वस्विहाऽऽगच्छत्वदो माऽऽगच्छत्वदो माऽऽगम्यात् ॥

[४.१.१४]—० चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहीति० श्रोत्रपा अग्नेऽसि श्रोत्रं मे पाहीति० तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहीति० यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्मा आपृणेति० यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्वीयमानः । तं त एतमनु जोषं भरामि नेदेष युष्मदपचेतयातै इति यजुषैव युज्यन्ते यजुषा विमुच्यन्ते । सँसावभागाः स्थेषा बृहन्ता इति परिधीन् प्रहृत्याऽभिजुहोति० ॥

[१.४.५]—० सा मे सत्याशीर्देवान् गम्यादिति प्रस्तरे प्रहियमाणे वदेत्० वि ते मुञ्चामि रशनाँ वि रश्मीनिति परिधिषु प्रहियमाणेषु वदेत्० ॥

कासं [५.३-४]—

देवस्याऽहं बर्हिषो देवयज्यया प्रजावान् भूयासम् ॥ देवस्याऽहं नरा-
 शिसस्य देवयज्यया पशुमान् भूयासम् ॥ देवस्याऽहमग्नेस्विष्टकृतो देव-
 यज्ययाऽऽयुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥

आ माऽऽशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो हवामहे । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥

सा मे सत्याशीर्देवान् गम्याज्जुष्टाज्जुष्टतरा पन्यात् पन्यतराऽहेडता मनसा
 देवान् गच्छ यो देवयानः पन्थास्तेन देवान् गच्छ यज्ञो देवान् गच्छतु
 यज्ञो देवान् गम्याददो मा गच्छतु ॥ रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु ॥
 हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयतु ॥ एतशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयतु ॥
 यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ यज्ञस्याऽऽयुरसि यज्ञो म आयुर्दधातु ॥
 वि ते मुञ्चामि रश्नां वि रश्मीन् वि योवत्रानि परिचर्तनानि ।
 दत्त्वायाऽस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्र मा ब्रूताद्विदा देवताभ्यः ॥
 विष्णोश्च यज्ञस्याऽन्तस्तयोरहं देवयज्ययाऽऽयुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ इष्टो
 यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्वा अथर्वभिः । तस्य यज्ञस्येष्टस्य
 स्विष्टस्य द्रविणमागच्छतु ॥ अङ्गिरसो मेऽस्य यज्ञस्य प्रातरनुवाकैरहौषुः ॥
 वसुर्यज्ञो वसुमान् यज्ञो वसु वसीय वसुमन्तो भूयास्म तस्य यज्ञस्य
 वसोर्वसुमतो वसु माऽऽगच्छतु ॥

[१.१२]—

वाजस्याऽहं प्रसवेनाऽग्नीषोमाभ्यां देवतयोज्जयामि ॥ वाजस्याऽहं प्रसवे-
 नाऽग्नीषोमाभ्यां देवतयाऽमुं प्रतिनुदे ॥
 वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेनोदजीग्रभम् ।
 अथा सपत्नी इन्द्रो मे निग्राभेनाऽधरी अकः ॥
 उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवी अवीवृधत् ।
 अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥
 पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा । अक्ती रिहाणा व्यन्तु वयः ॥
 मरुतां पृषती वशा पृथिर्भूत्वा दिवं गच्छ । ततो नो वृष्टिमेरय ॥
 अहीनः प्राणः । चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि ॥
 यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिरिध्यमानः ।
 तं त एतमनु जोषं भराभ्येष नेच्वदपचेतयातै ॥
 अग्नेः पाथ उपेहीन्द्रस्य पाथ उपेहि विश्वेषां देवानां पाथ उपेहि ॥
 यजमानं प्रथत ॥
 सैन्नावभागास्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधीयाश्च देवाः ।
 यज्ञस्य गोपा उत रक्षितारस्स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥
 [३१.११]—सैन्नावभागास्थेति परिधीनभिर्जुहोति ॥

[३२.३-४]—देवस्याऽहं बर्हिषो.... भूयासमिति० तस्य यज्ञस्य.... माऽऽ-
गच्छत्वित्याशिषमेवाऽऽशास्ते ॥

कपिसं [१.१२]—

वाजस्याऽहं प्रसवेनाऽग्नीषोमाभ्यां देवतयोज्जयामि ॥ वाजस्याऽहं प्रसवे-
नाऽग्नीषोमाभ्यां देवतयाऽमुं प्रतिनुदामि ॥ पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा ---
त्वन्नेदपचेतयातै ॥ यजमानं प्रथत ॥ सैन्नावभागास्तविषा बृहन्तः.... ॥

[४७.११] ≡ कासं [३१.११]

वासं [२.१२-१८]—

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं
तेन मामव ॥ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं
यज्ञं समिमं दधातु ॥ विश्वे देवास इह मादयन्ताम् ॥ ॐ प्रतिष्ठ ॥ एषा
ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च
प्यासिषीमहि ॥ अग्ने वाजजिद्राजं त्वा ससृवाँसं वाजजितं संमार्जिम ॥
अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ॥ अग्नीषोमौ
तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनाऽपोहामि ॥
इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ॥ इन्द्राग्नी
तमपनुदतां प्रसवेनाऽपोहामि ॥ वसुभ्यस्त्वा ॥ रुद्रेभ्यस्त्वा ॥ आदि-
त्येभ्यस्त्वा ॥ संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्याऽवताम् ॥
व्यन्तु वयः । अक्तं रिहाणाः ॥ मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृथिवीर्भूत्वा
दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह ॥ चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः ।

तं त एतमनुजोषं भ्राम्येष नेत्त्वदपचेतयातै ॥

अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥

सँस्त्रवभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।

इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वं स्वाहा वाद् ॥

शत्रा [१.७.४]—

० स वै वाचंयम एव स्याद् ब्रह्मन् प्रस्थास्यामीत्यैतस्माद्वचसः० स यदि पुरा मानुषीं
वाचं व्याहरेत्तत्रो वैष्णवीमूचं वा यजुर्वा जपेत्० स यत्राऽऽह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामीति । तद् ब्रह्मा
जपति एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्रादुरिति० बृहस्पतये ब्रह्मण इति० तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं
तेन मामवेति० स यदि कामयेत, ब्रूयात् प्रतिष्ठेति । ययु कामयेताऽपि नाऽऽद्विषेत्० ॥

[१.८.२-३]—ते वा एते उल्लुके उदूहन्ति अनुयाजेभ्यः० ते पुनरनु-
 सःस्पर्शयन्ति० अथ समिधमभ्यादधाति० ताँ होताऽनुमन्त्रयते एषा ते अग्ने समिध्या वर्षस्व
 चा च प्यायस्व । वर्षिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहीति० स यदि मन्येत न होता वेद
 इति, अपि खयमेव यजमानोऽनुमन्त्रयेत् । अथ संमार्ष्टि१० स संमार्ष्टि अग्ने वाजजिद्राजं त्वा
 ससुवाँसं वाजजितँ संमार्ज्मीति० अथाऽनुयाजान् यजति० स वै खलु बर्हिः प्रथमं यजति०
 अथ नराशाँसं द्वितीयं यजति० अथाऽग्निरुत्तमः० देवान् यज इत्येवाऽध्वर्युराह । देवं देवमिति
 सर्वेषु होता० वसुवने वसुधेयस्येति देवताया एव वषट् क्रियते२० अथोत्तममनुयाजमिष्ट्वा
 समानीय जुहोति० एवमेवैतदनुयाजेषु बलिँ हारयति० स वै सुचौ व्यूहति अग्नीषोमयोरुज्जिति-
 मनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामीति जुहूँ प्राचीं दक्षिणेन पाणिना, अग्नीषोमौ तमपनुदतां
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनाऽपोहामीत्युपभृतं प्रतीचीँ सव्येन पाणिना,
 यदि स्वयं यजमानः । यद्यु अध्वर्युः, अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जयत्वयं यजमानो वाजस्यैनं
 प्रसवेन प्रोहामि, अग्नीषोमौ तमपनुदतां यमयं यजमानो द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि वाजस्यैनं प्रसवेनाऽ-
 पोहामि, इति पौर्णमास्याम्० अथाऽमावास्यायाम्—इन्द्राग्नोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन
 प्रोहामि, इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनाऽपोहामीति,
 यदि स्वयं यजमानः । यद्यु अध्वर्युः, इन्द्राग्नोरुज्जितिमनूज्जयत्वयं यजमानो वाजस्यैनं प्रसवेन
 प्रोहामि, इन्द्राग्नी तमपनुदतां यमयं यजमानो द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि वाजस्यैनं प्रसवेनाऽपोहामि, इत्यमा-
 वास्यायाम्० अथ जुह्वा परिधीन्समनक्ति० स समनक्ति वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वाऽऽदित्येभ्यस्त्वेति०
 अथ परिधिमभिपद्याऽऽश्रावयति० स आश्राव्याऽऽह इषिता दैव्या होतार इति० प्रेषितो मानुषः
 सूक्तवाकायेति० अथ प्रस्तरमादत्ते० यजमानँ स्वगाकरोति० स यदि वृष्टिकामः स्यात् एते-
 नैवाऽऽददीत संजानाथां द्यावापृथिवी इति० मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्याऽवतामिति० तमेतेनैवाऽऽददीत०
 स वा अग्रं जुह्वामनक्ति मध्यमुपभृति मूलं ध्रुवायाम्० सोऽनक्ति व्यन्तु वयोऽक्तँ रिहाणा इति०
 तन्नीचैरिव हरति० स हरति मरुतां पृषतीर्गच्छेति० अथैकं तृणमपगृह्णाति० तन्मुहूर्तं धारयित्वा-
 ऽनुप्रहरति० तं प्राञ्चमनुसमस्यति० अथो उदञ्चम्० तमङ्गुलिभिरेव योयुष्येरन् न काष्ठैः० यदा
 होता सूक्तवाकमाह । अथाऽग्नीदाह अनुप्रहर इति० तूष्णीमेवाऽनुग्रह्य चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे
 पाहीति आत्मानमुपस्पृशति० अथाऽऽह१ संवदस्व इति० अगानग्नीत् इति० अगन् इतीतरः१
 प्रत्याह । श्रावय इति० श्रौषडिति१० अथाऽऽह स्वगा दैव्या होतभ्य इति० अथ परिधीननु-
 प्रहरति । स मध्यममेवाऽग्ने परिधिमनुप्रहरति यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देवः पाणिभिर्गृह्यमानः ।
 तं त एतमनुजोषं भराभ्येष नेत्वदपचेतयति इति । अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् इतीतरावनुसमस्यति ।
 अथ जुहूँ चोपभृतं च संप्रगृह्णाति० स संप्रगृह्णाति सँस्रवभागाः स्थेषा बृहन्त इति० ॥

वाकासं [२.३-४]—

एषा ते अग्ने.... ॥ एतत्ते देव सवितर्यज्ञं.... ॥ मनो ज्योतिर्जुषता°.... ॥
अग्नीषोमयोरुज्जिति° --- व्यन्तु वयो रिप्तो रिहाणा मरुतां पृषतीं गच्छ....॥
चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि --- ॥ प्रस्तरेष्ठाः परिधयश्च देवाः.... ॥

काशत्रा [२.७.२; ४; २.८.१]—

अध्वर्युराश्राव्याऽऽह देवान् यजेति । देवान् देवानिति सर्वान् होता यजति० ॥

शांत्रा [६.१४]—अथ यत्सावित्रेण जपेन प्रसौति० ॥

असं—

एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि॥७.९४.४
ये देवा दिवि ष्ट ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥१.३०.३
नुदस्व काम प्र शुदस्व कामाऽवर्ति यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥९.२.४
सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥७.१०३.१

अपैसं—

ये देवा दि[वि] × × × × [अ]न्तरिक्ष ओषधीष्वप्सु । ते कृणुत × ×
शतमन्यान् परि वृ[ण]क्त मृत्यून् ॥१.१४.३॥ सं बर्हिरक्तं....वसुभिः.... ।
सं देवेभि°.... गच्छति यत् स्वाहा ॥२०.३४.९॥ संस्त्रावभागास्तविषा
बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हिषादश्च देवाः । इमं यज्ञमभि विश्वे गृणन्तु स्वाहा
देवा अमृता मादयन्ताम् ॥२०.३४.२

गोत्रा [२.१.४]—

०यदाह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामीति० प्रतिष्ठेत्येव ब्रूयात्० अग्नीध आदधाति० अथो
समिद्वत्येव जुहोति । परिधीन्त्संमार्ष्टिं० सकृत् सकृत् संमार्ष्टिं० देव सवितरेतत्ते प्राहेत्याह प्रसूत्यै०
स यज्ञं पाहि स यज्ञपतिं पाहि स मां पाहि स मां कर्मण्यं पाहीत्याह० ॥

[१.३.७-१०]—०यदनुयाजा अपुरोनुवाक्यावन्तो भवन्ति० यदनुयाजा आज्य-
हविषो भवन्ति० यदुत्तमेऽनुयाजे सकृदपानिति० यत् प्राग् बर्हिषः प्रस्तरमनुप्रहरति० यदन्ततः
सर्वमेवाऽनुप्रहरति० ॥

अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकहौत्रम्

तैत्रा [३.५.९-११]—

देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ देवो अग्निः स्विष्टकृत्सुद्रविणा मन्द्रः कविः सत्यमन्माऽऽयजी होता होतुर्होतुरायजीयानग्ने यान् देवानयाड्या अपिप्रेर्ये ते होत्रे अमत्सत । तां ससनुषीं होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेम स्विष्टकृचाऽग्नेर्होताऽ-भूर्वसुवने वसुधेयस्य नमोवाके वीहि ॥

इदं द्यावापृथिवी भद्रमभूदार्धं सूक्तवाकस्युत नमोवाकमृध्यास्म सूक्तोच्यमग्ने त्वं सूक्तवागसि । उपश्रितो दिवः पृथिव्योरोमन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यजमान द्यावापृथिवी स्ताम् । शङ्गये जीरदानू अत्रस्नू अग्रवेदे उरुगव्यूती अभयंकृतौ । वृष्टिद्यावा रीत्यापा शंभुवौ मयोभुवावूर्जस्वती च पयस्वती च सूपचरणा च स्वधिचरणा च तयोराविदि । अग्निरिदं हविरजुषताऽ-वीवृधत महो ज्यायोऽकृत । सोम इदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । अग्निरिदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । 'प्रजा-पतिरिदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । 'अग्नीषोमाविदं हवि-रजुषतामवीवृधेतां महो ज्यायोऽक्राताम् । 'इन्द्राग्नी इदं हविरजुषेता-मवीवृधेतां महो ज्यायोऽक्राताम् । 'इन्द्र इदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । 'महेन्द्र इदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । देवा आज्यपा आज्यमजुषन्ताऽवीवृधन्त महो ज्यायोऽकृत । अग्निर्होत्रेणेदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । अस्यामृधद्धोत्रायां देवंगमाया-माशास्तेऽयं यजमानोऽसौ । आयुराशास्ते सुप्रजास्त्वमाशास्ते सजातवनस्या-माशास्त उत्तरां देवयज्यामाशास्ते भूयो हविष्करणमाशास्ते दिव्यं धामाऽऽशास्ते विश्वं प्रियमाशास्ते यदनेन हविषाऽऽशास्ते तदश्यात्त-दध्यात्तदस्मै देवा रासन्तां तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनते वयमग्नेर्मानुषाः । इष्टं च वीतं चोभे च नो द्यावापृथिवी अहसस्पातामिह गतिर्वामस्येदं च नमो देवेभ्यः ॥

तच्छं योरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः
स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

तैसं [२.६.९]—

यद् ब्रूयादेतद् द्वावापृथिवी भद्रमभूदित्येतदुमेवाऽसुरं यज्ञस्याऽऽशिषं गमयेत् । इदं
द्वावापृथिवी भद्रमभूदित्येव ब्रूयाद्यजमानमेव यज्ञस्याऽऽशिषं गमयति० यद् ब्रूयात्सूपावसाना च
स्वध्यवसाना चेति प्रमायुको यजमानः स्यात्० सूपचरणा च स्वधिचरणा चेत्येव ब्रूयात्०
आशास्तेऽयं यजमानोऽसावित्याह । निर्दिश्यैवैनं सुवर्गं लोकं गमयति० ॥

शत्रा [१.९.१]—

सं यत्राऽऽह इषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकायेति० अथ
प्रतिपद्यते । इदं द्वावापृथिवी भद्रमभूदिति० आर्घ्यं सूक्तवाकमुत नमोवाकमिति० अग्रे त्वं सूक्त-
वागस्युपश्रुती दिवस्पृथिव्योरिति० ओमन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यजमान द्वावापृथिवी स्तामिति०
शङ्खवी जीवदान् इति० अत्रसू अत्रवेदे इति० उरुगव्यूती अभयंकृताविति० वृष्टिद्वावा
रीत्यापेति० शंभुवौ मयोभुवाविति० ऊर्जस्वती च पयस्वती चेति० सूपचरणा च स्वधिचरणा
चेति० तयोराविदीति० अग्निरिदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृतेति० सोम इदं
हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृतेति० अग्निरिदं हवीरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृतेति०
अथ यथादेवतम् । देवा आज्यपा आज्यमजुषन्ताऽवीवृधन्त महो ज्यायोऽकृतेति० अग्निहोत्रेणेदं
हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृतेति० अस्यामृधेद्धोत्रायां देवंगमायामिति० आशास्तेऽयं
यजमानोऽसाविति नाम गृह्णाति० दीर्घायुत्वमाशास्त इति० सुप्रजास्त्वमाशास्त इति० उत्तरां
देवयज्यामाशास्त इति० भूयो हविष्करणमाशास्त इति० सजातवनस्यामाशास्त इति० दिव्यं
धामाऽऽशास्त इति० यदनेन हविषाऽऽशास्ते । तदस्यात्तद्व्यादिति० तदस्मै देवा रासन्तामिति०
तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनुतां वयमग्नेः परिमानुषा इति० इष्टं च वित्तं चेति० उमे चैनं द्वावा-
पृथिवी अहंसपातामिति० तद् ह्यैक आहुः उमे च मा इति० तद् तथा न ब्रूयात्०
उमे चैनमित्येव० इह गतिर्वामस्येति० इदं च नमो देवेभ्य इति० अथ शंयोराह० तच्छंयो-
रावृणीमह इति० गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतय इति० दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्य इति०
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पद इति० अथाऽनयेत्युपस्पृशति० ॥

[११.१.६.३१-३२]—०स योऽयं वर्षिष्ठोऽनुयाजः० तं वा अनवानन् यजे-
दित्याहुः० स वै सकृदवान्यात्० ॥

[११.२.३.९]—स यत्र शंयोराह तदभिमृशति१ यज्ञं नमश्च त उप च यज्ञस्य
शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व इति० ॥

काशत्रा [२.८.२]—

तद् ह्रैक आहुः उमे च नो द्यावापृथिवी अ५ हसस्पातामिति० ॥

शोत्रा [३.७-८]—

अथ यत्समिधमनुमन्त्रयत इध्मस्य वा एषैकाऽतिशिष्टा भवति० अथ यत् त्रीननूयाजान् यजति० अथ यत्सर्वमुत्तममाह० अथ यत्सूक्तवाकमाह० अथ यद् द्यावापृथिव्योः कीर्तयति० अग्निरिदं हविरजुषतेति ह्रैक आहुः । न तथा कुर्यात्० हविरजुषत हविरजुषतेत्येव ब्रूयात् । अथो या एवैतत्पुरस्ताद्देवता यजति० अथ यत्सूक्तवाके यजमानस्य नाम गृह्णाति० उच्चैर्गृह्णीयाद्यद्यप्याचार्यः स्यात्० अथ पञ्चाऽऽशिषो वदतीळायां तिस्रस्ता अष्टौ० अथ बर्हिषि प्राश्नमल्ललिं निधाय जपति नम उपेति० अथ यच्छंयोर्वाकमाह० अथ यदप उपस्पृशति० ॥

पत्नीसंयाजाः

तैसं [१.१.१३]—

अग्नेर्वामपन्नगृहस्य सदसि सादयामि सुम्नाय सुम्निनी सुम्ने मा धत्तं धुरि धुर्यौ पातम् ॥

[१.६.४]—

सोमस्याऽहं देवयज्यया सुरेता रेतो धिषीय ॥ त्वष्टुरहं देवयज्यया पशूना५ रूपं पुषेयम् ॥ देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्यज्ञस्य मिथुनं तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्रभूयासम् ॥

तैत्रा [३.७.५-६]—

सं पत्नी पत्या सुकृतेन गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्यावभूताम् ।

संजानानौ विजहतामरातीर्दिवि ज्योतिरजरमारभेताम् ॥

दश ते तनुवो यज्ञ यज्ञियास्ताः प्रीणातु यजमानो धृतेन ।

नारिष्ठयोः प्रशिषमीडमानो देवानां दैव्येऽपि यजमानोऽमृतोऽभूत् ॥

यं वां देवा अकल्पयन्नुर्जो भाग५ शतक्रतू ।

एतद्वां तेन प्रीणानि तेन तृप्यतम५हहौ ॥

उल्लखले घुसले यच्च शूर्प आशिश्लेष दृषदि यत्कपाले ।

अवमुषो विमुषः संयजामि विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥

यज्ञे या विमुषः सन्ति बह्वीरशौ ताः सर्वाः स्विष्टाः सुहुता जुहोमि ॥

तैसं [१.१.१३]—

अग्नेऽदब्धायोऽशीततनो पाहि माऽद्य दिवः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै
पाहि दुरन्न्यै पाहि दुश्चरितादविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनिं स्वाहा ॥

[१.६.४]—

वेदोऽसि वित्तिरसि विदेय कर्माऽसि करुणमसि क्रियासं सनिरसि
सनिताऽसि सनेयं घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणं वेदो ददातु
वाजिनम् ॥

[१.१.१०]—

इमं वि प्यामि वरुणस्य पाशं यमबध्नीत सविता सुकेतः ।
धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं मे सह पत्या करोमि ॥
समायुषा सं प्रजया समग्रे वर्चसा पुनः ।
सं पत्नी पत्याऽहं गच्छे समात्मा तनुवा मम ॥

तैब्रा [२.५.८.६]—

यदप्सु ते सरस्वति गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
तेन मे वाजिनीवति मुखमङ्गि सरस्वति ॥

तैसं [१.६.४]—

आ प्यायतां ध्रुवा घृतेन यज्ञं यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः ।
सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् ॥
प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन ॥

तैब्रा [३.७.११]—

आश्रावितमत्याश्रावितं वषट्कृतमत्यनूक्तं च यज्ञे ।
अतिरिक्तं कर्मणो यच्च हीनं यज्ञः पर्वाणि प्रतिरन्नेति कल्पयन्
स्वाहाकृताऽऽहुतिरेतु देवान् ॥
इष्टेभ्यः स्वाहा ॥ वषट्निष्टेभ्यः स्वाहाः ॥ भेषजं दुरिष्ट्यै स्वाहा ॥
निष्कृत्यै स्वाहा ॥ दौराध्यै स्वाहा ॥ दैवीभ्यस्तनूभ्यः स्वाहा ॥ ऋद्ध्यै
स्वाहा ॥ समृद्ध्यै स्वाहा ॥ इमं मे वरुण श्रुधी.... ॥ तत्त्वा यामि
ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्.... ॥ स त्वं नो
अग्ने.... ॥ त्वमग्ने अयाऽस्यया.... ॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो.... ॥
ब्रह्म प्रतिष्ठा मनसो ब्रह्म वाचो ब्रह्म यज्ञानां हविषामाज्यस्य ।
अतिरिक्तं कर्मणो यच्च हीनं.... ॥

यद्धो देवा अतिपादयानि वाचा चित् प्रयतं देवहेडनम् ।
 अरायो अस्मा५ अभिदुच्छुनायतेऽन्यत्राऽस्मन्मरुतस्तन्निधेतन ॥
 ततं म आपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
 अय५ समुद्र उत विश्वभेषजः स्वाहाकृतस्य समु तृष्णुतर्भुवः ॥
 उद्वयं तमसस्परि.... ॥ उदु त्वं जातवेदसं.... ॥
 चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥
 यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
 मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥
 स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
 वृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा अभयंकरः ॥
 आभिर्गीर्भिर्यदतो न ऊनमाप्यायय हरिवो वर्धमानः ।
 यदा स्तोतृभ्यो महि गोत्रा रुजासि भूयिष्ठभाजो अध ते स्याम ॥
 अनाज्ञातं यदाज्ञातं यज्ञस्य क्रियते मिथु ।
 अग्रे तदस्य कल्पय त्व५ हि वेत्थ यथातथम् ॥
 पुरुषसंमितो यज्ञो यज्ञः पुरुषसंमितः ।
 अग्रे तदस्य कल्पय त्व५ हि वेत्थ यथातथम् ॥
 यत् पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्तासः ।
 अग्निष्टद्वोता क्रतुविद्विजानन् यजिष्ठो देवा५ क्रतुशो यजाति ॥

[३.७.५-६]—

अहं देवाना५ सुकृतामस्मि लोके ममेदमिष्टं न मिथुर्भवाति ।
 अहं नारिष्ठावनुयजामि विद्वान् यदाम्यामिन्द्रो अदधान्नागधेयम् ॥
 अदारसृद्भवत देव सोमाऽस्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
 मा नो विददमि भामो अशस्तिर्मा नो विदद्वृजना द्वेष्या या ॥
 अभिस्तृणीहि परिधेहि वेदिं जामि मा हि५ सीरमुया शयाना ।
 होतृषदना हरिताः सुवर्णा निष्का इमे यजमानस्य ब्रध्ने ॥

तैसं [१.१.१३]—

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं नो देव देवेषु यज्ञ५
 स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः ॥

[१.६.४]—

सदसि सन्मे भूयाः सर्वमसि सर्वं मे भूयाः पूर्णमसि पूर्णं मे भूया

अक्षितमसि मा मे क्षेष्टाः ॥ प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम् ॥
दक्षिणायां दिशि मासाः पितरो मार्जयन्ताम् ॥ प्रतीच्यां दिशि गृहाः
पशवो मार्जयन्ताम् ॥ उदीच्यां दिश्याप ओषधयो वनस्पतयो मार्ज-
यन्ताम् ॥ ऊर्ध्वायां दिशि यज्ञः संवत्सरो यज्ञपतिर्मार्जयन्ताम् ॥

तैब्रा [३.७.६]—

अवसृष्टः परापत शरो ब्रह्मसंशितः ।

गच्छाऽमित्रान् प्रविश मैषां कंचनोच्छिषः ॥

तैब्रा [३.३.९-११]—

अविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनिं स्वाहेतीध्मसंवृश्नान्यन्वाहार्यपचनेऽभ्याधाय
फलीकरणहोमं जुहोति० पत्निया उपस्थ आस्यति० वेदं होताऽऽहवनीयात्स्तृणनेति० विमुक्तं
वा एतर्हि योक्त्रं ब्रह्मणा । आदायैतत् पत्नी सहाऽप उपगृह्णीते शान्त्यै । अञ्जलौ पूर्णपात्रमानयति०
मुखं विमृष्टे । अवभृथस्यैव रूपं कृत्वोत्तिष्ठति० परिवेषो वा एष वनस्पतीनाम् । यदुपवेशः ।
तमुत्करे ।

यं देवा मनुष्येषूपवेशमधारयन् ।

ये अस्मदपचेतसस्तानस्मभ्यमिहाऽऽकुरु ॥

उपवेशोपविद्धि नः प्रजां पुष्टिमथो धनम् ।

द्विपदो नश्चतुष्पदो ध्रुवाननपगान् कुरु ॥

इति पुरस्तात्प्रत्यक्षमुपगृहति० स्वविमन उपगृहति० योपवेशे शुक् साऽमुमृच्छतु यं द्विष्म इति ।
अथाऽस्मै नामगृह्य प्रहरति ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।

निर्बाध्येन हविषेन्द्र एणं पराशरीत् ॥

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्चजनाः अति ।

इहि तिस्रोऽति रोचना यावत्सूर्यो असद्विवि ॥

परमां त्वा परावतमिन्द्रो नयतु वृत्रहा ।

यतो न पुनरायसि शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

इति० हतोऽसाववधिष्माऽमुमित्याह स्तुत्यै । यं द्विष्यात्तं ध्यायेत्० ॥

तैसं [१.७.५]—प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमाने-

नेत्याह० यद्यजमानभागं प्राश्नाति० यत्पूर्णपात्रमन्तर्वेदि निनयति० एष वै दर्शपूर्णमासयो-
रवभृथः० ॥

मैसं [१.४.२-३]—

वेदोऽसि वेदो मा आभर तृप्तोऽहं तृप्तस्त्वम् ॥ घृतवन्तं कुलायिनं
रायस्पोषं सहस्रिणम् । वेदो वाजं ददातु मे ॥ निर्विषन्तं निररातिं दह ।
रुद्रास्त्वाऽयच्छन्नादित्यास्त्वाऽस्तृणन् ॥

गोमं अग्नेऽविमं अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदग्रमृष्यः ।

इडावानेषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुधः सभावान् ॥

सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूताम् ।

आग्नीणानौ विजहता अरातिं दिवि ज्योतिरुत्तममारभेथां स्वाहा ॥

पत्नि पत्न्येष ते लोको नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥ या सरस्वती
वेशयमनी तस्यै स्वाहा ॥ या सरस्वती वेशभगीना तस्यास्ते भक्तिवानो
भूयास्म ॥

अयाश्चाऽग्नेऽस्यनभिः शस्तिश्च सत्यमिच्चमया असि ।

अयाः सन्मनसा कृत्तोऽयाः सन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥

सं यज्ञपतिराशिषा ॥ सदसि सन्मे भूयाः पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः

सर्वमसि सर्वं मे भूया अक्षितमस्यक्षितं मे भूयाः ॥ प्राच्या दिशा देवा

ऋत्विजो मार्जयन्ताम् ॥ दक्षिणया दिशा मासाः पितरो मार्जयन्ताम् ॥

प्रतीच्या दिशा गृहाः पशवो मार्जयन्ताम् । उदीच्या दिशाऽऽपा ओषधयो

वनस्पतयो मार्जयन्ताम् । ऊर्ध्वया दिशा यज्ञः संवत्सरो मार्जयताम् ॥

मैसं [१.४.६-८]—

सं यज्ञपतिराशिषेति यजमानो यजमानभागं प्राश्नाति० यदि प्रवसेत् समिष्टयजुषा
सह जुहुयात्० पत्न्यै वेदं प्रयच्छति० त्रिः प्रयच्छति० उपस्था आस्यते० संततमाऽऽहवनीयात्
स्तृणन्नेति० न हि तस्मिन्नाग्नौ मांसं पचन्ति यस्मिन्नाहुतीर्जुह्वति० अयाश्चाऽग्नेऽस्यनभिः शस्ति-
श्चेति० यां चैवाऽत्र यज्ञस्य प्रायश्चित्तिं विद्म यां च न तस्यैषोभयस्य प्रायश्चित्तिः ॥

[४.१.१३]—० संततमाऽऽहवनीयात्स्तृणन्नेति० पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपहन्ति०
स्यविमत उपहन्ति० यदुपवेशमुत्कर उपहन्ति० ॥

कासं [५.४-५]—

सोमो रेतोधास्तस्याऽहं देवयज्यया सुरेतोधा रेतो विषीय ॥ त्वष्टा रूपाणां
विकर्ता तस्याऽहं देवयज्यया विश्वरूपं प्रियं पुषेयम् ॥ देवानां पत्नी-

रश्मिर्गृहपतिर्मिथुनं यजमानस्य तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्रजनिषीयाऽऽयुषे
वर्चसे रायस्पोषाय सुप्रजस्त्वाय ॥

सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूताम् ।

आग्नीणानौ विजहता अरार्तिं दिवे ज्योतिरुत्तममारभेथाम् ॥ स्वाहा ॥

स्वाहेष्टिभ्यो वषडनिष्टेभ्यो भिषजौ स्विष्टै स्वाहा निष्कृतिर्दुरिष्टै
स्वाहा ॥ देवेभ्यस्तनूभ्यस्स्वाहा ॥

अयाश्चाऽग्रे.... । अयास्सन्मनसा कृतोऽयास्सन्.... ॥

सरस्वत्यै वेशभगिन्यै स्वाहा ॥ या सरस्वती वेशभगिनी तस्या नो
रास्व तस्यास्ते भक्तिवानो भूयास्म ॥ यज्ञस्य त्वा प्रमयाऽभिमयोन्मया
प्रतिमया परिगृह्णामि ॥ वेदोऽसि विचिरसि वेदसे त्वा वेदो मे बिन्द
विदेय ॥

घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम् ।

वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे ॥

वृषा वृषण्वतीभ्यो वेदपत्नीभ्यो भव ॥ पूर्णमसि पूर्णं मे भूयास्सदसि
सन्मे भूयास्सर्वमसि सर्वं मे भूया अक्षितिरसि मा मे क्षेष्टाः ॥ प्राच्या
दिशा देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम् । दक्षिण्या दिशा मासाः पितरो
मार्जयन्ताम् ॥ प्रतीच्या दिशा गृहाः पशवो मार्जयन्ताम् ॥ उदीच्या
दिशाऽऽप ओषधयो वनस्पतयो मार्जयन्ताम् ॥ ऊर्ध्वया दिशा यज्ञ-
स्संवत्सरो मार्जयन्ताम्^१ ॥

[१.१२]—

अग्नेऽदब्धायोऽशीर्तितनो पाहि विद्योत्पाहि प्रसित्याः पाहि दुरिष्ट्याः पाहि
दुरन्न्या अविषं नः पितुं कृधि सुधीन् योनीन् सुषदां पृथिवीं स्वाहा ॥
देवा गातुविदो गातुं विच्चा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञी स्वाहा
वाचि स्वाहा वाते धाः ॥

कार्स [३१.१२]—

प्रजापतेर्वा एतानि स्मश्रूणि यद्वेदः । यां पत्नीं कामयेत पुत्रं बिन्देतेति तस्या
उपस्थ आस्येत्० यद्वेदं संततमाऽऽहवनीयात् स्तृणाति^२० एष वै वनस्पतीनां परिवेष्टा
यदुपवेष्टः० पुरस्तात्प्रत्यश्चमुपहन्ति० स्थविमत उपहन्ति० यदुपवेष्टमुत्कर उपहन्ति० ॥

[३२.४-५]—सोमो रेतोधा इति० प्राच्या दिशा देवा ऋत्विजो मार्ज-
यन्तामिति । एता वै यज्ञस्य मृष्टय एताश्शान्तयः० ॥

कपिसं [१.१२]—

अग्रेऽदब्धायोऽशीर्तितनो पाहि दिवः पाहि प्रसित्याः पाहि दुरिष्ट्याः
पाहि दुरन्न्याः । अविषं नः पितुं कृधि । सुधीन् योनीन् सुषदां
पृथिवीम् । घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम् । वेदो वाजं ददातु
नः ॥ देवा गातुविदो.... वाते धाः ॥

[४७.११] ≡ कासं [३१.१२]

वासं [२.१९-२४]—

घृताची स्थो धुर्यौ पात॑ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ॥ यज्ञ नमश्च त
उप च यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥ अग्रेऽदब्धायोऽशीतम
पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरन्न्या अविषं नः
पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाद् ॥ अग्नये संवेशपतये स्वाहा ॥
सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो
वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः ॥ देवा गातुविदो गातुं विच्चा गातुमित ।
मनसस्पत इमं देव यज्ञ॑ स्वाहा वाते धाः ॥

सं बर्हिर्इक्तां हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सं मरुद्भिः ।

समिन्द्रो विश्वदेवेभिरइक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत्स्वाहा ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा
विमुञ्चति । पोषाय । रक्षसां भागोऽसि ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स॑ शिवेन ।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥

शब्रा [१.८.३; १.९.२-३]—

स यस्याऽनसो हविर्गृह्णन्ति अनसस्तस्य धुरि विमुञ्चन्ति० यस्यो पात्र्यै, स्पये तस्य०
स सादयति घृताची स्थो धुर्यौ पात॑ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् इति० ॥ ते वै पत्नीः संयाजयि-
ष्यन्तः प्रतिपरायन्ति । जुहुं च खुवं चाऽध्वर्युरादत्ते वेद॑ होता आज्यविलापनीमग्रीत् । तद्वैकेषा-
मध्वर्युः पूर्वेणाऽऽहवनीयं पयैति । तदु तथा न कुर्यात्० जघनेनो हैव पत्नीमेकेषामध्वर्युरेति ।
नो एव तथा कुर्यात्० अन्तरेणो हैव पत्नीमेकेषामध्वर्युरेति । नो एव तथा कुर्यात्० तस्मादु
पूर्वेणैव गार्हपत्यमन्तरेणाऽऽहवनीयं चैति० अथ पत्नीः संयाजयन्ति० चतस्रो देवता यजति०
ता वा आज्यहविषो भवन्ति० तेनोपा॑श्चु चरन्ति० अथ सोमं यजति० अथ त्वष्टारं यजति०

अथ देवानां पत्नीर्यजति० स यत्र देवानां पत्नीर्यजति तत्पुरस्तात्तिरः करोति० अथाऽग्निं गृहपतिं यजति० तदिडान्तं भवति । न ह्यत्र परिधयो भवन्ति न प्रस्तरः० तस्मादिडान्तमेव स्यात्० स यदि प्रस्तरस्य रूपं कुर्याद्यथैवाऽदः प्रस्तरेण यजमानश्च स्वगाकरोत्येवमेवैतत् पत्नीश्च स्वगाकरोति । स यदि प्रस्तरस्य रूपं कुर्याद्विदस्यैकं तृणमाच्छिद्याऽग्रं जुह्वामनक्ति मध्यं सुवे, बुध्नश्च स्यात्याम् । अथाऽग्नीदाह अनुग्रहरेति । तूष्णीमेवाऽनुग्रह्य चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहीत्यात्मानमुपस्पृशति० अथाऽऽह संवदस्वेति । अगानग्नीत्, अगन्, श्रावय, श्रौषट्, स्वगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः शंयोर्ब्रूहीति । अथ जुहुं च सुवं च संप्रगृह्णाति० स वा अग्नये संप्रगृह्णाति अग्नेऽदब्धायोऽशीतम इति० अथ वेदं पत्नी विस्रश्चसयति० सा विस्रश्चसयति वेदोऽसि येन त्वं.... इति । यदि यजुषा चिकीर्षेदेतेनैव कुर्यात् । तमा वेदेः सश्चस्तृणाति^१० अथ समिष्टयजुर्जुहोति० स जुहोति देवा गातुविद इति० अथ बर्हिर्जुहोति० स जुहोति सं बर्हिरङ्क्तां.... स्वाहेति । अथ प्रणीता दक्षिणतः परीत्य निनयति० स निनयति कस्त्वा विमुञ्चति पोषायेति० अथ फलीकरणान् कपालेनाऽधोऽधः कृष्णाजिनमुपास्यति रक्षसां भागोऽसीति० सश्चस्थिते यज्ञे दक्षिणतः परीत्य पूर्णपात्रं निनयति० तदङ्गलिना प्रतिगृह्णाति^२ सं वर्चसा.... यद्विलिष्टमिति० अथ मुखमुपस्पृशते^३० ॥

वाकासं [२.४-६]—

घृताचीं स्थो....॥ अग्नेऽदब्धायोऽशीतम....॥ --- यशोभगिन्धै स्वाहा ॥
उल्लखले मुसले यच्च शूर्प आशिश्लेष दृषदि यत्कपाले । उत्पुषो विपुषः संप्र-
जुहोमि सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥ आप्यायतां ध्रुवा हविषा
घृतेन यज्ञं यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः । सूर्याया ऊधो अदित्या उपस्थ
उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् ॥ देवा गातुविदो गातुमित्वा गातुमित....॥
--- रक्षसां भागोऽसि ॥ वेषोऽस्युपवेषो द्विषतो ग्रीवा उपवेविद्धि । वेशाश्च
अग्ने सुभग धारयेह ॥ ऋद्धाः कर्मण्या अनपायिनो यथाऽसन् ॥ जुहोमि
त्वा सुभग सौभगाय पुरुतमं पुरुहूत श्रवस्यन् ॥ सं वर्चसा पयसा.... ॥
यज्ञं शं च त उप च । शिवे मे संतिष्ठस्वाऽरिष्टे मे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे
संतिष्ठस्व ॥

काशत्रा [२.८.३-४] ≡ शत्रा

असं—

न ग्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।

आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित्तत्र भद्रम् ॥७.१९.२

सं वर्चसां पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
 त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो माह्वं तन्वो यद्विरिष्टम् ॥६.५३.३॥
 देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
 याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥

७.५१.१

सुगार्हपत्यो व्रितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥१२.२.४५॥
 उल्लखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
 यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाऽग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१०.९.२६॥
 यो अग्नौ रुद्रो यो अप्सवन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
 य इमा विश्वा भुवनानि चाकूपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥७.९२.१॥
 वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् ।
 इहैव त्वमजस्र एध्यग्रे ॥७.८३.१॥

अहं वि ज्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन्मनसः कुलायम् ।
 न स्तेयमग्नि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रद्धानो वरुणस्य पाशान् ॥
 प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाऽबन्धात् सविता सुशेवाः ।
 उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै बधु ॥१४.१.५७-५८॥
 वेदः स्वस्तिर्द्विघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
 हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥७.२९.१॥
 यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
 जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥
 सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
 वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं धर्मं दिवमा रोहताऽनु ॥
 यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योर्नि गच्छ स्वाहा ॥
 एष ते यज्ञो यज्ञपते सहस्रक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥
 वषड्ढुतेभ्यो वषड्ढुतेभ्यः । देवा गातुविदो गातुं विच्चा गातुमित ॥
 मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
 स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहाऽन्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥

७.१०२.३-८

सप्तुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सप्तुषीः ।
 वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥६.२३.१॥

येषां प्रयाजा उत वाऽनुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।

येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥१.३०.४

यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।

यदेव किं च प्रतिजग्रहाऽहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥६.७१.१

अपैसं—

न घ्नस्तताप प्र सदस्यते ? । मदमित् ॥२०.३.७॥ सं
वर्चसा । त्वष्टा सुदत्रो वरिवः तन्वो विरिष्टम् ॥१९.८.३॥ सुगार्ह-
पत्यो वितपन्नरातीरुषामुषां श्रेयान् श्रेयसीं दधत् ॥१७.३४.६॥ उलूखले
.... ॥१६.१३८.७॥ यो रुद्रो अग्नौ अस्त्यद्य ॥२०.३२.६॥ वि
ते मुञ्चामि ॥२०.३१.९॥ अहं वि ष्यामि पाशम् ॥१८.६.५॥
प्र त्वा मुञ्चामि ॥१८.२.६॥ वेदः स्वस्तिर्द्रविणः हविरिदं
जुषध्वम् ॥२०.३०.४॥ यानावह पुनरग्रे स्वे सधस्थे । ॥
२०.३४.३॥ सुगा वो देवाः सदना कृणोमि य आचष्टेदं सवनं
जुषाणाः । बहमाना भरमाणा दध् ? बसुं धर्मं तमुदातिष्ठताऽनु
॥२०.१२.२॥ यज्ञ यज्ञं गच्छ ॥२०.३४.५॥ एष ते यज्ञो यजमान
सहस्रक्तो नमोवाकः सुवीरः । स्वाहा ॥२०.३४.६॥ मनसस्पत इमं
देवयज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥२०.३४.७॥ स्वाहा
हुतेभ्यो वषट्हुतेभ्यः । देवा गातुविदो गातुं ज्ञात्वा गातुमित स्वाहा
॥२०.३४.८॥ ससुषी° ब्रुवे ॥१९.४.१०॥ येषां प्रयाजा ।
येषां वयः ? ॥१.१४.४॥ यदन्न° वासो हिरण्य° । यद्देवानां
चक्षुष्यागो अस्त्यग्निष्ट° ॥२.२८.२-३

गोत्रा [१.३.९-१०]—यत् पत्नीसंयाजाः पुरोनुवाक्यावन्तो भवन्ति० यत्समिष्ट-
यजुरपुरोनुवाक्यावद्भवति० अथ ये पुरस्तादष्टावाज्यभागाः पञ्च प्रयाजा द्वावाधारौ द्वावाज्यभागा-
वाग्नेय आज्यभागानां प्रथमः सौम्यो द्वितीयो हविर्भागानाम् । हविर्होम सौम्यमाग्नेयः पुरोडाशो-
ऽग्नीषोमीय उपांशुयाजोऽग्नीषोमीयः पुरोडाशोऽग्निः स्विष्टकृदित्येते मध्यतः पञ्च हविर्भागाः ।
अथ ये षट् प्राजापत्या इडा च प्राशित्रं च यच्चाऽऽग्नीध्रायाऽवचति ब्रह्मभागो यजमान-
भागोऽन्वाहार्य एव षष्ठः । अथ य उपरिष्टादष्टावाज्यभागाल्लयोऽनुयाजाश्चत्वारः पत्नीसंयाजाः
समिष्टयजुरष्टमम्० ॥

पत्नीसंयाजहौत्रम्

ऋसं—

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥१.९१.१६
 सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृण्यान्यभिमातिषाहः ।
 आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१.९१.१८
 इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥१.९३.१०
 तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
 यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥३.४.९
 देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
 याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥
 उत ग्रा व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्राय्यश्विनी राट् ।
 आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥५.४६.७-८
 'अभिर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
 देवानाम्भुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥६.१५.१३

१. “अथ प्रजाकामो राकां सिनीवालीं कुहूमिति प्राग्वहपतेर्यजेत” इति आश्वश्रौ०
 (१.१०) । तत्र राकायाः सिनीवाल्याश्च सूत्रोक्ते याज्यापुरोनुवाक्ये ऋग्वेद उपलभ्येते । कुहू
 याज्यानुवाक्ये आश्वश्रौ० मध्ये पठिते । एताः सर्वा ऋचोऽधो दीयन्ते—

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
 सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥
 यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
 ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥
 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
 जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिङ्ढि नः ॥
 या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुस्रवरी ।
 तस्यै विश्रपत्न्यै हविः सिनीवालयै जुहोतन ॥२.३२.४-७
 कुहूमहं सुवृतं विब्रनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।
 सा नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्यै ते देवि हविषा विधेम ॥
 कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषः शृणोतु ।
 सं दाशुषे किरतु भूरि वामं रायस्पोषं यजमाने दधातु ॥

(अभिर्होता, पृष्ठं हव्यम्)

हव्यवाळग्रिरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
 सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ॥५.४.२
 वयमु त्वा गृहपते जनानामग्रे अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
 अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशधि ॥६.१५.१९
 यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि पिताममुञ्चता यजत्राः ।
 एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्रे प्रतरं न आयुः ॥४.१२.६;१०.१२६.८
 प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाऽवघ्नात्सविता सुशेवः ।
 ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥१०.८५.२४
 तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
 अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥१०.५३.६
 अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥
 इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळमस्य पांसुरे ॥१.२२.१६-१७
 एतेनाऽग्रे ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
 उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥१.३१.१८

तैत्रा [३.५.१२-१३]—

आप्यायस्व समेतु ते.... ॥ सं ते पयांसि ससु यन्तु वाजाः.... ॥ इह
 त्वष्टारमग्रियं.... ॥ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्तु.... ॥ देवानां पत्नीरुशती-
 र्वन्तु नः.... ॥ उत ग्रा वियन्तु देवपत्नी°.... ॥ 'अग्निर्होता गृहपतिः
 स राजा.... ॥ वयमु त्वा गृहपते जनानां.... ॥

(पूर्वस्मात् पृष्ठात्)

एताः सर्वा ऋचः तैसं ३.३.११ अत्राप्युपलभ्यन्ते । तत्र 'कुहूमहम्' इत्युचि 'सुहृतम्'
 इत्यस्य स्थाने 'सुभगाम्' इति, 'तस्यै ते' इत्यस्य स्थाने 'तस्यास्ते' इति पाठः । 'कुहूर्देवानां°'
 इत्युचि 'शृणोतु' इत्यत्र 'चिकेतु', 'यजमाने' इत्यत्र 'चिकितुषे' इति च पाठः ।

१. "अथ हैके राकां सिनीवालीं च कुहूं चानुमतिं च०" इति बोधायन(२४.२९)-
 सूत्रानुसारं विकल्पेनाद्यौ पत्नीसंयाजाः । तत्र राकासिनीवालीकुहूनां याज्यानुवाक्याः पूर्वं प्रदर्शिता
 एव । अनुमत्या याज्यापुरोनुवाक्ये अपि तैसं ३.३.११ अत्रैवोपलभ्येते, ते अत्रोद्ध्रियेते—

अनु नोऽद्याऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
 अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मयः ॥
 अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नः कृधि ।
 ऋत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयुषि तारिषः ॥

उपहूतः रथन्तरः सह पृथिव्योप मा रथन्तरः सह पृथिव्या ह्ययतामुपहूतं
 वामदेव्यः सहाऽन्तरिक्षेणोप मा वामदेव्यः सहाऽन्तरिक्षेण ह्ययतामुपहूतं
 बृहत्सह दिवोप मा बृहत्सह दिवा ह्ययतामुपहूताः सप्त होत्रा उप मा सप्त
 होत्रा ह्ययन्तामुपहूता धेनुः सहर्षभोप मा धेनुः सहर्षभा ह्ययतामुपहूतो भक्षः
 सखोप मा भक्षः सखा ह्ययतामुपहूता ३५ हो । इडोपहूतोपहूतेडोपो अस्माः
 इडा ह्ययतामिडोपहूतोपहूतेडा । मानवी घृतपदी मैत्रावरुणी ब्रह्म देवकृत-
 मुपहूतं दैव्या अध्वर्यव उपहूता उपहूता मनुष्याः । य इमं यज्ञमवान्
 ये यज्ञपत्नीं वर्धानुपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे क्रतावरी देवी देवपुत्रे ।
 उपहूतेयं यजमानेन्द्राणीवाऽविधवाऽदितिखि सुपुत्रोत्तरस्यां देवयज्या-
 यामुपहूता भूयसि हविष्करण उपहूता दिव्ये धामन्नुपहूता इदं मे देवा
 हविर्जुषन्तामिति तस्मिन्नुपहूता । विश्वमस्याः प्रियमुपहूतं विश्वस्य प्रिय-
 स्योपहूतस्योपहूता ॥

शांत्रा [३.९]—

अथ यद् गार्हपत्ये पत्नीसंयाजैश्चरन्ति० ते वै चत्वारो भवन्ति० ते वा उपांशु
 भवन्ति० अथ सोमं त्वष्टारं देवानां पत्नीरग्निं गृहपतिमिति यजति० सोमं प्रथमं यजति०
 त्वष्टारं द्वितीयम्० ततः पत्न्यः० अथ यदग्निं गृहपतिमन्ततो यजति० अथ यद्वचं जपति०
 अथ यदिडामुपह्वयते यन्मार्जयते यच्छंयोर्वाकमाह तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यद्वेदे पत्नीं वाच-
 यति० तस्मात्पत्नी वेदतृणान्यन्तरोरु कुरुते । अथ यद्वेदं स्तृणाति० अथ यद्वेदातिशेषमुप-
 तिष्ठते० अथ यदाहवनीयमुपतिष्ठते० अथ यदप उपस्पृशति० ॥

विष्णुक्रमः

तैसं [१.६.५-६]—

विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा गायत्रेण छन्दसा पृथिवीमनु वि क्रमे निर्भक्तः
 स यं द्विष्मः ॥ विष्णोः क्रमोऽस्यभिश्चिस्तिहा त्रैष्टुभेन छन्दसाऽन्तरिक्षमनु
 वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥ विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता
 जागतेन छन्दसा दिवमनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥ विष्णोः
 क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभेन छन्दसा दिशोऽनु वि क्रमे निर्भक्तः
 स यं द्विष्मः ॥ अगन्म सुवः सुवरगन्म संदृशस्ते मा च्छित्सि यत्ने

तपस्तस्मै ते माऽऽवृक्षि ॥ सुभूरसि श्रेष्ठो रश्मीनामायुर्धा अस्यायुर्मे धेहि
वर्चोधा असि वर्चो मयि धेहि ॥ इदमहमद्युं भ्रातृव्यमाभ्यो दिग्भ्योऽस्यै
दिवोऽस्मादन्तरिक्षादस्यै पृथिव्या अस्मादन्नाद्यान्निर्भजामि निर्भक्तः स
यं द्विष्मः ॥ सं ज्योतिषाऽभूवम् ॥ ऐन्द्रीमावृतमन्वावर्ते ॥ समहं प्रजया
सं मया प्रजा समहं रायस्पोषेण सं मया रायस्पोषः ॥ समिद्धो अग्ने मे
दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासम् ॥ वसुमान् यज्ञो वसीयान् भूयासम् ॥
अग्न आयूषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत्पोषं रयिं मयि ॥
अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिर्मया त्वं
गृहपतिना भूयाः शतं हिमास्तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीं तामा-
शिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीम् ॥ कस्त्वा युनक्ति स त्वा वि मुञ्चतु ॥
अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मे राधि ॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स वावृधे ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मां अधिपतीन् करोतु
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
गोमां अग्नेऽविमां अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इडावा एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुधः सभावान् ॥

तैत्रा [३.७.६]—

उद्यन्नद्य मित्रमहः सपत्नान् मे अनीनशः ।
दिवैनान् विद्युता जहि निम्नोचन्नधरान् कृधि ॥
उद्यन्नद्य वि नो भज पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
दीर्घायुत्वस्य हेशिषे तस्य नो देहि सूर्य ॥
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मम रन्धयन्मो अहं द्विषतो रधम् ॥
यो नः शपादशपतो यश्च नः शपतः शपात् ।
उषाश्च तस्मै निम्नुक् च सर्वं पापं समूहताम् ॥

यो नः सपत्नो योऽरणो मर्तोऽभिदासति देवाः ।

इध्मस्येव प्रक्षायतो मा तस्योच्छेषि किंचन ॥

तैसं [१.७.५-६]—

यद्विष्णुक्रमान् क्रमते० दक्षिणा पर्यावर्तते० आग्निपावमानीभ्यां गार्हपत्यमुप तिष्ठते० पुत्रस्य नाम गृह्णाति० तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रोऽजातः स्यात्० तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रो जातः स्यात्० इष्ट्वा प्राङ्मुक्तस्य ब्रूयाद्रोमा५ अग्नेऽविमा५ अश्वी यज्ञ इति० ॥

मैसं [१.४.२-३]—

विष्णुः पृथिव्या० व्यक्र०स्त गायत्रेण छन्दसा निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥
विष्णुरन्तरिक्षे व्यक्र०स्त त्रैष्टुमेन छन्दसा निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥
विष्णुर्दिवि व्यक्र०स्त जागतेन छन्दसा निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥ अगन्म
स्वः सं ज्योतिषाऽभूम ॥ इदमहममुष्य प्राणं निवेष्टयामि ॥ तेजोऽसि ॥
समहं प्रजया सं मया प्रजा समहं पशुभिः सं मया पशवः ॥ अग्ने गृहपते
सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयास० सुगृहपतिस्त्वं मया गृहपतिना
भूयाः ॥ अस्थूरिणौ गार्हपत्यं दीदायज्शत० हिमाद्रायू राधा०सि
संपृञ्चाना असंपृञ्चानौ तन्वोऽसा अनु मा तनु ॥ अछिन्नो दिव्यस्तन्तुर्मा
मानुषश्छेदि दिव्याद्राम्नो मा छित्सि मा मानुषाज्ज्योतिषे तन्तवे त्वा ॥
ये देवा यज्ञहनः पृथिव्यामध्यासते ।

अग्निर्नस्तेभ्यो रक्षतु गळेम सुकृतो वयम् ॥

ये देवा यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासते ।

अग्निर्नस्तेभ्यो रक्षतु गळेम सुकृतो वयम् ॥

यास्ते रात्रयः सवितर्देवयानीः सहस्रयज्ञमभिसंबभूवुः ।

गृहैश्च सर्वैः प्रजया न्वग्ने स्वो रुहाणास्तरता रजा०सि ॥

ये देवा यज्ञहनो अन्तरिक्षे अध्यासते ।

वायुर्नस्तेभ्यो रक्षतु गळेम सुकृतो वयम् ॥

ये देवा यज्ञमुषो अन्तरिक्षे अध्यासते ।

वायुर्नस्तेभ्यो रक्षतु गळेम सुकृतो वयम् ॥

आगन्म मित्रावरुणा वरेण रात्रीणां भागो युवयोर्यो अस्ति ।

नाकं गृष्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥

ये देवा यज्ञहनो दिव्यध्यासते । सूर्यो नस्तेभ्यो रक्षतु गळेम सुकृतो वयम् ॥

ये देवा यज्ञमुषो दिव्यध्यासते.... ॥

येनेन्द्राय समभरन् पयांस्युत्तमेन हविषा जातवेदः ।

तेनाग्ने त्वमुत वर्धया मां सजातानां मध्ये श्रैष्ठ्या आधेहि मा ॥

[१.४.७-८]—०पुत्रस्य नाम गृह्णाति० ॥

कासं [५.५-६]—

पृथिवीं विष्णुर्व्यक्रीस्त गायत्रेण छन्दसा निर्भक्तो यं द्विष्मः ॥ अन्तरिक्षं
विष्णुर्व्यक्रीस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा.... ॥ दिवं विष्णुर्व्यक्रीस्त जागतेन
छन्दसा.... ॥ दिशो विष्णुर्व्यक्रीस्ताऽऽनुष्टुभेन छन्दसा.... ॥ अगन्म
स्वस्सं ज्योतिषाऽभूम ॥ सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्ते ॥ इदमहं योऽस्मान्
द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणं निवेष्टयामि ॥ तेजोऽसि तेजो मयि
धेहि ॥ समहं प्रजया सं मया प्रजा समहं रायस्पोषेण सं मया
रायस्पोषः ॥ अग्नेस्तेजसा तेजस्वी भूयासं वायोरायुषाऽऽयुष्मान् भूयासी
सूर्यस्य वर्चसा वर्चस्वी भूयासमिन्द्रस्येन्द्रियेणेन्द्रियावान् भूयासं धाता
मे धाम्ना सुधां दधातु प्रजापतेः प्रजया प्रजावान् भूयासम् ॥ अग्ने
गृहपते.... हिमाद्राय ॥

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासते ।

अग्निर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥

यास्ते रात्रयं.... ॥

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासते ।

वायुर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥

आगन्म मित्रावरुणा वरेभ्यं.... । नाकं गृह्णानाः.... ॥

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषो दिव्यध्यासते ।

सूर्यो मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥

येनेन्द्राय.... वर्धयेमीं सुजातानीं श्रैष्ठ्य आधेहेनम् ॥

गोमी अग्नेऽविमी अश्वी.... ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तत्ते प्रब्रूमस्तन्नो गोपाय ॥

कासं [३२.५-६]—पृथिवीं विष्णुर्व्यक्रीस्त गायत्रेण छन्दसेति० अग्ने व्रतमचारिषमिति० ॥

वासं [२.२५-२८]—

दिवि विष्णुर्व्यक्रीस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि

यं च वयं द्विष्मः ॥ अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रं^५स्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो
निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रं^५स्त
गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
अस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायै ॥ अगन्म स्वः सं ज्योतिषाऽभूम ॥ स्वयंभूरसि
श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ॥ सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्ते ॥ अग्ने
गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासं^५ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने
गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतं^५ हिमाः ॥
सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्ते ॥ अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मे राधि ॥
इदमहं य एवाऽस्मि सोऽस्मि ॥

शत्रा [१.९.३]—

अथ विष्णुक्रमान् क्रमते० तद् तद् दिवि विष्णुर्व्यक्रं^५स्त.... प्रतिष्ठायया इति०
अथ प्राङ् प्रेक्षते० स प्रेक्षते अगन्म स्वः इति० सं ज्योतिषाऽभूमेति० अथ सूर्यमुदीक्षते० स
उदीक्षते स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिरिति० अथाऽऽवर्तते सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्त इति० अथ गार्हपत्य-
मुपतिष्ठते० स उपतिष्ठते अग्ने गृहपते.... इति० अथाऽऽवर्तते सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्त इति०
अथ पुत्रस्य नाम गृह्णाति । इदं मेऽयं वीर्यं पुत्रोऽनुसंतनवदिति । यदि पुत्रो न स्याद् अप्यात्मन
एव नाम गृह्णीयात् । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते प्राङ् मे यज्ञोऽनुसंतिष्ठतै इति । तूष्णीमुपतिष्ठते ।
अथ व्रतं विसृजते इदमहं य एवाऽस्मि सोऽस्मीति० ॥

[१.१.१.३; ६]—अथ स^५स्थिते विसृजते अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं
तन्मेऽराधीति० अथ स^५स्थिते विसृजते इदमहं य एवाऽस्मि सोऽस्मीति० ॥

[११.१.३]—अथ यदामावास्येनेष्ट्वा । अदित्यै चरुमनुनिर्वपति० तस्मान्नाऽनु-
निर्वपेत्० स यद्यनुनिर्वपेत् दद्यादक्षिणाम्० ॥

[११.१.२]—आजिं वा एते धावन्ति ये दर्शपूर्णमासाभ्यां यजन्ते । स वै
पञ्चदश वर्षाणि यजेत । तेषां पञ्चदशानां वर्षाणां त्रीणि च शतानि षष्टिश्च पौर्णमास्यश्चा-
ऽमावास्याश्च० अथाऽपराणि पञ्चदशैव वर्षाणि यजेत० तस्माद् त्रिंशत्तमेव वर्षाणि यजेत० ॥

वाकासं [२.६]—

दिवि विष्णुर्व्यक्रं^५स्त जागतेन छन्दसा --- ॥ सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्ते ॥
अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपत्या भूयासं सुगृहपतिस्त्वं मया
गृहपत्या भूयाः । अस्थूरि णो.... शतं^५ हिमाः । तिग्मेन नस्तेजसा स^५
शिशधि ॥ सूर्यस्याऽऽवृतमन्वावर्ते ॥ उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय

नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर ॥ ततोऽसि तन्तुरस्यनु
मा तनुहि । अस्मिन् यज्ञेऽस्या५ साधुकृत्यायामस्मिन्नन्नेऽस्मिँल्लोके ।
इदं मे कर्मेदं वीर्यं पुत्रोऽनु संतनोतु ॥ अग्ने व्रतपते ॥य एवाऽस्मि
स एवाऽस्मि ॥

काशब्रा [२.१.१; २.८.४] ≡ शब्रा

असं—

सं वर्चसा पयसा सं तनूभि° ॥६.५३.३
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ॥७.२६.३¹
प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥२.१६.१
ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥२.१७.१

अपैसं—

सं वर्चसा.... ॥१९.८.३॥ प्राणापानौ.... ॥२.४३.३

दर्शपूर्णमासप्रायश्चित्तानि

दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयेत्

तैसं [२.२.२]—अग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यो दर्शपूर्णमासयाजी
सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयेत्० अनड्वान् दक्षिणा वही ॥

[१.१.१४]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् सेदु होता सो अश्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥

तैसं [२.२.५]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपाद्य ॥

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द५स-

नाभ्यो.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो.... ॥ जातो यदग्रे.... ॥ त्वमग्रे
शोचिषा.... ॥ अस्माकमग्रे.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम....^१ ॥

मैसं [२.१.१०]—अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य प्रज्ञातेष्टिरतिपद्येत०
अनड्वान् दक्षिणा० ॥

[४.११.४]—

पुरुत्रा हि सदङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥
अग्रे नय सुपथा.... ॥ आ देवानामपि पन्थामगन्म.... ॥

कासं [१०.५]—अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य पौर्णमासी वाऽमावस्या
वाऽतिपद्येत० वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यद्यज्ञे प्रतत एतामन्तरेष्टिं निर्वपति । य एवाऽसा आग्नेयो-
ऽष्टाकपालः पूर्णमासे योऽमावस्यायां तमग्नये पथिकृते कुर्यात्० ॥

[६.१०]—

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाऽञ्जसा । अग्रे यज्ञेषु सुक्रतो ॥
अग्रे नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥

ऐत्रा [७.८]—य अहिताग्निरमावास्यां पौर्णमासीं वाऽतीयात्० सोऽग्नये पथि-
कृतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—वेत्था हि वेधो अध्वनः,
आ देवानामपि पन्थामगन्म (ऋसं ६.१६.३; १०.२.३) इति । आहुतिं वाऽऽ-
हवनीये जुहुयादग्नये पथिकृते स्वाहेति० ॥

गोत्रा [२.१.१३]—अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य प्रज्ञातेष्टिरतिपद्येत०
अनड्वान् दक्षिणा० ॥

अन्वाहिताग्नेराहवनीय उद्वायति

तैत्रा [३.७.१]—योऽग्नीनन्वाधाय व्रतमुपैति । स यदुद्वायति । विष्णुतिरेवाऽस्य
सा । तं प्राञ्चमुद्धृत्य । मनसोपतिष्ठेत्० भूरित्याह० ॥

कासं [३५.१७]—योऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति स यदनिष्ट उद्वायात्० प्राञ्च-
मुद्धृत्य मनसोपतिष्ठेत्० भूरिति व्याहरेत्० ॥

कपिसं [४८.१५] ≡ कासं

व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्बुका भवति

तैत्रा [३.७.१]—यस्य व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्बुका भवति । तामपरुष्य यजेत । सर्वेणैव यज्ञेन यजते । तामिष्ट्वोपह्वयेत । अमूहमस्मि । सा त्वम् । द्यौरहम् । पृथिवी त्वम् । सामाऽहम् । ऋक् त्वम् । तावेहि संभवाव । सह रेतो दधावहै । पुंसे पुत्राय वेत्तवै । रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय इति । अर्ध एवैनामुपह्वयते ॥

कासं [३.५.१८]—यस्य व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्बुका भवति तामपरुष्य यजेत । तामिष्ट्वोपह्वयेत सा त्वमस्यमोऽहममोऽहमस्मि सा त्वम् । ता एहि संभवावहै पुंसे पुत्राय कर्तवै । रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय इति ॥

कपिसं [४८.१६] ≡ कासं

आहिताग्निः सन्नव्रत्यमिव चरेत्

तैसं [२.२.२]—अग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नव्रत्यमिव चरेत् ॥

[१.१.१४]—

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्चं विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥
त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीज्यः ॥
यद्भो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विधमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाः ऋतुभिः कल्पयाति ॥

मैसं [२.१.१०]—अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन् प्रवसेत् । बहु वा एष व्रतमतिपादयति य आहिताग्निः सन् प्रवसति व्रत्ये ह्यहनि क्रियं वोपैति मांसं वाऽश्नाति ॥

[४.११.४]—त्वमग्ने व्रतपा असि.... ॥ यद्भो वयं प्रमिनाम व्रतानि.... ॥

कासं [१०.५]—अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निस्सन्नव्रत्यं चरेत् ॥

[६.१०]—त्वमग्ने व्रतपा असि.... ॥ यद्भो वयं प्रमिनाम व्रतानि.... ॥

ऐत्रा [७.८]—य आहिताग्निरुपवसथेऽव्रत्यमापद्येत् । सोऽग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—त्वमग्ने व्रतपा असि, यद्भो वयं प्रमिनाम व्रतानि (ऋसं ८.११.१; १०.२.४) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये व्रतपतये स्वाहेति ॥

उपवसथेऽश्रु कुर्वीत

ऐत्रा [७.८]—य आहिताग्निरुपवसथेऽश्रु कुर्वीत० सोऽग्नये व्रतभृतेऽष्टाकपाळं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिः, व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदब्धः (आश्वश्रौ ३.१२) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये व्रतभृते स्वाहेति० ॥

आहिताग्निरुपवसथे म्रियेत

ऐत्रा [७.१]—य आहिताग्निरुपवसथे म्रियेत कथमस्य यज्ञः स्यादिति । नैनं याजयेदित्याहुः ॥

अन्वाधाय अनिष्ट्वा प्रयायात्

तैत्रा [३.७.१]—योऽग्नीनन्वाधाय व्रतमुपैति । स यदनिष्ट्वा प्रयायात्० स जुहुयात् । तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम । विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे इति ।

कासं [३५.१७]—योऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति स यदनिष्ट्वा प्रयायात्० स प्रयास्यजुहुयात् तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम....इति० ॥

कपिसं [४८.१५] ≡ कासं

हविषे वत्सा अपाकृता धयन्ति

तैत्रा [३.७.१]—ओषधीर्वा एतस्य पशून् पयः प्रविशति यस्य हविषे वत्सा अपाकृता धयन्ति । तान् यदुह्यात् । यातयाम्ना हविषा यजेत । यन्न दुह्यात् । यज्ञपरुरन्तरियात् । वायव्यां यवागूं निर्वपेत्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपाकुर्यात्० ॥

कासं [३५.१७]—ओषधीर्वा एतस्य पयः पशून् प्रविशति यस्य हविषेऽपाकृता वत्सा धयन्ति । वायव्यां यवागूं निर्वपेत्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत् ॥

कपिसं [४८.१५] ≡ कासं

स्कन्नम्

मैसं [१.४.९]—देवान् जनमगन् यज्ञ इति स्कन्नमभिमन्त्रयेत्० ॥

[१.४.४]—

देवान् जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥ पितॄन् जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥ मनुष्यान् जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥ अप ओषधीर्वनस्पतीन् जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥ पञ्चजनं जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥

कासं [३२.६]—देवाञ्जनमगन् यज्ञ इति । जनं वा एतच्चज्ञस्यैति यत्स्कन्दति० ।

[५.६]—

देवाञ्जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु॥ पितृन्^१ सर्पान् गन्धर्वा-
नप ओषधीः पञ्च जनाञ्जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याऽऽशीरागच्छतु ॥

सायं दुग्धं हविरार्तिमार्छति

तैब्रा [३.७.१]—यस्य सायं दुग्धं हविरार्तिमार्छति । इन्द्राय व्रीहीनिरूप्योप-
वसेत्० पय एवाऽऽरभ्य गृहीत्वोपवसति । यत्प्रातः स्यात् । तच्छृतं कुर्यात् । अथेतर ऐन्द्रः
पुरोडाशः स्यात्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपाकुर्यात्० ॥

कासं [३५.१८]—यस्य सायं दुग्धं हविरार्तिमार्छतिन्द्राय व्रीहीनिरूप्योपवसेत्०
यत्प्रातः स्यात्तच्छृतं कुर्युरैन्द्र इतरः पुरोडाशस्यात्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्० ॥

कपिसं [४८.१६] ≡ कासं

ऐब्रा [७.४]—यस्य सायं दुग्धं सांनार्यं दुग्धेद्राऽपहरेद्रा० प्रातर्दुग्धं द्वैधं कृत्वा
तस्याऽन्यतरां भक्तिमातप्य तेन यजेत० ॥

पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति (अभ्युदयेष्टिः)

तैसं [२.५.५]—यस्य हविर्निरुतं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति त्रेधा तण्डुलान्
विभजेत् । ये मध्यमाः स्युस्तानग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं कुर्याच्चि स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे
दधश्चरुम् येऽणिष्ठास्तान् विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुम्० ॥

[२.२.१२]—

अग्ने दा दाशुषे रयिं.... ॥ दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणो.... ॥

अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषि यः सहस्रा सनोति ।

अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाऽग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥

मा नो मर्ध्वीरा भरा दद्वि तन्नः.... ॥ आ तू भर माकिरेतत् परि घात्....॥

घृतं न पूतं तनूरेपाः.... ॥ उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो.... ॥ वषट् ते विष्णवांस

आ कृणोमि.... ॥ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नाम.... ॥ किमिच्छे विष्णो

परिचक्ष्यं भूत.... ॥

मैसं [२.२.१३]—यस्य सांनार्यं चन्द्रमा अभ्युदियाद्ये पुरोडाश्याः स्युस्ता-
त्रेधा कुर्यात् । ये मध्यमास्तमग्नये दात्रेऽष्टाकपालं निर्वपेत् । ये स्थविष्ठास्तमिन्द्राय प्रदात्रे
दधश्चरुम् । ये क्षोदिष्ठास्त विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुम्० ॥

[४.१२.३]—

इडामग्रे पुरुद॑स॑ सर्नि गोः.... ॥ त्वं नो अग्रे वरुणस्य.... ॥ दीर्घस्ते
अस्त्वङ्कुशो.... ॥ भद्रा ते हस्ता सुकृतोत.... ॥ किमिच्छे विष्णो
परिचक्ष्य.... ॥ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट.... ॥

शत्रा [११.१.४]—

तद्वैके दृष्ट्वोपवसन्ति । श्वो नोदेतेति । अभस्य वा हेतोः । अनिर्ज्ञाय वा ।
अथ उत उपवसन्ति । अथैनमुताऽभ्युदेति । स यद्यगृहीतं हविरभ्युदियात् प्रज्ञातमेवैतत् ।
एषैव व्रतचर्या । यत्पूर्वेद्युर्दुग्धं दधि हविरातश्चनं तत्कुर्वन्ति । प्रति प्रमुञ्चन्ति वत्सान्, तान्
पुनरपाकुर्वन्ति । तानपराह्णे पर्णशाखयाऽपाकरोति० यद्यु व्रतचर्या वा नोदाशङ्सेत । गृहीतं
वा हविरभ्युदियात् । इतरथो तर्हि कुर्यात् । एतानेव तण्डुलान् सुफलीकृतान् कृत्वा स
येऽणीयाश्चस्तानग्नये दात्रेऽष्टाकपालं पुरोडाशं श्रपयति । अथ यत्पूर्वेद्युर्दुग्धं दधि तदिन्द्राय
प्रदात्रे । अथ तदानीं दुग्धे विष्णवे शिपिविष्टाय ताश्चस्तण्डुलाञ्छृते चरुं श्रपयति० तत्रो
यञ्छन्नुयात्तद्वात्० ॥

काशत्रा [१३.१.२] ≡ शत्रा

शत्रा [४.२]—अथाऽतोऽभ्युदितायाः । एति ह वा एष यज्ञपथाद्यस्योपवसथे
पुरस्ताच्चन्द्रो दृश्यते । सोऽग्नये दात्रेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपति० इन्द्राय प्रदात्रे सायं दोहितं
दधि० विष्णवे शिपिविष्टाय प्रातर्दोहिते पयसि चरुम् । तिसृधन्वं दक्षिणा० ॥

गोत्रा [२.१.९]—यस्य हविर्निरुप्तं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदियात्तास्त्रेधा तण्डुलान्
विभजेत् । ये मध्यमास्तानग्नये दात्रेऽष्टाकपालं निर्वपेत् । ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे दधनि
चरुम् । ये क्षोदिष्ठास्तान् विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुम् ॥

पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति (अभ्युदितेष्टिः)

शत्रा [११.१.५]—

अद्याऽमावास्यायेति मन्यमान उपवसति । अथैव पश्चाद्दृश्ये० स आमावास्याविधेनैवेष्ट्वा
अथेष्टिमनुनिर्वपति । तदहवैव श्वो वा । तस्यै त्रीणि हवींषि भवन्ति । अग्नये पथिकृतेऽष्टा-
कपालं पुरोडाशमिन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपालमग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं पुरोडाशम् । स
यदग्नये पथिकृते निर्वपति० अथ यदिन्द्राय वृत्रघ्ने० अथ यदग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं
पुरोडाशं निर्वपति० तस्यै सप्तदश सामिवेन्यो भवन्ति । उपांशु देवता यजति । याः काम-
यते ता याज्यानुवाक्याः करोति । एवमाज्यभागौ । एवम् संयाज्ये । तिसृधन्वं दक्षिणां
ददाति० दण्डं दक्षिणां ददाति० एषा न्वादिष्टा दक्षिणा । दद्यात्स्वेवाऽस्यामप्यन्यत् । या इतरा
दक्षिणास्तासां यत्संपद्येत० ॥

काश्रा [१३.१.२] ≡ श्रा

श्रा [४.३]—अथाऽतोऽभ्युद्दृष्टायाः । एति ह वा एष यज्ञपथाद्यस्योपवसथे पश्चाच्चन्द्रो दृश्यते । सोऽग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपति० इन्द्राय वृत्रघ्न एकादश-
कपालम्० वैश्वानरीयं द्वादशकपालम्० दण्डोपानहं दक्षिणा० ॥

पवित्रं नश्येत्

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्यदि पवित्रं नश्येत्० सोऽग्नये पवित्रवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते, तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे (ऋसं ९.८३.१; २) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये पवित्रवते स्वाहेति० ॥

उभयं हविरार्तिमार्छति

तैत्रा [३.७.१]—यस्योभयं हविरार्तिमार्छति । ऐन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेत् । अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपाकुर्यात्० ॥

कासं [३५.१८]—यस्य सायं प्रातर्दुग्धं हविरार्तिमार्छत्योदनं पञ्चशरावं निर्वपेत् । अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत्० अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्० ॥

कपिसं [४८.१६] ≡ कासं

ऐत्रा [७.४]—यस्य सर्वमेव सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा० ऐन्द्रं वा माहेन्द्रं वेति समानम्० ॥

प्रातर्दुग्धं सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा

ऐत्रा [७.४]—यस्य प्रातर्दुग्धं सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा० ऐन्द्रं वा माहेन्द्रं वा पुरोळाशं तस्य स्थाने निरुप्य तेन यजेत्० ॥

श्वा वा अनो वा रथो वाऽन्तराऽग्नी धावति

अग्निहोत्रहोमप्रायश्चित्तेषु द्रष्टव्यम् (तैत्रा १.४.३-४; मैसं १.८-९; श्रा १२.४.१.४-५)

अधिश्रितेऽग्निहोत्रे सांनाय्ये वा हविःषु वा म्रियेत

ऐत्रा [७.१]—य आहिताग्निरधिश्रितेऽग्निहोत्रे सांनाय्ये वा हविःषु वा म्रियेत० अत्रैवान्यनुपर्यादध्याद्यथा सर्वाणि संदह्येरन्० ॥

कपालं भिद्येत

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्य कपालं भिद्येत तत्संदध्याद्वायत्र्या त्वा शताक्षरया संदधामि इति० ॥

कपालं नश्येत्

तैसं [२.६.३]—यदि नश्येदाश्विनं द्विकपालं निर्वपेद् द्वावापृथिव्यमेक-
कपालम् ॥

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्य कपालं नश्यति तं वा इयं स्वर्गाल्लोकादन्तर्द-
धाति । यदा तद्भविः संतिष्ठेताऽथाऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् ॥

[४.१०.१]

पृथुपाजा अमर्त्यो.... ॥ तं सबाधो यतस्तुच.... ॥ अग्ने रक्षा णो
अहसः.... ॥ त्वं नः सोम विश्वतो.... ॥ वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥
पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः.... ॥ अग्ने
त्वं पारया नव्यो.... ॥

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्यदि कपालं नश्येत् ० सोऽश्विभ्यां द्विकपालं पुरोळाशं
निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—अश्विना वर्तिरस्मत्, आ गोमता नासत्या रथेन
(ऋसं १.९२.१६; ७.७२.१) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादश्विभ्यां स्वाहेति ० ॥

पुरोडाशौ दुःशृतौ भवतः

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्य पुरोडाशौ दुःशृतौ भवतस्तद्भविर्यमदैवत्यम् । यदा
तद्भविः संतिष्ठेताऽथ चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत् ० ॥

पुरोडाशौ क्षायतः

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्य पुरोडाशौ क्षायतस्तं यज्ञं वरुणो गृह्णाति । यदा
तद्भविः संतिष्ठेताऽथ तदेव हविर्निर्वपेत् ० ॥

सर्वाण्येव हवींषि दुष्येयुर्वाऽपहरेयुर्वा

ऐत्रा [७.४]—यस्य सर्वाण्येव हवींषि दुष्येयुर्वाऽपहरेयुर्वा ० आज्यस्यैनानि यथा-
देवतं परिकल्प्य तयाऽऽज्यहविषेष्टया यजेत । अतोऽन्यामिष्टिमनुल्बणां तन्वीत ० ॥

आज्यमनुत्पूतं स्कन्दति

मैसं [१.४.१३]—यस्याऽऽज्यमनुत्पूतं स्कन्दति सा वै चित्रा नामाऽऽहुति-
स्ततो यजमानस्य चित्रं प्रमायुकं भवति । चित्रं देयम् ० ॥

आज्यमुत्पूतं स्कन्दति

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्योत्पूतं स्कन्दति सा वै स्कन्ना नामाऽऽहुतिस्ततो
यजमानः प्रमायुको भवति । वरो देयः ॥

आहिताग्निरासन्नेषु हविःषु म्रियेत

ऐत्रा [७.२]—य आहिताग्निरासन्नेषु हविःषु म्रियेत० याम्य एव तानि देव-
ताम्यो हवींषि गृहीतानि भवन्ति ताम्यः स्वाहेत्येवैनान्याहवनीये सर्वहुन्ति जुहुयात्० ॥

पुरा प्रयाजेभ्यः प्राडङ्गारः स्कन्देत्

तैत्रा [३.७.२]—यत्पुरा प्रयाजेभ्यः प्राडङ्गारः स्कन्देत् । अर्घ्यवे च यजमानाय
चाऽक५ स्यात् । यदक्षिणा । ब्रह्मणे च यजमानाय चाऽक५ स्यात् । यत्प्रत्यक् । होत्रे च पत्न्यै
च यजमानाय चाऽक५ स्यात् । यदुदङ् । अग्नीधे च पशुभ्यश्च यजमानाय चाऽक५ स्यात् ।
यदभिजुहुयात् । रुद्रोऽस्य पशून् घातुकः स्यात् । यन्नाऽभिजुहुयात् । अशान्तः प्रहियेत । सुवस्य
बुध्नेनाऽभिनिदध्यात् । मा तमो मा यज्ञस्तमन्मा यजमानस्तमत् । नमस्ते अस्त्वायते ।
नमो रुद्र परायते । नमो यत्र निषीदसि । अमुं मा हिंसीरमुं मा हिंसीः इति येन
स्कन्देत् । तं प्रहरेत् । सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदाः स्तोमपृष्ठो घृतवान्सुप्रतीकः ।
मा नो हासीन्मेत्थितो नेत्वा जहाम गोपोषं नो वीरपोषं च यच्छ इति ॥

कासं [३.५.१८]—यत्प्रयाजेष्वनिधेषु प्राडङ्गारस्कन्देदर्घ्यवे च यजमानाय
चाऽकी स्यात् । यदक्षिणा ब्रह्मणे च यजमानाय चाऽकी स्यात् । यत्प्रत्यङ् होत्रे च पत्न्यै चाऽकी
स्यात् । यदुदङ् अग्निधे च यजमानस्य च पशुभ्योऽकी स्यात् । तं प्रहरेत् । सहस्रशृङ्गो वृषभो
जातवेदास्स्तोमपृष्ठो घृतवान् सुप्रतीकः । मा मा हासीन्नाथितो नेत्वा जहामि
सहस्रपोषं^१ मे^२ गोपोषं च यच्छ इति ॥

कपिसं [४८.१६] ≡ कासं

आहुतिर्बहिष्परिधि स्कन्दति

मैसं [१.४.१३]—अथ यस्याऽऽहुतिर्बहिष्परिधि स्कन्दति सा वै जीव-
नडाहुतिः । अग्नीधं ब्रूयात् एतां संकष्य जुहुधि इति० पूर्णपात्रमग्नीधे देयम् ॥

अदक्षिणेन यज्ञेन यजते

मैसं [१.४.१३]—अथ योऽदक्षिणेन यज्ञेन यजते तं यजमानं विद्याददक्षिणेन
हि वा अयं यज्ञेन यजतेऽथ न वसीयान् भवतीति । उर्वरा समृद्धा देया० ॥

पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत्

शत्रा [१.७.४.२०]—स^१ यदि पुरा^२ मानुषीं वाचं व्याहरेत्तत्रो वैष्णवीमृचं वा
यजुर्वा जपेत्० ॥

१. 'सहस्रपोषस्त' इति मुद्रितपुस्तके । 'सहस्रपोषं मे' इति कपिष्वलकसंहितायाम् ।

२. ब्रह्मा ३. ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः इत्याद्यध्वर्युपैषात् प्राक्

यज्ञश्रेषे

शब्रा [११.५.८.५-६]—

ते देवाः प्रजापतिमब्रुवन् । यदि नः ऋक्तो वा यजुष्टो वा सामतो वा यज्ञो हलेत् केनैनं मिषज्येमेति । स होवाच यद्युक्तो भूरिति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा गार्हपत्ये जुहवथ । यदि यजुष्टो भुव इति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽग्नीध्रिये जुहवथ । अन्वाहार्यपचने वा हविर्यज्ञे । यदि सामतः^१ स्वरिति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽहवनीये जुहवथ । यद्यु अविज्ञातमसत् । सर्वाण्यनुद्वत्याऽऽहवनीये जुहवथ० तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत । नाऽनेवंविदम्० ॥

काशब्रा [१३.५.८] ≡ शब्रा

शान्ना [६.१२]—अथ यद्युच्युत्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा गार्हपत्ये प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद् भूः स्वाहेति । अथ यदि यजुष्युत्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽन्वाहार्यपचने प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद्भविर्यज्ञ आग्नीध्रिये सौम्येऽध्वरे भुवः स्वाहेति । यदि सामन्युत्बणं^१ स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽहवनीये प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयात् स्वः स्वाहेति । अथ यद्यविज्ञातमुत्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽहवनीय एव प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद् भूर्भुवः स्वः स्वाहेति ॥

गोब्रा [१.३.३]—स^२ यदुक्तो श्रेषं न्यृच्छेदो भूर्जनदिति गार्हपत्ये जुहुयात् । यदि यजुष्ट ओं भुवो जनदिति दक्षिणाग्नौ जुहुतात् । यदि सामत^१ ओं स्वर्जनदित्याहवनीये जुहुयात् । यद्यनाज्ञातात् ब्रह्मतो वा ओं भूर्भुवः स्वर्जनदोम् इत्याहवनीय एव जुहुयात् ॥

यज्ञस्य विधुरम्

जैब्रा [२.४१]—अथ ह वै त्रयः पूर्व ऋषय आसुः शूर्पयवमध्वाना अन्तर्वान् कृषिः सोल्लाः । ते ह यज्ञस्य कृन्तत्राणि ददृशुः । तस्यैताः प्रायश्चित्तीर्ददृशुः शं च म, उप च म, आयुश्च मे, भूयश्च मे, यज्ञं शिवो मे संतिष्ठस्व, यज्ञं स्विष्टो मे संतिष्ठस्व, यज्ञाऽरिष्टो मे संतिष्ठस्वेति । तस्मादेता दर्शपूर्णमासाम्यां वा चातुर्मास्यैर्वा पशुबन्धेन वा सौम्येन वाऽध्वरेणोष्ट्रवौपरिष्ठाज्जपेत् । यदेवाऽत्र यज्ञस्य विधुरं भवति तदेव तेन शमयति ॥

दर्शपूर्णमासौ

अन्वाधानम्

बौधायनश्रौ० [१.१; ३.१५; २०.१, २३; २४.२०-२१; २८.१२]—

१. आमावास्येन वा पौर्णमासेन वा हविषा यक्ष्यमाणो भवति । स पुरस्तादेव हविरातश्चनमुपकल्पयते । एकाहेन वा द्व्यहेन वा यथर्तु । अथ वै ब्राह्मणं^१ भवति—‘दध्नाऽऽ-
तनक्ति सेन्द्रत्वाय अग्निहोत्रोच्छेषणमभ्यातनक्ति यज्ञस्य संतत्यै’ इति । [आतश्चनेष्विति ॥
स ह स्माऽऽह बौधायनो हविरातश्चनान्येतानि भवन्तीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्दधि
खल्वातश्चनार्थे दृष्टं भवति । तस्मिन्नविद्यमान एतेषामेकेनाऽऽतञ्च्यादिति ॥] चन्द्रमसं
वाऽनिर्ज्ञाय संपूर्णं वा विज्ञायाऽग्नीनन्वादधाति । [उपवसथ इति ॥ कथमु खलूपवसथं
जानीयात् । संध्यः स्विदेवोपपाद्योऽथऽपूरि नादर्शाति । साधु खलु संध्यः साधु संधेरुप-
पादनम् । ननु खलु संध्यः सूपपादय इव सर्वेषां त्वेव संध्य इवेति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायनो यत्रैतदुपवसतोऽस्तमित आदित्ये पुरस्ताच्चन्द्रमा लोहितीभवन्निवोदियात्तमप्युप-
वसथं जानीयादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरतिपन्नः खल्वेष भवति । स संध्यं
वैवोपपादयिषेत् पूर्णं वाऽभियजेत् । तस्य चेदुपवसतोऽस्तमित आदित्ये पुरस्ताच्चन्द्रमा
लोहितीभवन्निवोदियात् आरमताऽग्निहोत्रेण इत्युक्त्वा पार्वणेन प्रकामेत् । स^२ स्थिते पार्वणेऽ-
ग्निहोत्रं जुहुयात् । इति नु खलु पौर्णमास्याम् ॥ अथाऽमावास्यायामिति । स ह स्माऽऽह
बौधायनोऽदृश्यमान एवोपवसेन्न दृश्यमान इति ॥ एवं चैव खलु कुर्यादिति शालीकिरस्ति
त्वपि दृश्यमान उपवसथः । यत्रैतद्रात्रीभिरुपपन्नोऽणुश्चन्द्रमाः परिनिक्षत्रमुपव्युषं भवति
न स भूते दृश्यते तमप्युपवसथं जानीयादिति ॥] [अथेमौ दर्शपूर्णमासौ पौर्णमास्यु-
पक्रमावमावास्यासंस्थावाचार्या ब्रुवते । तत्रोदाहरन्त्यूर्ध्वं मध्यरात्रात्पौर्णमास्यां चन्द्रमाः
पूर्यते । स एतं चाऽपररात्रं पूर्णो भवति सर्वं चाऽहरुत्तरस्याश्च रात्रेरा मध्यरात्रात् ।
अथाऽमावास्याया उपवसथीयेऽह्न्यूर्ध्वं मध्यंदिनाच्चन्द्रमसमादित्यो लभते । स एतं
चाऽपराह्णं लब्धो भवति सर्वां च रात्रिमुत्तरस्य चाऽह आ मध्यंदिनात् । एतं संधिमभि-
यजेतेति । रात्रिर्ह पौर्णमास्यां संधेया भवत्यहरमावास्यायाम् । द्वे पौर्णमास्यौ द्वे
अमावास्ये । पूर्वापूर्वा पौर्णमासीमुत्तरामुत्तराममावास्याम् । या पूर्वा पौर्णमासी साऽनु-
मतिर्योत्तरा सा राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहः । गायत्री वा
अनुमतिस्त्रिष्टुप्क्राकेति पौर्णमास्यै नामधेये । जगती सिनीवाल्यनुष्टुप् कुहूरित्यमावास्यायै
नामधेये] [आऽऽमावास्यस्य कालात्पौर्णमासस्य कालो नाऽतीयादा पौर्णमासादामा-
वास्यस्य ।]

२. [व्रतोपायन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः संगवकाले वा व्रतमुपेयाद्धे-

नुषु वा दोह्यमानासु प्रणीतासु वा प्रणेष्यत्सु हविःषु वाऽऽसन्नेष्विति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः पूर्वेषुःकालं खलु व्रतोपायनं भवतीति । ब्राह्मणं—‘बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायाम्’ इति । स संगवकाल एव व्रतमुपेयादिति ॥ अन्वाधानप्रभृतीत्यौपमन्यवः ॥] [सोऽयमाहिताग्निरुपवसथीयेऽहन् पुरा प्रातरग्निहोत्रात् पिङ्ग्यानुपसादयेदन्वाधानार्थान् । व्रतोपायनीयं पाचयीत । तस्याऽशितौ भवतः । सर्पिर्मिश्रं दधिमिश्रमक्षारलवणमपिशितम् । सर्वमेवैतदहः कौशीधान्यं वर्जयेदन्यत्र तिलेभ्यः । तस्य ब्राह्मणं प्रतिपाद्याऽश्रीयत् । नैतदहः शूद्रायोच्छिष्टं दद्यात् । पत्न्या एवैतदहरोच्छिष्टं दद्यात् । नाऽऽसन्ध्याः शयीत न स्त्रियमुपेयात् । कामं त्वेवोपरि शयीत स्त्रियं त्वेव नोपेयाद्व्रतचारी त्वेव स्यात् । स यदि केशश्मश्रु वापयिष्यमाणः स्यात्केशश्मश्रु वापयित्वा लोमानि सः हृत्य नखानि निकृन्तयीत । स्नायादभ्यञ्जीताऽऽञ्जीत । दीक्षायै रूपं कुर्वीत ।] अथोपवसथीयेऽहन् यज्ञोपवीत्यप आचम्याऽग्नेणाऽऽहवनीयं परीत्य यजमानायतन उपविश्य तिरःपवित्रमप आचामति^२ पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः । अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र सः सृज इति । [अपामाचमन इति ॥ द्विर्मन्त्रेणाऽप आचामेत् सकृत् तूष्णीमिति बौधायनः ॥ सकृन्मन्त्रेणाऽप आचामेद् द्विस्तूष्णीमिति शालीकिः ॥] अथाऽऽहवनीये समिध आदधाति^२ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताः स्वाहा । वायो व्रतपते..., आदित्य व्रतपते..., व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताः स्वाहा इति । [साक्षीकरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः सर्वा एवैता देवताः साक्षिणीः कुर्वीताऽग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामीति ॥ अग्निर्वै देवानां व्रतपतिरित्येतदेव नाऽतिमन्येतेति शालीकिः ॥]

३. त्रीणि काष्ठानि गार्हपत्येऽभ्यादधाति त्रीण्यन्वाहार्यपचने त्रीण्याहवनीये । [अग्नीनामन्वाधान इति । सूत्रमौपमन्यवीपुत्रस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो विहव्याभिरग्नीनन्वादध्यात्तिसृभिस्तिसृभिरैकैकं ये नव समामनेयुः । अथ येऽष्टौ प्रथमां वोत्तमां वा द्विरभ्यावर्तयेयुः । अथ ये दश तिसृभिस्तिसृभिरैकैकमन्वाधायोत्तरेणाऽऽहवनीयं तिष्ठन् दशमीं निगदेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यो नु खलु गार्हपत्यः सकृदन्वाहित एष भवति । ग्रामयोनिरन्वाहार्यपचनः । आहवनीयमेवैकं विहव्ययाऽन्वादध्यात् । अथाऽतिशिष्टा उत्तरेणाऽऽहवनीयं तिष्ठन्निगदेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो विहव्याभिरैवाऽग्नीनन्वादध्यादेकैकमेकैकया । अथाऽतिशिष्टा उत्तरेणाऽऽहवनीयं तिष्ठन्निगदेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह मौद्गल्य आहवनीयमेवैकमन्वादध्याद् अग्निं गृह्णामि सुरथं यो मयोभूर्य उद्यन्तमारोहति सूर्यमहे । आदित्यं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमः श्वो यज्ञाय रमतां देवताभ्यः ॥ वसून् रुद्रानादित्यानिन्द्रेण सह देवताः । ताः पूर्वः परिगृह्णामि स्व आयतने मनीषया ॥ इमामूर्जं पञ्चदशीं ये प्रविष्टास्तान् देवान् परिगृह्णामि पूर्वः । अग्निर्हव्यवाडिह तानावहतु पौर्णमासः हविरिदमेषां मयि इति पौर्णमास्याम्, अमावास्याः हविरिदमेषां मयि इत्यमावास्यायामिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह मैत्रेय आहवनीयमेवैकं विहव्ययाऽन्वादध्यात्तूष्णीमितरावथाऽतिशिष्टा उत्तरेणाऽऽहवनीयं

तिष्ठन्निगदेदिति ॥ व्याहृतीभिरेवाऽग्नीनन्वादध्यादिति राशीतरः ॥] [अग्नीनन्वादध्यात् । उपस्थं कृत्वा गार्हपत्यमूर्ध्वञ्चुरन्वाहार्यपचनं प्रह्व आहवनीयं तिष्ठन् दशमीं निगदेदिति ।] परिसमूहन्ति । उपवसथस्य रूपं कुर्वन्ति ॥

वत्सापाकरणम्

बौधायनश्रौ० [१.१; १७.५०; २०.१-२; २४.२३]—

१. अथाऽस्य व्रतोपेतस्य पर्णशाखामाच्छेति प्राङ्बोदङ् वा वाचंयमो यत्र वा वेत्स्यन् मन्यते । [आच्छायन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो वाचंयम एव शाखामाच्छे-
याद्वाचंयम एवाऽऽहरेत्^१ । एवं बर्हिंरिति^१ ॥ एवं चैव खलु कुर्यादिति शालीकिः । ब्राह्मणेन च यथार्थमन्तर्हसन्नेव संभाषेत नाऽब्राह्मणेनेति ॥] [व्रतोपेतस्य पर्णशाखामाच्छेयादेत-
दत्राऽऽनुपूर्व्यं भवति । अथेमानि त्रीणि पलाशजातानि भवन्ति श्लक्ष्णको लोमशको व्रतति-
रिति । लोमशकस्यैवैषा छेत्तव्या भवति । यावन्मात्रे गौर्निकर्षेत न तत ऊर्ध्वं छिन्द्यात् ।
अपशव्याऽत ऊर्ध्वं स्यात् ।] सा या प्राची बोदीची वा बहुपर्णा बहुशाखाऽप्रतिशुष्काग्रा
भवति तामाच्छिनत्ति इषे त्वोर्जे त्वा इति । [शाखाया आच्छेदन इति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायन इषे त्वा इति शाखामाच्छिन्द्याद् ऊर्जे त्वा इत्यनुसृज्याद्वाऽन्वीक्षेत वेति ॥ अन्वीक्षे-
तैवेति शालीकिः ॥] तया वत्सानपाकरोति वायवः स्थोपायवः स्थ इति । [वत्सापाकरण
इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो वायवः स्थ इति पु५स एवाऽपाकुर्याद् उपायवः स्थ इति
स्त्रियः । अथ यद्यन्यतरे स्युर्नैव मन्त्रं परिजह्यात् ॥ स५सृष्टेनैवेति शालीकिः ॥] अथैषां मानृः
प्रेरयति देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमग्निया देवभागमूर्जस्वतीः पयस्वतीः
प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माघशंसो रद्वस्य हेतिः परि वो वृणक्तु इति । ध्रुवा
अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः इति यजमानमीक्षते । अथैता५ शाखामग्नेणाऽऽहवनीयं पर्याहृत्य
पूर्वया द्वारा प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमग्निष्ठेऽनस्युत्तरार्धे वाऽग्न्यगारस्योद्गृह्णति यजमानस्य
पशन् पाहि इति नु यदि संनयति । [शाखायै संचर इति ॥ अग्नेणाऽऽहवनीयं संचार-
येदिति बौधायनः ॥ जघनेन गार्हपत्यमिति शालीकिः । एष सर्वकल्पे शाखायै संचरः
पयसां चाऽन्यत्र प्रावर्गिकादिति ॥ उभयोरेवाऽपरेण प्रावर्गिकं संचारयेदित्यौपमन्यवः ॥]
यद्यु वै न संनयति बर्हिः प्रतिपदेव भवति । [अथ वै भवति नाऽसोमयाजी संनयेत् ।
अनागतं वा एतस्य पयो योऽसोमयाजी । यदसोमयाजी संनयेत् परिमोष एव सोऽनृतं
करोति । अथो परैव सिच्यते । सोमयाज्येव संनयेत् । पयो वै सोमः पयः सांनाय्यम् ।
पयसैव पय आत्मन् धत्त इति ब्राह्मणम् ।]

इध्माबहिराहरणम्

बौधायनश्रौ० [१.२-३; २०.२-३; २४; २४.२५; २८.१३]—

१. अथ जघनेन गार्हपत्यं तिष्ठन्नसिदं वाऽश्वपर्शुं वाऽऽदत्ते देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इति । [इध्माबर्हिषोरुपकल्पन इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अपराह्णे पितृभ्यो दत्त्वेध्माबर्हिः संनह्येदित्याजीगविः ॥ श्वो भूते हविष्कृदन्त इत्यौपमन्यवः ॥] आदायाऽभिमन्त्रयते यज्ञस्य घोषदसि इति । गार्हपत्ये प्रतितपति प्रत्युष्टः रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः इति त्रिः । [असिदस्य प्रतितपन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः प्रतितपेदे-वाऽसिदमेवमश्वपर्शुं रक्षोपहननायेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्न तेजसि तेजः प्रतितपेदश्वपर्शुं खल्वेते मन्त्रा दृष्टा भवन्ति । सोऽश्वपर्शुमेव प्रतितपेन्नाऽसिदं क्रूरापहननायेति ॥] अथाऽऽहवनीयमभिप्रैति प्रेयमगाद्विषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा त आबहन्ति कवयः पुरस्तादेवेभ्यो जुष्टम् इति । इह बर्हिरासदे इति वेदिं प्रत्यवेक्षते । अथ तां दिशमेति यत्र बर्हिर्वेत्स्यन् मन्यते । [प्रक्रमेष्वाति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आहवनीया-देवाऽग्रे त्रीन् वा चतुरो वा प्राचः प्रक्रमान् प्रक्रम्याऽथ तां दिशमभिप्रवेज्यत्र बर्हिर्वेत्स्यन् मन्येतेति ॥ आहवनीयादेव यथार्थं गच्छेन्न तु दक्षिणया द्वारेति शालीकिः ॥] [कुशाः स्तरणार्थं । तेषामलामे शरमयकुतपाश्वबालमुञ्जसुगन्धितेजनाऽर्जुनाऽऽदारदूर्वाद्यामाकाः क्षीरवृक्षा इक्षव इत्येतेभ्यः । प्रस्तरबर्हिर्विधूतिपवित्रयूपरशनाशालाकपरिस्तरणान्तर्धानासन-शयनस्तोत्रोपाकरणार्थाः कार्याः सर्वतृणेभ्यो वा शुष्कशुण्ठिनलबल्बजकृष्णतूलतृणवर्जम् ।]

२. दर्भस्तम्बं परिगृह्णाति यावन्तमलं प्रस्तराय मन्यते देवानां परिपूतमसि इति । [परिषवण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनस्त्रिरेव मन्त्रं ब्रूयात् त्रिः कर्माऽऽवर्तयेत् । एवं यूपावटस्य परिलेखन एवः सोमक्रयण्यै पद एवमौदुम्बर्या अवट एवमुपरवेष्वाति ॥ सकृदेव मन्त्रं ब्रूयात् त्रिः कर्माऽऽवर्तयेदिति शालीकिः ॥] अथैनमूर्ध्वमुन्मार्ष्टि वर्षवृद्धमसि इति । असिदेनोपयच्छति देवबर्हिर्मा त्वाऽन्वञ्जा तिर्यक् पर्व ते राध्यासम् इति । आच्छिन्नान्ति आच्छेता ते मा रिषम् इति । आच्छेदनान्यभिमृशति देवबर्हिः शतवल्शं विरोह इति । [आच्छेदनेष्विति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ प्रत्यगाशीः खल्वेष मन्त्रो दृष्टो भवति । मन्त्रप्रत्यभिदर्शनमेवैतत्स्यादिति शालीकिः ॥] सहस्रवल्शा वि वयः इहेम इत्यात्मानं प्रत्यभिमृशते । सर्वश एवैनं स्तम्बं लुनोति । कृत्वा प्रस्तरं निदधाति पृथिव्याः संपृचः पाहि इति । [संनखमात्रो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । विशारुको ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । सुगदण्डमात्रो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । सुवदण्डमात्रो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । उर्वस्थिमात्रो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । अङ्गुष्ठपरुषा संमितो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् । अपरिमितो ग्रहीतव्य इत्येकेषाम् ।] तूष्णीमत ऊर्ध्वमयुजो मुष्टीन् लुनोति । त्रीन् वा पञ्च वा सप्त वा नव वैकादश वा यावतो वाऽलं मन्यते । [प्रस्तरस्य संनहन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽभ्यर्धाच्चैनं संनह्येदन्यत्र चैतस्मादयुग्मायुग्मं निधनानि कुर्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः प्रस्तरस्य खलु मन्त्रप्रतिलाभात्सर्वं बर्हिर्मन्त्रं लभते । न चैनमभ्यर्धात्संनह्येदेतच्चैवायुग्मतमं स्यादिति ॥] अथ त्रिरन्वा-दितः शुल्बं कृत्वाऽपसलैरावेष्टयति अदित्यै रास्नाऽसि इति । [शुल्बस्य करण इति ॥

अधिकरणं चतुर्थं स्यादिति बौधायनः ॥ अधिकरणमेव तृतीयमिति शालीकिः ॥] तदु-
दीचीनाग्रं निधाय तस्मिन् प्रस्तरमभिसंभरति सुसंभृता त्वा संभरामि इति । [बर्हिषः
संभरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यान्यन्यानि याजुषाग्निधनानि तानि पूर्वाणि
मन्त्रेण संभृत्याऽथोपरिष्ठाद्याजुषं मन्त्रेणैव संभरेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्या-
न्यन्यानि याजुषाग्निधनानि तानि पूर्वाणि तूष्णीं संभृत्याऽथोपरिष्ठाद्याजुषं मन्त्रेणैव
संभरेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहोपमन्यवो य एवाऽऽदिल्वने संभरणे सः । याजुषमेवाऽग्रे
मन्त्रेण संभृत्य तूष्णीमितराणि संभृत्य विपरिकृष्य ग्रन्थि कुर्यादिति ॥] संनहति इन्द्राण्यै
संनहनम् इति । ग्रन्थि करोति पूषा ते ग्रन्थि प्रधातु इति । [ग्रन्थिकरण इति ॥ सूत्रं
बौधायनस्य ॥ समायच्छन्नेवैतं मन्त्रं जपेदिति शालीकिः ॥] स ते माऽऽस्थात् इति
पश्चात् प्राश्नुमुपगूहति [पश्चात्प्राश्नुमुपगूहतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पुरस्तात्प्रत्यश्चमिति
शालीकिः ॥]

३. अथैनदुद्यच्छते इन्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छे इति । शीर्षन्नधिनिधत्ते बृहस्पतेर्मूर्ध्ना
हरामि इति । पेति उर्वन्तरिक्षमन्विहि इति । एत्योत्तरेण गार्हपत्यमनधः सादयति देवंगममसि
इति । तदुपरीव निदधाति यत्र गुप्तं मन्यते । [बर्हिषो निधान इति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायनः स्फ्यं वा शकलं वाऽन्तर्वेदि निधाय तस्मिन् मन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य ततो यथासुष्ठु
निदध्यादिति ॥ यत्रैव निधास्यन् स्यात्तन्मन्त्रेणैव निदध्यादिति शालीकिः ॥] तूष्णीं परि-
भोजनीयानि लुनोति । सकृदाच्छिन्नं पितृभ्य आच्छिन्नन्ति । [पितृयज्ञबर्हिषीति ॥ समूल-
मेतद्बर्हिर्भवतीति बौधायनः पितृयज्ञसामान्यादिति ॥ महापितृयज्ञ एवैतद् दृष्टं भवति ।
अमूलमेवैतद्बर्हिः स्यादिति शालीकिः ॥ इष्टिसंनिपात इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो
याः काश्चेष्टयः समानेऽहनि संनिपतेयुस्तन्त्राय तन्त्राय चाऽऽसां बर्हिर्लावो गच्छेत्तलूनं
वाऽऽसादयेत्तन्त्रे तन्त्रे चाऽऽसां व्रतमुपेत्य तन्त्रापवर्गे व्रतं विसृजेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
शालीकिर्याः काश्चेष्टयः समानेऽहनि संनिपतेयुः सकृदेवाऽऽसां सर्वासां बर्हिर्लावो गच्छे-
त्तलूनं वाऽऽसादयेदादितश्चाऽऽसां व्रतमुपेत्य सर्वासां पारे व्रतं विसृजेतेति ॥]

४. अथ तथैव त्रिरन्वाहितं शुल्बं कृत्वैकविंशतिदारुमिध्मं संनहति यत्कृष्णो
रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन् । ततस्त्वामेकविंशतिधा संभरामि सुसंभृता इति । [इध्मस्य
करण इति ॥ अनुसामिधेनीध्मं कुर्यादिति बौधायनः ॥ अपरिमितमिति शालीकिः ॥]
[इयतीर्भवन्तीति समिधां वदति प्रादेशमात्रीरेवैता उक्ता भवन्ति । अनेन संमिताः कार्या
इत्याहुः ।] [पालाशः खादिरो वेध्मः । तयोरलाभे याज्ञिकानां वा वृक्षाणामन्यतमस्तेषा-
मलाभेऽरुक्पितृकोविदारशल्मुलिश्लेष्मातकनीपनिम्बतिलकवाधकविभीतकराजवृक्षकरञ्ज-
पलाण्डुवर्जं सर्ववनस्पतीनामिध्मो भवतीत्येके ।] [परिधीनां करण इति ॥ स ह
स्माऽऽह बौधायन उरःसंमितो मध्यमः स्यादथेतरी बाहुमात्रौ स्यातामिति ॥ सर्व एव बाहु-
मात्राः स्युरिति शालीकिः ॥]

५. वेदं करोति वत्सङ्गं पशुकामस्य मृतकार्यमन्नाद्यकामस्य त्रिवृतं तेजस्काम-
स्थोर्ध्वाग्रं स्वर्गकामस्य । [वेदस्य करण इति ॥ वत्सङ्गं कुर्यादिति बौधायनः ॥ मृत-
कार्यमिति शालीकिः ॥ त्रिवृतमित्यौपमन्यवः ॥ ऊर्ध्वाग्रमित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] वेदं करोति
प्रागुत्तरात् परिग्राह्यात् । अथाऽपराद्धे पिण्डपितृयज्ञेन चरति ॥

६. अथैतस्यै शाखायै पर्णानि प्रच्छिद्याऽग्नेण गार्हपत्यं निवपति । [पर्णत्सरूपां
निवपन इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्तृतीयमग्न्यगार उद्वपे-
त्तृतीयमन्तर्वेदि निवपेत्तृतीयेन वत्सानां धूननं कुर्यात् । एवमिव हि पशूनां नेदीयान्
भवतीति ॥] अथैनामधस्तात् परिवास्य जघनेन गार्हपत्यं स्थविमदुपवेषाय निदधाति ।
[पौर्णमास्यामुपवेषकरण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥]
अथाऽस्याः प्रादेशमात्रं प्रमाय दर्भनाडीः प्रवेष्ट्य तत् त्रिवृच्छाखापवित्रं करोति त्रिवृत्पलाशे
दर्भ इयान् प्रादेशसंमितः । यज्ञे पवित्रं पोतृतमं पयो हव्यं करोतु मे इति । [दोहनपवित्रस्य करण
इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो मूले मूलानि बद्ध्वा द्विगुणां रज्जुं संप्रसार्याऽग्ने
निग्रथीयात् ॥ एवमस्याऽग्रमग्रैरभिसंपन्नं भवतीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्मूले
मूलानि बद्ध्वा द्विगुणां रज्जुं संप्रसार्य मूले परिहृत्य त्रिगुणां रज्जुं संप्रसार्याऽग्ने
निग्रथीयात् । एवमस्याऽग्रमग्रैरभिसंपन्नं भवतीति ॥]

सायंदोहः

बौधायनश्रौ० [१.३; १७.४९; २०.४; २३.१७; २४.२३]—

१. अथ सायं हुतेऽग्निहोत्र उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि सस्तीर्य तेषु चतुष्टयं
ससादयति दोहनं पवित्रं सांनार्यतपन्यौ स्थात्याविति । [अग्निहोत्रोच्छेषणस्य करण
इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यद्यस्याऽऽज्येन वौषधेन वा प्रक्रान्तं स्यात् पयसैव तां
रात्रिं जुहुयात् पयस एवाऽग्निहोत्रोच्छेषणं कुर्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्नाऽ-
समाप्ते काम आवर्तयेत् । यद्यस्याऽऽज्येन वौषधेन वा प्रक्रान्तं स्यात्तस्य हुत्वा तस्यै-
वाऽग्निहोत्रोच्छेषणं कुर्यादिति ॥] अथैनान्यद्भिः प्रोक्षति शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै
इति त्रिः [सांनार्यपात्राणां प्रोक्षण इति ॥ तूष्णीं सस्कृताभिरद्भिः प्रोक्षेदिति बौधा-
यनः ॥ कमण्डलुगताभिरिति शालीकिः ॥] अथ जघनेन गार्हपत्यमुपविश्योपवेषेणोदी-
चोऽङ्गाराभिरुहति मातरिक्षनो घर्मोऽसि इति । तेषु सांनार्यतपनीमधिभ्रयति द्यौरसि पृथि-
व्यसि विश्वधाया असि परमेण धाम्ना हस्व मा ह्याः इति । [अथ जघनेन गार्हपत्यमुपविश्यो-
पवेषेणोदीचोऽङ्गाराभिरुहतीति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्तूष्णीमङ्गा-
राभिरुहेत् । सर्वं पवैवोऽधिभ्रयणमन्त्रः स्यादिति ॥] तस्यां प्राचीनाग्रं शाखापवित्रं
निदधाति वसूनां पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् इति । [दोहनपवित्रस्याऽऽधान
इति ॥ मन्त्रेण कृत्वा मन्त्रेण स्थात्यामादध्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीं कृत्वा मन्त्रेण

स्थाल्यामादध्यादिति शालीकिः ॥ अर्धेन कृत्वाऽर्धेन स्थाल्यामादध्यादित्यौपमन्यवः ॥
तदन्वारभ्य वाचंयम आस्ते ॥

२. अथ गा आयतीः प्रतीक्षते एता आचरन्ति मधुमद्बुद्धानाः प्रजावतीर्यशसो विश्वरूपाः ।
बह्वीर्मवन्तीरुपजायमाना इह व इन्द्रो रमयतु गावः इति । महेन्द्र इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति ।
[धेनूनामनुमन्त्रण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन एकैकामेवाऽऽसामनुमन्त्रयेताऽथाऽऽ-
सामेकैकां दोहयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सकृदेवैनाः सर्वा अनुमन्त्रयेताऽ-
थाऽऽसामेकैकां दोहयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवः सकृदेवैनाः सर्वा अनुमन्त्रयेत
सकृच्चैना दोहयेदत्र चैव स्तोकान् परिनिस्तिष्ठेदिति ॥ एकैकामेवाऽऽसाः सवैणसवैण
कर्मणा परिनिस्तिष्ठेदित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] नाऽगतश्रीर्महेन्द्रं यजेत । त्रयो वै गतश्रियः
शुश्रुवान् ग्रामणी राजन्यस्तेषां महेन्द्रो देवतेति । स योऽन्य एतेभ्यो महेन्द्रमियक्ष्येत
(°क्षेत ?) स संवत्सरमिन्द्रमिष्ट्वाऽग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । [नाऽग-
तश्रीर्महेन्द्रं यजेत । त्रयो वै गतश्रियः शुश्रुवान् ग्रामणी राजन्यस्तेषां महेन्द्रो देवतेति ॥ स
योऽन्य एतेभ्यो महेन्द्रमियक्षेत स संवत्सरमिन्द्रमिष्ट्वा महेन्द्रेज्यां लभेतेति बौधायनः ॥
अत एवाऽपि संवत्सरमिन्द्रमिष्ट्वा महेन्द्रेज्यां लभेतेति शालीकिः ॥] सा प्रसिद्धेष्टिः
संतिष्ठते । अथ याऽमावास्याऽऽगच्छति तस्यां महेन्द्रं यजेत । सोऽत ऊर्ध्वं महेन्द्रयाज्येव
भवति । अथ वै भवति संवत्सरमिन्द्रं यजेत । संवत्सरः हि व्रतं नाऽति । [संवत्सरमिन्द्रं
यजेत । संवत्सरः हि व्रतं नाऽतीति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो
यस्याममावास्यायामादित इन्द्रं यष्टुं प्रकामेत्, संवत्सरे पर्यवेते तस्यां महेन्द्रं यजेत । सोऽत
ऊर्ध्वं महेन्द्रयाज्येव स्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽभ्यारूढः खल्वस्यैव संवत्सरो
भवति यस्याममावास्यायामादित इन्द्रं यष्टुं प्रकामेत्, या ततः पूर्वाऽमावास्या स्यात्तस्यां
महेन्द्रं यजेत । सोऽत ऊर्ध्वं महेन्द्रयाज्येव स्यादिति ॥] स्वैवैनं देवतेज्यमाना भूत्या
इन्द्रे वसीयान् भवतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति संवत्सरस्य परस्तादग्नये व्रतपतये
पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् । संवत्सरमेवैनं वृत्रं जघ्निवाः समग्निर्व्रतपतिर्व्रतमाल-
म्भयति । ततोऽधिकामं यजेतेति ब्राह्मणम् । अथाऽऽह उपसृष्टां मे प्रब्रूतात् इति । उपसृष्टां
प्राहुः । दोह्यमानामनुमन्त्रयते हुतः स्तोको हुतो द्रप्सोऽग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम्
इति । [स्तोकानामनुमन्त्रण इति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ आख्यातमौपमन्यवस्य ॥ अत्रो
ह स्माऽऽह बौधायन आतच्यैव स्तोकाननुमन्त्रयेत । अत्रैव हि स्तोकानामन्तो भवतीति ॥]
अथ पुरस्तात्प्रत्यगानयन्तं पृच्छति कामधुक्षः इति । अमूम् इतीतरः प्रत्याह । तामनुमन्त्रयते
सा विश्वायुः इति । द्वितीयमानयन्तं पृच्छति कामधुक्षः इति । अमूम् इत्येवेतरः प्रत्याह ।
तामनुमन्त्रयते सा विश्वव्यचाः इति । तृतीयमानयन्तं पृच्छति कामधुक्षः इति । अमूम् इत्ये-
वेतरः प्रत्याह । तामनुमन्त्रयते सा विश्वकर्मा इति । तिसृषु दुग्धासु वाचं विसृजते बहु
दुग्धीन्द्राय देवेभ्यो हव्यमाप्यायतां पुनः । वत्सेभ्यो मनुष्येभ्यः पुनर्दोहाय कल्पताम् इति । महेन्द्राय
इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति । विसृष्टवागनन्वारभ्य तूष्णीमुत्तरा दोहयित्वा । [उत्तरासां

दोहन इति ॥ विसृष्टवागनन्वारभ्योत्तरा दोहयेदिति बौधायनः ॥ आनीयमाना^१ एवाऽनु
चाऽऽरभेत वाचं च यच्छेदिति कात्यः ॥] [अथेमाः सांनाय्यदुहः षडवमाः समाम्नाता
भवन्ति । ताश्चेत्तिष्ठ एव स्युः प्रथमां वोत्तमां वा चतुर्विगृह्णीयात् । अथ चेद् द्वे एव स्याता-
मितरेतरां त्रिस्त्रिविगृह्णीयात् । अथ चेदेकैव स्यात्तामेव षट्कृत्वो विगृह्णीयात् । विसृष्ट-
वागनन्वारभ्योत्तरा दोहयेदित्यपरिमितानामेवैतदुक्तं भवतीति ।]

३. दोहनेऽप आनीय संक्षालनमानयति संपृच्यध्वसृतावरीरुर्मिणीर्मधुमत्तमा मन्त्रा
धनस्य सातये इति । [दुग्धं लभमानस्येति ॥ वत्सापाकरणप्रभृतीन् मन्त्रान् साधयेदिति
बौधायनः ॥ आसेचनप्रभृतीनिति शालीकिः ॥] अथैनत्तप्त्वोदगुद्रास्य शीतीकृत्वा तिर-
पवित्रं दध्नाऽऽतनक्ति सोमेन त्वाऽऽतनन्मीन्द्राय दधि इति । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी
भवति । यावता मूर्च्छयिष्यन् मन्यते तावदानयति । [आतश्चन इति ॥ चतुर्थे सुव
आनयेद्यावता मूर्च्छयिष्यन् मन्येतेति बौधायनः ॥ तृतीये सुव आनयेद्यावता मूर्च्छयिष्यन्
मन्येतेति शालीकिः ॥] अग्निहोत्रोच्छेषणमभ्यातनक्ति यज्ञस्य संततिरसि यज्ञस्य त्वा संततिमनु-
संतनोमि इति । [अग्निहोत्रोच्छेषणमभ्यातनकीति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
बौधायनोऽग्निहोत्रोच्छेषणमानीय हविरातश्चनमानयेदेवमस्योभयमभ्यातकं भवतीति ॥]
अथैनदुदन्वता क५सेन वा चमसेन वाऽपिदधाति अदस्तमसि विष्णवे त्वा यज्ञायाऽपिदधाम्यहम् ।
आद्विररिक्तेन पात्रेण याः पूताः परिशेरते इति । [उदन्वताऽपिदधातीति ॥ उदन्वताऽपिधाय
सर्वा५ रात्रिं परिशाययेदिति बौधायनः ॥ उदन्वताऽपिधाय सिक्त्वैता अपोऽपिदध्यादिति
शालीकिः ॥] तदुपरीव निदधाति यत्र गुप्तं मन्यते विष्णो हव्य५ रक्षस्व इति । एतस्मिन् काले
दधैः प्रातर्दोहाय वत्सानपाकरोति तूष्णीम् ॥ [अशनाऽनशन इति ॥ आरण्यं चाऽपश्वा-
ऽश्रीयादिति बौधायनः ॥ अप एवेति शालीकिः ॥ नाऽऽरण्यं नाऽपश्चनेत्यौपमन्यवः ॥]

पात्रासादनप्रणीताप्रणयने

बौधायनश्रौ० [१.४; ३.२३-२४; २०.४-५; २४.२४-२५]—

१. अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे हस्तौ संमृशते कर्मणे वां देवेभ्यः शक्यम् इति । [पाणि-
संमर्शन इति ॥ उत्तरेणाऽऽहवनीयं तिष्ठत् पाणी संमृशेदिति बौधायनः ॥ उत्तरेण गार्ह-
पत्यमिति शालीकिः ॥] नक्तं परिस्तीर्णा एवैतेऽग्नयो भवन्ति । [अग्नीनां परिस्तरण
इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यव उपवसथ एवाऽग्नीन् यथोत्पन्नं परि-
स्तृणीयात् । एव५ हि ब्राह्मणं भवत्युपाऽस्मिच्छ्रवो यक्ष्यमाणे देवता वसन्ति य एवं
विद्वानग्निमुपस्तृणातीति ॥] यद्यु वा अपरिस्तीर्णा भवन्त्याहवनीयमेवाऽग्रे पुरस्तात् परि-
स्तृणात्यथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतः । एवमेवाऽन्वाहार्यपचनं परिस्तृणाति । एवं
गार्हपत्यम् । [अग्नीनां परिस्तरण इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ आख्यातमौपमन्यवस्य ॥

अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो गार्हपत्यमेवाऽग्रे पुरस्तात् परिस्तृणीयादथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतः । एवमेवाऽन्वाहार्यपचनं परिस्तृणीयादेवमाहवनीयमिति ॥] अथाऽग्रेण गार्हपत्यं तृणानि स० स्तीर्य तेषु द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञायुधानि स० सादयति स्फ्यं च कपालानि चाऽग्निहोत्रहवर्णी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शय्यां चोल्खलं च मुसलं च दृषदं चोपलां च जुह्वं चोपभृतं च सुवं च ध्रुवां च प्राशिन्नहरणं चेडापात्रं च मेक्षणं च पिष्टोद्वपनीं च प्रणीताप्रणयनं चाऽऽज्यस्थालीं च वेदं च दारुपात्रीं च योक्त्रं च वेदपरिवासनं च धृष्टिं चेध्मप्रवश्चनं चाऽन्वाहार्यस्थालीं च मदन्तीं च । यानि चाऽन्यानि पात्राणि तान्येवमेव द्वन्द्वं स० साद्य । [पात्राणां सादन इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि स० स्तीर्य तेषु पात्राणि सादयेदिति ॥ उत्तरतोऽग्न्यगारस्य पात्राणि सादयेत् । तेषां यथार्थमाददीतेति राथीतरः ॥] [द्वादश द्वन्द्वानि दर्शपूर्णमासयोः । तानि संपाद्यानीति । स्फ्यश्च कपालानि चेति पञ्च । वत्सं चोपावस्तृज्युखां चाऽधिश्चयतीति सप्त । तानि द्वादश । अमावास्यायामेवैतत् संनयत उपपद्यते नाऽसंनयतः ।]

२. ब्रह्मत्वं करिष्यन् यज्ञोपवीत्यप आचम्याऽग्रेणाऽऽहवनीयं परीत्य दक्षिणत उदङ्मुखस्तिष्ठन् ब्रह्मसदनमुपतिष्ठते नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मसदनाय इति । अथाऽऽसनात्तृणं निरस्यति अहं दैधिषव्योदतस्तिष्ठाऽन्यस्य सदने सीद योऽस्मत्पाकतरः इति । उपविशति उज्जिवत उदु-
द्वतश्च गेषम् इति । अथेमे समीक्षते पातं मा द्यावापृथिवी अद्याऽहः इति । उपविश्य जपति भूर्भुवः सुवः क इदं ब्रह्मा भविष्यति स इदं ब्रह्मा भविष्यति प्राणः प्रजापतियुक्तोऽहं गुज्ये ब्रह्मणाऽर्वे वाजी सुधुर इव वह्निर्बलीवर्द इव युक्तो हव्यं वक्ष्याम्यहं देवताभ्यो भूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये सुवः प्रपद्ये भूर्भुवः सुवः प्रपद्ये वायुं प्रपद्ये ब्रह्म प्रपद्ये क्षत्रं प्रपद्येऽश्मानमाखणं प्रपद्ये प्रजापतेर्ब्रह्मकोशं प्रपद्येऽनार्ता देवतां वाचं प्रपद्ये ओं प्रपद्ये इति । [ब्रह्मण उपवेशन इति ॥ व्यवेत्य दक्षिणेनाऽऽहवनीयमुपविशेदिति बौधायनः ॥ अव्यवेत्यैव दक्षिणेनाऽऽहवनीयमिति शालीकिः ॥ यजमानस्योपवेशन इति ॥ व्यवेत्य दक्षिणत उपविशेदिति बौधायनः ॥ अव्यवेत्यैव दक्षिणत उपविशेदिति शालीकिः ॥]
तं यजमानो ब्रह्माणं वृणीते भूपते भुवनपते महतो भूतस्य पते ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे वीतहव्ये पुरोहितं येनाऽऽयन्नुत्तमं सुवर्देवा अङ्गिरसो दिवम् इति । वृतो ब्रह्मा जपति अहं भूपतिरहं भुवनपतिरहं महतो भूतस्य पतिर्देवेन सवित्रा प्रसूत आत्विज्यं करिष्यामि ब्रह्माणं माऽवृथा वीतहव्ये पुरोहितं येनाऽऽयन्नुत्तमं सुवर्देवा अङ्गिरसो दिवम् । देव सवितरेतं त्वा वृणते बृहस्पतिं दैव्यं ब्रह्माणं तदहं मनसे प्रब्रवीमि मनो गायत्रियै गायत्री त्रिष्टुभे त्रिष्टुब्जगत्यै जगत्यनुष्टुभेऽनुष्टुप्पङ्क्त्यै पङ्क्तिः प्रजापतये प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वे देवा बृहस्पतये बृहस्पतिर्ब्रह्मणे ब्रह्मा भूर्भुवः सुवर्देवस्पतिर्देवानां ब्रह्माऽहं मनुष्याणां बृहस्पते यज्ञं गोपाय इति । ब्रह्माणं दक्षिणत उपवेश्य । पृष्ठया० स्तृणाति संततां गार्हपत्यादाऽऽहवनीयात् यज्ञस्य संततिरसि यज्ञस्य त्वा संतत्यै स्तृणामि संतत्यै त्वा यज्ञस्य स्तृणामि इति । [पृष्ठयायै स्तरण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सोम एव पृष्ठया० स्तृणीयादिति शालीकिः ॥] अथ बर्हिषः पवित्रे कुरुते प्रादेशमात्रे समे अप्रतिच्छिन्नाग्रे अनखच्छिन्ने इमी प्राणापानौ यज्ञस्याऽज्ञानि सर्वशः । आप्याययन्तौ संचरतां पवित्रे हव्यशोधने इति । [पवित्रयोः करण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पृष्ठयायास्तृणानामित्यौपमन्यवः ॥ येऽन्येऽनुपयुक्ताः

कुशाः स्युस्तेषामिति शालीकिः ॥] [किंदेवत्ये उ खलु पवित्रे किंपूते भवत इति । वैष्णवी वायुपूते इत्येव ब्रूयात् । अनखच्छिन्ने स्याताम् ।] अथैने अद्भिरनुमाष्टिं पवित्रे स्थो वैष्णवी स्थो यज्ञिये स्थो वायुपूते स्थो विष्णोर्मनसा पूते स्थो यज्ञस्य पवने स्थः इति ।

३. अथोत्तरेण गार्हपत्यमुपविश्य क५सं वा चमसं वा प्रणीताप्रणयनं याचति । तस्मिंस्तिरःपवित्रमप आनयन्नाह ब्रह्मज्ञपः प्रणेष्यामि यजमान वाचं यच्छ इति । स यत्राऽऽह ब्रह्मज्ञपः प्रणेष्यामि यजमान वाचं यच्छ इति, तद्ब्रह्मा प्रसूति देव सवितः प्रणय यज्ञं देवता वर्धयेता नाकस्य पृष्ठे सुवर्गे लोके यजमानो अस्तु । सप्तर्षीणां सुकृता यत्र लोकस्तत्रेयं यज्ञं यजमानं च वेदि ओं प्रणय इति । प्रसूतः समं प्राणैर्धारयमाणोऽविषिञ्चन् हृत्वोत्तरेणाऽऽहवनीयं दग्धेषु सादयित्वा दग्धैः प्रच्छाद्य । [प्रणीताः प्रणयन् अनयाऽपः प्रणयामि इति पृथिवीं मनसा ध्यायेत् । समान्येतानि कुर्यात् । प्रणीता आहवनीयं ब्रह्माणमिध्मावर्द्धिरिति यज्ञस्य शिर इत्येतदाचक्षते ।] स१ वाचंयमो भवति प्रणीतासु प्रणीयमानास्वा हविष्कृतः । सांनान्ये दोह्यमान आ ततो यदाह बहु दुग्धीन्द्राय देवेभ्यो हव्यम् इति । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति । अधिवपने वाचं यच्छति१ आ कपालोपधानात् । संवपने वाचं यच्छति१ आ समभिवासनात् । स्तम्बयजुषि ह्रियमाण आ प्रोक्षणीनामासादनात् । [स वाचंयमो भवति प्रणीतासु प्रणीयमानास्वा हविष्कृत इति ॥ अन्तर्हसन्नेतेषु संपातेषु संभाषेतेति बौधायनः ॥ विसृष्टवागिति शालीकिः ॥]

हविर्निर्वापः

बौधायनश्रौ० [१.४-६; ३.१५; २०.२, ५-६; २४.२५; २८.१३]—

१. (पवित्रमादाय) प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखाऽऽदत्ते दक्षिणेनाऽग्निहोत्र-हवणीं सव्येन शूर्पं वेषाय त्वा इति । गार्हपत्ये प्रतितपति प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः इति त्रिः । अथ जघनेन गार्हपत्यमग्निष्ठमनो भवति । तस्योत्तरां धुरमभिमृशति धूरसि धूर्वं धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वं यं वयं धूर्वामः इति । अनोऽभिमन्त्रयते त्वं देवानामसि सस्मिन्तमं पप्रितमं जुष्टमं वह्नितमं देवदूतममहुतमसि हविर्धानं द९हस्व मा हाः इति । अथ विष्णोः क्रमोऽसि इति दक्षिणमक्षपालिं क्रमित्वाऽभ्यास्य प्रउगे शूर्पं निदधाति । शूर्पं सुचं सुचि पवित्रे । अथ पुरोडाशीयान् प्रेक्षते मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे मा भर्मा संविकथा मा त्वा हि० सिषम् इति । [अथ हविषामर्थे व्रीहियवौ तयोरलाभे प्रियङ्गवः कोद्रवोदारवरकवर्जं श्यामाक-नीवारवेणुयवास्तरसंपाककन्दमूलफलान्यापः सकुमिति ।] उ३ वाताय इति तृणं वा कि० शाकं वा निरस्यति । अथाऽप उपस्पृश्य दशहोतारं व्याख्याय । [होतृणां व्याख्यान इति ॥ सग्रहानृतेस्वाहाकारानित्येकम् ॥ ऋतेग्रहानृतेस्वाहाकारानित्येकम् । सर्वानित्येकम् ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्य ॥ उत्तरावुभौ शालीकिरिति ॥ दशहोतुर्व्याख्यान इति ॥ प्रणीताः

प्रणीय प्रत्यङ् द्रवन् दशहोतारं व्याचक्षीतेत्याचार्ययोः ॥ मुष्टिमेव ग्रहीष्यन्नित्यौप-
मन्यवः ॥] हविर्निर्वप्यामि इति यजमानमामन्त्र्य पवित्रवत्याऽग्निहोत्रहवण्या निर्वपति ।
यद्यु वै नाऽनो भवति जघनेन गार्हपत्यं स्फ्यं निदधाति स्फ्योपरि पात्रीम् । पात्र्यां पुरोडा-
शीयानावपति । अथ पूर्वार्धं पात्र्या अभिमृशति धूरसि धूर्वं धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्मान् धूर्वति तं
धूर्वं यं वयं धूर्वामस्त्वं देवानामसि सस्नितमं पप्रितमं जुष्टमं वह्नितमं देवहृतममहुतमसि हविर्धानं
द० हस्व मा ह्राः इति । अथ पुरोडाशीयान् प्रेक्षते मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे मा भेर्मा संविकथा मा
त्वा हि० सिषम् इति । उरु वाताय इति तृणं वा कि० शारु वा निरस्यति । अथाऽप उपस्पृश्य
दशहोतारं व्याख्याय हविर्निर्वप्यामि इति यजमानमामन्त्र्य पवित्रवत्याऽग्निहोत्रहवण्या निर्व-
पति । ओं निर्वप इति यजमानोऽनुजानाति । अथ निर्वपति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बा-
हुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याममये जुष्टं निर्वपामि इति त्रिरेतेन यजुषा । सकृत्तूष्णीम् । [निर्वपण
इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः शकटादेव निर्वपेत् । धुरौ व्यभि-
मृश्याऽक्षपालिं कामेत् विष्णुस्त्वा क्रमताम् इति । पुरोडाशीयान् प्रेक्ष्याऽभिमृशेत् यच्छन्तां पञ्च
इति । त्रिर्यजुषा सकृत्तूष्णीं चतुरवत्तिनाम्, त्रिर्यजुषा द्विस्तूष्णीं पञ्चावत्तिनाम् ॥ सर्वानेव
यजुषेति कात्यः ॥ पञ्चावत्तस्य प्रक्रमण इति ॥ निर्वपणात् पञ्चावत्तं प्रक्रमेदिति बौधायनः ॥
अवदानत इति शालीकिः ॥ प्रदानत इत्यौपमन्यवः ॥ चातुष्पाद्यादित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥]
अथ श्वो भूते हविर्निरुप्यमाणमभिमन्त्रयते^१ अभि० होतारमिह तं हुवे देवान् यज्ञियानिह यान्
हवामहे । आयन्तु देवाः सुमनस्यमाना वियन्तु देवा हविषो मे अस्य इति । तदुदित्वा वाचं
यच्छत्या हविष्कृतः । [प्रवसतो याजमान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः सहयाज-
मानः खल्वयं यजमानः प्रवसति । स यत्र स्यात्तदेनं मनसा ध्यायेत् । स यदि विस०-
स्थित आगच्छेत् कृतमनुमन्त्र्य कर्मान्तेन प्रक्रमेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः
यद्यस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वाऽलं कर्मिणः स्यात्तं तत्र प्रेष्येत् । स यदि विस०स्थित आग-
च्छेत् कृतान्ताद्वा प्रक्रमेन्न^२ वाऽऽद्रियेत^२ । उभौ त्वेव यजमानभागं प्राश्नीयातामिति ॥]
एतामेव प्रतिपदं कृत्वा अग्नीषोमाभ्याम् इति पौर्णमास्याम् इन्द्राय वैमृधाय इति च । इन्द्राभिभ्याम्
इत्यमावास्यायामसंनयतः । इन्द्राय इति संनयतः । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति ।
अथ निरुत्तानभिमृशति इदं देवानाम् इति, इदमु नः सह इति येऽतिशिष्टा भवन्ति । स्फाल्य
त्वा नाऽरात्ये इति । [अतिशिष्टानामावपन इति ॥ तान् कोष्ठे वा पस्वे वाऽऽवपेदिति
बौधायनः ॥ अत्रैवानावपेयुरिति शालीकिः ॥] अथाऽऽहवनीयमीक्षते सुवरभि वि ख्येष वैश्वानरं
ज्योतिः इति । अथ गृहानन्वीक्षते द० हन्तां दुर्यां द्वावापृथिव्योः इति । अथैनानादायोपोत्तिष्ठति ।
ऐति उर्वन्तरिक्षमन्विहि इति । एत्योत्तरेण गार्हपत्यमुपसादयति अदित्यास्त्वोपस्थे सादयामि
इति । गार्हपत्यमभिमन्त्रयते अमे हव्यं रक्षस्व इति ॥ [आज्यस्य निर्वपण इति ॥ सूत्रं
शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन औषधस्याऽन्तं गत्वाऽऽज्यं निर्वपेत् । एवमस्य
सह हविर्भिः प्रोक्षणं लभत इति ॥ परिदान इति ॥ यथानिरुतं परिददीतेति बौधायनः ॥

अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः अमे हव्यः रक्षस्व इत्येव ब्रूयात्, विष्णो हव्यः रक्षस्व इति पयः । विष्णुर्हि पयसां गोप्ता भवत्यग्निरौषधस्येति ॥]

२. अथैतस्यामेव सुचि तिरःपवित्रमप आनीयोदीचीनाग्राभ्यां पवित्राभ्यां त्रिरु-
त्पुनाति देवो वः सवितोऽपुनात्विच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः इति पच्छुः । [प्रोक्षणी-
नामुत्पवन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ निगदन्नेवैतामृचं त्रिरुत्पुनुयादिति शालीकिः ॥]
अथैना उन्महयन्नुपोत्तिष्ठति आपो देवीरग्रेपुवो अग्रेगुवोऽग्र इमं यज्ञं नयताऽग्रे यज्ञपतिं घत्त युष्मा-
निन्द्रोऽवृणीत वृत्रतृयं यूयमिन्द्रमवृणोध्वं वृत्रतृयं इति । अङ्घ्रिरेवाऽपः प्रोक्षति प्रोक्षिताः स्थ प्रोक्षिताः स्थ
इति त्रिः । [किंप्रोक्षिता उ खलु प्रोक्षिण्यो भवन्तीति । विज्ञायते ब्रह्मवादिनो वदन्त्यङ्घ्रि-
हवीः षि प्रौक्षीः केनाऽप इति । ब्रह्मणेति । ब्रह्मप्रोक्षिता एव भवन्ति ।] अथ पुरोडाशीयान्
प्रोक्षति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्रे वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याममुष्मा
अमुष्मै इति यथादेवतं त्रिः । [पुरोडाशीयानां प्रोक्षण इति ॥ अवग्राहशः प्रोक्षेदिति
बौधायनः ॥ देवताः समनुद्गत्य त्रिरेवेति शालीकिः ॥]

३. उत्तानानि पात्राणि कृत्वा प्रोक्षति शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै इति त्रिः ।
[पात्राणां प्रोक्षण इति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः शुन्धध्वं दैव्याय
कर्मणे पात्राणि देवयज्यायै इति ॥] अतिशिष्टाः प्रोक्षणीनिंघाय । [अतिशिष्टानां परिशायन
इति ॥ एता एव परिशयीरन्निति बौधायनः ॥ सिक्त्वेता अप उपरिष्ठादन्याः सः स्कुर्वी-
तेति शालीकिः ॥]

हविःकण्डनादिकपालोपधानान्तम्

बौधायनश्रौ० [१.६-८; ३.१५; २०.६-८; २४.२५-२६; २८.१३]—

१. कृष्णाजिनमवधूतोत्पृथ्वीचमुदङ्कावृत्य अवधूतः रक्षोऽवधूता अरातयः इति
त्रिः । [कृष्णाजिनस्याऽवधवन इति ॥ उपनिष्कम्याऽग्न्यगारादुत्तरेऽपरेऽवान्तरदेशे कृष्णा-
जिनमवधुनुयादिति बौधायनः ॥ अन्तरेवैतां दिशमिति शालीकिः ॥] अथैनत्पुरस्तात्प्रती-
चीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेतु इति । [कृष्णाजिन-
स्याऽऽस्तरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽविसृजन्नेतत्कर्म कुर्यात्कृष्णाजिनावधवनादा
आस्तरणात् । एवमुलूखलाध्यूहनादा पुरोडाशीयानामावपनात् । एवं मुसलस्याऽवधानादा
शूर्पस्योपोहनात् । एवमधिवपनादा प्रस्कन्दनात् । एवं कपालोपधानादा योगाभ्यूहाभ्याम् ।
एवं प्रस्तर आ सुचाः सादनात् । एवमभ्यादानादा खननात् । एवमौदुम्बर्याभिहोमात्^१ । एवं
यूप आ परिव्ययणादिति ॥ यथोपपादमेवैतानि कर्माणि कुर्यादिति शालीकिः ॥] तस्मिन्नु-
लूखलमध्यूहति अधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेतु इति । तस्मिन् पुरोडाशीयाना-
वपति अग्नेस्तनूरसि वावो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि इति । [पुरोडाशीयानामावपन इति ॥
सूत्रं बौधायनस्य ॥ पञ्च मुष्टीन् पञ्चावसिनामावपेदिति शालीकिः ॥] मुसलमवधधाति

अद्विरसि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हव्यः सुशमि शमिष्व इति । अथ हविष्कृतमाह्वयति हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि इति त्रिः (उच्चैः समाहन्तवै इति च) । [हविष्कृदेहि इति ब्राह्मणस्य वदति, हविष्कृदागहि इति राजन्यस्य, हविष्कृदाद्रव इति वैश्यस्य । हविष्कृदेहीति पर्जन्य एवैष उक्तो भवति । अथाऽप्युदाहरन्ति हविःसः स्कारीमेवैतदाहेति ।] अथ दृषदुपले वृषारवेणोच्चैः समाहन्ति इषमा वदोर्जमा वद छुमद्वदत वयः संचातं जेषम इति । [दृषदुपले वृषारवेणोच्चैः समाहन्तीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ शम्यया^१ वेति^२ शालीकिः ॥] [दृषदुपले वृषारवेणोच्चैः समाहन्तीति । विज्ञायते ब्राह्मणम्—‘उच्चैः समाहन्तवा आह विज्जित्यै’ । यावन्तोऽस्य भ्रातृव्या यज्ञायुधानामुद्वदतामुपशृण्वन्ति ते पराभवन्तीति । द्विर्द्विर्दृषदि सकृत्सकृदुपलयायाम् । नवकृत्वः संपादयतीति विज्ञायते ।] हविष्कृता वाचं विसृज्य यज्ञं योगेन युनक्ति^३ कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तु इति । अवहृत्योत्तुषान् कृत्वोत्तरतः शूर्पमुपयच्छति वर्षवृद्धमसि इति । तस्मिन् पुरोडाशीयानुद्वपति प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु इति । [शूर्पस्योपोहन इति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्तूष्णीं^४ शूर्पमुपोहेत् । समस्तेनैवाऽस्मिन् मन्त्रेण पुरोडाशीयानुद्वपेत् वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु इति ॥] अथोदङ् पर्यावृत्य परापुनाति परापूतः रक्षः परापूता अरातयः इति । [अथोदङ् पर्यावृत्य परापुनातीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ यां कां चिदिशमभि पर्यावृत्य परापुनातीति शालीकिः ॥] सव्येन तुषानुपहत्येमां दिशं निरस्यति रक्षसां भागोऽसि इति । अथाऽप उपस्पृश्य । [तुषाणां निरसन इति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनोऽत एव यावन्मात्रानुपहत्य कृष्णाजिनस्य ग्रीवात् उपवपेत् रक्षसां भागोऽसि इति । अथोदकमुपस्पृशेदिति ॥] विविनक्ति वायुर्वीं विविनक्तु इति । पात्र्यां तण्डुलान् प्रस्कन्दयति देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातु इति । अवहन्यै प्रयच्छन्नाह त्रिष्फलीकृतवै, त्रिष्फलीकृतान्मे प्रब्रूतात् इति । त्रिष्फलीकृतान् प्राहुः ।

२. त्रिष्फलीकियमाणानां यो न्यङ्गो अवशिष्यते । रक्षसां भागधेयमापस्तत् प्रवहतादितः इति तण्डुलप्रक्षालनमन्तर्वेदि निनयत्युत्तरदेशे वा । एतस्मिन् काले प्रातर्दोहं धेनूदोहयत्युदगग्रेण पवित्रेण । नाऽत्राऽऽतनक्ति । अथ प्रोक्तेषु त्रिष्फलीकृतेषु तथैव कृष्णाजिनमवधूनोत्पूध्वं ग्रीवमुदङ्कावृत्य अवधूतः रक्षोऽवधूता अरातयः इति त्रिः । अथैनत्पुरस्तात्प्रतीचीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु इति । [कृष्णाजिनस्य पुनरास्तरण इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ प्राचीनग्रीवमुत्तरक्षमित्यौपमन्यवः ॥] तस्मिन्नुदीचीनकुम्बा^५ शम्यां निदधाति दिवः स्कम्भनिरसि प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु इति । तस्यां प्राचीं दृषदमध्यहति धिषणाऽसि पर्वत्या प्रति त्वा दिवः स्कम्भनिर्वेत्तु इति । दृषद्युपलामध्यहति धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वतिर्वेत्तु इति । तस्यां पुरोडाशीयानधिवपति देवस्य त्वा सविनुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्रे जुष्टमधिषाम्यग्रीषोमभ्याममुष्मा अमुष्मै इति यथादेवतम् । अधिवदते धान्यमसि धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञनियम् इति । पि^६पति प्राणाय त्वाऽपानाय त्वा व्यानाय त्वा इति । बाहू अन्ववेक्षते दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धाम् इति । कृष्णाजिने

पिष्टानि प्रस्कन्दयति देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातु इति । [पेषण इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः प्राणाय त्वा इति प्राचीं प्रोहेद्, अपानाय त्वा इति प्रतीचीं, व्यानाय त्वा इति तिरश्चीं कर्षेत् । अथ प्राचीं प्रोहेद् दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धाम् इति । कृष्णाजिने पिष्टानि प्रस्कन्दयेद् देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातु इति ॥] हविःपेष्यै प्रयच्छन्नाह असंवपन्ती पि५षाऽणूनि कुस्तात् इति । पि५षन्ति पुरोडाशीयान्नि चरव्यान् दधति । यदि चरं करिष्यन् भवति, प्रागधिवपनाच्चरपुरोडाशीयान् विभजेरन् ॥

३. अथैतानि कपालानि प्रक्षालितानि जघनेन गार्हपत्यमुपसादयति । अष्टौ दक्षिणत एकादशोत्तरतः । अथ जघनेन गार्हपत्यमुपविश्य धृष्टिमादत्ते धृष्टिरसि ब्रह्म यच्छ इति । [नैकचरौ धृष्टेरादानं विद्यते न बहुष्विति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन आदित एव धृष्टिमाददीत धृष्टिरसि ब्रह्म यच्छ इति । गार्हपत्यमभिमन्त्रयेत् अपाऽग्नेऽग्निमामादं जहि इति । निष्कव्याद५सेध इति दक्षिणाङ्गारं निरस्येत् । अथाऽन्यान् कल्पयेत् आ देवयजं वह इति । तेषु चरुस्थालीमधिभ्रयेत् ध्रुवाऽसि पृथिवीं द५हाऽऽयुर्द५ह प्रजां द५ह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथैनां प्रदक्षिणमङ्गारैः परिचिनुयात् निर्दग्ध५रक्षो निर्दग्धा अरातयः इति । स एवमेव सर्वाश्चरुस्थालीरधिभ्रयेदिति ॥ चरुमुखेष्विति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आदित एव धृष्टिमाददीत । मुख्यादेव भक्षान् साधयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः कपालसंयोजने खलु धृष्टेरादानं भवति । स कपालान्येवोपधास्यन् धृष्टिमाददीत । पुरोडाशादेव भक्षान् साधयेदिति ॥] गार्हपत्यमभिमन्त्रयते अपाऽग्नेऽग्निमामादं जहि इति । [अपाऽग्नेऽग्निमामादं जहीति । को नु खल्वामाद्भवतीति । अपराग्निरेवैष उक्तो भवति ।] निष्कव्याद५सेध इति दक्षिणाङ्गारं निरस्यति । [निष्कव्याद५सेध इत्यादहनाग्निरेवैष उक्तो भवति ।] अथाऽन्यमावर्तयति आ देवयजं वह इति । [आ देवयजं वह इत्याहवनीय एवैष उक्तो भवति । को नु खलु कव्यवाहन इत्यन्वाहार्यपचन इत्येव ब्रूयात् । विज्ञायते—‘यदग्ने कव्यवाहन पितृन् ग्रक्ष्यतावृधः’ इति ।] तं दक्षिणेषां कपालानां मध्यमेनाऽभ्युपदधाति ध्रुवमसि पृथिवीं द५हाऽऽयुर्द५ह प्रजां द५ह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अङ्गारमधिवर्तयति निर्दग्ध५रक्षो निर्दग्धा अरातयः इति । [कपालानामुपधान इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यथाग्नायं खल्वस्यैवं कपालान्युपहितानि भवन्ति । य एवैषोऽङ्गाराधिवर्तनो मन्त्रस्तं प्रथमं कपालोपधानानां कुर्यादथ तूष्णीमङ्गारमधिवर्तयेदिति ॥ एककपाले द्विकपाल इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यदि चैककपालो यदि च द्विकपालः सर्वैरेनं कपालमन्त्रैरुपदध्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यथाधिकरणमेव कपालान्युपदध्यात् । न तु योगाभ्यूहौ गमयेत् । तपनमन्त्रं वाऽत्र२ ब्रूयात् भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यस्व तप्येथां तप्यध्वमिति ॥] अथ पूर्वार्ध्यमुपदधाति धर्ममस्यन्तरिक्षं द५ह प्राणं द५हाऽपानं द५ह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथाऽपरार्ध्यमुपदधाति धरुणमसि दिवं द५ह चक्षुर्द५ह श्रोत्रं द५ह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथ दक्षिणार्ध्यमुपदधाति धर्माऽसि दिशो द५ह योनिं द५ह प्रजां द५ह

सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथ पूर्वमुपधिमुपदधाति चितः स्थ प्रजामस्मै रथिमस्मै सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथाऽपरमेवमेव । द्वे उत्तरतः सः स्फुट्टे उपदधाति चितः स्थ प्रजामस्मै रथिमस्मै सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह इति । अथेनान्यङ्कारैरधिवासयति मृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् इति । अथैनानि योगेन युनक्ति यानि धर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः । पूष्णस्तान्यपि मत इन्द्रवायुं युङ्क्ताम् इति । [कपालानां योग इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौ-पमन्यव एतैरेवाऽस्येतानि मन्त्रेर्युक्तानि यैरुपहितानि भवन्ति । अथेतरो विमोचनमन्त्र एव स्यादिति ॥] काले कपालानि युनक्ति^१ यानि धर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः । पूष्णस्तान्यपि मत इन्द्रवायुं युङ्क्ताम् इति । एवमेवोत्तराणि कपालान्युपदधाति । अभीन्धते कपालानि । उपेन्धते चरुशाली ॥ अध्यस्यन्ति श्रपणानि । तपन्ति पित्रुसंयवनीया आपः । [मदन्ती-नामधिश्रयण इति ॥ तिरः पवित्रमप आनीयाऽधिश्चयेदिति बौधायनः ॥ यथोपपादमिति शालीकिः ॥]

पुरोडाशश्रपणम्

बौधायनश्री० [१.९-१०; २०.८; २४.२६-२७; २८.१३]—

१. अथोत्तरेण गार्हपत्यमुपविश्य वाचंयमस्तिरः पवित्रं पात्र्यां कृष्णाजिनात् पिष्टानि संवपति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टः संवपाम्यग्नोर्बोमाभ्याममुष्मा अमुष्मै इति यथादेवतम् । [कुतो नु खलु पिष्टानि संवपेत् । कृष्णाजिनादित्येव ब्रूयात् । संवपन् पिष्टानि वाचं यच्छति^१ । ताम् अविदहन्तः श्रपयत इत्येव वाचं विस्तृजते ।] अथ परिकर्मणमाह आहराऽप आनय इति । आहरति प्रेशकारः प्रणीताभ्यः सुवेणोपहृत्य वेदेनोपयम्य पाणिं वाऽन्तर्धाय । एवं मदन्तीभ्यः । ता उभयीरानीयमानाः प्रतिमन्त्रयेत समापो अद्भिरगमत समोषधयो रसेन सः रेवतां जगतीभिर्मधुमतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वम् इति । [संयवन इति ॥ सूत्रः शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः प्रणीताभ्यः सुवेणोपहृत्याऽप आनयेत् । एवं मदन्तीभ्यः । ता उभयीरानीयमानाः प्रतिमन्त्रयेत समापो अद्भिरगमत इति ॥] अथाऽनुपरिप्लावयति अद्भयः परि प्रजाताः स्थ समाद्भिः पृच्यध्वम् इति । संयौति जनयत्यै त्वा संयौमि इति । संयुत्य व्यूह्याऽभिमृशति अग्नये त्वाऽग्नोर्बोमाभ्याममुष्मा अमुष्मै इति यथादेवतम् । [व्यभिमर्श इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो व्यभिमृशेदेवेकहविरेवं नानाबीजानीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सः सर्गात्खलु व्यभिमर्शो जायते । नाऽसः सृज्यमानानि हवीः^२ वि व्यभिमृशेन्नैकहविः । को हि नानाबीजानां व्यभिमर्श इति ॥] पिण्डं करोति मखस्य शिरोऽसि इति । तं दक्षिणेण कपालानां प्रत्यूह्याऽङ्कारास्तेष्वधिपृणक्ति धर्मोऽसि विश्वायुः इति । प्रथयति उह प्रथस्वोह ते यज्ञपतिः प्रथताम् इति । तं तन्वन्तं कूर्मप्रकारं करोति । 'सर्वाणि कपालाभ्यभि प्रथयति' इति ब्राह्मणम्^३ ॥

२. अथ तिरः पवित्रमाज्यस्थाप्यामाज्यं निर्वपति महीनां पयोऽस्योषधीनां रसस्तस्य तेऽक्षीयमाणस्य निर्वपामि देवयज्यायै इति । [आज्यस्य निर्वपण इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ आख्यातं बौधायनस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवः सर्वाण्येव हवीषि परिनिष्ठाप्याऽऽज्यं निर्वपेदिति ॥] अथोत्तरतो भस्ममिश्रानङ्गाराभिरूह्य तेष्वधिश्रयति । [घृतमाज्यार्थे । गव्यमिति प्रत्ययः । तस्याऽलामे माहिषमाजं वा घृतमाज्यार्थे प्रयुज्जीत । भोजनेष्वविरुद्धं मन्यन्त एके । तयोरलामे तैलं प्रतिनिधिः । तस्याऽलामे जर्तिलतैलम् । अतसीकुसुम्भः सर्षपवार्क्षस्नेहा इति शिष्टप्रामाण्यात् । अत ऊर्ध्वमलामे यवपिष्टानि व्रीहिपिष्टानि श्यामाकपिष्टानि वाऽङ्गिः सः सृज्याऽऽज्यार्थे प्रयुज्जीत ।]

३. एवमेवोत्तरं पुरोडाशमधिपृणक्ति । अथ शृतमथ दधि । अथ पाज्यामप आनीय दक्षिणस्य पुरोडाशस्य त्वचं ग्राहयति त्वचं गृह्णीष्व त्वचं गृह्णीष्व इति त्रिः । अथोत्तरस्य । अथ पर्यङ्गि करोति अन्तरितः रक्षोऽन्तरिता अरातयः इति त्रिः । अथ दक्षिणं पुरोडाशं श्रपयति देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाकेऽभिस्ते तनुवं माति धाक् इति । गार्हपत्यमभिमन्त्रयते अग्ने हव्यः रक्षस्व इति । एवमेवोत्तरं पुरोडाशं श्रपयति । अथ दक्षिणं पुरोडाशं भस्मनाऽभिवास्य वेदेनाऽभिवासयति सं ब्रह्मणा पृच्यस्व सं ब्रह्मणा पृच्यस्व इति त्रिः । अथोत्तरम् । अविदहन्तः श्रपयत इति वाचं विसृजते । ['यो विदग्धः स नैर्ऋतो योऽशृतः स रौद्रो यः शृतः स सदेवः' इति^१ । साधुशृतं श्रपयतीत्येवेदमुक्तं भवति । सं ब्रह्मणा पृच्यस्वेति । विज्ञायते वाग्वै ब्रह्म वाचैवैनमेतत्संपृणक्ति ।] अत्रैतत् पात्रीसंक्षालनं गार्हपत्याङ्गारेणाऽभितप्य हत्वाऽन्तर्वेदि प्रतीचीनं तिसृषु लेखासु निनयति एकताय स्वाहा, द्विताय स्वाहा, त्रिताय स्वाहा इति । [आप्यनिनयन इति ॥ जघनेन गार्हपत्यमाप्येभ्यो निनयेदिति बौधायनः ॥ अग्नेणाऽतिहायेति शालीकिः ॥ अग्नेण वा जघनेन वेत्यौपमन्यवः ॥] [क उ खलु हविः पृक्तं श्रप्यत इति । यदेवैतदाप्येभ्यो^२ निनयति एकताय स्वाहा द्विताय स्वाहा त्रिताय स्वाहा इति । को नु खल्वेकतः को द्वितः कस्त्रित इति । पिता पितामहः प्रपितामह इत्येके । पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरित्येके । अग्निरादित्यो वैद्युत इत्येके । अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर आसन्नित्येके । ऋषय एतन्नामधेया बभूवुरित्येके । ते देवा आप्येष्वमृजतेत्याप्यनामधेया देवा भवन्ति ।]

वेदिकरणम्

बौधायनश्रौ० [१.१०-११; ३.२३; २०.९; २४.२३-२४]—

१. अथ वेदमादत्ते अथ वेदः पृथिवीमन्वविन्दद् गुहा सतीं गहने गह्वरेषु । स विन्दतु यजमानाय लोकमच्छिद्रं यज्ञं भूरिकर्मा करोतु इति । वेदेन वेदिं त्रिः संमार्ष्टि वेदेन वेदिं विविडुः पृथिवीं सा पप्रये पृथिवीं पार्थिवानि । गर्भं विभर्ति भुवनेष्वन्तस्ततो यज्ञो जायते विश्वदानिः इति ।

अथ जघनेन वेद्यै तिष्ठन् स्फ्यमादत्ते देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इति । आदायाऽभिमन्त्रयते इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रमृष्टिः शततेजाः इति । अथैनं बर्हिषा स० इयति वायुरसि तिग्मतेजाः शतमृष्टिरसि वानस्पत्यो द्विषतो वधः इति । [स्फ्यस्य स० शान इति ॥ सूत्र० शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो य एष स्फ्यस्योदसनो मन्त्रस्तं प्रथम० स० इयनानां कुर्यादथ तूष्णी० स्फ्यमुदस्येदिति ॥] अथाऽन्तर्वेद्युदीचीनाग्रं बर्हिर्निदधाति पृथिव्यै वर्माऽसि वर्म यजमानाय भव इति । तस्मिन् स्फ्येन प्रहरति पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हि० सिषम् इति । अपहतोऽरुः पृथिव्यै इत्यादत्ते । व्रजं गच्छ गोस्थानम् इति हरति । वेदिं प्रत्यवेक्षते वर्षतु ते द्यौः इति । हत्वोत्करे निवपति बधान देव सवितः परमस्यां परावति शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् इति । द्वितीयं प्रहरति पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हि० सिषम् इति । अपहतोऽरुः पृथिव्यै देवयजन्यै इत्यादत्ते । व्रजं गच्छ गोस्थानम् इति हरति । वेदिं प्रत्यवेक्षते वर्षतु ते द्यौः इति । हत्वोत्करे निवपति बधान देव सवितः परमस्यां परावति शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् इति । तृतीयं प्रहरति पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हि० सिषम् इति । अपहतोऽरुः पृथिव्या अदेवयजनः इत्यादत्ते । व्रजं गच्छ गोस्थानम् इति हरति । वेदिं प्रत्यवेक्षते वर्षतु ते द्यौः इति । हत्वोत्करे निवपति बधान देव सवितः परमस्यां परावति शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अरुस्ते दिवं मा स्कान् इत्यत्राऽनुवर्तयति । तूष्णीं चतुर्थं हरति सह बर्हिषा ।

२. अथ पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा इति दक्षिणतः, रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा इति पश्चात्, आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसा इत्युत्तरतः । [वेद्यै परिग्रहण इति ॥ सूत्र० शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः श्रोणिं प्रथमां परिगृह्णीयादथ दक्षिणम० समथोत्तरमिति ॥ पुरस्तादेवैनां प्रदक्षिणं परिगृह्णीयादित्यौपमन्यवः ॥] अथ करणं जपति इमां नराः कृणुत वेदिमेत्य बहुमती० रुद्रवतीमादित्यवतीं वर्ष्मन् दिवो नाभा पृथिव्या यथाऽयं यजमानो न रिष्येत् इति । अथ प्राची० स्फ्येन वेदिमुद्धन्ति देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्ति वेधसः इति । अथाऽऽग्नीध्रमाह अग्नीदितस्त्रिह्र इति । ततस्त्रिग्रीध्रो हरति । [अथेयं दार्शपौर्णमासिकी वेदिर्यजमानमात्री भवत्यपरिमिता वा । यथाऽऽसन्नानि हवी०षि संभवेदेवं तिरस्त्री । प्राञ्चौ वेद्य० सावुन्नयत्याहवनीयस्य परिगृहीत्यै । प्रतीची श्रोणी निरूहति गार्हपत्यस्य परिगृहीत्यै । पुरस्ताद० हीयसी पश्चात् प्रथीयसी मध्ये संनततरा भवतीत्येवमिव हि योषेति । तस्यै वदति इयतीं खनति प्रजापतिना यजमानमुखेन संमिताम् । आ प्रतिष्ठायै खनतीति । द्वयङ्गुलं खेयेत्येकेषां त्र्यङ्गुलं खेयेत्येकेषां चतुरङ्गुलं खेयेत्येकेषां सीतामात्रीत्येकेषां रथवर्त्ममात्रीत्येकेषां यावत्पाणिन्यै श्वेतमित्येकेषाम् । एतदेव सदन्येषामनुनिकान्ततरं भवति । नैता मात्रा अतिखनेत् । दक्षिणतो वर्षीयसीं करोति । पुरीषवतीं करोति । प्राचीमुदीचीं प्रवणां निस्तिष्ठन्तीति । इयन्तं गृह्णातीति प्रस्तरस्य वदति ।] [यावति कृष्णभृगु उपविशेत्तावदवराधोऽध्वगतो विहारः ।] यदाग्नीध्रस्त्रिह्रत्यथ संप्रैवमाह ब्रह्मजुतरं परिग्राहं परिग्रहीष्यामि इति । स यत्राऽऽह

ब्रह्मशुत्तरं परिग्राहं परिग्रहीष्यामीति तद्ब्रह्मा प्रसौति बृहस्पते परिग्रहाण वेदिं ब्रह्मणा यज्ञं परिग्रही-
हीमम् । सप्तर्षिणां सुकृता यत्र लोकस्तत्रेयं यज्ञं यजमानं च वेदि । ओं परिग्रहाण इति ।

३. प्रसूत उत्तरं परिग्राहं परिगृह्णाति ऋतमसि इति दक्षिणतः, ऋतसदनमसि इति
पश्चात्, ऋतश्रीरसि इत्युत्तरतः । अथ प्रतीचीं स्फ्येन वेदिं योयुप्यते धा आसि स्वधा अस्युर्वी
चाऽसि वस्वी चाऽसि पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिशुदादाय पृथिवीं जीरदानुर्यामैरयश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां
धीरासो अनुददय यजन्ते इति । [योयुपन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ चतुर्थेन योयुपित्वा
पञ्चमेनोदग्रहीयादिति शालीकिः ॥] अथाऽन्तर्वेदि तिर्यञ्च स्फ्यं स्तब्ध्वा संप्रेरमाह
प्रोक्षणीरासादयेध्माबर्हिंरुपसादय सुवं च सुचश्च संमृड्ढि पत्नीं संनह्याऽऽज्येनोदेहि इति । आहरन्त्येताः
प्रोक्षणीरमिपूर्य । दक्षिणेनाऽध्वर्युस्ताः स्फ्य उपनिनीय स्फ्यस्य वर्तमन् सादयति । [प्रोक्ष-
णीनामासादन इति ॥ स्फ्यस्य वर्तमन्नुपनिनीयाऽऽसादयेदिति बौधायनः ॥ अनुपनिनीयै-
वेति शालीकिः ॥] अथोत्करे स्फ्यं निहन्ति यो मा हृदा मनसा यश्च वाचा यो ब्रह्मणा कर्मणा
द्वेष्टि देवाः । यः श्रुतेन हृदयेनेष्णता च तस्येन्द्र वज्रेण शिरश्छिनमि इति । हस्तौ प्रक्षाल्य स्फ्यं च
प्रक्षालयति । उपसादयन्त्येतदिध्माबर्हिर्दक्षिणमिध्ममुत्तरं बर्हिः । [इध्माबर्हिषोरुपसादन
इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ उत्तरमिध्ममिति शालीकिः ॥]

सुक्संमार्गः पत्नीसंनहनमाज्यग्रहणं च

बौधायनश्रौ० [१.१२; ३.१६; २०.१०; २४.२७]—

१. अथेताः सुचः समादत्ते दक्षिणेन सुवं जुहुपभृतौ सव्येन ध्रुवां प्राशिन्नहरणं
वेदपरिवासनानीति । [वेदपरिवासनेष्विति ॥ पञ्चधा विभज्य सुचः संमृजेदिति बौधा-
यनः ॥ समस्तरेवाऽङ्गिरभ्याकारमिति शालीकिः ॥] गार्हपत्ये प्रतितपति प्रत्युष्टं रक्षः
प्रत्युष्टा अरातयोऽप्रेर्वस्तेजिष्ठेन तेजसा निष्टपामि इति । अथ सुचं संमार्हिं गोष्ठं मा निर्मृशं वाजिनं
त्वा सपत्नसाहीं संमार्ज्मि इति । त्रिरन्तरतस्त्रिर्बाह्यतस्त्रिरेवं मूलेर्दण्डं संमृज्याऽङ्गिः स स्पर्श्य
प्रतितप्योत्प्रयच्छति । अथ जुहुं संमार्हिं वाचं प्राणं मा निर्मृशं वाजिनो त्वा सपत्नसाहीं संमार्ज्मि
इति । तथैव संमृज्याऽङ्गिः स स्पर्श्य प्रतितप्योत्प्रयच्छति । अथोपभृतं संमार्हिं चक्षुः श्रोत्रं
मा निर्मृशं वाजिनो त्वा सपत्नसाहीं संमार्ज्मि इति । तथैव संमृज्याऽङ्गिः स स्पर्श्य प्रतितप्यो-
त्प्रयच्छति । अथ ध्रुवां संमार्हिं प्रजां योनिं मा निर्मृशं वाजिनो त्वा सपत्नसाहीं संमार्ज्मि
इति । तथैव संमृज्याऽङ्गिः स स्पर्श्य प्रतितप्योत्प्रयच्छति । अथ प्राशिन्नहरणं संमार्हिं
रूपं वर्णं पशुभ्यो मा निर्मृशं वाजिनं त्वा सपत्नसाहीं संमार्ज्मि इति । तथैव संमृज्याऽङ्गिः
स स्पर्श्य प्रतितप्योत्प्रयच्छति । [प्राशिन्नहरणस्य संमार्जेन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
तृष्णीं संमृजेदिति शालीकिः ॥ न संमृजेदित्यौपमन्यवः ॥] अथेतानि सुक्संमार्ज-
नान्यङ्गिः स स्पर्श्य गार्हपत्येऽनुग्रहरति दिवः शिल्पमवततं प्राथिव्याः ककुमि श्रितं तेन वयं
सहस्रवत्सेन सपत्नं नाशयामसि स्वाहा इति । [सुक्संमार्जनानामनुग्रहरण इति ॥ सूत्रं

शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनोऽद्विरभ्युक्ष्याऽसंचर उदस्येदुत्करे वा । पशमिध्म-
संनहनानीति ॥] अथाऽग्नेणोत्करं तृणानि स० स्तीर्य तेषु सुचः सादयित्वा ।

२. अथैतां पत्नीमन्तरेण वेद्युत्करौ प्रपाद्य जघनेन दक्षिणेन गार्हपत्यमुदीची-
मुपवेक्ष्य योषत्रेण संनहति आशासाना सीमनसं प्रजा० सौभाग्यं तनूमभेरनुव्रता भूत्वा संनह्ये
सुकृताय कम् इति । [ग्रन्थिकरण इति ॥ अवाचीनपाशमूर्ध्वनिर्मोचनमित्याचार्ययोः ॥ ऊर्ध्व-
पाशमवाचीननिर्मोचनमिति दीर्घवात्स्यः । पशमिव हि प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ पत्नीनां
संनहन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन एकैकामासां संनह्येदेकैकां गार्हपत्यमीक्षयेदेकैका-
माज्यमवेक्षयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सकृदेवैनाः सर्वाः संनह्येदेकैकां गार्हपत्य-
मीक्षयेदेकैकामाज्यमवेक्षयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवः सकृदेवैनाः सर्वाः संनह्येत्
सकृद्गार्हपत्यमीक्षयेदेकैकामाज्यमवेक्षयेदिति ॥ एकैकामेवाऽऽसां सर्वेण सर्वेण कर्मणा
परिनिस्तिष्ठेदित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] (अथैनां वाचयति युक्तं क्रियाता आशीः कामे युज्यात इति ।)
[पत्न्यामविद्यमानायामिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यजमानायतन आसीनो यजमान
पवेतान् मन्त्राग्निगदेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः पत्नीसंयोजकाः खल्वेते मन्त्रा दृष्टा
भवन्ति । तस्यामविद्यमानायां नैवैनानाद्रियेतेति ॥] अथैनां तिरः पवित्रमप आचामयति
पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः । अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र स० सृज इति । अथैनां गार्हपत्ये
समिध आधापयति अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां स्वाहा, वायो व्रतपते...,
आदित्य व्रतपते..., व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां स्वाहा इति । अथ जघनेन
गार्हपत्यमुपसीदति सुप्रजसस्त्वा वयं सुपत्नीरुपसेदिम । अग्ने सपलदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥
इन्द्राणीवाऽविधवा भूयासमदितिरेव सुपुत्रा । अस्थूरि त्वा गार्हपत्योपनिषदे सुप्रजास्त्वाय ॥ मम पुत्राः
शत्रुहृणोऽथो मे दुहिता विराट् । उताऽहमस्मि संजया पत्युर्मे श्लोक उत्तमः इति । (अथैनां वाचयति
ऊनेऽतिरिक्तं धीयात इति च ।) अथैनां गार्हपत्यमीक्षयति अग्ने गृहपत उप मा ह्यस्व देवानां
पत्नीरुप मा ह्यध्वं पति पत्येष ते लोको नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः इति ।

३. अथैनामाज्यमवेक्षयति महीनां पयोऽस्योषधीनां रसोऽदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेक्षे
सुप्रजास्त्वाय इति । अथैनद्गार्हपत्येऽधिभ्रयति तेजोऽसि इति । समिधमुपयत्य प्राङ् हरति
तेजोऽनु मेहि इति । अथैनदाहवनीयेऽधिभ्रयति अग्निस्ते तेजो मा वि नैत् इति । अत्रैतां समिधं
मध्यत आहवनीयस्याऽभ्यादधाति (स्वाहा इति) । [अथैनामाज्यमवेक्षयतीति ॥ सूत्रं
शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः पत्न्या तदवेक्षितमुपयच्छीत तेजोऽसि इति । अथैन-
च्छकलेनोपयत्य हरेत् तेजोऽनु मेहीति । अथैनदाहवनीयेऽधिभ्रयेत् अग्निस्ते तेजो मा वि नैत् इति ।
अथैनद्वृत्तोत्तरेण प्रोक्षणीः सादयित्वाऽवेक्षित्वोत्पुनयादाज्यवतीभ्यां प्रोक्षणीरिति ॥ आज्य-
स्याऽवेक्षण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्वैरेवाऽवेक्षितमाज्यमुत्पुनयादिति शालीकिः ॥]
अथैनदग्नेण प्रोक्षणीः पर्याहृत्य दक्षिणार्धं वेधे निधाय यजमानमाज्यमवेक्षयति । 'निमी-
त्याऽवेक्षेत' इति ब्राह्मणम् । अथैनद्यथाहृतं प्रतिपर्याहृत्योत्तरार्धं वेधे निधायऽध्वर्युरवेक्षते
अग्नेर्जिह्वाऽसि सुभुर्वेवानां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे भव इति । अथ यजमानमाज्यमवेक्षयति

आज्यमसि सत्यमसि सत्यस्याऽध्यक्षमसि हविरसि वैश्वानरं वैश्वदेवमुत्तुष्टुम् सत्याजाः सहोऽसि सहमानमसि सहस्वाऽरातीः सहस्वाऽरातीयतः सहस्व पृतनाः सहस्व पृतन्यतः सहस्त्रवीर्यमसि तन्मा जिन्वाऽऽज्यस्याऽऽज्यमसि सत्यस्य सत्यमसि सत्यायुरसि सत्यशुष्ममसि सत्येन त्वाऽभिघारयामि तस्य ते भक्षीय इति । [किमभिघारितं नु खत्वाज्यं भवतीति । सत्याभिघारितमित्येव ब्रूयात् । विज्ञायते सत्येन त्वाऽभिघारयामि तस्य ते भक्षीयेति ।] अथैनदुदीचीनाग्राभ्यां पवित्राभ्यां पुनराहारं त्रिरुत्पुनाति शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोऽसि इति । अथ प्रोक्षणीरुत्पुनाति देवो वः सवितोत्पुनातु, अन्धिद्रेण पवित्रेण, वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः इति पच्छः । प्रोक्षणीषु पवित्रे अवधाय ।

४. आदत्ते दक्षिणेन सुवं सव्येन जुह्वं वेदे प्रतिष्ठाप्य तस्यां गृहीते शुक्रं त्वा शुक्रायां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि इति । एतेन यजुषा चतुर्गृहीतं गृहीत्वा संमृश्योत्प्रयच्छति । अथाऽऽज्यग्रहाणां गृहीतं गृहीतमनुमन्त्रयते^१ पञ्चानां त्वा वातानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वर्तूनां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा दिशां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि इति चतुर्भिर्जुह्वम् । [पञ्चानां त्वा वातानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामीत्यनुदिशं वाताः । विष्वक्वात एवैषां पञ्चमो भवति । पञ्चानां त्वर्तूनां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामीति हेमन्तशिशिरावत्र समासं गच्छतः । पञ्चानां त्वा दिशां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामीतीयमेवाऽऽसामूर्ध्वा दिक् पञ्चमी भवति । पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामीति । देवा मनुष्या असुरा राक्षसाः । गन्धर्वा एवैषां पञ्चमा भवन्ति ।] अथोपभृति गृहीते ज्योतिस्त्वा ज्योतिषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि इति । एतेन यजुषाऽष्टगृहीतं गृहीत्वा भूयसो ग्रहान् गृह्णानः कनीय आज्यं गृहीते । तथैव संमृश्योत्प्रयच्छति । [अष्टाभिरुपभृते^१ चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, ब्रह्मणस्त्वा तेजसे यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, क्षत्रस्य त्वीजसे यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, विशे त्वा यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि, सुवीर्याय त्वा गृह्णामि, सुप्रजास्त्वाय त्वा गृह्णामि, रायस्योषाय त्वा गृह्णामि, ब्रह्मवर्चसाय त्वा गृह्णामि इति । [चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामीत्ययमेवैष आकाशश्चरुः पञ्चबिलो भवति । दिशोऽस्य पञ्च बिलानि भवन्ति वायुर्मेक्षणमिति । अत्राऽप्युदाहरन्ति संवत्सर एवाऽपि चरुः पञ्चबिलो भवत्यृतवोऽस्य बिलानि भवन्ति वायुर्मेक्षणमिति ।] अथ ध्रुवायां गृहीते अर्विस्त्वाऽर्विषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि इति । एतेन यजुषा चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽभिपूर्य तथैव संमृश्योत्प्रयच्छति । चतुर्भिर्ध्रुवां^१ भूरस्माक् हविर्देवानामाशिषो यजमानस्य देवानां त्वा देवताभ्यो गृह्णामि इति । अभिपूर्यमाणमनुमन्त्रयते^१ कामाय त्वा गृह्णामि इति । [आज्यग्रहाणां ग्रहण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैर्गृहीयात् पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैर्गृहीयात् पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । न याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहोपमन्यवो यथापि पौरोडाशिका मन्त्रा नाऽभिवर्तन्त^१ एवमेवाऽपि याजमाना मन्त्रा नाऽभिवर्तन्ति^२ ॥]

१. यजमानः २. 'नाभिनि०' इति मुद्रितपाठः, परम् अत्रैव १८० पृष्ठे ६ पङ्क्तौ मुद्रितं बी० १०.११ सप्त द्रष्टव्यम् ।

बर्हिस्तारणं सुगासादनं च

बौधायनश्रौ० [१.१३; ३.१६; २०.१०-१२, २३; २४.२७]—

१. अथैतामाज्यस्थालीं ससुवां जघनेन वेद्यै निधाय प्रोक्षणीरुन्मह्यशुपो-
त्तिष्ठति आपो देवीरग्रेषुवो अग्रेषुवोऽप्र इमं यज्ञं नयताऽग्रे यज्ञपतिं घत्त शुष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं
यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं इति । अङ्गिरेवाऽपः प्रोक्षति प्रोक्षिताः स्थ प्रोक्षिताः स्थ इति त्रिः ।
अथेध्मं विस्रस्य प्रोक्षति कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्रे त्वा स्वाहा इति । वेदिं प्रोक्षति वेदिरसि बर्हिषे
त्वा स्वाहा इति । बर्हिः प्रोक्षति बर्हिरसि सुगन्धस्त्वा स्वाहा इति । [इध्माबर्हिषः प्रोक्षण
इति ॥ त्रिस्त्रिरेकैकं प्रोक्षेदिति बौधायनः ॥ सकृत्सकृदिति शालीकिः ॥] आहरन्त्येतद्बर्हि-
रन्तरेण प्रणीताश्चाऽऽहवनीयं च । तदन्तर्वेदि पुरोग्रन्थ्यासाद्य प्रोक्षति दिवे त्वा इत्यग्राणि,
अन्तरिक्षाय त्वा इति मध्यानि, पृथिव्यै त्वा इति मूलानि । [बर्हिषः प्रोक्षण इति ॥ सूत्रं
शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्तिष्ठन् दिवे त्वा इत्यग्राणि प्रोक्षेत्, प्रह्वः अन्तरिक्षाय
त्वा इति मध्यानि, उपविश्य पृथिव्यै त्वा इति मूलानि । सह सुचा पुरस्तात्प्रत्यञ्चं ग्रन्थिं
प्रत्युक्ष्याऽतिशिष्टाः प्रोक्षणीर्निनयति दक्षिणायै श्रोणोरोत्तरायै श्रोणेः स्वधा पितृभ्य ऊर्ध्व
बर्हिषद्भ्य ऊर्जा पृथिवीं गच्छत इति ॥] सह सुचा पुरस्तात्प्रत्यञ्चं ग्रन्थिं प्रत्युक्ष्याऽतिशिष्टाः
प्रोक्षणीर्निनयेदक्षिणायै श्रोणोरोत्तरायै श्रोणेः स्वधा पितृभ्य ऊर्ध्व बर्हिषद्भ्य ऊर्जा पृथिवीं गच्छत
इति । उदूह्य प्रोक्षणीधानम् । [सुच उदूहन इति ॥ अग्रेणाऽऽत्मानमुदीचीमुदूहेदिति
बौधायनः ॥ जघनेनाऽऽत्मानमुदीचीमुदूहेदिति शालीकिः ॥] [क उ खलु पौर्णमास्यां
पितृभ्यो दीयत इति । यदेवैतच्छ्रोण्योर्निनयतीति ।] बर्हिर्विस्रस्य पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति
विष्णोः स्तूपोऽसि इति । तस्मिन् पवित्रे अपिसृजति यजमाने प्राणापानी दधामि इति वा तूष्णीं
वा । [प्रस्तरे पवित्रे अपिसृजति यजमाने प्राणापानी दधामि इति वा तूष्णीं वेति ॥ पूर्वः
कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] तं यजमानाय वा ब्रह्मणे वा प्रयच्छति । [तं यज-
मानाय वा ब्रह्मणे वा प्रयच्छतीति ॥ पूर्वः कल्पः शालीकेरुत्तरो बौधायनस्य ॥]

२. अथैतानि बर्हिःसंनहनान्यायातयति दक्षिणायै श्रोणेः आ उत्तरादंसात् ।
[शुल्बस्याऽऽयतन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ शुल्बं विस्रस्य दक्षिणे वेद्यन्ते स्तुणीयादिति
शालीकिः ॥] अथ दक्षिणे वेद्यन्ते बर्हिर्मुष्टिं स्तृणाति देवबर्हिरूणांमदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं
देवेभ्यः इति । तां बहुलां पुरस्तात्प्रतीचीं त्रिवृतमनतिदशं स्तृणाति । [वेद्यै स्तरण इति ।
सूत्रं बौधायनस्य ॥ अत एवैनां प्राचीं धातुशः स्तृणीयादिति शालीकिः ॥] अथ प्रस्तरपाणिः
प्राडभिसृज्य परिधीन् परिदधाति गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मादीषतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः
इति मध्यमम्, इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणे यजमानस्य परिधिरिड ईडितः इति दक्षिणं, मित्रावरुणो
त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मेणा यजमानस्य परिधिरिड ईडितः इत्युत्तरम् । [परिधीनां परिधान
इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽध्यस्येदक्षिणमुपोहेदुत्तरमिति ॥ अनीकसंस्पृष्टानेवैनान्
परिदध्यादिति शालीकिः ॥] परिधीन् परिधीयमानाननुमन्त्रयते ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहं सजातेषु

भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवित् इति मध्यमम्, उग्रोऽस्युग्रोऽहः सजातेषु भूयासमुग्रश्चेत्ता वसुवित् इति दक्षिणम्, अभिभूरस्यभिभूरहः सजातेषु भूयासमभिभूश्चेत्ता वसुवित् इत्युत्तरम् । [परिधीनां परिधान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैः परिदध्यात्पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैः परिदध्यात्पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । न याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यथाऽपि पौरोडाशिका मन्त्रा नाऽभिवर्तन्त एवमेवाऽपि याजमाना मन्त्रा नाऽरिचर्तैरिति ॥] अथ सूर्येण पुरस्तात्परिदधाति सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्याः इति । [अथ सूर्येण पुरस्तात्परिदधातीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ आहवनीयमेवैतेन यजुषोपतिष्ठेतेति शालीकिः ॥] अथाऽग्निं योगेन युनक्ति युनक्ति त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायाऽस्मै वोढवे जातवेदः इति । ऊर्ध्वं समिधावादधाति वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तः समिधीमहमे बृहन्तमध्वरे इति दक्षिणां तूष्णीमुत्तरामभ्याधाय । [ऊर्ध्वं समिधावादधातीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ ऊर्ध्वं एवैने अभ्याधायाऽनतिपातयेदिति शालीकिः ॥] समिधोरभ्याधीयमानयोर्जपति इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योम्बीवेम बलिहृतो वयं ते इति । [समिधोरभ्याधीयमानयोर्जपतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्व एवेषोऽग्नियोजनो मन्त्रः स्यादिति शालीकिः ॥] अन्तर्वेद्यदीचीनामे विधृती तिरश्ची सादयति विशो यन्त्रे स्थः इति । [विधृत्योः करण इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह दक्षिणाकारो राथीतर उभे एवैते वेदिं व्यतिषज्येयातामिति ॥ मध्यमाद्धातोरनन्तर्गमे स्यातामित्यौपमन्यवः ॥] विधृत्योः प्रस्तरं वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदसि सीद इति । [दोहनपवित्रस्याऽऽसादन इति ॥ विहस्य प्रस्तर आसादयेदिति बौधायनः ॥ अविहस्यैवेति शालीकिः ॥]

३. प्रस्तरे जुह्वं जुह्वरसि घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद इति । उत्तरा-
मुपभृतम् उपभृदसि घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद इति । उत्तरां भूषां भूषाऽसि
घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद इति । [रुचां सादन इति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायन ईषत्प्रत्यबहुतामिषोपभृतः सादयेद्विधृतीभ्यां चैनामवगृहीयादिति ॥ अत्रो ह
स्माऽऽह शालीकिरनुपूर्वा एवैनाः सादयेन्न चोपभृतं विधृतीभ्यामवगृहीयादिति ॥] अथ
रुचः सन्ना अभिमुशति एता असदन्सुकृतस्य लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञ पाहि यज्ञपति पाहि मा
यज्ञनियम् इति । अथ विष्णुनि स्थ वैष्णवानि धामानि स्थ प्राजापत्यानि इत्याज्यान्यभिमन्त्रयते ॥

हविरासादनम्

बौधायनश्रौ० [१.१४, ३.१६-१७, २०.१२, २४]—

अथाऽऽदत्ते दक्षिणेनाऽऽज्यस्थालीं सहृषां सज्येन पार्श्वीं वेदमिति । एतत्
समादाय प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुद्रुत्य जघनेन गार्हपत्यमुपविश्य पाश्यां द्वेधोपस्तृणीते

स्योन ते सदनं करोमि घृतस्य धारया सुशेवं कल्पयामि । तस्मिन्सीदाऽमृतं प्रतितिष्ठ ब्रीह्रीणां मेघ
 सुमनस्यमानः इति । अथ घृष्टिमादाय दक्षिणस्य पुरोडाशस्याऽङ्गारानपोहति इदमहं सेनाया
 अभीत्यै सुखमपोहामि इति । अथैनं विदर्शयति सूर्यं ज्योतिर्विमाहि महत् इन्द्रियाय इति । वेदेन
 चिरजसं कृत्वाऽभिधारयति आप्यायतां घृतयोनिरभिर्हव्याऽनुमन्यताम् । खमङ्क्ष्व त्वचमङ्क्ष्व सुरुपं
 त्वा वशुविदं पशूनां तेजसाऽमये जुष्टमभिधारयामि इति । यदेवत्यो वा भवति । अथैनमुद्गासयति
 शृत उत्स्नाति जनिता मतीनाम् इति । आज्येन सुसंतर्पयति आर्द्रः प्रथस्तुर्भुवनस्य गोपाः इति ।
 उपरिष्ठादभ्यज्याऽधस्तादुपानक्ति यस्त आत्मा पशुषु प्रविष्टस्तमङ्क्ष्व इति । एवमेवोत्तरं पुरो-
 डाशमुद्गासयति । [हविषामुद्गासन इति ॥ अग्नेणाऽनुद्गासितानि जघनेनोद्गासितानीति
 बौधायनः ॥ जघनेनाऽनुद्गासितान्यग्नेणोद्गासितानीति शालीकिः ॥ अपच्छेदमित्यौप-
 मन्यवः ॥] अथ शृतमथ दधि । अथ सांनाय्ये अलं करोति यस्त आत्मा पशुषु प्रविष्टो देवानां
 विष्टामनु यो वितस्थे । आत्मन्वान्सोम घृतवान् हि भूत्वा देवान् गच्छ सुवर्चिन्द यजमानाय मह्यम् इति ।
 प्रत्यज्य कपालान्युद्गासयति इरा भूतिः पृथिव्यै रसो मोक्षमीत् इति । 'संख्यायोद्गासयति
 यजमानस्य गोपीथाय' इति ब्राह्मणम् । [प्रत्यञ्जन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन उभयानि
 प्रत्यञ्ज्याङ्गूणां चाऽऽशयान् कपालानि चेति ॥ कपालान्येवेति शालीकिः ॥ कपाला-
 नामाध्वर्यवे विमोक इति ॥ उद्गास्य हवींषीत्यत्राऽऽचार्यौ विमुञ्चतः ॥ भक्षयन्नेव भक्षणां
 पारे कपालानि विमुञ्चेदित्यौपमन्यवः ॥] अथैनं रुक्मज्यस्य पूरयित्वाऽन्तरेण पुरोडा-
 शावधधाति । अथैनानि संपरिगृह्याऽन्तर्वेद्यासादयति भूर्भुवः सुवः इत्येताभिर्व्याहृतीभिः ।
 अथ वै भवति दर्शपूर्णमासावालभमान एताभिर्व्याहृतीभिर्हवींष्यासादयेत् । यज्ञमुखं
 वै दर्शपूर्णमासौ ब्रह्मैता व्याहृतयः । यज्ञमुख एव ब्रह्म कुरुते । संवत्सरे पर्यागत एताभि-
 रेवाऽऽसादयेत् । ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परिगृह्णातीति ब्राह्मणम् । [दर्शपूर्णमासा-
 वालभमान एताभिर्व्याहृतीभिर्हवींष्यासादयेदिति । स एवमेव संवत्सरेऽसंवत्सर इति ।
 सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो यस्यां पौर्णमास्यामादित आसादयेत्संवत्सरे
 पर्यवेते तस्यामासाद्य न तत ऊर्ध्वमाद्रियेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवोऽभ्यारूढः
 खरवस्दैव संवत्सरो भवति । यस्यां पौर्णमास्यामादित आसादयेत्संवत्सरे पर्यवेते या ततः
 पूर्वा पौर्णमासी स्यात्तस्यामासाद्य न तत ऊर्ध्वमाद्रियेतेति ॥] मध्यतः पुरोडाशावासा-
 दयति दक्षिणतः शृतमुत्तरतो दधि । अथैनं रुक्मज्येण रुचः पर्याहृत्य दक्षिणेन जुहुं
 प्रस्तरे सादयति स्थोनो मे सीद सुषदः पृथिव्यां प्रथयि प्रजया पशुभिः सुवर्गे लोके । दिवि सीद
 पृथिव्यामन्तरिक्षेऽहमुत्तरो भूयासमधरे मत्सपत्नाः इति । अथैनं यथाहृतं प्रतिपर्याहृत्य ध्रुवाया-
 मधधाति ऋषभोऽसि शाकरो घृताचीनाः सूनः प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि सीद इति । अथाऽन्त-
 र्वेदि हवींष्यासन्नान्यभिर्मन्त्रयते^१ यन्मे अग्ने अस्य यज्ञस्य रिष्याद्यद्वा स्कन्दादाज्यस्योत विष्णो ।
 तेन हन्मि सपत्नं दुर्मरायुमेनं दधामि निर्कृत्या उपस्थे इति ॥

आधारादिप्रवरान्तम्

बौधायनश्रौ० [१.१५; ३.१७-१८; २०.१२; २४.२८]—

१. अथेध्मात्समिधमाददान आह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । अथ यत्र होतुरभिजानाति प्र वो वाजा अभिद्यवः इति तत्प्रथमामभ्यादधाति । प्रणवेप्रणवेऽभ्यादधाति । इध्ममभ्याधीयमानमनुमन्त्रयते^१ उच्छुष्मो अग्ने यजमानायैधि निशुष्मो अभिदासते । अग्ने देवेद्ध मन्विद्ध मन्द्रजिह्व इति । अथ यत्र होतुरभिजानाति समिद्धो अग्न आहुतः इति तदन्ततोऽभ्यादधाति । परि समिधं^२ शिनष्टि । अथ यत्र होतुरभिजानाति आजुहोता दुवस्यत इति तदेतेन वेदेन त्रिराहवनीयमुपवाजयति । प्रवरं प्रव्रियमाणमनुमन्त्रयते^३ अमर्त्यस्य ते होत-
मूर्धन्नाजिघर्षिं रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय इति ।

२. अनूक्तसु सामिधेनीषु ध्रुवाज्यात् सुवेणोपहत्य वेदेनोपयस्य प्राजापत्यं तिर्यञ्च-
माधारमाधारयति प्रजापतये स्वाहा इति मनसा । [आधारविति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
अभीषू इव व्यतिषक्तौ स्यातामिति शालीकिः ॥] सुवेणाऽऽधारमाधार्यमाणमनुमन्त्रयते^१
मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाऽऽविश इति । अथ संप्रैषमाह अग्नीदमी^२स्त्रिभिः संमृडि इति ।
[संप्रैष इति ॥ अग्नीदमीन् इति बौधायनः ॥ अग्निममीद् इति शालीकिः ॥ अग्नीत्परिधी^३श्चाऽग्निं च
इत्यौपमन्यवः ॥] अथैष आग्नीध्र इध्मसंनहनानि स्फ्य उपसंगृह्य परिधीन् संमार्ष्टि त्रिर्म-
ध्यमं त्रिर्दक्षिणार्धं त्रिरुत्तरार्धम् । त्रिराहवनीयमुपवाजयति अग्ने वाजजिह्वां त्वाऽग्ने सरिष्यन्तं
वाजं जेष्यन्तं वाजिनं वाजजितं वाजजित्यायै संमाज्म्यभिमन्त्रादमन्त्राय इति । अथाऽग्रेण जुहूपभृतौ
प्राञ्चमञ्जलिं करोति भुवनमसि विप्रथस्वाऽग्ने यष्टरिदं नमः इति । अथाऽऽदत्ते दक्षिणेन जुह्वं
जुह्वेद्वाग्निस्त्वा ह्वयति देवयज्यायै इति । सव्येनोपभृतम् उपभृदेहि देवस्त्वा सविता ह्वयति देवयज्यायै
इति । सव्येनाऽत्याक्रामञ्जपति अग्नाविष्णू मा वामवक्रमिषं विजिहायां मा मा संताप्तं लोकं मे
लोककृती कृणुतम् इति । [अत्याक्रमण इति ॥ सव्येन प्रदास्यन्नत्याक्रामेत् । हुत्वाऽमुतो
दक्षिणेनेति बौधायनः ॥ दक्षिणेन प्रदास्यन्नत्याक्रामेत् । हुत्वाऽमुतः सव्येनेति शालीकिः ॥]
स्थानं कल्पयते विष्णोः स्थानमसि इति । अन्वारब्धे यजमाने मध्यमे परिधीं स^४स्पश्यर्जु-
माधारमाधारयति संततं प्राञ्चमव्यवच्छिन्दन् इत इन्द्रो अकृणोद्वीर्याणि समारभ्योर्ध्वो^५ अश्वरो
दिविस्पृशमहुतो यज्ञो यज्ञपतेरिन्द्रावान्स्वाहा इति । सुच्यमाधारमाधार्यमाणमनुमन्त्रयते^१ वाग-
स्येन्द्रो सपत्नक्षयणी वाचा मेन्द्रयेणाऽऽविश इति । बृहद्वाः इति सुचमुद्गृह्णाति । अथाऽस^२
स्पश्यन् सुचाबुदङ्ङत्याक्रामञ्जपति पाहि माऽग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भज इति । जुह्वा
ध्रुवा^३ समनक्ति मखस्य शिरोऽसि सं ज्योतिषा ज्योतिरङ्क्ताम् इति त्रिः । अथ यथायतनं^४
सुचौ सादयित्वा ।

३. प्रवरं प्रवृणीते । उत्कर इध्मसंनहनानि स्फ्य उपसंगृह्य पृष्ठमाग्नीध्रोऽनूप-
न्रिष्यति । अथाऽऽश्रावयति ओ श्रावय, अस्तु श्रौषद् । [आश्रावण इति ॥ ओ श्रावय इति

बौधायनः ॥ आ श्रावय इति शालीकिः ॥ श्रावय इत्यौपमन्यवः ॥] अभिर्देवो होता देवान् यक्षद्विद्वांश्चिकित्वान्मनुष्वद्भरतवदमुवदमुवद्भक्षन्वदेह वक्षद्वाह्मणा अस्य यज्ञस्य प्रावितारः इति । [प्रवर इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन उत्कर ऊर्ध्वाग्रं स्प्यं निहत्य प्रवरं प्रवृणीयादत्रैव च स्प्यमुदस्येदुपरिष्ठाच्चोपस्पृशेदिति ॥] [आर्षेयमसंप्रजानानस्य प्रवरं ब्रूहीति मनुष्वद्भरतवन्मनुवद् इत्येव ब्रूयादिति । विज्ञायते मानव्यो हि प्रजा इति ब्राह्मणम् । पुरोहितप्रवरो वा राज्ञोऽथाऽप्रज्ञातबन्धुराचार्यामुष्यायणमनुब्रवीत । आचार्य-प्रवरमु हैव प्रवृणीत । अथ होतारं प्रवरयेत् ।] असौ मानुषः इति होतुर्नाम गृह्णाति । [होतुर्वरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यद्यस्य पिता वाऽऽचार्यो वा ज्यायात् वा होता स्यादुपांश्वेतेषां गुरुणां नामानि गृह्णीयादिति ॥ उच्चैरेव होतुर्नाम गृह्णीयादिति शालीकिः ॥] उपोत्थाय होता विमुञ्चति । विमुक्तोऽध्वर्युरपविशति । प्रसवमाकाङ्क्षन्नास्ते ॥

सामिधेन्यादिप्रवरान्तं हौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.२७-२८; २४.२८; ३.१७]—

१. हवींष्यासाद्य होतारमामन्त्रयते । स यज्ञोपवीत्यप आचम्य हस्तौ संमृशते कर्मणे वां देवेभ्यः शक्यं शक्यं वां सुकृताय वाम् इति । अथ द्वाभ्यामात्मन्यग्निं गृह्णीते मयि गृह्णाम्यग्ने अग्निः..., यो नो अग्निः... इति । अथाऽन्तरेण वेद्युत्करौ प्रपद्यते सत्यं प्रपद्य कृतं प्रपद्येऽमृतं प्रपद्ये प्रजापतेः प्रियां तनुवमनार्तां प्रपद्य इदमहं पञ्चदशेन वज्रेण द्विषन्तं भ्रातृव्यमवक्रामामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो भूर्भुवः सुवर्षिणोः स्थाने तिष्ठामि इति । [अथाऽध्वर्योश्च होतुश्च प्रपदनम् । अन्तरेण वेद्युत्करौ प्रागावृत्तोऽध्वर्युः प्रपद्यते प्रत्यगावृत्तो होता । अध्वर्युरनन्तरोऽग्नेः स्यात् ।] दक्षिणेन प्रपदेनोत्तरं वेद्यन्तमवक्रम्य तिष्ठति । यदा जानाति अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति तदेदं हौत्रं जपति कं प्रपद्ये तं प्रपद्ये यत्ते प्रजापते शरणं छन्दस्तत्प्रपद्ये यावत्ते विष्णो वेद तावत्ते करिष्यामि देवेन सवित्रा प्रसूत आर्त्विज्यं करिष्यामि नमोऽग्नय उपद्रष्ट्रे नमो वायवे उपश्रोत्रे नम आदित्यायाऽनुख्यात्रे जुष्टामद्य देवेभ्यो वाचमुद्यासं शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यः स्वधावतीं पितृभ्यः प्रतिष्ठां विश्वस्मै भूताय भूर्भुवः सुवः प्रशास्त आत्मना प्रजया पशुभिः प्रजापतिं प्रपद्येऽभ्यं मे अस्तु प्राजापत्यमनुवक्ष्यामि वाचं प्रपद्ये वागार्त्विज्यं करिष्यति यशसे त्वा धुम्नाय त्वेन्द्रियाय त्वा भूतये त्वा यज्ञो यज्ञाय महि शर्म यच्छताम् इति । अत्र त्रिरभिहिङ्कृत्य ।

२. [अथ वै भवति यद्वै यज्ञस्य साम्ना क्रियते राष्ट्रं यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छति । यदचा विशं यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छति । अथ ब्राह्मणोऽनाशीर्केण यज्ञेन यजते । सामिधेनीरनुवक्ष्य-ज्जेता व्याहृतीः पुरस्ताद्दध्यात् । ब्रह्मैव प्रतिपदं कुरुते । तथा ब्राह्मणः साशीर्केण यज्ञेन यजत इति ब्राह्मणम् ।] अनघानमभि हिङ्कारादचमुपसंदधाति । प्र वो वाजा अभिद्यव इति त्रिः प्रथमामन्वाह । त्रिरुत्तमाम् । सर्वा अर्धर्चशोऽपानिति । अनूकास्तु सामिधेनीषु देवता आवाह्य भूमौ प्रादेशं कृत्वोपविशति इदमहं गायत्रेण छन्दसा त्रिवृता स्तोमेन रथन्तरेण साम्ना

वषट्कारेण वज्रेण द्विषन्तं भ्रातृव्यमववाधेऽववाधो द्विषन् इति । स आहवनीयं प्रेक्षमाण आस्ते । प्रणीता बोभयं वाऽन्तरेण वा वीक्षतेऽनप्रगल्भो हाऽस्माज्जायते ।

३. यदा जानाति अभिर्देवो होता इत्येतज्जपति देव सवितरेतं त्वा वृणतेऽग्निहोत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण इति । अथोपोत्थाय दक्षिणेन हस्तेन दक्षिणेऽ५सेऽध्वर्युमन्वारभते सव्येन दक्षिणेऽ५स आग्नीध्रम् । यद्यु वै स्वयं प्रत्याश्रावयेन्नीविदेश एनं दक्षिणस्या५ श्रोण्यामन्वारमेत अभिमन्वारभामहे होतृव्यूँ पुरोहितम् । येनाऽयन्नुत्तम५ स्वर्देवा अङ्गिरसो दिवम् ॥ देवा देवेषु पराक्रमध्वं प्रथमा द्वितीयेषु द्वितीयास्तृतीयेषु त्रिरेकादशा अनुस५रभध्वम् इति । अथाऽध्व-
र्यवे नाम प्रव्रूते । अथ दक्षिणम५समभि पर्यावर्तते ऐन्द्रीमावृत्मन्वावर्ते इति । अथ होतृषदन-
मभिव्रजज्जपति षण्मोर्वीर५हसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चाऽहश्च रात्रिश्चाऽऽपश्चौषधश्च ता मा रक्षन्तु
ता मा गोपायन्तु ताभ्यो नमः इति । अथाऽऽसनात्तृणं निरस्यति शुष्कं वा प्रतिच्छिन्नाग्रं वा
दक्षिणायै च संधिमनु प्रतीच्यै च निरस्तः परावसुः इति । अथाऽप उपस्पृश्योपस्तीर्योपविशति
इदमहमर्वावसोः सदने सीदामि इति दक्षिणोत्तरी । अथ दक्षिणावृत्तार्हपत्यं प्रतीक्षते विश्वकर्म५-
स्तनूपा असि तनुवं मे पाहि इति । उभौ समीक्षत आहवनीयं च अग्नाविष्णू मा वामवक्रमिषमोजोऽ-
शिष्टं विजिहायां मा मा संताप्तं लोकं मे लोककृतौ कृणुतम् इति । एष वां लोकः इति मनागिवो-
दङ् सपति । अथ तिस्र ऋचो जपति विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥ तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनाऽसुरा५
अभि देवा असाम । ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥ नमो महद्भ्यो नमो अर्मकभ्यो
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान् यदि शक्रवाम मा ज्यायसः श५समा वृक्षि देवाः इति ।
अथ सुगादापनेन सुचावादाप्य यथादेवत५ हविषो यजति ।

प्रयाजा आज्यभागौ च

बौधायनश्रौ० [१.१६; ३.१८; २०.१३]—

१. अथ यत्र होतुरभिजानाति घृतवतीमध्वर्यो सुचमास्यस्व इति तज्जुहूपभृता-
वादायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह समिधो यज इति । वषट्कृते जुहोति । यज यज इति । चतुर्थं
यक्ष्यन्नर्धमौपभृतस्याऽऽज्यस्य जुह्वा५ समानयते । [अभिक्रामं जुहोतीति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायनः सर्वेणाऽभिक्रामेत् पङ्क्त्यामाहुतीभिः स्पर्शेणोत्तरामुत्तरामाहुतिं ज्यायसींज्यायसीं
जुहुयादिति ॥ पङ्क्त्यामेवाऽभिक्राम५ समानत्राऽऽहुतीर्जुहुयादिति शालीकिः ॥ समानत्र
तिष्ठन्नाहुतिभिरेवाऽभिक्रामेदित्यौपमन्यवः ॥ समानत्रैव तिष्ठन् प्रदक्षिणमनुदिश५ हुत्वा मध्ये
स्वाहाकारं जुहुयादित्याजीगविः ॥] प्रयाजानामिष्टमिष्टमनुमन्त्रयते^१ वसन्तमृतनां प्रीणामि
स मा प्रीतः प्रीणातु । प्रीणममृतनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु । वर्षा ऋतूनां प्रीणामि ता मा प्रीताः

प्रीणन्तु । शरदमृतनां प्रीणामि सा मा प्रीता प्रीणानु । हेमन्तशिशिरावृत्तनां प्रीणामि तौ मा प्रीतौ प्रीणीताम् इति ।

२. पञ्च प्रयाजानिश्चोदङ्कृत्याक्रम्य स५सावेणाऽनुपूर्व५ हवी५ष्यभिघारयति ध्रुवामेवाऽग्रेऽथ दक्षिणं पुरोडाशमथ ध्रुवामथोत्तरं पुरोडाशमथ शतमथ दध्युपभृतमन्ततः । अथ चतुर आज्यस्य गृह्णान आह अग्नयेऽनुब्रूहि इति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं यज इति । वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धे प्रतिमुखं प्रबाहुं जुहोति । अथोदङ्कृत्याक्रम्य चतुर एवाऽऽज्यस्य गृह्णान आह सोमायाऽनुब्रूहि इति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह सोमं यज इति । वषट्कृते दक्षिणार्धपूर्वार्धे प्रतिमुखं प्रबाहुं जुहोति । [आज्यभागयोर्होम इति ॥ पूर्वार्धे प्रतिमुखं प्रबाहुं जुहुयादिति बौधायनः ॥ पूर्वार्धे एव प्रबाहुगिति शालीकिः ॥] आज्य-भागविष्टावनुमन्त्रयते^१ अग्नीषोमयोरहं देवयज्यया चक्षुष्मान् भूयासम् इति ।

प्रयाजाज्यभागहौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.२८]—

१. अथ वषट्काराणामनुमन्त्रणो वषट्कार मा मे प्रवृष्णो अहं त्वां बृहता मन उपह्वये मातरिश्वना प्राणाज मे वाच५ हव्यं देवेभ्योऽभि वहाम्योजः सहः सह ओजो वाक् इति । यद्यु वा अभ्यग्रा वषट्काराः स्युरेतावतैवाऽनुमन्त्रयते ओजः सह ओजो वाक् इति ॥

प्रधानं स्विष्टकृच्च

बौधायनश्रौ० [१.१६-१७; ३.१८; १७.४७; २०.१३; २४.२८; २७.१२]—

१. [दहति ह वा एषोऽध्वर्युरवदानानि । समू हैतान्येष तर्पयति । दहति ह वा एष य आज्यं पुरस्तादहुत्वाऽथाऽवदानानि जुहोत्याज्येनोपरिष्टान्नाऽभिघारयति । तेषां संदग्धानां न देवास्त्प्यन्ति न यजमानः । अथ हैतान्येष संतर्पयति य आज्यं पुरस्ताद्धुत्वाऽथाऽवदानानि जुहोत्याज्येनोपरिष्टादभिघारयति । तेषां संतृप्तानां तप्यन्ति देवास्त्प्यन्ति यजमानः ।] अथोपस्तीर्य दक्षिणस्य पुरोडाशस्य पूर्वार्धादवयवज्ञाह अग्नयेऽनुब्रूहि इति । अथैनमुपतिष्ठते मा मेर्मा संविक्था मा त्वा हि५सिषं मा ते तेजोऽपक्वमीत् इति । अथैनमभिमृशति भरतमुद्धरेमनुषिष्टाऽवदानानि ते प्रत्यवदास्यामि नमस्ते अस्तु मा मा हि५सीः इति । पूर्वार्धादवयवाऽपरार्धादवयवति । अभिघारयति । [हविशमवदान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः पूर्वार्धादेवाऽग्रे प्रथमं मुख्यस्य हविरोऽवयेदथाऽपरार्धात् । एवमस्य प्रदक्षिण५ हविशमवतं भवतीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरपरार्धादेवाऽग्रे प्रथमं मुख्यस्य हविरोऽवयेदथ पूर्वार्धात् । एवमस्य प्राक्स५स्थानि हवी५षि भवन्तीति ॥ मध्यात्पूर्वार्धात्पश्चा-

धात्यश्चावत्तिनामित्यौपमन्यवः ॥] प्रत्यनक्ति यदवदानानि तेऽवद्यन् विलोमाऽकार्षमात्मनः । आज्येन प्रत्यनज्येनत्तत्त आप्यायतां पुनः इति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं यज इति । वषट्कृते जुहोति । अग्निमिष्टमनुमन्त्रयते^१ अग्नेरहं देवयज्ययाऽन्नादो भूयासम् इति । [आहुतीनामायतन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः त्रीण्येवैतान्यादिष्टस्थानानि भवन्ति आज्यभागौ स्विष्टकृत् । अथेतरा यथावकाशं जुहुयादिति ॥ प्रष्टीरेवाऽऽहुतीर्जुह्वत्पूर्वार्धे स्विष्टकृतं जुहुयादिति शालीकिः ॥ कृच्यमाधारपथमभिजुहुयादित्यौपमन्यवः ॥ मध्ये प्रदक्षिणं मण्डलाकारमिति राथीतरः ॥] अथ चतुर आज्यस्य गृह्णान आह प्रजापतये इत्युपांशु अनुब्रूहि इत्युच्चैः । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह प्रजापतिम् इत्युपांशु यज इत्युच्चैः । वषट्कृते जुहोति । [उपांशु-याजस्य करण इति ॥ सूत्रं मौद्गल्यस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन औषधस्योपांशु-याजं कुर्यादग्नीषोमीयं पौर्णमास्यां वैष्णवममावास्यायामिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिराज्यस्योपांशुयाजं कुर्यात् सौम्यं पौर्णमास्यां वैष्णवममावास्यायामिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यव औषधस्यैवोपांशुयाजं कुर्यात्सरस्वतः पौर्णमास्यां सरस्वत्या अमावास्यायामिति ॥ उभयत्रैवाऽऽज्यस्य वैष्णव इति राथीतरः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह कौणप-तन्त्रिः चरुश्च स्याद्वैष्णवश्च स्यात्स्वयं चैव यजमानः प्राश्नीयादिति ॥] उपांशुयाज-मिष्टमनुमन्त्रयते^१ दन्धिरस्यदन्धो भूयासममुं दमेयम् इति । अत्र यं यजमानो द्वेष्टि तं मनसा ध्यायति । अथाऽप उपस्पृश्य । अथोपस्तीर्योत्तरस्य पुरोडाशस्याऽपरार्धादवद्यन्नाह अग्नीषोमाभ्याम् इति । पौर्णमास्याम् इन्द्राय वैमृधाय इति च । इन्द्रामिभ्याम् इत्यमावास्यायाम-संनयतः । [अथ वै भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै दर्शपूर्णमासौ यजेत य एनौ सेन्द्रौ यजेतेति । वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो भवति । तेन पूर्णमासः सेन्द्रः । ऐन्द्रं दध्य-मावास्यायाम् । तेनाऽमावास्या सेन्द्रेति । केनो स्विदनीजानस्य सेन्द्रौ भवत इति । ऐन्द्रा-ग्नेन पुरोडाशेनेत्येव ब्रूयादिति ।] इन्द्राय इति संनयतः । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति । समान उपस्थानः । समानोऽभिमर्शनः । अपरार्धादवद्यय पूर्वार्धादवद्यति । अभि-धारयति । समानः प्रत्यञ्जनः । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्नीषोमी यज इति । वषट्कृते जुहोति । अग्नीषोमाविष्टावनुमन्त्रयते^१ अग्नीषोमयोरहं देवयज्यया वृत्रहा भूयासम् इति । अथोप-स्तीर्य द्विः पुरोडाशस्याऽवद्यन्नाह इन्द्रायाऽनुब्रूहि इति । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति । द्विः पुरोडाशस्याऽवद्यति द्विः शृतस्य द्विर्दध्नः । अभिधारयति । प्रत्यनक्ति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह इन्द्रं यज इति । महेन्द्रम् इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति । वषट्-कृते जुहोति । इन्द्राग्नी इष्टावनुमन्त्रयते^१ इन्द्राग्नियोरहं देवयज्ययेन्द्रियाव्यन्नादो भूयासम् इति । इन्द्रमिष्टमनुमन्त्रयते^१ इन्द्रस्याऽहं देवयज्ययेन्द्रियावी भूयासम् इति । महेन्द्रमिष्टमनुमन्त्रयते^१ महेन्द्रस्याऽहं देवयज्यया जेमानं महिमानं गमेयम् इति । [पयसा दैवतमभिवर्धयेद्दध्ना स्विष्टकृतं व्यतिषज्यैवाऽङ्गुली अवद्येत् । अङ्गुष्ठपर्वमात्राणि दैवतान्यवदानानि भवन्ति ज्यायां सि सौविष्टकृतान्यैडानि च ।]

२. अथोपस्तीर्य दक्षिणस्य पुरोडाशस्योत्तरार्धादवद्यन्नाह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुग्रहि इति । सकृदक्षिणस्य पुरोडाशस्योत्तरार्धादवद्यति सकृद् ध्रुवाज्यात् सकृदुत्तरस्य पुरोडाशस्य सकृच्छृतस्य सकृदध्नः । [पञ्चमस्याऽवदानस्याऽभिवृद्ध्या इति ॥ औषधस्याऽभिवर्धयेदिति बौधायनः ॥ आज्यस्यैवेति शालीकिः ॥] द्विरभिधारयति । न प्रत्यनक्ति । अवत्ते स्विष्टकृति सुवेण पार्वणौ होमौ जुहोति ऋषभं वाजिनं वयं पूर्णमासं यजामहे । स नो दोहताः सुवीर्यः रायस्पोषः सहस्रिणम् । प्राणाय सुराधसे पूर्णमासाय स्वाहा इति पौर्णमास्याम् । अमावास्या सुभगा सुशेवा धेनुरिव भूय आप्यायमाना । सा नो दोहताः सुवीर्यः रायस्पोषः सहस्रिणम् । अपानाय सुराधसेऽमावास्यायै स्वाहा इत्यमावास्यायाम् । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निः स्विष्टकृतं यज इति । वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धेऽतिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहोति । अत्रैतन्मेषणमाहवनीयेऽनुप्रहरति । [मेषणस्याऽनुप्रहरण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो न मेषणन्यायेन वपाश्रपणी^१ अनुप्रहरेदिति ॥] अथैनत्सः सावेणाऽभिजुहोति । स्विष्टकृतमिष्टमनुमन्त्रयते^२ अग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् इति । अथोदङ्ङत्याक्रम्य जुह्वामप आनीय संक्षालनमन्तःपरिधिं निनयति वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रमुत्सं शतधारमेतम् । स नः पितरं पितामहं प्रपितामहः सुवर्गे लोके गच्छतु पिन्वमानः स्वधा नमः इति । निर्णिज्य सुचं निष्टप्याऽद्भिः पूरयित्वा बहिःपरिधिं निनयति इमः समुद्रः शतधारमुत्सं व्यच्यमानं भुवनस्य मध्ये । घृतं दुहानामदिति जनायाऽग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् इति । अत्रैतदौपश्रुतमाज्यः सर्वश एव जुह्वाः समानयते । अथ यथायतनं सुचौ सादयित्वा ।

इडोपाह्वानम्

बौधायनश्रौ० [१.१७-१८; ३.१८; ३.२४-२५; २०.१३-१४, २४]—

१. प्राशिन्नमवद्यति दक्षिणस्य पुरोडाशस्योत्तरार्धादवद्यन्नाह अज्यायो यवमात्रा-
दाव्याधाः कृत्यतामिदम् । मा रूपाम यज्ञस्य शुद्धः स्विष्टमिदः हविः इति । [प्राशिन्नस्याऽ-
वदान इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ परिहरिष्यन्नेव प्राशिन्नमवद्येदिति शालीकिः ॥]
प्राशिन्नेऽवदीयमाने जपति^३ अग्निर्मा दुरिष्ठात्पातु सविताऽवशः सात् इति । [प्राशिन्नेऽवदीय-
माने जपतीति ॥ सूत्रं मैत्रेयस्य ॥ अथाऽऽचार्ययोः । प्राशिन्नेऽवदीयमाने जपति अग्निर्मा
दुरिष्ठात्पातु सविताऽवशः सात् इति ॥] अथैनत्सुवदण्डेनाऽभिचार्यं जघनेन प्रणीताः साद-
यित्वाऽद्भिः सुवदण्डः सः स्पृश्याऽवदधाति । अथ कः सं वा चमसं वेडोपहवनं
याचति । तमन्तर्वेदि निधाय तस्मिन्नुपस्तीर्य दक्षिणस्य पुरोडाशस्य दक्षिणार्धात्प्रख्याऽ-
वदधाति मनुना दृष्टां घृतपदी मित्रावब्रुणसमीरिताम् । दक्षिणार्धादसंभिन्दजवद्याभ्येकतो मुखाम् इति ।
द्वितीयमवदानानि संभिद्याऽवदधाति । अथ दक्षिणस्यैव पुरोडाशस्य पूर्वार्धात् व्यङ्गुलं

वा चतुरङ्गुलं वाऽऽज्येन सुसंतृप्तं संतर्प्याऽग्रेण ध्रुवां यजमानभागं निदधाति । यजमानभागे यो मेऽन्ति दूरेऽरातीयति तमेतेन जेषम् इति^१ । [यजमानभागे यो मेऽन्ति दूरेऽरातायति तमेतेन जेषम् इति ॥ सर्वं एवेव स्विष्टकृदनुमन्त्रणो मन्त्रः स्यादित्यौपमन्यवः ॥] द्विध्रुवाज्यादवयति द्विरुत्तरस्य पुरोडाशस्य द्विः शृतस्य द्विर्दध्नः । अभिघारयति । अथ होतुर्द्विरङ्गुलावनक्ति । जिघ्रेण भक्षयित्वा ।

२. चतुरवान्तरेडामवयति । उपस्तृणाति । द्विरादधाति । अभिघारयति । समन्वारभन्तेऽध्वर्युश्च यजमानश्च ब्रह्मा चाऽऽग्नीध्रश्च । इडामाह्वियमाणामनुमन्त्रयते^१ सुरूपवर्षवर्ण एहि इति प्रतिपद्य मघानी इत्यातः । अथ यत्र होतुरभिजानाति दैव्या अध्वर्यव उपहृता उपहृता मनुष्याः इति तदक्षिणं पुरोडाशं चतुर्धा कृत्वा बर्हिषदं करोति । अथ यत्र होतुरभिजानाति उपहृतोऽयं यजमानः इति तर्हि यजमानो होतारमीक्षमाणो वायुं मनसा ध्यायेदिति । अवान्तरेडां प्राश्यमाणामनुमन्त्रयते^१ जुष्टरसि जुषस्व नो जुष्टा नोऽसि जुष्टि ते गमेयम् इति । अथाऽन्तर्वेद्यङ्गिर्माज्ययते मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु । बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् इति । बर्हिषदं पुरोडाशमभिमन्त्रयते^१ ब्रध्न पिन्वस्व ददतो मे मा क्षायि कुर्वतो मे मोपदसत् इति । उपहृतायामिडायामग्नीध आदधाति षडवत्तम् । उपस्तृणाति आदधाति अभिघारयति उपस्तृणाति आदधाति अभिघारयति । प्राश्नन्ति । मार्जयन्ते ।

३. अथाऽऽह ब्रह्मणे प्राशिन्नं परिहरेति । परि प्राशिन्नं हरन्ति । अन्वपोऽनु वेदेन ब्रह्मभागम् । [परिहरन्त्यस्मा एतत्प्राशिन्नमग्रेणाऽऽहवनीयम् । तदाह्वियमाणं प्रतिपश्यति^१ सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतिपश्यामि इति । अथैनदुभाभ्यां हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णाति^१ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूणो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि इति । अथैनत्सादयति^१ पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि इति । अथैनदवेक्षते^१ उपर्णस्य त्वा गहस्ततश्चक्षुषाऽवेक्षे इति । अथैनदङ्गुष्ठेन च महानाम्न्या चोपसंगृह्णाऽतिहाय दत्तः पूर्वं जिह्वाग्रे निदधाति^१ अग्नेस्त्वाऽऽस्येन प्राश्नामि इति । प्राश्याऽप आचम्य सहाऽङ्गिरगिरति^१ ब्राह्मणस्योदरेण बृहस्पतेर्ब्रह्मणा इति । अथाऽङ्गिर्माज्ययित्वा प्राणान् संमृशते^१ वाङ्म आसन् नसोः प्राणोऽश्वोश्चक्षुः कर्गयोः श्रोत्रं बाहुवोर्बलमूढवोरोजोऽरिष्टा विश्वान्यङ्गानि तनूस्तनुवा मे सह नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः इति । मयि प्राणा मयि प्राणा इति वा । आहृतं ब्रह्मभागं प्राशिन्नहरणे निदधाति^१ ।

इडोपाह्वानहौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.२८-२९]—

अथ होतुर्द्विरङ्गुलावनक्ति^१ । यत्पूर्वाकं तदुत्तरोष्ठे प्रोहति वाचस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीधे प्राणाय इति । सदसस्पतये त्वा हुतं प्राश्नाम्यूर्जेऽपानाय इत्यधरोष्ठेऽपोहति । अथाऽप

उपस्पृश्य चतुरवान्तरेडामवदापयतेऽप्रस्तेन पाणिनाऽसमस्तेन । इडां मुखसंमितामुप-
ह्वयते । उपहृतः रथन्तरः सह पृथिव्या सहाऽग्निना सहाऽन्नाद्येन सह वाचोप मा रथन्तरः सह पृथिव्या
सहाऽग्निना सहाऽन्नाद्येन सह वाचा ह्वयतामुपहृतं वामदेव्यः सहाऽन्तरिक्षेण सह वायुना सह प्राणेन
सह पशुभिरुप मा वामदेव्यः सहाऽन्तरिक्षेण सह वायुना सह प्राणेन सह पशुभिर्ह्वयतामुपहृतं
बृहत्सह दिवा सहाऽऽदित्येन सह चक्षुषोप मा बृहत्सह दिवा सहाऽऽदित्येन सह चक्षुषा ह्वयतामुप-
हृतः स्थास्तु भुवनमुप मा स्थास्तु भुवनः ह्वयतामुपहृतं चरिष्णु भुवनमुप मा चरिष्णु भुवनः
ह्वयतामुपहृताः सप्त होत्रा उप मा सप्त होत्रा ह्वयन्तामुपहृता गावः सहाशिरोप मा गावः सहाशिरो
ह्वयन्तामुपहृता घेनुः सहर्षभोप मा घेनुः सहर्षभा ह्वयतामुपहृतेडा वृष्टिरुप मामिडा वृष्टिर्ह्वयतामुपहृतो
भक्षः सखोप मा भक्षः सखा ह्वयतामुपहृताः हो इडोपहृता हे साऽसि जुषस्व मेडे इत्युपाः शू-
क्त्वोच्चैर्निरुक्तामुपह्वयते । स यदि सर्वां प्राशिष्यन् स्यात् पाणौ कृतानि प्राश्य चमसा-
देव प्राश्नीयात् । अथ यदि दिक्सेद्वा निधिक्सेत् वा पुरोडाशशकलमवच्छिद्यैव प्राश्नीयात्
इडाऽसि स्योनाऽसि स्योनकृत् सा नो रायस्योषे सुप्रजास्त्वे धा मुखस्य त्वा धुम्नाय सुरभ्यास्यत्वाय
प्राश्नामि इति । प्राश्याऽप आचम्य प्राचीं वोदीचीं वोदकराजिं निनयति तूष्णीमिति न्वेवाऽऽ-
ज्यस्य वचः । अथाऽप्येतं जपं जपति मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञः समिं दधातु ।
बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् इति ।

अन्वाहार्यचरुः

बौधायनश्रौ० [१.१८, ३.१८, २५-२६, २०.१३-१४, २४.२९]—

अथाऽन्वाहार्यं याचति । [अथ दर्शपूर्णमासयोरन्वाहार्यश्च पुरोडाशस्य च
चतुर्धाकरणम् । विज्ञायते दक्षिणैवाऽस्यैषा । अथो यज्ञस्यैव छिद्रमपि दधातीति । यथैवाऽदः
सौम्येऽध्वर आदेशशृत्विग्भ्यो दक्षिणा नीयन्त एवमेवाऽपि दक्षिणं पुरोडाशं चतुर्धा
कृत्वा बर्हिषदं करोति ।] [आज्यहविष्यन्वाहार्यस्य करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥
न कुर्यादिति शालीकिः ॥ अन्वाहार्यस्याऽऽसादन इति ॥ अग्रेण यजमानं च ब्रह्माणं च
पर्याहृत्य दक्षिणस्याः श्रोण्यामासादयेदिति बौधायनः ॥ अत एव दक्षिणस्याः श्रोण्यामिति
शालीकिः ॥] अथाऽन्वाहार्यं याचति । तमन्तर्वेद्यासन्नमभिमन्त्रयते^१ प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्ज-
स्वान् पयस्वान् इति आ अन्तादनुवाकस्य । [अथाऽन्वाहार्यं याचति । तमन्तर्वेद्यासन्नमभि-
मन्त्रयते ब्रह्मन् ब्रह्माऽसि नमस्ते ब्रह्मन् ब्रह्मणे पाहि मामहुताद्यः सर्वो मद्या हृतो भव इति । अथाऽस्य
यावन्मात्रमवदाय प्राशिन्नहरणे निदधाति श्रीरस्येहि मामभ्यन्नवानजादो भूयासम् इति ।]
[अन्वाहार्यस्योद्गासन इति ॥ अग्रेण सुच उदञ्चमुद्गासयेदिति बौधायनः ॥ जघनेन सुच
उदञ्चमिति शालीकिः ॥] अथैनमग्रेण सुच उदञ्चं नीयमानमनुमन्त्रयते^१ यज्ञो दिवः रोहतु
यज्ञो दिवं गच्छतु यो देवयानः पन्थास्तेन यज्ञो देवाः अप्येतु इति ॥ उद्गासयन्त्येतत्त्रिविधच्छिद्रम् ।

[हविरुच्छिष्टानामुद्रासन इति ॥ अग्नेण सुच उदञ्च्युद्रासयेदिति बौधायनः ॥ जघनेन सुच उदञ्चीति शालीकिः ॥]

अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकाः

बौधायनश्रौ० [१.१९; ३.१९; ३.२६; २०.१४]—

१. अथ संप्रैवमाह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः समिधमाधायाऽग्नीदग्नीन् सकृत्सकृत्संमृडि इति । स यत्राऽऽह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः समिधमाधायाऽग्नीदग्नीन् सकृत्सकृत्संमृडि इति तद्ब्रह्मा प्रसौति देव सवितरेतत्ते प्राह तत्प्र च सुव प्र च यज बृहस्पतिर्ब्रह्मा स यज्ञं पाहि स यज्ञपतिं पाहि स मां पाहि ओं प्रतिष्ठ इति । सोऽत्रैवाऽऽस्त आ समिष्टयजुषो होमात् । प्रसूतोऽत्रैतां५ समिधं मध्यत आहवनीयस्याऽभ्यादधाति । अथैव आग्नीध्रोऽस्फ्यैरेवेध्मसंनहनैः परिधीन् संमार्ष्टिं सकृन्मध्यमं५ सकृदक्षिणार्ध्यं५ सकृदुत्तरार्ध्यम् । सकृदाहवनीयमुपवाजयति अग्ने वाजजिद्वार्जं त्वाग्ने ससृवां५सं वाजं जिगिवां५सं वाजिनं वाजजितं वाजजित्यायै संमाज्म्यमिमन्नादमन्नाधाय इति । अथैतानीध्मसंनहनान्यद्भिः स५स्पर्श्याऽऽहवनीयेऽनुप्रहरति यो भूतानामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा । पशुनस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा इति । अथ जुहूपभृतावादायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह देवान् यज इति । वषट्कृते जुहोति । यज यज इति त्रीन् प्रतीचोऽनूयाजान् यजति । प्राचाऽन्ततः संमिनन्ति । [अनूयाजानां५ होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ प्रतीचीरेवैता आहुतीः संस्थापयेदिति शालीकिः ॥] अनूयाजानामिष्टमिष्टमनुमन्त्रयते? बर्हिषोऽहं देवयज्यया प्रजावान् भूयासम् । नराशं५सस्याऽहं देवयज्यया पशुमान् भूयासम् । अग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽसुयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् इति । अथोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनं५ सुचौ सादयित्वा वाजवतीभ्यां५ सुचौ व्यूहति । वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रमीत् इति दक्षिणेन जुहमुद्गृह्णाति । अथा सपलां५ इन्द्रो मे निग्राभेणाऽधरां५ अकः इति सव्येनोपभृतं निगृह्णाति । उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् इति प्राचीं जुहूमूहति । अथा सपलानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् इति प्रतीचीमुपभृतं प्रत्यूहति । [वाजवत्योर्व्यूहन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽक्षण्या प्रतीचीमुपभृतं प्रत्यूहेदद्भिश्चैनां५ स५स्पृशेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः प्राचीनपुष्करे एवैनै विकर्षेन्न चोपभृतमद्भिः स५स्पृशेदिति ॥] प्राच्या परिधीननक्ति वसुभ्यस्त्वा इति मध्यमं, रुद्रेभ्यस्त्वा इति दक्षिणम्, आदित्येभ्यस्त्वा इत्युत्तरम् । अथोपभृतमद्भिः स५स्पर्शय यथायतनं५ सुचौ सादयित्वा ।

२. सुधु प्रस्तरमनक्ति अकं५ रिहाणाः इति जुह्वामग्राणि, वियन्तु वयः इति उपभृति मध्यानि, प्रजां योनिं मा निर्मृक्षम् इति धुवायां मूलानि । [प्रस्तरस्य समञ्जन इति ॥ त्रिखिरैकैकस्यां५ समञ्ज्यात् इति बौधायनः ॥ सकृत्सकृदिति शालीकिः ॥] अथ प्रस्तराचूर्णं प्रच्छिद्य जुह्वामवदधाति । अथाऽऽश्रावयति ओश्रावय, अस्तु श्रीषट्, इषिता दैव्या

होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि इति । अथ यत्र होतुरभिजानाति अग्निरेदं हविरनुषत इति तद्यजमानमुज्जिति वाचयति अग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषम् इति यथेष्टम् । उक्तं वाजवत्योर्व्यूहनम् । अथ यत्र होतुरभिजानाति आशास्तेऽयं यजमानोऽसौ इति तद्यजमानं यज्ञस्य दोहं वाचयति एमा अगमन्नाशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो वनामहे धुक्षीमहि प्रजामिषम् इति । तमुपरीव प्राञ्चं प्रहरति नाऽत्यग्रं प्रहरति न पुरस्तात्प्रत्यस्यति न प्रतिशृणाति न विष्वञ्चं वियौत्यूर्ध्वमुद्यौति आप्यायन्तामाप ओषधयो मस्तां पृषतयः स्य दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय इति । प्रस्तरं प्रह्रियमाणमनुमन्त्रयते^१ रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्वेतशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयतु इति । [प्रस्तरस्याऽनुप्रहरण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनोऽध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैरनुप्रहरेत् पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरध्वर्युरेवोभयैर्मन्त्रैरनुप्रहरेत् पौरोडाशिकैश्च याजमानैश्च । न याजमानैर्यजमानोऽनुमन्त्रयेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहोपमन्यवो यथाऽपि पौरोडाशिका मन्त्रा नाऽभिवर्तन्त एवमेवाऽपि याजमाना मन्त्रा नाऽभिवर्तन्ति ॥] अथाऽऽग्नीध्रीमक्षते अग्नीत् इति । तमाहाऽऽग्नीध्रः संवदस्व इति । अगानग्नीत् इत्याहाऽध्वर्युः । अगन् इत्याहाऽऽग्नीध्रः । श्रावय इत्याहाऽध्वर्युः । श्रौषट् इत्याहाऽऽग्नीध्रः । इदं ब्रूहि इत्याहाऽध्वर्युः । अनुप्रहर इत्याहाऽऽग्नीध्रः । अनुप्रहरति । स्वगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः शंयोर्ब्रूहि इति ।

३. अथोपोत्थायाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते आयुष्पा अग्नेऽस्यायुर्मे पाहि चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि इति । अथेमामभिपृशति ध्रुवाऽसि इति । मध्यमं परिधिमुपप्रहरति यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिमिर्वीयमाणः । तं त एतमनु जोषं भरामि नेदेष त्वदपचेतयातै इति । अथेत-
रावुपसमस्यति यज्ञस्य पाथ उप समितम् इति । [परिधीनामभ्याधान इति ॥ सूत्रं बौधा-
यनस्य ॥ प्रस्थान एवैनानभ्यादध्यादिति शालीकिः ॥] परिधीन् विमुच्यमानाननु-
मन्त्रयते^१ वि ते मुद्यामि रशना वि रश्मीन् वि योक्त्रा यानि परिचर्तनानि । धत्तादस्मासु द्रविणं यच्च भद्रं प्र णो ब्रूताद्वागधान् देवतासु इति । शंयुवाकमुक्तमनुमन्त्रयते^१ विष्णोः शंयोरहं देवयज्यया यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् इति । अथैनान् स० स्त्रावेणाऽभिजुहोति । जुह्वामुपभृत० संप्रस्त्रावयति स० स्त्रावभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेशा बर्हिषदश्च देवा इमां वाचमभि विक्षे गृणन्त आसद्वाऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वं स्वाहा इति । [अथैनान् स० स्त्रावेणाऽभिजुहोतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ प्रस्तरं चैव परिधींश्चाऽभिजुहुयादिति शालीकिः ॥] अथ प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्ङाद्रुत्य धुरि सुचौ विमुञ्चति अग्नेर्वामपक्षगृहस्य सदसि सादयामि सुम्नाय सुम्निनी सुम्ने मा धत्तं धुरि धुर्यौ पातम् इति । यद्यु वै नाऽनो भवत्युत्कर एवैनै स्फ्ये विमुञ्चत्येतेनैव मन्त्रेण । [सुचोर्विमोक इति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्य ॥ उत्तरः शालीकेः ॥]

अनूयाजसूक्तवाकशंयुवाकहौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.२९-३०]—

अनूयाजानिष्ट्वा शंयुवाकमुक्त्वा बर्हिष्यञ्जलिं कृत्वा निहुते यज्ञं शं च म उप च मे प्रजापते यज्ञं यत्ते न्यूनं यदु तेऽतिरिक्तं कर्म प्रजापती यज्ञं तत् इति । अथ दक्षिणार्धे वेद्यं वेदं निधाय यजमानं वाचयति येन त्वं देव वेदं देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेनाऽऽत्मभ्यं वेद एधि । वेदोऽसि वित्तिरसि विदेयाऽहं प्रजां पशून्स्वर्गं लोकम् । कर्माऽसि कश्णमसि क्रियासमहं पुण्यं कर्म । सनिरसि सनिताऽसि सनेयमहमदो घृतवन्तं कुलायिनः रायस्पोषः सहस्रिणं वेदो ददातु वाजिनम् इति ।

पत्नीसंयाजाः

बौधायनश्रौ० [१.२०; ३.१९-२०; ३.२६; २०.१५, २४; २४.२९; २७.२]—

१. अथाऽऽदत्ते दक्षिणेनाऽऽज्यस्थालीः ससुवाः सव्येन जुहूः होत्रे वेदं प्रदाय । प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यञ्चावाद्रवतः । दक्षिणेनाऽध्वर्युर्गार्हपत्यं परिक्रामत्युत्तरेण होता । तौ जघनेन गार्हपत्यं पश्चात्प्राञ्चावुपविशतो दक्षिण एवाऽध्वर्युरुत्तरो होता । [पत्नीसंयाजेष्ट्विजां परिक्रमण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्व एवोत्तरेण गार्हपत्यं परिक्रामेयुरिति शालीकिः ॥ पत्नीनां संयाजन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ ध्रौवाज्येन ध्वानेनैव पत्नीः संयाजयेदिति शालीकिः ॥] अथाऽध्वर्युर्वेदमुपभृतं कृत्वा चतुर आज्यस्य गृहान आह सोमाय इत्युपांशु अनुब्रूहि इत्युच्चैः । आश्राव्याऽऽह सोमम् इत्युपांशु यज इत्युच्चैः । वषट्कृते जुहोति । चतुर एवाऽऽज्यस्य गृहान आह त्वष्ट्रे इत्युपांशु अनुब्रूहि इत्युच्चैः ॥ आश्राव्याऽऽह त्वष्टारम् इत्युपांशु यज इत्युच्चैः । वषट्कृते जुहोति । चतुर एवाऽऽज्यस्य गृहान आह देवानां पत्नीभ्यः इत्युपांशु अनुब्रूहि इत्युच्चैः । आश्राव्याऽऽह देवानां पत्नीः इत्युपांशु यज इत्युच्चैः । वषट्कृते परिश्रिते देवानां पत्नीर्जुहोति । [अन्तर्धाय देवानां पत्नीः संयाजयेदिति बौधायनः ॥ अनन्तर्धायैवेति शालीकिः ॥] अथ चतुर एवाऽऽज्यस्य गृहान आह अग्रे गृहपते इत्युपांशु अनुब्रूहि इत्युच्चैः । आश्राव्याऽऽह अग्निं गृहपतिम् इत्युपांशु यज इत्युच्चैः । वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धेऽतिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहोति । पत्नीसंयाजानामिष्टमिष्टमनुमन्त्रयते^१ सोमस्याऽहं देवयज्यया सुरेता रेतो धिषीय । त्वष्टुरहं देवयज्यया पशूनां रूपं पुषेयम् इति । अथेतरावुपसमस्यति^२ देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्यज्ञस्य मिथुनं तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्रभूयासम् इति । [अथ हैके राकां च सिनीवालीं च कुहूँ चाऽनुमतिं च पत्नीहोमं च नारिष्ठौ च होमौ पुरस्ताद्गृहपतेरुपजुह्वति सं पत्नी पत्या सुकृतेन गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्यवभूताम् । संजानानौ विजहतामरातीर्दिवि ज्योतिरजरमारमेतां स्वाहा ॥ दश ते तनुवो यज्ञं यज्ञियास्ताः प्रीणातु यजमानो घृतेन । नारिष्ठयोः प्रशिषमीडमानो देवानां दैव्येऽपि

यजमानोऽमृतोऽभूत्स्वाहा ॥ यं वा देवा अकल्पयन्नुजो भागः शतक्रतुः । एतद्वा तेन प्रीणानि तेन तृप्यतमः हवीं स्वाहा इति ॥] अथाऽग्नेः होतारमुपातोत्य होतुर्द्विरङ्गुलावनक्ति । जिघ्रेण भक्षयित्वा । चतुर्हस्तेडाः संपादयत्याज्यस्यैव । समन्वारमेते अध्वर्युश्चैव पत्नी च । उपहृतायामिडायामग्नीध आदधाति षडवत्तम् । प्राश्नीतः । मार्जयेते । [पत्नीसंयाजेषु शंयुवाकस्य करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] अथ सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽपसलैः पर्यावृत्याऽन्वाहार्यपचने प्रायश्चित्तं जुहोति उल्लखले मुसले यन्त्रं शूर्प आशिश्लेष दृषदि कृष्णाजिने यत्कपाले । अवपुषो विपुषः संयजामि विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् । यज्ञे या विपुषः सन्ति बह्वीरमौ ताः सर्वाः स्विष्टाः सुहुता जुहोमि स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽन्वाहार्यपचन एवेधमप्रवश्चनान्यभ्याधाय फलीकरणानोप्य फलीकरण-होमं जुहोति अग्नेऽदब्धायोऽशीततनो पाहि माऽद्य दिवः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्वन्यै पाहि दुश्चरितादविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनिः स्वाहा इति । अथैतेनैव यथेतमेत्य^१ । वेदे यजमानं वाचयति वेदोऽसि वित्तिरसि विदेय इति आ अन्तादनुवाकस्य । [वेदे यजमानं वाचयतीति ॥ सूत्रः शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो वेदे यजमानं वाचयति वेदोऽसि वित्तिरसि विदेय इति । यद्यच्चातृव्यस्याऽभिध्यायेत्तस्य नाम गृहीयात्तदेवाऽस्य सर्वं वृद्धं इति ॥] होत्रे वेदं प्रदाय पत्नीं विष्यति इमं विष्यामि वरुणस्य पाशं यमवधीत सविता सुकेतः । धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं मे सह पत्या करोमि इति । अथाऽस्यै योक्त्र-मञ्जलावाधायोदपात्रमानयति समायुषा सं प्रजया समग्रे वर्चसा पुनः । सं पत्नी पत्याऽहं गच्छे समात्मा तनुवा मम इति । अथ मुखं विमृष्टे^२ यदप्सु ते सरस्वति गोष्वक्षेषु यन्मधु । तेन मे वाजिनीवति मुखमङ्गिध सरस्वति इति । अपो निनयत्यवभृथस्यैव रूपं कृत्वोत्तिष्ठतीति ब्राह्मणम् । अथैनां तथैव तिरः पवित्रमप आचामयति पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः । अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र सः सृज इति । अथैनां गार्हपत्ये समिध आधापयति अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि स्वाहा । वायो व्रतपते..., आदित्य व्रतपते..., व्रतानां व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि स्वाहा इति । अथ यथाप्रपन्नं निष्कामयति ।

२. अथ प्राडेत्य ध्रुवामाप्याययति आप्यायतां ध्रुवा घृतेन यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः । सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् इति । ध्रुवामाप्यायमानामनुमन्त्रयते^३ आप्यायतां ध्रुवा घृतेन यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः । सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् इति । [ध्रुवाया आप्यायन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन उभावेव ध्रुवा-माप्याययेतामध्वर्युश्च यजमानश्चेति ॥ अध्वर्युरेव ध्रुवामाप्याय्य समिष्टयजुर्जुहुयादिति शालीकिः ॥] अथाऽऽज्यस्थात्याः सुवेणोपघातं प्रायश्चित्तानि जुहोति आश्रावितमत्याश्रावितं वषट्कृतमत्यनूक्तं च यज्ञे । अतिरिक्तं कर्मणो यच्च हीनं यज्ञः पर्वाणि प्रतिरज्जेति कल्पयन् । स्वाहाकृताऽऽ-हुतिरेतु देवान्स्वाहा इति । अथ यज्ञसमृद्धीर्जुहोति इष्टेभ्यः स्वाहा, वषट्निष्टेभ्यः स्वाहा, भेषजं

१. अस्याग्ने ' [वेदे यजमानं वाचयति वेदोऽसि वित्तिरसीत्यान्तादनुवाकस्य] ' इति मुद्रितपुस्तकेऽधिकम् २. पत्नी ३. यजमानः

दुरिष्ट्यै स्वाहा, निष्कृत्यै स्वाहा, दीराद्व्यै स्वाहा, दैवीभ्यस्तनूभ्यः स्वाहा, ऋद्व्यै स्वाहा, समृद्ध्यै स्वाहा, सर्वसमृद्ध्यै स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, सुवः स्वाहा, भूर्भुवः सुवः स्वाहा, इमं मे वरुण... ॥ तत्त्वा यामि... ॥ त्वं नो अग्ने... ॥ स त्वं नो अग्ने... ॥ त्वमग्ने अयास्यया सन्मनसा हितः । अयासन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ अयाश्वाऽग्नेऽस्यनमिदास्तीश्च सत्यमित्त्वमया असि । अयसा मनसा धृतोऽयसा हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ यदस्मिन् कर्मण्यन्तरगाम मन्त्रतः कर्मतो वा । अनयाऽऽहुत्या तच्छमयामि सर्वं तृप्यन्तु देवा आवृषन्तां धृतेन स्वाहा ॥ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाऽकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुत आहुतीनां कामानां समर्धयित्रे स्वाहा ॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा इति । [सर्वेषु यज्ञक्रतुषु पत्नीः संयाज्य प्राडेत्य ध्रुवामाप्याय्य ध्रुवातः सर्वप्रायश्चित्तानि जुहोति ब्रह्म प्रतिष्ठा मनसः इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्यृचम् । अथ वै भवति समिष्टयजूंषि जुहोति यज्ञस्य समिष्ट्यै । यद्वै यज्ञस्य क्रूरं यद्विलिष्टं यदत्येति यन्नाऽत्येति यदतिकरोति यन्नाऽपिकरोति तदेव तैः प्रीणातीति ब्राह्मणम् । एतान्येव ब्राह्मणविधिविहितान्याप्यायनानि मन्त्रवन्ति भवन्तीति बौधायनः ॥ मन्त्रगणाज्ञातानि नैमित्तिकानीति शालीकिः ॥] अथ बर्हिषो धातूनां संप्रलुप्य ध्रुवायां समनक्ति समङ्कां बर्हिर्हविषा धृतेन समादित्यैर्वसुभिः सं मरुद्भिः । समिन्द्रेण विधेभिर्देवेभिरङ्काम् इति । अथैनदाहवनीयेऽनुग्रहरति दिव्यं नभो गच्छतु यत्स्वाहा इति । अथोपोत्थाय दक्षिणेन पदा वेदिमवक्रम्य ध्रुवाया समिष्टयजुर्जुहोति देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं नो देव देवेषु यज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः स्वाहा इति । [समिष्टयजुषो होम इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह गौतमः स्वाहा वाचि इति हुत्वा बर्हिषो धातूनां संप्रलुप्य ध्रुवायां समज्याऽनुग्रहत्याऽभिजुहुयात् स्वाहा वाते धाः स्वाहा इति ॥] उदूहति सुचम् । निनयति प्रणीताः । हुते समिष्टयजुष्युपोत्थायाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते^१ अयाज्यज्ञं हविषो जातवेदा अदब्धो अन्ततः पूर्वं अस्मिन्निषद्य । सन्वन् सनिं सुविमुचा नो विमुच्य धेह्यस्मासु द्रविणं जातवेदो यच्च भद्रम् इति । स एतेनैव ब्रह्मा भवति दर्शपूर्णमासयोरिष्टीनां चातुर्मास्यानां पशुबन्धस्य सौत्रामण्या इति । अथ यजमानभागं प्राश्नाति^२ प्रजापतेर्विभाज्याम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन इति । सं यज्ञपतिराशिषा इति वा । [अथ यदि यजमानः सुरापो वा भवति प्रवसति वेति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः प्रवसतः प्रस्तरेणैवाऽस्य सह यजमानभागमनुग्रहरेद् ध्रुवायै वाऽऽज्येन पर्युपस्तीर्य जुह्वामवधाय जुहुयात् । प्रस्तरभूयं यजमानभागो गच्छतीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरादित एव न सुरापेण सः सृज्येत । अथ चेत्सः सृज्येत मन्त्रानु हैनं वाचयेत्किमु भक्षान्न भक्षयेदिति ॥ भक्षयेच्चैव भक्षानित्यौपमन्यवः ॥] अत्रैतत्पूर्णपात्रं याचति । तमन्तर्वेदि निधाय पूर्णपात्रे यजमानं वाचयति सदसि सन्ने भूयाः सर्वमसि सर्वं मे भूयाः पूर्णमसि पूर्णं मे भूया अक्षितमसि मा मे क्षेष्टाः इति । अथ दिशो व्युन्नयति^३ प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम् । दक्षिणायाम् दिशि मासाः पितरो मार्जयन्ताम् ।

प्रतीच्यां दिशि गृहाः पशवो मार्जयन्ताम् । उदीच्यां दिश्याप ओषधयो वनस्पतयो मार्जयन्ताम् ।
ऊर्वायां दिशि यज्ञः संवत्सरो यज्ञपतिर्मार्जयन्ताम् इति । अथैना निनयति समुद्रं वः प्रहिणोम्य-
क्षिताः स्वां योनिमपिगच्छत । अन्धिद्रः प्रजया भूयासं मा परासेवि मत्स्यः इति ।

पत्नीसंयाजहौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.३०]—

पत्नीसंयाजानिष्ट्वा फलीकरणहोमे हुते वेदे पत्नीं वाचयति वेदोऽसि वित्तरसि
विदेयाऽहमदः । कर्माऽसि करुणमसि^१ क्रियासमहमदः सनिरसि सनिताऽसि सनेयमहमदो घृतवन्तं
कुलायिनः रायस्पोषः सहस्रिणं वेदो ददातु वाजिनम् इति । विस्रस्य वेदमर्थानि पत्न्यै प्रयच्छति ।
तानि पत्नी अन्तरोरू वा न्यस्यति दक्षिणेन वोरुणोपनिगृहीते । अथेतराणि प्राञ्जवृत्तः^२
स्तृणञ्जेति तन्तुं तन्वन्नजसो भानुमन्निवहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृताननुद्वर्णं वयत जोगुवामपो
मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् इति । अथ यान्यतिशिष्यन्ते तानि बर्हिषि संन्यस्यति आपृणोऽसि
संपृण प्रजया मा पशुभिरापृण इति । अथ यथाप्रपन्नं निष्कम्याऽग्नेणाऽऽहवनीयं परीत्य दक्षि-
णत उदङ्मुखस्तिष्ठन्नाहवनीयमुपतिष्ठते अयाव्यज्ञः^३ हविषो जातवेदा अदब्धो अन्ततः पूर्वो
अस्मिन्निषद्य । सन्वन् सनिः सुविमुचा नो विमुञ्च वेद्यस्मासु द्रविणं जातवेदो यच्च भद्रम् ॥ एतेनाऽग्ने
ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा । उत प्रणेष्यमि वस्यो अस्मान् सं नः सृज सुमत्या
वाजवत्या ॥ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अग्निरिन्द्रो बृहस्पति-
र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः इति^४ । एते न्वेव^५ जपा दर्शपूर्णमासयोरिष्टीनां चातुर्मास्यानां पशु-
बन्धस्य सौत्रामण्या इति ।

विष्णुक्रमः

बौधायनश्रौ० [१.२१; ३.२१-२२; २०.२४]—

१. उपोत्थाय यजमानो दक्षिणेन पदा विष्णुक्रमान् क्रमते । अथोपोत्थाय
दक्षिणेन पदा विष्णुक्रमान् क्रमते^६ । विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा गायत्रेण छन्दसा पृथिवीमनु विक्रमे
निर्मक्तः स यं द्विभ्यः इति चतुर्भिर्नुच्छन्दसम् । तृतीये चतुर्थमनुवर्तयति । न चतुर्थाय
प्रक्रामति । नाऽऽहवनीयमुपात्येति । अथाऽत्रैव तिष्ठन्नाहवनीयमुपतिष्ठते अग्नम् सुवः
सुवरगन्म संदशस्ते मा छित्ति यत्ते तपस्तस्मै ते मा वृक्षि इति । अथाऽऽदित्यमुपतिष्ठते सुभूरसि
श्रेष्ठो रश्मीनामायुर्धा अस्यायुर्मे वेदि वचोधा आसि वचो मयि वेदि इति । [आदित्यस्योपस्थान इति ॥
उपनिष्कम्याऽग्न्यगारादादित्यमुपतिष्ठेतेति बौधायनः ॥ अत्रैव तिष्ठन्निति शालीकिः ॥]

१. 'करुणमसि' इति मुद्रितपुस्तके २. 'प्राञ्जवृत्त' इति मुद्रितपुस्तके । ३. 'इत्येतयैव'
इति मुद्रितपुस्तके ४. यजमानः

अथैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं निर्मजति इदमहममुं भ्रातृव्यमाभ्यो दिग्भ्योऽस्त्यै दिवोऽस्मादन्त-
रिक्षादस्त्यै पृथिव्या अस्मादन्नाद्यान्निर्मजामि निर्मक्तः स यं द्विष्मः इति । अथाऽप उपस्पृश्य सं
ज्योतिषाऽभूवम् इत्युरः प्रत्यात्मानं प्रत्यभिमृशते । अथ दक्षिणमङ्गसमभि पर्यावर्तते ऐन्द्रीमा-
वृतमन्वावर्तते इति । अथोदङ् पर्यावर्तते समहं प्रजया सं मया प्रजा समहं रायस्पोषेण सं मया राय-
स्पोषः इति । अथाऽऽहवनीये समिधमादधाति समिद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासं
स्वाहा इति । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठते वसुमान् यज्ञो वसीयान् भूयासम् इति । अथाऽऽग्नि-
पावमानीभ्यां गार्हपत्यमुपतिष्ठते अग्न आयूःषि पवसे, अग्ने पवस्व इति । अथ गार्हपत्यमेवो-
पतिष्ठते अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः शतं
हिमास्तामाशिषमा शासे मह्यममुष्मै ज्योतिष्मतां तामाशिषमा शासेऽमुष्मा अमुष्मै इति । यावन्तोऽस्य
पुत्रा जाता भवन्ति तन्तवे इत्यन्ततः । अथ वै भवति यो वै यज्ञं प्रयुज्य न विमुञ्चत्य-
प्रतिष्ठानो वै स भवति । कस्त्वा युनक्ति स त्वा विमुञ्चतु इति । काले कपालानि विमुञ्चति
यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः । पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चताम् इति । अथैतेनैव
यथेतमेत्य यजमानायतन उपविश्य तथैव तिरः पवित्रमप आचामति पयस्वतीरोषधयः पयस्व-
द्वीरुधां पयः । अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र सञ्ज इति । [व्रतविसर्ग इति ॥ मन्त्रेणाऽप
आचम्य मन्त्रेण व्रतं विसृजेतेति बौधायनः ॥ तूष्णीमप आचम्य मन्त्रेण व्रतं विसृजेतेति
शालीकिः ॥ उपवेशेण चरित्वा व्रतं विसृजेतेत्यौपमन्यवः ॥]

२. अथाऽऽहवनीये समिध आदधाति अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि
स्वाहा । वायो व्रतपते..., आदित्य व्रतपते..., व्रतानां व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि स्वाहा
इति । अथोपोत्थाय यज्ञस्य पुनरालम्भं जपति यज्ञो बभूव स आबभूव स प्रजज्ञे स वावृधे ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्माङ् अधिपतीन् करोतु वयं स्याम पतयो रयीणाम् इति । [यज्ञस्य
पुनरालम्भं जपतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ आहवनीयमेवैतेन यजुषोपतिष्ठेतेति शालीकिः ॥]
अथ प्राङुत्क्रम्य जपति गोमाङ् अग्नेऽविमाङ् अग्नी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः । इडावाङ्
एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुदुष्टः सभावान् इति । अथ ब्राह्मणाङ्स्तर्पयितवै इति संप्रेष्यति ।
संतिष्ठत आमावास्यां वा पौर्णमास्यां वा हविः ॥

दर्शपूर्णमासप्रायश्चित्तानि

अमावास्यां पौर्णमासीं वाऽतिपादयेत्

बौ० १३.३—अग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यो दर्शपूर्णमासयाजी
सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयेदिति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते पथोऽ-
न्तिकाद्वर्हिर्नङ्वाहम् । तस्या एते भवतः अग्ने नय, आ देवानाम् इति । अन्वाहार्यमासाद्याऽ-
नङ्वाहं ददाति ॥ [बौ० २३.१—अग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यो दर्शपूर्ण-

मासयाजी सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयेदिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः पाथिकृतं निरूप्य वैश्वानरं द्वादशकपालमनुनिर्वपेदथाऽतिपन्नां प्रतियजेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः पाथिकृतं निरूप्य वैश्वानरं द्वादशकपालं समानतन्त्रमनुनिर्वपेन्न चाऽतिपन्नां प्रतियजेदिति ॥ अन्यतरेणैव सहाऽतिपन्नां प्रतियजेदित्यौपमन्यवः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहाऽऽजीगविर्विं वा एतस्य यज्ञं छिद्यते यस्य तन्त्रे प्रतयेऽन्यत्तन्त्रं प्रतायते । य एवैषोऽच्युत आग्नेयोऽष्टाकपालस्तमेव पौर्णमास्यां वाऽमावास्यायां वा पाथिकृतं कुर्यान्न चाऽतिपन्नां प्रतियजेदिति ॥]

षण्मासानहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ठा....

बौ० २८.१२—अथ षण्मासानहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ठाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशाभिरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ठाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ॥

संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ठा....

बौ० २८.१२—अथ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ठाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पवमानायाऽग्नये पावकायाऽग्नये शुचयेऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशाभिरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ठाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ॥

अजस्राणामन्वाहितानामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः

बौ० २७.५—अथाऽरणिगतानामात्मगतानामजस्राणामन्वाहितानां सवनगतानां चाऽग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः । अरणिगतं मथित्वा विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतर्नी जुहोति मनो ज्योतिर्जुष्टामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिधं दधातु । या इष्टा उपसो निमुचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा इति ।

बौ० २७.११—सैवाऽजस्राणामन्वाहितानां सवनगतानां चाऽग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः । (= एतयैवाऽऽवृत्तैकस्मिन्नुद्राते द्वयोर्वा प्रतिविभज्य होतृञ्जुहुयात् । व्याहृतीश्चेद् व्यस्ताः समस्ताश्च जुहुयात् । तथा मिन्दाहुती जुहुयात् । मनस्वतीं चेदाहवनीये जुहुयात् ।)

बौ० २९.१०—योऽग्नीनन्वाधाय व्रतमुपैति स यद्युद्रायतीति तत्पुरस्ताद् व्याख्यातम् । अन्वाहार्यपचन उद्रायेत्

बौ० २९.१२—भिन्नयोनिश्चेदन्वाहार्यपचन उद्रायेत् या प्रकृतिस्तत आहरणं पृथगरणी वा ॥

व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्भुका भवति

बौ० २९.१०—यस्य व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्भुका भवति तामपरुध्य यजेतेति । तामपरुध्यैव यजेत सर्वेणैव यज्ञेन यजेत । तामिष्ट्वोपह्वयेत । अमूहमस्मि इत्यृतुकाल उपगमनमन्त्रः । अग्न्यन्वाधानप्रभृत्यपरुध्यैव यजेत तथैकाहानाम् ॥

पत्नीमृत्विष्यं विन्देत्

बौ० २९.१२—अथ यदि पत्नीमृत्विष्यं विन्देत् प्राग्दक्षिणाया पतदेव । अत ऊर्ध्वमपरोधोऽग्निहोत्रे च सोमे चाऽवभृथादिषु सर्वत्रेष्टिपशुसोमेषु तावन्मात्रं पत्न्या वा सर्वम् ॥

आहिताग्निः सन्नव्रत्यमिव चरेत्

बौ० १३.३—अग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्न-
व्रत्यमिव चरेदिति । तस्या एते भवतः त्वमग्ने व्रतपा असि, यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि इति ।
[बौ. २३.१—अग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नव्रत्यमिव
चरेदिति ॥ आधानप्रभृत्येवैतदुक्तं भवतीति बौधायनः ॥ अन्वाहितेषु चैवोपसमाहितेषु
चाऽग्निष्विति शालीकिः ॥]

अग्नीनन्वाधाय अनिष्ट्वा प्रयायात्

बौ० २९.१०—अथ वै भवति सर्वान् वा एषोऽग्नौ कामान् प्रवेशयति योऽग्नीन-
न्वाधाय व्रतमुपैति स यदनिष्ट्वा प्रयायादिति । स यदनिष्ट्वा प्रयास्यन् भवति तद्गार्हपत्य
आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने दुभ्यं ता
अङ्गिरस्तम इति ॥

वत्साः सांनाय्यदुहो धयेयुः

बौ० २७.१३—अथ सांनाय्यदुहो धयेयुश्चेद्वत्सा वायव्यया यवाग्वा सायं यजेत ।
अप्येकस्यां दुग्धायां न धीतां दोहयेत् । दुग्धाभिः स०स्थाप्याऽदुग्धानां वत्सानपाकृत्य श्वः
सांनाय्येन यजेत ॥

हविषे वत्सा अपाकृता धयन्ति

बौ० २९.१०—ओषधीर्वा पतस्य पशून् पयः प्रविशति यस्य हविषे वत्सा अपा-
कृता धयन्ति । तान् यद् दुह्याद्यातयाम्ना हविषा यजेत । यन्न दुह्याद्यन्नपरुरन्तरियात् ।
वायव्यां यवागूं निर्वपेदिति । अथैतेषां दोहयित्वा तस्मिन्नप आनीय व्रीहिप्रभृति सिद्ध-
मत ऊर्ध्वम् ॥

सायं दुग्धं हविरार्तिमाच्छति

बौ० २७.१३—सायंदोहश्चेदार्तिमाच्छेदिन्द्राय व्रीहीन्निरूप्योपवसेदिति यथासमा-
म्नातम् । अपि वा प्रातर्दोहं द्वैधं कृत्वाऽन्यतरदातच्य सायंदोहस्थाने कुर्याच्छृतस्थान
इतरत् ॥ बौ० २९.१०—अथ यस्य सायं दुग्धं हविरार्तिमाच्छेतीन्द्राय व्रीहीन्निरूप्योपवसेदिति ।
निर्वपणान्तं कर्म कृत्वा श्वो भूत आग्नेयेन प्रचर्यैन्द्रेण प्रचरेत् । शृतस्थान^१ इतरत्^१ कुर्यात् ॥

१. 'शृतस्थानं तत्' इति मुद्रितपुस्तके । परमिदानीमेवोद्धृतं कर्मान्तसूत्रं (बौ० २७.१३)
दृष्टव्यम् ।

सांनाय्ये प्रवृत्तायां पयो न स्यात्

बौ० २९.११—अथ यदि सांनाय्ये घर्मे वा प्रवृत्तायां पयो न स्याद्येन केनचिदुपायेन किञ्चित्पयो दोहयित्वाऽद्भिः सःसृज्य प्रचरेत् । नैवाऽन्यत्पय आनीय कुर्यात् । सैव ततः प्रायश्चित्तिः ॥

दर्शपूर्णमासयोरेक एव ऋत्विक् स्यात्

बौ० २७.६—अथ दर्शपूर्णमासयोश्चत्वार ऋत्विजः । तेषामेकस्मिन्नविद्यमाने त्रयः प्रचरेयुर्द्वौ वा । अथ यद्येक एव स्यात्पुरा प्रयाजेभ्य आज्यस्थाल्याः सुवेणोपघातमेकाध्वर्यवप्रायश्चित्तानि जुहोति । जुष्टो वाचो भूयासं जुष्टो वाचस्पतये देवि वाक् । यद्वाचो मधुमत्तस्मिन्माधाः सरस्वत्यै स्वाहा ॥ इमामेवाऽश्विना यज्ञस्य यद्वाचो यद्दुरिष्टम् । तदश्विनौ भेषजेन संदधाताः स्वाहा ॥ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रः हवेहवे सुहवः शरमिन्द्रम् । हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रः स्वस्ति नो मधवा धात्विन्द्रः स्वाहा ॥ यन्मे मनसश्छिद्रं यद्वाचो यच्च मे हृदः । देवास्तच्छमयन्तु सर्वः सोमो बृहस्पतिश्च स्वाहा ॥ यद्विद्वाःसो यद्विद्वाःसो मुग्धाः कुर्वन्त्यृत्विजः । अग्निर्मा तस्मादेनसः श्रद्धा देवी च मुञ्चताः स्वाहा ॥ यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिःसिम । अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चक्रम करोतु मामनेहसः स्वाहा ॥ ब्रह्मत्वे हौत्र आध्वर्यव आग्नीध्रे याजमाने चैक एव यज्ञे यत्पर्याणि तन्मे देवा रक्षन्तां प्राणान्मे मा हिःसिषुः स्वाहा ॥ अहं ब्रह्माऽहं होताऽहमध्वर्युरहमाग्नीध्रीऽहं यजमान एक एव यज्ञे पर्याणि तन्मे देवा रक्षन्तां प्राणान्मे मा हिःसिषुः स्वाहा इति एकाध्वर्यवप्रायश्चित्तानि हुत्वाऽन्तर्वेद्यासीनः सर्वा देवता यजतीति विज्ञायते ॥

यजमानो याजमानेषु मुह्येत

बौ० २७.१२—अथ यदि यजमानो याजमानेषु मुह्येत व्याहृतीभिरेवाऽन्तरेण वेद्युत्करौ प्रपदनं व्याहृतीभिरेवोपनिष्क्रमणं व्याहृतीभिरेवाऽनुमन्त्रणम् । विज्ञायते सर्वा वा ऋचः सर्वाणि सामानि सर्वाणि यजूंषि यद् व्याहृतय इति ।

प्रणीतानां विप्रुषो विपतेयुः

बौ० २७.१—सर्वत्र प्रणीतानां प्रणीयमानानां प्रणीतानां वा यदि विप्रुषो विपतेयुः सन्नेद्वा चमसः आपो हि ष्ठा मयोभुवः इति तिसृभिरद्भिः पूरयित्वा ततं म आपस्तदु तायते पुनः इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ।

भागिनीं देवतामनुचारयित्वा अन्यामुच्चारयेत्

बौ० २७.१—सर्वत्र देवतोच्चारणेषु^१ भागिनीं देवतामनुचारयित्वा योऽन्यामुच्चारयेद् यद्वो देवा अतिपादयानि इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ॥

हविर्निरुप्तं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति

बौ० १७.५०—अथ वै भवति वि वा एतं प्रजया पशुभिरर्धयति वर्धयत्यस्य भ्रातृव्यं यस्य हविर्निरुप्तं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति । त्रेधा तण्डुलान् विभजेत् । ये मध्यमाः स्युस्ता-

नग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं कुर्यात् । ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे दध५श्रुम् । येऽणिष्ठास्तान् विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुमिति । तस्या एता भवन्ति अग्रे दा दाशुषे रयि, दा नो अग्रे, प्रदातार५ हवामहे, प्रदाता वज्री, प्र तत्ते अद्य, किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् । इती-
न्वीजानस्य । अथाऽनीजानस्य । व्यापन्नयैव पूर्वया यजतेऽव्यापन्नयोत्तरया । [बौ० २०.१-
अभ्युदितेष्ट्यामिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः सिद्धैरेवाऽऽमावास्यैर्हविर्भिग्निष्वा
पुनरुपोष्य श्वो भूते काल्यामनभ्युदितामव्यापन्नां यजेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकि-
यैषा ब्राह्मणजेष्टिस्तया व्यक्तयेष्ट्वा पुनरुपोष्य श्वो भूते काल्यामनभ्युदितामव्यापन्नां यजेत ॥
इति नु खलु संनयतः । अथाऽसंनयतः । समानः कल्पो बौधायनस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
शालीकिरप्स्वेतानि हवी५षि श्रपयित्वा पुनरुपोष्य श्वो भूते काल्यामनभ्युदितामव्यापन्नां
यजेत । अपि वोपवसथ एवाऽतिप्रवर्धतेति ॥]

प्रातर्दोहश्चेदार्तिमाच्छेत्

बौ० २७.१३—प्रातर्दोहश्चेदार्तिमाच्छेदैन्द्रं वा माहेन्द्रं वा पुरोडाशं निरुप्य तेन
दध्ना सह प्रचरेत् ॥

उभयं चेदार्तिमाच्छेत्

बौ० २७.१३—उभयं चेदार्तिमाच्छेदैन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेदिति । प्रसिद्ध-
माग्नेयेन प्रचर्यैन्द्रेण प्रचरेत् । बौ० २९.१०—अथ यस्योभय५ हविरार्तिमाच्छेत्यैन्द्रं पञ्च-
शरावमोदनं निर्वपेदिति । प्रकृत्या वा निर्वपेच्छरावेण वेति । प्रकृत्या निर्वपेत्तथा शराव-
परिमाणार्थ५ शरावमिति वदन्तः । तथा चतुष्पात्रं निर्वपेदिति । अत्र पात्र्यामेव निर्वपेत्
सांनार्यस्थाने कुर्यात् ॥

कपालं भिद्येत

बौ० ३.१५—तेषां यजुष्कृतानां यद्भिद्यते तदुत्कर उदस्यति अभिज्ञो धर्मो
जीरदानुर्यत आत्तस्तदगन् पुनः इति । अथ गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं
गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति इध्मो वेदिः परिधयश्च सर्वे यज्ञस्याऽऽयुरनुसंचरन्ति । त्रयस्त्रि५-
शतन्तवो ये विततिरे य इमं यज्ञ५ स्वधया ददन्ते तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दधामि स्वाहा इति । अथाऽन्य-
दपिसृजति धर्मो देवा५ अप्येतु इति ॥

कपालं नश्येत्

बौ० ३.१५—अथ वै भवति यदि नश्येदाश्विनं द्विकपालं निर्वपेद् द्यावापृथिव्य-
मेककपालमिति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथ तथैव गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय
सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये संतनीं जुहोति इध्मो वेदिः परिधयश्च सर्वे यज्ञस्याऽऽयुरनु-
संचरन्ति । त्रयस्त्रि५शतन्तवो ये विततिरे य इमं यज्ञ५ स्वधया ददन्ते तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दधामि
स्वाहा इति । अथाऽन्यदपिसृजति धर्मो देवा५ अप्येतु इति ।

कपालानामनभिप्रथने नानाप्रथने चातिप्रथने च

बौ० २७.३—अथ कपालकरणे रथचक्रचित्याकृत्यश्वशफमात्र५ स्थानं कल्पितं

भवति । संकल्पोऽधिकारः कपालवृद्धिः कपालहासो वा । कपालानामनभिप्रथने व्याहृती-
भिराहवनीये सुवाहुतीर्जुह्यात् भूर्भुवः सुवः इति । एतावदेव नानाप्रथने चाऽतिप्रथने च ।
बौ० २७.४—कपालानां प्रमाणानि ब्रूयादाध्वर्यवे विधौ । समानि चतुरश्राणि द्व्यङ्गुलानि
समन्ततः ॥ हविर्विकाराणां प्रमाणेन समविषमाणि वर्धयन्तीति बौधायनः ॥

छेददाहोपघातेषु नाशे विनाशे वा

बौ० २७.१—सर्वत्र दर्विकूर्चप्रस्तरपरिधिबर्हिर्विधृतिपवित्रवेदोपवेधेधमद्रव्यसंभा-
राणां छेददाहोपघातेषु नाशे विनाशे वाऽन्यं यथालिङ्गं कृत्वा यथालिङ्गमुपसाद्य त्वमे
अयाऽसि, प्रजापते इत्येताभ्यां सुवाहुती जुहुयात् ॥

हविषामशृतद्रवदाहोत्सेकनिस्रावे

बौ० २७.३—अथ हविषामशृतद्रवदाहोत्सेकनिस्रावे प्रायश्चित्तिः । अशृते द्वाय
खाहा इत्याहवनीये सुवाहुतिं जुहुयात् । द्रवे वायवे विदग्धे निर्ऋत्यै । यदि दग्धं स्याद्यत्तत्र
शृतं स्यात्तेन प्रचरेत् । अथ यदि सर्वमेव दग्धं स्यादपोऽभ्यवहृत्य मिन्दाहुती जुहुयात् ।
अथाऽन्यं निर्वपेदाज्येन वा प्रचरेत् । सैव ततः प्रायश्चित्तिः । यस्यैयस्यै दिश्युत्सिच्येत
तस्यैतस्यै देवतायै सुवाहुतिं जुहुयात् । यदि प्राग् अग्रे, यदि दक्षिणतो यमाय, यदि पश्चाद्
वर्णाय, यद्युत्तरतः सोमाय । अथ यदि सर्वत एवोत्सिच्येतैताभ्यः सर्वाभ्यो देवताभ्यः सुवा-
हुतीर्जुहुयात् । तमाज्येनाऽऽप्यायनीभ्यामाप्याययति आप्यायस्व, सं ते इति^१ ॥ बौ० २७.१२—
अथ वै भवति निर्ऋतिर्वा एतस्य यज्ञं गृह्णाति यस्यां कस्यां च हविः क्षायति । यद्यवदानानि
विन्दन्ति नाऽत्र प्रायश्चित्तं कुर्वन्ति ॥

उद्भासनकाले पतनफालनादिषु

बौ० २७.३-४—अथ हविषामुद्भासनकाले पतनफालनखण्डनोद्वर्तनसं सर्पण-
विपरीतव्यवायकरणेषु व्याहृतीभिराहवनीये सुवाहुतीर्जुहुयात् भूर्भुवः सुवः इति । अथाऽ-
न्तरेण वेद्युत्कराबुदङ्गुपनिष्कस्याऽऽतमितोरुदङ्गुपनिःसृप्य व्याहृतीरुक्त्वा व्याहृतीभिरेव
प्रतिपद्यते ।

व्याहृतयस्तु चतुष्पादा नवांशाश्च षडक्षराः ।

चतुर्णामपि वेदानामादिमध्यावसानिकाः ॥

मन्त्रोनं वाऽतिरिक्तं वा दुरिष्टं वाऽपि यद्भवेत् ।

व्यपोहयन्ति पाप्मानं तस्माद्व्याहृतयः स्मृता इति ॥

उद्धृते तु पुरोडाशे वेपिते स्यन्दिते तथा ।

भिन्ने संपर्पणे चाऽपि प्रायश्चित्तं कथं भवेत् इति ॥

विज्ञायते

उद्धृते तु कुलं हन्याद्वेपिते नश्यति प्रजा ।

भिन्ने संपर्पणे चाऽपि यजमानः प्रमीयत इति ॥

अथ पतनफालनखण्डनोद्धर्तनसं सर्पणेषु प्रसिद्धमुद्रास्य बहिर्षदं कृत्वा प्रभूतेन सर्पिषाऽवसिच्याऽभिमन्त्रयते किमुत्पतसि किमुत्प्रोष्ठाः शान्तः शान्तेरिहाऽऽगहि । अघोरो यज्ञियो भूत्वाऽऽसीद सदनं स्वमासीद सदनं स्वम् इति । ब्रह्मणे वरं दत्त्वाऽन्तर्वेद्यासादयेत् । तस्यां सस्थितायां सुरभिमतीं निर्वपेत् । तस्यां सस्थितायां तन्तुमतीं निर्वपेत् ।

आयुष्मत्यस्तु कर्तव्या उत्तरांछन्दसः क्रियाः ।
हविर्भ्रंषविधिस्त्वेष विहितस्तत्त्वदर्शिभिः इति ॥
स्कन्ने ग्रहणनिर्वापे द्रव्याणां चाऽनुमन्त्रणे ।
यस्मिन् काले विजानीयात्तत्कुर्यात्कर्मसंस्तरे ॥
प्रणवो व्याहृतयश्चैव यज्ञ एष परोऽवरः ।
तस्माद्यज्ञस्य यत्स्कन्नं विपरीतं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं व्याहृतीभिः कुर्यादन्यत्र च वषट्कृतात् ॥
अजानद्भिः कृतं यच्च त्वरमाणेश्च यत्कृतम् ।
व्याहृतीनां प्रयोगेण यत्कृतं कृतमेव तत् इति ॥

हविर्दोषाः

बौ० २७.९—अथ हविर्दोषान् व्याख्यास्यामः । यथैतन्नीलमक्षिकाशातिका-
मत्कुणश्चैलशिरसोर्यूके कीटो वा पिण्डकारी स्यात्क्षुद्रकीटमक्षिकापिपीलिकावर्जं श्व-
मार्जारनकुलकुक्कुटमर्कटध्वाङ्क्षाऽऽखुपुरीषसिक्पदकेशमृतनखकुनखपूतिद्रप्सस्वेदासृक्-
स्नेहाश्रुकासक्षवध्वाद्रवणैर्वोपहतमन्यैर्वोपहतं रजस्वलया वा स्पृष्टं तथाऽप्रयतेन भ्रूणघ्नेन
वा दष्टं तथाऽपपात्रेणाऽमेध्ये वा देशे । स्कन्नं दुष्टं हविरपोऽभ्यवहरन्ति । शीते भस्मनि
वा निधापयति । मिन्दाहुती हुत्वाऽथाऽन्यं निर्वपेदाज्येन वा प्रचरेत् । अपि तु खलु
क्षिप्रसंस्कारमाज्यं भुवत इति । मिन्दाहुती हुत्वा मनस्वतीं जुहोति । सैव ततः
प्रायश्चित्तिः ॥

भागिनीं देवतामनावाहयित्वा अन्यामावाहयेत्

बौ० २७.१—सर्वत्र देवतावाहनेषु भागिनीं देवतामनावाहयित्वा योऽन्यामा-
वाहयेदेतयैव (यद्वो देवा...) सुवाहुतिं जुहुयात् । यत्र स्मरेत्तदुपोत्थायैनां मनसाऽऽवाहये-
दथाऽतिरिक्तमाज्येन यथोढां यजेत ॥

हविर्देवतायाज्यापुरोनुवाक्याहुतीनां हुताहुतभ्रेषेऽन्तरिते विपर्यासे च

बौ० २७.१—सर्वत्र हविर्देवतायाज्यापुरोनुवाक्याहुतीनां हुताहुतभ्रेषेऽन्तरिते
विपर्यासे च त्वं नो अग्ने, स त्वं नो अग्ने इत्येताभ्यां सुवाहुती जुहुयात् ॥

सर्वाणि हवींषि दुष्येयुर्नश्येयुरपहरेयुर्वा

बौ० २७.१३—सर्वाणि चेद्धवींषि दुष्येयुर्नश्येयुरपहरेयुर्वाऽऽज्येनैता देवताः
प्रतिसंख्यायमिद्वैतामिष्टिमन्यामिष्टिमनुष्यणां तन्वीत । यज्ञो ह वै यज्ञस्य प्रायश्चित्तिरिति
विज्ञायते ॥

पुरा प्रयाजेभ्यो बहिःपरिध्यङ्गारा अभिपर्यावर्तेरन्

बौ० २७.२—यदि पुरा प्रयाजेभ्यो बहिःपरिध्यङ्गारा अभिपर्यावर्तेरन् ब्राह्मणोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ॥

अन्यत्र बर्हिष आज्यं सांनाय्यं वा स्कन्देत्

बौ० ३.१५-१६—अथ यद्याज्यस्य वा सांनाय्यस्य वाऽन्यत्र बर्हिषः पुरोत्तमात् प्रयाजात् स्कन्दति तस्य स्वधाः संभरति सं त्वा सिञ्चामि यजुषा प्रजामायुर्धनं च । बृहस्पति-प्रसूतो यजमान इह मा रिषत् इति । स्कन्नमनुमन्त्रयते भूपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा, भूतानां पतये स्वाहा इति । अथ यावत्परिशिष्टेन प्रचरति ॥

होता याज्यापुरोनुवाक्यासु मुह्येत

बौ० २७.१२—देवपवित्रमाग्नेय्यो याज्यापुरोनुवाक्या देवपवित्रमैन्द्रियो देवपवित्रं प्राजापत्या देवपवित्रं व्याहृतय इति । अथ यदि होता याज्यापुरोनुवाक्यासु मुह्येत सर्वाभिराग्नेयीभिर्यजेतेति । विज्ञायतेऽग्निः सर्वा देवता इति । ऐन्द्रीभिः । विज्ञायते इन्द्रो वै सर्वा देवता इति । प्राजापत्याभिः । विज्ञायते प्रजापतिः सर्वा देवता इति । व्याहृतीभिः । विज्ञायते सर्वा वा ऋचः सर्वाणि सामानि सर्वाणि यजूंषि यद्व्याहृतय इति ॥

आग्नेयात्पुरोडाशादग्नीषोमौ यजेताऽग्नीषोमीयाद्वाऽग्निम्

बौ० २७.१२—अथ यद्याग्नेयात्पुरोडाशादग्नीषोमौ यजेताऽग्नीषोमीयाद्वाऽग्निं यजेत नैतत्प्रदानमिति । आहवनीये सुवाहुतिं जुहुयाद् यद्वो देवा अतिपादयानि इति ॥

अनादिष्टेषु

बौ० २९.१२—अथाऽतः प्रायश्चित्तसमुच्चयं व्याख्यास्यामः । सर्वत्राऽनादिष्टेषु मनस्वती मिन्दाहुती व्याहृतयो होतार इति जुहुयात् ॥

सर्वेष्वव्रत्येषु

बौ० २९.१२—सर्वेष्वव्रत्येषु मिन्दाहुती ॥

अनाज्ञातप्रायश्चित्तेषु

बौ० २७.२—सर्वत्राऽनाज्ञातप्रायश्चित्तेषु अनाज्ञातं, पुरुषसंमितः इत्येताभ्यां सुवाहुती जुहुयात् ॥

स्वराक्षरपदवृत्तश्रेषेषु

बौ० २७.२—सर्वत्रोपांशुप्रभृति वाचः स्थानानां स्वराक्षरपदवृत्तश्रेषेषु आभिर्गामिर्निर्यदतो न ऊनम् इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ॥

यज्ञश्रेष आगच्छेत्

बौ० २७.४—यद्यृको यज्ञश्रेष आगच्छेद् भूः इति गार्हपत्ये जुहुयात् । यदि यजुष्टो भुवः इत्यन्वाहार्यपचने । यदि सामतः भुवः इत्याहवनीये । यदि सर्वतः, सर्वा जुहुयात् ॥

आश्रावितप्रत्याश्रावितवषट्काराणामत्युक्तानुक्तहीनेषु

बौ० २७.१—सर्वत्राऽऽश्रावितप्रत्याश्रावितवषट्काराणामत्युक्तानुक्तहीनेषु आश्रा-
वितमत्याश्रावितम् इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ॥

वितते यज्ञकर्मणि यज्ञश्रेष्ठ आगच्छेत्

बौ० २७.२—सर्वत्र वितते यज्ञकर्मणि यदि यज्ञश्रेष्ठ आगच्छेत् इष्टेभ्यः स्वाहा,
वषट्निष्टेभ्यः स्वाहा इत्येतैरष्टाभिः सुवाहुतीर्जुहुयात् ॥

उपरिष्ठान्मन्त्रकृतम् अधस्तान्निपतेत्

बौ० २७.१—सर्वत्रोपरिष्ठान्मन्त्रकृतं यद्यधस्तान्निपतेत् ब्रह्म प्रतिष्ठा मनसः इत्येतया
प्रतिष्ठाप्यैतयैव सुवाहुतिं जुहुयात् हुत्वा वा प्रतिष्ठापयेत् । हुत्वाऽनन्तरं कर्म कुर्यादिव-
मन्येष्वपि ॥

इध्माबर्हिषः प्रयाजानुयाजानां पाकत्रा कर्मसु

बौ० २७.२—सर्वत्रेध्माबर्हिषः प्रयाजानुयाजानां पाकत्रा कर्मसु यत्पाकत्रा मनसा
इत्येतया सुवाहुतिं जुहुयात् ॥

स्कन्ने भिन्ने छिन्ने भग्ने नष्टे क्षामे विपर्यास उद्राह ऊनातिरिक्ते वा

बौ० २७.२—सर्वत्र स्कन्ने भिन्ने छिन्ने भग्ने नष्टे क्षामे विपर्यास उद्राह ऊनाति-
रिक्ते वा यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत्, पुनरग्निश्चक्षुरदात् इत्येताभ्यां सुवाहुती जुहुयात् ॥

सर्वयज्ञानां प्रायश्चित्तानि

बौ० २८.१०—अथाऽतः सर्वयज्ञानां प्रायश्चित्तानि व्याख्यास्यामः । सर्वत्र स्कन्-
छिन्नभिन्नभग्ननष्टदुष्टविपरीतहीनेषु हविःस्यन्दनास्त्रावितपतितस्फुटितेषु अद्विजश्वाऽनो-
बिडालकाकखरशृगपशुपक्षिसरीसृपादीनामन्यत्कीटानामृत्विजोग्रीनामन्तरा गतानां द्वादश-
गृहीतेन स्तुचं पूरयित्वा दुर्गां मनस्वतीं महाव्याहृतीस्तिष्ठो जुहुयात् । जातवेदसे सुनवाम
सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः स्वाहा इति ॥
कार्यविपर्यासे च मन्त्रब्राह्मणमात्रम् । दर्भेध्माबर्हिःपरिधिविघृतिपवित्रहविःकपालस्तुक्-
सुवाऽरणिक्पूणाजिनप्रणीताग्न्युद्वासनेन यत्किञ्चित्कार्यविपर्यासः स्याद्ये चाऽन्ये चाऽऽज्य-
स्थाल्याः सुवेणोपघातं प्रायश्चित्तानि जुहोति प्रजापतये स्वाहा, हिरण्यगर्भाय स्वाहा इति ।
अथ पितामहां जुहोति शृणुणां पतये स्वाहा, अङ्गिरसां तपसे स्वाहा इति । अथ महा-
व्याहृतीर्जुहोति भूः भूमे च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, भुवो वायवे चाऽन्तरिक्षाय च महते च स्वाहा,
सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा
इति । अथ व्याहृतीर्जुहोति भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, सुवः स्वाहा, भूर्भुवः सुवः स्वाहा इति ।

मन्त्रहीनेऽतिरिक्ते वा दुरधीते दुरागते ।

अनागतेऽवषट्कारे अतीते वाऽपि यजुते ॥

हविषः स्यन्दनादग्नेर्होतुर्हीनस्वरेण च ।
 अतिदाहे च हविषां यत्किञ्चित्पात्रमेदने ॥
 कपालनाशे मेदे च चतुष्पाद्यन्तरागते ।
 प्रणाशे च पवित्रस्य आज्यस्येवाऽवलोडने ॥
 हविषां च विपर्यास ऋत्विक्ष्वप्रयतेषु च ।
 यज्ञप्रसारणीकाले द्वैधीभावे समुत्थिते ॥
 मिन्दाहुती च होतव्ये व्याहृत्यः प्रणवादिकाः ।
 वारुण्यस्तन्तुमत्यश्चाऽन्वग्निश्च मनस्वती ॥
 महाव्याहृतयः सप्त प्राजापत्या तथैव च ।
 प्रसंधानाय यज्ञस्य त्वेते मन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥
 अप्रायश्चित्तिको यज्ञो ह्यसुरैः संप्रभुज्यते ।
 असुरैर्भुक्तयज्ञस्तु देवान् दोषेण सः श्रयेत् ॥
 ऋत्विजो यजमानं च आयुषो ब्रह्मवर्चसात् ।
 प्रच्यावयेद् दुरिष्टं तत् तस्माद्दोषान् प्रणाशयेत् इति ॥

ऊर्ध्वं समिष्टयजुषोऽन्तरितां देवतां स्मरेत्

बौ० २७.१२—उपासते ह वै यज्ञं देवा अन्तरिता इदमु नो हविर्न हुतं तद्धोष्यत इति । आ स्विष्टकृत इत्येके । षडाया इत्येके । आऽनुयाजेभ्य इत्येके । आ शंयुवाका-
 दित्येके । आ समिष्टयजुष इत्येके । ऊर्ध्वं चेत्समिष्टयजुषः स्मरेत्सः स्थायैतामिष्टिमन्या-
 मिष्टिमनुत्वंणां तन्वीत । यज्ञो ह वै यज्ञस्य प्रायश्चित्तिरिति विज्ञायते ॥

वितते यज्ञकर्मणि जन्यं भयमागच्छेत्

बौ० २७.२—सर्वत्र वितते यज्ञकर्मणि यदि जन्यं भयमागच्छेद् यत् इन्द्र भयामहे,
 स्वस्तिदा विशस्पतिः इत्येताभ्यां सुबाहुती जुहुयादभये वा पुनर्यजेत ॥

अन्यस्याऽग्निषु यजेत अन्यो वाऽग्निषु यजेत

बौ० १३.४३—यो वाऽन्यस्याऽग्निषु यजेत यस्य वाऽन्योऽग्निषु यजेत । सो-
 ऽरण्योरग्नीन् समारोहोदवसाय मथित्वाऽग्नीन् चिहृत्य वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्धपति ।
 तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्ठो दिवि इति ॥

वितते यज्ञकर्मणि सूर्यो नाऽऽविर्भवति

बौ० २७.१—सर्वत्र वितते यज्ञकर्मणि यदि सूर्यो नाऽऽविर्भवत्यन्यत्राऽऽदेशात्
 उदयं तमसस्पति, उदु त्थं, चित्रम् इत्येताभिः सुबाहुतीर्जुहुयात् ॥

सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं विद्यते

बौ० २७.१—यदि सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं विद्यत एतदेव । (उदयं तमसस्पति, उदु त्थं,
 चित्रम् इत्येताभिः सुबाहुतीर्जुहुयात् ।)

अतिक्रान्तं कर्म

बौ० २७.१—अतिक्रान्तं कर्म नाऽऽद्रियेत यद्यर्थलुप्तं भवति ॥

पिण्डपितृयज्ञः

ऋसं—

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥
 आ त एतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य दृशे ॥
 पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥ १०.५७.३-५
 अग्रे तमद्याऽश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
 ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४.१०.१

तैसं [२.५.३]—तस्मात् पितृभ्यः पूर्वेषुः क्रियते० ॥

तैत्रा [१.३.१०]—

० तस्मात्पितृभ्यः पूर्वेषुः क्रियते० सोमाय पितृपीताय स्वधा नम इत्याह० अग्नये
 कव्यवाहनाय स्वधा नम इत्याह० तिस्र आहुतीर्जुहोति^१० त्रिर्निदधाति० तूष्णीं मेक्षणमा-
 दधाति० सकृदाच्छिन्नं बर्हिर्भवति० पराडावर्तते० ओष्मणो व्यावृत उपास्ते० ब्रह्मवादिनो
 वदन्ति । प्राश्यां३ न प्राश्या३मिति । यत्प्राश्नीयात् । जन्यमन्नमद्यात् । प्रमायुकः स्यात् ।
 यन्न प्राश्नीयात् । अहवि स्यात् । पितृभ्य आवृश्चेत । अवप्रेयमेव । तन्नेव प्राशितं नेवा-
 ऽप्राशितम्० दशां छिनत्ति० उत्तर आयुषि लोम छिन्दीत० नमस्करोति० नमो वः पितरो
 रसाय । नमो वः पितरः शुष्माय । नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधायै ।
 नमो वः पितरो मन्यवे । नमो वः पितरो घोराय । पितरो नमो वः । य एतस्मिँल्लोके
 स्थ । युष्मास्तेऽनु । येऽस्मिँल्लोके । मां तेऽनु । य एतस्मिँल्लोके स्थ । यूयं तेषां वसिष्ठा
 भूयास्त । येऽस्मिँल्लोके । अहं तेषां वसिष्ठो भूयासमित्याह० प्राजापत्ययर्चा पुनरैति० ॥

कासंक [१२]—

० तस्मात्पूर्वेषुः पितृभ्यः क्रियते० यदि बन्धु^२ नाऽनुविदीत^३ स्वधा पितृभ्यः पृथिवी-
 षद्भ्य इति प्रथमपिण्डं निदध्यात्, स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्, स्वधा पितृभ्यो
 दिविषद्भ्य इति तृतीयम्० अप्यनाहिताग्निना कार्यमिदं चिन्मे कृतमस्तु पितरश्चेन्मा विदन्ति ।
 पक्तव्या^२ न पक्तव्या^२मिति^३ मीमांसन्ते । पक्तव्यमेव० सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये
 कव्यवाहनाय स्वधा नम इति द्विर्जुहोति । तत्पञ्च संपद्यते० मेक्षणं षष्ठमादधाति० एतत्ते
 तत ये च त्वाऽनु, एतत्ते पितामहा ये च त्वाऽनु, एतत्ते प्रपितामहा ये च त्वाऽनु इति

१. 'यमायाऽङ्गिरस्वते स्वधा नमः' इति मन्त्रेण तृतीयाहुतिः शाखान्तरे विहिता ।

२. बन्धुनाम न विदितं ? ३. पक्तव्यां३ न पक्तव्या३मिति ?

त्रिर्निदधाति । द्वयोः परयोर्नाम गृह्णाति० प्राश्या३ न प्राश्या३ इति मीमांसन्ते । यत्प्राश्रीयत् प्राकारुकः स्याद्, यन्न प्राश्रीयदहवि१ । अवजिघ्रेदुभयमेव१ करोति । योऽलमनाथाय सन्नन्नं नाऽद्यात् स प्राश्रीयत् । कूष्मा भार्यागावे (?) पितर एनमुपावयन्ति । नमस्कारादुपावर्तते । यथा वीवधा यस्यैव भार्यस्यैवशास्येति (?) । अथ नमस्क्रुयात्० पर्यावर्तेत० पितृन् वा एतस्य मनो गच्छति । मनो न्वाहवाग्रह इति तदेव पुनराहयते० ॥

वासं [२.२९-३४]—

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ।

अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।

परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ॥ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत् ॥ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म ॥ एतद्वः पितरो वास आधत्त ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्त्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ॥

शान्ना [२.४.२]—

० तद्वा एतन्मासिमास्येव पितृभ्यो ददतः । यदैवैष न पुरस्तान्न पश्चात् ददृशे अथैभ्यो ददाति० स वा अपराह्णे ददाति० स जघनेन गार्हपत्यं प्राचीनावीती भूत्वा दक्षिणाऽऽसीन एतं गृह्णाति । स तत एवोपोत्यायोत्तरेणाऽन्वाहार्यपचनं दक्षिणा तिष्ठन्नवहन्ति । सकृत्फलीकरोति० तथं श्रपयति । तस्मिन्नधिष्ठित आज्यं प्रत्यानयति० स उद्वास्याऽग्नौ द्वे आहुती जुहोति देवेभ्यः० स वा अग्नये च सोमाय च जुहोति० स जुहोति अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति । अग्नौ मेक्षणमभ्यादधाति तत्स्विष्टकृद्भाजनम् । अथ दक्षिणेनाऽन्वाहार्यपचनं सकृदुल्लिखति तद्वेदिभाजनम्० अथ परस्तादुल्मुकं निदधाति । स निदधाति ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना.... अस्मादिति० अथोदपात्रमादायाऽवनेजयति असाववनेनिक्ष्वेत्येव यजमानस्य पितरम्, असाववनेनिक्ष्वेति पितामहम्, असाववनेनिक्ष्वेति प्रपितामहम्० अथ सकृदाच्छिन्नान्युपमूलं दिनानि भवन्ति० तानि दक्षिणोपस्तृणाति । तत्र

ददाति । स वा इति ददाति० स ददाति असावेतत्ते इत्येव यजमानस्य पित्रे । ये च त्वामन्वित्युं हैक आहुः । तदु तथा न ब्रूयात्० तस्मादु ब्रूयाद् असावेतत्ते इत्येव यजमानस्य पित्रे, असावेतत्ते इति पितामहाय, असावेतत्ते इति प्रपितामहाय० तत्र जपति अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति० अथ पराङ् पर्यावर्तते० स वा आ तमितोरासीतेत्याहुः० स वै मुहूर्तमेवाऽऽसित्वा अथोपपत्य्य जपति । अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति० अथोदपात्रमादायाऽवनेजयति असाववनेनिक्ष्वेत्येव यजमानस्य पितरम्, असाववनेनिक्ष्वेति पितामहम्, असाववनेनिक्ष्वेति प्रपितामहम्० अथ नीविमुद्वृह्य नमस्करोति० षट् कृत्वो नमस्करोति । गृहान्नः पितरो दत्त इति० अथाऽवजिघ्रति प्रत्यवधाय पिण्डान् । स यजमान-भागः । अग्नौ सकृदाच्छिन्नान्यभ्यादधाति । पुनरुल्मुकमपिसृजति० ॥

वाकासं [२.७]—

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा --- ॥ नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः
पितरस्तपसे नमो वः पितरो यज्जीवं तस्मै नमो वः पितरो रसाय
नमो वः पितरो घोराय मन्यवे स्वधायै वः पितरो नमः ॥ एतद्वः पितरो
वासः ॥ गृहान्नः पितरो दत्त ॥
उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य धामभिः । उदस्थाममृतां अनु ॥
आधत्त पितरो --- तर्पयत मे पितॄन् ॥

काशत्रा [१.३.३]—

अथ खलु प्राचीनावीती भूत्वा जघनेन गार्हपत्यं दक्षिणाऽऽसीनः सव्यं जान्वाच्य
तूष्णीमेवैतं चरुं गृह्णाति । स तत एवोपोत्थाय.... । स ददात्यसावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे ।
ये च त्वामन्वच्च इति वा हैक आहुर्यांश्च त्वमन्वड्डीसीति वा । तदु तथा न कुर्यात्.... ॥

पिण्डपितृयज्ञः

बौधायनश्रौ० [३.१०-११; २०.२१; २४.३२]—

१. पिण्डपितृयज्ञं करिष्यन्नुपकल्पयते^१ सकृदाच्छिन्नं बहिर्दंभांश्च परिस्तरणीयान् व्रीहींश्च शूर्पं च प्रक्षालिते चोदुखलमुसले स्थालीं सस्रुषां समेक्षणामेरकोपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने दशां स्प्यमुदकुम्भं यज्ञायुधानीति । अथाऽन्वाहार्यपचनं परिस्तरणाति । तमुत्तरेणैकैकं स सादयति परकोपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने दशां स्प्यमुदकुम्भं यज्ञायुधानीति । अथ प्राचीनावीतं कृत्वा जघनेनाऽन्वाहार्यपचनमुपविश्य पवित्रवत्यां स्थाल्यां व्रीहीन्निर्वपति पितृभ्यो वो जुष्टं निर्वपामि इति वा तूष्णीं वा । [पिण्डपितृयज्ञस्य करण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आदित एव प्राचीनावीतं कुर्वीत । स प्राचीनावीत्येव स्याद् आ आहुतीनां होमात् । आहुतीर्होष्यन् यज्ञोपवीतं कुर्वीत । स यज्ञोपवीत्येव स्याद् आ सकृदाच्छिन्नस्य स्तरणात् । सकृदाच्छिन्नं स्तरिष्यन् प्राचीनावीतं कुर्वीत । स प्राचीनावीत्येव स्याद् आ प्राजापत्यायै । यज्ञोपवीत्येव प्राजापत्ययर्चा गार्हपत्यमुपतिष्ठेतेति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिरादित एव प्राचीनावीतं कुर्वीत । स प्राचीनावीत्येव स्याद् आ प्राजापत्यायै । यज्ञोपवीत्येव प्राजापत्ययर्चोदङ्घ्रेयादिति ॥] उपर्यर्धां स्थालीं कृत्वैतस्मिन्नेव चर्मण्युदुखलमुसले निधायऽवहन्ति सकृदेव दक्षिणामुखः । अथैतानविचिच्य । अथैतस्यामेव स्थाल्यां तिरः पवित्रमप आनीयाऽधिश्रित्य तिरः पवित्रं तण्डुलानावपति । [तूष्णीं सकृदुत्पूय सकृत्प्रोक्ष्य सकृद्विष्कद्रूपं कुर्यादिति बौधायनः ॥ सकृदेवैनान् सुफलीकृतान् कृत्वा पवित्रवत्यां स्थाल्यामोष्य स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽभिघार्योदञ्चमुद्रासयेदिति शालीकिः ॥] अथाऽऽज्यं निर्वपति । अथाऽऽज्यमधिश्रयति । उभयं पर्यग्निं कृत्वा मेक्षणं सुवं च संमार्ष्टि । अथैतं चरुं श्रपयित्वाऽभिघार्योदञ्चमुद्रासयति । अथ यज्ञोपवीतं कृत्वाऽन्वाहार्यपचनमुपसमाधाय मेक्षणेनोपघातं तिस्र आहुतीर्जुहोति सोमाय पितृपीताय स्वधा नमः स्वाहा, यमायाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वधा नमः स्वाहा, अग्नये कव्यवाहनाय खिष्टकृते स्वधा नमः स्वाहा इति दक्षिणार्घपूर्वार्धे । तूष्णीं मेक्षणमभ्याधाय । [आहुतीनां होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नाऽत्र मध्यममाहुतिं जुहुयात् । मेक्षणमेव तृतीयं स्यादिति शालीकिः ॥]

२. प्राचीनावीतं कृत्वा दक्षिणेनाऽन्वाहार्यपचनं स्प्येनोदृत्याऽवोक्ष्य दक्षिणाग्रं बहिः स्तीर्त्वा । [सकृदाच्छिन्नस्य स्तरण इति ॥ उपनिष्कम्याऽग्न्यगारादक्षिणे पूर्वोऽवान्तरदेशे सकृदाच्छिन्नं स्तृणीयादक्षिणतश्चोत्सुकमुपनिदध्यादिति बौधायनः ॥ अन्तरेवैतां दिशमिति शालीकिर्न चाऽत्रोत्सुकमुपनिदध्यादिति ॥] अङ्गिर्माजंयति मार्जयन्तां पितरः, मार्जयन्तां पितामहाः, मार्जयन्तां प्रपितामहाः इति । अथ सुवेणोपस्तीर्णाभिघारितां स्त्रीन् पिण्डान् ददाति एतत्ते तताऽसी ये च त्वामनु, एतत्ते पितामहाऽसी ये च त्वामनु, एतत्ते

प्रपितामहाऽसी ये च त्वामनु इति । [पिण्डानां दान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अचो ह स्माऽऽह बौधायनः परस्तादेवाऽमुतोऽर्वाचोऽपसलैः पिण्डान् दद्यादिति ॥] [कथमु खलु जीवपितुः पिण्डदानं भवतीति । येभ्य एव पिता ददाति तेभ्यः पुत्रो ददाति । द्वाभ्यां जीवपिता ददाति । एकस्मै जीवपितामहो ददाति । न जीवन्तमतिदद्यादित्येके । पितृव्यस्य चेत्सगोत्रस्य दायमुपयच्छेत कथं तत्र पिण्डदानं भवतीति । यस्मिन् काले पित्रे पिण्डं ददाति तस्मिन् कालेऽस्य पिण्डं निपूण्यात् । अथ चेदसगोत्रस्य दायमुपयच्छेत कथं तत्र पिण्डदानं भवतीति । स्वेभ्यो दत्त्वा प्रतिवेशं बर्हिः स्तीर्त्वा बर्हिःप्रभृति पिण्डं दद्यात् । अपि वाऽगार एव स्थालीपाकं श्रपयित्वा बर्हिःप्रभृत्येव पिण्डं दद्यात् । कथमु खलु पुत्रिका-पुत्रस्य पिण्डदानं भवतीति । एतत्तेऽमुष्यै तत मम पितामह ये च त्वामनु, एतत्तेऽमुष्यै पितामह मम प्रपितामह ये च त्वामनु, एतत्तेऽमुष्यै प्रपितामह मम प्रपितामह ये च त्वामनु इति । प्रविदान-कल्पेन वा दद्यात् खधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः, खधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः, खधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः इति । पितुश्चेत्पितामहस्य प्रपितामहस्येति नामानि न जानीयात्कथं तत्र पिण्ड-दानं भवतीति । प्रविदानकल्पेन वा दद्यात् । अपि वा एतत्ते तत ये च त्वामनु, एतत्ते पितामह ये च त्वामनु, एतत्ते प्रपितामह ये च त्वामनु इति ।] अत्र पितरो यथाभागं मन्ध्वम् इत्युक्त्वा उदङ् पर्यावृत्य आ ऊष्मणो व्यावृत उपास्ते । व्यावृत ऊष्मा इति प्राहुः । अथाऽभिपर्यावृत्यैतं चरुमवजिघ्रति ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ये सजाताः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन् लोके शतं समाः इति । अथ तथैवाऽद्भिर्मार्जयति मार्जयन्तां पितरः, मार्जयन्तां पितामहाः, मार्जयन्तां प्रपितामहाः इति । अथाऽऽञ्जनं ददाति आज्ञतां पितरः, आज्ञतां पितामहाः, आज्ञतां प्रपितामहाः इति । अथा-ऽभ्यञ्जनं ददाति अभ्यञ्जतां पितरः, अभ्यञ्जतां पितामहाः, अभ्यञ्जतां प्रपितामहाः इति । अथ वासांसि ददाति एतानि वः पितरो वासांसि, एतानि वः पितामहा वासांसि, एतानि वः प्रपितामहा वासांसि इति । 'उत्तर आयुषि लोम छिन्दीत' इति ब्राह्मणम् । [उत्तर आयुषि लोम छिन्दीतेति । कस्मिन् खल्वेतत्काले छेत्तव्यं भवतीति । ऊर्ध्वं षट्षष्टिभ्यश्च वर्षेभ्योऽष्टाभ्यश्च मासेभ्य इत्येतस्मिन्नेवैतत् काले छेत्तव्यं भवतीति ।] अथ षड्भिर्नम-स्कारैर्विपर्यासमुपतिष्ठते नमो वः पितरो रसाय, नमो वः पितरः शुष्माय, नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरो घोराय, पितरो नमो वो य एतस्मिन् लोके स्थ युष्मास्तेऽनु येऽस्मिन् लोके मां तेऽनु य एतस्मिन् लोके स्थ यूयं तेषां वसिष्ठा भूयास्त येऽस्मिन् लोकेऽहं तेषां वसिष्ठो भूयासम् इति । अथ वीरं याचते वीरं मे पितरो दत्त, वीरं मे पितामहा दत्त, वीरं मे प्रपितामहा दत्त, पितृमानहं युष्माभिर्भूयासं सुप्रजसो मया यूयं भूयास्त इति । अथैनानुत्थापयति उत्तिष्ठत पितरः प्रेत शूरा यमस्य पन्थामनुयाता पुराणम् । धत्तादस्मासु द्रविणं यन्व भद्रं प्र णो ब्रूताद्वागधां देवतासु इति । अथैनान् सः साधयति यन्तु पितरो यथालोकं मनसा जवेन, परेत पितरः सोम्या गम्भीरैः पथिभिः पूर्यैः । अथा पितृन्सुविदत्रा अपीत यमेन ये सधमादं मदन्ति इति । अथ तिसृभिर्मन आह्वयते मनो न्वाहुवामहे, आ न एतु मनः पुनः, पुनर्नः पितरो मनः इति । [आज्ञनाभ्यञ्जने मनसो निहव इति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] अत्रैतान् पिण्डान् सह बर्हिषाऽश्रावतुप्रहरति । [पिण्डानामनुप्रहरण

इति ॥ सूत्र५ शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनोऽत्रैवैते पिण्डाः परिशयीरन् । उच्छिष्टा होते भवन्ति पितृभिर्भक्ष्यकृता इति ॥] अथैतेषां शस्त्राणां द्वे द्वे उदाहरन्ति । अथ यज्ञोपवीतं कृत्वा प्राजापत्ययर्चा गार्हपत्यमुपतिष्ठते प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः इति । अत्रैतां द्वितीयां जपति यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्याम् इति । [अतिशिष्टस्य प्राशन इति ॥ स्वयं यजमानः प्राश्नीयादिति बौधायनः ॥ पुत्राय वाऽन्तेवासिने वा दद्यादिति शालीकिः ॥ पत्नीं प्राशयेत् । प्रजाऽस्यैषा भवतीत्यौपमन्यवः ॥ अङ्गुल्या यावन्मात्रमवघ्रायाऽथेतरद्ग्रावनुग्रहरेदित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥ भस्मोत्कर उद्वास्य संप्रच्छादयेदित्याजीगविः ॥ अपोऽभ्यवहरेदिति मौद्गल्यः ॥] [कथमु खल्वनाहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञो भवतीति । अनिरुप्तं स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याऽऽहुतीर्हुत्वा दक्षिणेनाऽग्निं दक्षिणाग्रं बर्हिः स्तीर्त्वा बर्हिःप्रभृति पिण्डं दद्यात् । अपि वाऽगार एव स्थालीपाकं श्रपयित्वा बर्हिःप्रभृत्येव पिण्डं दद्यात् । यज्ञोपवीत्येव प्राजापत्ययज्ञैतमग्निमुपतिष्ठेतेति ।] संतिष्ठते पिण्डपितृयज्ञः ॥

पिण्डपितृयज्ञप्रायश्चित्तम्

पितृयज्ञलोपे

बौ० २९.१२—पितृयज्ञलोपे सप्तहोतारमिति जुहुयात् ।

वैमृधेष्टिः

ऋसं^१—

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥१०.१५२.४
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सुकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताळिह वि मृधो नुदस्व ॥
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥१०.१८०.२-३
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्रे अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५.४.५
अग्रे शर्ध महते सौभगाय तव द्युमन्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥५.२८.३

तैसं [२.५.३]—०यद्वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो भवति० ॥

शत्रा [११.१.३.१]—पौर्णमासेनेष्ट्वा इन्द्राय विमृधेऽनुनिर्वपति० ॥

वैमृधेष्टिः

बौधायनश्रौ० [१७.४७]—

वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो भवति^२ ॥ [बौ० २३.१६—वैमृधस्याऽनुनिर्वपण
इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नाऽनिष्ट्वा प्रथमसोमेनाऽनुनिर्वपेदिति शालीकिः ॥]

आग्रयणेष्टिः

ऋसं—

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । तामिर्नोऽविता भव ॥१.९१.९
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥१.९१.८
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥८.४५.१
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्ध्वं गव्यं परिषदन्तो अगमन् ॥४.२.१७
विश्वे देवास आ गत.... ॥२.४१.१३
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्मा वरिवस्यन्तु देवाः ॥६.५२.१५
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥१.२२.१३
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥७.५३.२
इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥७.९४.७
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान.... ॥७.९३.४
इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाऽजनि ॥७.९४.१
शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोऽवीमि ता वाजं सद्य उशते घेष्ठा ॥७.९३.१
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ता द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.७
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्रा ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्टचेति प्रदिव उराणः ॥४.६.४

तैब्रा [२.४.८]

१स प्रत्नवन्नवीयसाऽग्रे द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥
 नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वसोः कुविद्वनाति नः ॥
 स्वारुहा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा । अग्रे यज्ञस्य चेततः ॥
 अदाभ्यः पुर एताऽग्निर्विंशां मानुषीणाम् । तूर्णीं रथः सदानवः ॥
 नवः सोमाय वाजिन आज्यं पयसोऽजनि । जुष्टः शुचितमं वसु ॥
 नवः सोम जुषस्व नः पीयूषस्येह तृष्णुहि । यस्ते भाग क्रता वयम् ॥
 नवस्य सोम ते वयमा सुमतिं वृणीमहे । स नो रास्व सहस्रिणः ॥
 नवः हविर्जुषस्व न क्रतुभिः सोम भूतमम् ।
 तदङ्ग प्रतिह्य नो राजन्सोम स्वस्तये ॥
 नवः स्तोमं नवः हविरिन्द्राग्निभ्यां निवेदय । तज्जुषेताः सचेतसा ॥
 शुचिं नु स्तोमं नवजातमधेन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
 उभा हि वाः सुहवा जोहवीमि ता वाजः सद्य उशते धेष्ठा ॥
 अग्निरिन्द्रो नवस्य नोऽस्य हव्यस्य तृप्यताम् । इह देवौ सहस्रिणौ ॥
 यज्ञं न आ हि गच्छतां वसुमन्तः सुवर्विदम् ।
 अस्य हव्यस्य तृप्यतामग्निरिन्द्रो नवस्य नः ॥
 विश्वान् देवाः स्तर्पयत हविषोऽस्य नवस्य नः । सुवर्विदो हि जज्ञिरे ॥
 एदं बर्हिः सुष्टरीमा नवेनाऽयं यज्ञो यजमानस्य भागः ।
 अयं बभूव भुवनस्य गर्भो विश्वे देवा इदमद्याऽऽगमिष्ठाः ॥
 इमे नु द्यावापृथिवी समीची तन्वाने यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
 आऽस्मै पृणीतां भुवनानि विश्वा प्रजां पुष्टिममृतं नवेन ॥
 इमे धेनू अमृतं ये दुहाते पयस्वत्युत्तरामेतु पुष्टिः ।
 इमं यज्ञं जुषमाणे नवेन समीची द्यावापृथिवी घृताची ॥
 यविष्ठो हव्यवाहनश्चित्रभानुर्घृतासुतिः ।
 नवजातो विरोचसेऽग्रे तत्ते महित्वनम् ॥
 त्वमग्रे देवताभ्यो भागे देव न मीयसे ।
 स एना विद्वान् यक्ष्यसि नवः स्तोमं जुषस्व नः^१ ॥
 १अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः ।
 शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः ॥

भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि त्वा ।
स नो मयोभूः पितो आविशस्व शं तोकाय तनुवे स्योनः ॥
एतमु त्पं मधुना संयुतं यवः सरस्वत्या अधिमनावचक्रुषुः ।
इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः क्रीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥

मैसं [४.३.२]

देवा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुः । स इन्द्रोऽवेदग्निर्वाविमाः प्रथम उज्जेष्यतीति ।
सोऽब्रवीद्यतरो नौ पूर्वं उज्जेत्तनौ सहेति । ता अग्निरुदजयत् । तदिन्द्रोऽनूदजयत् । तस्मा-
दैन्द्राग्नम् । अथो आहुराग्नेन्द्रं कार्यमिति० आप्रायणो द्वादशकपालो भवति० सप्तदश सामि-
धेनीः कार्याः० तेन पयसि स्याद्वैश्वदेवः० यद् द्वावापृथिवीयः० सोमा ओषधीनामधिराजस्तस्य
वा एष भागो यदकृष्टपच्यम्० याः फालकृष्टास्तासामेतेनाऽऽप्रायणं करोति या आरण्यास्तासा-
मुत्तरेण० यदकृत्वाऽऽप्रायणं नवस्याऽऽश्वीयाद्देवानां भागं प्रतिक्लृप्तमश्नीयात्० वत्सः प्रथमजो
दक्षिणा० ।

[४.१२.६]—

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥
याभ्यां स्वरजनन्नग्र एव या आतस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्र चर्वणी वृषणा वज्रबाहुमग्निमिन्द्रं वृत्रहणं हुवेम ॥
अग्रा इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोपयातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥

कासं [१२.७]—

० तस्मादाग्नेन्द्रमैन्द्राग्नं कार्यम्० अभिजित्या एवाऽऽप्रायणम् । द्वादशकपालो भवति०
सप्तदश सामिधेन्यो भवन्ति० भूम्ने वैश्वदेवः० पयसि भवति० ताभ्यामेतं भागमकुर्वन्नेककपालं
प्रतिष्ठित्यै द्वावापृथिव्यम्० सोम ओषधीनामधिराजस्तस्यैष उद्धारो यदकृष्टपच्यम् । उद्धार
एवाऽस्यैष भाग एव यदारण्यं तस्यैतेनाऽग्रं क्रियते । यत् फालकृष्टं तस्येत्तरेण । वत्सः प्रथमजो
दक्षिणा० यदाप्रायणं राजसूये भवति० तस्मान्नाऽनिष्ट्वाऽऽप्रायणेन नवस्याऽऽशितव्यम्० ॥

शत्रा [२.४.३]—

तदु होवाच कहोडः कौषीतकिः । अनयोर्वा अयं द्वावापृथिव्यो रसः । अस्य
रसस्य हुत्वा देवेभ्यः अथेममश्राम इति । तस्माद्वा आप्रयणेष्ट्या यजत इति० तस्मादैन्द्राग्नो
द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति० तस्मादेव वैश्वदेवश्चरुर्भवति । तं वै पुराणानां कुर्यादित्याहुः०
तौ वा उभावेव नवानां स्याताम्० तस्माद् द्वावापृथिव्य एककपालः पुरोडाशो भवति० अथैतश्च

सर्वमेव जुहोति । न स्विष्टकृतेऽवद्यति० तस्मादाज्यस्यैव यजेत्० तस्य प्रथमजो गौर्दक्षिणा० स यदीजानः स्याद् दर्शपूर्णमासाम्यां वा यजेत अथैतेन यजेत । यद्यु अनीजानः स्यात् चातुष्प्राश्यमेवैतमोदनमन्वाहार्यपचने पचेयुः । तं ब्राह्मणा अश्रीयुः । द्वाया वै देवाः । देवा अहैव देवाः । अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाँसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः । तद्यथा वषट्कृतं हुतम् एवमस्यैतद्भवति । तत्रो यच्छक्नुयात् तदद्यात्० नाऽग्निहोत्रे जुहुयात्० ॥

कारात्रा [१.३.२] ≡ शत्रा

शान्त्रा [४.१२-१४]—

अथाऽत आप्रयणस्य । आप्रयणेनाऽन्नाद्यकामो यजेत । वर्षास्वागते श्यामाकसस्ये श्यामाकानुद्धर्तवा आह । सा या तस्मिन् कालेऽमावास्योपसंपद्येत तयेष्ट्वाऽथैतयेष्टया यजेत । यदि पौर्णमासी, एतयेष्ट्वाऽथ पौर्णमासेन यजेत । यद्यु नक्षत्रमुपेप्सेत्, पूर्वपक्षे नक्षत्रमुदीक्ष्य यस्मिन्नक्षत्रे कामयेत तस्मिन् यजेत । तस्यै सप्तदश सामिधेन्यः सद्गन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणम् । सौम्यश्चरुः । सोमो वै राजौषधीनाम् । तदेनं स्वया विशा प्रीणाति । अथ यन्मधुपर्कं ददाति । एष ह्यारण्यानां रसः ॥

अथ वसन्त आगते पक्षेषु वेणुयवेषु वेणुयवानुद्धर्तवा आह । तस्या एतदेव पर्वत-
तन्त्रमेवा देवतैषा दक्षिणैतद्ब्राह्मणम् । तां हैक आग्नेयीं वा वारुणीं वा प्राजापत्यां वा कुर्वन्ति ।
एतत्तन्त्रमेवैतद्ब्राह्मणम् ॥

अथ व्रीहिसस्ये वा यवसस्ये वाऽऽगत आप्रयणीयानुद्धर्तवा आह । तस्या एतदेव पर्वततन्त्रम् । अथ यदैन्द्राग्नौ द्वादशकपालः० अथ यद्वैश्वदेवश्चरुः० अथ यद् द्यावापृथिवीय एककपालः० अथ यत्प्रथमजं गां ददाति० पौर्णमासं वाऽऽमावास्यं वा हविः कुर्वीत नवाना-
मुभयस्याऽऽप्यै । अपि वा पौर्णमासे वाऽमावास्ये वा हवींष्यनुवर्तयेद्देवतानामपरिहाणाय ।
अपि वा यवाग्वैव सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयान्नवानामुभयस्याऽऽप्यै । अपि वा स्थालीपाकमेव गार्हपत्ये श्रपयित्वा नवानामेताभ्य आप्रयणदेवताभ्य आहवनीये जुहुयात् स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्योऽमुष्यै
स्वाहाऽमुष्यै स्वाहेति देवतानामपरिहाणाय । अपि वाऽग्निहोत्रीमेव नवानादयित्वा तस्यै दुग्धेन सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयादुभयस्याऽऽप्यै । एत एतावन्तः पातास्तेषां येन कामयेत तेन यजेत ।
त्रिहविस्तु स्थिता ॥

गोत्रा [२.१.१७]—

देवा वा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुः । स इन्द्रोऽवेदग्निर्विमाः प्रथम उज्जेष्यतीति ।
सोऽब्रवीच्चतरो नौ पूर्वं उज्जयात्तन्नौ सहेति । ता अग्निरुदजयत् । तदिन्द्रोऽनूदजयत् । स

एष ऐन्द्राग्रः सन्नाग्नेन्द्रः । एका वै तर्हि यवस्य श्रुष्टिरासीदेका व्रीहरेका माषस्यैका तिलस्य । तद्विश्वे देवा अम्रुवन् वयं वा एतत् प्रथयिष्यामो भागो नोऽस्त्विति । तद्भूम एव वैश्वदेवः । अथो प्रथयत्येतेनैव । पयसि स्याद्वैश्वदेवत्वाय । वैश्वदेवं हि पयः । अथेमावब्रूतां न वा ऋत आवाभ्यामेवैतद्युयं प्रथयत मयि प्रतिष्ठितमसौ वृष्ट्या पचति नैतदितोऽभ्युज्जेय्यतीति । भागो नावस्त्विति । ताभ्यां वा एष भागः कियत् उज्जित्या एव । अथो प्रतिष्ठित्या एव यो द्यावा-पृथिवीयः । सौमीर्वा ओषधीः सोम ओषधीनामधिराजः । याश्च ग्राम्या याश्चाऽऽरण्यास्तासा-मेष उद्धारो यच्छ्रयामाकः । यच्छ्रयामाकः सौम्यस्तमेव भागिनं कृणुते । यदकृत्वाऽऽग्रयणं नवस्याऽऽश्रीयाद् देवानां भागं प्रतिवल्तमद्यात् । संवत्सराद्वा एतदधि प्रजायते यदाग्रयणम् । संवत्सरं वै ब्रह्मा । तस्माद्ब्रह्मा पुरस्ताद्धोमसंस्थितहोमेष्वावपेत । एकहायनी दक्षिणा ॥

आग्रयणेष्टिप्रायश्चित्तम्

आग्रयणेनाऽनिष्ट्वा नवान्नं प्राश्नीयात्

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निराग्रयणेनाऽनिष्ट्वा नवान्नं प्राश्नीयात्० सोऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—वैश्वानरो अजीजनत् (आश्वश्रौ २.१५), पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम् (ऋसं १.९८.२) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये वैश्वानराय स्वाहेति० ॥

आग्रयणेष्टिः

बौधायनश्रौ० [३.१२; २०.२२; २४.३३; २८.५; १२]—

वर्षासु श्यामाकानामाग्रयणं करिष्यन् भवति । तस्य प्रज्ञात उपवसथः ।
[आग्रयणस्य तन्त्रसमास इति ॥ नास्ति तन्त्रसमास आचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौ-
पमन्यवः सौम्यं निरुप्याऽथेतराणि हवींषि निर्वपेत् । एवमस्य चरुमुखानि हवींषि
भवन्तीति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवीपुत्रोऽतिपातादावापिक एव सौम्यः स्यात् । अन्तरेण
वैश्वदेवं चैककपालं च निर्वपेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहाऽऽजीगविस्त्रीण्येतानि हवींषि
भवन्ति । त्रय इमे लोकाः । एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति । श्यामाकेनैवाऽस्य प्रस्तरेणैतदाप्तं
भवतीति ॥] अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पृष्ठयां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति ।
हविष्कृता वाचं विसृज्य गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये-
ऽज्यानीर्जुहोति शतायुधाय शतवीर्याय इति पञ्च । [अज्यानीनां होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
पुरस्तात्स्विष्टकृतोऽज्यानीरुपजुहुयादिति शालीकिः ॥] [यथो एतद्बौधायनस्य कल्पं वेदयन्ते
हविष्कृता वाचं विसृज्याऽज्यानीर्जुहुयात् कस्मिन्नु खल्वेनाः काले जुहुयादिति । प्रस्कन्द-
नान्तं कर्म कृत्वैतस्मिन्नेनाः काले जुहुयात् ।] श्रपयित्वाऽऽसादयति । [आग्रयण-
हविषां श्रपण इति ॥ पयसि श्रपयेदिति बौधायनः ॥ अग्निस्त्विति शालीकिः ॥] तस्याः
पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रेणावाज्यभागौ । अथ हविषः आप्यायस्व, सं ते
इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्य वासो ददाति । अथ यजमानभागं प्राश्नाति
अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः । शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः इति ।
संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा । विसृजते व्रतम् ।

अथ शरदि व्रीहीणामाग्रयणं करिष्यन् भवति । तस्य प्रज्ञात उपवसथः । अथ
प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पृष्ठयां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयेन्द्राग्रं द्वादशकपालं निर्वपति वैश्वदेवं चरुं
द्यावापृथिव्यमेककपालमिति । [आग्रयण एककपालस्य करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥
न कुर्यादिति शालीकिः ॥] हविष्कृता वाचं विसृज्य गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय
सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीयेऽज्यानीर्जुहोति शतायुधाय शतवीर्याय इति पञ्च । श्रप-
यित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रेणावाज्यभागौ । [तन्त्र-
करण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः पञ्चदशसामिधेनीकाः स्युर्वार्त्रेणावाज्यभागा-
वुच्चैर्देवताः । कुर्याद्याजमानमिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सप्तदशसामिधेनीकाः
स्युर्वृधन्वन्तावाज्यभागानुपांशुदेवताः । कुर्याद्याजमानमिति ॥] अथ हविषाम् इन्द्राग्नी
रोचना दिवः, श्रथद्वृत्रम् इत्येन्द्राग्रस्य । विश्वे देवाः, विश्वे देवाः इति वैश्वदेवस्य । द्यावा नः
पृथिवी, प्र पूर्वजे पितरा इति द्यावापृथिव्यस्य । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । अन्वाहार्यमासाद्य प्रथमजं
वत्सं ददाति । अथ यजमानभागं प्राश्नाति भद्राक्ष श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि
त्वा । स नो मयोभूः पितो आविशस्व शी तोकाय तनुवे स्योनः इति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्ण-
पात्रविष्णुक्रमा । विसृजते व्रतम् ।

अथ वसन्ते यवानामाग्रयणं करिष्यन् भवति । तस्य प्रज्ञात उपवसथः । समानं कर्म यथा व्रीह्याग्रयणस्य । एतावदेव नाना । अथ यजमानभागं प्राश्नाति एतमु त्वं मधुना संयुतं यवः सरस्वत्या अधि मनावचकृषुः । इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसम्भृतः सुदानवः इति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा । विस्जते व्रतम् ।

[कथमु खल्वनाहिताग्नेराग्रयणं भवतीति । अनिरुप्तः स्थालीपाकः श्रपयित्वाऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याऽऽघारावाधार्याऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽग्रयणदेवताभ्यः स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्यो जुहुयात् । कामं पुरस्तात्स्विष्टकृतोऽज्यानीरुपजुहुयात् । तस्यैतेनैव मन्त्रेण प्राश्नीयात् भद्राक्षः श्रेयः समनैष्ट देवाः इति । अपि वा श्रुतवतो ब्राह्मणस्य हुतोच्छेषणाह्निप्सेत । समानः प्राशनमन्त्रः ।] [नवैरेवाऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा यजेत नवैर्वाऽग्निहोत्रं जुहुयात् । अपि वाऽग्निहोत्रीं वा नवानादयित्वा तस्याः पयसा जुहुयात् । अपि वा नवानां यवान्वा सोयंप्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । अपि वा गार्हपत्ये चतुःशरावमोदनः श्रपयित्वाऽऽग्रयणदेवताभ्यः स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्यो जुहुयात् । अपि वा नवैरेव ब्राह्मणान् भोजयेत् । स एष इष्टुपचारकल्पो हरितयवशमीधान्यौषधिवनस्पतिमूलफलशकानामनिष्ट्वाऽऽग्रयणं याथाकामी स्यात् पक्तिवैभस्यात् । व्रीहिभिर्निष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत आ यवेभ्यः । यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत आ व्रीहिभ्यः । अपि वा व्रीहिभिरेव यवैर्वा यजेत । संतिष्ठन्त आग्रयणानि ।] [आ व्रीह्याग्रयणस्य कालाच्छ्रद्धामाकाग्रयणस्य कालो नाऽतीयात् । आ यवाग्रयणस्य कालाद् व्रीह्याग्रयणस्य । आ इयामाकाग्रयणाद्यवाग्रयणस्य ।]

आग्रयणेष्टिप्रायश्चित्तम्

अनिष्ट्वाऽऽग्रयणेन नवान्नं जग्ध्वा

बौ० १३.४३—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदनिष्ट्वाऽऽग्रयणेन नवान्नं जग्ध्वा ।

षण्मासान्....अनिष्ट्वाऽऽग्रयणैः

बौ० २८.१२—अथ षण्मासान्हुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरूप्याऽग्निहोत्रः हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ।

संवत्सरम्....अनिष्ट्वाऽऽग्रयणैः

बौ० २८.१२—अथ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पवमानायाऽग्नये पावकायाऽग्नये शुचयेऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरूप्याऽग्निहोत्रः हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ।

काम्या दर्शपूर्णमासाः

आग्नावैष्णवीष्टिः^१

तैसं [२.५.४]—

देवा वै यच्चज्ञेऽकुर्वन्त तदसुरा अकुर्वन्त । ते देवा एतामिष्टिमपश्यन्नाग्नावैष्णवमेका-
दशकपालं सरस्वत्यै चरुं सरस्वते चरुम् । तां पौर्णमासं स स्थाप्याऽनु निरवपन् । ततो
देवा अभवन् पराऽसुराः । यो भ्रातृव्यवान् स्यात्स पौर्णमासं स स्थाप्यैतामिष्टिमनु निर्वपेत् ।
पौर्णमासेनैव वज्रं भ्रातृव्याय प्रहृत्याऽऽग्नावैष्णवेन देवताश्च यज्ञं च भ्रातृव्यस्य वृद्धे मिथुनान्
पशून्त्सारस्वताभ्याम् । यावदेवाऽस्याऽस्ति तत्सर्वं वृद्धे । पौर्णमासीमेव यजेत भ्रातृव्यवान्ना-
ऽमावास्याम् । हत्वा भ्रातृव्यं नाऽऽप्यायति ॥

साकंप्रस्थायीयेष्टिः^२

तैसं [२.५.४-५]—

साकंप्रस्थायीयेन यजेत पशुकामः० महता पूर्णं होतव्यम्० दारुपात्रेण जुहोति ।
न हि मृन्मयमाहुतिमानशे । औदुम्बरं भवति० नाऽगतश्रीर्महेन्द्रं यजेत । त्रयो वै गतश्रियः
शुश्रुवान् ग्रामणी राजन्यस्तेषां महेन्द्रो देवता० संवत्सरमिन्द्रं यजेत० संवत्सरस्य परस्तादग्नये
व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्० ततोऽधि कामं यजेत ॥

शांत्रा [४.९]—

अथाऽतः साकंप्रस्थाय्यस्य । साकंप्रस्थाय्येनैष्यन्नेतस्यामेवाऽमावास्यायां प्रयुङ्क्ते तस्या
उक्तं ब्राह्मणम् । स एष श्रैष्ठ्यकामस्य पौरुषकामस्य यज्ञः । तेन श्रैष्ठ्यकामः पौरुषकामो
यजेत । तद्यत्साकं संप्रतिष्ठन्ते साकं संप्रयजन्ते साकं भक्षयन्ते तस्मात् साकंप्रस्थाय्यः ॥

सुमना नामेष्टिः^३

तैसं [२.५.५]—

न द्वे यजेत । यत्पूर्वया संप्रति यजेतोत्तरया छम्बट्कुर्यात् । यदुत्तरया संप्रति
यजेत पूर्वया छम्बट्कुर्यात्० एकामेव यजेत० अनादृत्य तद् द्वे एव यजेत० एषा वै सुमना
नामेष्टिः० ॥

१. दृश्यतां बौध्वा १७.४७-४८
३. दृश्यतां बौध्वा १७.५०

२. दृश्यतां बौध्वा १७.४८, शांत्रौ ३.१०

गोत्रा [२.१.११] ≡ तैसं

दाक्षायणयज्ञः^१

तैसं [२.५.५]—

दाक्षायणयज्ञेन सुवर्गकामो यजेत । पूर्णमासे सं नयेत् । मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षया-
ऽमावास्यायां यजेत० तस्यैतद्व्रतं नाऽनृतं वदेत् मा५ समश्नीयान्न स्त्रियमुपेयान्नाऽस्य पत्न्यूलनेन
वासः पत्न्यूलयेयुः० ॥

ऐत्रा [३.४०]—पयसा प्रवर्ग्यै^२ चरन्ति, पयसा दाक्षायणयज्ञे । प्रवर्ग्यमेवाऽनु
दाक्षायणयज्ञोऽग्निष्टोममप्येति ॥

शत्रा [२.४.४]—

प्रजापतिर्ह वा एतेनाऽग्ने यज्ञेनेजे प्रजाकामः बहुः प्रजया पशुभिः स्या^३ श्रियं
गच्छेयं यशः स्यामन्नादः स्यामिति । स वै दक्षो नाम । तद्यदेनेन सोऽग्नेऽयजत तस्माद्दा-
क्षायणयज्ञो नाम । उतैनमेके वसिष्ठयज्ञ इत्याचक्षते । एष वै वसिष्ठः० स एतेन यज्ञेनेष्ट्वा येयं
प्रजापतेः प्रजातिः या श्रीः एतद्बभूव० तस्माद्वा एतेन यजेत० स वा एकैक एवाऽनूचीनाहं
पुरोडाशो भवति० स वै द्वे पौर्णमास्यौ यजते द्वे अमावास्ये० अथ यत्पूर्वेषुरग्नीषोमीयेण
यजते पौर्णमास्यां ते द्वे देवते० अथ प्रातराग्नेयः पुरोडाशो भवति ऐन्द्रं सांनाय्यं ते द्वे देवते०
अथ यत्पूर्वेषुरैन्द्राग्नेन यजते अमावास्यायां ते द्वे देवते० अथ प्रातराग्नेयः पुरोडाशो भवति
मैत्रावरुणी पयस्या० अथ वाजिम्यो वाजिनं जुहोति० स वै पश्वादिव यज्ञस्य जुहोति० स वै
प्रागेवाऽग्ने जुहोति । अग्ने वीहि इत्यनुवषट्करोति० अथ दिशो व्याघारयति दिशः प्रदिश
आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्म्यः स्वाहेति० तद्वै पञ्चैव भक्षयन्ति होता चाऽध्वर्युश्च ब्रह्मा
चाऽग्नीच्च यजमानः० प्रथमो यजमानो भक्षयति० अथो अप्युत्तमः० उपहूतः उपह्वयस्व इति० ॥

[११.१.२.१३]—यद्यु दाक्षायणयज्ञी स्यादथो अपि पञ्चदशैव वर्षाणि
यजेत० द्वे हि पौर्णमास्यौ यजेत द्वे अमावास्ये० ॥

काशत्रा [१.३.४] ≡ शत्रा

शात्रा [४.४]—

अथाऽतो दाक्षायणयज्ञस्य । दाक्षायणयज्ञेनैष्यन् फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते० अथ

१. दृश्यतां बौध्वा १७.५१; शांभौ ३.८; आपभौ ३.१७.९-११ २. श्रौतकोश-
द्वितीयखण्डे 'अग्निष्टोमः' द्रष्टव्यः

यदुपवसथेऽग्नीषोमीयमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति० अथ यत्प्रातरामावास्येन यजते० अथ यदमावास्यायामुपवसथ ऐन्द्राग्रं द्वादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति० अथ यन्मैत्रावरुणी पयस्या ॥

इळादधः^१

ऐत्रा [३.४०]—इळादधो नाम यज्ञक्रतुः । तं दध्ना चरन्ति । दध्ना दधिघर्मे । दधिघर्मेमेवाऽन्विळादधोऽग्निष्टोममप्येति ॥

शांत्रा [४.५]—

अथाऽत इळादधस्य । इळादधेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणम् । स एष पशुकामस्याऽन्नाद्यकामस्य यज्ञः । तेन पशुकामोऽन्नाद्यकामो यजेत । तत्र तथैव व्रतानि चरति । दाक्षायणयज्ञस्य हि स मासः ॥

सार्वसेनियज्ञः^२

शांत्रा [४.६]—

अथाऽतः सार्वसेनियज्ञस्य । सार्वसेनियज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणम् । स एष प्रजातिकामस्य यज्ञस्तेन प्रजातिकामो यजेत । तद्यदध्वर्युर्हवीषि प्रजनयति तत्प्रजात्यै रूपम् ॥

शौनकयज्ञः^३

शांत्रा [४.७]—

अथाऽतः शौनकयज्ञस्य । शौनकयज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणम् । स एष तुस्तूर्धमाणस्य यज्ञस्तेन तुस्तूर्धमाणो यजेत । स य इच्छेद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं स्तृष्णीयेति सोऽनेन यजेत । स्तृणुते ह ॥

वसिष्ठयज्ञः^४

शांत्रा [४.८]—

अथाऽतो वसिष्ठयज्ञस्य । वसिष्ठयज्ञेनैष्यन् फाल्गुन्याममावास्यायां प्रयुङ्क्ते । ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । क्षत्रमिवैव यज्ञः क्षत्रेण शत्रून् सहा३ इति । वसिष्ठोऽकामयत हतपुत्रः प्रजायेय प्रजया पशुभिरभि सौदासान् भवेयमिति । स एतं यज्ञक्रतुमपस्यद्वसिष्ठयज्ञम् ।

१. दृश्यतां शांश्रौ ३.९; बौश्रौ १७.५२; आपश्रौ ३.१७.१२ २. दृश्यतां शांश्रौ ३.१०; बौश्रौ १७.५४; आपश्रौ ३.१७.१२ ३. दृश्यतां शांश्रौ ३.१०; आपश्रौ ३.१७.१२ ४. दृश्यतां शांश्रौ ३.११; बौश्रौ १७.५३-५४; शांत्रा २.४.४.२; आपश्रौ ३.१७.१२

तमाहरतेनाऽयजत । तेनेष्ट्वा प्राजायत प्रजया पशुभिरभि सौदासानभवत् । तथो एवैतद्यज-
मानः । यद्वसिष्ठयज्ञेन यजते प्रजायते प्रजया पशुभिरभि द्विषतो भ्रातृव्यान् भवति ॥

मुन्ययनम्^१

शांत्रा [४.१०]—अथाऽतो मुन्ययनस्य । मुन्ययनेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां
प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणम् । स एष सर्वकामस्य यज्ञः । तेन सर्वकामो यजेत ॥

तुरायणम्^२

शांत्रा [४.११]—

अथाऽतस्तुरायणस्य । तुरायणयज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं
ब्राह्मणम् । स एष स्वर्गकामस्य यज्ञः । तेन स्वर्गकामो यजेत । अथ यत्कृष्णाजिनं प्रतिमुञ्चते ।
ब्रह्म वै कृष्णाजिनं ब्रह्मणैव तद्यज्ञं समर्धयति । तानि वै त्रीणि हवींषि भवन्ति । त्रयो वा
इमे लोकाः । इमानेव तं लोकानामोति ॥

काम्या दर्शपूर्णमासाः

आग्नावैष्णवीष्टिः

बौधायनश्रौ० [१७.४७-४८; २३.१७]—

अथ वै भवति देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत । ते देवा एतामिष्टिम-
पश्यन्नाग्नावैष्णवमेकादशकपालं सरस्वत्यै चरुं सरस्वते चरुम् । तां पौर्णमासं
संस्थाप्याऽनुनिरवपन् । ततो देवा अभवन् पराऽसुराः । यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स पौर्ण-
मासं संस्थाप्यैतामिष्टिमनुनिर्वपेत् । पौर्णमासेनैव वज्रं भ्रातृव्याय प्रहृत्याऽऽग्नावैष्णवेन
देवताश्च यज्ञं च भ्रातृव्यस्य वृद्धं इति ब्राह्मणम् । स एष भ्रातृव्यवतो यथाकामप्रयोगः ।
मिथुनान् पशुत्सारस्वताभ्याम् । यावदेवाऽस्याऽस्ति तत्सर्वं वृद्धं इति ब्राह्मणम् । अथ
वै भवति । पौर्णमासीमेव यजेत भ्रातृव्यवान्नाऽमावास्यामिति । स पौर्णमासीं पौर्णमासी-
मेव यजेत भ्रातृव्यवान्नाऽमावास्याम् । [पौर्णमासीमेव यजेत भ्रातृव्यवान्नाऽमावास्या-
मिति ॥ उभयत्र पौर्णमासहविर्भिर्यजेतेति बौधायनः ॥ नाऽमावास्यायां किञ्चन यज्ञरूपं
कुर्यादिति शालीकिः ॥ पिण्डपितृयज्ञेन चरेदित्यौपमन्यवः ॥] हत्वा भ्रातृव्यं नाऽऽप्या-
ययतीति ब्राह्मणम् । तदेतत्स्तरणवगधं वाऽपरोध्यावगधं वेति ॥

साकंप्रस्थायीयेष्टिः

बौधायनश्रौ० [१७.४८; २३.१७]—

अथ वै भवति साकंप्रस्थायीयेन यजेत पशुकाम इति । [साकंप्रस्थायीयेन
यजेत पशुकाम इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सुग्भ्यामेव पुरोडाशं
जुहुयाच्चमसेन सांनाय्यमिति ॥] एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयत औदुम्बरं महत्पात्रं
प्रभूतमाज्यमिति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वाऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्व-
पत्यैन्द्रमेकादशकपालमैन्द्रं सांनाय्यम् । प्रसिद्धमाग्नेयेन चरित्वाऽथेतरयोर्हविर्बोरौदुम्बरे
महति पात्रे समवयन्नाह इन्द्रायाऽनुब्रूहि इति । महेन्द्राय इति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति ।
महता पूर्णं होतव्यमिति । अत्याक्रम्याऽऽभ्राव्याऽऽह इन्द्रं यज इति । महेन्द्रम् इति वा
यदि महेन्द्रयाजी भवति । वषट्कृते सहैव पात्रेण जुहोति । तप्त एवैनमिन्द्रः प्रजया
पशुभिस्तर्पयतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति दारुपात्रेण जुहोति । न हि मृन्मयमाहुति-
मानशे । औदुम्बरं भवति । ऊर्वा उदुम्बर ऊर्कं पशवः । ऊर्जैवाऽस्मा ऊर्जं पशूनवरुद्धे
इति ब्राह्मणम् । तदेतल्लभ्यावगधं वा निर्वेदावगधं वेति ॥

सुमना नामेष्टिः

बौधायनश्रौ० [१७.५०]—

न द्वे यजेत । यत्पूर्वया संप्रति यजेतोत्तरया छम्बद् कुर्यात् । यदुत्तरया संप्रति
यजेत पूर्वया छम्बद् कुर्यात् । नेटिर्भवति न यज्ञः । तदनु हीतमुख्यपगल्भो जायते ।

एकामेव यजेत प्रगल्भोऽस्य जायते । अनादृत्य तद् द्वे एव यजेत । यज्ञमुखमेव पूर्वयाऽऽलभते । यजत उत्तरया । देवता एव पूर्वयाऽवरुन्द्र इन्द्रियमुत्तरया । देवलोकमेव पूर्वयाऽभिजयति मनुष्यलोकमुत्तरया । भूयसो यज्ञकतूनुपैतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्येषा वै सुमना नामेष्टिः । यमद्येजानं पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवाऽस्मै लोकेऽधुंकं भवतीति ब्राह्मणम् ॥

दाक्षायणयज्ञः

बौधायनश्रौ० [१७.५१; २३.१७; २६.२२]—

अथ वै भवति दाक्षायणयज्ञेन सुवर्गकामो यजेत । पूर्णमासे संनयेत् । मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयाऽमावास्यायां यजेतेति । [दाक्षायणयज्ञेन सुवर्गकामो यजेत । पूर्णमासे संनयेन्मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयाऽमावास्यायां यजेतेति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ वैमृधमप्यत्राऽनुनिर्वपेदिति शालीकिः ॥] एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयतेऽहतं वासः । अथ पौर्णमास्या उपवसथेऽग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथाऽस्यैतदहरिन्द्राय वत्सा अपाकृता भवन्ति । ऐन्द्रं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपत्यैन्द्रं सांनाय्यम् । सा द्विहविरिष्टिः संतिष्ठते । अत्रैतदैन्द्रं सांनाय्यं समुपहृत्य भक्षयन्ति । [सांनाय्यस्य भक्षण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो यजमान एवैतमर्धमासमनुनिधाय सांनाय्यं भक्षयेदिति ॥] अथाऽहतं वासः परिधायाऽपरपक्षं व्रतं चरति । तस्यैतद् व्रतं नाऽनृतं वदति न मां समश्नाति न स्त्रियमुपैति नाऽस्य पल्पूलनेन वासः पल्पूलयन्ति । अथ याऽमावास्याऽऽगच्छति तस्या उपवसथेऽग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथाऽस्यैतदहर्निमित्रावरुणाभ्यां वत्सा अपाकृता भवन्ति । मैत्रावरुणं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति मैत्रावरुणीमामिक्षाम् । [आमिक्षायै मन्त्रामन्त्र इति ॥ मन्त्रवती स्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीकेति शालीकेः ॥] सा द्विहविरिष्टिः संतिष्ठते । वाजिनस्य काले वाजिनेन चरति । निधत्ते वासः । विसृजते व्रतम् । विसृष्टव्रत एतं पूर्वपक्षं भवति । अथ पौर्णमास्याऽगच्छति । उत्सीदति व्रतपतिः । यदेवोर्ध्वं व्रतपतेस्तेन प्रतिपद्यते । तदेतत्संवत्सरावगधं सोमसं स्थम् । [बौ० २६.२२—अथाऽस्मिन् दाक्षायणयज्ञे कुर्यादुपांशुयाजमिति ।]

इडादधः

बौधायनश्रौ० [१७.५२; २३.१७]—

अथेडादध इत्याचक्षते । [इडादधे चतुश्चक्र उपांशुयाजस्य करणं इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] समानं वाससंश्च व्रतपतेश्च । तथैन्द्रं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपत्यग्नीषोमीयमेकादशकपालमैन्द्रं सांनाय्यम् । सा त्रिहविरिष्टिः संतिष्ठते । अत्रैतदैन्द्रं सांनाय्यं समुपहृत्य भक्षयन्ति । तथाऽहतं वासः परिधायाऽपरपक्षं व्रतं चरति ।

आगच्छत्यमावास्या । तस्या उपवसथे यजते । तथा मैत्रावरुणं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपत्यैन्द्रमेकादशकपालं मैत्रावरुणीमामिक्षाम् । सा त्रिहविरिष्टिः संतिष्ठते । वाजिनस्य काले वाजिनेन चरति । निधत्ते वासः । विसृजते व्रतम् । विसृष्टव्रत एतं पूर्वपक्षं भवति । अथ पौर्णमास्या-गच्छति । उत्सीदति व्रतपतिः । यदेवोर्ध्वं व्रतपतेस्तेन प्रतिपद्यते । तदेतत्संवत्सरावगधः सोमसः स्थम् ॥

चतुश्चक्रः^१

बौधायनश्रौ० [१७.५३-५४]—

अथ चतुश्चक्रो भ्रातृव्यवतो यज्ञः । समानं वाससश्चैव व्रतपतेश्च । तथैवैन्द्रं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सरस्वत उपाः शुयाजमग्नीषोमीयमेकादशकपालमैन्द्रः सांनाय्यम् । सा चतुर्हविरिष्टिः संतिष्ठते । अत्रैतदैन्द्रः सांनाय्यः समुपहूय भक्षयन्ति । तथैवाऽहृतं वासः परिधायाऽपरपक्षं व्रतं चरति । आगच्छत्यमावास्या । नैवोपवसथे यजते । तथैव मैत्रावरुणं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातराग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सरस्वत्या उपाः शुयाजमैन्द्रमेकादशकपालं मैत्रावरुणीमामिक्षाम् । सा चतुर्हविरिष्टिः संतिष्ठते । वाजिनस्य काले वाजिनेन चरति । निधत्ते वासः । विसृजते व्रतम् । विसृष्टव्रत एतं पूर्वपक्षं भवति । अथ पौर्णमास्यागच्छति । उत्सीदति व्रतपतिः । यदेवोर्ध्वं व्रतपतेस्तेन प्रतिपद्यते । तदेतत्संवत्सरावगधः सोमसः स्थम् ।

स एष चतुश्चक्रो भ्रातृव्यवतो यज्ञः । स यथा ह वा इदमनश्चतुश्चक्रं व्यवञ्चान-मेति एवः ह वा एष एतेन यज्ञक्रतुनेष्ट्वा पाप्मानं भ्रातृव्यं व्यवञ्चान पति । स एष वसिष्ठ-यज्ञः केशियज्ञः सार्वसेनियज्ञः । वसिष्ठो ह यत्र सौदासानभिचचार एवः हैनानभिचचार । केशी ह यत्र खाण्डिकमभिचचार एवः हैनमभिचचार । सार्वसेनिर्ह यत्र भ्रातृव्यानभिचचार एवः हैनानभिचचार ॥

१. चतुश्चक्रविधिः ब्राह्मणेषु नोपलभ्यते । शौनकयज्ञः, मुन्ययनं, तुरायणम् इत्येतेषां शाङ्खायनब्राह्मणोक्तानां यागानां विधिः बौधायनश्रौतसूत्रे नोपलभ्यते ।

काम्या इष्टयः^१

तैत्रा [१.५.२]—यत् पुण्यं नक्षत्रम् । तद्वत्कुर्वीतोपव्युषम् । यदा वै सूर्य उदेति । अथ नक्षत्रं नैति । यावति तत्र सूर्यो गच्छेत् । यत्र जघन्यं पश्येत् । तावति कुर्वीत । यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते ॥

अग्निमुद्रासयिष्यन्

तैसं [२.२.५]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैश्वानरं द्वादशकपालमग्निमुद्रासयिष्यन्० ।
[४.४.४; १.५.११]—

अग्निर्मूर्धा दिवः.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च.... ॥ वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान.... ॥

कासं [१०.४]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेदग्निमुद्रासयिष्यन्० ।

यद्यग्निरगृहान् दहति

तैसं [२.२.२]—अभि वा एष एतस्य गृहानुच्यति यस्य गृहान् दहत्यग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्० ।

[१.३.१४]—

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्स सौभगानि दधिरे पावके ॥

मैसं [१.८.९]—अग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याऽऽहिताग्नेः सतोऽग्नि-
गृहान् दहेत्० ।

[४.१०.२]—अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः.... ॥ नक्तोषासा.... ॥

अधिराज्यम्

दृश्यतां 'राज्यं स्वाराज्यमधिराज्यं च'

अध्वरकल्पा

दृश्यतां 'भ्रातृव्यो यजमानः' 'भ्रातृव्यः सोमेन यजेत'

अनन्नमत्स्यन्

मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेदनन्नमत्स्यन्० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥
त्रीण्यायूषि.... ॥

अनन्नमद्यात्

मैसं [२.१.२]—स यदाऽनन्नमद्याद्याऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्०
सीसं दक्षिणा कृष्णं वा वासः० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥
त्रीण्यायूषि.... ॥

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्योऽनन्नमद्याद्यो वा
जिघत्सेत्० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्रे त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।

वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन् स्पृहयाय्याणि ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं ध्रुवनानामभिथ्रीः ।

इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥

पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यां पृष्ठो विश्वा ओषधीराविवेश ।

वैश्वानरस्सहसा पृष्ठो अग्निस्स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥

अस्माकमग्रे मधवत्सु धारयाऽनामि क्षत्रमजरै सुवीरम् ।

वयं जयेम शतिनि सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्रे तवोतिभिः ॥

अनुवर्त्म

दृश्यतां 'सजातकामः' (कासं ११.१)

अन्नपतिः स्याम्

तैसं [२.२.४]—अग्नयेऽन्नपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नपतिः
स्यामिति० ।

[१.३.१४]—उक्षान्नाय वशान्नाय.... ॥ वद्वा हि सन्नो अस्यन्नसद्वा.... ॥

कासं [१०.६]—अग्नयेऽन्नपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नपतिः स्यामिति०
संवत्सरं परिनिर्वपेत्० ॥

अन्नम्

तैसं [२.२.७]—इन्द्रायाऽर्कवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदन्नकामः० ।

[१.६.१२]—

इन्द्रमिद्राथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतुद्वयं शमिव येमिरे ॥

मैसं [४.४.९]—यदेता दिशामवेष्टयः० अन्नकामो यजेत० यदि ब्राह्मणो यजेत
बार्हस्पत्यं मध्ये निधायाऽऽहुतिमाहुतिं हुत्वाऽभिघारयेत् । यदि वैश्यो वैश्वदेवम् । यदि
राजन्य ऐन्द्रम्० ॥

[२.६.१३]—आग्नेयोऽष्टाकपालो हिरण्यं दक्षिणा । बार्हस्पत्यश्चरुः शितिपृष्ठो
दक्षिणा । ऐन्द्र एकादशकपाल ऋषभो दक्षिणा । वैश्वदेवश्चरुः पिशङ्गो दक्षिणा । मैत्रावरु-
ण्यामिक्षा वशा दक्षिणा ॥

कासं [१०.८]—इन्द्रायाऽर्कवत एकादशकपालं निर्वपेदन्नकामः० ।

[८.१६]—इन्द्रमिद्राथिनो बृहत्.... ॥ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं.... ॥

अन्नवान् स्याम्

तैसं [२.२.४]—अग्नयेऽन्नवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्न-
वान्स्यामिति० ।

[१.३.१४]—

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाऽग्नये ॥

वद्वा हि सूनो अस्यन्नसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाऽज्माऽन्नम् ।

स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेप्यन्तः ॥

अन्नवानन्नादोऽन्नपतिः स्याम्

मैसं [२.१.१०]—अग्नयेऽन्नवतेऽन्नादायाऽन्नपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः काम-
येताऽन्नवानन्नादोऽन्नपतिः स्यामिति० ।

[४.११.४]—

उक्षान्नाय वशान्नाय.... ॥

वातोपधूत इषितो वशं अनु त्रिषु यदन्ना वेविषद्वितिउसे ।

आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक् शर्वाऽस्यग्रे अजराणि धक्षतः ॥

कासं [१०.६]—अग्नयेऽनवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽनवान् स्यामिति०॥

अन्नादः स्याम्

तैसं [२.२.४]—अग्नयेऽन्नादाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नादः स्यामिति० ।

[१.३.१४]—उक्षान्नाय वशान्नाय.... ॥ वद्वा हि स्वनो अस्यन्नसद्वा.... ॥

तैसं [२.३.६]—यं कामयेताऽन्नादः स्यादिति तस्मा एतं त्रिधातुं निर्वपेदिन्द्राय राज्ञे पुरोडाशमेकादशकपालमिन्द्रायाऽधिराजायेन्द्राय स्वराज्ञे० उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयति० त्रयः पुरोडाशा भवन्ति० उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवति० सर्वेषामभिगमयन्नव द्यति० व्यत्यासमन्वाह० ।

[२.४.१४]—

प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्राऽसि राजोतोदीच्यां वृत्रहन् वृत्रहाऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एधि हव्यः ॥
इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयाति ।
विश्वा हि भूयाः पृतना अभिष्टीरुपसद्यो नमस्यो यथाऽसत् ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥

मैसं [२.१.११]—

अग्नयेमष्टाकपालं निर्वपेद्यो राष्ट्रे स्पधेत् यो वा कामयेताऽन्नादः स्यादिति (स्यामिति?)० तां देवा एतेन यजुषाऽवृञ्जत ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूः इति० सैषा गायत्रीष्टिः । अथो आहू राष्ट्रस्य सध्वर्ग इति । (हौत्रमन्त्राः 'राष्ट्रे स्पधेत्' मैसं २.१.११; ४.११.६ अत्र द्रष्टव्याः)

कासं [१०.६]—अग्नयेऽन्नादायाऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नादः स्यामिति०॥

अपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा

तैसं [२.२.८]—इन्द्राय सुत्राम्णे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा० ।

[१.७.१३]—

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाꣳ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
तस्य वयꣳ सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाꣳ इन्द्रो अस्मे आराचिद् द्वेषः सनुतयुयोतु ॥

तैसं [२.३.१]—

आदित्येभ्यो धारयद्ब्रह्मचरं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा० अदितेऽनु
मन्यस्वेत्यपरुध्यमानोऽस्य पदमा ददीत० सत्याशीरित्याह० इह मन इत्याह० उप प्रेत मरुतः
सुदानव एना विस्पतिनाऽभ्यमु५ राजानमित्याह० यः परस्ताद् ग्राम्यवादी स्यात्तस्य गृहाङ्गी-
हीनाहरेत् । शुक्ला५श्च कृष्णा५श्च वि चिनुयात् । ये शुक्लाः स्युस्तमादित्यं चरुं निर्वपेत्०
ये कृष्णाः स्युस्तं वारुणं चरुं निर्वपेत्० यदि नाऽवगच्छेदिममहमादित्येभ्यो भागं निर्वपाम्या-
ऽमुष्मादमुष्यै विशोऽवगन्तोरिति निर्वपेत्० यदि नाऽवगच्छेदाश्वत्थान् मयूखान् सप्त मध्यमेषाया-
मुपहन्त्यादिमहमादित्यान् बध्नाम्याऽमुष्मादमुष्यै विशोऽवगन्तोरिति० यदि नाऽवगच्छेदेत-
मेवाऽऽदित्यं चरुं निर्वपेदिध्मेऽपि मयूखान्सं नह्येदनपरुध्यमेवाऽव गच्छति० आश्वत्या भवन्ति०
सप्त भवन्ति० ।

[२.१.११]—

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्री५रुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥
त्यान्नु क्षत्रिया५ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृडीका५ अभिष्टये ॥
न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥
आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश५स मा न आयुः प्र मोषीः ॥

मैसं [२.२.१]—

आदित्या भाग० वः करिष्याम्यमुमामुष्यायणमवगमयत इति ब्रूयाद्भविर्निर्वप्यन् ।
स एतमादित्यं घृते चरुं निर्वपेत्० सप्ताऽऽश्वत्या मयूखा अन्तर्वेदि शयीर०स्तान्स०स्थिते
रथवाहनस्य मध्यमेषायामतिहन्त्यात् इदमहमादित्यान् बध्नाम्याऽमुष्याऽवगमः इति० यदि सप्तसु
नाऽवगच्छेदिध्मे तानपि कृत्वैतदेव हविर्निर्वपेत्० यद्येव सप्तसु० यद्येकतयीषु द्वयीषु वाऽव-
गच्छेदपरोधुका एन० स्युः । अथ यत्सर्वास्वगच्छति तथा हाऽनपरोध्योऽवगच्छति । स यदा-

ऽवगच्छेदथाऽऽदित्येभ्यो धारयद्ब्रह्मो घृते चरं निर्वपेत्० अदितेऽनुमन्यस्व, सत्याशीः, इह मनः इति निरुद्धस्य राज्ञः पदमाददीत । तद्यः पुरस्ताद् ग्राम्यवादीव स्यात्तस्य सभाया अभिवातं परीत्य विष्वक्स्येयुः । श्रेत मरुतः स्वतवस एना विशपत्याऽमु राजानमभि इति तस्य गृहाद्वीहीनाहरेयुः । तांस्त्रेधा विचिनुयात् । ये कृष्णास्तान् कृष्णाजिन उपनह्य निदध्यात् । ये शुक्लास्तमादित्यं घृते चरं निर्वपेत्० अथ येभ्योऽधि विचिनुयात् तानुदङ् परेत्य वल्मीक-वपामुद्रुज्य जुहुयात् यदद्य ते घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धानां प्रमोचनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाऽहं परिवेद विश्वतः इति० तद्येऽमी कृष्णा व्रीहयस्तं वारुणं घृते चरं निर्वपेत्० ।

[४.१२.१]—

एह्यु पु ब्रवाणि तेऽग्रे इत्येतरा गिरः । एभिर्वर्धासा इन्दुभिः ॥
इमं यज्ञमिदं वचः.... ॥
त्यान्नु क्षत्रियं अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृडीकं अभिष्टये ॥
येभ्यो माता मधुमत् पिबते पयः पीयूषं द्यौरदितिर्द्विर्बर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान् स्वप्नसस्तं आदित्यं अनुमदात् स्वस्तये ॥
धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्यया शुचयो धारपूताः ।
अवृजिना अनवद्या अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥

दृश्यतां 'बुभूषन्' (कासं ११.६)

अपरुद्धोऽवगमकामः

कासं [१०.८]—इन्द्रायाऽर्कवत एकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धोऽवगमकामः०
वशा दक्षिणा० ।

[८.१६]—इन्द्रमिद्राथिनो बृहत्.... ॥ एवेदिन्द्रे वृषणी वज्रबाहुं.... ॥

अपरुद्धो वाऽपरुत्स्यमानो वा

कासं [१०.९]—इन्द्राय सुत्राम्ण एकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुत्स्य-
मानो वा० ।

[८.१६]—

इन्द्रः सुत्रामा स्ववी अवोभिस्सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
वाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयस्स्याम ॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववी इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषस्तनुतर्युयोतु ॥

कासं [११.६]—आदित्येभ्यो धारयद्ब्रह्मश्चरुं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुरुत्स्य-
मानो वा० ।

[११.१२]—

महि वो महतामवो वरुण मित्राऽर्यमन् । अवीस्यावृणीमहे ॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नं.... ॥

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥

अपरुध्यमानः

दृश्यताम् ' अपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा '

अपरुरुत्स्यमानः

दृश्यताम् ' अपरुद्धो वाऽपरुरुत्स्यमानो वा '

अभयम्

मैसं [२.२.१०]—इन्द्रायाऽभिमातिषाहा एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत
विषहेयाऽभयं मे स्यादिति० ।

[४.१२.३]—

पुरुष्टुतस्य नामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीसहः ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राऽभिमातिषाहो ॥

अभिचरन्

तैसं [२.२.९]—आग्नवैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन् । सरस्वत्याज्यभागा
स्याद्वाहस्पत्यश्चरुः० प्रति वै परस्तादभिचरन्तमभि चरन्ति । द्वेदे पुरोनुवाक्ये कुर्यादति-
प्रयुक्त्यै० ।

[१.८.२२]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं वीतं घृतस्य गुह्यानि नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना प्रति वां जिह्वां घृतमा चरण्येत् ॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।
 दमेदमे सुष्टुतीर्वावृधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुचरण्येत् ॥
 प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीश्वरी । धीनामवित्र्यवतु ॥
 आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
 हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥
 बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥
 एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
 बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
 बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति ऋतुमज्जनेषु ।
 यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥
 तैसं [२.२.२]—अग्नये रुद्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन्० ।

[१.३.१४]—

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वयं शर्धो मारुतं पृष्ठ ईशिषे ।
 त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥
 आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
 अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥
 तैसं [२.२.१०]—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेदभिचरन्० ।

[१.८.२२]—सोमारुद्रा वि बृहतं.... ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥

तैसं [२.४.११-१२]—त्रैधातवीयेन यजेताऽभिचरन्० ।

दृश्यतां ' त्रैधातवीयेष्टिः '

मैसं [२.१.७]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्भिचर्यमाणो वा ।

सरस्वतीमप्याज्यस्य यजेत्० ।

[४.११.२]—

अग्नाविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
 अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।
 दमे दमे सुष्टुती वावृधाना नु वां जिह्वा घृतमाचरण्यत् ॥
 पावका नः सरस्वती.... ॥
 सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माऽपस्फरीः पयसा मा ना आधक् ।
 जुषस्व नः सख्या वेद्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरण्यानि गन्म ॥
 आ नो दिवः.... ॥

मैसं [२.१.९]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालमभिचरन् ।
उपरिष्ठादैन्द्रस्याऽवचेदधस्तान्मारुतस्य ० ।

[४.११.४]—आ तू न इन्द्र वृत्रहन्.... ॥ त्वं महं इन्द्र तुभ्यं.... ॥ मरुतो
यद्ध वो बलं.... ॥ ऋष्टयो वो मरुतो.... ॥

मैसं [२.१.९]—मारुतमेकविंशतिकपालं निर्वपेदभिचरन् ० तं बर्हिषदं कृत्वा
समया स्फ्येन विहन्यात् इदमहममुष्याऽऽमुष्यायणस्येन्द्र वज्रेण शिरश्छिनधि इति ० एना व्याघ्रं
परिषस्वजानाः सिंहं मृजन्ति महते धनाय । महिषं नः सुभ्वं तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते
द्वीपिनमप्स्वन्तः इति ० ।

[४.११.४]—मरुतो यद्ध वो दिवो.... ॥ या वः शर्म.... ॥

मैसं [२.१.६]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणामभिचरन् ० शरमयं
बर्हिर्भवति वैभीदक इधमः ० ।

[४.११.२]—

सोमारुद्रा विवृहत् विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्रा इह सु मृडतं नः ।
सुमुक्तमस्मान् ग्रसितानभीके प्रयच्छत वृषणा शंतमानि ॥

कासं [१०.१]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं
चरुमभिचरन् वाऽभिचर्यमाणो वा ० ।

[४.१६]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यानि नाम ।
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ॥
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।
दमे दमे सुष्टुत्या वावृधानाऽनु वां जिह्वा घृतमाचरण्यत् ॥
अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानी संगतानामुत्तमो विष्णुरासीत् ।
यजमानाय परिगृह्य देवान् दीक्षायेदी हविरागच्छतं नः ॥
इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादाऽवसं पर्णि ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥
इयी शुष्मेभिर्विसखा इवाऽरुजत् सानुः गिरीणां तविषेभिरुर्मिभिः ।
पारावतमीमवसे सुवृक्तिभिस्सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
 मन् बृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥
 बृहस्पतिस्समजयद्रस्रनि महो ब्रजान् गोमतो देव एषः ।
 अपः सिषासन् स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमकैः ॥

कासं [१०.६]—अग्नये रुद्रवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणामभिचरन्०
 सोऽग्नये सुरभिमेतेऽष्टाकपालं निरवपत् शुक्लानां व्रीहीणाम्० ।

[७.१६]—

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रे होतारं सत्ययजै रोदस्योः ।
 अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥
 कद्विष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
 परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवंः कदग्ने रुद्राय नृग्ने ॥
 अग्निर्होता निषसादाऽऽयजीयान्.... ॥ साध्वीमकर्देववीति नो.... ॥

कासं [१०.७]—अग्नये यविष्ठायाऽष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन् वाऽभिचर्य-
 माणो वा० ।

[७.१६]—

त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥
 तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
 आ भन्दिष्ठस्य सुमर्ति चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥

कासं [११.५]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणामभिचरन्० शरमयं
 बर्हिः० वैभीतक इध्मः० ॥

[१२.३]—अभिचरन् यजेत । न दक्षिणां दद्यात् ॥

दृश्यतां ' त्रैधातवीयेष्टिः ' (कासं १२.३-४), ' राजन्यायामिचरते '

अभिचर्यमाणः

तैसं [२.२.३]—अग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणः० ।

[१.३.१४]—

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥
 स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
 यः पावकः पुरुतमः पुरुणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥

तैसं [२.४.११-१२]—एतयैव (त्रैषातवीयेष्टया) यजेताऽभिचर्यमाणः० ।

‘ त्रैषातवीयेष्टिः ’ द्रष्टव्या

तैसं [२.२.९]—एतयैव यजेताऽभिचर्यमाणः० । (आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् सरस्वत्याज्यभागा स्याद्वाहस्पत्यश्चरुः)

[१.८.२२]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
प्र णो देवी सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो बृहतः.... ॥ बृहस्पते जुषस्व
नो.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्.... ॥

मैसं [२.१.७]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणः० ।

[४.११.२]—अग्नाविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥

मैसं [२.१.१०]—अग्नये यविष्ठायाऽष्टाकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणः० ।

[४.११.४]—

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्रे द्युमन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्रे अन्तिता ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि महत्ते अग्रे महि शर्म भद्रम् ॥

कासं [१०.१]—आग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेदभिचर्यमाणः० ।

[४.१६]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥

दृश्यताम् ‘ अभिचरन् ’ (मैसं २.१.७; कासं १०.१; १०.७)

अभिशस्तः

दृश्यतां ‘ मृगारेष्टिः ’ ‘ पवित्रेष्टिः ’

अभिशस्यमानः

तैसं [२.२.५]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्वाह्यं चरुं दधिक्राव्णे चरुमभि-
शस्यमानः० हिरण्यं दक्षिणा० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्याऽऽ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥
 क्रतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे ॥
 वैश्वानरस्य द० सनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
 उभा पितरा महयन्नजायताऽग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥
 पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यां पृष्ठो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
 वैश्वानरः सहसा पृष्ठो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥
 जातो यदग्रे भुवना व्यख्यः पशुं न गोपा इर्यः परिज्मा ।
 वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
 त्वमग्रे शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
 त्वं देवा० अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥
 अस्माकमग्रे मघवत्सु धारयाऽनामि क्षत्रमजर० सुवीर्यम् ।
 वयं जयेम शतिन० सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्रे तवोतिभिः ॥
 वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हिकं भुवनानामभिथ्रीः ।
 इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण^१ ॥
 अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
 क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेना०सि शिश्रथः कृतानि ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽधमं वि मध्यम० श्रथाय ।
 अथा वयमादित्य व्रते तवाऽनागसो अदितये स्याम ॥
 दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
 सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयू०षि तारिषत् ॥
 आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततान ।
 सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचा०सि ॥

तैसं [२.३.७]—एतयैव यजेताऽभिशास्यमानः । (यदिन्द्राय राथन्तराय निर्वपति०

यदिन्द्राय बार्हताय० यदिन्द्राय वैरूपाय० यदिन्द्राय वैराजाय० यदिन्द्राय शाकराय० यदिन्द्राय
 रैवताय० उत्तानेषु कपाले०वधि श्रयति० द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति० समन्तं पर्यवद्यति०
 व्यत्यासमन्वाह० अश्व ऋषभो वृष्णिर्बस्तः सा दक्षिणा०)

[२.४.१४]—

अभि त्वा शूर नोनुमो....॥ त्वामिद्धि हवामहे....॥ यद् द्याव इन्द्र ते....॥
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा....॥ रेवतीर्नः सधमाद....॥

दृश्यतां 'सर्वपृष्ठेष्टिः,' 'मृगारेष्टिः,' 'पवित्रेष्टिः'

मैसं [२.१.३]—

अग्नये सुरभिमतोऽष्टाकपालं निर्वपेदभिशस्यमानं याजयेत् । रथप्रोतं वै दार्भ्यमभ्यशंसन् । तं कौलकावती अब्रूतां तथा त्वा याजयिष्यावो यथा तेऽन्नमत्स्यन्ति । यत्र ग्राम्यस्य पशोर्नोपशृणवस्तद्गृह । यस्त्वा कश्चोपायतूष्णीमेवाऽऽस्वेति । तं ह स्म वै व्याघ्रा उपग्रायं तूष्णीमेवाऽपक्रामन्ति । तौ वै तत्रैव श्वो भूते यज्ञायुधैरन्वेत्याऽग्निं मथित्वाऽग्नये सुरभिमतोऽष्टाकपालं निरवपताम् । ततो वा एनं न पर्यवृजन् । अग्नये पवमानायाऽष्टाकपालं निर्वपेदधिक्राव्णा एकादशकपालमग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं पुनरेत्य गृहेषु ॥

[४.११.१]—

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ क्रतावा धर्ता कृष्टीनामृत मध्य इद्धः ॥
साध्वीमकर्देववीति नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्यम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूर्ति नो अद्य ॥

मैसं [२.३.७]—अभिशस्यमानं याजयेत् ।

दृश्यतां 'भूतिः' (मैसं २.३.७)

कासं [१०.६]—अग्नये सुरभिमतोऽष्टाकपालं निर्वपेद्यमजग्निवीसमभिरीसेयुः० ।

[७.१६]—अग्निर्होता निषसादाऽऽयजीयान्....॥ साध्वीमकर्देववीति नो....॥

कासं [१२.५]—एतया यजेत यमजग्निवीसमभिरीसेयुः० ।

दृश्यतां 'बुभूषन्' (कासं १२.५)

अलं श्रियै सन् सदृश् समानैः स्यात्

तैसं [२.२.८]—योऽलं श्रियै सन्तसदृश् समानैः स्यात्तस्मा एतमैन्द्रमेकादश-
कपालं निर्वपेत्० रेवती पुरोनुवाक्या भवति शान्त्या अग्रदाहाय । शक्ती याज्या० ।

[१.७.१३]—

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नमन्तामन्यकेषाम् । ज्याका अधि धन्वसु ॥

अविं प्रतिगृह्य

तैसं [२.२.६]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदविं प्रतिगृह्य० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ क्रतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य
द५सनाभ्यो.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ जातो यदग्रे भुवना
व्यख्यः.... ॥ त्वमग्रे शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्रे मघवत्सु.... ॥
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

अश्वं प्रतिगृह्णीयात्

तैसं [२.३.१२]—योऽश्वं प्रतिगृह्णाति यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारु-
णान् चतुष्कपालान्निर्वपेत्० एकमतिरिक्तं निर्वपेत्० यद्यपरं प्रतिग्राही स्यात्सौर्यमेककपालमनु
निर्वपेत्० अपोऽवभृथमवैति० अपोनप्रीयं चरुं पुनरेत्य निर्वपेत्० ।

[२.५.१२]—

इमं मे वरुण श्रुधी.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ उदु त्यं
जातवेदसं.... ॥ चित्रं देवानामुदगाद्.... ॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्वानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरेण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचि५ शुचयो दीदिवा५समपां नपातं परि तस्थुरापः ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेण शिकना रेवदग्निर्दादायाऽनिभ्यो घृतनिर्णिगप्सु ॥

मैसं [२.३.३]—

अथैषोऽश्वः प्रतिगृह्यते० यो वा अश्वं प्रतिगृह्णाति वरुण५ स प्रसीदति । तदश्व-
हविषा यष्टव्यं निर्वरुणत्वाय । चतुष्कपाला भवन्ति० यावन्तोऽश्वास्तावन्तः पुरोडाशा भवन्ति०
एकोऽधिभवति० यः पुनः प्रतिग्राहीष्यन्त्यान् स यजेत० अथ यः पुनः प्रतिग्राहीष्य-
न्त्यात्तस्य वारुणा नेमाः स्युः सौर्यवारुणा नेमाः० एकविंशतिः सामिघेनीर्भवन्ति० यद्देशो-
ऽपोनप्रीयश्चरुमवति० यस्ते राजन् वरुण गायत्रच्छन्दाः पाशो ब्रह्मन् प्रतिष्ठितस्तं त
एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुण त्रिष्टुच्छन्दाः पाशः क्षत्रे प्रति-
ष्ठितस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुण जगच्छन्दाः पाशो विशि

प्रतिष्ठितस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुणाऽनुष्टुप्छन्दाः पाशो दिक्षु प्रतिष्ठितस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा० अपोनप्रीयाम्यां द्वाभ्यां जुहोति० ॥

[४.१२.४]—

कुत्राचिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥
स० यदिषो वनामहे स० हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युमन्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमाददे ॥
यदद्य सूर्यं ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्राऽदिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहञ्जुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥
उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥
समन्या यन्त्युपयन्ति..... ॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्वानामूर्ध्वो विद्युत० वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमान० वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यद्हीः ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्त्यज्यमानाः परियन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्कभी रेवदग्निर्दीदायाऽनिष्मां घृतनिर्णिगप्सु ॥

कासं [१२.६]—

योऽश्वं प्रतिगृह्णीयात्स एतेन वारुणेन हविषा यजेत निर्वरुणत्वाय । चतुष्कपालो भवति० यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावत्तुष्कपालान्निर्वपेत्० एकोऽधिभवति० य एतयेष्ट्वाऽपरमश्वं प्रतिगृह्णाति यद्यपरमश्वं प्रतिग्रह्णीष्यन् स्यात् सौर्यवारुणां कुर्यात्० अपानप्रीयश्चरूपि-भवति० एकविंशतिस्सामिधेन्यो भवन्ति० यस्ते राजन् वरुण गायत्रच्छन्दाः पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥ यस्ते राजन्वरुण त्रिष्टुप्छन्दाः पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुण जगच्छन्दाः पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुणाऽनुष्टुप्छन्दाः पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा इति० अपानप्रीये द्वे अपिभवतः० षडेतानि जुहोति० ॥

अस्यां मे जनतायामृध्येत

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्पौष्णं चरुं क्षेत्रस्य पतये चरुं यः

कामयेताऽस्यां मे जनतायामृध्येत० ।

[४.१५]—

गोमद्विरण्यवद्वसु.... ॥ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः.... ॥ पूषा गा
अन्वेतु नः.... ॥ शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यत्.... ॥
क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्च पोषयित्वा स नो मृडातीदृशे ॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पथो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्च्युतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥

अहूरणमवेयात्

कासं [१०.९]—इन्द्रायाऽहोमुच एकादशकपालं निर्वपेद्य आत्मना वा गृहै-
र्वाऽहूरणमवेयात्० ।

[८.१६]—

अहोमुचे प्रभरेमा मनीषां भूयिष्ठदाने सुमतिमावृणानाः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं जुषस्व सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमहः ।
अहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥

आनुजावरः

तैसं [२.३.४]—यो राजन्य आनुजावरः स्यात्तस्मा एतमैन्द्रमानुषूकमेकादशकपालं
निर्वपेत्० बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवतः० ।

[२.३.१४]—

बुध्नादग्रमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृक् हितान्यैरत् ।
रुजद्रोधांसि कृत्रिमाण्येषांसि सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥
बुध्नादग्रेण वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथाऽसृजत् पथिभिर्दीर्घियाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥

तैसं [२.३.४]—यो ब्राह्मण आनुजावरः स्यात्तस्मा एतं बार्हस्पत्यमानुषूकं चरुं
निर्वपेत्० बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवतः० ।

[२.३.१४]—

प्र यो जज्ञे विद्वांस्य बन्धुं विश्वानि देवो जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचादुच्चा स्वधयाऽभि प्र तस्थौ ॥

महान्मही अस्तेमायद्वि जातो द्या५ सन्न पार्थिवं च रजः ।

स बुध्नादाष्ट जनुषाऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता यस्य सम्राट् ॥

कैसं [११.४]—बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेदानुषूकानां व्रीहीणामानुजावरः० पुनः प्रवृद्धं बर्हिर्भवति । पुनः प्ररूढ इध्मः० ।

[१०.१३]—प्र यो जज्ञे विद्वी अस्य बन्धुं विश्वा देवानां.... ॥ महान्मही.... दां द्विता.... तस्य सम्राट् ॥

आमयावी

कैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् वारुणं यवमयं चरुमामयाविनं याजयेत्० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥ व्रीण्यायूषि.... ॥

कैसं [२.१.४]—आग्निवारुणं चरुं निर्वपेत् समान्तमभिद्रुह्याऽऽमयावी वा० ।

[४.११.२]—त्वं नो अग्ने.... ॥ स त्वं नो अग्ने.... ॥

कैसं [२.१.६]—सौमारौद्रीमामिक्षां निर्वपेदामयाविनं याजयेत्० अपिनद्धाक्षो होता स्यात् । तमरणं पराणीय विक्शापयेत् । तस्मा अनड्वाहं दद्यात् । तं व्रीत । तस्याऽश्रीयात्० ।

[४.११.२]—सोमारुद्रा विवृहत्.... ॥ तिग्मायुधौ तिग्महेती.... ॥

कैसं [२.२.१०]—इन्द्रायाऽहोमुचा एकादशकपालं निर्वपेदामयाविनं याजयेत्० ।

[४.१२.३]—

विवेष यन्मा विषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमहः ।

अहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥

अहोमुचे प्रभरेमा मनीषां भूयिष्ठदाने सुमतिमावृणानः ।

इदमिन्द्र प्रति हव्यं जुषस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥

कैसं [२.३.१]—

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेन्मैत्रावरुणीं पयस्यामामयाविनं याजयेत्० मैत्रावरुणी ब्राह्मणस्य स्यात्० ऐन्द्रवारुणी राजन्यस्य स्यात्० आग्निवारुणी वैश्यस्य स्यात्० यद् व्यूहति० अथ यत् पुनः समुह्याऽग्नये समवचति० भूतिकामं याजयेत्० यद् व्यूहति० अथ यत्पुनः समूहति० ग्रामकामं याजयेत्० यद् व्यूहति० अथ यत्पुनः समूहति०

एककपालान् जुहोति० यन्नाना जुहुयाद्विकर्षः स यज्ञस्य । अग्नौ सर्वे होतव्याः समृद्धयै ।
 या वां मित्रावरुणा ओजस्या तनूस्तया वा० विधेम तयेमममुं मुञ्चतम०हसः ॥
 या वां मित्रावरुणौ सहस्या तनूस्तया वा० विधेम तयेमममुं मुञ्चतम०हसः ॥
 या वां मित्रावरुणौ यातव्या तनूस्तया वा० विधेम तयेमममुं मुञ्चतम०हसः ॥
 या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूस्तया वा० विधेम तयेमममुं मुञ्चतम०हसः ॥
 या वां मित्रावरुणा ओजस्या सहस्या यातव्या रक्षस्या तनूस्तया वामविधाम
 तयेमममुममौक्तम०हसः ॥ यस्ते राजन् वरुण देवेषु पाशस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै
 ते स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुणाऽन्ने पाशस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा ॥
 यस्ते राजन् वरुण द्विपात्सु चतुष्पात्सु पशुषु पाशस्तं त एतेनाऽवयजे तस्मै ते स्वाहा ॥
 यस्ते राजन् वरुणौषधीषु वनस्पतिष्वप्सु पृथिव्यां दिक्षु पाशस्तं त एतेनाऽवयजे
 तस्मै ते स्वाहा ॥

[४.१२.४]—

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यल्लतम् ।

दीर्घिप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥

सम्राडन्यः स्वराडन्य उच्यते वां महान्ता इन्द्रावरुणा महावस्र ।

विश्वे देवासः परमे व्योमनि स० वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥

मैसं [२.३.५]—

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुं पूर्वेद्युरामयाविन०
 याजयेत्० स अश्वो भूत आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्सौग्यं पयसि चरुमादित्यं घृते चरु० वारुणं
 चरु० यवमयमियन्तम् । अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालमामयाविन० याजयेत्० पञ्चभिर्जुहोति०
 सर्व ऋत्विजः पर्याहुः० ब्रह्मणो हस्तमालभ्य पर्याहुः० हिरण्यादधि घृतं निष्पाययन्ति० आग्ने-
 य्याऽऽबध्नाति० दश देयाः० अश्वो देयो वासो देय० हिरण्यं देयं गौर्देयो वरो देयो
 बहु देयम्० ॥

[२.३.४]—

अग्नेरायुरसि तेनाऽस्मा अमुष्मा आयुर्देहीन्द्रस्य प्राणोऽसि प्राणं देह्यमुष्मै
 यस्य ते प्राणः स्वाहा ॥ पितृणां प्राणोऽसि प्राणं दत्ताऽमुष्मै येषां
 वः प्राणः स्वाहा ॥ विश्वेषां देवानां प्राणोऽसि प्राणं दत्ताऽमुष्मै येषां
 वः प्राणः स्वाहा ॥ बृहस्पतेः प्राणोऽसि प्राणं देह्यमुष्मै यस्य ते प्राणः
 स्वाहा ॥ प्रजापतेः प्राणोऽसि प्राणं देह्यमुष्मै यस्य ते प्राणः स्वाहा ॥

यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवद्यदसर्पत्तत्सर्पिः । यदघ्नियत तदघृतम् ॥
घृतस्य पन्थाममृतस्य नाभिमिन्द्रेण दत्तं प्रयतं मरुद्भिः ।
तच्चा विष्णुरन्वपश्यत्तच्चेडा गव्यैरयत् ॥
पावमानस्य त्वा स्तोमेन गायत्रस्य वर्तन्योपाशोस्त्वा वीर्येणोत्सृजे ॥
बृहता त्वा रथन्तरेण त्रैष्टुभ्या वर्तन्या शुक्रस्य त्वा वीर्येणोद्धरे ॥ अग्नेष्ट्वा
मात्रया जागत्या वर्तन्या देवस्त्वा सवितोन्नयतु जीवात्त्वै जीवनस्यायै ॥
इदं वर्चो अग्निना दत्तमागान्महि राधः सह ओजो बलं यत् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय प्रतिगृभ्णामि महत इन्द्रियाय ॥
इममग्ना आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण सोम राजन् ।
मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यल्ल विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥
अग्निरायुस्तस्य मनुष्या आयुष्कृतस्तेनाऽऽयुषाऽऽयुष्मानेधि ॥ ब्रह्माऽऽ-
युस्तस्य ब्राह्मणा आयुष्कृतस्तेनाऽऽयुषाऽऽयुष्मानेधि ॥ यज्ञ आयुस्तस्य
दक्षिणा आयुष्कृतस्तेनाऽऽयुषाऽऽयुष्मानेधि ॥ अमृतमायुस्तस्य देवा
आयुष्कृतस्तेनाऽऽयुषाऽऽयुष्मानेधि ॥ अश्विनोः प्राणोऽसि तौ ते प्राणं
दत्तां तेन जीव ॥ मित्रावरुणयोः प्राणोऽसि तौ ते प्राणं दत्तां तेन
जीव ॥ बृहस्पतेः प्राणोऽसि स ते प्राणं ददातु तेन जीव ॥ प्रजापतेः
परमेष्ठिनः प्राणोऽसि स ते प्राणं ददातु तेन जीव ॥

[४.१२.४]—

अग्ना आयूषि पवसे.... ॥
आयुर्दा देव जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पिबन्नमृतं चारु गव्यं पितेव पुत्रं जरसे म एमम् ॥
गयस्फानो अमीवहा.... ॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥
सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसं.... ॥ महीमू षु मातरं सुव्रतानां.... ॥ इमं
मे वरुण श्रुधी हवं.... ॥ तच्चा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ वैश्वानरो
न ऊत्या.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥

मैस [४.३.५-६]—

छन्दांसि वै देविकाः० पृष्ठौही दक्षिणा० या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा

सा राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुङ्कुः । चन्द्रमा एव धाता०
आमयाविन० याजयेद्वातारं मध्यतः कुर्यात्० पशुरप्यालभ्यः शान्त्या अनिर्माग्य । एते वै
पशवो यद् व्रीहयश्च यवाश्च । यद् व्रीहिमयः पुरोडाशो भवति तेनैव पशुरालभ्यते शान्त्या अनि-
र्माग्य० यासु स्थालीषु सोमाः स्युस्ते चरवः स्युः० ।

[४.१२.६]—

अन्वद्य नो अनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ राकामह० सुहवा०
सुष्टुती हुवे.... ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो.... ॥ सिनीवालि
पृथुष्टुके.... ॥ या सुपाणिः स्वङ्गुरिः.... ॥ कुहूमह० सुवृत्त० विन्नना-
पसं.... ॥ कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी.... ॥ धाता दधातु नो रयिं.... ॥
धाता ददातु दाशुषे.... ॥

कासं [१०.४]—वारुणं यवमयं चरुं निर्वपेदग्नये वैश्वानराय द्वादशकपाल-
मामयावी वरुणगृहीतो वा० यवमयो भवति० प्रादेशमात्रो भवति० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्रे.... ॥ ऋतावानं वैश्वा-
नरमृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु.... ॥ इमं मे वरुण शुधी.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा
वन्दमानं.... ॥

कासं [१०.५]—अग्नये रक्षोग्रेऽष्टाकपालं निर्वपेदामयावी० अमावस्यां रात्रीं
निशि यजेत० परिश्रिते यजेत० वामदेवस्यैतत्पञ्चदशं राक्षोग्रं सामिघेन्यो भवन्ति० स वामदेवः०
स एतत्सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीमिति० ।

[६.११]—

कृणुष्व पाजः.... ॥ स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ.... ॥ सेदग्ने अस्तु
सुभगस्सुदानुं.... ॥ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्.... ॥ इह त्वा भूर्या-
चरेदुप.... ॥ यस्त्वा स्वश्वस्सुहिरण्यो.... ॥ महो रुजामि बन्धुता
वचोभिं.... ॥ अस्वमजस्तरणयस्सुशेवा.... ॥ ये पायवो मामतेयं ते
अग्ने.... ॥ त्वया वयं सधन्यस्त्वोताः.... ॥ अया ते अग्ने समिधा
विधेम.... ॥

कासं [१०.९]—इन्द्रायाऽहोमुच एकादशकपालं निर्वपेदामयावी० ।

[११.५]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् पयस्यामयाविनः० यो होता भवति० अनङ्-
वाहं तस्मै दद्यात् हन्यात्तस्याऽश्नीयात् । सैव तत्र प्रायश्चित्तिः० ।

कासं [११.७-८]—

आग्रावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुं पूर्वंबुरेतया यक्ष्य-
माणः० आग्नेयमष्टाकपालं श्रो निर्वपेत्सौग्यं चरुमदित्यै चरुं वारुणं यवमयं चरुमग्नये वैश्वानराय
द्वादशकपालमामयावी० यवमयो भवति । प्रादेशमात्रो भवति० अग्नेरायुरसीति० हिरण्यं घृते-
ऽवदधाति० एतद्देवत्या दिशः । यथादेवतमेवैनं दिग्भ्योऽधिसमीरयति । पञ्चैतानि जुहोति० सर्व
ऋत्विजः पर्याहुः० ब्रह्मणो हस्तमनु पर्याहुः० पावमानेन त्वा स्तोमेनेति० देवा आयुष्मन्त
इति प्रयच्छति० तत्पिबति० इममग्न आयुषे वर्चसे कृधीति हिरण्यमाबध्नाति० ।

अग्नेरायुरसि तस्य ते मनुष्या आयुष्कृतस्तेनाऽस्मा अमुष्मा आयुर्धेहि ॥
इन्द्रस्य प्राणस्स ते प्राणं ददातु यस्य प्राणस्तस्मै ते स्वाहा ॥ पितृणां प्राणस्ते
ते प्राणं ददतु येषां प्राणस्तेभ्यो वस्स्वाहा ॥ मरुतां प्राणस्ते ते प्राणं ददतु येषां
प्राणस्तेभ्यो वस्स्वाहा ॥ विश्वेषां देवानां प्राणस्ते ते प्राणं ददतु येषां प्राणस्तेभ्यो
वस्स्वाहा ॥ प्रजापतेः परमेष्ठिनः प्राणस्स ते प्राणं ददातु ययोः प्राणस्ताभ्यां वी
स्वाहा ॥ यदसर्पस्तत्सर्पिर्भवो यन्नवमैस्तन्नवनीतमभवो यदग्नियथास्तद् घृतमभवः ॥

घृतस्य धाराममृतस्य पन्थामिन्द्रेण दत्तं प्रयतं मरुद्भिः ।

तत्त्वा विष्णुरन्वपश्यत्तत्त्वेडा गन्धैरयत् ॥

पावमानेन त्वा स्तोमेन गायत्र्या वर्तन्योपीशोर्वीर्येणोद्धराम्यसौ ॥ बृहता
त्वा रथन्तरेण त्रिष्टुभा वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येणोत्सृजाम्यसौ ॥ अग्नेस्त्वा मात्रया
जगत्या वर्तन्या देवस्त्वा सवितोन्नयतु जीवातवे जीवनस्याया असौ ॥ देवा आयुष्म-
न्तस्तेऽमृतेनाऽऽयुष्मन्तस्तेषामयमायुषाऽऽयुष्मानस्त्वसौ ॥ ब्रह्माऽऽयुष्मत्तद् ब्राह्मणैरायु-
ष्मत्तस्याऽयमायुषाऽऽयुष्मानस्त्वसौ ॥ अग्निरायुष्मान्स वनस्पतिभिरायुष्मीस्तस्याऽय-
मायुषाऽऽयुष्मानस्त्वसौ ॥ यज्ञ आयुष्मान्स दक्षिणाभिरायुष्मीस्तस्याऽयमायुषाऽऽ-
युष्मानस्त्वसौ ॥ सोम आयुष्मान्स ओषधीभिरायुष्मीस्तस्याऽयमायुषाऽऽयुष्मानस्त्वसौ ॥
ओषधय आयुष्मतीस्ता अङ्गिरायुष्मतीस्तासामयमायुषाऽऽयुष्मानस्त्वसौ ॥

इममग्न आयुषे वर्चसे कृषि तिग्ममोजो वरुण सीशिशाधि ।

मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥

अश्विनोः प्राणस्तौ ते प्राणं दत्ता तेन जीव ॥ मित्रावरुणयोः प्राणस्तौ ते
प्राणं दत्ता तेन जीव ॥ बृहस्पतेः प्राणस्स ते प्राणं ददातु तेन जीव ॥

कासं [११.१३]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
पावका नः सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो बृहतः.... ॥ बृहस्पते जुषस्व
नः.... ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमीसि ॥

अग्न आयूषि पवसे.... ॥

आयुर्दा देव जरसं घृणानो घृतं वसानो घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पिबन्नमृतं चारु गव्यं पितेव पुत्रं जरसे नयेमम् ॥

गयस्फानो अमीवहा.... ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।

गयस्फानः प्रतरणस्सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसं.... ॥ महीमू षु मातरि सुव्रतानां.... ॥ इमं
मे वरुण श्रुधी.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ वैश्वानरो न
उतये.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥

कासं [१२.१]—पयस्यया यजेताऽऽमयावी । मैत्रावरुणी ब्राह्मणस्य स्यादैन्द्रा-
वरुणी राजन्यस्याऽऽग्निवारुणी वैश्यस्य० पुरोडाशो भवति० व्यूह्याऽवद्यति० समुह्याऽग्नये-
ऽवद्यति० अथैत एककपालाः० अष्टौ भवन्ति० ताननुपरिचारं जुहोति० अग्नौ सर्वे होतव्याः० ।

कासं [११.११]—

या वां मित्रावरुणौ सहस्या तनूस्तया वां विधेम तयेमममुमागुष्यायण-
मगुष्याः पुत्रमीहसो मुञ्चतम् ॥ या वां मित्रावरुणावोजस्या तनूस्तया
वां विधेम.... ॥ या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूस्तया वां विधेम.... ॥
या वां मित्रावरुणौ यातव्या तनूस्तया वां विधेम.... ॥ यस्ते राजन्
वरुण देवेषु पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुणाऽन्ने
पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥ यस्ते राजन् वरुण द्विपात्सु
पशुषु पाशः.... ॥ यस्ते राजन् वरुण चतुष्पात्सु पशुषु पाशः.... ॥
यस्ते राजन् वरुण वनस्पतिषु पाशः.... ॥ यस्ते राजन् वरुणौषधीषु
पाशः.... ॥ यस्ते राजन् वरुणाऽप्सु पाशः.... ॥ यस्ते राजन् वरुण
पृथिव्यां पाशः.... ॥ या वां मित्रावरुणौ सहस्या तनूस्तया वामविधाम

तयेमममुमासुव्यायणमसुव्याः पुत्रमीहसोऽमौक्तम् ॥ या वां मित्रावरुणा-
वोजस्या तनूस्तया.... ॥ या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूस्तया.... ॥
या वां मित्रावरुणौ यातव्या तनूस्तया.... ॥

कासं [१२.८]—पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा० आमयावी देविकाभिर्यजेत । धातारं
मध्ये कुर्यात् ० ।

दृश्यतां ' ज्योगामयावी '

आयुः

तैसं [२.२.३]—अग्नय आयुष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत सर्व-
मायुरियामिति ० ।

[१.३.१४]—

आयुष्टे विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ।

पुनस्ते प्राण आयति परा यक्ष्म५ सुवामि ते ॥

आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमम् ॥

दृश्यतां ' ज्योगामयावी ' (तैसं २.३.१०—११)

मैसं [२.२.२]—प्राजापत्यं घृते चरुं निर्वपेज्जशतकृष्णलमायुष्कामः० चत्वारि
चत्वारि कृष्णलान्यवदति० सर्वं ब्रह्मणे परिहर्तवा आह० ।

[४.१२.१]—हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे.... ॥ यः प्राणतो निमिषतो.... ॥

दृश्यतां ' मृत्योर्विभीयात् '

कासं [११.४]—प्राजापत्यं चरुं निर्वपेज्जशतकृष्णलं घृत आयुष्कामः० वैश्वदेवः
कार्यः० प्राजापत्यः कार्यः० चत्वारि चत्वारि कृष्णलान्यवदानं भवति० तं ब्रह्मणे परिहरन्ति० ।

[१०.१३]—हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे.... ॥ यः प्राणतो निमिषतो.... ॥

इन्द्रियम्

' सर्वपृष्ठेष्टिः ' द्रष्टव्या

ईजानः

तैसं [३.४.९; ३.३.११]—एतां (देविका) एव निर्वपेदीजानः० उत्तमं
धातारं करोति० ॥

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहवी५ षि)

मैसं [४.३.५-६]—० छन्दा०सि वै देविकाः० पष्ठौही दक्षिणा० या पूर्वा
पौर्णमासी साऽनुमतियोत्तरा सा राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ।
चन्द्रमा एव धाता० सर्ववेदसेनेजान० याजयेत्० य एव कश्च सोमेन यजेत त० याजयेत्० ।

[४.१२.६]—

अन्वद्य नो अनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ राकामह० सुहवा०
सृष्टुती हुवे.... ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो.... ॥ सिनीवाल्लि
पृथुष्टुके.... ॥ या सुपाणिः स्वङ्गुरिः.... ॥ कुहूमह० सुवृत० विन्नना-
पसं.... ॥ कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी.... ॥ धाता दधातु नो रयि.... ॥
धाता ददातु दाशुषे.... ॥

उपपातकम्

दृश्यतां ' मृगाश्रेष्ठिः '

उभयादत्प्रतिगृह्य अश्वं वा पुरुषं वा

तैसं [२.२.६]—आत्मनो वा एष मात्रामाप्नोति य उभयादत्प्रतिगृह्यात्यश्वं वा
पुरुषं वा । वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदुभयादत्प्रतिगृह्य० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द०स-
नाभ्यो.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ जातो यदग्ने भुवना
व्यख्यः.... ॥ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान... ॥ अस्माकमग्ने मधवत्सु.... ॥
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

दृश्यताम् ' अश्वं प्रतिगृह्णीयात् '

(यः कामयेत) कल्पेरन्निति

तैसं [२.२.११]—एतामेव (= ऐन्द्रमेकादशकपालं मारुत० सप्तकपालं) निर्वपेद्यः
कामयेत कल्पेरन्निति । यथादेवतमवदाय यथादेवतं यजेत् ।

[२.१.११]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ मरुतो
यद्ग वो दिवः.... ॥ या वः शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥

दृश्यतां ' क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम् '

कामो नोपनमेत्

तैसं [२.२.३]—अग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामो नोपनमेत्० ।

[१.३.१४]—

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्रे कामाय येमिरे ॥
अश्याम तं काममग्रे तवोत्यश्यामं रयि५ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम धुम्रमजराऽजरं ते ॥
तैसं [२.३.३]—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेत् ० ।

[२.३.१४]—

अग्नीषोमा सवेदसा सहृती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवधुः ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युव५ सिन्धू५ रमिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥
मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् कामाय ० ।

[४.११.१]—वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥

मैसं [२.१.४]—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेत् ब्राह्मणः कामाय ० ।

[४.११.२]—

पृथुपाजा अमर्त्यः.... ॥ त५ सबाधो.... ॥
ईडे अग्नि५ विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥
अग्ने शकेम ते वय५ यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषा५सि तरेम ॥
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्रे स५सृज्महे गिरः ॥
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्रे हिरण्यसंदृशः ॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्.... ॥ त्व५ सोमाऽसि सत्पति५.... ॥ अग्नीषोमा
सवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि रोचनान्य५.... ॥

कारीरीष्टिः

तैसं [२.४.९-१०]—

०मारुतमसि मरुतामोज इति कृष्णं वासः कृष्णत्वं परि धत्ते ० रमयत मरुतः
श्येनमायिनमिति पश्चाद्वातं प्रति मीवति ० वातनामानि जुहोति ० अष्टौ जुहोति । चतस्रो वै
दिशश्चतस्रोऽवान्तरदिशाः ० कृष्णाजिने सं यौति ० अन्तर्वेदि सं यौति ० यत्करीराणि भवन्ति ०
मधुषा सं यौति ० मान्दा वाशा इति सं यौति ० वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्या-
मीत्याह ० देवा वसव्या देवाः शर्मण्या देवाः सपीतय इत्या बध्नाति ० यदि वर्षेत्तावत्येव होतव्यम् ।
यदि न वर्षेच्छ्वो भूते हविर्निर्वपेत् ० अग्नये धामच्छदे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेन्मारुत५
सप्तकपाल५ सौर्यमेककपालम् ० सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं पृणेत्याह ० अब्जा असि

प्रथमजा बलमसि समुद्रियमित्याह० उन्नम्भय पृथिवीमिति वर्षाद्वां जुहोति० ये देवा दिविभागा इति कृष्णाजिनमव धूनोति० ।

[२.४.७-८; ३.१.११]—

मारुतमसि मरुतामोजोऽपां धारां भिन्द्रि ॥

रमयत मरुतः श्येनमायिनं मनोजवसं वृषणं सुवृक्तिम् ।

येन शर्धं उग्रमवसृष्टमेति तदश्विना परि धत्तं स्वस्ति ॥

पुरोवातो वर्षञ्जिन्वरावृत्स्वाहा ॥ वातावर्द्धर्षन्नुग्ररावृत् स्वाहा ॥ स्तन-

यन् वर्षन् भीमरावृत्स्वाहा ॥ अनशन्यवस्फूर्जन् दिद्युद्वर्षन् त्वेषरावृत्स्वाहा ॥

अतिरात्रं वर्षन् पूर्तिरावृत्स्वाहा ॥ बहु हाऽयमवृषादिति श्रुतरावृत्स्वाहा ॥

आतपति वर्षन् विराडावृत्स्वाहा ॥ अवस्फूर्जन् दिद्युद्वर्षन् भूतरावृत्स्वाहा ॥

मान्दा वाशाः शुन्ध्यूरजिराः । ज्योतिष्मतीस्तमस्वरीरुन्दतीः सुफेनाः ।

मित्रभृतः क्षत्रभृतः सुराष्ट्रा इह माऽवत ॥

वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामि ॥ देवा वसव्या अग्ने सोम

सूर्योद्गो दत्तोदधिं भिन्त । दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो

वृष्ट्याऽवत ॥ देवाः शर्मण्या मित्रावरुणाऽर्यमन्नुद्गो दत्तोदधिं भिन्त ।

दिवः पर्जन्याद°.... ॥ देवाः सपीतयोऽपां नपादाशुहेमन्नुद्गो दत्तोदधिं

भिन्त । दिवः पर्जन्याद°.... ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । पृथिवीं यद् व्युन्दन्ति ॥

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।

वि पर्जन्याः सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वो दस्त्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥

सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं पृण ॥ अब्जा असि प्रथमजा बलमसि

समुद्रियम् ॥

उन्नम्भय पृथिवीं भिन्द्रीदं दिव्यं नभः ।

उद्गो दिव्यस्य नो देहीशानो वि सृजा द्रुतिम् ॥

ये देवा दिविभागा येऽन्तरिक्षभागा ये पृथिविभागाः ।

त इमं यज्ञमवन्तु त इदं क्षेत्रमा विशन्तु त इदं क्षेत्रमनु वि विशन्तु ॥

असितवर्णा हरयः सुपर्णा मिहो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आवष्ट्रन्तसदनानि कृत्वाऽऽदित्पृथिवी घृतैर्व्युद्यते ॥

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजिमान् ।
 शुचिभ्राजां उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्थुवो न सत्याः ॥
 आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषमो यदीदम् ।
 शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यग्रा ॥
 वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥
 पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
 यत्क्रीडथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्रियश्चो धवच्चे ॥
 अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
 दृतिः सु कर्ष विषितं न्यश्च समा भवन्तूद्रता निपादाः ॥
 त्वं त्या चिदच्युताऽग्रे पशुर्न यवसे ।
 धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिकसः ॥
 अग्रे भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य धाम ।
 याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥
 दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
 अर्वाङ्गितेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥
 पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वामुवः ।
 अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥
 उदग्रुतो मरुतस्ताः इयर्त वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
 क्रोशाति गर्दा कन्येव तुन्ना पेरुं तुञ्जाना पत्येव जाया ॥
 घृतेन द्यावापृथिवी मधुना समुक्षत पयस्वतीः कृणुताऽऽप ओषधीः ।
 ऊर्जं च तत्र सुमर्ति च पिन्वथ यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥
 उदु त्यं जातवेदसं.... ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥
 और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निः समुद्रवाससम् ॥
 आ सवः सवितुर्यथा भगस्येव भुजिः हुवे । अग्निः समुद्रवाससम् ॥
 हुवे वातस्वनं कर्वि पर्जन्यक्रन्धः सहः । अग्निः समुद्रवाससम् ॥

मैसं [२.४.७-८]—

वृष्टिर्वै देवेभ्योऽन्नाद्यमपाक्रामत् । तत् इदं सर्वमशुष्यत् । ते देवाः प्रजापति-
 मेवोपाधावन् । तान् वा एतया प्रजापतिरयाजयत् कारीर्यां । यत्र पर्जन्यो न वर्षेत्तदेतया
 ज्येष्ठं वा पुरोहितं वा याजयेत् । अष्टौ वातहोमाः । मान्दा वशा ज्योतिष्मतीरमस्वरी-

रिति० यदि न वर्षेत्तत्रैव वसेयुः० करीराणि भवन्ति० मधुघृतानि भवन्ति० अग्नये धामछदे-
ऽष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालं सौर्यमेककपालं वृष्टिकामं याजयेत्० ।

पुरोवात जिन्व रावद् स्वाहा ॥ वातवान् वर्षन् भीम रावद् स्वाहा ॥ स्तनयन्
वर्षन्नुग्र रावद् स्वाहा ॥ अतिरात्रं ववर्ष्वान् पूर्त रावद् स्वाहा ॥ बहु ह वा
अयमवर्षीदिति श्रुत रावद् स्वाहा ॥ तपति वर्षन् विराड् रावद् स्वाहा ॥
अवस्फूर्जन् विद्युद्वर्षस्त्वेष रावद् स्वाहा ॥ नशन्यवस्फूर्जन् वर्षन् भूत
रावद् स्वाहा ॥

मान्दा वशा ज्योतिष्मतीरमस्वरीः शुन्धो अज्रा उन्दतीः सुफेनाः ।

मित्रभृतः क्षत्रभृतः सुराष्ट्रा इह नोऽवत ॥

वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि ॥

देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्याऽपो दत्तोदधिं भिन्त ।

दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥

देवाः शर्मण्या मित्र वरुणाऽर्यमन्नपो दत्तोदधिं भिन्त ।

दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥

देवाः सपीतयोऽपां नपान्नराशंसाऽपो दत्तोदधिं भिन्त ।

दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमच्युयुः ।

प्र पर्जन्यः सृजतां रोदसी अनु धन्वना यन्तु वृष्टयः ॥

उदीरयता मरुतः समुद्रतो दिवो वृष्टिं वर्षयता पुरीषिणः ।

न वो दत्ता उपदस्यन्ति धेनवः शुभे कमनु रथा अवृत्सत ॥

सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं पृण ।

ये देवा दिविभागाः स्थ ये अन्तरिक्षभागा ये पृथिवीभागास्त इदं
क्षेत्रमाविशत त इदं क्षेत्रमनुविविशत ॥

[४.१२.५]—

कृष्णं नयानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आववृत्रन्तसदनादृतस्याऽऽदिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥

आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसजि ॥
 पर्वतश्चिन्महि वृद्धो विभाय दिवश्चित्सालु रेजत स्वने वः ।
 यत्क्रीडथ मरुत ऋष्टिमन्ता आप इव सध्यञ्चो धवध्वे ॥
 सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वितस्थिरे ॥
 बहिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
 दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवाऽवाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥
 सूर्यो अपो विगाहते रश्मिभिर्वाजसातमः । बोधात् स्तोमैर्वयो दधत् ॥

कासं [११.९-१०]—

पुरोवातो जिन्व रावत्स्वाहा ॥ वातावान् वर्षन्नुग्र रावत्स्वाहा ॥ स्तनयन्वर्षन्
 भीम रावत्स्वाहा ॥ अवस्फूर्जन् विद्युद्वर्षस्त्वेव रावत्स्वाहा ॥ अतिरात्रं
 ववृष्वान् पूत रावत्स्वाहा ॥ बहु हाऽयमवृषदिति श्रुत रावत्स्वाहा ॥ तपति
 वर्षन् विराड् रावत्स्वाहा ॥ नशन्यवस्फूर्जन् विद्युद्वर्षन्भूत रावत्स्वाहा ॥
 मान्दा वशाश्शुन्ध्युवोऽजिरा उन्दतीस्सुफेना ज्योतिष्मतीस्तमस्वतीर्मित्र-
 भृतः क्षेत्रभृतस्सुराष्ट्रा इह माऽवत ॥ वृष्णस्संदानमसि वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि ॥
 देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्योद्गो दत्तोदधिं भिन्त । दिवः.... मा
 वृष्ट्याऽवत ॥ देवाश्शर्मण्या.... । दिवः.... मा वृष्ट्याऽवत ॥ देवाः
 सपीतयोऽपां नपादाशुहेमन्नुद्गो दत्तोदधिं भिन्त । दिवः.... मा वृष्ट्याऽ-
 वत ॥ दिवा चित्तमः.... ॥

उदीरयत मरुतस्समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
 न वो दत्ता उपदस्यन्ति धेनवश्शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥
 आ यं नरः.... ॥ सृजा वृष्टिं.... ॥ ये देवा दिविभागा येऽन्तरिक्षभागा
 ये पृथिविभागास्त इमं यज्ञमवन्तु त इदं क्षेत्रमाविशन्तु त इदं क्षेत्रमनु-
 विविशन्तु ॥ अब्जा असि प्रथमजा बलमसि समुद्रियं दिवो धारां
 भिन्दि ॥ मारुतमसि मरुतामोजोऽपां धारां भिन्दि ॥

उन्नमभय पृथिवीं भिन्द्रीदं दिव्यं नभः ।

उद्गो दिव्यस्य नो देहीशानो विष्या इतिम् ॥

कृष्णं नियानी.... । त आववृत्रन् सदनानि रात्वी घृतेन द्यावापृथिवी
 व्युन्दन् ॥

कृष्णाजिनं भवति । मधु करीराणि श्यावस्याऽश्वस्य दाम तानि पूर्वस्याऽग्नेरन्ते निधाय कृष्णं
 वासो यजमानं परिधापयित्वाऽन्वारम्भयित्वैतानि जुहोति वातनामानि वा० अष्टा एतानि

जुहोति चतस्रो दिशश्चतस्र उपदिशः० कृष्णाजिने संयौति । हविरेव करोति । मधुना संयौति० मान्दा वशा इत्येतानि वा अपां नामधेयानि० तस्मात्करीराणि न स्त्रियै दद्यान्न शूद्राय० वृष्णसंसदानमसि वृष्ट्यै त्वोपनह्यामीति० कृष्णाजिन उपनह्यति० यदि वर्षेत्तदैवेष्टिं निर्वपेत् । यदि न वर्षेत्तथैव वसेयुः० अग्नये धामच्छदे श्वोऽष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतं चरुं सौर्यमेककपालम्० षडेतानि हवींषि० अथैता मारुतीश्चतस्रः पित्र्यास्तासां तिसृभिः प्रचरन्ति । न्येकां दधति । ऋचोऽनुवाक्या यजूषि याज्याः० या चतुर्थी ती संस्थितेऽप्सु जुहोति सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं पृणेति० ये देवा दिविभागा इति कृष्णाजिनमवधूनोति० सैषा कारीरी नामेष्टिः । संवत्सरं करीराणां नाऽश्रीयाद्य एतया यजेताऽयो योऽनुब्रवीत् तदस्या व्रतम् ॥

[११.१३]—

रमयता मरुतश्च्येनमायिनं मनोजवसं वृषणि सुवृत्तिम् ।

येन शर्धोऽवसृष्टमुग्रमेति तमश्विना परिधत्तौ स्वस्ति ॥

अभिक्रन्द स्तनय गर्भमाधा उदन्वता परिदीया रथेन ।

दृतिं सुकर्ष विषितं न्यश्चै समा भवन्तूदृतो निपादाः ॥

आ ते सुपर्णा अमिनन्ती एवैः.... ॥ कृष्णं नियानी हरयस्सुपर्णा.... ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति.... ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्रपिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङ्घ्रितेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान् ममे पृथिव्याः ।

उभे आपग्रौ रोदसी महित्वा ॥

वहिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुं.... ॥

क्लैव्याद्विभीयात्

तैसं [२.३.३]—सोमाय वाजिने श्यामाकं चरुं निर्वपेद्यः क्लैव्याद्विभीयात्० ।

[२.३.१४]—

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्णियम् । भवा वाजस्य संगथे ॥

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहः ।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥

क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम्

तैसं [२.२.११]—एतामेव^१ निर्वपेद्यः कामयेत क्षत्राय च विशे च समदं

दध्यामिति । ऐन्द्रस्याऽवघन् ब्रूयादिन्द्रायाऽनु ब्रूहीति । आश्राव्य ब्रूयान्मरुतो यजेति । मारुत-
स्याऽवघन् ब्रूयान्मरुद्ब्रह्मोऽनु ब्रूहीति । आश्राव्य ब्रूयादिन्द्रं यजेति० ।

[२.१.११]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥ या वः शर्म शशमानाय सन्ति... ॥ मरुतो
यद्ध वो दिवः.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥

क्षत्रियं विष् निर्बाधे कुर्वीत

कासं [११.१]—मारुतं चरुं निर्वपेत्तस्यैकविंशतिनिर्बाधो हरितो रुक्मो-
ऽपिधानस्स्यात् । तस्याऽपग्राहमवघेद्यक्षत्रियं विष् निर्बाधे कुर्वीत० ।

[९.१९]—मरुतो यद्ध वो दिवः.... ॥ यूयमस्मान्नयत.... ॥

क्षत्रियाद्विडभ्यर्धश्चरेत्

कासं [१०.११]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतं प्रैयङ्गवं चरुं तं पश्चा शृतं
कुर्युः यस्मात्क्षत्रियाद्विडभ्यर्धश्चरेत्० तमनूच्यमाने पश्चात्प्राञ्चमुदाहरन्ति० पश्चादुपदधाति० ।

[८.१७]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥

आ नो विश्वाभिरुतिभिस्सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्च याहि ।

वरीवृजत् स्थविरेभिस्सुशिप्राऽस्मे दधद्दृषणी शुष्ममिन्द्र ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः.... ॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरिहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।

जुषध्वं नो हव्यदार्ति यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

क्षत्रियो विशो ज्यान्या बिभीयाद् ब्राह्मणो वा

कासं [१०.११]—मारुतं सप्तकपालं निर्वपेद्यः क्षत्रियो विशो ज्यान्या बिभीया-
द्ब्राह्मणो वा० अगस्त्यस्यैतत्सूक्तं कयाशुभीयं तस्य सामिधेनीष्वप्यनुब्रूयात् । तस्य याज्यानुवाक्ये
स्याताम्० ।

[९.१८]—

कया शुभा सवयसस्सनीडाः.... ॥ कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्यवानः.... ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनस्सन्नेको.... ॥ ब्रह्माणि मे मतयशी सुतासः.... ॥

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः.... । महोभिरेती उपयुज्महे.... ॥ क स्या वो

मरुतस्स्वधाऽऽसीत्.... ॥

भूरि चकर्थं गुज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
 भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥
 वर्धी वृत्रं मरुत इन्द्रियेण.... ॥ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्तु.... ॥ एकस्य
 चिन्मे विश्वस्त्वोजो.... ॥ अमन्दन्मा मरुतस्स्तोमो.... ॥ एवेदेते प्रति
 मा रोचमाना.... ॥ को न्वत्र मरुतो मामहे वः.... ॥ आ यद् दुवस्याद्दुवसे
 न कारुः.... ॥ एष वस्स्तोमो मरुत इयं गीः.... ॥

क्षेत्रमध्यवस्यन्

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं क्षेत्रस्य पतये चरुं
 क्षेत्रमध्यवस्यन् ० ।

[४.११.१]—

या वा० सन्ति पुरुस्पृहो.... ॥ शुचिं नु स्तोमं नवजातं.... ॥ पूषा गा
 अन्वेतु नः.... ॥ शुक्रं ते अन्यत्.... ॥
 क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
 गामश्वं पोषयित्वा स नो मृडातीदृशे ॥
 मधुमतीरोषधीर्धावा आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
 क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिण्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥
 स० समित्.... ॥
 सखायः स० वः सम्यञ्चमिष० स्तोमं चाऽग्नये ।
 वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥

क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत

मैसं [२.२.११]—इन्द्राय क्षेत्रंजयायैकादशकपालं निर्वपेच्चः क्षेत्रे पशुषु वा
 विवदेत ० ।

[४.१२.३]—

अभितिष्ठ पृतन्यतोऽधरे सन्तु शत्रवः ।
 इन्द्र इव दस्युहा भवाऽपः क्षेत्राणि संजय ॥
 आशीर्ना ऊर्जिष्ठत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणं सवर्चसम् ।
 संजयन् क्षेत्राणि सहसाऽहमिन्द्र कृण्वानो अन्यं अधरान्तसपत्नान् ॥

गतश्रीः

मैसं [२.२.९]—इन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद् गतश्रीः० ।

[४.१२.२]—अनवस्ते रथमश्वाय.... ॥ वृष्णे यत्ते वृष्णो.... ॥

मैसं [२.२.१३]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्गतश्रीः । तस्य गौर्धेनुर्दक्षिणा । स प्राङ् प्रयाय वैष्णवं त्रिकपालम् । तस्य वडवा धेनुर्दक्षिणा । स प्राङ् प्रयाय गिरिं गत्वाऽपो वा प्राजापत्यं घृते चरुम् । तस्य पुरुषी धेनुर्दक्षिणा० ॥

कासं [११.४]—सौर्यं चरुं निर्वपेद्गतश्रीः । तस्य हरितो रुक्मोऽपिधानस्तस्या-
द्रजतोऽधस्तात्० प्रयाजेषु पञ्च हिरण्यकृष्णलानि जुहुयात्० ।

[१०.१३]—

उदु त्यं जातवेदसं.... ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।

नूनं जनास्सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपीसि ॥

गायत्रीष्टिः

दृश्यतां ' राष्ट्रे स्पष्टे ' ' अनादः ' (मैसं २.१.११) ' भ्रातृव्यवान् ' (तैसं २.४.३)

गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा बिभीयात्

तैसं [२.२.२]—अग्नये सुरभिमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा बिभीयात्० ।

[१.३.१४]—

अग्निर्होता नि षसादा यजीयानुपस्थे मातुः सुरभावु लोके ।

युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।

स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥

ग्रामः

तैसं [२.२.५]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालं ग्रामकामः०
आहवनीये वैश्वानरमधि श्रयति गार्हपत्ये मारुतम्० अनूच्यमान आ सादयति० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द५सना-
भ्यो.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ जातो यदग्रे भुवना.... ॥
त्वमग्रे शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्रे मधवत्सु.... ॥ वैश्वानरस्य
सुमतौ.... ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्रायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताऽधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥

तैसं [२.२.८]—इन्द्रायाऽन्वृजवे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकामः० ।

[१.७.१३]—

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।

अन्विन्द्र५ रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।

अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषब्धे ॥

तैसं [२.२.११]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुत५ सप्तकपालं ग्रामकामः०

आहवनीय ऐन्द्रमधि श्रयति गार्हपत्ये मारुतम्० अनूच्यमान आ सादयति० ।

[२.१.११]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः.... ॥ या वः शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥

तैसं [२.२.११]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेद्वैश्वदेवं द्वादशकपालं ग्रामकामः०

ऐन्द्रस्याऽवदाय वैश्वदेवस्याऽव चेदयैन्द्रस्योपरिष्ठात्० उपाधाय्यपूर्वयं वासो दक्षिणा० ।

[२.१.११]—

भरेष्विन्द्र५ सुहव५ हवामहेऽ५होमुच५ सुकृतं दैव्यं जनम् ।

अग्नि मित्रं वरुण५ सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥

ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।

शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥

तैसं [२.२.११]—पृश्निष्यै दुग्धे प्रैयङ्गवं चरं निर्वपेन्मरुद्भ्यो ग्रामकामः०
प्रियवती याज्यानुवाक्ये भवतः० द्विपदा पुरोनुवाक्या भवति० चतुष्पदा याज्या० ।

[२.१.११]—

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्भिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥

तैसं [२.३.३]—ब्राह्मणस्पत्यमेकादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकामः० गणवती याज्या-
नुवाक्ये भवतः० ।

[२.३.१४]—

गणानां त्वा गणपतिः हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शुण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥
स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन बलः रुरोज फलिगः रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिकदद्वावशतीरुदाजत् ॥

तैसं [२.३.९]—वैश्वदेवीः सांप्रहणीं निर्वपेद् ग्रामकामः० ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहः
सजातेषु भूयासमिति परिधीन् परि दधाति० आमनमस्यामनस्य देवा इति तिस्र आहुतीर्जुहोति० ।
ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहः सजातेषु भूयासं धीरश्वेत्ता वसुवित् ॥ ध्रुवोऽसि....
भूयासमुग्रश्वेत्ता वसुवित् ॥ ध्रुवोऽसि.... भूयासमभिभूश्वेत्ता वसुवित् ॥
आमनमस्यामनस्य देवा ये सजाताः समनसस्तानहं कामये हृदा ते
मां कामयन्ताः हृदा तान्म आमनसः कृधि स्वाहा ॥ आमनमस्या-
मनस्य देवा ये कुमारः समनसस्तानहं.... ॥ आमनमस्यामनस्य देवा
याः स्त्रियः समनसस्ता अहं कामये हृदा ता मां कामयन्ताः हृदा ता म
आमनसः कृधि स्वाहा ॥

[२.४.१४]—

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥
विश्वे देवाः शृणुतेमः हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ट ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

तैस [३.४.९]—एता^१ एव निर्वपेद् ग्रामकामः० मध्यतो धातारं करोति० द्वे प्रथमे निरुप्य धातुस्तृतीयं निर्वपेत् । तथो एवोत्तरे निर्वपेत्० ।

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहवींषि)

मैस [२.१.८]—मारुतं चरुं निर्वपेत् पयसि ग्रैयङ्गवं ग्रामकामो वा पशुकामो वा पृश्नीनां गवां दुग्धे । पृश्नीनां गवामाज्यं स्यात् । तत्राऽपि गोमूत्रस्याऽऽश्वतोथेयुः० प्रियवती याज्यानुवाक्ये भवतः । द्विपदा च चतुष्पदा च भवतः० ।

[४.११.२]—

प्रिया वो नाम हुवे तुराणाम्.... ॥ श्रियसे कं भानुभिः संमिमिक्षिरे.... ॥

मैस [२.१.९]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतीमामिक्षां राजन्यं ग्रामकामं याजयेत्० मध्य आमिक्षायाः पुरोडाशं निधायोभयस्याऽवचेत्० पर्यूहमवचति० ।

[४.११.४]—

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्.... ॥ त्वं महं इन्द्र तुभ्यं.... ॥ मरुतो यद्व वो बलं.... ॥ ऋष्टयो वो मरुतो.... ॥

मैस [२.२.३]—बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत् पयसि ग्रामकामो वा पशुकामो वा । तस्य बार्हस्पत्ये गणवती याज्यानुवाक्ये स्याताम् । यो बहुपुष्टस्तस्य गृहात्क्षीरमाहरेयुः । स्यात् स्वासां गवां दुग्धं स्यादुदकम्० ।

[४.१२.१]—

बृहस्पतिं हवामहे विश्वतः सगणं वयम् । उप नो यज्ञमागमत् ॥
स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन वलं रुरोज फलिगं र्वेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥

मैस [२.३.१]—ग्रामकामं याजयेत्० ।

दृश्यताम् ' आमयावी ' (मैस २.३.१)

मैस [२.३.२]—ग्रामकामो यजेत (वैश्वदेवं चरुं निर्वपेत्) ० सर्वेषां सजातानां गृहादाज्यमाहरेयुः० आमनेन जुहोति० आमनस्य देव ये सजाताः समनसस्तानहं कामये हृदा ते मां कामयन्तां हृदा तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ आमनस्य देव ये

पुत्राः समनसस्तानहं कामये हृदा ते मां कामयन्तां हृदा तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ आमनस्य देव याः स्त्रियः समनसस्ता अहं कामये हृदा ता मां कामयन्तां हृदा ता मा आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ आमनस्य देव ये पशवः समनसस्तानहं कामये हृदा ते मां कामयन्तां हृदा तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ ० पृषती गौर्वेनु-
र्दक्षिणा० अथ यद्वैश्वदेवीष्टिः० यत्प्रयाजानुयाजानां पुरस्ताद्वोपरिष्ठाद्वा जुहुयात् बहिरात्मं सजातान् दधीत । अथ यन्मध्यतो जुहोति मध्यत एव सजातानात्मन् धत्ते । यदि कामयेत ताजगेयुस्ताजक् परेयुरिति दारुमयेण जुहुयात्० यदि कामयेत ध्रुवाः स्युः कृच्छादेयुरिति मृन्मयेन जुहुयात् । ध्रुवा हीयं ध्रुवोऽसि ध्रुवस्त्वं देवेष्वेधि ध्रुवोऽहं सजातेषु भूयासं प्रियः सजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ उग्रोऽस्युग्रस्त्वं देवेष्वेध्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासं प्रियः सजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ अभिभूरस्यभिभूस्त्वं देवेष्वेध्यभिभूरहं सजातेषु भूयासं प्रियः सजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ परिभूरसि परिभूस्त्वं देवेष्वेधि परिभूरहं सजातेषु भूयासं प्रियः सजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ स्वरिरसि स्वरिस्त्वं देवेष्वेधि स्वरिरहं सजातेषु भूयासं प्रियः सजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥

[४.१२.४]—विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता.... ॥ एनाऽऽङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो.... ॥

कासं [१०.४]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकामो भूतिकामो ब्रह्मवर्चसकामः । तस्य हरिती हिरण्यं मध्ये कुर्याद्रजतमुपरिष्ठात्० यद्रजतं तत्सह भस्मनाऽपोहति० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न उतय.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाजी.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ अस्माकमग्ने मधवत्सु.... ॥

चक्षुः

तैसं [२.२.४]—एतामेव निर्वपेच्चक्षुष्कामः । यदग्नये पवमानाय निर्वपति प्राणमेवाऽस्मिन् तेन दधाति । यदग्नये पावकाय वाचमेवाऽस्मिन् तेन दधाति । यदग्नये शुचये चक्षुरेवाऽस्मिन् तेन दधाति । उत यद्यन्धो भवति प्रैव पश्यति० ।

दृश्यतां ' ज्योगामयावी '

[१.३.१४]—

अग्न आयूँषि पवसे.... ॥ अग्ने पवस्व स्वपाः.... ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाः इहा बह । उप यज्ञः हविश्च नः ॥

अग्निः शुचित्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीः प्यर्चयः ॥

तैसं [२.२.९]—आग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामः ० ।

[१.८.२२]—अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥ .

तैसं [२.३.८]—यश्चक्षुष्कामः स्यात्तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदग्ने भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालः सौर्यं चरुमग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालम् ० समानी याज्यानुवाक्ये भवतः ० उदु त्यं जातवेदसं, सप्त त्वा हरितो रथे, चित्रं देवानामुदगादनीकमिति पिण्डान् प्रयच्छति ० ।

[२.४.१४]—

उदग्ने शुचयस्तव.... ॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।

प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आऽग्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

मैसं [२.३.६] अग्ने भ्राजस्वतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्सौर्यं चरुमग्नये भ्राजस्वतेऽष्टाकपालं चक्षुष्कामं याजयेत् ० शुक्ला व्रीहयो भवन्ति । श्वेता गा आज्याय दुहन्ति ० पयसि भवति ० सौरीभिरादधाति ० ।

[४.१२.४]—

उदग्ने शुचयस्तव.... ॥ अयमग्निर्वीरतमः.... ॥ तत्सूर्यस्य देवत्वं.... ॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य.... ॥ सप्त त्वा हरितो रथे.... ॥ तरणि-
विश्वदर्शतः.... ॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥

सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ॥

मैसं [२.१.७]—आग्रावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामः० हिरण्यं ददाति० शतमानं भवति० ।

[४.११.२]—अग्राविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्राविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
अग्राविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥

कासं [११.१]—अग्नये ज्योतिष्मतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्सौर्यं चरुमग्नये ज्योतिष्मत् उपरिष्टादष्टाकपालं चक्षुष्कामः० समानी याज्यानुवाक्ये भवतः । सौर्यस्य मध्यतोऽवद्यति० त्रीन् पिण्डान् प्रयच्छति उदु त्वं जातवेदसम्, अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः, सप्त त्वा हरितो रथ इति० सैषा राजनी नामेष्टिः० ।

[९.१९]—

अग्ने नक्षत्रमजरमा.... ॥ अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थात्.... ॥ उदु त्वं जातवेदसं.... ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवस्सरो रथस्य नप्त्यः । तामिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥
सप्त त्वा हरितो रथे बहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥

अयं पूषा रयिर्मगस्सोमः पुनानो अर्षति ।

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥

वयस्सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान् ॥

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्.... ॥

चक्षुर्मे धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥

सुसंदशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य । विपश्येम नृचक्षसः.... ॥

कासं [१०.१]—आग्रावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामः० ।

[४.१६]—अग्राविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्राविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥

चित्रेष्टिः

दृश्यतां 'पशवः'

जनतामभिप्रयान्

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्पौष्णं चरुं जनतामभिप्रयान्० ।

[४.११.१]—या वां सन्ति पुरुस्पृहो.... ॥ शुचिं नु स्तोमं नवजातं.... ॥
पूषा गा अन्वेतु नः.... ॥ शुक्रं ते अन्यत्.... ॥

जनतामागत्य

तैसं [२.२.१]—क्षेत्रपत्यं चरुं निर्वपेज्जनतामागत्य० ऐन्द्राग्रमेकादशकपालमुप-
रिष्टान्निर्वपेत्० ।

[१.१.१४]—

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्वा स नो मृडातीदृशे ॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुञ्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥
शुचिं नु स्तोमं नवजातमधेन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्टा ॥

जनतामेष्यन्

तैसं [२.२.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेज्जनतामेष्यन्० पौष्णं चरुमनु
निर्वपेत्० ।

[१.१.१४]—

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥
शुचिं नु स्तोमं नवजातमधेन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्टा ॥
वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥
पथस्पथः परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥

जने म ऋध्येत

तैसं [२.२.९]—इन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत
जने म ऋध्येतेति० वशा दक्षिणा० ।

[४.१२.२]—अनवस्ते रथमश्वाय.... ॥ वृष्णे यत्ते वृष्णो.... ॥

ज्यान्या मारणादपरोधाद्वा बिभीयात्

तैसं [२.२.१०]—इन्द्राय त्रात्र एकादशकपालं निर्वपेद्यो ज्यान्या मारणाद-
परोधाद्वा बिभीयात्० ।

[४.१२.३]—

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टा अघाय भूम हरिवः परादैः ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरुथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥

ज्येष्ठबन्धुः

मैसं [२.२.१०]—इन्द्रायाऽन्वृजवा एकादशकपालं निर्वपेज्येष्ठबन्धुः० ।

[४.१२.३]—

अनु त्वाऽहिम्ने अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥
अनु धावापृथिवी तत्ता ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥

ज्योगामयावी

तैसं [२.२.४]—अग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये पावकायाऽग्नये शुचये ज्योगामयावी० ।

[१.३.१४]—

अग्न आयूषि पवसे.... ॥ अग्ने पवस्व स्वपाः.... ॥ अग्ने पावक
रोचिषा.... ॥ स नः पावक दीदिवो.... ॥ अग्निः शुचिप्रततमः.... ॥
उदग्ने शुचयस्तव.... ॥

तैसं [२.२.१०]—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेज्योगामयावी० अनड्वान् होत्रा देयः० ।

[१.८.२२]—सोमारुद्रा वि बृहतं विषूर्ची.... ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥

तैसं [२.३.११]—

यो ज्योगामयावी स्याद् यो वा कामयेत सर्वमायुरियामिति तस्मा एतामिष्टिं निर्व-
पेदाग्नेयमष्टाकपालं सौम्यं चरुं वारुणं दशकपालं सारस्वतं चरुमाग्नवैष्णवमेकादशकपालम्०
यन्नवमैतन्नवनीतमभवदित्याज्यमवेक्षते० ऋत्विजः पर्याहुः० ब्रह्मणो हस्तमन्वारभ्य पर्याहुः०
हिरण्याद् घृतं निष्पिबति० शतमानं भवति० अथो खलु यावतीः समा एष्यन् मन्येत
तावन्मानं स्यात् समद्वयै । इममग्न आयुषे वर्चसे कृधीत्याह० विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसदि-
त्याह० अग्निरायुष्मानिति हस्तं गृह्णाति० ।

[२.३.१०]—

यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवद्यदसर्पत्तत्सर्पिरभवद्यदधियत तद् घृतमभवत् ॥
 अश्विनोः प्राणोऽसि तस्य ते दत्तां ययोः प्राणोऽसि स्वाहा ॥ इन्द्रस्य
 प्राणोऽसि तस्य ते ददातु यस्य प्राणोऽसि स्वाहा ॥ मित्रावरुणयोः
 प्राणोऽसि तस्य ते दत्तां ययोः प्राणोऽसि स्वाहा ॥ विश्वेषां देवानां
 प्राणोऽसि तस्य ते ददतु येषां प्राणोऽसि स्वाहा ॥

घृतस्य धाराममृतस्य पन्थामिन्द्रेण दत्तां प्रयतां मरुद्भिः ।

तच्चा विष्णुः पर्यपश्यत्तत्त्वेडा गव्यैरयत् ॥

पावमानेन त्वा स्तोमेन गायत्रस्य वर्तन्योपाशोर्वीर्येण देवस्त्वा सवितो-
 त्सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै ॥ बृहद्रथन्तरयोस्त्वा स्तोमेन त्रिष्टुभो
 वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येण देवस्त्वा.... जीवनस्यायै ॥ अग्नेस्त्वा मात्रया
 जगत्यै वर्तन्याऽऽग्रयणस्य वीर्येण देवस्त्वा.... जीवनस्यायै ॥

इममग्र आयुषे वर्चसे कृधि प्रियं रेतो वरुण सोम राजन् ।

मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥

अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मान् तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥

सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिः.... ॥ यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिः.... ॥

ब्रह्माऽऽयुष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्.... ॥ देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनाऽऽयुष्मन्त-
 स्तेन.... ॥ पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधयाऽऽयुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं
 करोमि ॥

[२.५.१२]—

आयुष्टे विश्वतो दधत्.... ॥ आयुर्दा अग्ने हविषो.... ॥ आ प्यायस्व
 समेतु ते.... ॥ सं ते पयांसि समु यन्तु.... ॥ अब ते हेडो वरुण.... ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशं.... ॥ प्र णो देवी सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो
 बृहतः पर्वतात्.... ॥ अग्नाविष्णू महि तद्वां.... ॥ अग्नाविष्णू महि
 धाम.... ॥

तैस [३.४.९]—एता एव निर्वपेज्ज्योगामयावी० मध्यतो धातारं करोति० द्वे
 प्रथमे निरुप्य धातुस्तृतीयं निर्वपेत्तयो एवोत्तरे निर्वपेत्० ॥

इदयतां 'प्रजाः' (देविकाहवी५षि)

मैसं [४.३.७]—अथैतद्वैश्वानरवारुणम्० इयाश्चरुर्मवति० यो ज्योगामयावी स्यात्तमेतेन याजयेत्० ॥

[२.६.४]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो वारुणो यवमयश्चरुः । हिरण्यं चाऽश्वश्च दक्षिणा ॥

दृश्यताम् ' आमयावी '

तेजः

तैसं [२.२.३]—अग्नये तेजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्तेजस्कामः० ।

[१.३.१४]—

आ यदिषे नृपतिं तेज आनद् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।

अग्निः शर्धमनवद्यं युवान् स्वाधिर्यं जनयत् स्रदयच्च ॥

स तेजीयसा मनसा त्वोत् उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।

अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥

मैसं [२.२.८]—इन्द्राय घर्मवते सूर्यवता एकादशकपालं निर्वपेत्तेजस्कामः० ।

[४.१२.२]—

आ यस्मिन्त्सप्त वासवा रोहन्ति पूर्व्या रुहः ।

ऋषिर्ह दीर्घश्चुत्तमा इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः ॥

मदो न यः सोम्यो बोधिचक्षा वातश्च नु च्यवन इन्दुविक्षाः ।

स तप्नुः शुचसे न स्ररः स स्वेदयुः शुशुचानो न घर्मः ॥

त्रैधातवीयेष्टिः

तैसं [२.४.११-१२]—

यदुष्णिहककुभावन्वाह० त्रिष्टुभा परि दधाति० अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्थेति त्रिवत्या परि दधाति सरूपत्वाय । सर्वो वा एष यज्ञो यत्त्रैधातवीयम् । कामायकामाय प्र युज्यते० त्रैधातवीयेन यजेताऽभिचरन्० एतयैव यजेताऽभिचर्यमाणः० एतयैव यजेत सहस्रेण यक्ष्यमाणः० एतयैव यजेत सहस्रेणेजानः० य एवं विद्वाश्चैधातवीयेन पशुकामो यजते० देवताभ्यो वा एष आ वृक्ष्यते यो यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजते । त्रैधातवीयेन यजेत० द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति० ते त्रयश्चतुष्कपालाः० त्रयः पुरोडाशा भवन्ति० उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवति० सर्वेषामभिगमयन्नव षति० हिरण्यं ददाति० तार्यं ददाति० घेनुं ददाति० ॥ तस्मादैन्द्रावैष्णवश्च हविर्मवति० तस्मात्सहस्रदक्षिणम् ।

[३.२.११]—

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।

यस्य त्व॑ सख्यमाविथ ॥

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योती॑षि विभ्रते न वेधसे ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।

तिस्र उ ते तनुवो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥

त्रीण्यायू॑षि तव जातवेदस्तिस्त्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः । स त्री॑रेकादशा॑ इह ॥

यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतः । नभन्तामन्यके समे ॥

इन्द्राविष्णू दृ॑हिताः शम्बरस्य नव पुरो नवर्ति च श्रथिष्टम् ।

शतं वर्चिनः सहस्रं च साक॑ हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।

अथाऽब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥

मैसं [२.४.३-५]—

तद्वाव त्रैधातव्या० तस्मादैन्द्रावैष्णवम्० तस्मादाहुः सहस्रदक्षिणेति । उष्णिहा-
ककुमा अन्वाह० अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ इति परिदधाति० अथ
यत् त्रिष्टुमा परिदधाति० सर्वाणि छन्दा॑स्यन्वाह० अभिचरन्नाहरेत्० अथ यो यक्ष इत्युक्त्वा
न यजेत तमेतेन याजयेत्० उत्तर उत्तरः पुरोडाशो ज्यायान् भवति० तस्माद्यवमयो मध्यतः०
द्वादशकपालो भवति० सर्वेषामतिघातमवद्यति० यत्तार्प्याणि विषीव्यन्ति० यद्धेनवो दीयन्ते०
यद्धिरण्यं दीयते० तस्मान्नाऽतिबहु यष्टव्यम्० पुत्रो याजयितव्योऽनुसंतत्यै ।

[४.१२.५]—

अग्ने वाजस्य गोमतः.... ॥

भद्रो नो अभिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः॥

स० समिद्युवसे वृषन्.... ॥ एना वो अग्निं नमसोजो.... ॥ आ ते अथा
इधीमहि.... ॥ अग्ने त्री ते वाजिना.... ॥
त्रिरग्निर्बलभिद्धलं भित्त्वा सहस्रमैरयत् । शूरो जेताऽपराजितः ॥
त्रिरहः पवते वृषा सोमः शुक्राभिरुतिभिः । वाजी सहस्रसातमः ॥
स० वां कर्मणा समिषा.... ॥ उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे.... ॥ इन्द्रा-
विष्णू दृ०हिताः शम्बरस्य.... ॥ उत माता महिषमन्ववेनदमी.... ॥
त्रीण्यायू०षि तव जातवेदः.... ॥ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः.... ॥

कासं [१२.३-४]—

०तत् त्रैधातव्यायास्त्रैधातव्यात्वम्० तस्मादैन्द्रावैष्णवी हविर्भवति० तस्मान्न मुहुः
प्रयोज्यम्० अपि पुत्रं याजयेत्० वर्धते प्रजया प्र पशुभिर्भवति य एवं विद्वानेतेन यजते ।
सर्वेभ्यः कामेभ्यो यजेत० अभिचरन् यजेत । न दक्षिणां दद्यात्० त्रीन् पुरोडाशानिर्वपेद्
बुभूषन्० उत्तर उत्तरो ज्यायान् भवति० द्वादशकपालानि भवन्ति । त्रयो हि ते चतुष्कपालाः
समृद्धयै । सर्वेषामभिघातमवद्यति० त्रीहिमयः प्रथमो भवत्यथ यवमयोऽथ त्रीहिमयः० नैवार-
मुत्तमं कुर्यादजामित्वाय । तिस्रो घेन्वो दक्षिणा त्रीणि तार्याणि त्रीणि हिरण्यानि० सर्वाणि
च्छन्दीस्यनुब्रूयात्० यत्तार्यं यजमानः परिधत्ते० उष्णिहककुभौ सामिघेनीष्वप्यनुब्रूयात्० न
जगत्या परिदध्यात्० अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्थेति त्रिष्टुभा परिदधाति० ॥

दानकामाः प्रजाः

तैसं [२.२.८]—इन्द्राय दात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत दान-
कामा मे प्रजाः स्युरिति० ।

[१.७.१३]—

मा नो मर्षीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥
आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्वा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दन्नमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्च प्र यन्धि ॥

तैसं [२.३.४]—अर्यग्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति० ।

[२.३.१४]—

अर्यमाऽऽयाति वृषभस्तुविष्मान् दाता वसूनां पुरुहूतो अर्हन् ।
सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्जवाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥
ये तेऽर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति ।
तेभिर्नो देव महि शर्म यच्छ शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

कासं [११.४]—अर्यग्न्यो चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजास्त्युरिति० ।

[१०.१३]—

आर्यमा यातु वृषभस्तुविष्मान् यन्ता वस्त्रानि विधत्ते तनूपाः ।
सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्जबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥
ये ते अर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिस्सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥

दुश्चर्मा भविष्यामि

तैसं [२.२.१०]—यदि बिभीयाद्दुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णं चरुं निर्वपेत्० ।

[१.८.२२]—सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

देवः प्रजा अभिमन्येत

कासं [१०.६]—अग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यर्हयं देवः प्रजा अभिमन्येत यदा कामयेत विदस्येदिति० ।

[७.१६]—अग्निर्होता निषसादा यजीयान्.... ॥ साध्वीमकर्देववीति नो.... ॥

कासं [१०.७]—अग्नये क्षमवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यर्हयं देवः प्रजा अभिमन्येत यदा कामयेत विदस्येदिति० ।

[७.१६]—

कृष्णा रजीसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥
त्वे वस्त्रानि पूर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन् सौ भगानि दधिरे पावके ॥

देविकाहर्वीषि

दृश्यतां 'प्रजाः'

द्वितीयमस्य लोके जनेयम्

मैसं [२.१.६]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेदुदश्रित्यविचितानां व्रीहीणां यः कामयेत द्वितीयमस्य लोके जनेयमिति० नेमं शरमयं बर्हिर्भवति नेममशरमयम् । नेमो वैभीदक इच्छो नेमोऽवैभीदकः० ।

[४.११.२]—सोमारुद्रा विवृहत्.... ॥ तिग्मायुधौ तिग्महेतौ.... ॥

द्वितीयतायै

कासं [११.५]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् भ्रातृव्यतायै वा द्वितीयतायै वा० ।

दृश्यतां 'भ्रातृव्यः' (कासं ११.५)

नक्षत्रसत्रम्

तैब्रा [३.१.१-६]—

(१)^३

अग्निर्वा अकामयत । अन्नादो देवानां स्यामिति । स एतमग्नये कृत्तिकाभ्यः पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपत् ० यथा ह वा अग्निर्देवानामन्नादः । एवम् ह वा एष मनुष्याणां भवति । य एतेन हविषा यजते ० ।

^३अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥

^३भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।

दिवि मूर्धानं दधिषे सुवर्षा जिह्वामग्रे चकृषे हव्यवाहम् ॥

अग्निर्नः पातु कृत्तिका नक्षत्रं देवमिन्द्रियम् ।

इदमासां विचक्षणं हविरासं जुहोतन ॥

यस्य भान्ति रश्मयो यस्य केतवो यस्येमा विश्वा भुवनानि सर्वा ।

स कृत्तिकाभिरभि संवसानोऽग्निर्नो देवः सुविते दधातु ॥

^३अनु नोऽद्याऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मयः ॥

^३अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नः कृधि ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूषि तारिषः ॥

^३हव्यवाहमभिमातिषाहं रक्षोहणं पृतनासु जिष्णुम् ।

ज्योतिष्मन्तं दीद्यतं पुरंधिमग्निं स्विष्टकृतमाहुवेम ॥

सोऽत्र जुहोति । अग्नये स्वाहा ॥ कृत्तिकाभ्यः स्वाहा ॥ अम्बायै स्वाहा ॥

दुलायै स्वाहा ॥ नितल्यै स्वाहा ॥ अभ्रयन्त्यै स्वाहा ॥ मेघयन्त्यै

स्वाहा ॥ वर्षयन्त्यै स्वाहा ॥ चुपुणीकायै स्वाहा इति ॥

^३स्विष्टमग्रे अभि तत् पृणाहि विश्वा देव पृतना अभिष्य ।

उरुं नः पन्थां प्रदिशन् विभाहि ज्योतिष्मद्वेहजं न आयुः ॥

१. प्रथमामारभ्य चतुर्दशीं यावद् देवनक्षत्राणामिष्टयः

२. अग्निः अनुमतिश्चेति प्रतीष्टि संचरदेवते । अतः ‘अग्निर्मूर्धा’ ‘भुवो यज्ञस्य’ इत्यग्ने-
यांज्यानुवाक्ये, ‘अनु नोऽद्या’ ‘अन्विदनु’ इत्यनुमतेयांज्यानुवाक्ये तथा च ‘हव्यवाहमभि’
‘स्विष्टमग्रे’ इति स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये सर्वास्विष्टिषु योज्ये

(२)

प्रजापतिः प्रजा असृजत । ता अस्मात् सृष्टाः पराचीरायन् । तासां रोहिणीमन्य-
व्यायत् । सोऽकामयत् । उप मा वर्तेत । समेनया गच्छेयेति । स एतं प्रजापतये रोहिण्यै
चरुं निरवपत् । उप ह वा एनं प्रियमावर्तते सं प्रियेण गच्छते । य एतेन हविषा यजते० ।

प्रजापते रोहिणी वेतु पत्नी विश्वरूपा बृहती चित्रमानुः ।
सा नो यज्ञस्य सुविते दधातु यथा जीवेम शरदः सवीराः ॥
रोहिणी देव्युदगात्पुरस्ताद्विश्वा रूपाणि प्रतिमोदमाना ।
प्रजापतिं हविषा वर्धयन्ती प्रिया देवानामुपयातु यज्ञम् ॥
सोऽत्र जुहोति । प्रजापतये स्वाहा ॥ रोहिण्यै स्वाहा ॥ रोचमानायै स्वाहा ॥
प्रजाभ्यः स्वाहा इति ॥

(३)

सोमो वा अकामयत् । ओषधीनां राज्यमभिजयेयमिति । स एतं सोमाय मृग-
शीर्षाय श्यामाकं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स ओषधीनां राज्यमभ्यजयत् । समानानां
ह वै राज्यमभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

सोमो राजा मृगशीर्षेण आगच्छिष्वं नक्षत्रं प्रियमस्य धाम ।
आप्यायमानो बहुधा जनेषु रेतः प्रजां यजमाने दधातु ॥
यत्ते नक्षत्रं मृगशीर्षमस्ति प्रियं राजन् प्रियतमं प्रियाणाम् ।
तस्मै ते सोम हविषा विधेम शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
सोऽत्र जुहोति । सोमाय स्वाहा ॥ मृगशीर्षाय स्वाहा ॥ इन्वकाभ्यः स्वाहा ॥
ओषधीभ्यः स्वाहा ॥ राज्याय स्वाहा ॥ अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(४)

रुद्रो वा अकामयत् । पशुमान्त्यामिति । स एतं रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रैयङ्गवं चरुं
पयसि निरवपत् । पशुमान् ह वै भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

आर्द्रया रुद्रः प्रथमान एति श्रेष्ठो देवानां पतिरधिनयानाम् ।
नक्षत्रमस्य हविषा विधेम मा नः प्रजां रीरिषन्मोत वीरान् ॥
हेती रुद्रस्य परि णो वृणक्त्वादार्द्रा नक्षत्रं जुषतां हविर्नः ।
प्रमुञ्चमानौ दुरितानि विश्वाऽपाऽघशंसं नुदतामरातिम् ॥
सोऽत्र जुहोति । रुद्राय स्वाहा ॥ आर्द्रायै स्वाहा ॥ पिन्वमानायै स्वाहा ॥
पशुभ्यः स्वाहा इति ॥

(५)

ऋक्षा वा इयमल्लोमकाऽऽसीत् । साऽकामयत् । ओषधीर्भिवनस्पतिभिः प्रजायेयेति ।
सैतमदित्यै पुनर्वसुभ्यां चरुं निरवपत् ० प्रजायते ह वै प्रजया पशुभिः । य एतेन हविषा यजते ० ।

पुनर्नो देव्यदितिः स्पृणोतु पुनर्वसू नः पुनरेतां यज्ञम् ।

पुनर्नो देवा अभियन्तु सर्वे पुनःपुनर्वो हविषा यजामः ॥

एवा न देव्यदितिरनर्वा विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा ।

पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥

सोऽत्र जुहोति । अदित्यै स्वाहा ॥ पुनर्वसुभ्यां स्वाहा ॥ आभूत्यै स्वाहा ॥

प्रजात्यै स्वाहा इति ॥

(६)

बृहस्पतिर्वा अकामयत् । ब्रह्मवर्चसी स्यामिति । स एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं
चरुं पयसि निरवपत् ० ब्रह्मवर्चसी ह वै भवति । य एतेन हविषा यजते ० ।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमभि संवभूव ।

श्रेष्ठो देवानां पृतनासु जिष्णुर्दिशोऽनु सर्वा अभयं नो अस्तु ॥

तिष्यः पुरस्तादुत मध्यतो नो बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात् ।

बाधेतां द्वेषो अभयं कृणुतां सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

सोऽत्र जुहोति । बृहस्पतये स्वाहा ॥ तिष्याय स्वाहा ॥ ब्रह्मवर्चसाय

स्वाहा इति ॥

(७)

देवासुराः संयत्ता आसन् । ते देवाः सर्पेभ्य आश्रेषाम्य आज्ये कर्मन् निरवपन् ०
एतामिह वै देवतामिर्द्विषन्तं भ्रातृव्यमुपनयति । य एतेन हविषा यजते ० ।

इदं सर्पेभ्यो हविरस्तु जुष्टमाश्रेषा येषामनुयन्ति चेतः ।

ये अन्तरिक्षं पृथिवीं क्षियन्ति ते नः सर्पांसो हवमागमिष्ठाः ॥

ये रोचने सूर्यस्याऽपि सर्पा ये दिवं देवीमनुसंचरन्ति ।

येषामाश्रेषा अनुयन्ति कामं तेभ्यः सर्पेभ्यो मधुमज्जुहोमि ॥

सोऽत्र जुहोति । सर्पेभ्यः स्वाहा ॥ आश्रेषाम्यः स्वाहा ॥ दन्दशुकेभ्यः

स्वाहा इति ॥

(८)

पितरो वा अकामयन्त । पितृलोक ऋध्नुयामेति । त एतं पितृभ्यो मघाभ्यः
पुरोडाशः षट्कपालं निरवपन्० पितृलोके ह वा ऋध्नुतेति । य एतेन हविषा यजते० ।

उपहूताः पितरो ये मघासु मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः ।

ते नो नक्षत्रे हवमागमिष्ठाः स्वधामिष्यं प्रयतं जुषन्ताम् ॥

ये अग्निदग्धा येऽग्निदग्धा येऽग्नं लोकं पितरः क्षियन्ति ।

याःश्च विद्म याः उ च न प्रविद्म मघासु यज्ञः सुकृतं जुषन्ताम् ॥

सोऽत्र जुहोति । पितृभ्यः स्वाहा ॥ मघाभ्यः स्वाहा ॥ अनघाभ्यः स्वाहा ॥

अगदाभ्यः स्वाहा ॥ अरुन्धतीभ्यः स्वाहा इति ॥

(९)

अर्यमा वा अकामयत । पशुमान्त्यामिति । स एतमर्यम्णे फल्गुनीभ्यां चरुं निरवपत्०
पशुमान् ह वै भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

गवां पतिः फल्गुनीनामसि त्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ।

तं त्वा वयः सनितारः सनीनां जीवा जीवन्तमुपसंविशेम ॥

येनेमा विश्वा भुवनानि संजिता यस्य देवा अनुसंयन्ति चेतः ।

अर्यमा राजाऽजरस्तुविष्मान् फल्गुनीनामृषभो रोरवीति ॥

सोऽत्र जुहोति । अर्यम्णे स्वाहा ॥ फल्गुनीभ्याः स्वाहा ॥ पशुभ्यः
स्वाहा इति ॥

(१०)

भगो वा अकामयत । भगी श्रेष्ठी देवानाः स्यामिति । स एतं भगाय फल्गुनीभ्यां
चरुं निरवपत्० भगी ह वै श्रेष्ठी समानानां भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

श्रेष्ठो देवानां भगवो भगाऽसि तत्त्वा विदुः फल्गुनीस्तस्य वित्तात् ।

अस्मभ्यं क्षत्रमजरः सुवीर्यं गोमदश्चवदुप संनुदेह ॥

भगो ह दाता भग इत्प्रदाता भगो देवीः फल्गुनीराविवेश ॥

भगस्येत्तं प्रसवं गमेम यत्र देवैः सधमादं मदेम ॥

सोऽत्र जुहोति । भगाय स्वाहा ॥ फल्गुनीभ्याः स्वाहा ॥ श्रेष्ठाय
स्वाहा इति ॥

(११)

सविता वा अकामयत । श्रन्मे देवा दधीरन् । सविता स्यामिति । स एतं सवित्रे हस्ताय पुरोडाशं द्वादशकपालं निरवपदाशूनां व्रीहीणाम्० श्रद्धा वा अस्मै मनुष्या दधते । सविता समानानां भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

आयातु देवः सवितोपयातु हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

वहन् हस्तं सुभगं विद्वानापसं प्रयच्छन्तं पपुरि पुण्यमच्छ ॥

हस्तः प्रयच्छत्वमृतं वसीयो दक्षिणेन प्रतिगृभ्णीम एनत् ।

दातारमद्य सविता विदेय यो नो हस्ताय प्रसुवाति यज्ञम् ॥

सोऽत्र जुहोति । सवित्रे स्वाहा ॥ हस्ताय स्वाहा ॥ ददते स्वाहा ॥ पृणते

स्वाहा ॥ प्रयच्छते स्वाहा ॥ प्रतिगृभ्णते स्वाहा इति ॥

(१२)

त्वष्टा वा अकामयत । चित्रं प्रजां विन्देयेति । स एतं त्वष्ट्रे चित्रायै पुरोडाशमष्टा-
कपालं निरवपत्० चित्रं ह वै प्रजां विन्दते । य एतेन हविषा यजते० ।

त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्रां सुभं ससं युवतिं रोचमानाम् ।

निवेशयन्नमृतान् मर्त्यांश्च रूपाणि पिंशन् भुवनानि विश्वा ॥

तन्नस्त्वष्टा तदु चित्रा विचष्टां तन्नक्षत्रं भूरिदा अस्तु मद्यम् ।

तन्नः प्रजां वीरवतीं सनोतु गोभिर्नो अश्वैः समनक्तु यज्ञम् ॥

सोऽत्र जुहोति । त्वष्ट्रे स्वाहा ॥ चित्रायै स्वाहा ॥ चैत्राय स्वाहा ॥ प्रजायै

स्वाहा इति ॥

(१३)

वायुर्वा अकामयत । कामचारमेषु लोकेष्वभिजयेयमिति । स एतद्वायवे निष्ठयायै गृष्ट्यायै
दुग्धं पयो निरवपत्० कामचारं ह वा एषु लोकेष्वभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

वायुर्नक्षत्रमभ्येति निष्ठ्यां तिग्मशृङ्गो वृषभो रोरुवाणः ।

समीरयन् भुवना मातरिश्वाऽप द्वेषांसि नुदतामरातीः ॥

तन्नो वायुस्तदु निष्ठ्या शृणोतु तन्नक्षत्रं भूरिदा अस्तु मद्यम् ।

तन्नो देवासो अनुजानन्तु कामं यथा तरेम दुरितानि विश्वा ॥

सोऽत्र जुहोति । वायवे स्वाहा ॥ निष्ठ्यायै स्वाहा ॥ कामचाराय स्वाहा ॥

अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(१४)

इन्द्राग्नी वा अकामयेताम् । श्रैष्ठ्यं देवानामभिजयेवेति । तावेतमिन्द्राग्निभ्यां विशा-
खाभ्यां पुरोडाशमेकादशकपालं निरवपताम्० श्रैष्ठ्यं ह वै समानानामभिजयति । य एतेन
हविषा यजते० ।

दूरमस्मच्छत्रवो यन्तु भीतास्तदिन्द्राग्नी कृणुतां तद्विशाखे ।

तन्नो देवा अनुमदन्तु यज्ञं पश्चात्पुरस्तादभयं नो अस्तु ॥

नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ ।

विषूचः शत्रूनपबाधमानावप क्षुधं नुदतामरातिम् ॥

सोऽत्र जुहोति । इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ॥ विशाखाभ्यां स्वाहा ॥ श्रैष्ठ्याय

स्वाहा ॥ अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(१५)

अथैतत्पौर्णमास्या आज्यं निर्वपति० क्षिप्रमेनं स काम उपनमति । येन कामेन
यजते० ।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।

तस्यां देवा अधिसंवसन्त उत्तमे नाक इह मादयन्ताम् ॥

पृथ्वी सुवर्चा युवतिः सजोषाः पौर्णमास्युदगाच्छोभमाना ।

आप्याययन्ती दुरितानि विश्वोरुं दुहां यजमानाय यज्ञम् ॥

सोऽत्र जुहोति । पौर्णमास्यै स्वाहा ॥ कामाय स्वाहा ॥ अगत्यै स्वाहा
इति ॥

(१६)

मित्रो वा अकामयत । मित्रधेयमेषु लोकेष्वभिजयेयमिति । स एतं मित्रायाऽनूराधेभ्य-
श्चरुं निरवपत्० मित्रधेयं ह वा एषु लोकेष्वभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

ऋध्यास्म हव्यैर्नमसोपसद्य मित्रं देवं मित्रधेयं नो अस्तु ।

अनूराधान् हविषा वर्धयन्तः शतं जीवेम शरदः सवीराः ॥

चित्रं नक्षत्रमुदगात् पुरस्तादनूराधास इति यद्वदन्ति ।

तन्मित्र एति पथिभिर्देवयानैर्हिरण्ययैर्विततैरन्तरिक्षे ॥

सोऽत्र जुहोति । मित्राय स्वाहा ॥ अनूराधेभ्यः स्वाहा ॥ मित्रधेयाय स्वाहा ॥ अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(१७)

इन्द्रो वा अकामयत । ज्यैष्ठ्यं देवानामभिजयेयमिति । स एतमिन्द्राय ज्येष्ठायै पुरोडाशमेकादशकपालं निरवपन्महाव्रीहीणाम्० ज्यैष्ठ्यं ह वै समानानामभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति यस्मिन् वृत्रं वृत्रतूर्यं ततार ।
तस्मिन् वयममृतं दुहानाः क्षुधं तरेम दुरिति दुरिष्टिम् ॥
पुरंदराय वृषभाय धृष्णवेऽषाढाय सहमानाय मीढुषे ।
इन्द्राय ज्येष्ठा मधुमद्दुहानोरं कृणोतु यजमानाय लोकम् ॥
सोऽत्र जुहोति । इन्द्राय स्वाहा ॥ ज्येष्ठायै स्वाहा ॥ ज्यैष्ठ्याय स्वाहा ॥
अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(१८)

प्रजापतिर्वा अकामयत । मूलं प्रजां विन्देयेति । स एतं प्रजापतये मूलाय चरुं निरवपत्० मूलं ह वै प्रजां विन्दते । य एतेन हविषा यजते० ।

मूलं प्रजां वीरवर्तीं विदेय पराच्येतु निर्ऋतिः पराचा ।
गोभिर्नक्षत्रं पशुभिः समक्तमहर्भूयाद्यजमानाय मद्यम् ॥
अहर्नो अद्य सुविते दधातु मूलं नक्षत्रमिति यद्वदन्ति ।
पराचीं वाचा निर्ऋतिं नुदामि शिवं प्रजायै शिवमस्तु मद्यम् ॥
सोऽत्र जुहोति । प्रजापतये स्वाहा ॥ मूलाय स्वाहा ॥ प्रजायै स्वाहा इति ॥

(१९)

आपो वा अकामयन्त । समुद्रं काममभिजयेमेति । ता एतमद्भ्योऽषाढाभ्यश्चरुं निरवपन्० समुद्रं ह वै काममभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्ष उत पार्थिवीर्याः ।
यासामषाढा अनुयन्ति कामं ता न आपः शः स्योना भवन्तु ॥
याश्च कूप्या याश्च नाद्याः समुद्रिया याश्च वैशन्तीरुत प्रासचीर्याः ।
यासामषाढा मधु भक्षयन्ति ता न आपः शः स्योना भवन्तु ॥
सोऽत्र जुहोति । अद्भ्यः स्वाहा ॥ अषाढाभ्यः स्वाहा ॥ समुद्राय स्वाहा ॥
कामाय स्वाहा ॥ अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(२०)

विश्वे वै देवा अकामयन्त । अनपजय्यं जयेमेति । त एतं विश्वेभ्यो देवेभ्यो-
ऽषाढाभ्यश्चरं निरवपन्० अनपजय्यं ह वै जयति । य एतेन हविषा यजते० ।

तन्नो विश्वे उपभृष्वन्तु देवास्तदषाढा अभिसंयन्तु यज्ञम् ।

तन्नक्षत्रं प्रथतां षशुभ्यः कृषिर्वृष्टिर्यजमानाय कल्पताम् ॥

शुभ्राः कन्या युवतयः सुपेशसः कर्मकृतः सुकृतो वीर्यावतीः ।

विश्वान् देवान् हविषा वर्धयन्तीरषाढाः काममुपयान्तु यज्ञम् ॥

सोऽत्र जुहोति । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ अषाढाभ्यः स्वाहा ॥ अनप-
जय्याय स्वाहा ॥ जित्यै स्वाहा इति ॥

(२१)

ब्रह्म वा अकामयत । ब्रह्मलोकमभिजयेयमिति । तदेतं ब्रह्मणेऽभिजिते चरं निरवपत्०
ब्रह्मलोकं ह वा अभिजयति । य एतेन हविषा यजते० ।

यस्मिन् ब्रह्माऽभ्यजयत्सर्वमेतदग्रे च लोकमिदम् च सर्वम् ।

तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विजित्य श्रियं दधात्वहणीयमानम् ॥

उभौ लोकौ ब्रह्मणा संजितेभौ तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विष्टाम् ।

तस्मिन्वयं पृतनाः संजयेम तं नो देवासो अनुजानन्तु कामम् ॥

सोऽत्र जुहोति । ब्रह्मणे स्वाहा ॥ अभिजिते स्वाहा ॥ ब्रह्मलोकाय स्वाहा ॥

अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(२२)

विष्णुर्वा अकामयत । पुण्यं लोकं शृण्वीय । न मा पापी कीर्तिरागच्छेदिति ।
स एतं विष्णवे श्रोणायै पुरोडाशं त्रिकपालं निरवपत्० पुण्यं ह वै लोकं शृणुते । नैनं पापी
कीर्तिरागच्छति । य एतेन हविषा यजते० ।

भृष्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां पुण्यामस्या उपभृणोमि वाचम् ।

महीं देवीं विष्णुपत्नीमजूर्यां प्रतीचीमेनां हविषा यजामः ॥

त्रेधा विष्णुरुगायो विचक्रमे महीं दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम् ।

तच्छ्रोणैति श्रव इच्छमाना पुण्यं लोकं यजमानाय कृष्वतीं ॥

सोऽत्र जुहोति । विष्णवे स्वाहा ॥ श्रोणायै स्वाहा ॥ श्लोकाय स्वाहा ॥

श्रुताय स्वाहा इति ॥

(२३)

वसवो वा अकामयन्त । अग्रं देवतानां परीयामेति । त एतं वसुभ्यः श्रविष्ठाभ्यः पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपन्० अग्रं ह वै समानानां पर्येति । य एतेन हविषा यजते० ।

अष्टौ देवा वसवः सोम्यासश्चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः ।

ते यज्ञं पान्तु रजसः परस्तात्संवत्सरीणममृतं स्वस्ति ॥

यज्ञं नः पान्तु वसवः पुरस्तादक्षिणतोऽभियन्तु श्रविष्ठाः ।

पुण्यं नक्षत्रमभि संविशाम मा नो अरातिरघशं साऽगन् ॥

सोऽत्र जुहोति । वसुभ्यः स्वाहा ॥ श्रविष्ठाभ्यः स्वाहा ॥ अग्राय स्वाहा ॥

परीत्यै स्वाहा इति ॥

(२४)

इन्द्रो वा अकामयत । दृढोऽशिथिलः स्यामिति । स एतं वरुणाय शतभिषजे भेषजेभ्यः पुरोडाशं दशकपालं निरवपत् कृष्णानां ब्रीहीणाम्० दृढो ह वा अशिथिलो भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजो नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः ।

तौ देवेभ्यः कृणुतो दीर्घमायुः शतं सहस्रा भेषजानि घत्तः ॥

यज्ञं नो राजा वरुण उपयातु तं नो विश्वे अभि संयन्तु देवाः ।

तन्नो नक्षत्रं शतभिषग्जुषाणं दीर्घमायुः प्रतिरद्भेषजानि ॥

सोऽत्र जुहोति । वरुणाय स्वाहा ॥ शतभिषजे स्वाहा ॥ भेषजेभ्यः स्वाहा

इति ॥

(२५)

अजो वा एकपादकामयत । तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी स्यामिति । स एतमजायैकपदे प्रोष्ठपदेभ्यश्चरुं निरवपत्० तेजस्वी ह वै ब्रह्मवर्चसी भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

अज एकपादुदगात्पुरस्ताद्विश्वा भूतानि प्रतिमोदमानः ।

तस्य देवाः प्रसवं यन्ति सर्वे प्रोष्ठपदासो अमृतस्य गोपाः ॥

विभ्राजमानः समिधान उग्र आऽन्तरिक्षमरुहदगन् घाम् ।

तं सूर्यं देवमजमेकपादं प्रोष्ठपदासो अनुयन्ति सर्वे ॥

सोऽत्र जुहोति । अजायैकपदे स्वाहा ॥ प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा ॥ तेजसे स्वाहा ॥

ब्रह्मवर्चसाय स्वाहा इति ॥

(२६)

अहिर्वै बुध्नियोऽकामयत् । इमां प्रतिष्ठां विन्देयेति । स एतमहये बुध्नियाय प्रोष्ठपदेभ्यः पुरोडाशं भूमिकपालं निरवपत् ० इमां ह वै प्रतिष्ठां विन्दते । य एतेन हविषा यजते ० ।

अहिर्बुध्नियः प्रथमान एति श्रेष्ठो देवानामुत मानुषाणाम् ।
तं ब्राह्मणाः सोमपाः सोम्यासः प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे ॥
चत्वार एकमभि कर्म देवाः प्रोष्ठपदास इति यान् वदन्ति ।
ते बुध्नियं परिषद्यं स्तुवन्तोऽहिं रक्षन्ति नमसोपसद्य ॥
सोऽत्र जुहोति । अहये बुध्नियाय स्वाहा ॥ प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा ॥ प्रतिष्ठायै
स्वाहा इति ॥

(२७)

पूषा वा अकामयत् । पशुमान्स्यामिति । स एतं पूष्णे रेवत्यै चरुं निरवपत् ० पशुमान्
ह वै भवति । य एतेन हविषा यजते ० ।

पूषा रेवत्यन्वेति पन्थां पुष्टिपती पशुपा वाजवस्त्यौ ।
इमानि हव्या प्रयता जुषाणा सुगैर्नो यानैरुपयातां यज्ञम् ॥
धुद्रान् पशून् रक्षतु रेवती नो गावो नो अश्वाः अन्वेतु पूषा ।
अन्नं रक्षन्तौ बहुधा विरूपं वाजं सनुतां यजमानाय यज्ञम् ॥
सोऽत्र जुहोति । पूष्णे स्वाहा ॥ रेवत्यै स्वाहा ॥ पशुभ्यः स्वाहा इति ॥

(२८)

अश्विनौ वा अकामयेताम् । श्रोत्रस्विनावबधिरो स्यावेति । तावेतमश्विन्यामश्वयुग्म्यां
पुरोडाशं द्विकपालं निरवपताम् ० श्रोत्रस्वी ह वा अबधिरो भवति । य एतेन हविषा यजते ० ।

तदश्विनावश्वयुजोपयातां शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ।
स्वं नक्षत्रं हविषा यजन्तौ मध्वा संपृक्तौ यजुषा समक्तौ ॥
यौ देवानां भिषजौ हव्यवाहौ विश्वस्य दूतावमृतस्य गोपौ ।
तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयातां नमोऽश्विन्यां कृणुमोऽश्वयुग्म्याम् ॥
सोऽत्र जुहोति । अश्विन्यां स्वाहा ॥ अश्वयुग्म्यां स्वाहा ॥ श्रोत्राय
स्वाहा ॥ श्रुत्यै स्वाहा इति ॥

(२९)

यमो वा अकामयत । पितृणां राज्यमभिजयेयमिति । स एतं यमायाऽपभरणीभ्यश्चरं
निरवपत् ० समानानां ह वै राज्यमभिजयति । य एतेन हविषा यजते ० ।

अप पाप्मानं भरणीर्भरन्तु तद्यमो राजा भगवान् विचष्टाम् ।

लोकस्य राजा महतो महान् हि सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु ॥

यस्मिन्नक्षत्रे यम एति राजा यस्मिन्नेनमभ्यषिञ्चन्त देवाः ।

तदस्य चित्रं हविषा यजामाऽप पाप्मानं भरणीर्भरन्तु ॥

सोऽत्र जुहोति । यमाय स्वाहा ॥ अपभरणीभ्यः स्वाहा ॥ राज्याय
स्वाहा ॥ अभिजित्यै स्वाहा इति ॥

(३०)

अथैतदमावास्याया आज्यं निर्वपति ० क्षिप्रमेनं स काम उपनमति । येन कामेन
यजते ० ।

निवेशनी संगमनी वसूनां विश्वा रूपाणि वसून्नावेशयन्ती ।

सहस्रपोषं सुभगा रराणा सा न आ गन् वर्चसा संविदाना ॥

यत्ते देवा अदधुर्भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।

सा नो यज्ञं पिष्टुहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥

सोऽत्र जुहोति । अमावास्यायै स्वाहा ॥ कामाय स्वाहा ॥ अगत्यै स्वाहा इति ॥

(३१)

चन्द्रमा वा अकामयत । अहोरात्रानर्धमासान् मासानृतृन्संवत्सरमाप्त्वा । चन्द्रमसः
सायुज्यं सलोकतामाप्नुयामिति । स एतं चन्द्रमसे प्रतीदृश्यायै पुरोडाशं पञ्चदशकपालं
निरवपत् ० अहोरात्रान् ह वा अर्धमासान् मासानृतृन् संवत्सरमाप्त्वा । चन्द्रमसः सायुज्यं
सलोकतामाप्नोति । य एतेन हविषा यजते ० ।

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे ।

भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥

यमादित्या अं शुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति ।

तेन नो राजा वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥

सोऽत्र जुहोति । चन्द्रमसे स्वाहा ॥ प्रतीदृश्यायै स्वाहा ॥ अहोरात्रेभ्यः

स्वाहा ॥ अर्धमासेभ्यः स्वाहा ॥ मासेभ्यः स्वाहा ॥ ऋतुभ्यः स्वाहा ॥

संवत्सराय स्वाहा इति ॥

(३२)

अहोरात्रे वा अकामयेताम् । अत्यहोरात्रे मुच्येवहि । न नावहोरात्रे आप्नुयातामिति ।
ते एतमहोरात्राभ्यां चरुं निरवपताम् । द्वयानां व्रीहीणाम् । शुक्लानां च कृष्णानां च । सवात्यो-
र्दुग्धे । श्वेतौ च कृष्णौ च० अति ह वा अहोरात्रे मुच्यते । नैनमहोरात्रे आप्नुतः । य एतेन
हविषा यजते० ।

ये विरूपे समनसा संव्ययन्ती समानं तन्तुं परितातनाते ।
विभू प्रभू अनुभू विश्वतो हुवे ते नो नक्षत्रे हवमागमेतम् ॥
वयं देवी ब्रह्मणा संविदानाः सुरत्नासो देववीर्तिं दधानाः ।
अहोरात्रे हविषा वर्षयन्तोऽति पाप्मानमतिमुक्त्या गमेम ॥
सोऽत्र जुहोति । अह्ने स्वाहा ॥ रात्रियै स्वाहा ॥ अतिमुक्त्यै स्वाहा इति ॥

(३३)

उषा वा अकामयत । प्रियाऽऽदित्यस्य सुभगा स्यामिति । सैतमुषसे चरुं निरवपत्०
प्रियो ह वै समानानां सुभगो भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

प्रत्युवद्दश्यायती व्युच्छन्ती दुहिता दिवः । अपो मही वृणुते चक्षुषा ॥
तमो ज्योतिष्कृणोति स्वनर्युदस्रियाः सचते सूर्यः ।
सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिमत्तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च ॥
सोऽत्र जुहोति । उपसे स्वाहा ॥ व्युष्ट्यै स्वाहा ॥ व्यूषुष्यै स्वाहा ॥
व्युच्छन्त्यै स्वाहा ॥ व्युष्ट्यै स्वाहा इति ॥

(३४)

अथैतस्मै नक्षत्राय चरुं निर्वपति । यथा त्वं देवानामसि । एवमहं मनुष्याणां भूयास-
मिति । यथा ह वा एतदेवानाम् । एव ह वा एष मनुष्याणां भवति । य एतेन हविषा
यजते० ।

सं भक्तेन गमेमहि तन्नो नक्षत्रमर्चिमत् ।
भानुमत्तेज उच्चरदुप यज्ञमिहाऽऽगमत् ॥
प्र नक्षत्राय देवायेन्द्रायेन्दु हवामहे ।
स नः सविता सुवत् सनि पुष्टिदां वीरवत्तमम् ॥
सोऽत्र जुहोति । नक्षत्राय स्वाहा ॥ उदेष्यते स्वाहा ॥ उद्यते स्वाहा ॥
उदिताय स्वाहा ॥ हरसे स्वाहा ॥ भरसे स्वाहा ॥ भ्राजसे स्वाहा ॥ तेजसे
स्वाहा ॥ तपसे स्वाहा ॥ ब्रह्मवर्चसाय स्वाहा इति ॥

(३५)

सूर्यो वा अकामयत । नक्षत्राणां प्रतिष्ठा स्यामिति । स एत५ सूर्याय नक्षत्रेभ्यश्चरं
निरवपत्० प्रतिष्ठा ह वै समानानां भवति । य एतेन हविषा यजते० ।

उदु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याऽग्रेः ।

आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष५ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

सोऽत्र जुहोति । सूर्याय स्वाहा ॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ प्रतिष्ठायै स्वाहा
इति ॥

(३६)

अथैतमदित्यै चरं निर्वपति० ।

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु । अदितिः पात्व५ हसः ॥

महीमू षु मातर५ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।

तुविश्वनामजरन्तीमुरुची५ सुशर्माणमदिति५ सुप्रणीतिम् ॥

सोऽत्र जुहोति । अदित्यै स्वाहा ॥ प्रतिष्ठायै स्वाहा इति ॥

(३७)

अथैतं विष्णवे चरं निर्वपति० ।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पा५ सुरे ॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

सोऽत्र जुहोति । विष्णवे स्वाहा ॥ यज्ञाय स्वाहा ॥ प्रतिष्ठायै स्वाहा इति ॥

निरुद्धः

मैसं [२.२.९]—इन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेन्निरुद्धं
याजयेत्० वशा दक्षिणा० ।

[४.१२.२]—

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।

ब्रह्माणा इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥

वृष्णे यत्ते वृष्णो अर्कमर्चानिन्द्रा ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।

अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्पून् ॥

मैसं [२.२.११]—ऐन्द्रमेककपालं निर्वपेन्निरुद्धं याजयेत् । आ प्रेहि, परमस्याः परावता इति याज्यानुवाक्ये^१ स्याताम्० ।

[४.१२.३]—

अर्वावतो ना आगहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तता आगहि ॥

मैसं [२.२.११]—ऐन्द्रं त्रयोदशकपालं निर्वपेन्निरुद्धं याजयेत्० ।

[४.१२.३]—

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये भर ॥

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून् ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।

इन्द्राऽऽभर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

शूरो नृषाता श्रवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥

नृज्यायं (जिज्यासेत्, जिनीयात्)

मैसं [२.१.३]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदग्नीषोमीयमेकादशकपालं^२ द्वावापृथिवीयं द्विकपालं यः संप्राप्तं जिगीषेन्नृज्यायं वा जिज्यासेत्० स यदा संप्राप्तं जयेन्नृज्यायं वा जिनीयादथाऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैन्द्राग्नमेकादशकपालं द्वावापृथिवीयं द्विकपालम्० ।

[४.११.१]—मही द्यौः पृथिवी च नः.... ॥ घृतवती भुवनानामभिध्रियोर्वी.... ॥

या वा सन्ति पुरुस्पृहः.... ॥ शुचिं नु स्तोमं.... ॥

परमेष्ठी

मैसं [२.२.५]—परमेष्ठिने द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत परमेष्ठी स्यामिति० तस्मै धनुश्च तिस्रश्च प्रयच्छेद् अग्निष्टे तेजः प्रयच्छत्विन्द्र इन्द्रियं पित्र्यां बन्धुताम् इति० ।

१. 'आ प्रेहि.' इति मन्त्रो मैसं-मध्ये नोपलभ्यते । 'परमस्याः परावतः' (मैसं २.७.७) इति मन्त्रस्त्वग्निदेवताकः । माश्रौ ५.१.१० अत्र 'अर्वावतो' 'यदन्तरा' इत्यस्या इष्टेर्याज्यानुवाक्ये प्रदर्शिते । मैसं-स्थकाम्येष्टिविधानक्रमेण याज्यानुवाक्याप्रकरणेऽवधारितेऽपि माश्रौ-विधानमेव युज्यते । एवं सति 'आ प्रेहि परमस्याः परावता इति याज्यानुवाक्ये स्याताम्' इति विधिवाक्यं कथं समन्वैतीति न ज्ञायते । ब्लूमफील्डमहोदयेन संपादितायां वैदिकपादसूच्यां (Vedic Concordance) 'आ प्रेहि परमस्याः परावतः' इत्येकस्यैव मन्त्रस्यांशः इति प्रदर्शितं, तत् प्रामादिकं प्रतिभाति । २. 'अग्निर्मूर्धा...' 'शुवो यज्ञस्य...' इत्यग्नेः, 'अग्नीषोमा सवेदसा...' 'शुवमेतानि...' इत्यग्नीषोमयोश्च याज्यानुवाक्ये

[४.१२.१]—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुता आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याऽध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

परियत्तः

दृश्यतां 'बद्धो वा परियत्तो वा'

पर्जन्यः

दृश्यतां 'कारीरीष्टिः' 'वृष्टिः'

पशवः

तैसं [२.२.७]—इन्द्रायेन्द्रियावते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत्पशुकामः ० ।

[१.६.१२]—

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषब्धे ॥
तैसं [२.२.७]—ऐन्द्रं चरुं निर्वपेत्पशुकामः ० ।

[१.६.१२]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥

तैसं [२.३.२]—अग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय प्रदात्रे पुरोडाश-
मेकादशकपालं पशुकामः ० दधि मधु घृतमापो धाना भवन्ति ० पञ्चगृहीतं भवति ० प्राजापत्यं
भवति ० पङ्क्त्यौ याज्यानुवाक्ये भवतः ० ।

[२.२.१२]—

अग्ने दा दाशुषे रयि वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सनुमतः ॥
दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजः श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि सुवर्णं शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥
अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषि यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाऽग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥

मा नो मर्धिरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
 नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥
 आ तू भर माकिरेतत् परि घाद्विद्वा हि त्वा वसुपतिं वस्त्रनाम् ।
 इन्द्र यत्ते माहिनं दन्नमस्त्यस्मभ्यं तद्वर्यश्च प्र यन्धि ॥
 घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥
 उभे सुश्वन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
 उतो न उत्पुण्या उक्थेषु शवसस्पत इष५ स्तोतृभ्य आ भंर ॥

तैसं [२.४.४]—यः पशुकामः स्यात्तस्मा एत५ सोमापौष्णं गार्मुतं चरुं
 निर्वपेत्० ।

[१.८.२२]—

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
 जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥
 इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमा५सि गूहतामजुष्टा ।
 आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥

तैसं [२.४.६]—चित्रया यजेत पशुकामः० प्रैवाऽऽग्नेयेन वापयति रेतः सौम्येन
 दधाति० त्वष्टा रूपाणि वि करोति । सारस्वतौ भवतः० सिनीवाल्यै चरुर्मवति० ऐन्द्र उत्तमो
 भवति० सत्तैतानि हवी५षि भवन्ति० अथैता आहुतीर्जुहोति० ।

[२.४.५]—

अग्ने१ गोभिर्न आ गहीन्दो पुष्ट्या जुषस्व नः । इन्द्रो धर्ता गृहेषु नः ॥
 सविता यः सहस्रियः स नो गृहेषु रारणत् । आ पूषा एत्वा वसु ॥
 धाता ददातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन वावनत् ॥
 त्वष्टा यो वृषभो वृषा स नो गृहेषु रारणत् । सहस्रेणाऽयुतेन च ॥
 येन देवा अमृतं दीर्घ५श्रवो दिव्यैरयन्त ।
 रायस्पोष त्वस्मभ्यं गवां कुलिम जीवस आ युवस्व ॥
 अग्निर्गृहपतिः सोमो विश्ववनिः सविता सुमेधाः स्वाहा ॥
 अग्ने गृहपते यस्ते घृत्यो भागस्तेन सह ओज आक्रममाणाय धेहि श्रैष्ठ्यात्
 पथो मा योषं मूर्धा भूयास५ स्वाहा ॥

[३.१.११]—

अग्निना रयिमश्रवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥
 गोमा५ अग्नेऽविमा५ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदग्रमृष्यः ।
 इडावा५ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥
 आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्णियम् । भवा वाजस्य संगथे ॥
 सं ते पया५सि समु यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहः ।
 आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवा५स्युत्तमानि धिष्व ॥
 इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥
 तन्नस्तुरीपमध पोषयित्तु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
 यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥
 शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥
 पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
 प्रजां त्वष्टा वि प्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥
 प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥
 आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजताऽऽ गन्तु यज्ञम् ॥
 हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥
 पीपिवा५स५ सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥
 ये ते सरस्व उर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेषां ते सुम्रमीमहे ॥
 यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपः ॥
 यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्त५ सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥
 दिव्य५ सुपर्णं वयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
 अभीषतो वृष्ट्या तर्पयन्तं त५ सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥
 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
 जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिङ्ढि नः ॥
 या सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुस्रवरी ।
 तस्यै विश्वपत्न्यै हविः सिनीवालयै जुहोतन ॥
 इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥

तैस [२.४.११]—०य एवं विद्वा५ लैधातवीयेन पशुकामो यजते० ॥

‘ नैधातवीयेष्टिः ’ द्रष्टव्या

मैसं [२.१.४]—सौमापौष्णं चरुं निर्वपेन्नेमपिष्टं पशुकामः० ।

[४.११.२]—

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥
उत नो ब्रह्मन् हविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्रे सहस्रसातमः ॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोक्वत् पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्रे सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥

मैसं [२.१.५]—सौमापौष्णं चरुं निर्वपेन्नेमपिष्टं पशुकामः० ।

[४.११.२]—

सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

दृश्यतां 'ग्रामः' (मैसं २.१.८; २.२.३)

मैसं [२.२.४]—प्राजापत्यं चरुं निर्वपेद्गार्मुतं पशुकामः पृश्नीनां गवां दुग्धे ।
पृश्नीनां गवामाज्यं स्यात् । तत्राऽपि गोमूत्रस्याऽऽश्वोतयेयुः० ।

[२.१३.२३]—हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे.... ॥ यः प्राणतो निमिषतश्च.... ॥

मैसं [२.२.४]—बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेद्गार्मुतं पशुकामः० ।

[४.१२.१]—बृहस्पतिं हवामहे.... ॥ स सुष्टुभा स ऋकता.... ॥

मैसं [२.२.८]—इन्द्रायेन्द्रियावता एकादशकपालं निर्वपेत्पशुकामः० ।

[४.१२.२]—

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि ता आवृणो ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषब्धे ॥

मैसं [२.२.१३]—यः पशुकामः स्यात्सोऽमावास्यामिष्ट्वा वत्सानपाकुर्यात् ।
ये पुरोडास्याः स्युस्तांस्त्रेधा कुर्यात् । ये क्षोदिष्ठास्तमग्नये सनिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् । ये
मध्यमास्तं विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुम् । ये स्थविष्ठास्तमिन्द्राय प्रदात्रे दधंश्चरुम्० ।

[४.१२.३]—

इडामग्ने पुरुद०स० सनि गोः.... ॥ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्.... ॥
किमिच्छे विष्णो परिचक्ष्यं भूत्.... ॥ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट.... ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ॥
का ते निषत्तिः^१ किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥

मैसं [२.३.६]—

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रं पञ्चकपालम् । दधि मधु घृतं धाना उदकं तत्स०सृष्टं
भवति । अर्यग्णे चरुर्भवति० पङ्क्ती याज्यानुवाक्ये० स सर्वो भूत्वा पशूनाप्नोति० तदाहुरैन्द्र
एकादशकपालः कार्या इति० अथो आहुः प्राजापत्यं कार्यमिति० ।

[४.१२.४]—

आ नो अग्ने सुचेतुना.... ॥
आ नो अग्ने रयि भर सत्रासाह० वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥
मदे मदे हि नो ददिर्युथा गवामृजुक्रतुः ।
संगृभाय पुरु शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आभर ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
ता अस्य पृशनायुवः सोम० श्रीणन्ति पृथयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्र० हिन्वन्ति सायक० वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
घृतं न पूतं तनूररेपाः.... ॥ ओमे सुश्वन्द्र विस्पते.... ॥
आऽर्यमा याति वृषभस्तुराषाड् दाता वसूनि विदधे तनूपाः ।
सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥
ये तेऽर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति ।
तेभिर्नो देव महि शर्म यछ शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

१. 'निषत्तिः' इति मुद्रितपुस्तके । किंतु दृश्यतां ऋक्सं ४.२१.९; ब्लूमफील्ड-
महोदयस्य वैदिकपादसूची

मैसं [४.३.५]—छन्दांसि वै देविकाः० पष्ठौही दक्षिणा० पशुकामं याज-
येत्० या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतियौत्तरा सा राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा
सा कुहूः । चन्द्रमा एव धाता । यद् द्वे अवरे द्वे परे तन्मिथुनम्० ।

[४.१२.६]—

अन्वद्य नो अनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ राकामहं सुहवां
सुष्टुती हुवे.... ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसः.... ॥ सिनीवालि पृथु-
ष्टुके.... ॥ या सुपाणिः स्वङ्गुरिः.... ॥ कुहूमहं सुवृतं विब्रनापसं.... ॥
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी.... ॥ धाता दधातु नो रयिं.... ॥ धाता ददातु
दाशुषे.... ॥

मैसं [२.६.४]—सौमापौष्ण एकादशकपाल ऐन्द्रापौष्णश्चरुः पौष्णश्चरुः ।
श्यामो दक्षिगा० ।

[४.३.७]—अथैतत्त्रिषंयुक्तम् । यत्पूर्वं त्रिषंयुक्तं वीरजननं तत् । यदुत्तरं
पशुजननं तत्० यदुत्तरं त्रिषंयुक्तं तेन पशुकामो यजेत० ।

[४.११.२]—सोमापूषणा जनना.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

[४.१२.६]—इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥
यन्निर्णिजा.... ॥

[४.११.१]—पूषा गा अन्वेतु.... ॥ शुक्रं ते अन्यत्.... ॥

कासं [१०.१]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्पशुमालप्स्यमानः० ।

[४.१६]—अग्नाविष्णू महि तद्वां.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम.... ॥ अग्निर्मुखं
प्रथमो देवतानां.... ॥

कासं [१०.८]—इन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालं निर्वपेत्पशुकामः० ।

[८.१६]—इन्द्रियाणि शतक्रतो.... ॥ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥

कासं [१०.११]—प्राजापत्यं चरुं निर्वपेद्गार्मुतमप्सु पशुकामः० गोमूत्र-
स्याऽपि स्यात्० ।

[८.१७]—हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे.... ॥ यः प्राणतो निमिषतश्च.... ॥

कासं [१०.११]—सौमापौष्णं चरुं निर्वपेद्गार्मुतमप्सु प्रजाकामो वा पशुकामो
वा० गोमूत्रस्याऽपि स्यात्० ।

[८.१७]—सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

कासं [११.२]—

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं दधि मधु घृतं धानास्तण्डुलास्तत् सीसृष्टिं स्यात्तेन पशुकामो यजेत० यदैन्द्रे द्वे सह कुर्याज्जामि स्यात् । प्राजापत्यं कार्यम्० रेवती सीसृष्टस्य याज्यानुवाक्ये शक्ररी इतरस्य० एतयेष्ट्वाऽऽयुष्यया यजेत० यद्येतया न यजेत वरं दद्यात्० द्वौ दद्यात्० त्रीन् दद्यात्० एकमेव दद्यात्० सिध्मां गां दद्यात्० सर्वाणि वयींसी दद्यात्० यदि नाऽभ्याशीसेत पष्ठौहीमन्तर्वतीं दद्यात्० ।

[१०.१२]—

आ नो अग्ने रयिं भर.... ॥ गोमी अग्नेऽविमी.... ॥

मदे मदे हि नो ददिः.... ।

संगृभाय पुरु शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आभर ॥

शिभिन् वाजानां पते शचीवस्तव दीसना ।

आ तू न इन्द्र शीसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमध ॥

रेवतीर्नः सधमादः.... ॥ प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून्.... ॥

‘त्रैधातवीयेष्टिः’ द्रष्टव्या

कासं [११.५]—सौमापौष्णं चरुं पशुकामोऽनुनिर्वपेत्० ।

दृश्यतां ‘ब्रह्मवर्चसम्’ (कासं ११.५)

[११.१२]—सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

कासं [११.५]—सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् प्रजाकामो वा पशुकामो वा० ॥

[१२.१]—पयस्यया यजेत पशुकामः० पयस्या भवति० व्यूहति० समूहति ।

समानमेककपालानां ब्राह्मणम्० ॥

दृश्यताम् ‘आमयावी’ (कासं १२.१)

कासं [१२.२]—

एतया यजेत पशुकामः० एतया यजेत सजातकामः० वैश्वदेवः कार्यः० पृषत्याः पृषद्वत्साया दुग्धे भवति० सर्वेभ्यस्सजातेभ्य आज्यं समाहरन्ति० ध्रुवोऽसीति परिधीन् परि-दधाति० आमनस्य देवा इत्यन्वारम्भयित्वा जुहोति० सैस्थिते होतव्याः० अन्तरा प्रयाजानु-याजाल्लुहुयात्० दारुमयेण जुहुयाद्यदि कामयेत क्षिप्रं मा सजाता एयुः क्षिप्रं पुनः परेयुरिति० मृन्मयेन जुहुयात् यदि कामयेत चिरं मा सजाता एयुश्चिरं पुनः परेयुरिति० ।

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहं सजातेषु भूयासं ध्रुवा मयि सजाता उग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥
अभिभूरस्यभ्यहं सजातान् भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवित् ॥ परिभूरसि पर्यहं

सजातान् भूयासं धीरथेत्ता वसुवित् ॥ स्वरिसि स्वरिहं सजातेष्वधि-
भूयासमुग्रथेत्ता वसुवित् ॥ आमनस्य देवा ये सजातास्समनसो यानहं
कामये हृदा ते मां कामयन्ती हृदा तान्म आमनसस्कृधि स्वाहा ॥
आमनस्य देवा यास्त्रियस्समनसो या अहं कामये हृदा ता मां काम-
यन्ती हृदा ता म आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ आमनस्य देवा ये पुत्रासो ये
पशवस्समनसो यानहं कामये हृदा ते मां कामयन्ती हृदा तान्म आमनस-
स्कृधि स्वाहा ॥

कासं [१२.३]—वर्धते प्रजया प्र पशुभिर्भवति य एवं विद्वानेतेन
यजते० ॥

दृश्यतां 'त्रैधातवीयेष्टिः' (कासं १२.३-४)

कासं [१२.८]—पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा० पशुकामो देविकाभिर्यजेत० ॥

दृश्यतां 'प्रजाः' 'बुभूषन्' (कासं १२.५)

शत्रा [११.१.५]—सा ह्रैषा पशव्येष्टिः^१ । तयाऽप्यनभ्युद्दृष्टो यजेतैव ।

काशत्रा [१३.१.२] ≡ शत्रा

पशुषु विवदेत

दृश्यतां 'क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत'

पापयक्ष्मगृहीतः

तैसं [२.३.५]—यः पापयक्ष्मगृहीतः स्यात्तस्मा एतमादित्यं चरुं निर्वपेत्०
अमावास्यायां निर्वपेत्० नवोनवो भवति जायमान इति पुरोनुवाक्या भवति० यमादित्या अ२शु-
माप्याययन्तीति याज्या० ।

[२.४.१४]—

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे ।

भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥

यमादित्या अ२शुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति ।

तेन नो राजा वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥

पाप्मना गृहीतः

तैसं [२.२.७]—इन्द्रायाऽहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः पाप्मना गृहीतः स्यात्० ।

[१.६.१२]—

अहोमुचे प्र भरेमा मनीषामोषिष्ठदान्ने सुमर्ति गृणानाः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमहः ।
अहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥
प्र सम्राजं प्रथममध्वराणामहोमुचं वृषभं यज्ञियानाम् ।
अपां नपातमश्विना ह्यन्तमस्मिन्नर इन्द्रियं धत्तमोजः ॥

तैसं [२.३.१३]—

यः पाप्मना गृहीतः स्यात्तस्मा एतामैन्द्रावरुणीं पयस्यां निर्वपेत्० पयस्या भवति० पयस्यायां पुरोडाशमव दधाति० अथो आयतनवन्तमेव चतुर्धा व्यूहति० पुनः समूहति० समूह्याऽव दति० यो वामिन्द्रावरुणावग्नौ स्नामस्तं वामेतेनाऽव यज इत्याह० यो वामिन्द्रावरुणा द्विपात्सु पशुषु स्नामस्तं वामेतेनाऽव यज इत्याह० ॥

या वामिन्द्रावरुणा यतव्या तनूस्तयेममहसो मुञ्चतम् ॥ या वामिन्द्रा-
वरुणा सहस्या तनू..... ॥ या वामिन्द्रावरुणा रक्षस्या तनू..... ॥
या वामिन्द्रावरुणा तेजस्या तनू..... ॥ यो वामिन्द्रावरुणावग्नौ स्नामस्तं
वामेतेनाऽव यजे ॥ यो वामिन्द्रावरुणा द्विपात्सु पशुषु स्नामस्तं..... ॥ यो
वामिन्द्रावरुणा चतुष्पात्सु पशुषु स्नामस्तं..... ॥ यो वामिन्द्रावरुणा गोष्ठे
स्नामस्तं..... ॥ यो वामिन्द्रावरुणा गृहेषु स्नामस्तं..... ॥ यो वामिन्द्रा-
वरुणाऽप्सु स्नामस्तं..... ॥ यो वामिन्द्रावरुणौषधीषु स्नामस्तं..... ॥ यो
वामिन्द्रावरुणा वनस्पतिषु स्नामस्तं..... ॥

[२.५.१२]—

इन्द्रावरुणयोरहः सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृडात ईदृशे ॥
इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दृढ्यः ॥

दृढ्यताम् 'आमयावी'

पुण्यः स्यामनाधृष्यः

मैसं [२.२.१२]—इन्द्राय मनस्वता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत पुण्यः स्यामनाधृष्य इति० स०वत्सरं तु पुरा मनसो न कीर्तयेत्० ।

[४.१२.३]—आ ते मह इन्द्रोत्युग्र.... ॥ यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥

पुत्रकामेष्टिः

दृश्यतां ' प्रजाः '

पुत्रे जाते

तैसं [२.२.५]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द०स-
नाभ्यः.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ जातो यदग्रे भुवना.... ॥
त्वमग्रे शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्रे मघवत्सु धारय.... ॥
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

पुरुषं प्रतिगृह्णीयात्

कासं [१०.४]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः पुरुषं प्रतिगृह्णीयात्० ।

दृश्यताम् ' उभयादत्प्रतिगृह्णीयात् '

पुरुषाः प्रमीयेरन्

दृश्यतां ' गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् ' ' पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते '

पुरोधाः

मैसं [२.१.४]—सौमेन्द्रं चरुं निर्वपेत् पुरोधाकामः० ।

[४.११.२]—

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्वर्यश्च पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥

मैसं [२.२.३]—बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत्पुरोधाकामः । तस्य बार्हस्पत्ये ज्योति-
ष्मती याज्यानुवाक्ये स्याताम्० यदि नेव पुरोधां गच्छेदैन्द्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपेत्० ।

[४.१२.१]—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥
यदा वाजमसनद्विध्वरूपमा घामरुक्षदुत्तराणि सन्न ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो विभ्रतो ज्योतिरासाम् ॥

पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते

तैसं [२.२.२]—अभि वा एष एतानुच्यति येषां पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते
पुरुषाद्बृतिर्द्विस्य प्रियतमाऽग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् ० ।

[१.३.१४]—अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः..... ॥ त्वे वसूनि पुर्वणीक होतः..... ॥

दृश्यतां ' गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् '

प्रजाः

तैसं [२.२.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्प्रजाकामः ० ।

[१.१.१४]—

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवच्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणाम्बुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥
अश्रवः हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥

तैसं [२.२.४]—अग्नये पुत्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय पुत्रिणे
पुरोडाशमेकादशकपालं प्रजाकामः ० ।

[१.४.४६]—

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥
त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वामिन्द्राऽति रिच्यते ॥
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मधवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥

तैसं [२.२.५]—एतामेव^१ निर्वपेत्प्रजाकामः ० हिरण्यं दक्षिणा ० ।

दृश्यताम् 'अभिवाश्यमानः' (तैसं २.२.५)

तैसं [२.२.१०]—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेत् प्रजाकामः ० ।

[१.८.२२]—सोमारुद्रा वि बृहतं विषूर्ची.... ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥

तैसं [२.४.४]—यः प्रजाकामः स्यात्तस्मा एतं प्राजापत्यं गार्मुतं चरुं निर्वपेत् ० ।

[२.६.११]—प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥ स वेद पुत्रः पितरं स मातरं.... ॥

तैसं [३.४.९]—देविका निर्वपेत्प्रजाकामः ० प्रथमं धातारं करोति ० अन्वेवाऽस्मा अनुमतिर्मन्यते । राते राका । प्र सिनीवाली जनयति ० कुह्वा वाचं दधाति ० ।

[३.३.११]—

धाता ददातु नो रयिमिशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन वावनत् ॥

धाता प्रजाया उत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान ।

धाता पुत्रं यजमानाय दाता तस्मा उ हव्यं घृतवद्विधेम ॥

धाता ददातु नो रयिं प्रार्ची जीवातुमक्षिताम् ।

वयं देवस्य धीमहि सुमतिं सत्यराधसः ॥

धाता ददातु दाशुषे वसूनि प्रजाकामाय मीढुषे दुरोणे ।

तस्मै देवा अमृताः सं व्ययन्तां विश्वे देवासो अदितिः सजोषाः ॥

अनु नोऽद्याऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मयः ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नः कृधि ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूषि तारिषः ॥

अनु मन्यतामनुमन्यमाना प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।

तस्यै वयं हेडसि माऽपि भूम सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु ॥

यस्यामिदं प्रदिशि यद्विरोचतेऽनुमतिं प्रति भूषन्त्यायवः ।

यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु ॥

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसन्नि ।
 ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥
 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
 जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिद्दि नः ॥
 या सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुस्रवरी ।
 तस्यै विशपत्न्यै हविः सिनीवालयै जुहोतन ॥
 कुहूमहं सुभगां विब्रनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।
 सा नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्यास्ते देवि हविषा विधेम ॥
 कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषश्चिकेतु ।
 सं दाशुषे किरतु भूरि वामं रायस्पोषं चिकितुषे दधातु ॥

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्प्रजाकामो योऽलं प्रजायै सन्
 प्रजां न विन्देत् ० विन्दद्द्वितीयाज्यानुवाक्ये भवतः ० ।

[४.११.१]—

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इषा आवृणे ॥
 उपो ह यद्विदथ वाजिनो गुर्ध्नीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
 अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥
 अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
 अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥
 अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
 अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥

मैसं [४.३.५]—

छन्दांसि वै देविकाः ० पष्ठौही दक्षिणा ० या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतियेत्तरा सा
 राका । या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः । चन्द्रमा एव धाता ० प्रजाकामं
 याजयेत् । धातारमुत्तमं कुर्यात् ० स यदा जायेताऽथ धात्रे पुरस्तान्निर्वपेत् ० ।

[४.१२.६]—

अन्वद्य नो अनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ राकामहं सुहवां
 सुष्टुती हुवे.... ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसः.... ॥ सिनीवालि पृथु-
 ष्टुके.... ॥ या सुपाणिः स्वङ्गुरिः.... ॥ कुहूमहं सुवृतं विब्रनापसं.... ॥

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी.... ॥ धाता दधातु नो रयि.... ॥ धाता ददातु दाशुषे.... ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः० पुनर्दातृमती याज्यानुवाक्ये भवतः० ॥

दृश्यतां 'पशवः' (कासं १०.११; ११.५; १२.३)

कासं [१२.८]—पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा० प्रजाकामो देविकाभिर्यजेत० धातार-मुत्तमं कुर्यात्० यदा जायेत धातारं पुरस्तात्कृत्वाऽथैतामैव निर्वपेत्० ॥

दृश्यतां 'बभूषन्' (कासं १२.५)

प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेत

तैसं [२.२.८]—इन्द्राय प्रदात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यस्मै प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेत० ।

[१.७.१३]—

प्रदातारं हवामह इन्द्रमा हविषा वयम् ।

उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥

प्रदाता वज्री वृषभस्तुराषाद् च्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।

अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्याऽथा भव यजमानाय शं योः ॥

प्रत्यभिचरन्

दृश्यताम् 'अभिचरन्' (तैसं २.२.९)

प्रमीतं शृणुयुः

कासं [१०.६]—अग्नये सुरभिमतोऽष्टाकपालं निर्वपेद्यं प्रमीतं शृणुयुः० ।

[७.१६]—अग्निर्होता निषसादाऽऽयजीयान्.... ॥ साध्वीमकर्देववीतिं नः.... ॥

बद्धो वा परियत्तो वा

तैसं [२.२.७]—इन्द्राय त्रात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद् बद्धो वा परियत्तो वा० ।

[१.६.१२]—

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवः शूरमिन्द्रम् ।

डुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धातिवन्द्रः ॥

मा ते अस्या सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरुथैस्तव प्रियासः स्रिषु स्याम ॥

विभीयात्

मैसं [४.३.१]—आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यो घृते चरुरिति० वरो दक्षिणा० ।

[४.१२.६]—

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दिं भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥
प्र वा एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवः शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माऽधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥

कासं [१०.९]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय विमृधायैकादशकपालं यी
सर्वतो भयमागच्छेत्० ।

इत्यतां 'गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा विभीयात्'

बुभूषन्

कासं [१०.२]—एतेन यजेत बुभूषन्नग्नीषोमीयेणैकादशकपालेन० ।

[४.१६]—

अग्नीषोमा इमी सु मे.... ॥ अग्नीषोमा सवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि
रोचनानि.... ॥

आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभाराऽमथ्नादन्यं परि इयेनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥

कासं [१०.४]—वारुणं यवमयं चरुं निर्वपेदग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं राज-
न्यायाऽभिचरते वा बुभूषते वा० यवमयो भवति । प्रादेशमात्रो भवति० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाजी.... ॥ ऋतावानं वैश्वानर-
मृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥
अस्माकमग्ने मधवत्सु.... ॥ इमं मे वरुण श्रुधी.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा.... ॥
शतेन पाशैर्वरुणाऽभिधेहि मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जलम उदरीं स्तिसयित्वा कोश इवाऽबन्धः परिकृत्यमानः ॥

धीरा त्वस्य महिना जनीषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥

कासं [१०.८]—इन्द्राय धर्मवत एकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायेन्द्रियवत एका-
दशकपालमिन्द्रायाऽर्कवत एकादशकपालं समानबर्हीषि बुभूषन्० चरुर्मध्ये स्यादजामित्वाय० ।

[८.१६]—

धर्मं न सामन् तपता सुवृत्तिभिः.... ॥ आ यस्मिन् सप्त वासवाः.... ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो.... ॥ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥ इन्द्र-
मिद्राथिनो बृहत्.... ॥ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं.... ॥

कासं [१०.१०]—

त्रीन् पुरोडाशानिर्वपेद् बुभूषन्० उत्तर उत्तरो ज्यायान् भवति० इन्द्राय राज्ञे प्रथम-
मथेन्द्राय स्वराजेऽथेन्द्रायाऽधिराजाय० तिस्रोऽनुवाक्यास्ता याज्यास्तासां प्रथमामनूच्य मध्यमया
यजति । मध्यमामनूच्योत्तमया यजत्युत्तमामनूच्य पुनः प्रथमया यजति० सर्वा एवाऽनुवाक्याः
करोति सर्वा याज्याः० ।

[८.१७]—

प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्राऽसि राजतोदीच्यां वृत्रहन् वृत्रहाऽसि ।
यत्र यन्ति स्रवत्यस्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभो हव्य एधि ॥
अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वं दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तस्वरिरिमत्रो ववक्षे रणाय ॥
त्वमिन्द्राऽस्यधिराजस्त्वं भवाऽधिपतिर्जनानाम् ।
दैवीर्विशस्त्वमुता विराजौजस्वत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥

कासं [१०.१०]—ऐन्द्रं चरुं निर्वपेद्राजन्याय बुभूषते० रेवत्यनुवाक्या शकरी
याज्या० ।

[८.१७]—

रेवतीर्नस्सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥
ता अस्य नमसा सहस्सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥

कासं [११.१]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं बार्हस्पत्यमष्टाकपालं
बुभूषन्० त्रिवतीर्माज्यानुवाक्या भवन्ति० त्रिधातु नाम हविः ।

[९.१९]—

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
 तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अग्रयुच्छन् ॥
 विद्वा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्वा ते सब विभृतं पुरुत्रा ।
 विद्वा ते नाम परमं गुहा यद्विद्वा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥
 इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरुथे स्वस्तिमत ।
 छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च महां च यावया दिद्युमेभ्यः ॥
 अतिविद्वा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिस्सप्त सानु सैहिता गिरीणाम् ।
 न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥
 यस्तस्तम्म सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
 तं प्रत्नास ऋषयो दीघ्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥
 विभिद्या पुरं शयथेमपार्चीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
 बृहस्पतिरुषसी सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥

कासं [११.४]—ऐन्द्राबार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेद्राजन्याय बुभूषते० द्विवृद्धिरप्यं दक्षिणा० ।

[१०.१३]—

अस्मे इन्द्राबृहस्पतीं रयिं धत्तौ शतग्विनम् । अश्वावन्तौ सहस्रिणम् ॥
 बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
 इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नस्सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥

कासं [११.६]—

आदित्येभ्यो भुवद्भ्यश्चरुं निर्वपेद् बुभूषन्० आदित्या भागं वः करिष्यामि
 इति निर्वपन् ब्रूयाद् इमममुमागुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यां विश्यवगमयत इति० सप्ता-
 ऽऽश्वत्या मयूखा भवन्ति । तानिध्मेऽपि प्रोक्षति । त आ सैस्थितोर्वेधी शेरते । तान् सैस्थिते
 मध्यमेपायामुपहन्ति इदमहमादित्यान् बध्नाम्यमुष्याऽऽमुष्यायणस्याऽवगमाय इति । यद्या
 सप्तमादहो नाऽवगच्छेदिध्मं तान्कृत्वाऽपरया यजेत । एवं द्वितीययैवं तृतीयया० सत्याशीः, इह
 मनः इति निरुद्धस्य पदमादधीत० उप प्रेत मरुतस्स्वतवस एना विश्वपतिनाऽभ्यर्चुं
 राजानम् इति विशोऽभिवातमभिष्विसयन् परीयात्० यः परस्ताद् ग्राम्यवादी स्यात्तस्य गृहाद्
 ग्रीहीनादरेयुः । ताञ्छुक्लीश्च कृष्णीश्च विचिनुयुः । ये शुक्लास्तमादित्येभ्यश्चरुं निर्वपेद्ये कृष्णा
 नि तान् दध्युः० अयं क क्षत्रमिति । यदा वै क्षत्रमवगच्छत्यथाऽवगच्छति । यदाऽवगच्छेद्ये
 कृष्णास्तं वारुणं चरुं निर्वपेत् ।

[११.१२]—

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूस्सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
 शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो मे तुविजातो वरुणो दक्षो अशः ॥
 आदित्यासो अदितयस्स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
 सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥
 इमं मे वरुण श्रुषी.... ॥ अस्तभ्नाद् द्यामसुरः.... ॥
 दृश्यताम् ' अपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा '

कासं [१२.१]—पयस्यया यजेत बुभूषन्० पयस्या भवति० व्यूहति०
 समूहति० समानमेककपालानां ब्राह्मणम् ॥

कासं [१२.४]—त्रीन् पुरोडाशान् निर्वपेद् बुभूषन्० ॥

दृश्यतां ' त्रैधातवीयेष्टिः ' (कासं १२.३-४), ' भूतिः ' ' सर्वपृष्ठेष्टिः ' (कासं १२.३-४)

ब्रह्मन् विशं विनाशयेयम्

तैसं [२.३.३]—एतामेव^१ निर्वपेद्यः कामयेत ब्रह्मन् विशं वि नाशयेयमिति०
 मारुती याज्यानुवाक्ये कुर्यात्० ।

[२.३.१४]—मरुतो यद्ध वो दिवः.... ॥ या वः शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥

ब्रह्मबलम्

दृश्यतां ' ब्रह्मवर्चसम् '

ब्रह्मवर्चसम्

तैसं [२.२.७]—इन्द्राय धर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद् ब्रह्म-
 वर्चसकामः० ।

[१.६.१२]—

आ यस्मिन्त्सप्त वासवास्तिष्ठन्ति स्वारुहो यथा ।
 ऋषिर्ह दीर्घश्रुत्तम इन्द्रस्य धर्मो अतिथिः ॥
 आमासु पक्कमैरय आ सूर्य रोहयो दिवि ।
 धर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्विणसे गिरः ॥

तैसं [२.२.१०]—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मा एत५ सोमारौद्रं चरुं निर्वपेत्०
तिष्यापूर्णमासे निर्वपेत्० परिश्रिते याजयति० श्वेतायै श्वेतवत्सायै दुग्धं मथितमाज्यं भवत्याज्यं
प्रोक्षणमाज्येन मार्जयन्ते० मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्यात्० ।

[१.८.२२]—

अग्निं वः पूर्य गिरा देवमीडे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥
मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥
न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो । देवानां य इन्मनः.... ॥
असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्चियम् । देवानां य इन्मनः.... ॥
नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति । देवानां य इन्मनः.... ॥
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुर्णि च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥
'सोमारुद्रा वि बृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुक्तमस्मत् ॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥

तैसं [२.३.२]—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एत५ सौर्यं चरुं निर्वपेत्०
उभयतोरुक्मौ भवतः० प्रयाजेप्रयाजे कृष्णलं जुहोति० ।

[२.२.१२]—

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याऽग्नेः ।
आऽग्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष५ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

तैसं [२.३.३]—अग्नीषोमीयमष्टाकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामः० यदष्टाकपाल-
स्तेनाऽऽग्नेयः । यच्छ्यामाकस्तेन सौम्यः० ।

१. एतदाद्ये द्वे ऋचौ याज्यानुवाक्ये । शिष्टानां द्वे धाय्ये

[२.३.१४]—

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥

आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभाराऽमश्रादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।

अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।

सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा घत्तं यजमानाय शं योः ॥

मैसं [२.१.४]—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेज्ज्यामाकं वसन्ता ब्रह्म-
वर्चसकामः० सौमाग्नी सयाज्ये स्याताम्० ।

[४.११.२]—

पृथुपाजा अमर्त्यः.... ॥ तं सबाधः.... ॥ ईडे अग्निं विपश्चितं.... ॥

अग्ने शक्नेम ते वयं.... ॥ उप त्वा रण्वसंहंशं.... ॥ उप छायामिव

घृणे.... ॥ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्.... ॥ त्वं सोमाऽसि सत्पतिः.... ॥

अग्नीषोमा सवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि रोचनानि.... ॥ श्रीणामुदारो
घरुणः.... ॥

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थं विदथे यजध्वै ।

देवं अछा दीद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥

मैसं [२.१.५]—

सौमारौद्रं घृते चरुं निर्वपेज्जुह्वानां व्रीहीणां ब्रह्मवर्चसकामः० इयांश्चरुर्भवति०
शुक्ला व्रीहयो भवन्ति । श्वेतां गा आज्याय दुहन्ति० घृतं प्रोक्षणं भवति । घृतेन मार्जयन्ते०
यस्या रात्र्याः प्रातर्यक्ष्यमाणः स्यान्नाऽस्य तां रात्रीमपो गृहान् प्रहरेयुः० परिश्रिते याजयन्ति०
साकं रश्मिभिः प्रचरन्ति० तिष्यापूर्णमासे याजयेत्० मनोऋचो भवन्ति० एताः शक्नी-
र्भवन्ति० नाराशसीर्भवन्ति० ।

[४.११.२]—

अग्निं वः पूर्य गिरा.... ॥ मक्षू देववतो रथः.... ॥ न यजमान

रिप्यसि.... ॥ नकिष्टं कर्मणा नशन्न.... ॥ असदत्र सुवीर्यमुत.... ॥

उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुवः.... ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥

१. आदितः षट् सामिधेन्यः, द्वे आज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये, द्वे प्रचानयागस्य याज्यानु-
वाक्ये, द्वे सिन्धकृतः

सौमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमनुवन्तु ।

दमे दमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

मैस [२.२.२]—सौर्यं घृते चरुं निर्वपेच्छुक्लानां व्रीहीणां ब्रह्मवर्चसकामः । शतमानो रुक्मो रजतोऽधस्तात् स्याज्जशतमानो रुक्मो हरित उपरिष्ठात्० पञ्च कृष्णालान्यपि प्रयाजेषु जुहुयात्० ।

[४.१२.१]—तत्सूर्यस्य देवत्वं.... ॥ भद्रा अश्वा हरितः.... ॥

मैस [२.२.३]—ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेद्यत्र कामयेत ब्रह्मबलं स्यादिति । तस्य ब्राह्मणस्पत्ये मरुत्वती याज्यानुवाक्ये स्याताम्० ।

[४.१२.१]—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।

उप प्रयन्तु मरुतः सुदानवा इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिर्ध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवं अवो वरेण्यम् ॥

कासं [१०.२]—अग्नीषोमीयमष्टाकपालं निर्वपेच्छ्यामाकं वसन्ता ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसकामः० अग्नीषोमीये याज्यानुवाक्ये भवतस्सौमाम्नी संयाज्ये० ।

[४.१६]—अग्नीषोमा इमी सु मे.... ॥ अग्नीषोमा सेवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि रोचनानि.... ॥ आऽन्यं दिवो मातरिश्वा.... ॥

दृश्यतां 'ग्रामः' (कासं १०.४)

कासं [१०.८]—इन्द्राय घर्मवत एकादशकपालं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः० ।

[८.१६]—घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिः.... ॥ आ यस्मिन्सप्त वासवाः.... ॥

कासं [११.४]—ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेत्तस्य मारुती याज्यानुवाक्ये स्यातां यः कामयेत ब्रह्मबली स्यात्० ।

[१०.१३]—अग्निरुक्थे पुरोहितः.... ॥ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते.... ॥

कासं [११.५]—

सौमारौद्रं चरुं निर्वपेच्छुक्लानां व्रीहीणीं श्वेतायास्स्वेतवत्साया आज्यं मथितं स्यात्-स्मिन् ब्रह्मवर्चसकामः० घृतेन प्रोक्षन्ति घृतेन मार्जयन्ते० अस्य ती रात्रीमपो गृहान्नाऽवहरेयुः ।

परिश्रिते यजेत० प्रादेशमात्रश्चरुह्वो भवत्येवं तिर्यक् ० साकी रश्मिभिः प्रचरन्ति० तिष्या-
पूर्णमासे यजेत० मनोऋचस्सामिधेनीष्वप्यनुब्रूयात्० उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव इति नारा-
शस्या परिदधाति शान्त्यै । षट्पदा भवति० सौमापौष्णं चरुं पशुकामोऽनुनिर्वपेत्० ।

[११.१२]—

मक्षू देववतो रथश्शूरः.... ॥ नकिष्टं कर्मणा नशन्न.... ॥ न यजमान
रिष्यसि.... ॥ असदत्र सुवीर्यमुत.... ॥ अग्निं वः पूर्य गिरा.... ॥
उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुवः.... ॥ सोमारुद्रा विवृहतं.... पराचैरस्मे
भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥ सोमारुद्रा
धारयेथामसुर्य.... ॥

भगी अन्नादः स्याम्

मैसं [१.४.१५]—

अग्नये भगिनेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत भग्यन्नादः स्यामिति० उभौ सह
दर्शपूर्णमासा आलम्यौ । उद्वा अन्यशृङ्गे सितो मुच्यते । दशौ वा एतयोः पूर्वः पूर्णमासा
उत्तरः । अथ पूर्णमासं पूर्वमालभन्ते तदयथापूर्वं क्रियते । तत्पूर्णमासमालभमानः सरस्वत्यै चरुं
निर्वपेत् सरस्वते द्वादशकपालम्० ॥

भयमागच्छेत्

दृश्यतां ' बिभीयात् '

भूतिः

तैसं [२.२.३]—अग्नये जातवेदसे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्भूतिकामः० ।

[१.३.१४]—

तस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥
दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥

तैसं [२.२.७]—इन्द्राय घर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायेन्द्रियावत
इन्द्रायाऽर्कवते भूतिकामः० ।

[१.६.१२]—

आ यस्मिन्त्सप्त वासवाः.... ॥ आमासु पक्षमैरयः.... ॥ इन्द्रियाणि शत-

ऋतो.... ॥ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥ इन्द्रमिद्राथिनो बृहत्.... ॥
गायन्ति त्वा गायत्रिणः.... ॥

तैसं [२.३.१]—आदित्येभ्यो भुवद्रद्वयश्चरुं निर्वपेद्वृतिकामः० ।

[२.१.११]—

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्वृत्यादहोश्चिद्या वरिवोविचराऽसत् ॥
शुचिरपः स्रयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नक्किष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥

मैसं [२.१.२]—वारुणं चरुं निर्वपेद्यवमयमियन्तमग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं
भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१२.४]—इमं मे वरुण.... ॥ तत्त्वा यामि.... ॥ वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥
पृष्टो दिवि.... ॥

मैसं [२.१.४]—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेद्ब्राह्मणं भूतिकामं
याजयेत्० ।

[४.११.२]—

पृथुपाजा अमर्त्यः.... ॥ तं सबाधः.... ॥ ईडे अग्निं विपश्चितं.... ॥
अग्ने शकेम ते वयं.... ॥ उप त्वा रण्वसंहृशं.... ॥ उप छायामिव घृणेः.... ॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्.... ॥ त्वं सोमाऽसि सत्पतिः.... ॥ अग्नीषोमा स-
वेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि रोचनानि.... ॥

मैसं [२.१.९]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालं राजन्यं भूतिकामं
याजयेत्० ।

[४.११.४]—

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङ्मिन्द्रं द्युम्नं स्वर्वद्वेह्यस्मे ॥
मरुतो यद्ध वो दिवः.... ॥ या वः शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥

मैसं [२.२.९]—इन्द्राय घर्मवते सूर्यवता एकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय मन्युमते

मनस्वता एकादशकपालमिन्द्रायेन्द्रियवता एकादशकपालमिन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवता एकादश-
कपालं भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१२.२-३]—

आ यस्मिन्सप्त वासवाः.... ॥ मदो न यः सोम्यः.... ॥ आ ते मह
इन्द्र.... ॥ यो जात एव प्रथमः.... ॥ इन्द्रियाणि शतक्रतो.... ॥ अनु
ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥ अनवस्ते रथमश्वाय.... ॥ वृष्णे यत्ते
वृषणः.... ॥

दृश्यतां 'ग्रामः' (कासं १०.४), 'बुभूषन्'

मैसं [२.३.१]—भूतिकामं याजयेत्० ॥

दृश्यताम् 'आमयावी' (मैसं २.३.१), 'सर्वपृष्ठेष्टिः' (मैसं २.२.७)

मैसं [२.४.६]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं बार्हस्पत्यं चरुं
भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१२.५]—

विद्या ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि.... ॥
वृषणं त्वा त्रिककुभं त्रिमूर्धानं त्रिसंदशम् ।
वर्ष्मन् पृथिव्या ईमहे अग्ने हव्याय वोढवे ॥
अतिविद्धा विधुरेणा.... ॥ अस्येदेव प्ररिरिचे.... ॥
यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नासा ऋषयो दीच्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकुन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥

भ्रातृव्यं जनयेयम्

तैसं [२.२.१०]—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वेऽस्मा आयतने भ्रातृव्यं
जनयेयमिति । वेदिं परिगृह्णाऽर्धमुद्धन्यादर्थं न । अर्धं बर्हिषः स्तृणीयादर्थं न । अर्धमिध्मस्या-
ऽभ्यादध्यादर्थं न० ।

[१.८.२२]—सोमारुद्रा वि बृहतं विषूर्ची.... ॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे.... ॥

कासं [११.५]—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेद् भ्रातृव्यतायै वा द्वितीयतायै वा ।
तस्याऽर्धमर्धं सर्वं स्यात् । अर्धं शुक्लानां व्रीहीणी स्यादर्थं कृष्णानाम् । अर्धं शरमयं
बर्हिषोऽर्धं दर्भमयम् । अर्धं वैभीतकमिध्मस्याऽर्धमन्यस्य वृक्षस्य० ॥

भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः

तैसं [२.४.१]—यो भ्रातृव्यवान्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्टया यजेताऽग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विबाधवतेऽग्नये प्रतीकवते० ।

[२.५.१२]—

प्रप्राऽयमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्स्वर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥
प्र ते यक्षि प्र त इयमिं मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रतन राजन् ॥
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो असीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निः.... ॥
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निर्मृतेषु वोचत् ॥

तैसं [२.४.२]—यो भ्रातृव्यवान्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्टया यजेतेन्द्रायाऽहो-
मुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय वैमृधायेन्द्रायेन्द्रियावते० त्रयस्त्रिंशत्कपालं पुरोडाशं
निर्वपति० सा वा एषा विजितिनमिष्टिः० ।

[२.५.१२]—

अहोमुचे प्र भरेमा मनीषां.... ॥ विवेष यन्मा धिषणा जजान.... ॥ वि
न इन्द्र मृधो जहि.... ॥ इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजः.... ॥ इन्द्रियाणि
शतक्रतो.... ॥ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥

तैसं [२.४.३]—तस्मादेतां गायत्रीतीष्टिमाहुः० तस्मादेतां संवर्ग इनीष्टिमाहुः ।
यो भ्रातृव्यवान्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्टया यजेत । अग्नये संवर्गाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् ।
तं शतमासन्नमेतेन यजुषाऽभिमृशेत्० ।

ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामाऽसि विश्वमसि
विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूः ॥

[२.६.११]—

युक्त्वा हि देवहूतमां अश्वां अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्यः सदः ॥

उत नो देव देवाः अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्धिश्चा वार्या कृधि ॥
 त्वः ह यद्यविष्टय सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥
 अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥
 तं नेमिमृभवो यथाऽऽ नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥
 तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥
 कष्टु ष्विदस्य सेनयाऽग्नेरपाकचक्षसः । पर्णि गोषु स्तरामहे ॥
 मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्नाः । कृशं न हासुरग्निः ॥
 मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥
 नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥
 कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥
 मा नो अस्मिन् महाधने परावर्गं भारभृद्यथा । संवर्गः स रयिं जय ॥
 अन्यमस्मद्विया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥
 यस्याऽजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधाऽवति ॥
 परस्या अधि संवतोऽवराः अभ्यातर । यत्राऽहमस्मि ताः अव ॥
 विद्वा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथाऽवसः । अधा ते सुम्रमीमहे ॥
 य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वः सगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥
 सखायः सं वः सम्यञ्चमिषः स्तोमं चाऽग्नये ।
 वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥
 सः समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्थ आ ।
 इडस्पदे समिध्यसे स नो वसन्न्या भर ॥

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद् भ्रातृव्यवान्० ।

[४.११.१]—इन्द्राग्नी नवर्ति पुरः.... ॥ श्रथद्वृत्रमुत.... ॥ जुष्टो दमूना
 अतिथिः.... ॥ अग्ने शर्धे महते.... ॥

इत्यतां ' राष्ट्रे स्पधेत ' (मैसं २.१.११)

मैसं [२.२.५]—

वैश्वदेवं द्वादशकपालं निर्वपेद् भ्रातृव्यवान् । तं बर्हिषदं कृत्वा समया स्प्येन व्यूहेत्
 इदमहं मां चाऽमुं च व्यूहामि इति यं द्विष्यात्तम् । यदधोऽवमृचेत यच्च स्प्य आश्लिष्येत
 तद्विष्णव उरुक्रमायाऽवचेत्० तं पुनः समूहेत् इदमहं मां चाऽमुं च समूहामि इति योऽस्य
 प्रियः स्यात्तम्० ।

[४.१२.१]—

विश्वे देवा ऋतावृधः.... ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।

ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे.... ॥

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुस्तिथा विष्णोः पदे परमे मध्वा उत्सः ॥

मैसं [२.३.२]—वैश्वदेवं चरुं निर्वपेद् भ्रातृव्यवान्० ।

[४.१२.४]—

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

एनाऽऽङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभिष्याम बृजने सर्ववीराः । तन्नो मित्रः....॥

मैसं [४.३.४]—

देवाश्च वा असुराश्च समयतन्त । तानग्निस्त्रेधाऽऽत्मानं कृत्वा प्रत्ययतत । अग्नि-
रेवाऽस्मिँल्लोके भूत्वा वरुणोऽन्तरिक्षे रुद्रो दिवि । स इन्द्रोऽमन्यताऽयं वावेदं भविष्यतीति ।
सोऽब्रवीदहं विश्वाभ्या आशाभ्या इति । ततो वा अजयन् । तजित्या एवैतत्० एतेनैव
याजयेद् भ्रातृव्यवन्तं यो वाऽस्य प्रियः स्यात्तम्० यद्वै तदिन्द्रस्तुरीय उपसमपद्यत तस्मादिन्द्र-
तुरीयम् । धेनुरनड्वाही दक्षिणा० ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद् भ्रातृव्यवान्० ।

[४.१५]—इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ अथद्वृत्रमुत.... ॥

कासं [१०.७]—एतया यजेत भ्रातृव्यवान् । यो बहुभ्रातृव्यस्स्यादग्नये प्रवते-
ऽष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विबाधवतेऽष्टाकपालमग्नये प्रतीकवतेऽष्टाकपालम्० ।

[७.१६]—

प्र वस्सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्चं गाय च वेधसे ॥

प्र वशुक्राय भानवे भरध्वी हव्यं मर्तिं चाऽग्नये सुपूतम् ।

यो दैव्यानि मानुषा जनूष्यन्तर्विश्वानि विद्वना जिगाति ॥

वि ज्योतिषा बृहता.... ॥ वि पाजसा पृथुना.... ॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीधत् ॥

तै सुप्रतीकै सुदृशी स्वञ्चमविद्वीसो विदुष्टी सपेम ।

स यक्षद्विधा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥

कासं [१०.७]—

ते देवा एतच्चजुरपस्यन् ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां
धाम नामाऽसि विश्वमसि विश्वायुस्सर्वमसि सर्वायुरभिभूः इति० आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्
भ्रातृव्यवान् वा स्पर्धमानो वा । तमासाच्चैतैर्यजुर्भिरभिमृशेत्० सैषा गायत्री नामेष्टिः । अथो
आहुः क्षत्रस्य संवर्ग इति ।

[७.१७]—

युक्त्वा हि देवहूतमी.... ॥ उत नो देव देवी.... ॥ त्वी ह यद्यविष्ठय.... ॥
अयमग्निः सहस्रिणः.... ॥ तं नेमिमृभवो यथा.... ॥ कस्मै नूतम-
भिघवे.... ॥ कष्टु ष्विदस्य सेनया.... ॥ मा नो देवानां विशः.... ॥
मा नस्समस्य दूढ्यः.... ॥ नमस्ते अग्न ओजसे.... ॥ कुवित्सु नो
गइष्टये... ॥ मा नो अस्मिन् महाधने.... ॥ परस्या अधि संवतः.... ॥
एष्टु षु ब्रवाणि ते.... ॥

कासं [१०.९]—इन्द्राय प्रबभ्रायैकादशकपालं निर्वपेद् भ्रातृव्यवान्० ।

[८.१६]—

अभि प्रभर धृषता धृषन्मनश्चवश्चित्ते असद् बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥
अस्मा इदु प्रभरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व विरदा तिरश्चेव्यन्नर्णास्यपां चरध्वै ॥

कासं [१०.१०]—एतया यजेत भ्रातृव्यवान् । यो बहुभ्रातृव्यस्स्यादिन्द्राय
विमृधायैकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायऽहोमुच एकादशकपालमिन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालम्०
सैषा विजितिनमिष्टिः० ।

[८.१६]—

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजः.... ॥ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः.... ॥
अहोमुचे प्रभरेमा मनीषां.... ॥ विवेष यन्मा धिषणा जजान.... ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो.... ॥ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय.... ॥

भ्रातृव्ये यजमाने

तैसं [२.२.९]—

अयजमानस्याऽध्वरकल्पां प्रति निर्वपेद् भ्रातृव्ये यजमाने० पुरा वाचः प्रवदितो-
निर्वपेत्० आग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत् प्रातःसवनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा स्याद्बार्ह-
स्पत्यश्वरुः० आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेन्मध्यं दिनस्य सवनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा
स्याद्बार्हस्पत्यश्वरुः० आग्नावैष्णवं द्वादशकपालं निर्वपेत्तृतीयसवनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा
स्याद्बार्हस्पत्यश्वरुः० मैत्रावरुणमेककपालं निर्वपेद्विंशत्यै काले० ।

[१.८.२२]—

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
प्र णो देवी सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा.... ॥ बृहस्पते
जुषस्व नः.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥ बृहस्पते अति
यदर्यः.... ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुकृतू ॥
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥

मैसं [२.१.७]—

आग्नावैष्णवं प्रातरष्टाकपालं निर्वपेत्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमाग्नावैष्णवमेकादश-
कपालं मध्यं दिने सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमाग्नावैष्णवं द्वादशकपालमपराह्णे सारस्वतं चरुं
बार्हस्पत्यं चरुं यस्य भ्रातृव्यः सोमेन यजेत० मैत्रावरुणमेककपालं निर्वपेत्तृतीयां वा । अन्-
बन्ध्यामेवैतेनाऽऽप्नोति । सैषाऽध्वरकल्पेष्टिः० ।

[४.११.२]—

अग्नाविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥ अग्ना-
विष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ पावका नः सरस्वती.... ॥ सरस्वत्यभि
नो नेषि.... ॥ आ नो दिवः.... ॥ बृहस्पते जुषस्व नः.... ॥ एवा पित्रे
विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥ आ नो मित्रावरुणा.... ॥ प्र बाहवा सिसृतं
जीवसे नः.... ॥

मैसं [२.२.११]—इन्द्राय वज्रिणा एकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय वृत्रघ्न एका-
दशकपालमिन्द्राय वृत्रतुरा एकादशकपालं यस्य भ्रातृव्यः सोमेन यजेत० ।

[४.१२.३]—

हृदं न हि त्वा नृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
 त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥
 अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युज्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरुतयः ।
 इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीरिव त्रितः ॥
 तमिन्द्रं काजयामसि.... ॥ युजे रथं गवेषणं.... ॥
 वृत्रतुरं मघवानं शचीपतिमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
 वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥
 अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
 स्कन्धासीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥

कासं [१०.१]—

आग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत् प्रातस्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमाग्नवैष्णवमेका-
 दशकपालं मध्यंदिन एतौ च चरु आग्नावैष्णवं द्वादशकपालमपराह्ण एतौ च चरु यस्य भ्रातृव्य-
 स्सोमेन यजेत० सैषाऽध्वरकल्पा नामेष्टिः० तत्र यत्किंच ददाति तदक्षिणा । मैत्रावरुणमेक-
 कपालमनुनिर्वपति यैवाऽसौ मैत्रावरुणी वशाऽनूबन्ध्या० ।

[४.१६]—

अग्नाविष्णू महि तद्वा महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥
 पावका नः सरस्वती.... ॥
 इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमी सरस्वति जुषस्व ।
 तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥
 आ नो दिवो बृहतः.... ॥
 वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाम्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥
 अदेवेन मनसा यो रिष्यति शासायुग्रो मन्यमानो जिघीसति ।
 बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो निकर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥
 बृहस्पते जुषस्व नः.... ॥ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्.... ॥ आ नो
 मित्रावरुणा.... ॥ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नः.... ॥

दृश्यताम् ' अध्वरकल्पा '

मनस्वी त्विषीमान् स्याम्

कासं [१०.८]—इन्द्राय मनस्वते त्विषीमत एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत
 मनस्वी त्विषीमान् स्यामिति० संवत्सरं पुरा मनसो न कीर्तयेत्० ॥

महायज्ञो नोपनमेत्

तैसं [२.२.७]—इन्द्रायाऽर्कश्चमेधवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं महा-
यज्ञो नोपनमेत् ० ।

[१.६.१२]—

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।

ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।

अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥

मैसं [२.२.९]—इन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत
महायज्ञो मोपनमेत् ० ।

[४.१२.२]—अनवस्ते रथमश्वाय.... ॥ वृष्णे यत्ते वृषणः.... ॥

कासं [१०.९]—इन्द्रायाऽर्कवतेऽश्वमेधवत एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत
महायज्ञो मोपनमेत् ० ।

[८.१६]—अनवस्ते रथमश्वाय... ॥ वृष्णे यत्ते वृषणः.... ॥

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहवींषि), ' यज्ञो नोपनमेत् '

मित्रविन्देष्टिः

शत्रा [११.४.३]—

प्रजापतिर्वै प्रजाः सृजमानोऽतप्यत । तस्माच्छ्रान्तात्तेपानाच्छ्रीरुदक्रामत् । सा
दीप्यमाना भ्राजमाना लेलायन्त्यतिष्ठत् । तां दीप्यमानां भ्राजमानां लेलायन्तीं देवा अभ्य-
ध्यायन् । ते प्रजापतिमब्रुवन् हनामेमाम् आ इदमस्या ददामहा इति । स होवाच स्त्री वा
एषा यच्छ्रीः । न वै स्त्रियं ऋन्ति । उत त्वा अस्या जीवन्त्या एवाऽऽददत् इति । तस्या अग्नि-
रन्नाद्यमादत् । सोमो राज्यम् । वरुणः साम्राज्यम् । मित्रः क्षत्रम् । इन्द्रो बलम् । बृहस्पति-
र्ब्रह्मवर्चसम् । सविता राष्ट्रम् । पूषा भगम् । सरस्वती पुष्टिम् । त्वष्टा रूपाणि । सा प्रजापति-
मब्रवीत् आ वै म इदमदिषतेति । स होवाच यज्ञेनैवान् पुनर्याचस्वेति । सैतां दशहविष-
मिष्टिमपश्यत् । आग्नेयमष्टाकपालं पुरोडाशम् । सौम्यं चरुम् । वारुणं दशकपालं पुरोडाशम् ।
मैत्रं चरुम् । ऐन्द्रमेकादशकपालं पुरोडाशम् । बार्हस्पत्यं चरुम् । सावित्रं द्वादशकपालं वाऽष्टा-
कपालं वा पुरोडाशम् । पौष्णं चरुम् । सारस्वतं चरुम् । त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशम् ।

तानेतयाऽनुवाक्ययाऽन्वदत्—

अग्निः सोमो वरुणो मित्र इन्द्रो बृहस्पतिः सविता यः सहस्री ।

पूषा नो गोभिरवसा सरस्वती त्वष्टा रूपाणि समनक्तु यज्ञैः इति०
तानेतया याज्यया परस्तात्प्रतिलोमं प्रत्येत्—

त्वष्टा रूपाणि ददती सरस्वती पूषा भगं सविता मे ददातु ।

बृहस्पतिर्दददिन्द्रो बलं मे मित्रः क्षत्रं वरुणः सोमो अग्निः इति०

सैतानुपहोमानपश्यत्—अग्निरन्नादोऽन्नपतिरन्नाद्यमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति०
सोमो राजा राजपती राज्यमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० वरुणः सम्राट्
सम्राट्पतिः साम्राज्यमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः
क्षत्रमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० इन्द्रो बलं बलपतिर्बलमस्मिन् यज्ञे
मयि दधातु स्वाहा इति० बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिर्ब्रह्मवर्चसमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु
स्वाहा इति० सविता राष्ट्रं राष्ट्रपती राष्ट्रमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति०
पूषा भगं भगपतिर्भगमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० सरस्वती पुष्टिं पुष्टिपतिः
पुष्टिमस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० त्वष्टा रूपाणां रूपकद्रूपपती रूपेण
पश्यन्मस्मिन् यज्ञे मयि दधातु स्वाहा इति० ता वा एता दश देवताः । दश हवींषि ।
दशाऽऽहुतयः । दश दक्षिणाः० तस्यै पञ्चदश सामिधेन्यो भवन्ति । उपांशु देवता यजति ।
पञ्च प्रयाजा भवन्ति । त्रयोऽनुयाजाः । एकं समिष्टयजुः । पुष्टिमन्तावाज्यभागौ—

अग्निना रयिमश्रवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥

गयस्फानोऽमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव इति ।

सहस्रवत्यौ संयाज्ये—

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्रे सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥

उत नो ब्रह्मन्निषि उवथेषु देवहूतमः ।

शं नः शोचा मरुद्बृधोऽग्रे सहस्रसातमः इति० ॥

काशत्रा [१३.४.३] ≡ शत्रा

मृगारेष्टिः

तैसं [७.५.२२]—

अग्नयेऽ५होमुचेऽष्टाकपाल इन्द्रायाऽ५होमुच एकादशकपालो मित्रावरुणाम्यामागो-
मुग्यां पयस्या वायोसावित्र आगोमुग्यां चरुरश्विम्यामागोमुग्यां धाना मरुद्भ्य एनोमुग्यः
सप्तकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्य एनोमुग्यो द्वादशकपालोऽनुमत्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो
पावापृथिवीभ्याम५होमुग्यां द्विकपालः ।

[४.७.१५]—

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो यं पाञ्चजन्यं बहवः समिन्धते ।
 विश्वस्यां विशि प्रविशिवाः समीमहे स नो मुञ्चत्वः हसः ॥
 यस्येदं प्राणान्मिषद्यदेजति यस्य जातं जनमानं च केवलम् ।
 स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नः..... ॥
 इन्द्रस्य मन्ये प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उप मामुपागुः ।
 यो दाशुषः सुकृतो हवमुप गन्ता स नः..... ॥
 यः संग्रामं नयति सं वशी युधे यः पुष्टानि सः सृजति त्रयाणि ।
 स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नः..... ॥
 मन्वे वां मित्रावरुणा तस्य वित्तः सत्यौजसा दृः हणा यं नुदथे ।
 या राजानः सरथं याथ उग्रा ता नो मुञ्चतमागसः ॥
 यो वाः रथं ऋजुरग्निः सत्यधर्मा मिथुश्चरन्तमुपयाति दूषयन् ।
 स्तौमि मित्रावरुणा नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥
 वायोः सवितुर्विदधानि मन्महे यावात्मन्वद्विभृतो यौ च रक्षतः ।
 यौ विश्वस्य परिभू बभूवतुस्तौ नः..... ॥
 उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धर्मे अस्थिरन् ।
 स्तौमि वायुः सवितारं नाथितो जोहवीमि तौ नः..... ॥
 रथीतमौ रथीनामह उतये शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ।
 ययोर्वा देवौ देवेष्वनिशितमोजस्तौ नः..... ॥
 यदयातं बहतुः सूर्यायास्त्रिचक्रेण सः सदमिच्छमानौ ।
 स्तौमि देवावश्विनौ नाथितो जोहवीमि तौ नः..... ॥
 मरुतां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
 आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥
 तिग्ममायुधं वीडितः सहस्वद्विव्यः शर्धः पृतनासु जिष्णु ।
 स्तौमि देवान् मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नः..... ॥
 देवानां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
 आशून् हुवे सुयमानूतये ते नः..... ॥
 यदिदं माऽभिशोचति पौरुषेयेण दैव्येन ।
 स्तौमि विश्वान् देवान् नाथितो जोहवीमि ते नः..... ॥

अनु नोऽद्याऽनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥
 पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यां.... ॥
 ये अप्रथेताममितेभिरोजोभिर्ये प्रतिष्ठे अभवतां वसूनाम् ।
 स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमहसः ॥
 उर्वी रोदसी वरिवः कृणोतं क्षेत्रस्य पत्नी अधि नो ब्रूयातम् ।
 स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नः.... ॥
 यत्ते वयं पुरुषत्रा यविष्ठाऽविद्धाऽसश्चक्रमा कच्चनाऽऽगः ।
 कृषी स्वस्माऽदितेरनागा व्येनाऽसि शिश्रथो विष्वगग्रे ॥
 यथा ह तद्वसवो गौर्यं चित्पदि पिताममुञ्चता यजत्राः ।
 एवा त्वमस्मत् प्र मुञ्चा व्यहः प्रातार्यग्रे प्रतरां न आयुः ॥

मृत्योर्विभीयात्

तैसं [२.३.२]—यो मृत्योर्विभीयात्तस्मा एतां प्राजापत्याऽशतकृष्णलां निर्वपेत्०
 शतकृष्णला भवति० घृते भवति० चत्वारिचत्वारि कृष्णलान्यव द्यति० एकधा ब्रह्मण
 उप हरति० ।

[२.२.१२]—

हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
 स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
 आपो ह यन्महतीर्विश्वमायन् दक्षं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
 ततो देवानां निरवर्तताऽसुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
 प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥

स वेद पुत्रः पितरऽस मातरऽस सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
 स द्यामौर्णोदन्तरिक्षऽस सुवः स विश्वा भुवो अभवत् स आऽभवत् ॥

दृश्यताम् 'आयुः' 'गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन्' 'विभीयात्' 'रक्षोभ्यो विभीयात्'

मृधोऽभिप्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभिसमियुः

तैसं [२.२.७]—इन्द्राय वैमृधाय पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं मृधोऽभि
 प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुः० ।

[१.६.१२]—

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
 अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माऽअभि दासति ॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
 अपाऽनुदो जनममित्रयन्तमुहं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥
 मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत् आ जगामा परस्याः ।
 सुक९ स९शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताडि वि मृधो नुदस्व ॥
 वि शत्रून् वि मृधो नुद वि वृत्रस्य हनू रुज ।
 वि मन्युमिन्द्र भामितोऽमित्रस्याऽभिदासतः ॥

मेधा नोपनमेत्

तैसं [३.४.९]—एता एव निर्वपेद्यं मेधा नोपनमेत्० प्रथमं धातारं करोति० ॥

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहवीषि)

यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजेते

तैसं [२.४.११]—देवताभ्यो वा एष आ वृक्ष्यते यो यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजेते । त्रैधातवीयेन यजेत० ॥

मैसं [२.४.५]—अथ यो यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजेत तमेतेन याजयेत्० ॥

दृश्यतां ' त्रैधातवीयेष्टिः '

यज्ञविभ्रष्टः स्यात्

तैसं [२.३.३]—यो यज्ञविभ्रष्टः स्यात्तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमष्टाकपाल-
 मैन्द्रमेकादशकपाल९ सौम्यं चरुम्० आग्नेयस्य च सौम्यस्य चैन्द्रे समाश्लेषयेत्० ।

[२.३.१४]—

स प्रतनवन्नवीयसाऽग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्तन्थ भानुना ॥
 नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरुषि ।
 अग्निर्भुवद्रथिपती रयीणा९ सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥
 इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥
 त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नधायतः । न र्षियेच्चावतः सखा ॥
 या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
 तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥

यज्ञो नोपनमेत्

तैसं [२.२.९]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्यं यज्ञो नोपनमेत्० ।

[१.८.२२]—अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम.... ॥

तैसं [३.४.९]—एता एव निर्वपेद्यं यज्ञो नोपनमेत्० प्रथमं धातारं करोति० ।

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहवींषि), ' महायज्ञो नोपनमेत् '

मैसं [२.६.४]—आग्नावैष्णव एकादशकपाल ऐन्द्रवैष्णवश्चरुवैष्णवस्त्रिकपालः । वामनो दक्षिणा० ।

[४.३.७]—अथैतत्त्रिष्युक्तम्० यत्पूर्वं त्रिष्युक्तं वीरजननं तत् । यदुत्तरं पशुजननं तत्० यत्पूर्वं त्रिष्युक्तं तेन यज्ञकामो यजेत० ॥

यमौ पुत्रौ गावौ वा

मैसं [२.१.८]—मारुतं त्रयोदशकपालं निर्वपेद्यस्य यमौ पुत्रौ गावौ वा जाये-
याताम्० यद्रायत्र्यनुवाक्या० यज्जगती याज्या० ।

[४.११.२]—

मरुतो यद्ग वो दिवः.... ॥

ग्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ग युञ्जते शुभे ।

ते क्रीडयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धृतयः ॥

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्यस्य भार्या गौर्वा यमौ जनयेत्० सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—मरुतो यस्य हि क्षये, अरा-
ह्वेदचरमा अहेव (ऋचं १.८६.१; ५.५८.५) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये मरुत्वते स्वाहेति० ॥

रक्षांसि सचेरन्

तैसं [२.२.२]—अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं रक्षांसि सचेरन्० निशितायां निर्वपेत्० परिश्रिते याजयेत्० रक्षोघ्नी याज्यानुवाक्ये भवतः० ।

[१.२.१४]—

' कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवाऽमवाꣳ इमेन ।

तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्ताऽसि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥

१ अस्मिन् सूक्तेऽष्टादशर्चः । तास्वादितः पञ्चदश सामिधेन्यः षोडशीसप्तदश्यौ याज्यानुवाक्ये अष्टादशी चोपहोमार्था इति बौध्ना

तैव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
 तपूःप्यग्रे जुह्वा पतङ्गानसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥
 प्रति स्पशो वि सृज तूर्णीतमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
 यो नो दूरे अधशः सो यो अन्त्यग्रे माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥
 उदग्रे तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राः ओषतात्तिग्महेते ।
 यो नो अरातिः समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥
 ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याऽध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्रे ।
 अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥
 स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
 विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥
 सेदग्रे अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
 पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना साऽसदिष्टिः ॥
 अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
 स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमाऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥
 इह त्वा भूर्या चरेदुष त्मन् दोषावस्तर्दीदिवाः समनु द्यून् ।
 क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाऽभि द्युम्ना तस्थिवाः सो जनानाम् ॥
 यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्र उपयाति वसुमता रथेन ।
 तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषगुजोषत् ॥
 महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्विथाय ।
 त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्थविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥
 अस्वमजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
 ते पायवः सध्रियञ्चो निषद्याऽग्रे तव नः पान्त्वमूर ॥
 ये पायवो मामतेयं ते अग्रे पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
 ररक्ष तान्तुसुकृतो विश्वेवेदा दिप्सन्त इद्रिपवो ना ह देभुः ॥
 त्वया वयः सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्ययाम वाजान् ।
 उभा शः सा स्रुदयः सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्वहयाण ॥
 अया ते अग्रे समिधा विधेम प्रति स्तोमः शस्यमानं गृभाय ।
 दहाऽशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवघात् ॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
 शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥
 वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
 प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥
 उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
 मदे चिदस्य प्ररुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥

रक्षोग्न्यो बिभीयात्

मैसं [२.१.११]—अग्नये रक्षोघ्नेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यो रक्षोग्न्यो बिभीयात्०
 नक्तं याजयेत्० वामदेवस्य पञ्चदश सामिधेनीश्च स्युर्याज्यानुवाक्याश्च० ।

[४.११.५]—

कृणुष्व पाजः इति पञ्च ॥ स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ.... ॥ सेदग्ने
 अस्तु सुभगः सुदानुः.... ॥ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्.... ॥ इह त्वा
 भूर्याचरेदुप.... ॥ यस्त्वा स्वश्चः सुहिरण्यः.... ॥ महो रुजामि बन्धुता
 वचोभिः.... ॥ अग्नी रक्षांसि सेधति.... ॥ त्वं नः सोम विश्वतः.... ॥
 अस्वमजस्तरणयः सुशेवाः.... ॥ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने.... ॥ त्वया
 वयं सधन्यस्त्वोताः.... ॥ अया ते अग्ने समिधा विधेम.... ॥

दृश्यतां ' बिभीयात् ' ' मृत्योर्विभीयात् ' ' रक्षांसि सचेरन् '

रसवान् स्याम्

तैसं [२.२.४]—अग्नये रसवतेऽजक्षीरे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत रसवान्त्स्या-
 मिति० ।

[१.४.४६]—

अग्ने रसेन तेजसा जातवेदो वि रोचसे । रक्षोहाऽमीवचातनः ॥
 अपो अन्वचारिषः रसेन समसुक्ष्महि ।
 पयस्वाऽग्न आगमं तं मा सः सृज वर्चसा ॥

राजनीष्टिः

दृश्यतां ' चक्षुः ' (कासं ११.१)

राजन्यायाऽभिचरते वा बुभूषते वा

दृश्यताम् ' अभिचरन् ' ' बुभूषन् '

राजन्योऽनपोब्धो जायेत वृत्रान् म५श्चरेत्

तैसं [२.४.१३]—यं कामयेत राजन्यमनपोब्धो जायेत वृत्रान् म५श्चरेदिति तस्मा एतमैन्द्राबार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत्० हिरण्मयं दाम दक्षिणा० ।

[३.३.११]—

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्त५ शतग्विनम् । अश्वावन्त५ सहस्रिणिम् ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥

दृश्यतां 'राष्ट्रीयो नेव प्रस्तिङ्नुयात्'

राजयक्ष्मः

तैसं [२.२.७]—यो राजयक्ष्मगृहीतः स्यात्तस्मा अमावास्याया० वैश्वदेवं चरुं निर्वपेत्० ।

[४.१२.२]—

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अघ्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवना विचष्ट क्रतू५रन्यो विदधजायते पुनः ॥
नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥
'यथाऽऽदित्या अ५शुमाप्याययन्ति यथाऽक्षितिमक्षितयः पिबन्ति ।
एवाऽस्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥

कासं [११.३]—वैश्वदेवेन चरुणाऽमावस्यां रात्रीं यजेत यो राजयक्ष्मा-
द्विभीयात्० ।

[१०.१२]—

यथाऽऽदित्यमादित्या आप्याययन्ति यथाऽक्षितिमक्षितयो मदन्ति ।
एवा मामिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥
नवो नवो भवति जायमानः.... ॥

राजानः सदृशा इव स्युः

मैसं [२.२.११]—इन्द्रायाऽधिराजायैकादशकपालं निर्वपेद्यत्र राजानः सदृशा इव स्युः० ।

[४.१२.३]—

त्वमिन्द्राऽस्यधिराजः.... ॥

इन्द्रो जयति न पराजयते अधिराजो राजसु राजयते ।

विश्वा अभिष्टिः पृतना जयत्युपसद्यो नमस्यो यथाऽसत् ॥

राज्ञा यवान् व्रीहीन् वा आदधीय

मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽनेन राज्ञे-
मान् यवान् व्रीहीन् वाऽऽदधीयेति० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥
व्रीण्यायूषि.... ॥

राज्ञा वा ग्रामण्या वा इदं सस्यमाददीय

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽनेन राज्ञा
वा ग्रामण्या वेदं सस्यमाददीयेति० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न उतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाजी.... ॥ ऋतावानं वैश्वानर-

मृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु.... ॥

राज्यं स्वाराज्यमाधिराज्यं च

मैसं [२.२.८]—

यत्त्रयः पुरोडाशा भवन्ति० उत्तर उत्तरः पुरोडाशो ज्यायान् भवति० इन्द्राय
राज्ञे प्रथम इन्द्राय स्वराज्ञे मध्यम इन्द्रायाऽधिराजायोत्तमः । एतानि वै सर्वाणीन्द्रोऽभवद्राज्यं
स्वाराज्यमाधिराज्यम् । एतानि सर्वाणि भवति य एतैर्यजते० प्रथमामनूच्य मध्यमया यजेन्मध्यमा-
मनूच्योत्तमया यजेदुत्तमामनूच्य प्रथमया यजेत् । एवमस्य सर्वा अनुवाक्या भवन्ति सर्वा
याज्याः० ।

[४.१२.२]—

प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्राऽसि राजोतोदीच्यां वृत्रहन् वृत्रहाऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभो हव्य एधि ॥
अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दमा आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥
त्वमिन्द्राऽस्यधिराजस्त्वं भवाऽधिपतिर्जनानाम् ।
दैवीर्विशस्त्वमुता विराजौजस्वत्क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥

दृश्यताम् 'अन्नादः स्याम्'

राष्ट्रं शिथिरमिव स्यात्

मैसं [२.६.६]—

अयं मैत्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपन्ति । ये क्षोदिष्ठास्तण्डुलास्तं बार्हस्पत्यं चरुं शृतं कुर्वन्ति । तत्र तत्पात्रमपि धायाऽऽज्यमासिच्य ये स्थविष्ठास्तण्डुलास्तानावपन्ति । उभौ सह शृतौ कुर्वन्ति । मैत्रेण पूर्वेण प्रचरन्ति । अश्वो मैत्रस्य दक्षिणा । शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यस्य ।

[४.३.९]—अथैतन्मैत्राबार्हस्पत्यम्० यस्य राष्ट्रं शिथिरमिव स्यात्तमेतेन याजयेन्मैत्राबार्हस्पत्येन० ।

राष्ट्रीयो नेव प्रस्तिङ्गुयात्

मैसं [२.१.१२]—ऐन्द्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपेद्यो राष्ट्रीयो नेव प्रस्तिङ्गुयात्० ।

[४.१२.१]—इदं वामास्ये हविः.... ॥ अस्मे इन्द्रावृहस्पती.... ॥

दृश्यतां 'राजन्योऽनपोऽन्धो जायेत वृत्रान् प्रश्नश्चरेत्'

राष्ट्रे स्पर्धेत

मैसं [२.१.११]—

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्यो राष्ट्रे स्पर्धेत यो वा कामयेताऽन्नादः स्यादिति (स्यामिति ?) । देवाश्च वा असुराश्चाऽस्पर्धन्त । तान् गायत्री सर्वमन्नं परिगृह्याऽन्तराऽतिष्ठत् । तेऽविदुर्यतरान् वा इयमुपावर्त्यति त इदं भविष्यन्तीति । तस्यां वा उभय ऐच्छन्त । तां नाम्नोपैप्सन् । दामि इत्यसुरा आह्वयन् । विश्वकर्मन् इति देवाः । सा नाऽन्यतरांश्चनोपावर्तत । तां देवा एतेन यजुषाऽवृज्जत ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूः इति० सैषा गायत्रीष्टिः । अथो आहू राष्ट्रस्य सवर्ग इति० ।

[४.११.६]—

युक्ष्वा हि देवहूतमान्.... ॥

उत नो देव देवं अछा वोचो विदुष्टरः । श्रद्धिश्चा वार्या कृधि ॥

त्वम् ह यद्यविष्ठय सहसः स्वन आहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥

अयमग्निः सहस्रिणः.... ॥

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥

कमु ष्विदस्य सेनयाऽग्नेरपाकचक्षसः । पर्णि गोषु स्तरामहे ॥

मा नो देवानां विशः प्रज्ञातीरिवोक्षाः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥

मा नः समस्य दूढ्यः परिवेषसो अहतिः । ऊर्मिर्न नावमावधीत् ॥

नमस्ते अग्रा ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥

कुवित्सु नो गृह्येऽग्ने सवेशिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥

मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्गारभृद्यथा । स वर्गः स रयिं जय ॥

यस्याऽजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं हेदग्निर्विधावति ॥

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुह्नुना । वर्धा नो अमवञ्शवः ॥

दृश्यतां ' भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः '

रुच्

तैसं [२.२.३]—अग्नये रुक्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्रुक्कामः० ।

[१.३.१४]—

शुचिः पावक वन्धोऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।

अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥

तैसं [३.४.९]—एता एव निर्वपेद्रुक्कामः० क्षीरे भवन्ति० मध्यतो धातारं करोति० द्वे प्रथमे निरुप्य धातुस्तृतीयं निर्वपेत्तथो एवोत्तरे निर्वपेत्० ॥

दृश्यतां ' प्रजाः ' (देविकाहर्षिणि)

रुद्रः प्रजाः शमायेत

मैसं [२.२.४]—वात्स्वमयं रौद्रं चरुं निर्वपेद्यत्र रुद्रः प्रजाः शमायेत० तथा निषादस्यपतिं याजयेत् । सा हि तस्येष्टिः । कूटं दक्षिणा कर्णौ वा गर्दभः ।

[४.१२.१]—नमस्ते रुद्र मन्यवे.... ॥ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने.... ॥

रुद्राय अस्य पशूनपिदध्याम्

मैसं [२.१.१०]—अग्नये रुद्रवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत रुद्रायाऽस्य पशूनपिदध्यामिति० ।

[४.११.४]—

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥
कद्विष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृग्ने ॥

मैसं [२.१.१०]—यदि कामयेत शाम्येदित्यग्नये सुरभिमतोऽष्टाकपालं निर्वपेत्० ।

[४.११.१]—अग्निर्होता न्यसीदत्.... ॥ साध्वीमकर्देववीति.... ॥ यच्चिद्वि ते पुरुषत्रा.... ॥ महश्चिदग्ना एनसः.... ॥

वसीयान् स्याम्

कासं [११.४]—एतया^१ यजेत यः कामयेत वसीयान् स्यामिति० ॥

वसुमान् स्याम्

तैसं [२.२.४]—अग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत वसु-
मान्त्यामिति० ।

[१.४.४६]—

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥
त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाऽभि प्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥

विजितीष्टिः

दृश्यतां ' भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः ' (तैसं २.४.२; कासं १०.१०)

विड् राजानं जिज्यासेत्

मैसं [२.१.८]—मारुतं सप्तकपालं निर्वपेद्यत्र विड् राजानं जिज्यासेत् । अग-
स्त्यस्य कयाशुभीयं सामिवेनीश्च स्युर्याज्यानुवाक्याश्च० ।

१. प्राजापत्यं चरं निर्वपेच्छतकृष्णलं दृते० वैश्वदेवः कार्यः० प्राजापत्यः कार्यः०
चत्वारि चत्वारि कृष्णलान्यवदानं भवति० तं ब्रह्मणे परिहरन्ति०

[४.११.३]—

कया शुभा सवयसः सनीडाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः ।
 कया मती कुता एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥
 कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुता आववर्त ।
 श्येनं इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥
 कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
 संपृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥
 ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयतिं प्रभृतो मे अद्रिः ।
 आशासते प्रतिद्व्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अछा ॥
 अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
 महोभिरेकमुपयुज्महे न्विन्द्रः स्वधामनु हि नो बभूथ ॥
 क स्या वो मरुतः स्वधाऽऽसीधन्मामेकं समधत्ताऽहिहत्ये ।
 अहं ह्यग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥
 भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
 भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्रः कृत्वा मरुतो यद्वशाम ॥
 वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
 अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥
 अनुत्तमा ते मधवन्नकिर्णु न त्वावं अस्ति देवता विदानः ।
 न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥
 एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
 अहं ह्यग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्रा इदीश एषाम् ॥
 अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
 इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मद्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥
 एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रवा एषो दधानाः ।
 संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अछान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥
 को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्रयातन सखीरछा सखायः ।
 मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म क्रतानाम् ॥
 आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारुरस्मांश्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
 ओ ध्रुवर्त मरुतो विप्रमछेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चन्त ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वया० विद्यामेष० वृजनं जीरदानुम् ॥

दृश्यतां 'क्षत्रियो विशो ज्यान्या विभीयात्'

विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वा

तैसं [२.२.६]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वा० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ क्रतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द० स-
नाभ्यः.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ जातो यदग्ने भुवना.... ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्ने मघवत्सु.... ॥ वैश्वानरस्य
सुमतौ स्याम.... ॥

विशे च क्षत्राय च समदं कुर्याम्

मैसं [२.१.९]—

ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुत० सप्तकपाल० यः कामयेत विशे च क्षत्राय च
समदं कुर्यामिति । ऐन्द्रस्यैन्द्रीमनूच्य मारुत्या यजेन्मारुतस्य मारुतीमनूच्यैन्द्रा यजेत्० यदि
कामयेताऽतुर्मुह्य० स्यादिति पूर्वार्धेऽन्यां जनताया गां निदध्याजघनार्धेऽन्याम् । अपि ते संगच्छेते
तावदतुर्मुह्यं भवति । यदि कामयेत कल्पेतेति एते एव हविषी निरुप्य यथायथ० यजेत्० ।

[४.११.४]—

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमागहि । महान् महीभिरुतिभिः ॥

त्वं महं इन्द्र तुभ्य० ह क्षा अनु क्षत्रं म० हना मन्यत द्यौः ।

त्व० वृत्र० श्वसा जघन्वान्तसृजः सिन्धू० रहिना जग्रसानान् ॥

मरुतो यद्व वो बलं जनं अचुच्यवीतन । गिरी० रचुच्यवीतन ॥

ऋष्टयो वो मरुतो अ० सयोरधि सहा ओजो बाह्वोर्वो बल० हितम् ।

नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु नो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥

कासं [१०.११]—

मारुती सप्तकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं यः कामयेत विशे च क्षत्राय च समदं
कुर्यामिति० मारुतस्य मारुतीमनूच्यैन्द्रा यजेत् । ऐन्द्रस्यैन्द्रीमनूच्य मारुत्या यजेत्० उभयतः
पुरोडाशस्याऽवचेत्० एतामेव निर्वपेद्यदा कामयेत कल्पेरिति । तस्याः प्रसृतिं यजेत्० ।

[८.१७]—

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासभूरा यद्दीप्त्रोषधीषु विश्वु ।
 अघ स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥
 एन्द्र सानसि रयिं सजित्वानि सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये भर ॥
 स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतस्सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
 रायो वन्तारो बृहतस्स्यामाऽस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥
 या वश्शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताऽधि ।
 अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणस्सुवीरम् ॥

दृश्यतां 'क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम्'

विषहेयाऽभयं मे स्यात्

दृश्यताम् 'अभयम्'

वीर्यम्

दृश्यतां 'सर्वपृष्ठेष्टिः'

वृष्टिः

मैसं [२.१.८]—

आग्निमारुतं चरुं निर्वपेद् वृष्टिकामः । समान्या मृदश्चरुं च कुर्युः कुम्भं च ।
 यस्मिन्नेवाऽग्नौ चरुं पचेयुस्तस्मिन् कुम्भं धूपयेयुः० यदा हवींष्यासादयेयुरथ दक्षिणायां
 श्रोण्यां कुम्भमासाद्योदकेन पूरयेयुः । यदि पुरा स०स्थानाद्वीर्येताऽद्य वर्षिष्यतीति ब्रूयात् ।
 यदि स०स्थिते श्वे व्रष्टेति ब्रूयात् । यदि चिरमिव वीर्येता नाऽद्वा विष्टेति ब्रूयात्० ।

[४.११.२]—

और्वभृगुवञ्शुचिमप्रवानवदाहुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥
 आ सव० सवितुर्यथा भगस्येव भुजि० हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥
 हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्ध० सहः । अग्निं समुद्रवाससम् ॥
 वृषा सोम द्युमं असि.... ॥
 आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्रा आगहि ॥
 आ वो यन्तूद्वाहासो अद्य वृष्टि० ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
 अय० यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥
अग्रे वाधस्व वि मृधो वि दुर्गहाऽपाऽमीवामप रक्षासि सेध ।
अस्मात् समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमृष नः सृजेह ॥

मैसं [४.१२.५]—

‘पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीढुषे । स नो यवसमिधुतु ॥
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युता उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवी रेतसाऽवति ॥
कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद् वृष्टिकामः ० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाजी.... ॥ ऋतावानं वैश्वानर-
मृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥
अस्माकमग्ने मधवत्सु.... ॥

दृश्यतां ‘कारीरीष्टिः’

श्रीः

मैसं [२.२.५]—वाचस्पतये चरुं निर्वपेञ्श्रीकामः ० ।

[४.१२.१]—

उपग्रेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसुपते विरमय मय्येव तन्वं मम ॥
ये त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे ॥

संवर्गेष्टिः

दृश्यताम् ‘अन्नादः’ (मैसं २.१.११), ‘भ्रातृव्यवान् स्पधमानः’ (तैसं २.४.३)
‘राष्ट्रे स्पधेत’

१. एतदादेर्ऋग्व्यस्य विनियोजकं ब्राह्मणवाक्यं मैसं—मध्ये न दृश्यते । मैसं २.४.६
अत्र भूतिकामनाया इष्टेर्विधानानन्तरं वृष्टिकामनाया इष्टेर्विधानमपेक्षितं, यत्संबद्धे एते याज्यानुवाक्ये ।
भूतिकामनाया इष्टेर्याज्यानुवाक्यास्वेवैते प्रविष्टे । मैसं २.४.७ अत्र वृष्ट्यर्थं विधेयायाः कारीर्या
इष्टेः प्रतिपादनमारब्धं, मैसं ४.१२.५ अत्रापि भूतिकामनाया इष्टेर्याज्यानुवाक्यानन्तरं कारीर्या
याज्यानुवाक्याः प्रदत्ताः । माश्रौ ५.२.५ अत्र पर्जन्यदेवतायै चरोरिष्टिः प्रतिपादिता, तस्याश्च
इमे एव याज्यानुवाक्ये प्रदर्शिते ।

संग्रामः

तैसं [२.२.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममुपप्रयास्यन्० ।

[१.१.१४]—इन्द्राग्नी नवर्ति.... ॥ शुचिं नु स्तोमं.... ॥

तैसं [२.२.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामं जित्वा० ।

[१.१.१४]—उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्वै.... ॥ अश्रवः हि भूरिदावत्तरा.... ॥

तैसं [२.२.२]—अग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे संयत्ते ।

[१.२.१४]—अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः.... ॥ त्वे वसूनि पुर्वणीक होतः.... ॥

तैसं [२.२.४]—अग्नये वाजसृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्संग्रामे संयत्ते० ।

[१.४.४६]—त्वामग्ने वाजसातमं.... ॥ अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोतु.... ॥

तैसं [२.२.६]—आदित्यं चरुं निर्वपेत् संग्राममुपप्रयास्यन्० ।

[१.५.११]—

अदितिर्न उरुष्यतु.... ॥ महीमू षु मातरः सुव्रतानां.... ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसः सुशर्माणमदितिः सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नावः स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥

इमाः सु नावमारुहः शतारित्राः शतस्फयाम् । अच्छिद्रां पारयिष्णुम् ॥

तैसं [२.२.६]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदायतनं गत्वा० ।

[१.५.११]—वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ अस्माकमग्ने मघवत्सु धारय.... ॥

तैसं [२.२.८]—इन्द्राण्यै चरुं निर्वपेद्यस्य सेनाऽसः शितेव स्यात्० बल्व-
जानपीध्मे सं नद्येत्० ।

[१.७.१३]—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नीमहमश्रवम् ।

न ह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिः ॥

नाऽहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।

यस्येदमप्यः हविः प्रियं देवेषु गच्छति ॥

तैसं [२.२.८]—इन्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत्
संग्रामे संयत्ते० ।

[१.७.१३]—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।

पताति दिद्युन्नर्यस्य बाहुवोर्मा ते मनो विष्वद्रियग्विचारीत् ॥

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयान्० ।

[४.११.१]—या वा० सन्ति पुरुस्पृहः.... ॥ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं स०यत्य० ।

[४.११.१]—या वा० सन्ति पुरुस्पृहः.... ॥ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥

मैसं [२.१.१]—स यदा संग्रामं जयेदथैन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत्० ।

[४.११.१]—या वा० सन्ति पुरुस्पृहः.... ॥ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥

मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयान्० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥
त्रीण्यायू०षि.... ॥

मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं स०यत्य० ।

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥
त्रीण्यायू०षि.... ॥

[२.१.२]—स यदा संग्रामं जयेदथाऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्० ।

दृश्यतां ' वृज्यायं (जिज्यासेत्, जिनीयात्) '

मैसं [२.१.७]—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे । सरस्वतीमप्याज्यस्य यजेत्० द्वे पुरोनुवाक्ये कुर्यादिका० याज्याम्० ।

[४.११.२]—

अग्नाविष्णू सजोषसा.... ॥ अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां.... ॥

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं.... ॥ पावका नः सरस्वती.... ॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यः.... ॥ आ नो दिवः.... ॥

मैसं [२.१.१०]—अग्नये वाजसुतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्संग्रामे० ।

[४.११.४]—

त्वामग्रे वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥

अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोतु.... ॥

मैसं [२.१.१०]—अग्नयेऽनीकवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे० विष्णुमप्या-
ज्यस्य यजेत्० ।

[४.११.४]—अनीकैर्द्वेषो अर्दय.... ॥ सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे.... ॥ इदं
विष्णुर्विचक्रमे.... ॥ प्र तद्विष्णुः स्तवते.... ॥

मैसं [२.२.३]—ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेत् संग्रामे । तस्य ब्राह्मणस्पत्ये वीरवती
वयस्वती याज्यानुवाक्ये स्याताम् । छदिर्दशैः याजयेत् । उद्धर्हिः प्रस्तरः स्यात् बाणवन्तः
परिधयः । वयांसि परं ग्राममाविशन्ति तथा विज्ञेयं जेष्यामा इति० ।

[४.१२.१]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
ब्रह्मणस्पते सूयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वीरं उपपृङ्क्ष्वि नस्त्वयदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥

मैसं [२.२.५]—इन्द्राण्यै चरुं निर्वपेत्सेनायामुत्तिष्ठन्त्याम्० बल्वजा अपीध्मे
स्युः० यत्तस्यां सेनायां विन्देत सा दक्षिणा० ।

[४.१२.१]—

इन्द्राणी पत्या सुजितं जिगाय.... ॥
सेना ह नाम पृथिवी धनंजया विश्वव्यचा अदितिः सूर्यत्वक् ।
इन्द्राणी प्रासहा संजयन्ती तस्यै त एना हविषा विधेम ॥

मैसं [२.२.१०]—इन्द्राय प्रवभ्रायैकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे० ।

[४.१२.३]—

अभि प्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥
अस्मा इदु प्रभरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व विरदा तिरश्चेप्यन्नर्णास्यपां चरध्वै ॥

मैसं [२.२.१०]—इन्द्राय वैमृधायैकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे ॥

[४.१२.३]—वि न इन्द्र मृधो जहि.... ॥ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः.... ॥

मैसं [२.२.१०]—इन्द्रायाऽभिमातिष्ण एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे० ।

[४.१२.३]—

आकरे वसोर्जरीता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभा इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदना आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहन् स्तुहि ॥
त्व॑ सपत्नान् पृतनासु जिष्णुरिन्द्राऽभिषाडभिमातीरपन्नन् ।
पिबा सोम॑ वज्रबाहो विषद्याऽस्मभ्यं पणी॑रर्वस्वाऽऽमुखाय ॥

मैसं [२.२.१२]—इन्द्राय मन्युमते मनस्वता एकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे० ।

[४.१२.३]—आ ते मह इन्द्रोत्युग्र.... ॥ यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥

मैसं [२.२.१२]—मन्यवे चरुं निर्वपेत् संग्रामे० ।

[४.१२.३]—

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवाऽऽस देवो मन्युर्होता वरुणो विश्ववेदाः ।
मन्यु॑ विश ईडते मानुषीर्या अवा नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥
त्व॑ हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंजो भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावान्तस हूयमानो अमृताय गच्छत् ॥

[४.३.४]—

देवाश्च वा असुराश्च समयतन्त । तानग्निस्त्रेधाऽऽत्मानं कृत्वा प्रत्ययतत । अग्नि-
रेवाऽस्मिँल्लोके भूत्वा वरुणोऽन्तरिक्षे रुद्रो दिवि । स इन्द्रोऽमन्यताऽय॑ वावेदं भविष्यतीति ।
सोऽब्रवीदह॑ विश्वाम्या आशाम्या इति । ततो वा अजयन् । तज्जित्या एवैतत् । एतेनैव
याजयेत् संग्रामे० यद्वै तदिन्द्रस्तुरीय उपसमपद्यत तस्मादिन्द्रतुरीयम् । धेनुरनड्वाही दक्षिणा० ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयान्० ।

[४.१५]—

ता वामेषे स्थानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वीसा गिर्वेणस्तमा ॥
अश्रवी हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अधा सोमस्य प्रयती युवाभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्राममागत्य० ।

[४.१५]—

इन्द्राग्नी नवति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥

आ वृत्रहणा वृत्रहभिश्शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्रे अर्वाक् ।
युवं राघोभिरकवेभिरिन्द्राऽग्रे अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्रेमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं जित्वा० ।

[४.१५]—

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्री हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा ग्रेन्द्राग्री विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥

कासं [१०.१]—आग्रावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे० यदि मन्येत
प्रति पुरस्ताच्चरन्तीति द्वे अनुवाक्ये कुर्यादिकां याज्याम्० ।

[४.१६]—अग्राविष्णू महि तद्वां महित्वं....॥ अग्राविष्णू महि धाम प्रियं वां....॥
अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां.... ॥

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाजी.... ॥ ऋतावानं वैश्वानर-
मृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥
अस्माकमग्रे मधवत्सु.... ॥

कासं [१०.५]—अग्नये वाजसृतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे० ।

[६.१०]—

त्वामग्रे वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥
अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजं जयतु वाजसाता अयं शत्रूञ्जयतु जर्हपाणः ॥

कासं [१०.८]—इन्द्राय मन्युमते मनस्वत एकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे० ।

[८.१६]—

सं यत्त इन्द्र मन्यवस्सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥
आ ते मह इन्द्रोत्पुग्र.... ॥
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्त्रियाणाम् ॥
यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥

कासं [१०.९]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय विमृधायैकादशकपालं संग्रामे०।

[८.१६]—

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाऽजनि । धनंजयो रणे रणे ॥

ममाऽग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु.... ॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।

अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः.... ॥

कासं [१०.१०]—इन्द्राय चेन्द्राण्यै च चरुं निर्वपेत्सेनायामुत्थितायां राज्ञो गृहे०
बल्वजा इध्मे च बर्हिषि चाऽपिभवन्ति० यत्सा विन्देत ततो दक्षिणा० ।

[८.१७]—

रेवतीर्नस्सधमादः.... ॥ ता अस्य नमसा सहः.... ॥

इन्द्राणी पत्या सुजितं जिगायोर्दशेन पतिविद्ये बिभेद ।

त्रिंशद्यस्या जघनं योजनान्युपस्थ इन्द्रं स्थविरं बिभर्ति ॥

सेना ह नाम पृथिवी धनंजया विश्वव्यचा अदितिस्सूर्यत्वक् ।

इन्द्राणी प्रासहा संजयन्ती मयि पुष्टिं पुष्टिपत्नी दधातु ॥

कासं [१०.१०]—इन्द्राण्यै चरुं निर्वपेत्सेनायामुत्थितायां राज्ञो गृहे ० बल्वजा
इध्मे च बर्हिषि चाऽपिभवन्ति० यत्सा विन्देत ततो दक्षिणा० ।

[८.१७]—इन्द्राणीमासु नारिषु.... ॥ नाऽहमिन्द्राणि रारण.... ॥

सजातकामः

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्सजातकामः० ।

[४.१५]—

या वी सन्ति पुरुस्पृहः.... ॥

ता योधिष्ठमभि गा इन्द्र नूनमपस्स्वरुषसो अग्र ऊढाः ।

दिशस्स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥

कासं [१०.९]—इन्द्रायाऽन्वृजव एकादशकपालं निर्वपेत् सजातकामः० ।

[८.१६]—

अनु त्वाऽहिमे अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।

करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत् इन्द्र देवाः ।

कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥

कासं [१०.११]—मारुतं प्रियङ्गवं चरुं निर्वपेत् पृथ्व्या दुग्धे सजातकामः०
प्रियवत्यनुवाक्या श्रीवती याज्या० द्विपदाऽनुवाक्या चतुष्पदा याज्या० ।

[८.१७]—

प्रिया वो नाम हुवे तुराणाम् । आ यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥

श्रियसे कं भानुभिस्संमिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्भिस्सुखादयः ।

ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥

कासं [११.१]—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेद्वैश्वदेवं द्वादशकपालं सजातकामः०
ऐन्द्रस्याऽवदायाऽथ वैश्वदेवस्योमे अवदाने, अवधेदथैन्द्रस्य० ऐन्द्री वैश्वदेववर्णे याज्यानुवाक्ये
भवतः० उपचाय्यपृष्ठं हिरण्यं दक्षिणा० तदेतदनुवर्त्म नाम हविः० ।

[९.१९]—इन्द्रं वो विश्वतस्परि.... ॥

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।

आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङ्मिन्द्र द्युम्नी स्वर्वद्वेहस्मे ॥

कासं [११.४]—बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत्सजातकामः । तस्य गणवती याज्यानु-
वाक्ये स्याताम्० ।

[१०.१३]—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नश्मृण्वन्नूतिभिस्सीद सादनम् ॥

स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यस्रदः कनिक्कदद्वावशतीरुदाजत् ॥

कासं [१२.१]—पयस्यया यजेत सजातकामः० पयस्या भवति० व्यूहति०
समूहति । समानमेककपालानां ब्राह्मणम्० ॥

दृश्यताम् 'आमयावी' (कासं १२.१)

कासं [१२.२]—एतया यजेत सजातकामः० ॥

दृश्यतां 'पशवः' (कासं १२.१), 'स्पर्धमानः'

सजाता वीयायुः

मैसं [२.१.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद्यस्य सजाता वीयायुः० ।

[४.११.१]—इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ प्र चर्षणिभ्यः.... ॥

दृश्यतां 'स्पर्धमानः'

संज्ञानीष्टिः

तैसं [२.२.११]—यः समानैर्मिथो विप्रियः त्यात्तमेतया संज्ञान्या याजयेत् ।
अग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्सोमाय रुद्रवते चरुमिन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादश-
कपालं वरुणायाऽऽदित्यवते चरुम्० ।

[२.१.११]—

अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्सोमो रुद्रेभिरभि रक्षतु त्मना ।

इन्द्रो मरुद्भिर्ऋतुधा कृणोत्वादित्यैर्नो वरुणः स५ शिशतु ॥

सं नो देवो वसुभिरग्निः स५ सोमस्तनूमी रुद्रियाभिः ।

समिन्द्रो मरुद्भिर्यज्ञियैः समादित्यैर्नो वरुणो अजिज्ञिपत् ॥

यथाऽऽदित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भ्यो रुद्राः समजानताऽभि ।

एवा त्रिणामन्नहृणीयमाना विश्वे देवाः समनसो भवन्तु ॥

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।

अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥

सं यदिषो वनामहे स५ हव्या मानुषाणाम् ।

उत द्युमनस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥

मैसं [२.२.६]—अग्नये वसुमते सतीनानामष्टाकपालं निर्वपेत्सोमाय रुद्रवते
श्यामाकं चरुमिन्द्राय मरुत्वते नैवारमेकादशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवते यवमयं चरुम्० तान्
वा एतया बृहस्पतिरयाजयत्संज्ञान्या० ।

संज्ञानं नो दिवा पशोः संज्ञानं नक्तमर्वतः ।

संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः

संज्ञानमश्विना युवमिहाऽस्मभ्यं नियच्छतम् ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि स५ वाजैः पुरुश्चन्द्रैरभि द्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाऽश्ववत्या रभेमहि ॥

इन्द्रवायु सुसंद्दशा सुहवेह हवामहे ।

यथा नः सर्वा इज्जनः संगमे सुमना असत् ॥

स० वो मना०सि स० व्रता समाकूतीरन०सत ।
 अमी ये विव्रताः स्थ तान् वः संनमयामसि ॥
 समाना वा आकूतानि समाना हृदयानि वः ।
 समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहाऽसति ॥
 समानो मन्त्रः समितिः समानी समान० व्रत० सह चित्तमेषाम् ।
 समानं क्रतुमभिमन्त्रयध्व० समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
 संगलध्व० संजानीध्व० स० वो मना०सि जानताम् ।
 देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ॥

[४.१२.२]—

अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्.... ॥
 समग्निर्वसुभिर्नो अव्यात्स० सोमो रुद्रियाभिस्तनूभिः ।
 समिन्द्रो रातहव्यो मरुद्भिः समादित्यैर्वैरुणो विश्ववेदाः ॥

कासं [११.३]—० सोऽग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं निरवपत्सोमाय रुद्रवते चरु-
 मिन्द्राय मरुत्वत एकादशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवते चरुम्० तानेतया याजयेद्यं कामयेताऽयं
 श्रेष्ठस्स्यादिति० त्रिष्टुभौ याज्यानुवाक्ये कुर्यात्० संवती संयाज्ये । सैषा संज्ञानी नामेष्टिः ।

[१०.१२]—

संज्ञानं नो दिवा पशोः.... ॥ समिन्द्र राया समिषा रभेमहि.... ॥ इन्द्रवायू
 सुसंदृशा.... ॥ अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्.... ॥ समग्निर्वसुभिर्नो
 अव्यात्.... ॥ समाना व आकूतानि.... ॥
 सं वो मनीसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
 अमी ये विवृतास्स्थन तान् वस्संनमयामसि ॥

सनिमेष्यन्

तैसं [२.२.६]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्सनिमेष्यन्० एतमेव वैश्वानरं
 पुनरागत्य निर्वपेत्० यथा रज्ज्वोत्तमां गामाजेत्तां भ्रातृव्याय प्रहिणुयात्० ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द०स-
 नाभ्यः.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ जातो यदग्ने भुवना
 व्यख्यः.... ॥ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्ने मघवत्सु.... ॥
 वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

मैसं [२.१.२] अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्सर्निं प्रैष्यन्० स यदा वन्वीताऽथाऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्० यं द्विष्यात्तस्मै दक्षिणां दद्यात्० एकहायनो गौर्दक्षिणा० ।

[४.११.१]—

ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानर तव धामान्याचके.... ॥ इडामग्रे पुरुदंसं.... ॥ त्वं नो अग्रे सनये.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥ अस्माकमग्रे मघवत्सु.... ॥ विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह त्यत्.... ॥ त्रीण्यायूषि तव जातवेदः.... ॥

कासं [९.१७]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्पौष्णं चरुं सर्निं प्रयन्० ।

कासं [४.१५]—

गोमद्विरण्यवद्वसु यद्वामश्चावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईद्रे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजिं सनोतु नः ॥
शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवाऽसि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् सर्निं निदधत्० यमुत्तममार्जत्तै सरज्जुमप्रियाय भ्रातृव्याय दद्यात्० ॥

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः प्रतिगृहीतस्स्यात् सनिकामः० ।

[४.१६]—

वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्रे.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ.... ॥ पृथो दिवि पृथो अग्निः.... ॥ अस्माकमग्रे मघवत्सु.... ॥

सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्य

तैसं [२.२.६]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्य ।

[१.५.११]—

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य द५स-

नाभ्यः.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ जातो यदग्ने भुवना
व्यख्यः.... ॥ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अस्माकमग्ने मधवत्सु
धारय.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

समानैर्मिथो विप्रियः स्यात्

दृश्यतां 'संज्ञानीष्टिः'

समान्तमभिद्रुह्येत्

मैसं [२.१.२]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् समान्तमभिद्रोक्ष्यन्० ।

[४.११.१]—

ऋतावान् वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे ॥
वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥
इडामग्ने.... ॥
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
शकेम कर्माऽपसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥

मैसं [२.१.४]—आग्निवारुणं चरुं निर्वपेत्समान्तमभिद्रुह्याऽऽमयावी वा० ।

[४.११.२]—त्वं नो अग्ने.... ॥ स त्वं नो अग्ने.... ॥

कासं [१०.३]—अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यत्समान्तमभिद्रुह्येद्यो
वाऽभिद्रुह्येत्० ।

[४.१६]—वैश्वानरो न ऊतये.... ॥ त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने.... ॥ ऋतावानं
वैश्वानरमृतस्य.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥

समृतसोमे

कासं [१०.७]—अग्नये यविष्ठायाऽष्टाकपालं निर्वपेत्समृतसोमे० ।

[७.१६]—त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः.... ॥ तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ.... ॥

दृश्यतां 'भ्रातृव्ये यजमाने'

सर्वकामः

मैसं [२.६.६]—

अग्नये गृहपतय आपतन्तानामष्टाकपालं निर्वपेत् । सोमाय वनस्पतये श्यामाकं चरुम् ।
सवित्रे प्रसवित्रे सतीनानामष्टाकपालम् । बृहस्पतये वाचस्पतये नैवारं चरुम् । इन्द्राय ज्येष्ठाय

हायनानामेकादशकपालम् । मित्राय सत्यस्य पतये नाम्बानां चरुम् । वरुणाय धर्मस्य पतये यवमयं चरुम् । रुद्राय पशुपतये गावीधुकं चरुम्० ।

[४.३.९-१०]—अथैते देवस्वः० यद्गार्गवो होता भवति० अपामेनं चित्रै-
रभिषिञ्चन्ति० ।

[४.१२.६]—

त्वमग्ने बृहद्वयः.... ॥ हव्यवाडग्निरजरः पिता नः.... ॥ त्वं च सोम नो
वशः.... ॥ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां.... ॥ आ विश्वदेव सत्पति.... ॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः.... ॥ उदग्रतो न वयो रक्षमाणाः.... ॥ हंसै-
रिव सखिभिर्वावदद्भिः.... ॥ त्वं सुतस्य पीतये.... ॥ भुवस्त्वमिन्द्र
ब्रह्मणो महान्.... ॥ प्र स मित्र मर्तः.... ॥ अनमीवासा ईडया.... ॥
यच्चिद्धि ते विशो यथा.... ॥ यत्किंचेद वरुण दैव्ये जने.... ॥ यथा नो
अदितिः करत्.... ॥ मा नस्तोके तनये.... ॥

कासं [१०.२]—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेत्सर्वेभ्यः कामेभ्यो ब्राह्मणः० ।

[४.१६]—अग्नीषोमा इमी सु मे.... ॥ अग्नीषोमा सवेदसा.... ॥ युवमेतानि दिवि
रोचनानि.... ॥ आऽन्यं दिवो मातरिश्वा.... ॥

कासं [१०.६]—अग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्सर्वेभ्यः कामेभ्यो ब्राह्मणः० ।

[७.१६]—

अग्निरीशे वसव्यस्याऽग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्रमन्दे अध्वरेषु राजन् ।

त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाऽभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥

कासं [१२.३]—सर्वेभ्यः कामेभ्यो यजेत० ॥

दृश्यतां 'त्रैधातवीयेष्टिः' (कासं १२.३-४)

सर्वपृष्ठेष्टिः

तैसं [२.३.७]—

य इन्द्रियकामो वीर्यकामः स्यात्तमेतया सर्वपृष्ठया याजयेत्० यदिन्द्राय राथन्तराय
निर्वपति० यदिन्द्राय बार्हताय० यदिन्द्राय वैरूपाय० यदिन्द्राय वैराजाय० यदिन्द्राय
शाक्तराय० यदिन्द्राय रैवताय० उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयति० द्वादशकपालः पुरोडाशो
भवति० समन्तं पर्यव्यति० व्यत्यासमन्वाह० अश्व ऋषभो वृष्णिर्वस्तः सा दक्षिणा० एतयैव
यजेताऽभिशास्यमानः० ।

[२.४.१४]—

अभिः त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः सुवर्द्धशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमिरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्तसहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाऽद्रिः ।

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नाऽर्वा ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥

दृश्यताम् 'अभिः' इत्यस्या अनन्तरं 'पिवा सोमम्' इत्यस्या अनन्तरं 'रेवतीर्नः' इत्यस्या अनन्तरं 'प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्' इति षष्ठी ग्राह्येति सञ्चौ (२२.४) । दृश्यतां मैसं ४.१२.४

तैसं [७.५.१४-१५]—

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राधन्तराय वासन्तायाऽष्टाकपालः । इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हताय प्रैष्ठायैकादशकपालः । विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूषेभ्यो वार्षिकेभ्यो द्वादशकपालः । मित्रावरुणायानुष्टुभाभ्यामेकविंशत्यां वैराजाभ्यां शारदाम्यां पयस्या । बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाकराय हैमन्तिकाय चरुः । सवित्र आतिच्छन्दसाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय शैशिराय द्वादशकपालः । अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुः । अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालः । अनुमत्यै चरुः । काय एककपालः० दशहवींषि भवन्ति० एतया वा इन्द्रं देवा अयाजयन् तस्मादिन्द्रसवः । एतया मनुं मनुष्यास्तस्मान्मनुसवः० दिग्वतीः पुरोनुवाक्या भवन्ति० ।

[४.४.१२]—

समिदिशामाशया नः सुवर्दिन्मधोरतो माधवः पात्वस्मान् ।

अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदाम्य इदं क्षत्रं रक्षतु पात्वस्मान् ॥

रथन्तरं सामभिः पात्वस्मान् गायत्री छन्दसां विश्वरूपा ।

त्रिवृन्नो विष्टया स्तोमो अह्नां समुद्रो वात इदमोजः पिपतुं ॥

१. अत्र हौत्रार्थे षड् ऋच आवश्यकाः । 'पिवा सोमम्' इत्यस्या अनन्तरं 'कदा च न स्तरीरसि' (तैसं १.४.२२) इति पञ्चमी ऋग् ग्राह्येति बौध्नौ (१३.२९), आपञ्चौ (१९.२२) । 'रेवतीर्नः' इत्यस्या अनन्तरं 'प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्' (तैसं १.७.१३) इति षष्ठी ग्राह्येति सञ्चौ (२२.४) । दृश्यतां मैसं ४.१२.४

उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्योजसीना ।
 इन्द्राऽधिपतिः पिपृतादतो नो महि क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥
 बृहत्साम क्षत्रभृद् बृद्धवृष्णिपं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् ।
 इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष ॥
 प्राची दिशाः सहयशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाऽह्नाः सुवर्वती ।
 इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाघृष्टः सहस्रियः सहस्वत् ॥
 वैरूपे सामन्निह तच्छकेम जगत्यैनं विद्वा वेशयामः ।
 विश्वे देवाः सप्तदशेन वर्च इदं क्षत्रं सलिलवातमुग्रम् ॥
 धर्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाऽऽशानां मित्रवदस्त्वोजः ।
 मित्रावरुणा शरदाऽह्नां चिकित्न् अस्मै राष्ट्राय महि शर्म यच्छतम् ॥
 वैराजे सामन्नि मे मनीषाऽनुष्टुभा संभृतं वीर्यं सहः ।
 इदं क्षत्रं मित्रवदार्रदानु मित्रावरुणा रक्षतमाधिपत्यैः ॥
 सम्राट् दिशाः सहसाम्नी सहस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्टया नः पिपृत् ।
 अवस्युवाता बृहतीर्तुं शकरीरिमं यज्ञमवन्तु नो घृताचीः ॥
 सुवर्वती सुदुषा नः पयस्वती दिशां देव्यवतु नो घृताची ।
 त्वं गोपाः पुरएतोत पश्चाद् बृहस्पते याम्यां युङ्धि वाचम् ॥
 ऊर्वा दिशाः रन्तिराशौषधीनाः संवत्सरेण सविता नो अह्वाम् ।
 रेवत् सामाऽतिच्छन्दा उ छन्दोऽजातशत्रुः स्योना नो अस्तु ॥
 स्तोमत्रयस्त्रिंशे भुवनस्य पत्नि विवस्वद्वाते अभि नो गृणाहि ।
 घृतवती सवितराधिपत्यैः पयस्वती रन्तिराशा नो अस्तु ॥
 ध्रुवा दिशां विष्णुपत्न्यघोराऽस्येशाना सहसो या मनोता ।
 बृहस्पतिर्मातरिक्षोत वायुः संधुवाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥
 विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ।
 विश्वव्यचा इष्यन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे ॥
 वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः.... ॥ अनु नोऽद्या-
 ऽनुमतिः.... ॥ अन्विदनुमते त्वं.... ॥ कया नश्चित्र आ भुवत्.... ॥ को
 अद्य युङ्क्ते.... ॥

मैसं [२.३.७]—

यो भूतिक्रामः स्यात्तमेतया याजयेत्० द्वादशकपालो भवति० उत्तानानि कपाल-

न्युपदधाति० अभिशस्यमान० याजयेत्० इन्द्राय राथन्तरायाऽनुब्रूहीति रथन्तरस्या ऋचमनूच्य बृहत ऋचा यजेत् । इन्द्राय बार्हतायाऽनुब्रूहीति बृहत ऋचमनूच्य रथन्तरस्य ऋचा यजेत् । इन्द्राय वैरूपायाऽनुब्रूहीति वैरूपस्या ऋचमनूच्य वैराजस्य ऋचा यजेत् । इन्द्राय वैराजायाऽनुब्रूहीति वैराजस्या ऋचमनूच्य वैरूपस्य ऋचा यजेत् । इन्द्राय रैवतायाऽनुब्रूहीति रेवतीमनूच्य शक्या यजेत् । इन्द्राय शाकरायाऽनुब्रूहीति शकरीमनूच्य रेवत्या यजेत् । एतैरेवैनमिन्द्रियैरेताभिर्देवताभिर्व्यतिषजति । पर्यहमवद्यति० अनुवाक्यायाश्चत्वार्यक्षराणि याज्यामभ्यत्यूहति । अनुष्टुभं च संपादयति पङ्क्तिं च०^१ ।

[४.१२.४]—

अभि त्वा शूर नोनुमः..... ॥ त्वामिद्धि हवामहे..... ॥

आपप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्मं अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिश्चित्राभिरूतिभिः ॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमा० यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥

रेवतीर्नः सधमादा इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।

अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।

अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥

कासं [१२.५]—

एतेन यजेत बुभूषन्नैन्द्रेण द्वादशकपालेन० उत्तानेषु कपालेष्वधिश्रयति० व्यतिषजे-
द्याज्यानुवाक्याः । इन्द्राय राथन्तरायाऽनुब्रूहीति रथन्तरस्यर्चमनूच्य बृहत ऋचा यजेत् । इन्द्राय
बार्हतायाऽनुब्रूहीति बृहत ऋचमनूच्य रथन्तरस्यर्चा यजेत् । इन्द्राय वैरूपायाऽनुब्रूहीति वैरूप-
स्यर्चमनूच्य वैराजस्यर्चा यजेत् । इन्द्राय वैराजायाऽनुब्रूहीति वैराजस्यर्चमनूच्य वैरूपस्यर्चा
यजेत् । इन्द्राय शाकरायाऽनुब्रूहीति शकरीमनूच्य रेवत्या यजेत् । इन्द्राय रैवतायाऽनुब्रूहीति
रेवतीमनूच्य शक्या यजेत् । न बृहत्या वषट्कुर्यात्० अनुवाक्यायाश्चत्वार्यक्षराणि याज्याम-
भ्यत्यूहेत्० अनुष्टुबनुवाक्या स्यात्पङ्क्तिर्याज्या प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य वा० समन्तं पर्यहं
पुरोडाशस्याऽवचेत्० एतया यजेत यमजघ्निवीसमभिशीसेयुः० यमनृतमभिशीसेयुस्तस्याऽन्नं
नाऽघात्० सैषा सर्वपृष्ठा नामेष्टिः० ॥

सर्ववेदसी प्रथमामिष्टिमालभेत

मैसं [२.१.३]—अग्नये जातवेदसेऽष्टाकपालं निर्वपेदधिक्राव्या एकादशकपाल-
मग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं यः सर्ववेदसी प्रथमामिष्टिमालभेत ० ।

[४.११.१]—

न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठयम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥
इडायास्त्वा पदे वयं.... ॥ दधिक्राव्यो अकारिषं.... ॥
दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रह्मं मन्त्रतोर्वैरुणस्य बभ्रुं ते विश्वाऽस्मद्दुरिता यावयन्तु ॥

कासं [१२.८]—पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा ० सर्ववेदसी देविकाभिर्यजेत ० ॥

सहस्रेण यक्ष्यमाणः

तैसं [२.४.११-१२]—एतयैव यजेत सहस्रेण यक्ष्यमाणः ० ॥

‘त्रैधातवीयेष्टिः’ द्रष्टव्या

सहस्रेणेजानः

तैसं [२.४.११-१२]—एतयैव यजेत सहस्रेणेजानः ० ॥

‘त्रैधातवीयेष्टिः’ द्रष्टव्या

सीक्षमाणः

तैसं [२.२.३]—अग्नये साहन्त्याय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्सीक्षमाणः ० ।

[१.३.१४]—

अग्ने सहन्तमा भर द्युमनस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यथर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥
तमग्ने पृतनासहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वहं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥

सुरभिमतृष्टिः

दृश्यतां ‘गावः प्रमीयेरन्’

सूतकार्त्तं प्राश्रीयत्

ऐत्रा [७.९]—

य आहिताग्निर्यदि सूतकार्त्तं प्राश्रीयत् ० सोऽग्नये तन्तुमतेऽष्टाकपालं पुरोळाक्षं

निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि, अक्षानहो नह्यतनोत सोम्याः (ऋसं १०.५३.६-७) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये तन्तुमते स्वाहेति० ।

सेनायामुत्तिष्ठन्त्याम्
सेनायामुत्थितायाम्
सेनाऽसंशितेव स्यात्
दृश्यतां ' संग्रामः '

स्पर्धमानः (क्षेत्रे वा सजातेषु वा)

तैसं [२.२.१]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वा० ।

[४.२.११]—इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ श्रथद्वृत्रमुत.... ॥

तैसं [२.२.३]—अग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वा० ।

[१.३.१४]—श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्ने.... ॥ स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्थाः.... ॥

दृश्यतां ' भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः ' (कासं १०.७); ' सजातकामः ' ' सजाता वीयायुः '

स्वर्गः

तैसं [२.३.४]—अर्यम्णे चरुं निर्वपेत्सुवर्गकामः० ।

[२.३.१४]—

अर्यमाऽऽ याति वृषभस्तुविष्मान् दाता वसूनां पुरुहूतो अर्हन् ।

सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥

ये तेऽर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति ।

तेभिर्नो देव महि शर्म यच्छ शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

मैसं [४.१०.१]—

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनन्.... ॥ त्वं सोमाऽसि सत्पतिः.... ॥ अग्निर्मूर्धा

दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥ पिप्रीहि देवं उशतो

यविष्ठ.... ॥ अग्ने यदद्य विशः.... ॥

१. विधिवाक्यम् ? माश्रौ ५.१.१.१९-२२—' आग्नेयेनाष्टाकपालेन स्वर्गकामो यजेत ॥ पौर्णमासतन्त्रेण । अग्निर्वृत्राणि जङ्घनन् त्वं सोमाऽसि सत्पतिरिति वार्त्रेणावाज्यभागौ ॥ अग्निर्मूर्धा भुवो यज्ञस्येति द्रविणः ॥ पिप्रीहि देवानग्ने यदयेति श्विष्टकृतः संयाज्ये ॥ '

स्वस्ति

मैसं [४.३.८]—आश्विनो द्विकपालः संग्रहीतुर्गृह इति० सवत्यौ दक्षिणेति० ।

[४.१२.६]—

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उताऽन्यो अस्मद्यजते वि चाऽऽवः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥
प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥

मैसं [२.६.१३]—सवित्रे प्रसवित्रे सतीनानामष्टाकपालः । अश्विन्यां पूष्ण
एकादशकपालः । सरस्वत्यै सत्यवाचे चरुः । दण्ड उपानहौ शुष्कदृतिः सा दक्षिणा ।

[४.४.९]—अथैते सत्यदूताः० स०वत्सरमग्निहोत्रं जुहोत्यनुसंतत्यै ।

[४.१२.६]—

य इमा विश्वा जातानि....॥ विश्वा रूपाणि....॥ अश्विना यज्ञमागतं....॥
इमं यज्ञमश्विना वर्धयन्ता.... ॥ प्र ते महे सरस्वति.... ॥ इदं ते हव्यं
घृतवत्सरस्वति.... ॥

स्वस्ति जनतामियाम्

तैसं [२.३.४]—अर्यग्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वस्ति जनतामियामिति० ।

[२.३.१४]—अर्यमाऽऽ याति वृषभस्तुविष्मान्.... ॥ ये तेऽर्यमन् बहवो देव-
यानाः.... ॥

स्वाराज्यम्

दृश्यतां ' राज्यं स्वाराज्यमाधिराज्यं च '

हतमनाः स्वयंपाप इव स्यात्

तैसं [२.२.८]—एतामेव^१ निर्वपेद्यो हतमनाः स्वयंपाप इव स्यात्० ।

[१.७.१३]—यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥ आ ते मह इन्द्रोत्पुग्र.... ॥

हिरण्यम्

तैसं [२.३.२]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्सावित्रं द्वादशकपालं भूम्यै चरुं यः

कामयेत हिरण्यं विन्देय हिरण्यं मोष नमेदिति० एतामेव निर्वपेद्विरण्यं वित्त्वा० एतामेव निर्वपेद्वस्य हिरण्यं नश्येत् ।

[२.२.१२]—

स प्रत्नवन्नवीयसा.... ॥ नि काव्या वेधसः शश्वतस्कः.... ॥
 हिरण्यपाणिमृतये सवितारमुष ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥
 वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यः सावीः ।
 वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेया धिया वामभाजः स्याम ॥
 बडित्था पर्वतानां खिद्रं विभर्षि पृथिवि ।
 प्र या भूमि प्रवत्वति मद्वा जिनोषि महिनि ॥
 स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति शोभन्त्यक्तुभिः ।
 प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥

मैसं [२.२.७]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्सावित्रं चरुं वायव्यां यवागूं प्रति-
 धुत्वा भौममेककपालं यस्य हिरण्यं नश्येत्० स यदा विन्देदथैतेभ्य एव निर्वपेत्० ।

[४.१२.२]—

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सनुमतः ॥
 दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपावृधि ।
 प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुषसो विदिद्युतुः ॥
 हिरण्यपाणिमृतये.... ॥ वाममद्य सवितर्वाममु श्वः.... ॥ प्र वायुमच्छा
 बृहती मनीषा.... ॥ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा.... ॥
 स्योना पृथिवि भवाऽनृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥
 बडित्था पर्वतानां खिद्रं विभर्षि पृथिवि । प्र या भूमि'.... ॥

कासं [११.२]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् सावित्रमष्टाकपालं वायव्यां यवागूं
 भौममेककपालं यस्य हिरण्यमपहृतं वोपहृतं वा स्यात् यो वा कामयेत हिरण्यं विन्देयेति०
 यदा हिरण्यं विन्देताऽथैतामेव निर्वपेत्० ।

[१०.१२]—

अस्मै ते प्रतिहर्ष्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥

यस्मै त्वी सुकृते जातवेद उ लोकमग्रे कृणवस्स्योनम् ।
 अश्विनी स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रथिं नशते स्वस्ति ॥
 य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥
 विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते.... ॥
 वायुरग्रेगा यज्ञप्रीत्साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्धिश्शिवामिः ॥
 प्र याभिर्यासि दाश्वीसमच्छा नियुद्धिर्वाय इष्टये दुरोणे ।
 नि नो रथिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥
 बडित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षिं पृथिवि । प्र या भूमिः..... ॥
 दृढा चिद्या वनस्पतीन् क्षमया दर्धर्ष्योजसा ।
 यत्ते अम्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥

ऐत्रा [७.९]—य आहिताग्निर्यदि हिरण्यं नश्येत्० सोऽग्नये हिरण्यवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । तस्य याज्यानुवाक्ये—हिरण्यकेशो रजसो विसारे, आ ते सुपर्णा अमिनन्तै एवैः (ऋसं १.७९.१-२) इति । आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये हिरण्यवते स्वाहेति० ॥

काठकसंहितान्तर्गतमन्त्राणां

परिशिष्टम्

काठकसंहितायां काम्येष्टीनां याज्यापुरोनुवाक्याः तेषु तेषु स्थानकेष्वन्ते संगृहीताः । तासां विनियोजकं ब्राह्मणं नवमादिद्वादशान्तेषु स्थानकेषूपलभ्यते । अस्मिन् ग्रन्थे मुद्रितासु काम्येष्टिषु काठकसंहितान्तर्भूतानां केषांचन विधिवाक्यानां संबन्धिन्यो याज्यानुवाक्या नोपलब्धाः । तथैव कासांचन याज्यापुरोनुवाक्यानां विनियोजकानि विधिवाक्यान्वपि नोपलब्धानि । एतादृश्यो याज्या-पुरोनुवाक्या अत्र संगृह्यन्ते । क्वचित् विधिवाक्यानां याज्यापुरोनुवाक्यानां च संबन्धः पश्चादुपलब्धः, स टिप्पण्यां प्रदर्शितः ।

कासं [४.१६]—हिरण्यगर्भः.... ॥

यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

[६.१०]—

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमागहि । महान् महीभिरुतिभिः ॥

त्वं मही इन्द्र तुभ्यै ह क्षा अनु क्षत्रं मीहना मन्यत द्यौः ।
 त्वं वृषी शवसा जघन्वान् सृजस्सिन्धूरहिना जग्रसानान् ॥
 ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥
 अग्रे दा दाशुषे रयि वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नस्सनुमतः ॥
 त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वादेवस्य यन्तूतयो वि वाजाः ।
 त्वं देहि सहस्रिणं रयि नोऽद्रोघेन वचसा सत्यमग्रे ॥
 दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥
 आ तू भर माकिरेतत्परिष्ठाद्विवा हिं त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
 इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्वर्यश्च प्रयन्धि ॥
 प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामाऽर्यश्शीसामि वयुनानि विद्वान् ।
 तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥
 वषट् ते विष्ण आस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
 वर्धन्तु त्वा सुष्ठुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिस्सदा नः ॥

[७.१६]—

अग्र आयूषि पवसे.... ॥
 अग्रे पवस्व स्वपा अस्मे वर्चस्सुवीर्यम् । दधद्रयि मयि पोषम् ॥
 यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्रा उपसो व्युष्टौ ।
 अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥
 महश्चर्कर्म्यवतः क्रतुग्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
 यं पूरुभ्यो दीदिवीसं नाऽग्नि ददधुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥
 ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम.... ॥
 'उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाऽग्नये ॥
 'तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषु दूतं कृणुते यद्दो अग्निः ।
 वातस्य मेडिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥

[८.१७]—

स युष्मस्सत्वा खजकृत्समद्रा तुविम्रक्षो नदनुमी ऋजीषी ।
 बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत् सहावा ॥

[१२.१४]—

आ नो मित्रावरुणा.... ॥ प्र बाहवा.... ॥
 इन्द्रावरुणयोरेह सन्नाजोरव आवृणे । ता नो मृडात ईदृशे ॥
 नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
 इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥
 त्वं नो अग्ने.... ॥ स त्वं नो अग्ने.... ॥ शं नो भवन्तु.... ॥ वाजे
 वाजे.... ॥
 विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृतास्सनुयाम वाजम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिस्सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
 एनाऽऽङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभिष्याम वृजने सर्ववीराः ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिस्सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
 अग्निर्मूर्धा.... ॥
 प्र' सो अग्ने तवोतिभिस्सुवीराभिस्तिरते वाजमर्मभिः ।
 यस्य त्वै सख्यमावरः ॥
 अग्ने वाजस्य.... ॥ अग्ने त्री ते.... ॥
 सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
 जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥
 उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनोः ।
 इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥
 इषं दुहन् सुदुधां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुन्वते ।
 अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्क्रतानि दीघद्वर्तिर्यज्ञं परियन् सुक्रतूयसि ॥
 त्रीण्यायूषि तव जातवेदः.... ॥

[१२.१५]—

दत्तं वो विश्ववेदसी हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृज्जसे गिरा ॥
 स हि वेदा वसुधितिं मही आरोधनं दिवः । स देवी एह वक्षति ॥
 स वेद देव आनमं देवी क्रतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥
 स होता सेदु दूत्यं चिकित्वी अन्तरीयते । विद्वी आरोधनं दिवः ॥

ते स्याम ये अग्रे ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ई पुष्यन्त इन्धते ॥

ते राया ते सुवीर्यैस्ससवीसो विमृण्विरे । ये अग्रा दधिरे दुवः ॥

अभि त्वा शूर नोनुमः..... ॥ त्वामिद्धि हवामहे.... ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतै शतं भूमिरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन् सहस्रै सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥

ता अस्य नमसा सहः..... ॥ रेवतीर्नः..... ॥ इमं मे वरुण.... ॥ तत्त्वा-
यामि.... ॥

रदत्पथो वरुणस्सूर्याय प्राऽर्णासि समुद्रिया नदीनाम् ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्कृतायश्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥

प्र सप्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।

वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवी सूर्याय ॥

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।

अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करोति जोषिषद्धि ॥

इमै स्वस्मै हृद् आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।

अपां नपादसुर्यस्य मद्वा विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥

आपो रेवतीः..... ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक्च सूर्य दृशे ॥

अधः संगृहीता ऋच आज्यभागसंबन्धिपुरोनुवाक्या इत्यनुमीयते ।

कासं [२.१४]—

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धशुक्र आहुतः ॥

त्वं सोमाऽसि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥

अग्रे यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इहेवेषु गच्छति ॥

त्वं नस्सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतस्सखा ॥

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्रे वीरवतीमिषम् ॥

१. एतदाद्या ऋचः 'अश्वं प्रतिगृह्णीयात्' इतीष्टेर्हौत्रमन्त्राः स्युः । दृश्यतां

वृषा सोम द्युमी असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा घर्माणि दधिषे ॥
 आ नो अग्ने सुचेतुना रयि विश्वायुपोषसम् । मर्दिकं धेहि जीवसे ॥
 गयस्कानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रस्सोम नो भव ॥
 त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वितन्वते ॥
 त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं ददासि जीवसे ॥
 अग्ने रक्षा णो अहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥
 अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥
 आदित्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वाऽरसम् । परो यदिध्यते दिवा ॥
 अग्निः प्रत्नेन मन्मना स्तम्भानस्तन्वी स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥
 सोम यास्ते मयोभुव ऊतयस्सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥
 अप्सवग्ने.... ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥
 अग्नी रक्षीसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिष्पावक ईड्यः ॥
 एह्यु षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्येतरा गिरः । एभिर्वर्चास इन्दुभिः ॥
 इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥
 उदग्ने शुचयस्तव.... ॥

न्यग्निं जातवेदसै होत्रवाहं यविष्ठयम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥
 अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥
 सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृडीको न आविश ॥

अधः संगृहीता ऋचः स्विष्टकृद्यागसंबन्धियाज्यापुरोनुवाक्या इत्यनुमीयते ।

कासं [२.१५]—

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान् ।
 विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ॥
 अग्ने शर्धं महते सौभगाय तव द्युमन्युत्तमानि सन्तु ।
 सं जास्पत्यै सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महीसि ॥
 से समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
 इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्त्याभर ॥
 सखायस्सं वस्सम्यश्चमिषि स्तोमं चाऽग्रये ।
 वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥

अभिस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
 अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥
 अभिर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
 अभिरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥
 प्रेद्धो अग्ने.... ॥ इमो अग्ने.... ॥
 उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
 शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥
 नू नो रास्व सहस्रवत्तोक्वत्पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥
 त्वां चित्रश्रवस्तम.... ॥ त्वामग्ने हविष्मन्तः.... ॥ वि पाजसा.... ॥
 भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
 रास्वा च नस्सुमहो हव्यदार्ति त्रास्वोत नस्तन्वो अग्रयुच्छन् ॥
 हव्यवाहमभिमातिषाहं रक्षोहणं पृतनासु जिष्णुम् ।
 ज्योतिष्मन्तं दीद्यतं पुरंधिमग्निं स्विष्टकृतमाहुवेम ॥
 स्विष्टमग्ने अभि तद् गृणीहि विश्वाश्च देव पृतना अभिष्याः ।
 सुगं नु पन्थां प्रदिशन् विभाहि ज्योतिष्मद्वेद्यजरं न आयुः ॥
 सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्वै ।
 देवी अच्छा दीद्यद्युञ्जे अर्द्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥
 श्रीणासुदारः.... ॥
 यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाऽचित्तिभिश्चक्रुमा कच्चिदागः ।
 कृधी ष्वस्मी अदितेरनागान् व्येनीसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥
 महश्चिदग्र एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानासुत मर्त्यानाम् ।
 मा ते सखायस्सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥
 यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्र आर्ष्टिषेनो मनुष्यस्समीधे ।
 विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥
 अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहाऽपाऽमीवामप रक्षीसि सेध ।
 अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नस्सृजेह ॥
 यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
 एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यीहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥

त्रीण्यायूषि तव जातवेदस्तिष्ठ आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
 ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥
 पिप्रीहि देवी उशतो यविष्ठ विद्वी ऋतून्तुपते यजेह ।
 ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वी होतृणामस्यायजिष्ठः ॥
 आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोढुम् ।
 अग्निर्विद्वान्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्स ऋतून् कल्पयाति ॥
 वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
 प्रादेवीर्मायास्सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनक्षे ॥
 साध्वीमकर्देवहूतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
 स आयुरागात्सुरभिर्वसानो महीमकर्द्युमहूतिं नो अद्य ॥
 अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुस्सुरभा उ लोके ।
 युवा कविः पुरुनिष्ठा ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्रः ॥
 अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवी आसादयादिह ॥
 अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥

काम्या इष्टयः

बौधायनश्रौ० [१३.१]—

अथाऽत इष्टीर्व्याख्यास्यामः । तासां सकृत् प्रदिष्टमेव दार्शपौर्णमासिकं तन्त्रम् । दार्शपौर्णमासिकः सःस्कारः । सर्वाः प्रथमाः सर्वा मध्यमाः सर्वा उत्तमाः । यथाकालं पर्वतिथ्या निर्वपेद्या आदिष्टस्थानाः । अथ या अनादिष्टस्थाना यानि पूर्वपक्षस्य पुण्याहान्येतत्तीर्थानि भवन्ति या अनार्तेष्टयः । अथ या आर्तेष्टय उपाधिगमकालास्ता भवन्ति । यथैतदभ्युद्धृताऽभ्युदिताऽभिनिष्कृताऽविजातेति । व्युदितमग्न्यन्वाधानम् । नित्यं व्रतोपायनम् । यावत्सिद्धिं याजमानमनुसंहरेदन्यत्राऽऽवापदेवताभ्यः । तासां याः सोपनामास्ता उपांशु । अथेतरा उच्चैरादेशादेव । सप्तदश सामिधेन्यो जानीयात् यथै-
तन्मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्यादुष्णिहककुभौ धाय्ये त्रिष्टुभौ संयाज्ये । वार्त्रघ्नावाज्यभागौ पूर्वपक्षे । वृधन्वन्तावपरपक्ष इत्यौपमन्यवः । यानि हवींषि कामेन वा दक्षिण्या वा व्यपेतानि स्युः नानाबर्हीष्येव तानि जानीयात् । आदेशादेव दक्षिणव्यपेतं समान-
बर्हिर्भवति यथा दिशामवेष्टिः । नेष्टीरुपांशुयाजोऽनुसमेति । यदेवत्यं हविस्तदेवत्ये याज्यापुरोनुवाक्ये । पुरस्तात्स्विष्टकृत उपहोमा यासामुक्ता उपहोमाः । वासोदक्षिणाः काम्या इष्टयो या अनादिष्टदक्षिणाः । गोदक्षिणः पशुबन्धः । नित्योऽन्वाहार्यः । इतीन्वा इमा इष्टीर्व्याख्याताः ॥ [बौ० २३.१—अथाऽत इष्टिकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः पञ्चदशसामिधेनीकाः स्युर्वार्त्रघ्नावाज्यभागानुच्चैर्देवता इति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सप्तदशसामिधेनीकाः स्युर्वृधन्वन्तावाज्यभागानुपांशुदेवता इति ॥ याजमानस्य करण इति ॥ सःसिद्धिमिष्टिपथे याजमानं कुर्यादिति बौधायनः ॥ कुर्याद्यथावकाशं याजमानमिति शालीकिः ॥]

बौ० १४.३०—अथ वै भवति यत् पुण्यं नक्षत्रं तद्वत्कुर्वीतोपव्युषमिति । प्रातः कुर्वीत । संगवे कुर्वीत । मध्यंदिने कुर्वीत । अपराह्णे कुर्वीत । सायं कुर्वीत । यावति तत्र सूर्यो गच्छेद्यत्र जघन्यं पश्येत्तावति कुर्वीत । यत्कारी स्यात् पुण्याह एव कुरुत इति ।

बौ० २६.४-५—अथेममिष्टिकल्पं पञ्चदशसामिधेनीकं च सप्तदशसामिधेनीकं च सामामनामः । तत्र सिद्धं याजमानं बौधायनस्य कल्पः । यथाज्ञायं शालीकिः । त्रींस्तृचाननुब्रूयादिति । त्रिः प्रथमामनूच्य तिस्रोऽनन्तरा अनुब्रूयात् त्रिरुत्तमाम् । पञ्च-
दशाऽनुब्रूयादिति । एकादशेमाः सामिधेन्यः सामामनामः । तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम् । ताः पञ्चदश । सप्तदशाऽनुब्रूयादेकविंशतिमनुब्रूयाच्चतुर्विंशतिमनुब्रूयात् त्रिंशतमनुब्रूयाद् द्वात्रिंशतमनुब्रूयात् षट्त्रिंशतमनुब्रूयाच्चत्वारिंशतमनुब्रूयाच्चतु-
श्चत्वारिंशतमनुब्रूयादष्टाचत्वारिंशतमनुब्रूयादिति धाय्यालोक एता धातव्या भवन्ति । आग्नेय्यः सर्वा गायत्र्यः । सर्वाणि छन्दांस्यनुब्रूयादपरिमितमनुब्रूयादिति धाय्यालोक एवैता

१. मुद्रितपुस्तक एतदनन्तरं 'ताः पञ्चदश' इति पदद्वयमधिकं विद्यते । परं तन्माऽस्त्विति प्रतिभाति, यतः 'त्रींस्तृचाननुब्रूयाद्राज्यस्य' (तैसं २.५.१०) इति विधिवक्येन तच्च समन्वेति ।

धातव्या भवन्ति । नैताः सर्वा गायत्र्यः । गायत्री पुरोनुवाक्या भवति त्रिष्टुप् गायत्री । पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोनुवाक्या भवति । उपरिष्ठाल्लक्ष्मा याज्या । मूर्धन्वती पुरोनुवाक्या भवति नियुत्वत्या यजत्युपाश्रुत्याजमन्तरा यजतीति । दर्शपूर्णमासयोरेवैतदुपपद्यते नाऽन्यत्र ।

अथेमाः काम्या इष्टयो निष्पुरीषेणैव प्रयोक्तव्या भवन्ति । स संवत्सरं पयोव्रतः स्याद् द्वादशाहं वा यावद्वा शस्तीत । तासां याः समानसंयोजना एकां चेत्तासां निर्वपेत्सर्वा एवैता निर्वपेत्तव्या भवन्ति ॥

अग्निमुद्रासयिष्यन्

बौ० १३.८—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैश्वानरं द्वादशकपालमग्निमुद्रासयिष्य-
न्निति । तस्या एता भवन्ति अग्निर्मूर्धा, भुवः, वैश्वानरो न ऊत्या, त्वमग्ने शोचिषा शोशुवानः इति ॥

अग्निर्गृहान् दहति

बौ० १३.४—अथ वै भवत्यग्नि वा एष एतस्य गृहानुच्यति यस्य गृहान् दहति । अग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः । (अक्रन्ददग्निः, त्वे वसूनि)

अञ्जःसवकारीरीष्टिः

बौ० १३.४०—अथाऽतोऽञ्जःसवकारीरी । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति । श्रप-
यित्वाऽऽसादयति । तस्याः पञ्चदश सामिधेन्यः पञ्च प्रयाजा वार्त्रच्चावाज्यभागौ । अथ
हविषः अग्निर्मूर्धा, भुवः इति । त्रिष्टुभौ संयाज्ये । याभिश्चैव पिण्डीराबध्नाति याभिश्च जुहोति
याभ्यां च धूममन्वीक्षते ताः ससिध्यन्ति । संतिष्ठतेऽञ्जःसवकारीरी । [बौ० २३.४—
अञ्जःसवकारीर्ये करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥]

दृश्यतां 'कारीरीष्टिः'

अध्वरकल्पा

दृश्यतां 'भ्रातृव्ये यजमाने'

अन्नपतिः स्याम्

बौ० १३.६—अग्नयेऽन्नपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नपतिः
स्यामिति । तस्या एते भवतः । (उक्षान्नाय वशान्नाय, वद्या हि सूतो)

अन्नम्

बौ० १३.११—इन्द्रायाऽर्कवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदन्नकाम इति ।
तस्या एते भवतः इन्द्रमिन्द्राथिनो बृहत्, गायन्ति त्वा गायत्रिणः इति ।

अन्नवान् स्याम्

बौ० १३.६—अग्नयेऽन्नवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नवान्स्या-
मिति । तस्या एते भवतः उक्षान्नाय वशान्नाय, वद्या हि सूतो इति ।

अन्नादः स्याम्

बौ० १३.६—अग्नयेऽन्नादाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेताऽन्नादः स्यामिति । तस्या एते भवतः । (उक्षाज्ञाय वशाज्ञाय, वद्मा हि सूने)

बौ० १३.२८—यं कामयेताऽन्नादः स्यादिति तस्मा एतं त्रिधातुं निर्वपेदिन्द्राय राज्ञे पुरोडाशमेकादशकपालमिन्द्रायाऽधिराजायेन्द्राय स्वराज्ञ इति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राय राज्ञे जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । एतामेव प्रतिपदं कृत्वेन्द्रायाऽधिराजायेन्द्राय स्वराज्ञ इति चतुरश्वतुरो मुष्टीनेकैकस्यै देवतायै । हविष्कृता वाचं विवृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युष्य गार्हपत्य एकादशोत्तानानि कपालान्युपदधाति । अथ वै भवत्युत्तानेषु कपालेष्वधिश्चयत्ययात-यामत्वाय । त्रयः पुरोडाशा भवन्ति । त्रय इमे लोकाः । एषां लोकानामाप्त्यै । उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवतीति । स उत्तरमुत्तरमेव ज्यायाः सं करोति । सर्वेषामभिगमयन्नवद्यतीति । [बौ० २६.६—सर्वेषामभिगमयन्नवद्यतीति सदैवतस्य सस्विष्टकृत्कस्येत्येवेदमुक्तं भवति ।] सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय राज्ञेऽनुब्रूहि इति । प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्राऽसि राजा इत्यनूच्य इन्द्रो ज्याति न पराजयातै इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्रायाऽधिराजायाऽनुब्रूहि इति । इन्द्रो ज्याति न पराजयातै इत्यनूच्य अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वम् इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय स्वराज्ञेऽनुब्रूहि इति । अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वम् इत्यनूच्य प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्राऽसि राजा इति यजति । व्यत्यासमन्वाहाऽनिर्दाहयेति ब्राह्मणम् ।

अपरुद्धो वा अपरुध्यमानो वा

बौ० १३.१४—इन्द्राय सुत्राग्ने पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धो वाऽप-रुध्यमानो वेति । तस्या एते भवतः इन्द्रः सुत्रामा, तस्य वयः सुमतौ यज्ञियस्य इति ।

बौ० १३.२१—आदित्येभ्यो धारयद्वद्भ्यश्चरुं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वेति । अथ अदितेऽनुमन्यस्व इत्यपरुध्यमानोऽपरोद्धुः पदपाः सूनादत्ते । अथैनानादायाऽऽहरति उपप्रेत मरुतः सुदानव एना विस्पतिनाऽभ्यमुः राजानम् इति । [बौ० २३.३—पदपाः सूनाः हरण इति ॥ सूत्रः शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः समस्तेनैवाऽस्य मन्त्रेण पदपाः सून् हत्वोत्तरवर्त्य आवपेत् । अथ तूष्णीमुरस्यनुनिनयेदिति ॥] अथैनान् यज-मानस्याऽञ्जलावावपति सत्याशीः इति । इह मनः इत्युपनिगृह्णीते । अत्रैतान् पदपाः सूनसंचरे परावपति । अत्र यं यजमानो द्वेष्टि तं मनसा ध्यायति । तस्या एते भवतः धारयन्त आदित्यासः, तिस्रो भूमीधारयन् इति । यः परस्ताद् ग्राम्यवादी स्यात्तस्य गृहाद् व्रीहीनाहरेत् । शुक्लाः कृष्णाः च विचिनुयादिति । अथ वै भवति ये शुक्लाः स्युस्तमादित्यं चरुं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः त्यान्नु क्षत्रियान्, न दक्षिणा इति । आदित्या वै देवतया विद् । विशमेवाऽवगच्छतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवत्यवगताऽस्य विडनवगतः राष्ट्र-मित्याहुः । ये कृष्णाः स्युस्तं वारुणं चरुं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः इमं मे वरुण, तत्त्वा यामि इति । वारुणं वै राष्ट्रमुमे एष विशं च राष्ट्रं वाऽवगच्छतीति ब्राह्मणम् ।

अथ वै भवति यदि नावगच्छेद् इममहमादित्येभ्यो भागं निर्वपाम्यामुष्माद्मुष्मै विशोऽवगन्तोः इति निर्वपेदिति । निरुप्योपरमति । अथाऽवगच्छते स५सादयति । [बौ० २६.६—अथ वै भवति यदि नाऽवगच्छेद् इममहमादित्येभ्यो भागं निर्वपाम्यामुष्माद्मुष्मै विशोऽवगन्तोः इति निर्वपेदिति । निरुप्योपरमति । परिदानान्तं कर्म कृत्वाऽथैतान् व्रीहीन् कृष्णाजिने समुप्योत्तरार्धेऽग्न्यगारस्याऽऽसञ्जयेत् । अथाऽवगते स५सादयेत् । प्रोक्षणप्रभृतिना कर्मणा प्रतिपद्येत । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ।] तस्या एते भवतः यज्ञो देवानाम्, आदित्यानामवसा नूतनेन इति । आदित्या एवैनं भागधेयं प्रेप्सन्तो विशमवगमयन्तीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यदि नाऽवगच्छेदाश्वत्थान् मयूखान् सप्त मध्यमेवायामुपहन्यादिति । प्रागीषमनोऽवस्थापयित्वाऽऽश्वत्थान् मयूखान् सप्त मध्यमेवायामुपहन्ति । मध्यममुपहत्य त्रीन् प्रतीचस्त्रीन् प्राच आयातयति इदमहमादित्यान् बध्नाम्यामुष्माद्मुष्मै विशोऽवगन्तोः इति । आदित्या एवैनं बद्धवीरा विशमवगमयन्तीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यदि नाऽवगच्छेदेतमेवाऽऽदित्यं चरुं निर्वपेत् । इध्मेऽपि मयूखान् संनहोत् तान् सहेध्मेनाऽभ्यादध्यादिति । तान् सहेध्मेनाऽभ्यादधाति । अनपह्यमेवाऽवगच्छतीति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति आश्वत्था भवन्ति । मरुतां वा एतदोजो यदश्वत्थः । ओजसैव विशमवगच्छति । सप्त भवन्ति । सप्तगणा वै मरुतः । गणश एव विशमवगच्छतीति ब्राह्मणम् । तस्या एते एव भवतः ।

अभिचरन्

बौ० १३.४—अग्नये रुद्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन्निति । तस्या एते भवतः त्वमग्ने रुद्रः, आ वो राजानम् इति । [बौ० २३.१—अग्नये रुद्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन्निति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो लोहितोष्णीषा लोहितवाससश्चत्विजः प्रचरेयुरिति ॥ याज्यापुरोनुवाक्याभ्यामेवैतदुक्तं भवतीति शालीकिः ॥]

बौ० १३.१५—अथ वै भवत्याग्नवैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन् । सरस्वत्याज्यभागा स्यात् । बार्हस्पत्यश्चरुति । अथ वै भवति प्रति वै परस्तादभिचरन्तमभिचरन्ति । द्वेद्वे पुरोनुवाक्ये कुर्यादतिप्रयुक्त्या इति । स द्विद्विः पुरोनुवाक्यामन्वाह । त्रिस्त्रिहंविषामवधति । तस्या एता भवन्ति अग्नाविष्णुः, अग्नाविष्णुः, प्र णो देवी, आ नो दिवः, बृहस्पते, एवा पित्रे इति । [बौ० २३.२—आग्नवैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्निति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ प्रत्यभिचरन्तमेव विदित्वेति शालीकिः ॥ सारस्वतमाज्यमिति ॥ मन्त्रनिरुप्तमेतद् घृतं स्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीकमिति शालीकिः ॥ कालेकाल एवैनद् धुवाज्याद् गृहीयादित्यौपमन्यवः ॥]

बौ० १३.१८—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेदभिचरन्निति । तस्या एते भवतः । (सोमा रुद्रा वि बृहत् विषूचीः, सोमा रुद्रा युवमेतानि)

अभिचर्यमाणः

बौ० १३.५—अग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचर्यमाण इति । तस्या एते भवतः । (श्रेष्ठ यविष्ठ भारत, स श्वितानः)

अभिषेकस्यमानः

बौ० १३.८—अथ वै भवति वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्धारुणं चरुं दधिकावणे चरुमभिषेकस्यमान इति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्यम् । तस्या एता भवन्ति वैश्वानरो न ऊत्या, त्वमग्ने शोचिषा शोशुवानः, अव ते हेडः, उदुत्तमं, दधिकावणो अकारिषम्, आ दधिकाः इति । अन्वाहार्यमासाद्य हिरण्यं ददाति ।

अल० श्रियै सन् सदृश् समानैः स्यात्

बौ० १३.१४—योऽल० श्रियै सन् सदृश् समानैः स्यात्तस्मा एतमैन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेदिति । अथ वै भवति रेवती पुरोनुवाक्या भवति शान्त्या अप्रदाहाय शकरी याज्येति । तस्या एते भवतः रेवतीर्नः, प्रो ष्वस्मै पुरोरथम् इति ।

अविं प्रतिगृह्य

बौ० १३.९—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदविं प्रतिगृह्येति । तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, त्वमग्ने शोचिषा शोशुवानः इति ।

अश्वं प्रतिगृह्णीयात्

बौ० १३.३३—यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारुणाञ्चतुष्कपालान्निर्वपेदेकातिरिक्तानिति । तस्या एते भवतः इमं मे वरुण, तत्त्वा यामि इति । यद्यपरं प्रतिग्राही स्यात् सौर्यमेककपालमनुनिर्वपेदिति । तस्या एते भवतः उदु त्वं, चित्रम् इति । अथाऽपोऽवभृथमवैति । अथ वै भवत्यपोनप्त्रीयं चरुं पुनरेत्य निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः अपां नपात्, समन्या यन्ति इति । [बौ० २३.४—यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारुणाञ्चतुष्कपालान्निर्वपेदेकातिरिक्तानिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो वैश्वानरेणैकं प्रतिगृह्णीयात् । एवं द्वौ । गणं तु प्रतिगृह्य कुर्वीत बहुषु वा^१ वारुणानेकातिरिक्तानिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्वैश्वानरेणैकं प्रतिगृह्णीयात्तु द्वौ । गणं तु प्रतिगृह्य कुर्वीत^२ द्वयोर्बहुषु वा वारुणानेकातिरिक्तानिति ॥] [बौ० २६.६—अथ वारुणेषु च संज्ञानेष्टयां च सकृदेवाऽनुवाचयेत् सकृदाश्राचयेत् । सकृत्प्रदानाः समानदेवताः । अपोनप्त्रीयं चरुं पुनरेत्य निर्वपेदिति । को नु खल्वपां नपाद्भवतीति । वैद्युत इत्येव ब्रूयात् ।]

आनुजावरः

बौ० १३.२७—यो राजन्य आनुजावरः स्यात्तस्मा एतमैन्द्रमानुषुकमेकादशकपालं निर्वपेदिति । अथ वै भवति बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवत इति । तस्या एते भवतः बुध्नादग्रमङ्गिरोर्मिर्गुणानः, बुध्नादग्रेण विमिमाय मानैः इति । यो ब्राह्मण आनुजावरः स्यात्तस्मा एतं बार्हस्पत्यमानुषुकं चरुं निर्वपेदिति । अथ वै भवति बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवत इति । तस्या एते भवतः महान्मही अस्तभायत्, बुध्नाद्यो अग्रमभ्यर्त्योजसा इति ।

आयुः

बौ० १३.५—अग्नये आयुष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत सर्वमायुरियामिति । तस्या एते भवतः आयुष्टे, आयुदो अमे इति ।

ईजानः

दृश्यतां 'देविकाहवींषि'

उभयादत् प्रतिगृह्याऽथ वा पुरुषं वा

बौ० १३.९—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदुभयादत् प्रतिगृह्याऽथ वा पुरुषं वेति । तस्या एते एव भवतः । (वैश्वानरो न ऊत्या, त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः)

कल्पेरन्

बौ० १३.१९—एतामेव (ऐन्द्रमेकादशकपालं मास्त५ सप्तकपालं) निर्वपेद्यः कामयेत कल्पेरन्निति । यथादेवतमवदाय यथादेवतं यजेत् । भागधेयेनैवैवान् यथायथं कल्पयति । कल्पन्त एवेति ब्राह्मणम् । तस्या एता भवन्ति याः पूर्वस्याः । (इन्द्रं वो विश्वतस्परि, इन्द्रं नरः, मरुतो यद्ध वः, या वः शर्म)

दृश्यतां 'क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम्'

कामो नोपनमेत्

बौ० १३.५—अथ वै भवत्यग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदिति । तस्या एते भवतः तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम, अश्याम तं काममग्ने इति । [बौ० २३.१—अग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो या तत्राऽऽस्नाता स्यात्तां चेन्निर्वपतः कामो न समृध्येताऽथैवं कुर्यादिति ॥ एषैव सार्वकामिकी स्यादिति शालीकिः ॥ कामेकाम एषा स्यादित्यौपमन्यवः ॥]

बौ० १३.२६—अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदिति । तस्या एते भवतः अग्नीषोमा सवेदसा, युवमेतानि इति ।

कारीरीष्टिः

बौ० १३.३७-४०—कारीर्या यक्ष्यमाणो भवति । स उपकल्पयते कृष्णं वासः कृष्णतूषं कृष्णमथं कृष्णं सदानं कृष्णाजिनं कृष्णमधु करीरसक्तून् कृष्णां कुम्भीमामपकां कृष्णमनस्त्रिगधं कृष्णामविं कृष्णं वर्षाह्वस्तम्बं वैतसमिध्मावर्हिरिति । [बौ० २६.६—कृष्णमधु चेति । पौत्तिकमित्येवेदमुक्तं भवति । अनस्त्रिगधमिति । त्रिवलीकमित्येवेदमुक्तं भवति । अथाऽप्युदाहरन्ति त्रिच्छदिष्कमित्येवेदमुक्तं भवति ।] अथ यजमानायतने कृष्णं वासः कृष्णतूषं निदधाति । अथाऽग्नेणाऽऽहवनीयं कृष्णमथं कृष्णेन सदानेन संदित्याऽन्तर्वेदि कृष्णाजिने कृष्णमधु करीरसक्तून्निवपति । उत्करे कुम्भीं निमिनोति । अथाऽग्नेतोत्करं प्रागीयमनः स्थापयित्वा तस्याऽग्नेोपस्तम्भनं कृष्णामविं निग्रधाति । उत्तरेणाऽऽहवनीयं कृष्णं वर्षाह्वस्तम्बं वैतसमिध्मावर्हिरिति निदधाति । अथ यजमानः कृष्णं

वासः कृष्णतूषं परिधत्ते मास्तमसि मस्तामोजोऽपां धारां भिन्द्व इति । रमयत मस्तः श्येन-
माथिनम् इति पश्चाद्वातं प्रतिमीवति । पुरोवातमेव जनयति वर्षस्याऽवबृद्धयै इति ब्राह्मणम् ।
अथैतमश्वः सदानात्ममुच्योत्तरवर्ग्येणाऽभिविक्षिपति अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धाः इति ।
स यदि विधूनुते यदि मेहति यदि शकृत्करोति वर्षिष्यतीत्येव वेद । अथ वातनामानि
जुहोति पुरोवातो वर्षजिन्वरावृत् स्वाहा इत्यष्टौ । अथाऽन्तर्वेदि कृष्णाजिने मधुषा करीर-
सक्तून् संयौति मान्दा वाशाः शुन्ध्यूरजिराः । ज्योतिष्मतीस्तमस्वरीरुन्दतीः सुफेनाः । मित्रमृतः
क्षत्रमृतः सुराष्ट्रा इह माऽवत इति । तिस्रः पिण्डीः कृत्वा समुच्चित्य कृष्णाजिनस्याऽन्तान्
सदानेनोपनहति वृष्णो अश्वस्य सदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामि इति । अथैना अनसः प्रथमायां
गधायामावध्नाति देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य इति । अहोरात्रे उपरमति । द्वितीयस्यामा-
वध्नाति देवाः शर्मण्या मित्रावरुणाऽर्यमन् इति । अहोरात्रे एवोपरमति । तृतीयस्यामावध्नाति
देवाः सर्पातयोऽपां नपादाशुहेमन् इति । अहोरात्रे एवोपरमति । अथ वै भवति यदि वर्षे-
त्तावत्येव होतव्यमिति । यदि चैव वर्षति यदि नोभयेनैव पिण्डीर्जुहोति सुचोपस्तीर्णाभि-
घारिताः दिवा चित्तमः कृण्वन्ति, आ यं नरः, उदीरयथा मस्तः समुद्रतः इति । अथाऽऽसां धूम-
मन्वीक्षते असितवर्णा हरयः सुपर्णाः इति । यदि न वर्षेत् श्वो भूते हविर्निर्वपेत् । अग्नये
धामच्छदे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतः सप्तकपालः सौर्यमेककपालमिति । तस्या
एता भवन्ति त्वं त्या चिदच्युता, अग्ने भूरीणि तव जातवेदः, दिवो नो वृष्टिं मस्तो ररीध्वं, पिन्वन्यपो
मस्तः सुदानवः, उदु त्यं, चित्रम् इति । अथ पुरस्तात् स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति और्वमृग-
वच्छुचिमप्रवानवदा हुवे इति तिस्रः । अथैतां कुम्भीमद्भिः पूरयति सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं
पृण इति । सा यदि दीर्यते यदि मिद्यते वर्षिष्यतीत्येव वेद । अथाऽचिमभिर्जुहोति अञ्जा
असि प्रथमजा बलमसि समुद्रियम् इति । सा यदि विधूनुते यदि मेहति यदि शकृत्करोति
वर्षिष्यतीत्येव वेद । अथ वर्षाहस्तम्बमभिजुहोति उन्नमय पृथिवीं भिन्दीदं दिव्यं नमः ।
उग्रे दिव्यस्य नो दहांशानो वि सृजा दातम् इति । [बौ० २३.४—वर्षाहस्तम्बस्याऽभिहोम इति ॥
सूत्रं बौधायनस्य ॥ यत्रैव वर्षाहस्तम्बः स्यात्तदच्छेदिति शालीकिः ॥ कृष्णाजिनस्याऽवधवन
इति ॥ अन्तर्वेदि तिष्ठन् कृष्णाजिनमवधुनुयादिति बौधायनः ॥ बहिर्वेदीति शालीकिः ॥]
अथैनमाहवनीयेऽनुग्रहरति हिरण्यकेशो रजसो विसारे इति । अथाऽस्य धूममन्वीक्षते आ ते
सुपर्णा अभिनन्त एवैः इति । अथाऽन्तर्वेदि तिष्ठन् कृष्णाजिनमवधूनीति ये देवा दिविभागाः
इत्याऽन्तादनुवाकस्य । संतिष्ठते कारीरी ।

कैव्याद्विभीयात्

बौ० १३.२६—सोमाय वाजिने श्यामाकं चरुं निर्वपेद्यः कैव्याद्विभीयादिति ।
तस्या एते भवतः आ प्यायस्व, सं ते इति ।

क्षत्राय च विशेषे च समदं दध्याम्

बौ० १३.१९—एतामेव (ऐन्द्रमेकादशकपालं मास्तः सप्तकपालं) निर्वपेद्यः कामयेत
क्षत्राय च विशेषे च समदं दध्यामिति । ऐन्द्रस्याऽवधन् ब्रूयाद् इन्द्रायाऽनुब्रूहि इति ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि इत्यन्वाह । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो यज इति । या वः शर्म इति यजति । मारुतस्याऽऽवयन् ब्रूयात् मरुद्भवोऽनुब्रूहि इति । मरुतो यद् वो दिवः इत्यन्वाह । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह इन्द्रं यज इति । इन्द्रं नरः इति यजति । स्व एवैभ्यो भागधेये समदं दधाति । वितृ५ हाणास्तिष्ठन्तीति ब्राह्मणम् । [बौ० २३.३—विपर्यस्तहविषीति ॥ मारुतः प्रथमं मन्त्रकर्म लभेतेति बौधायनः ॥ अवदानत इति शालीकिः ॥ प्रदानत इत्यौपमन्यवः ॥ चातुष्पाश्यादित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥ मारुतीभ्या५ होता यजतीति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन आदित एव होता मरुत आवाहयेदनुवाचनतोऽध्वर्युरिति ॥ याज्यापुरोनुवाक्याभ्यामेवैतदुक्तं भवतीति शालीकिः ॥]

दृश्यतां 'कलेरन्'

गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा विभीयात्

बौ० १३.४—अग्नये सुरभिंमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा विभीयादिति । तस्या एते भवतः अग्निर्होता, साध्वीमरुः इति । [बौ० २३.१—अग्नये सुरभिंमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा विभीयादिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः प्रोक्षणीषु च गन्धानावपेयुर्गन्धवन्तश्चत्विजः प्रचरेयुरिति ॥ याज्यापुरोनुवाक्याभ्यामेवैतदुक्तं भवतीति शालीकिः ॥]

ग्रामः

बौ० १३.८—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेन्मारुत५ सप्तकपालं ग्रामकाम इति । अथ वै भवत्याहवनीये वैश्वानरमधिभ्रयति गार्हपत्ये मारुतम् । अनूच्यमान आसादयतीति । काले प्रत्यञ्चं वैश्वानरमासादयति । अनूच्यमानासु सामिधेनीषु मारुतम् । तस्या एता भवन्ति वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्ठो दिवि, मरुतो यद् वो दिवः, या वः शर्म इति । [बौ० २३.२—विपर्यस्तहविषीति ॥ मारुतः प्रथमं मन्त्रकर्म लभेतेति बौधायनः ॥ अवदानत इति शालीकिः ॥ प्रदानत इत्यौपमन्यवः ॥ चातुष्पाश्यादित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] [बौ० २६.५—तन्त्रं धृष्टेरादानम् । गार्हपत्यसकाशाद्बुद्धिमाददीत । तथाऽऽहवनीये वैश्वानरस्य कपालान्युपदध्यात् । प्रदक्षिणमावृत्य गार्हपत्ये मारुतस्य । कृतानि पिष्टानि समुप्य संयुत्य व्यभि-मृश्य पिण्डौ कृत्वाऽग्रेण मारुतस्य पिण्डं पर्याहृत्याऽऽहवनीये वैश्वानरमधिपृञ्ज्यात् । प्रदक्षिणमावृत्य गार्हपत्ये मारुतम् । त्वचं ग्राहयित्वेनं त्वचं ग्राहयेत् । अमुं पर्यग्निं कृत्वेनं पर्यग्निं कुर्यात् । अमु५ श्रपयित्वेनं५ श्रपयेत् । अपि वोभयमेवोभयत्र कुर्यात् । तस्य शृतस्याऽऽसादनं दक्षिणं परिधिसंधिमपरं विमुच्य दक्षिणं वा परिधिमग्रेण । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ।]

बौ० १३.१३—इन्द्रायाऽऽनृजवे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकाम इति । तस्या एते भवतः अन्वह मासाः, अनु ते दायि इति ।

बौ० १३.१९—अथ वै भवत्यैन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुत५ सप्तकपालं ग्रामकाम इति । अथ वै भवत्याहवनीयं ऐन्द्रमधिभ्रयति गार्हपत्ये मारुतम् । अनूच्यमान

आसादयतीति । काले प्रत्यञ्चमैन्द्रमासादयति । अनुच्यमानासु सामिधेनीषु मारुतम् । तस्या एता भवन्ति इन्द्रं वो विश्वतस्परि, इन्द्रं नरः, मरुतो यद् वो दिवः, या वः शर्म इति ।

बौ० १३.२०—ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेद्वैश्वदेवं द्वादशकपालं ग्रामकाम इति । एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयत उपाधाय्यपूर्वयं वासः । अथ वै भवत्यैन्द्रस्याऽवदाय वैश्वदेवस्याऽवद्येत् । अथैन्द्रस्योपरिष्ठादिति । स ऐन्द्रस्याऽवदाय द्विवैश्वदेवस्याऽवद्यति । अथैन्द्रस्योपरिष्ठात् । इन्द्रियेणैवाऽस्मा उभयतः सजातान् परिगृह्णातीति ब्राह्मणम् । तस्या एते भवतः भरेष्विन्द्रं, ममत्तु नः इति । अन्वाहार्यमासाद्योपाधाय्यपूर्वयं वासो ददाति । [बौ. २६.५—इन्द्रस्याऽवदाय वैश्वदेवस्याऽवद्येदथैन्द्रस्योपरिष्ठादिति । द्वे एवैते अवदाने उक्ते भवतः । उपाधाय्यपूर्वयं वासो दक्षिणेति । प्रवेणतो वाऽन्ततो वा ताम्राणि वा नीलानि वा सूत्राण्युपहितानि भवन्ति । अपि वोपधानरज्जुरेवैषोक्ता भवति ।]

बौ० १३.२०—पृश्निष्यै दुग्धे प्रैयङ्गवं चरुं निर्वपेन्मरुद्भयो ग्रामकाम इति । अथ वै भवति प्रियवनी याज्यानुवाक्ये भवत इति । तस्या एते भवतः प्रिया वो नाम हुवे तुराणां, श्रियसे कं भातुभिः इति ।

बौ० १३.२६—ब्राह्मणस्पत्यमेकादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकाम इति । अथ वै भवति गणवती याज्यानुवाक्ये भवत इति । तस्या एते भवतः गणानां त्वा गणपतिः हवामहे, स इज्जनेन इति ।

बौ० १३.३०—वैश्वदेवीं सांग्रहणीं निर्वपेद् ग्रामकाम इति । वैश्वदेवं चरुं संगृह्णन्त इव श्रपयन्ति । अथ ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहः सजातेषु भूयासम् इति परिधीन् परिदधाति । तस्या एते भवतः विश्वे देवाः, विश्वे देवाः इति । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति । आमनमस्यामनस्य देवाः इति तिस्रः । [बौ० २३.३—सांग्रहण्यै परिधिष्विति ॥ ऐष्टिकैः परिधाय पौरोडाशिकैः परिदध्यादिति बौधायनः ॥ ऐष्टिकैरेवेति शालीकिः ॥ आहुतीनां होम इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन औदुम्बरैः पात्रैरेता आहुती-जुहुयादुत्वा चैतानि पात्राण्यत्रैवाऽनुग्रहरेदिति ॥]

ददयता 'देविकाहवींषि'

चक्षुः

बौ० १३.६—एतामेव (अग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये पावकायाऽग्नये शुचये) निर्वपेच्चक्षुष्काम इति । तस्या एता भवन्ति । (अग्न आयूःषि पवसे, अग्ने पवस्व, अग्ने पावक, स नः पावक, अग्निः शुचित्रततमः, उदग्ने शुचयस्तव)

बौ० १३.१५—आग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्काम इति । तस्या एते एव भवतः । (अग्नाविष्णू, अग्नाविष्णू)

बौ० १३.३०—यश्चक्षुष्कामः स्यात्तस्मा एतामिहि निर्वपेदग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं सौर्यं चरुमग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालमिति । तस्या एता भवन्ति उदग्ने शुचयस्तव, वि ज्योतिषा, उदु त्वं, चित्रम्, उदग्ने शुचयस्तव, वि ज्योतिषा इति । उपहृताया-मिडायामनाहितमग्नीध्रे भवति । अथ यजमानाय त्रीन् पिण्डान् प्रयच्छति । उदु त्वं जात-

वेदसं, सप्त त्वा हरितो रथे, चित्रं देवानामुदगादनीकम् इति पिण्डान् प्रयच्छति । चक्षुरेवाऽस्यै प्रयच्छति यदेव तस्य तदिति ब्राह्मणम् ।

जनतामागत्य

बौ० १३.२—क्षेत्रपत्यं चरुं निर्वपेज्जनतामागत्येति । तस्या एते भवतः क्षेत्रस्य पतिना वयं, क्षेत्रस्य पते इति । ऐन्द्राग्नमेकादशकपालमुपरिष्ठाभिर्वपेदिति । तस्या एते भवतः ये संग्रामं जिग्गुषः ।

जनतामेष्यन्

बौ० १३.२—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेज्जनतामेष्यन्निति । तस्या एते भवतः इन्द्राग्नी रोचना दिवः, श्रथद्भुत्रम् इति । पौष्णं चरुमनुनिर्वपेदिति । तस्या एते भवतः वयमु त्वा पथस्पते, पथस्पथः इति ।

ज्योगामयावी

बौ० १३.६—अग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये पावकायाऽग्नये शुचये ज्योगामयावीति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्यम् । तस्या एता भवन्ति अग्न आयूः षि पवसे, अग्ने पवस्व, अग्ने पावक, स नः पावक, अग्निः शुचिप्रततमः, उदग्ने शुचयस्त्वव इति । अन्वाहार्यमासाद्य हिरण्यं ददाति ।

बौ० १३.१८—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेज्ज्योगामयावीति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते होताऽनङ्वाहम् । तस्या एते एव भवतः (सोमाद्वा वि बृहतं विधूर्त्वा, सोमाद्वा शुवमेतानि) । अन्वाहार्यमासाद्य होताऽनङ्वाहं ददाति । [बौ० २६.५—अनङ्वाहं होत्रा देय इति । यजमानस्यैवैष गौष्ठाद्वातव्यो भवति ।]

बौ० १३.३१-३२—अथ वै भवत्यग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छति सोमः रसो वरुण एनं वरुणपाशेन गृह्णाति सरस्वतीं वागन्नाविष्णू आत्मा यस्य ज्योगामयति । यो ज्योगामयावी स्यात् यो वा कामयेत् सर्वमायुरियामिति तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदिति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते खादिरं नवं पात्रं नवनीतमाज्यं यावतीः समा एष्यन्मन्येत तावन्मानं च प्रवर्तम् । [बौ० २६.६—अथो खलु यावतीः समा एष्यन् मन्येत तावन्मानः स्यादिति । त्रिःशद्वर्षश्चेत्स्यात् सप्ततिमानं कुर्वीत । चत्वारिःशद्वर्षश्चेत्स्यात् षष्टिमानं कुर्वीत । एष एवैतस्याऽभिवृद्धिकल्पः ।] अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा-ऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुं वारुणं दशकपालं सारस्वतं चरुमाग्नावैष्णवमेकादशकपालमिति । समानं कर्म आ आज्यावेक्षणात् । स आज्यावेक्षणेऽनुवर्तयति यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवत् इति । [बौ० २३.३—आज्यस्याऽवेक्षण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवत् इत्येतैरेवाऽऽज्यमवेक्षितमुत्पुन्यादिति शालीकिः ॥] समानं कर्म आ सुचाः सादनात् । सादयित्वा सुचोऽथैतं प्रवर्तं खादिरे नवे पात्र उपस्तीर्णाभिघारितं सह हविर्भिरन्तर्वेद्यासादयति । समानं कर्म आ प्रयाजेभ्यः । प्रयाजैश्चरित्वा हविर्भिश्चरति । तस्या एता भवन्ति आयुष्टे, आयुर्दा अग्ने, आ प्यायस्व, सं ते, अव ते हेडः, उदुत्तमं, प्र णो देवी,

आ नो दिवः, अमाविष्णु, अमाविष्णु इति । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतः सुबाहुतीरुपजुहोति अभिनोः प्राणोऽसि तस्य ते दत्ता ययोः प्राणोऽसि स्वाहा ॥ इन्द्रस्य प्राणोऽसि तस्य ते ददातु यस्य प्राणोऽसि स्वाहा ॥ मित्रावरुणयोः प्राणोऽसि तस्य ते दत्ता ययोः^१ प्राणोऽसि स्वाहा ॥ विश्वेषां देवानां प्राणोऽसि तस्य ते ददातु येषां प्राणोऽसि स्वाहा इति । हुत्वाहुत्वैव स^२स्त्रावैः प्रवर्तमभिधारयति राडसि विराडसि सम्राडसि स्वराडसि इति । अथैतं प्रवर्तमग्रेणाऽऽहवनीयं पर्याहृत्य दक्षिणतो निदधाति । अथ यजमानमाज्यमवेक्षयति घृतस्य धाराममृतस्य पन्थामिन्द्रेण दत्तां प्रयतां मद्भिः । तत्त्वा विष्णुः पर्यपश्यत्तत्वेडा गव्यैरयत् इति । अथ ब्रह्मणो हस्तमन्वारभ्यर्त्विजः पर्याहुः पावमानेन त्वा स्तोमेन गायत्रस्य वर्तन्योपा^३शोर्वायें देवस्त्वा सवितोत्सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै बृहद्रथन्तरयोस्त्वा स्तोमेन त्रिष्टुभो वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येण देवस्त्वा सवितोत्सृजतु जीवातवे जीवनस्याया अग्नेस्त्वा मात्रया जगस्यै वर्तन्याऽऽप्रयणस्य वीर्येण देवस्त्वा सवितोत्सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै इति । अथ हिरण्याद् घृतं निष्पिबति । निष्पिबन्तमनुमन्त्रयते इममग्रे आयुषे वर्चसे कृधि प्रिय^४रेतो वरुण सोम राजन् । मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् इति । अथैतं प्रवर्तमद्भिः प्रक्षाल्य दक्षिणे कर्णं आबध्नीत आयुष्टे विश्वतो दधत् इति । अथैनमनुपरिवर्तयते आयुरसि विश्वायुरसि सर्वायुरसि सर्वमायुरसि इति । अथाऽस्य ब्रह्मा हस्तं गृह्णाति अग्निरायुष्मान् इत्याऽन्तादनुवाकस्य ।

दृश्यताम् ' आयुः ' ' देविकाहवी^५षि ' ' मृत्योर्विभीयात् '

तेजः

बौ० १३.५—अग्नये तेजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्तेजस्काम इति । तस्या एते भवतः आ यदिषे नृपति, स तेजीयसा इति ।

त्रैधातवीयेष्टिः

बौ० १३.४१-४२—अथ वै भवति त्रैधातवीयेन यजेताऽभिचरन् वाऽभिचर्यमाणो वा सहस्रेण वा यक्ष्यमाणः सहस्रेण वेजानो यो वा यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजत इति । एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयते सहस्र^६ हिरण्यं तार्प्यं धेनुमिति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राविष्णुभ्यां जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राविष्णुभ्यां जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो यवानाम् । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राविष्णुभ्यां जुष्टं निर्वपामि इति चतुर एव व्रीहीणाम् । तेषां व्रीहिष्वेव हविष्कृतमुद्वादयति । उपोद्यच्छन्ते यवान् । हविष्कृता वाचं विसृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युप्य गार्हपत्ये द्वादश कपालान्युपदधाति । अथ वै भवति द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । ते त्रयश्चतुष्कपालास्त्रिष्वमृद्धत्वाय । त्रयः पुरोडाशा भवन्ति । त्रय इमे लोकाः । एषां लोकानामाप्यै । उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवतीति । स उत्तरमुत्तरमेव ज्याया^७सं करोति यवमयं मध्ये । अथ वै भवति सर्वाणि छन्दा^८स्येतस्यामिष्ट्यामनूच्या-

नीत्याहुः । त्रिष्टुभो वा एतद्वीर्यं यत्ककुत् । उष्णिहा जगत्यै । यदुष्णिहककुभावन्वाह तेनैव सर्वाणि छन्दाः स्यवरुन्ध इति । प्र सो अग्ने तवोतिभिः इत्येतासां द्वे धाय्यालोके दधाति । अथ अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था इति त्रिवत्या परिदधाति सरूपत्वायेति ब्राह्मणम् । सर्वेषामभिगमयन्नवद्यतीति । तस्या एते भवतः सं वा कर्मणा, उभा जिग्यशुः इति । अन्वाहार्यमासाद्य सहस्रं हिरण्यं तार्य्य धेनुमिति ददाति । [बौ० २६.६—यथा त्रिधातावेव संदिग्धपुरोडाशस्याऽवदानकल्पः ।]

दानकामाः प्रजाः

बौ० १३.१४—इन्द्राय दात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत दान-
कामा मे प्रजाः स्युरिति । तस्या एते भवतः मा नो मर्षाः, आ तू भर इति ।

बौ० १३.२७—अर्यग्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति ।
तस्या एते भवतः । (अर्यमाऽऽ याति, ये तेऽर्यमन्)

दुश्शर्मा भविष्यामि

बौ० १३.१८—यदि बिभीयाद् दुश्शर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णं चरुं निर्वपेदिति ।
तस्या एते भवतः सोमापूषणा, इमौ देवौ इति । [बौ० २३.२—यदि बिभीयाद् दुश्शर्मा भविष्या-
मीति सोमापौष्णं चरुं निर्वपेदिति ॥ विज्ञातेषु रूपेषु निर्वपेदिति बौधायनः ॥ पुरस्तादेव
शङ्कमान इति शालीकिः ॥]

देविकाहवींषि

बौ० १४.१९—अथ वै भवति देविका निर्वपेत् प्रजाकाम इति । प्रथमं धातारं
प्रजाकामस्य करोति । प्रथमं पशुकामस्य । मध्यतो ग्रामकामस्य । मध्यतो ज्योगामयाविनः ।
प्रथमं यक्ष्यमाणस्य । उत्तममीजानस्य । प्रथमं मेधाकामस्य । मध्यतो रुक्मस्य । ता वा
एताः क्षीरे शृता भवन्ति । ता यत् सह सर्वा निर्वपेदीश्वरा एनं प्रदहः । द्वे प्रथमे निरुप्य
धातुस्तृतीयं निर्वपेत् । तथो एवोत्तरे निर्वपत् । तथैनं न प्रदहन्ति । अथो यस्मै कामाय
निरुप्यते तमेवाऽऽभिरुपाप्नोतीति ब्राह्मणम् ।

नक्षत्रसत्रम्

बौ० २८.३-४—अथाऽतो नक्षत्रेष्टीर्व्याख्यास्यामः । अग्निर्वा अकामयताऽन्नादो
देवानां स्यामिति ता ब्राह्मणेन व्याख्याताः । सा या वैशाख्याः पौर्णमास्याः पुरस्ताद-
मावास्या भवति सा सकृत्संवत्सरस्याऽपभरणीभिः संपद्यते तस्यामारभेतेति । तस्या
उपवसथेऽरण्योदग्रीन् समारोहोदवसाय मथित्वाऽग्रीन् विहृत्याऽजस्रान् वा । अपि वा
पौर्णमास्याममावास्यायां वोपवसेद्यस्यां तल्लक्ष्म संपद्यते । तत्रैवोऽत्यन्तप्रदेशः । हविरु-
च्छिष्टव्रतो यजमानो भवतीति विज्ञायते । अपि वा जन्मनक्षत्रे कुर्यादायुष्कामस्य । यावज्जीवं
ज्यवराध्यो वा प्रयोगः । जीववन्तावाज्यभागौ यजति आ नो अग्ने सुकंतुना, त्वं सोम महे
भगम् इति । अथ निर्वपति अग्नये कृत्तिकाभ्यो जुष्टं निर्वपामि इति । अग्निं कृत्तिका यज इति

संप्रेष्यति । आग्नेयमष्टाकपालमनुमत्यै चरुमिति सर्वत्राऽनुषजति नक्षत्रहविर्मध्ये । अप-
यित्वाऽऽसादयति । तस्याः सप्तदश सामिधेन्यः । समिध्यमानां च समिद्धां चाऽन्तरेण
श्रीमत्यौ धार्य्ये दधाति स्वाहा यस्य श्रियो ह्ये, अदाभ्यः पुरेता इति । रयिमन्तौ पुष्टि-
मन्तावाज्यभागौ यजति अभिना रयिमश्रवत्, गयस्फानो अमीवहा इति । अथ हविषाम् अभिमूर्धा,
भुवः, अनु नोऽद्याऽनुमतिः, अन्विदनुमते त्वम् इति संचरयोर्याज्यापुरोनुवाक्याः । नक्षत्रहविषाम्
अभिर्नः पातु कृत्तिकाः इति यथासमाप्नातम् । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति
अग्ने स्वाहा, कृत्तिकाभ्यः स्वाहा इति यथासमाप्नातम् । स्विष्टवत्यौ संयाज्ये हव्यवाहं,
स्विष्टम् इति । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा । विसृजते व्रतम् ।

एवमुत्तरमुत्तरं प्रतितन्त्रमुत्तरउत्तरेऽहनि यजेत । विशेषान् व्याख्यास्यामः ।
प्रजापतिः सवितेत्युपांशु सर्पेभ्य आश्रेषाभ्य आज्ये करम्ममिति । सर्वे यवा भवन्ति ।
अधिश्चयणकाले तिरः पवित्रमाज्यमानीयाऽधिश्चित्य तिरः पवित्रं करम्भानावपति । पितृभ्यो
मघाभ्यः पुरोडाशं षट्कपालमिति । पैतृयज्ञिकेन निर्वपणप्रोक्षणाधिवपनसंवपनादीनि
व्याख्यातानि भवन्ति । तार्तीयसवनिकेन सौम्येन प्रचरणकल्पो व्याख्यातः । अथैतद्वायवे
निष्ट्यायै गृष्ट्यै दुग्धमिति । पयसः प्रातर्दोहवत्संस्कारः । आ विशाखाभ्यामिष्ट्वा तदानी-
मेव पौर्णमासीमाज्येन यजेत ।

अथ श्वो भूते मित्रायाऽनूराधेभ्यश्चरुमित्युत्तराभिरषाढाभिरिष्ट्वा तदानीमेवा-
ऽभिजिता यजेत । अथ श्वो भूते विष्णवे श्रोणायै पुरोडाशं त्रिकपालमिति । उत्तरेषु
प्रोष्ठपदेषु पुरोडाशं भूमिकपालमिति । कपालमात्रं भूमौ परिलिख्याऽङ्गारमधिवर्तयति ।
तस्यैककपालवत्संस्कारः । आऽपभरणीभिरिष्ट्वा तदानीमेवाऽमावास्यामाज्येन यजेत ।
अथ श्वो भूते चन्द्रमसे प्रतीदृश्यायै पुरोडाशं पञ्चदशकपालमिति । अभिनीयैवाऽहनि
निर्वपेदुदिते चन्द्रमसि प्रचरेत् । ते एतमहोरात्राभ्यां चरुं निरवपतां द्रयानां व्रीहीणां
शुक्लानां च कृष्णानां च सवात्योर्दुग्धे श्वेतायै च कृष्णायै चेति । अभिनीयैवाऽहनि निर्वपेद-
स्तमिते प्रचरेत् । अपि वा संधावेव निर्वपेत् संधावेव प्रचरेत् । निर्वपणन्यायेन
प्रचरेत् ।

अथैतमुषसे चरुमिति । अभिनीयैव रात्रौ निर्वपेदुषसि प्रचरेत् । अथैतस्मै
नक्षत्राय चरुं निर्वपति । यथा त्वं देवानामस्येवमहं मनुष्याणां भूयासम् इति निर्वपणकाले
यजमानायतन आसीनो यजमानो जपति । अभिनीयैवाऽहनि निर्वपेदुदितेषु नक्षत्रेषु
प्रचरेत् । अथैतं सूर्याय नक्षत्रेभ्यश्चरुमिति । अभिनीयैव रात्रौ निर्वपेदुदिते सूर्ये प्रचरेत् ।
अथैतमदित्यै चरुमथैतं विष्णवे चरुमिति यजति । यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञ एवाऽन्ततः प्रतितिष्ठ-
तीति ब्राह्मणम् । वरो दक्षिणा भवतीति विज्ञायतेऽपाघावद्वा । प्रसिद्धः पशुः । पाथि-
कृत्येष्ट्येष्ट्वा दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत नक्षत्रसन्नेन द्युतिरानन्त्याय । ज्योतिषामयनेनेष्ट्वा
पापं निर्णुद्य ज्योतिष्ट्वमुपजायतेऽप पुनर्दृत्युं जयतीति ह स्माऽऽह बौधायनः ॥

पवित्रेष्टिः

बौ० २८.२—एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्यम् । तस्याः प्रज्ञात

उपवसथः । अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पुराऽपां प्रणयनाद्गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पृथ सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने येन देवाः पवित्रेणाऽऽत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीय एव जुहोति प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्यम् । तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीय एव जुहोति इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मां जातवेदा मोर्जेयन्त्या पुनातु स्वाहा इति । अथ पृष्ठयां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति सरस्वत्यै प्रियाया उपांश्वाज्यमग्नये पावकाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति सवित्रे सत्यप्रसवायोपांश्वाज्यमग्नये शुचये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति वायवे नियुत्वत उपांश्वाज्यमग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति विष्णवे शिपिविष्टायोपांश्वाज्यमग्नये वैश्वानराय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति दधिक्षाव्ण उपांश्वाज्यमिति । श्रपयित्वाऽऽसादयति । तस्याः सप्तदश सामिधेन्यः । समिध्यानां च समिद्धां चाऽन्तरेण पावकवत्यौ धाव्ये दधाति अपामिदं न्ययनं, नमस्ते इति द्वे । पावकवन्तावेवाऽऽज्यभागौ । अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्र-शोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईक्ष्यः इति पुरोनुवाक्यामनूच्य यत्ते पवित्रमर्चिष्यमे विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे इति यजति । यो धारया पावकया परिप्रयन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्विष्यः इति पुरोनुवाक्यामनूच्य आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते इति यजति । अथ हविषाम्-अग्न आयूँषि पवसे, अग्ने पवरव इत्यग्नेः पवमानस्य, उत नः प्रिया प्रियासु, इमा जुह्वाना युष्मत् इति सरस्वत्याः प्रियायाः, अग्ने पावक, स नः पावक इति पावकस्य, आ विश्वदेवम्, आ सत्येन इति सवितुः सत्यप्रसवस्य, अग्निः शुचिव्रततमः, उदमे शुचयस्तव इति शुचैः, वायुरग्रेणः, वायो शुक्रो अयामि ते इति वायोर्नियुत्वतः, त्वमग्ने व्रतपा असि, यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि इति व्रतपतेः, प्र तत्ते अद्य, किमिदं विष्णो परिचक्ष्यं भूत् इति विष्णोः शिपिविष्टस्य, वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्ठो दिवि इति वैश्वानरस्य, दधिक्षाव्णो अकारिषम्, आ दधिक्षाः इति दधिक्षाव्णः । अथ हुतानुमन्त्रणम्-अग्नेः पवमानस्याऽहं देवयज्यया शुचिः पूतो मेध्यो विपाप्मा ब्रह्मवर्चस्यज्ञादो भूयासम् । अग्नेः पावकस्याऽग्नेः शुचेरग्नेर्व्रतपतेरग्नेर्वैश्वानरस्याऽहं देवयज्यया शुचिः पूतो मेध्यो विपाप्मा ब्रह्मवर्चस्य-ज्ञादो भूयासम् इति । उपांशुयाजयामुपांशुयाजवदिति । अथ पुरस्तात् स्विष्टकृतः सुवा-हुतीरुपजुहोति पवमानः सुवर्जनः इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्युचम् । अतिथिवत्यौ दमूनवत्यौ संयाज्ये जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान् । विश्वा अग्ने अभियुजो विहस्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ मार्जल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः । सहस्र-शृङ्गा वृषमस्तदोजा विश्वा अग्ने सहसा प्रास्थन्यान् इति । प्रसिद्धेडा । अथाऽन्वाहार्यमासाद्य हिरण्यं ददाति । समानं कर्म आ पत्नीसंयाजेभ्यः । अथ पुरस्ताद् गृहपतेः सुवाहुतीरुप-जुहोति यदेवा देवदेडनम् इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्युचम् । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा । विसृजते व्रतम् । एतयैव यजेताऽभिशस्तोऽभिशस्यमानो वा । एतयैव यजेतर्तुव्यतिक्रमे दारव्यतिक्रमेऽयोनौ वा रेतः सिक्त्वा । एतयैव यजेत संवत्सरमर्धपादमेकविंशतिरात्रं वा । तिर्यग्योनिगतान् क्षातीन् जात्यन्तरे वर्तमानान् दुष्कृतैरपरुद्धान् दश पूर्वान् दशा-

ऽपराणात्मानं चैकविंशं पङ्क्तिं च पुनाति न च पुनरावर्तत इति । अथाऽप्युदाहरन्ति
वैश्वानरीं व्रातपतीं पवित्रेष्टिं तथैव च । ऋतावृतौ प्रयुञ्जानः पुनाति दशपूरुषम् इति ॥

दृश्यताम् 'अतिप्रवसेत्' (१२१ पृष्ठे)

पशवः

बौ० १३.११—अथ वै भवत्यैन्द्रं चरुं निर्वपेत्पशुकाम इति । तस्या एते भवतः
इन्द्रं वो विश्वतस्परि, इन्द्रं नरः इति ।

बौ० १३.११—इन्द्रायेन्द्रियावते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत् पशुकाम इति ।
तस्या एते भवतः इन्द्रियाणि शतक्रतो, अनु ते दायि इति ।

बौ० १३.२५—अग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय प्रदात्रे पुरोडा-
शमेकादशकपालं पशुकाम इति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते दधि मधु घृतमपो
यवानिति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा अग्नये दात्रे जुष्टं निर्वपामि इति
चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राय प्रदात्रे जुष्टं निर्वपामि इति
चतुर एव व्रीहीणाम् । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा प्रजापतये जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो यवानाम् ।
तेषां व्रीहिष्वेव हविष्कृतमुद्वादयति । उपोद्यच्छन्ते यवान् । हविष्कृता वाचं विसृजते ।
समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युष्य दक्षिणार्धे गार्हपत्यस्याऽष्टौ कपालान्युपदधात्येका-
दशोत्तरतः । अथैतान् यवानुलूखले परिश्रुद्य गार्हपत्य एककपालमधिश्चित्य धाना भर्जन्ति ।
यदैते हविषी अधिपृणक्ति तदैता धानाश्चतुष्टयेनोपसृजति दध्ना मधुना घृतेनाऽङ्गिरिति ।
तस्या एता भवन्ति अग्ने दा दाशुषे रयि, दा नो अग्ने शतिनः, प्रदातारं हवामहे, प्रदाता वज्री, घृतं
न पूतं, उमे सुश्वन्द्र सर्पिषः इति ।

बौ० १३.३६—यः पशुकामः स्यात्तस्मा एतं सोमापौष्णं गार्मुतं चरुं निर्वपे-
दिति । तस्या एते भवतः सोमापूषणा, इमौ देवौ इति ।

बौ० १३.३६—चित्रया यजेत पशुकाम इति । श्वश्चित्रयेत्युपवसति । अथ प्रात-
राग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुं त्वाष्ट्रमष्टाकपालं सरस्वत्यै चरुं सरस्वते चरुं
सिनीवात्यै चरुमैन्द्रमेकादशकपालमिति । तस्या एता भवन्ति अग्निना रयिमश्रवत्, गोमां अग्ने,
आ प्यायस्व, सं ते, इह त्वष्टारमभियं, तन्नस्तुरीपं, प्र णो देवी, आ नो दिवः, पीपिवांसं सरस्वतः,
ये ते सरस्व ऊर्मयः, सिनीवालि, या सुपाणिः, इन्द्रं वो विश्वतस्परि, इन्द्रं नरः इति । अथ पुरस्तात्
स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति अग्ने गोभिर्न आगहि इति पञ्चर्चो द्वे यजुषी ।

दृश्यतां 'देविकाहवींषि'

पापयक्ष्मगृहीतः

बौ० १३.२८—अथ वै भवति यः पापयक्ष्मगृहीतः स्यात्तस्मा एतमादित्यं चरु-
ममावास्यायां निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः नवोनवो भवति जायमानः, यमादित्या अंशुमाप्या-
ययन्ति इति । [बौ० २३.३—यः पापयक्ष्मगृहीतः स्यात्तस्मा एतमादित्यं चरुममावास्यायां
निर्वपेदिति ॥ उपवसथीयेऽहन्निर्वपेदिति बौधायनः ॥ यजनीयेऽहन्निति शालीकिः ॥]

पाप्मना गृहीतः

बौ० १३.१२—इन्द्रायाऽऽहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः पाप्मना गृहीतः स्यादिति । तस्या एते भवतः अऽहोमुचे, विवेष यन्मा इति ॥

बौ० १३.३३-३४—यः पाप्मना गृहीतः स्यात्तस्मा एतामैन्द्रावरुणीं पयस्यां निर्वपेदिति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते दधि पय आमिक्षाया इति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा इन्द्रावरुणाभ्यां जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । हविष्कृता वाचं विस्जृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युप्य दक्षिणार्धे गार्हपत्यस्यैकादश कपालान्युपदधाति । यदैतं पुरोडाशमधिपृणक्ति तदैतामामिक्षां गार्हपत्ये श्रपयति । अथैतं पुरोडाशमुपस्तीर्णाभिघारितमुद्रास्याऽऽमिक्षया संप्रच्छाद्याऽन्तर्वेद्या-सादयति । अथ वै भवति पयस्यायां पुरोडाशमवदधाति । आत्मन्वन्तमेवैनं करोति । अथो आयतनवन्तमेव । चतुर्धा व्यूहति । दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति । पुनः समूहतीति । स आमिक्षां पुरोडाशाच्चतुर्धा कृत्वा व्यूहति या वामिन्द्रावरुणा यतव्या तनूस्तयेममऽहसो मुञ्चतं, या वामिन्द्रा-वरुणा सहस्रा रक्षस्या तेजस्या तनूस्तयेममऽहसो मुञ्चतम् इति । पुनः समूहति समूह्याऽवद्य-तीति । तस्या एते भवतः इन्द्रावरुणयोरहम्, इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नः इति । अथ पुरस्तात् स्विष्टकृतः सुबाहुतीरुपजुहोति यो वामिन्द्रावरुणावभौ स्त्रामस्तं वामेतेनाऽव यजे इत्यष्टौ । [बौ० २३.४—आमिक्षायै मन्त्राऽमन्त्र इति ॥ मन्त्रवती स्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीकेति शालीकिः ॥ पुनः समूहति समूह्याऽवद्यतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ एतैरेव मन्त्रैः प्रति-समूह्याऽवद्येदिति शालीकिः ॥]

पुत्रे जाते

बौ० १३.८—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जात इति । तस्या एते भवतः वैश्वानरस्य दःसनाभ्यो बृहत्, जातो यदग्ने इति । [बौ० २३.१—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जात इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन उत्थितायां निर्दशायां वैश्वानरं द्वादश-कपालं निर्वपेत् सःसावस्य च कुमारं प्रलेहयेदिति ॥ जातमेव विदित्वेति शालीकिर्न च सःसावस्य कुमारं प्रलेहयेदिति ॥ अनन्तरे पर्वणीत्यौपमन्यवः ॥]

पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते

बौ० १३.४—अथ वै भवति अभि वा एष एतानुच्यति येषां पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते । पुरुषाहुतिर्ह्यस्य प्रियतमा अग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः । (अक्रन्ददमिः, त्वे वसूनि पुर्वणीक)

प्रजाः

बौ० १३.२—अथ वै भवत्यैन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेत्प्रजाकाम इति । तस्या एते भवतः उभा वामिन्द्रामी, अश्रवः हि इति ।

बौ० १३.७—अग्नये पुत्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय पुत्रिणे पुरोडाश-

मेकादशकपालं प्रजाकाम इति । तस्या एता भवन्ति यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानः, यस्मै त्वं सुकृते जातवेदः, त्वे सु पुत्र शवसः, उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद इति ।

बौ० १३.८—एतामेव निर्वपेत्प्रजाकाम इति (वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्धारुणं चरुं दधिक्राव्णे चरुं) । तस्या एता भवन्ति । (वैश्वानरो न ऊत्या, त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः, अव ते हेडः, उदुत्तमं, दधिक्राव्णो अकारिषम्, आ दधिक्राः)

बौ० १३.१८—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेत्प्रजाकाम इति । तस्या एते भवतः सोमारुद्रा वि बृहतं विषूचीं, सोमारुद्रा युवमेतानि इति ।

बौ० १३.३६—यः प्रजाकामः स्यात्तस्मा एतं प्राजापत्यं गार्मुतं चरुं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः प्रजापते, स वेद इति ।

बौ० १३.४३—अग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्विच्छिन्नाग्निहोत्रो यो वा कामयेत प्रजायै मे तन्तुर्न विच्छिद्येतेति । सोऽरण्योऽग्नीन् समारोह्योदवसाय मथित्वा-ऽग्नीन् विहृत्याऽग्नये तन्तुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति । तस्या एते भवतः त्वं नस्तन्तुस्त सेतुरग्ने त्वं पन्था भवसि देवयानः । त्वयाऽग्ने पृष्ठं वयमारुहेमाऽथा देवैः सधमादं मदमे ॥ स्वयं कृण्वानः सुगमप्रयावं तिग्मशङ्खो वृषभः शोशुचानः । प्रत्नं सधस्थमनुपश्यमान आ तन्तुमग्निर्दिव्यं ततान इति । स्विष्टचत्व्यौ संयाज्ये हव्यवाहमभिमातिषाहं रक्षोहर्णं पृतनासु जिष्णुम् । ज्योतिष्मन्तं दीक्षतं पुरंधिमग्निं स्विष्टकृतमाहुवेम ॥ स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणाहि विश्वा देव पृतना अभिष्य । उदं नः पन्थां प्रदिशन् विमाहि ज्योतिष्मद्वेह्यजरं न आयुः इति ।

दृश्यतां 'देविकाहवींषि'

प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेत

बौ० १३.१४—इन्द्राय प्रदात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यस्मै प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेतेति । तस्या एते भवतः प्रदातारं हवामहे, प्रदाता वज्री इति । [बौ० २६.५—यस्मै प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेतेति । प्रत्तमनपाकृतं^१ प्रतिबध्यमानमेवैतद्भवति ।]

बद्धो वा परियत्तो वा

बौ० १३.१२—इन्द्राय त्रात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्बद्धो वा परियत्तो वेति । तस्या एते भवतः त्रातारमिन्द्रं, मा ते अस्यां सहसावन् इति ।

ब्रह्मन् विशं वि नाशयेयम्

बौ० १३.२६—एतामेव (ब्राह्मणस्यत्यमेकादशकपालं) निर्वपेद्यः कामयेत ब्रह्मन् विशं वि^२ नाशयेयमिति । मास्तौ याज्यानुवाक्ये कुर्यादिति । तस्या एते भवतः मस्तौ यद्द वो दिवः, या वः शर्म इति ।

१. लिखितपुस्तकपाठबलाद्ब्रह्महोतोऽयं पाठः । 'प्रत्तमनुपाकृतं' इति मुद्रितपुस्तके ।

२. एवं तैसं १.३.३, लिखितपुस्तके च । मुद्रितपुस्तके 'वि' नास्ति ।

ब्रह्मवर्चसम्

बौ० १३.११—इन्द्राय धर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकाम इति । तस्या एते भवतः आ यस्मिन्सप्त वासवाः, आमासु पक्कमैरयः इति ।

बौ० १३.१७—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मा एत९ सोमारौद्रं चरं तिष्यापूर्णमासे निर्वपेदिति । स यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्स तैष्यां पौर्णमास्या९ सोमारौद्रं चरं निर्वपति । परिश्रिते याजयति । अथ वै भवति श्वेतायै श्वेतवत्सायै दुग्धं मथितमाज्यं भवत्याज्यं प्रोक्षणम् । आज्येन मार्जयन्ते । यावदेव ब्रह्मवर्चसं तत्सर्वं करोति । अति ब्रह्मवर्चसं क्रियत इत्याहुः । ईश्वरो दुश्चर्मा भवितोरिति । मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्यादिति । मक्षू देववतो रथः इत्येतासां द्वे धाय्यालोके दधाति । तस्या एते भवतः सोमास्त्रा वि बृहत् विषूचीं, सोमास्त्रा युवमेतानि इति । [बौ० २३.२—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मा एत९ सोमारौद्रं चरं तिष्यापूर्णमासे निर्वपेदिति ॥ उपवसथीयेऽहर्निर्वपेदिति बौधायनः ॥ यजनीयेऽहर्नि शालीकिः ॥ आज्यं प्रोक्षणमाज्येन मार्जयन्त इति ॥ उदकुम्भ आज्यसुवं प्रत्यस्येदिति बौधायनः ॥ प्रोक्षणं चैव मार्जनं चाऽऽज्येन कुर्यादथेतर्दद्भिः कुर्यादिति शालीकिः ॥ यत्किं चाऽद्भिः कार्यं९ स्यात्सर्वं तदाज्येन कुर्यादित्यौपमन्यवः ॥]

बौ० १३.२४—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मा एत९ सौर्यं चरं निर्वपेदिति । एत-येष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयते पञ्च सुवर्णानि कृष्णलानि सुवर्णरजतौ च रुक्मौ । अथैतं चरं९ श्रपयित्वाऽभिघार्योदश्चमुद्रास्य सुवर्णरजताभ्या९ रुक्माभ्यां परिगृह्याऽन्तर्वेद्यासाद-यति । [बौ० २६.६—पुरा वा तण्डुलानामावपनाद्रुक्ममवदध्याच्छृतमुत्तरम् । अपि वै न९ शृतमेव सुवर्णरजताभ्या९ रुक्माभ्यां परिगृह्याऽन्तर्वेद्यासादयेत् ।] समानं कर्म आ प्रयाजेभ्यः । अथ वै भवति प्रयाजेप्रयाजे कृष्णलं जुहोतीति । स प्रयाजेप्रयाज एव कृष्ण-लमन्ववधाय जुहोति । तस्या एते भवतः उदु त्यं, वित्रम् इति । अन्वाहार्यमासाद्य सुवर्ण-रजतौ रुक्मौ ददाति ।

बौ० १३.२६—अग्नीषोमीयमष्टाकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकाम इति । यो ब्रह्मवर्चस-कामः स्यात्सोऽग्नीषोमीयमष्टाकपालं९ इयामाकानां निर्वपति । तस्या एते भवतः अग्नीषोमा-विम९ सु मे; अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य इति ।

भूतिः

बौ० १३.५—अग्नये जातवेदसे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद् भूतिकाम इति । तस्या एते भवतः तस्मै ते, दिवस्पति इति ।

बौ० १३.११—इन्द्राय धर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायेन्द्रियावत इन्द्रायाऽर्कवते भूतिकाम इति । तस्या एता भवन्ति आ यस्मिन्सप्त वासवाः, आमासु पक्कमैरयः, इन्द्रियाणि शतक्रतो, अनु ते दायि, इन्द्रमिद्राधिनी बृहत्, गायन्ति त्वा गायत्रिणः इति ।

बौ० १३.२१—आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यश्चरं निर्वपेद् भूतिकाम इति । तस्या एते भवतः यज्ञो देवानां, शुचिरयः इति । [बौ० २३.३—आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यश्चरं निर्वपेद्

भूतिकाम इति ॥ सूत्र५ शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सर्वाः सपदाः सर्वाः ससावित्राः सर्वाः समयूखेध्मा इति ॥]

भ्रातृव्यं जनयेयम्

बौ० १३.१८—सोमारौद्रं चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वेऽस्मा आयतने भ्रातृव्यं जनयेयमिति । सोऽपरक्षेत्रमर्यादायामध्यवसाय मथित्वाऽग्नीन् विहृत्य सोमारौद्रं चरुं निर्वपति । अथ वै भवति वेदिं परिगृह्णाऽर्धमुद्धन्यादर्थं न । अर्थं बर्हिषः स्तृणीयादर्थं न । अर्धमिधमस्याऽभ्यादध्यादर्थं न । स्व एवाऽस्मा आयतने भ्रातृव्यं जनयतीति ब्राह्मणम् । तस्या एते भवतः । (सोमारुद्रा वि बृहतं विषूचीं, सोमारुद्रा युवमेतानि) [बौ० २३.२—अर्धेष्विति ॥ स५स्थितायामिष्ट्यामर्धानभ्यादध्यादिति बौधायनः ॥ अत्रैव परिशयीरन्निति शालीकिः ॥] [बौ० २६.५—वेदिं परिगृह्णाऽर्धमुद्धन्यादर्थं नेति । दक्षिणं वा वेदेरर्धमपरं वेति ।]

भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः

बौ० १३.३५—अथ वै भवति यो भ्रातृव्यवान्स्यात्स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेताऽग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विवाधवतेऽग्नये प्रतीकवत इति । तस्या एता भवन्ति प्रमाऽयमग्निः, प्र ते यक्षि प्र त इयमिं मन्म भुवः, वि पाजसा, वि ज्योतिषा, स त्वमग्ने प्रतीकेन, त५ सुप्रतीक५ सुदश५ स्वन्नम् इति ।

बौ० १३.३५—यो भ्रातृव्यवान्स्यात्स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेतेन्द्रायाऽ५ होमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय वैमृधायेन्द्रायेन्द्रियावत इति । अथ वै भवति त्रयस्त्रि५ शत्कपालं पुरोडाशं निर्वपतीति । य एवैते त्रय एकादशकपालास्त एवैत उक्ता भवन्ति । तस्या एता भवन्ति अ५ होमुचे, विवेष यन्मा, वि न इन्द्र, इन्द्र क्षत्रं, इन्द्रियाणि शतक्रतो, अनु ते दायि इति । [बौ० २३.४—त्रयस्त्रि५ शत्कपालं पुरोडाशं निर्वपतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ संदिग्धपुरोडाश एवैव स्यादिति शालीकिः ॥]

बौ० १३.३५—यो भ्रातृव्यवान्स्यात्स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेताऽग्नये संवर्गाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् । त५ शृतमासन्नमेतेन यजुषाऽभिमृशेदिति । त५ शृतमासन्नमेतेन यजुषाऽभिमृशति ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरहमनेन हविषाऽमुं भ्रातृव्यमभिभूयासम् इति । युक्त्वा हि देवदूतमान् इत्येतस्याऽनुवाकस्य सप्तदश सामिधेनीः पराचीरन्वाह । तस्या एते भवतः सखायः सं वः सम्यञ्चं, स५ समिद्युवसे वृषन् इति ।

भ्रातृव्ये यजमाने

बौ० १३.१६—अथ वै भवतीन्द्रियं वै वीर्यं वृङ्क्ते भ्रातृव्यो यजमानोऽयजमानस्य । अध्वरकल्पां प्रतिनिर्वपेद् भ्रातृव्ये यजमाने । नाऽस्येन्द्रियं वीर्यं वृङ्क्ते । पुरा वाचः प्रवदितोर्निर्वपेदिति । स पुरा वाचः प्रवदितोर्महारात्र उत्थायाऽऽग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत्पातःस्वनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा स्याद् बार्हस्पत्यश्चरुति । तस्या एता

भवन्ति अमाविष्णु, अमाविष्णु, प्र णो देवी, आ नो दिवः, वृद्धस्पते, एवा पित्रे इति । आग्नावैष्णव-
मेकादशकपालं निर्वपेन्माध्यंदिनस्य सवनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा स्याद्
बार्हस्पत्यश्चरति । तस्या एता एव भवन्ति । आग्नावैष्णवं द्वादशकपालं निर्वपेत्तृतीय-
सवनस्याऽऽकाले । सरस्वत्याज्यभागा स्याद् बार्हस्पत्यश्चरति । तस्या एता एव
भवन्ति । मैत्रावरुणमेककपालं निर्वपेद्विंशत्यै काल इति । तस्या एते भवतः आ नो
मित्रावरुणा, प्र बाहवा इति । [बौ० २३.२—अध्वरकल्पायामिति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन
इडान्तं प्रथमं तन्त्रं कुर्यादेवं द्वितीयम् । तृतीयेन सहाऽवशेषं वर्तयेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
शालीकिरा प्रणीतानिनयनात्^१ प्रथमस्य तन्त्रस्य परिशाययेत् । एवं द्वितीयमेवं तृतीयम् ।
तृतीयेन सहाऽवशेषं वर्तयेदिति ॥ सपूर्णपात्रविष्णुक्रमा इत्यौपमन्यवः ॥] [बौ० २६.५—
अथाऽस्यामध्वरकल्पायामिडान्तं प्रथमं तन्त्रं कुर्यादेवं द्वितीयम् । तृतीयेन सहाऽवशेषं
वर्तयेत् । कथमत्र भक्षा इति । तत्रतत्र वा भक्षयेत् । अपि वा सर्वासां समवदाय हुत्वा-
ऽन्ततो भक्षयेत् ।]

महायज्ञो नोपनमेत्

बौ० १३.१२—इन्द्रायाऽर्काश्वमेधवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं महायज्ञो
नोपनमेदिति । तस्या एते भवतः अनवस्ते रथं, धृष्णे यत्ते इति ।

दश्यतां 'देविकाहवींषि' 'यज्ञो नोपनमेत्'

मृगारेष्टिः

बौ० २८.१—अथ वै भवति यः पापयक्ष्मगृहीतः स्याद्यो वाऽपरुध्येत देवेभ्य
ऋषिभ्यः पितृभ्यो गोभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स्तेनाभिशास्तोऽभिशास्यमानो वा रहस्येष्टया यजेतेति ।
एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्यम् । तस्याः प्रज्ञात उपवसथः । अथ प्रातर्हुतेऽग्नि-
होत्रे पुराऽपां प्रणयनाद्बार्हस्पत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये
जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने येन देवाः पवित्रेणाऽऽत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमान्यः
पुनन्तु मा स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीय एव जुहोति प्राजापत्यं पवित्रं
शतोद्यामं हिरण्यमम् । तेन ब्रह्मविदो वयं पूर्तं ब्रह्म पुनीमहे स्वाहा इति । अपरं चतुर्गृहीतं
गृहीत्वाऽऽहवनीय एव जुहोति इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या ।
यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मां जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु स्वाहा इति । अथ पृष्ठया
स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽऽग्नेयेऽहोमुचेऽष्टाकपाल इति दशहविषमिष्टिं निर्वपति । अपयित्वाऽऽ-
सादयति । तस्याः सप्तदश सामिधेन्यः । समिध्यमानां च समिद्धां चाऽन्तरेण पावक-
वत्यौ धाय्ये दधाति अपामिदं न्ययनं, नमस्ते इति द्वे । पावकवन्तावेवाऽऽज्यभागौ । अग्नी
रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमत्यः । शुचि पावक ईज्यः इति पुरोनुवाक्यामनूच्य यत्ते पवित्रमर्चि-
ष्यमे विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे इति यजति । यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।

इन्दुरक्षो न कृत्वियः इति पुरोनुवाक्यामनूच्य आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिञ्च्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते इति यजति । अथ हविषाम्- अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः इत्यस्मिन्ननुवाके याज्यापुरोनुवाक्याः सहसंयाज्या भवन्ति । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतः सुवाहुतीरुपजुहोति पवमानः सुवर्जनः इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्यृचम् । प्रसिद्धेडा । अथाऽन्वाहार्यमासाद्य हिरण्यं ददाति । समानं कर्म आ पत्नीसंयाजेभ्यः । अथ पुरस्ताद् गृहपतेः सुवाहुतीरुपजुहोति यदेवा देवहेडनम् इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्यृचम् । संतिष्ठत एषेष्टिः सपूर्णपात्रविष्णुकमा । विसृजते व्रतम् । एतयैव यजेतर्तुव्यतिक्रमे दारव्यतिक्रमेऽयोनौ वा रेतः सिक्त्वा । एतयैव यजेत पातकोपपातकसंयुक्तो द्वादशाहं महापातकसंयुक्तो मासं पुण्यमिच्छन्संवत्सरमृतुं वा । तामेतां महापवित्रेष्टिरित्याचक्षते मृगारेष्टिरिति वा रहस्येष्टिरिति बौधायनः ।

मृत्योर्विभीयात्

बौ० १३.२३—अथ वै भवति यो मृत्योर्विभीयात्तस्मा एतां प्राजापत्याः शतकृष्णलां निर्वपेदिति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते शतं सुवर्णानि कृष्णलानि नवं पात्रं प्रभूतमाज्यमिति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा प्रजापतये जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् कृष्णलानां निर्वपति । [बौ० २६.६—यथा नखनिर्मिन्नायामेव शतकृष्णलायाम् ।] हविष्कृता वाचं विसृज्य गार्हपत्ये नवं पात्रमधिश्चित्य तिरः पवित्रमाज्यमानीय तिरः पवित्रं कृष्णलान्यावपति । अथाऽऽज्यं निर्वपति । अथाऽऽज्यमधिश्चित्योभयं पर्यग्निं कृत्वाऽन्तर्वेद्यासादयति । अथ वै भवति चत्वारि चत्वारि कृष्णलान्यवयति चतुरवत्तस्याऽऽप्या इति । अष्टौ देवताया अवयति चत्वारि स्विष्टकृतेऽष्टाविडायै चत्वार्यवान्तरैडाया एकं प्राशिन्नायैकं यजमानाय । आज्यमेव जुह्वतो जुह्वति । आज्यं प्राश्नन्तः प्राश्नन्ति । अथैनान्येकधोऽर्च्य ब्रह्मण उपहरति । तस्या एते भवतः हिरण्यगर्भः, प्रजापते इति । [बौ० २३.३—शतं सुवर्णानि कृष्णलानि भवन्तीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ उपशतान्येवैतानि स्युरिति शालीकिः परिहारयेच्चैवामिति ॥ चत्वारिचत्वारि कृष्णलान्यवयति चतुरवत्तस्याऽऽप्या इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यान्यवत्तानि स्युर्जुहुयादेव तानि । अथ यानि भक्षार्थानि स्युस्तद्व्यवगृहीतान्येव तानि स्युः । अथेतराणि समावच्छो विभजेरन्निति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिर्यान्यवत्तानि स्युर्जुहुयादेव तानि । अथ यानि भक्षार्थानि स्युस्तद्व्यवगृहीतान्येव तानि स्युः । अथेतराणि प्राशिन्नहरण ओष्य ब्रह्मणे परिहारयेदिति ॥]

मृधोऽभि प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुः

बौ० १३.१२—इन्द्राय वैमृधाय पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं मृधोऽभि प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुरिति । तस्या एते भवतः वि न इन्द्र मृधो जहि, मृधो न भीमः इति । [बौ० २६.५—यं मृधोऽभि प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुरिति । प्रतिवेशा राजानो मृधः । स्व एव जनपदा राष्ट्राणि विशाः ।]

मेधा नोपनमेत्

दृश्यतां 'देविकाहवी०षि'

यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजते

दृश्यतां 'त्रैधातवीयेष्टिः'

यज्ञविभ्रष्टः स्यात्

बौ० १३.२६—यो यज्ञविभ्रष्टः स्यात्तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमष्टाकपालमैन्द्र-
मेकादशकपालं सौम्यं चरुमिति । अथ वै भवत्याग्नेयस्य च सौम्यस्य चैन्द्रे समाश्लेषये-
दिति । [बौ० २६.६—आग्नेयस्य च सौम्यस्य चैन्द्रे समाश्लेषयेदिति । व्यभिमृष्टानां
पिण्डानां पुराऽधिपृञ्जनात् समाश्लेषयितव्यं भवति ।] स आग्नेयस्य च सौम्यस्य चैन्द्रे
समाश्लेषयति । तेजश्चैवाऽस्मिन् ब्रह्मवर्चसं च समीची दधातीति ब्राह्मणम् । तस्या एता
भवन्ति स प्रलवत्, नि काव्या, इन्द्रं वो विश्वतस्परि, इन्द्रं नरः, त्वं नः सोम, या ते धामानि इति ।

यज्ञो नोपनमेत्

बौ० १३.१५—आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्यं यज्ञो नोपनमेदिति । तस्या
एते भवतः अग्नाविष्णू, अग्नाविष्णू इति ।

रक्षांसि सचेरन्

बौ० १३.३—अग्नये रक्षोष्णे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं रक्षांसि सचेर-
न्निति । अथ वै भवति निशितायां निर्वपेत्परिश्रिते याजयेदिति । स निशायां महारात्र
उत्थायाऽग्नये रक्षोष्णे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । परिश्रिते याजयति । कृणुष्व पाजः
प्रसिति न पृथ्वीम् इत्येतस्याऽनुवाकस्य पञ्चदश सामिधेनीः पराचीरन्वाह । तस्या एते
भवतः रक्षोहणं, वि ज्योतिषा इति । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतः सुबाहुतिमुपजुहोति उत स्वानासो
दिवि षण्वमेः इति । [बौ० २३.१—अग्नये रक्षोष्णे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं रक्षांसि
सचेरन्निति ॥ हुत्वाऽग्निहोत्रमिष्टिं स०स्थापयेदिति बौधायनः ॥ स०स्थितायामिष्ट्या-
मग्निहोत्रं जुहुयादिति शालीकिः ॥]

रसवान् स्याम्

बौ० १३.७—अग्नये रसवतेऽजक्षीरे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत रसवान्स्यामिति ।
तस्या एते भवतः अग्ने रसेन, अपो अन्वचारिषम् इति ।

राजन्योऽनपोन्धो जायेत वृत्रान् घ्न०श्चरेत्

बौ० १३.४२—यं कामयेत राजन्यमनपोन्धो जायेत वृत्रान् घ्न०श्चरेदिति तस्मा
एतमैन्द्रावार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेदिति । एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्मयं दाम ।
तस्या एते भवतः अस्मे इन्द्रावृहस्पती, बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात् इति । अन्वाहार्यमासाद्य
हिरण्मयं दाम ददाति ।

रुच

बौ० १३.५—अग्नये रुक्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्रुक्माम इति । तस्या एते भवतः शुचिः पावक, दशनो रुक्मः इति ।

दश्यतां 'देविकाहवीर्य' ।

वसुमान् स्याम्

बौ० १३.७—अग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत वसुमान्स्यामिति । तस्या एते भवतः वसुर्वसुपतिः, त्वामग्ने वसुपतिं वसुताम् इति ।

विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वा

बौ० १३.९—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वेति । तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, ऋतावानम् इति । [बौ० २६.५—एतस्मिन् वा एतौ मृजते यो विद्विषाणयोरन्नमस्तीति । इतरमितरेणेत्येवैष उक्तो भवति ।]

संग्रामः

बौ० १३.२—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्राममुपप्रयास्यन्निति । तस्या एते भवतः इन्द्राग्नी नवति पुरः, शुचिं नु स्तामम् इति ।

बौ० १३.२—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामं जित्वेति । तस्या एते भवतः उभा वामिन्द्राग्नी, अश्रवः हि इति ।

बौ० १३.४—अग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्संग्रामे संयत्त इति । तस्या एते भवतः अकन्ददग्निः, त्वे वसूनि इति ।

बौ० १३.७—अग्नये वाजसृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्संग्रामे संयत्त इति । तस्या एते भवतः त्वामग्ने वाजसातमम्, अयं नो अग्निः इति ।

बौ० १३.९—आदित्यं चरुं निर्वपेत् संग्राममुपप्रयास्यन्निति । तस्या एते भवतः अदितिर्न उरुष्यतु, महीमू षु मातरम् इति ।

बौ० १३.९—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदायतनं गत्वेति । तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, अस्माकमग्ने मघवत्सु धारय इति । [बौ० २३.२—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदायतनं गत्वेति ॥ यत्रैव यतिष्यमाणः स्यात्तदायतनम् । तद्वत्त्वा वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदिति बौधायनः ॥ स्वस्थानेष्वेवाऽग्निष्विति शालीकिः ॥]

बौ० १३.१३—इन्द्राय चरुं निर्वपेद्यस्य सेनाऽस्तः शितेव स्यादिति । अथ वै भवति बल्वजानपीध्मे संनहोत् । तान् सहेध्मेनाऽभ्यादध्यादिति । तान् सहेध्मेनाऽभ्यादधाति । तस्या एते भवतः इन्द्राणामासु नारिषु, नाऽहमिन्द्राणि रारण इति । [बौ० २३.२—बल्वजानपीध्मे संनहोदिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ बल्वजानामप्यत्र बर्हिः संनहं भवतीति शालीकिः ॥]

बौ० १३.१३—इन्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत्संग्रामे संयत्त इति । तस्या एते भवतः यो जात एव, आ ते मह इन्द्रोत्पुत्र इति ।

संज्ञानीष्टिः

बौ० १३.२०—यः समानैर्मिथो विप्रियः स्यात्तमेतया संज्ञान्या याजयेदिति । स वैः संजिज्ञासीत तेष्पसमेतेष्वग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति सोमाय रुद्रवते चरुमिन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवते चरुमिति । तस्या एते भवतः अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्, सं नो देवो वसुभिः इति । [बौ० २६.५—अथाऽस्या५ संज्ञानेष्ट्या५ सकृदेवाऽनुवाचयेत् सकृदाश्रावयेत् । द्वे ह्यस्यै याज्यानुवाक्ये भवतः ।]

सनिमेष्यन्

बौ० १३.९-१०—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्सनिमेष्यन्निति । तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, वैश्वानरस्य सुमतां स्याम इति । अथ वै भवति यो वै संवत्सरं प्रयुज्य न विमुञ्चत्यप्रतिष्ठानो वै स भवति । एतमेव वैश्वानरं पुनरागत्य निर्वपेदिति । स एतमेव वैश्वानरं पुनरागत्य निर्वपति । यमेव प्रयुङ्क्ते तं भागधेयेन विमुञ्चति प्रतिष्ठित्या इति ब्राह्मणम् । अथ वै भवति यया रज्ज्वोत्तमां गामाजेत्तां भ्रातृव्याय प्रहिणुयादिति । स यया रज्ज्वोत्तमां गामाजति तां भ्रातृव्याय प्रहित्य भ्रातृव्यस्य गोष्ठे न्यस्यति । निर्ऋतिमेवाऽस्मै प्रहिणोतीति ब्राह्मणम् । तस्या एते भवतः । [बौ० २३.२—यया रज्ज्वोत्तमां गामाजेदिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य । इमां तेऽसौ प्रहिणीत् इत्येव ब्रूयादिति शालीकिः ॥]

सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्य

बौ० १३.९—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्येति । तस्या एते एव भवतः । (वैश्वानरो न ऊत्या, ऋतावानम्)

समानैर्मिथो विप्रियः स्यात्

इदयतां 'संज्ञानीष्टिः'

सर्वपृष्ठेष्टिः

बौ० १३.२९-३०—य इन्द्रियकामो वीर्यकामः स्यात्तमेतया सर्वपृष्ठया याजयेदिति । एतयेष्ट्या यक्ष्यमाण उपकल्पयतेऽश्वमृषभं वृष्णि वस्तमिति । अथ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राय राधन्तराय जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा इन्द्राय बार्हताय, इन्द्राय वैरूपाय, इन्द्राय वैराजाय, इन्द्राय शाक्राय, इन्द्राय रैवताय इति चतुरश्रचतुरो मुष्टीनेकैकस्थै देवतायै । हविष्कृता वाचं विसृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युष्य गार्हपत्ये द्वादशोत्तानानि कपालान्युपदधाति । अथ वै भवत्युत्तानेषु कपालेष्वधिश्रयत्ययातयामत्वाय । द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति वैश्वदेवत्वाय । समन्तं पर्यवयतीति । सोऽवयन्नाह इन्द्राय राधन्तरायाऽनुब्रूहि इति । अग्निं त्वा शूर नोनुमः इत्यनूच्य त्वामिद्धि हवामहे इति यजति । सोऽवयन्नाह इन्द्राय

गार्हतायाऽनुब्रूहि इति । त्वामिद्धि हवामहे इत्यनूच्य यद् द्याव इन्द्र ते इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय वैरूपायाऽनुब्रूहि इति । यद् द्याव इन्द्र ते इत्यनूच्य पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय वैराजायाऽनुब्रूहि इति । पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा इत्यनूच्य कदा चन स्तरीरसि इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय शाकरायाऽनुब्रूहि इति । कदा चन स्तरीरसि इत्यनूच्य रेवतीर्नः सधमादः इति यजति । सोऽवद्यन्नाह इन्द्राय रेवतायाऽनुब्रूहि इति । रेवतीर्नः सधमादः इत्यनूच्य अभि त्वा शूर नोनुमः इति यजति । व्यत्यासमन्वाहाऽनिर्दाहायेति ब्राह्मणम् । अन्वाहार्यमासाद्याऽश्वमृषभं वृषिणं वस्तमिति ददाति ।

सहस्रेण यक्ष्यमाणः

सहस्रेणेजानः

दृश्यतां 'त्रैधातवीयेष्टिः'

सीक्षमाणः

बौ० १३.५—अग्नये साहन्त्याय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् सीक्षमाण इति । तस्या एते भवतः अग्ने सहन्तमा भर, तमग्ने पृतनासह९ रथिम् इति ।

स्पर्धमानः (क्षेत्रे वा सजातेषु वा)

बौ० १३.२—येन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वेति । तस्या एते भवतः इन्द्राग्नी रोचना दिवः, अथद् वृषम् इति ।

बौ० १३.५—अग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वेति । तस्या एते भवतः श्रेष्ठं यविष्ठं भारत, स क्षितानः इति ।

स्वयंपाप इव स्यात्^१

बौ० १३.१३—एतामेव (इन्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं) निर्वपेद्यः स्वयंपाप इव स्यादिति । तस्या एते एव भवतः । (यो जात एव, आ ते मह इन्द्रोत्थुग्र) [बौ० २६.५—यो हतमनाः स्वयंपाप इव स्यादिति । सति बले हतमनाः स्वयंपाप इव स्यादिति । साधुरूपे कुले स्वयंपापः ।]

स्वर्गः

बौ० १३.२७—अर्यग्णे चरं निर्वपेत्सुवर्गकाम इति । तस्या एते भवतः अर्यमाऽऽ याति, ये तेऽर्यमन् इति ।

स्वस्ति जनतामियाम्

बौ० १३.२७—अर्यग्णे चरं निर्वपेद्यः कामयेत स्वस्ति जनतामियामिति । तस्या एते एव भवतः । (अर्यमाऽऽ याति, ये तेऽर्यमन्)

हतमना इव स्यात्^१

बौ० १३.१३—एतामेव (इन्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं) निर्वपेद्यो हतमना इव स्यादिति । तस्या एते भवतः । (यो जात एव, आ ते मह इन्द्रोत्पुत्र)

हिरण्यम्

बौ० १३.२४—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्सावित्रं द्वादशकपालं भूम्यै चरुं यः कामयेत हिरण्यं विन्देय हिरण्यं मोपनमेदिति । एतयेष्टया यक्ष्यमाण उपकल्पयते हिरण्यम् । तस्या एता भवन्ति स प्रलवत्, नि काव्या, हिरण्यपाणिमूतये, वाममद्य सवितः, बडित्था पर्वतानां, स्तोमासस्त्वा विचारिणि इति । अन्वाहार्यमासाद्य हिरण्यं ददाति ।

एतामेव निर्वपेद्धिरण्यं वित्वेति । तस्या एता एव भवन्ति । एतामेव निर्वपेद्यस्य हिरण्यं नश्येदिति । तस्या एता एव भवन्ति ॥

१. तैस १.२.८ अत्र 'यो हतमनाः स्वयंपाप इव स्यात्' इत्येकमेव फलमुद्दिश्येष्टिविहिता । सूत्रकृता तु 'हतमनाः' 'स्वयंपापः' इति भिन्नं फलमवधारितं दृश्यते ।

चातुर्मास्यानि'

वैश्वदेवपर्व

तैसं [१.८.२]—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुं सावित्रं द्वादशकपालं सारस्वतं चरुं पौष्णं चरुं मारुतं सप्तकपालं वैश्वदेवीमामिक्षां द्वावापृथिव्यमेककपालम् ॥

तैब्रा [१.६.२-३]—

० यदामिक्षा । यद् व्युद्धरति० वैश्वदेव्यामिक्षा भवति० वाजिनमानयति० द्वावा-
पृथिव्य एककपालो भवति० यदेतानि हवींषि निरुप्यन्ते विजियै । नोत्तरवेदिमुपवपति०
त्रिवृद्धिर्भवति० त्रेधा बर्हिः संनद्धं भवति० एकधा पुनः संनद्धं भवति० प्रसुवो भवन्ति०
प्रथमजो वत्सो दक्षिणा समृद्धयै । पृषदाज्यं गृह्णाति० पञ्चगृहीतं भवति० बहुरूपं भवति०
अग्निं मन्यन्ति० नव प्रयाजा इज्यन्ते । नवाऽनूयाजाः । अष्टौ हवींषि । द्वावाघारौ । द्वावाज्य-
भागौ । त्रिंशत्संपद्यन्ते ० यदेककपाल आज्यमानयति० बह्वानीयाऽऽविःपृष्ठं कुर्यात्० सकृदेव
होतव्यः० हुत्वाऽभिजुहोति० स्रुचा जुहोति० प्रतिष्ठितो होतव्यः० वाजिनो यजति०
प्रहृत्य परिधीञ्जुहोति० बर्हिषि विषिञ्चन् वाजिनमानयति० समुपहृत्य भक्षयन्ति० यजमान
उत्तमो भक्षयति० ।

तैब्रा [१.५.५]—

ऋतमेव परमेष्ठि । ऋतं नाऽत्येति किञ्चन । ऋते समुद्र आहितः । ऋते
भूमिरियं श्रिता । अग्निस्तिग्मेन शोचिषा । तप आक्रान्तमुष्णिहा ।
शिरस्तपस्याहितम् । वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये । सत्येन
परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये । शिवेनाऽस्योपवर्तये । शग्मेनाऽस्या-
ऽभिवर्तये ॥ तद्वतं तत्सत्यम् । तद् व्रतं तच्छकेयम् । तेन शकेयं तेन
राध्यासम् ॥

तैब्रा [१.५.६]—

देवा वै यवज्ञेऽकुर्वत । तदसुरा अकुर्वत । तेऽसुरा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो नाऽपश्यन् ।
ते केशानग्रेऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथोपपक्षौ । ततस्तेऽवाञ्च आयन् । पराभवन् । यस्यैवं
वपन्ति । अवाडेत । अथो परैव भवति । अथ देवा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्योऽपश्यन् । त उपपक्षावग्रे-

१. यद्यपि वेदे चातुर्मास्यानां हविषां विधिः राजसूययागाङ्गत्वेन प्रतिपादितः, तथापि सूत्रकारैः सप्तसु हविःसंस्थासु समावेशनार्थं स निरूहितः । तदनुसारेणैतद्विषयकं मन्त्रब्राह्मणमत्र संयुज्यते ।

ऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथ केशान् । ततस्तेऽभवन् । सुवर्गं लोकमायन् । यस्यैवं वपन्ति । भवत्यात्मना । अथो सुवर्गं लोकमेति । अथैतन्मनुर्वर्षे मिथुनमपश्यत् । स श्मश्रूण्यग्रेऽवपत् । अथोपपक्षौ । अथ केशान्० लोहितायसेन निवर्तयते० त्र्येण्या शलल्या निवर्तयेत० चतुषु चतुषु मासेषु निवर्तयेत० ॥

तैत्रा [१.४.१०]—अग्निर्वाव संवत्सरः । आदित्यः परिवत्सरः । चन्द्रमा इदावत्सरः । वायुरनुवत्सरः । यद्वैश्वदेवेन यजते । अग्निमेव तत्संवत्सरमाप्नोति । तस्माद्वैश्वदेवेन यजमानः । संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत् ० यद्विश्वे देवाः समयजन्त । तद्वैश्वदेवस्य वैश्वदेवत्वम्० ॥

मैसं [१.१०.१]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्वरुः । सावित्रो द्वादशकपालः । सारस्वतश्वरुः । पौष्णश्वरुः । मारुतः सप्तकपालः । वैश्वदेव्यामिक्षा । द्यावापृथिवीया एककपालः । वाजिनां वाजिनम् ॥

[१.१०.५-९]—

० तच्च एव विद्वांश्चातुर्मास्यैर्यजते प्र भ्रातृव्यं नुदते प्र प्रजया च पशुभिश्च जायते० सवत्सरो वै सविता । द्वादशमासाः सवत्सरः । तस्माद् द्वादशकपालः० उपांशु यजति० तच्च एव विद्वान्सांनाय्येन यजत ऋज्जोति । मिथुनं वै दधि च शृतं च । अथ यत्ससृष्टमाण्डमिव मस्तिव परीव ददृशे गर्भ एव सः० अथैषा वैश्वदेव्यामिक्षा० विश्वान् देवान् यजति० अथो अमुतः प्रदानाद्धि मनुष्या यज्ञमुपजीवन्ति । योनिर्वा एष प्रजानाम् । तं मरुतोऽभ्यकामयन्त । ततोऽहोगृहीता असृज्यन्त । यत् स्वतवद्भ्यः स्वत्वायैव निष्कृत्यै० यद् द्यावापृथिवीयः प्रजानां सृष्टानां परिगृहीत्यै । यदेककपालस्तेन प्राजापत्यः० यत्सर्वहुतं करोति० ऋजुर्होतव्यः प्रतिष्ठित्यै० तदभिपूर्यः० आविःपृष्ठः कार्यः० तन्न सूक्ष्मम् । अभिपूर्य एव० यत्प्राङ् पथेत यजमानः प्रमीयेत । यदक्षिणा प्रजामस्य निर्दहेत् । यत्प्रत्यङ् पत्नी प्रमीयेत । यदुदङ् पशूनस्य निर्दहेत् । यदुत्तानः पतेत्पर्जन्योऽवर्षुकः स्यात् । पुनरादायाऽभिघार्य होतव्यो यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै । वरो दक्षिणा० त्रेधासंनद्धं बर्हिर्भवति । त्रेधासंनद्ध इध्मः० सवत्सरेणाऽग्निं मन्यन्ति० वसन्ता यष्टव्यं प्रजननाय । प्रवणे यष्टव्यं प्रजननाय । नोत्तरवेदिमुपवपन्ति प्रजननाय । प्रस्वो भवन्ति० यदि वसन्ता यजेत द्विरुपस्तृणीयात् सकृदभिघारयेत्० यदि प्रावृषि यजेत सकृदुपस्तृणीयात् द्विरभिघारयेत्० नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा द्वा आज्यभागा अष्टौ हवींषि । अग्नये समवधति । वाजिनो यजति । तत् त्रिंशः० वैश्वदेवेन चतुरो मासोऽयुवत वरुणप्रघासैः पराश्वतुरः साकमेधैः पराश्वतुरस्तानेव भ्रातृव्याद्युवते । ऋतुयाजी वा अन्यश्चातुर्मास्ययाज्यः । यो वसन्तोऽ-

भूत्वावृडभूच्छरदभूदिति यजते स ऋतुयाजी । अथ यन्नयोदशं मासं संपादयति त्रयोदशं मासमभियजते स चातुर्मास्ययाजी । ऋजून्नीनिष्ट्वा चतुर्थमुत्सृजेत् । ऋजू द्वौ परा इष्ट्वा तृतीयमुत्सृजेत् । वैश्वदेवेन यजेत पशुकामो न वरुणप्रघासैर्न साकमेधैः । स यदा सहस्रं पशून् गच्छेदथ वरुणप्रघासैर्यजते । स स्थिते हि प्रह्वतेषु परिधिषु जुहोति । बर्हिरनुषिञ्चन् गृह्णाति । दिग्यो जुहोति । प्राचीमुत्तमां जुहोति । समुपह्वयन्ते । ऋत्विजः प्राश्नन्ति । वाजिनो मे यज्ञं वहान् इति समावञ्शो भक्षयन्ति । आत्मना प्राश्नाति ॥

कासं [९.४]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्चरुः । सावित्रो द्वादशकपालः । सारस्वतश्चरुः । पौष्णश्चरुः । मारुतस्सप्तकपालः । वैश्वदेव्यामिक्षा । द्वावापृथिव्य एककपालः ॥

[३६.१-४]—

मिथुनं वै दधि च पयश्च । यत्सीसृष्टं मण्डमिव मस्त्विव परीव ददृशे गर्भ एव सः । यद्वैश्वदेव्याऽऽमिक्षया प्रजा असृजत । अमुतः प्रदानाद्धि प्रजा उपजीवन्ति । योनिर्वा एष प्रजानाम् । तं मरुतोऽभ्यकामयन्त । तेऽहो गृहीता असृज्यन्त । यत् स्वतवद्भयस्स्वत्वायैव निष्कृत्यै । सप्तकपालो भवति । ता द्वावापृथिव्येन पर्यगृह्णात् । यदेककपालः । यद्धृतेनाऽभिपूरयति । आविःपृष्ठः कार्यः । बर्हिषदं करोति । ऋजुः प्रतिष्ठितो होतव्यः । त्रेधासंनद्धं बर्हिर्भवति । त्रेधासंनद्ध इध्मः । वसन्ता यजेत प्रजननाय । प्रवणे यजेत प्रजननाय । प्रस्वो भवन्ति । नोत्तरवेदिमुपवपन्ति प्रजननाय । अग्निं मन्यति । यदि वसन्ता यजेत द्विरुपस्तृणीयात् सकृदभिघारयेत् । यदि प्रावृषि यजेत सकृदुपस्तृणीयात् द्विरभिघारयेत् । वैश्वदेवेन यजते प्रजाकामो वा पशुकामो वा न वरुणप्रघासैर्न साकमेधैः । यदा सहस्रं पशून् गच्छेदथ वरुणप्रघासैर्यजते । ऋतुयाजी वा अन्यश्चातुर्मास्ययाज्यन्यः । यो वसन्तोऽभूत् प्रावृडभूच्छरदभूदिति यजते स ऋतुयाजी । यन्नयोदशं मासं संपादयति स त्रयोदशं मासमभियजते स चातुर्मास्ययाजी । त्रीनृजूनिष्ट्वा चतुर्थमुत्सृजेत् । द्वौ परा ऋजू इष्ट्वा तृतीयमुत्सृजेत् । स स्थिते हि यज्ञे प्रह्वतेषु परिधिषु जुहोति । बर्हिरनुषिञ्चन् गृह्णाति । समुपह्वय भक्षयन्ति । सर्व ऋत्विजः प्राश्नन्ति वाजिनो मे यज्ञं वहान् इति । आत्मना प्राश्नीयात् ॥

कपिसं [८.७] ≡ कासं [९.४]

शत्रा [२.५.१]—

स यः प्रजाकाम एतेन हविषा यजते । स वा आग्नेयोऽष्टाकपालः पुरोडाशो भवति । अथ सौम्यश्चरुर्भवति । अथ सावित्रो द्वादशकपालो वाऽष्टाकपालो वा पुरोडाशो भवति । अथ सारस्वतश्चरुर्भवति । पौष्णश्चरुः । अथाऽतः पयस्याया एवाऽऽयतनम् । मारुतस्तु

सप्तकपालः० तं वै स्वतवोम्य इति कुर्यात्० उतो स्वतवोम्यो याज्यानुवाक्ये न विन्दन्ति । स उ खलु मारुत एव स्यात्० अथाऽतः पयस्यैव० योषा पयस्या रेतो वाजिनम्० अथ द्वावापृथिव्य एककपालः पुरोडाशो भवति० अथाऽत आवृदेव । नोपकिरन्त्युत्तरवेदिम्० त्रेधा बर्हिः संनद्धं भवति । तत्पुनरेकधा० प्रस्व उपसंनद्धा भवन्ति । तं प्रस्तरं गृह्णाति० आसाद्य हवींश्च्यवन्ति मन्थति० नवप्रयाजं भवति नवानुयाजम्० त्रीणि समिष्टयजूंषि भवन्ति० अथो अप्येकमेव स्याद्वविर्यज्ञो हि । तस्य प्रथमजो गौर्दक्षिणा० ।

[११.५.१.१७]—तस्मादाश्वत्थीमेवोत्तरारणिं कुर्वीताऽऽश्वत्थीमधरारणिम्० ॥

वासं [३.६२-६३]—

१त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

१शिवो नामाऽसि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।

निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

शत्रा [२.६.४.५]—स यद्वैश्वदेवेन यजते० तत् त्र्येनी शल्ली भवति ।

छोहः क्षुरः० तेन परिवर्तयते० ।

काशत्रा [१.४.३; १३.५.१] ≡ शत्रा

वाकासं [३.९]—

१वाजिनां वाजोऽवतु भक्षो अस्मान् रेतः सित्तममृतं बलाय ।

विश्वे देवा अभि यत्संवभूवुस्तन्मा धिनोतु प्रजया धनेन ॥

वाज्यहं वाजिनस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ वाजे वाजी भूयासम् ॥

१सवित्रा प्रसूता दैव्य आप उन्दन्तु ते तनूम् । दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥

१कश्यपस्य त्र्यायुषं जमदग्नेस्त्र्यायुषम् ।

यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मे अस्तु त्र्यायुषम् ॥

१येन धाता बृहस्पतेरिन्द्रस्य चाऽऽयुषे वपत् ।

तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय ।

दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे । सुप्रजास्त्वाय चाऽसा अथो जीव शरदः शतम् ॥

१. वपनार्थाविमौ मन्त्रौ वरुणप्रघाससाकमेधपर्वणोरपि विनियोज्यौ । २. वाजिनयागे शेषभक्षणे विकल्पिताख्यो मन्त्राः । ३. वपनार्था एते मन्त्रा वरुणप्रघाससाकमेधपर्वणोरपि विनियोज्याः ।

काशत्रा [१.६.४] ≡ शत्रा

शत्रा [५.१-२]—

अथाऽतश्चातुर्मास्यानाम् । चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जानः फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते० तद्यत्फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां वैश्वदेवेन यजते० तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते० तानि वा अष्टौ हवीषि भवन्ति० अथ यदग्निर्मथ्यते० अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्गन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा अष्टौ हवीषि वाजिनं नवमम्० अथ यदग्नीषोमौ प्रथमौ देवतानां यजति० अथ यत्सवितारं यजति० अथ यत्सरस्वतीं यजति० अथ यत्पूषणं यजति० अथ यन्मरुतः स्वतवसो यजति० अथ यद्वैश्वदेवी पयस्या० अथ यद् द्यावापृथिवीय एककपालः० अथ यत्पुरस्ताद्वोपरिष्ठाद्वा शंयोर्वाकस्याऽनावाहितान् वाजिनो यजति० । अथ यत् प्रथमजं गां ददाति० अथ यत् परस्तात् पौर्णमासेन यजते० ॥

गोत्रा [२.१.१९-२०]—

अथाऽतश्चातुर्मास्यानां प्रयोगः । फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जीत० तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते० तान्येतान्यष्टौ हवीषि भवन्ति० अथ यदग्निं मन्यन्ति० अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः० अथ यत् सद्गन्तावाज्यभागौ० अथ यद्विराजौ संयाज्ये० अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा अष्टौ हवीषि वाजिनं नवमम्० अथ यदग्नीषोमौ प्रथमं देवतानां यजति० अथ यत्सवितारं यजति० अथ यत्सरस्वतीं यजति० अथ यत् पूषणं यजति० अथ यन्मरुतः स्वतवसो यजति० अथ यद्विश्वान् देवान् यजति० अथ यत् द्यावापृथिव्यौ यजति० अथ यद्वाजिनो यजति० अथ यत् परस्तात् पौर्णमासेन यजते० ॥

असं—

अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ २.१६.४

अभि क्रन्द स्तनयाऽर्दयोदधिं भूर्मि पर्जन्य पयसा समङ्घ्रि ।

त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशरैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ४.१५.६

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्तामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ५.२४.२

सोमो वीरुधामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन्.... ॥ ५.२४.७ ॥ सविता

प्रसवानामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन्.... ॥ ५.२४.१

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ ७.७०.१

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।

उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ ७.१०.१

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते माऽवन्तु । अस्मिन्.... ॥ ५.२४.६

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥ ९.२.७

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते माऽवताम् । अस्मिन्.... ॥ ५.२४.३

अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाऽश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ३.१६.६

अपैसं—

अग्ने विश्वंभर विश्वतो मा पाहि स्वाहा ॥ २.४३.५ ॥ अभि क्रन्द.... ।

त्वया वर्षं बहुलमैतु सृष्टमासारैषी कृषगुरेत्वस्तम् ॥ ५.७.३ ॥ अग्निर्वनस्पती-

नामध्यक्षः । [स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां

देवहूत्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिषि स्वाहा] ॥ १५.७.८ ॥ सोमः पय-

सामध्यक्षः.... ॥ १५.८.४ ॥ सविता प्रसवानामध्यक्षः.... ॥ १५.७.१०

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु च वदामसि ।

मन्त्रे हिरण्यवर्तने प्र ण आयूंषि तारिषम् ॥ २०.२६.१०

विश्वे देवाः.... ॥ १६.७६.६ ॥ अर्वाचीनं वसुविदं भगं नः.... ॥ ४.३१.६

वैश्वदेवपर्वहौत्रम्

ऋसं—

पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यां.... ॥ १.९८.२

नार्भि यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।

वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ६.७.२

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळहुषे ।

स नो यवसमिच्छतु ॥ ७.१०२.१

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत् उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसाऽवति ॥ ५.८३.४

यस्य व्रते पृथिवी ननमीति यस्य व्रते शफवज्जर्मुरीति ।
 यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५.८३.५
^१पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाद ॥
 तं सबाधो यतस्तुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ३.२७.५-६
^२त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ५.१३.४
 सोम यास्ते मयोभुवः.... ॥ १.९१.९
^३अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ ८.४४.१६
 भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥ १०.८.६
 सोम यास्ते मयोभुव उतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ १.९१.९
 इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १.९१.१०
 या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥ १.९१.४
 आ विश्वदेवं सत्पतिं स्रक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ५.८२.७
 हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ १.२२.५
 वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
 वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६.७१.६
 उदीरय कवितमं कवीनामृनचैनमभि मध्वा घृतेन ।
 स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ५.४२.३
 पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ६.५४.९
 शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवाऽसि ।
 विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ६.५८.१
 पावका नः सरस्वती.... ॥ १.३.१० ॥ इमा जुह्वाना युष्मदा.... ॥ ७.९५.५
 इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ७.५९.११
 प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
 ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ६.६६.९
 विश्वे देवास आ गत.... ॥ २.४१.१३; ६.५२.७
 स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्रौ.... ॥ ४.६.४
 ये के च ज्मा महिनो अहिमायाः.... ॥ ६.५२.१५

१. एतदाद्ये द्वे ऋचौ धाव्ये । एतस्मात् पूर्वं विनियोज्या अग्निमन्थनार्था ऋचो निरूढ-
 पशुबन्धहीने द्रष्टव्याः २. आज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये ३. प्रधानयागयाज्यापुरोनुवाक्याः

मही द्यौः पृथिवी च नः.... ॥ १.२२.१३
 प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः.... ॥ ७.५३.२
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते.... ॥ १.१८५.७
 १प्रेद्धो अग्ने.... ॥७.१.३॥ इमो अग्ने.... ॥७.१.१८
 १शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
 जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥
 १वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
 अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ७.३८.७-८

तैसं [४.१.११]—

१अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इदेवेषु गच्छति ॥
 १सोम यास्ते मयोभुवः.... ॥ १अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य
 रजसश्च नेता.... ॥
 त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येच्चावतः सखा ॥
 या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥
 तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
 अचिन्ती यच्चक्रमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभृती पूरुषत्वता ।
 देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥
 चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥
 पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धिर्यं धात् ।
 ग्राभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यं सत् ॥
 पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥
 शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्.... ॥
 तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वनाऽऽ नाकं तस्थुरु चक्रिरे सदः ।
 विष्णुर्यद्वाऽऽवद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥
 प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय.... ॥

१. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये २. वाजिनयागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये ३. आज्य-
 भागयोः पुरोनुवाक्ये । एतत्पूर्वं विनियोज्या अग्निमन्थनार्था ऋचो निरुद्धपशुबन्धहौत्रे द्रष्टव्याः
 ४. प्रधानयागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥
 विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उग्र दधि ॥
 ये अग्निजिह्वा उत वा यज्ञत्रा आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥
 द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥
 प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः.... ॥
 १अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥
 २स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृष्वति ॥
 ३शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु.... ॥ ४वाजेवाजेऽवत वाजिनः.... ॥

मैसं [४.१०.३]

१अभि त्वा देव.... ॥ मही द्यौः पृथिवी.... ॥ त्वामग्रे पुष्करादधि.... ॥
 तमु त्वा दध्यङ्गुषिः.... ॥ तमु त्वा पाथ्यो वृषा.... ॥ उत ब्रुवन्तु
 जन्तवः.... ॥ आ यं हस्ते न.... ॥ प्र देवं देववीतये.... ॥ आ जातं
 जातवेदसि.... ॥ अग्निनाऽग्निः.... ॥ त्वं ह्यग्रे अग्निना.... ॥ तं मर्जयन्त
 सुक्रतुं.... ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः.... ॥
 २समिधो अग्रा आज्यस्य व्यन्तु ॥ तनूनपादग्रा आज्यस्य वेतु ॥ इडो
 अग्रा आज्यस्य व्यन्तु ॥ बर्हिरग्रा आज्यस्य वेतु ॥ दुरो अग्रा आज्यस्य
 व्यन्तु ॥ उषासानक्ताऽग्रा आज्यस्य वीताम् ॥ दैव्या होताराऽग्रा
 आज्यस्य वीताम् ॥ तिस्रो देवीरग्रा आज्यस्य व्यन्तु ॥ स्वाहाऽग्निं
 स्वाहा सोमं स्वाहाऽग्निं स्वाहाऽग्निं होत्रात्स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा
 अग्रा आज्यस्य व्यन्तु ॥
 ३अग्रे यं यज्ञमध्वरं.... ॥ ४त्वं नः सोम विश्वतः.... ॥ ५अग्निर्मूर्धा
 दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥ सोम यास्ते
 मयोभुवः.... ॥ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥ तत्सवितु-
 र्वरेण्यं.... ॥ अविच्छि यच्चक्रमा दैव्ये जने.... ॥
 पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामविज्यवतु ॥
 आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
 हवं देवी जुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥

१. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये २. वाजिनयागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये ३. अग्निमन्थनादि
 ४. प्रयाजयाज्याः ५. आज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये ६. प्रधानयागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः

पूषा गा अन्वेतु नः.... ॥ शुक्रं ते अन्यद्यजतं.... ॥

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुता आवृणो ॥

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय.... ॥ विश्वे देवा ऋतावृधः.... ॥

विश्वे देवासो अस्मिधा एहिमायासो अद्रुहः । मेघं जुषन्त वह्नयः ॥

द्यावा नः पृथिवी इमं.... ॥ प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः.... ॥ स

हव्यवाडमर्त्यः.... ॥ अग्निं स्तोमेन बोधय.... ॥

१देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ देवीद्वारो वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु ॥

देवी उषासानक्ता वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥ देवी जोष्ट्री वसुवने

वसुधेयस्य वीताम् ॥ देवी ऊर्जाहुती वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥ देवा

दैव्या होतारा वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥ देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वसुवने

वसुधेयस्य व्यन्तु ॥ देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ देवो

अग्निः स्विष्टकृत्सुद्रविणा मन्द्रः कविः सत्यमन्माऽऽयजी होता होतुर्होतु-

रायजीयानग्रे यान् देवानयाड्यं अपिप्रेर्ये ते होत्रे अमत्सत तां ससनुषीं

होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमं स्विष्टकृचाऽग्रे होताऽभूर्वसु-

वने वसुधेयस्य नमोवाके वीहि ॥

२शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु.... ॥ ३वाजे वाजेऽवत वाजिनः.... ॥

मैसं [१.१०.९]—

यद्वर्हिः प्रयाजेषु यजति० यद्वर्हिरनुयाजेषु० यद्वर्हिर्वारितीनाम्० यदुरः० यदुषासा-

नक्ता० यजोष्ट्री० यदूर्जाहुती० यदैव्या होतारा० यत्तिस्रो देवीः० तस्मात्तनूनपातं प्रयाजेषु

यजति० तस्मादु नराशंसमनुयाजेषु यजति० वनस्पतिं यजति० त्वष्टारं यजति० वाजिनो

यजति० यदव्यवान् यजति० अनुयजति समिष्ट्या एव प्रतिष्ठित्यै० ऊर्ध्वञ्जुरासीनो यजति० ॥

कासं [२०.१५]—

१समिधो अग्न आज्यस्य व्यन्तु ॥ तनूनपादग्न आज्यस्य वेतु ॥ इडो अग्न

आज्यस्य व्यन्तु ॥ बर्हिरग्न आज्यस्य वेतु ॥ दुरो अग्न आज्यस्य व्यन्तु ॥

उषासानक्ताऽग्न आज्यस्य वीताम् ॥ दैव्या होताराऽग्न आज्यस्य वीताम् ॥

तिस्रो देवीरग्न आज्यस्य व्यन्तु ॥ स्वाहाऽग्निं स्वाहा सोमं स्वाहाऽग्निं

१. अनुयाजयाज्याः २. वाजिनयागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये ३. प्रयाजयाज्याः । एतस्मात् पूर्व विनियोज्या अग्निमन्थनार्थां ऋचो निरुद्धपशुवन्धे द्रष्टव्याः ।

स्वाहा सोमै स्वाहा सवितारि स्वाहा सरस्वती^१ स्वाहा पूषणी स्वाहा
मरुतस्स्वतवसस्स्वाहा विश्वान् देवान् स्वाहा द्यावापृथिवी स्वाहाऽग्निं
होतारि स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा आज्यस्य व्यन्तु ॥

१त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वितन्वते ॥

त्वी सोम महे भगं त्वं यून क्रतायते । दक्षं ददासि जीवसे ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्.... ॥ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता.... ॥

वृषा सोम द्युमी असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं.... ॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।

वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुशिजो वि राजति ॥

पावका नः सरस्वती.... ॥ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा.... ॥

पूषा गा अन्वेतु नः.... ॥ शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यत्.... ॥

इहेह वस्स्वतवसो मरुतस्स्वर्यत्वचः । शर्मा सप्रथा आवृणे ॥

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय.... ॥

विश्वे देवा क्रतावृधं क्रतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपी सधस्थे ।

ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्त्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो वरीमभिः ॥

घृतवती भुवनानामभिश्चियोर्वा पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा ।

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥

पिप्रीहि देवी उशतो यविष्ठ विद्वी क्रतून्तुपते यजेह ।

ये दैव्या क्रत्विजस्तेभिरग्ने त्वी होतृणामस्यायजिष्ठः ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोढुम् ।

अग्निर्विद्वान्तस यजात्सेदु होता सो अध्वरान् स क्रतून् कल्पयाति ॥

देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥ देवीर्द्वारो वसुवने.... ॥ देवी उषा-

सानक्ता.... ॥ देवी जोष्टी.... ॥ देवी ऊर्जाहुती.... ॥ देवा दैव्या

होतारा.... ॥ देवीस्तिस्रः..... ॥ देवो नराशिसः.... ॥ देवो अग्निः
स्विष्टकृत्.... ॥ शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु.... ॥ वाजे वाजेऽवत
वाजिनः..... ॥

कासं^१ [३६.३-४] ≡ मैसं [१.१०.९]

वरुणप्रघासपर्व

तैसं [१.८.३]—

प्रघास्यान् हवामहे मरुतो यज्ञवाहसः कर्मभेण सजोषसः ॥
मो षू ण इन्द्र पृत्सु देवाऽस्तु स्म ते शुष्मिन्नवया ।
मही ह्यस्य मीढुषो यव्या । हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥
यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये एनश्चक्रुमा वयम् ।
यदेकस्याऽधि धर्मणि तस्याऽवयजनमसि स्वाहा ॥
अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा ।
देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेत सुदानवः ॥

तैसं [१.८.३]—ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं मारुतीमामिक्षां वारुणीमामिक्षां कायमेक-
कपालम् ॥

तैत्रा [१.६.४-५]—

०स एतान् प्रजापतिर्वरुणप्रघासानपश्यत् । तानिरवपत् । तैर्वै स प्रजा वरुण-
पाशादमुञ्चत् । यद्वरुणप्रघासा निरुप्यन्ते । प्रजानामवरुणग्राहाय ० यद् द्वितीयां दक्षिणतो वेदि-
मुद्धन्ति ० पृथमात्राद्वेदी असंभिन्ने भवतः ० उत्तरस्यां वेद्यामुत्तरवेदिमुपवपति ० एतद्वाहणान्येव
पञ्च हवींषि । अथैष ऐन्द्राग्रो भवति ० मारुत्यामिक्षा भवति । वारुण्यामिक्षा । मेषी च मेषश्च
भवतः ० लोमशौ भवतो मेध्यत्वाय । शमीपर्णान्युपवपति ० यत्परःशतानि शमीपर्णानि भवन्ति ०
यत्करीराणि भवन्ति ० काय एककपालो भवति ० प्रतिपूरुषं कर्मभपात्राणि भवन्ति ० एकमति-
रिक्तम् ० उत्तरस्यां वेद्यामन्यानि हवींषि सादयति । दक्षिणायां मारुतीम् ० मारुत्या पूर्वया
प्रचरति ० वारुण्योत्तरया ० यदेवाऽध्वर्युः करोति । तत्प्रतिप्रस्थाता करोति ० पत्नी वाचयति ०

१. वाजिनयागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये २. शतपथब्राह्मणगतं वैश्वदेवपर्वविषयकं हौत्रमाध्वर्यव-
प्रकरणे द्रष्टव्यम् । एवमुत्तरेष्वपि पूर्वसु हौत्रमाध्वर्यवान् पृथक्कृतं सौकर्याभावात् । एवमेव शाङ्खा-
यनब्राह्मणगतानि गोपथब्राह्मणगतानि च हौत्रवाक्यान्वयि आध्वर्यवप्रकरण एव द्रष्टव्यानि ।

यज्जार५ सन्तं न प्रब्रूयात् । प्रियं ज्ञाति५ रुन्ध्यात् । असौ मे जारः इति निर्दिशेत्० प्रघास्यान् हवामहे इति पत्नीमुदानयति० यत्पत्नी पुरोवानुवाक्यामनुब्रूयात् । निर्वीर्यो यजमानः स्यात् । यजमानोऽन्वाह० उभौ याज्या५ सवीर्यत्वाय । यद् ग्रामे यदरण्ये इत्याह० दक्षिणेऽग्नौ जुहोति० शूर्पेण जुहोति० शीर्षन्नधिनिधाय जुहोति० प्रत्यङ् तिष्ठन्जुहोति० अक्रन् कर्म कर्मकृतः इत्याह० तुषैश्च निष्कासेन चाऽवभृथमवैति० अपोऽवभृथमवैति० प्रतियुतो वरुणस्य पाशः इत्याह० अप्रतीक्षमायन्ति० एधोऽस्येधिषीमहि इत्याह । समिधैवाऽग्निं नमस्यन्त उपायन्ति । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि इत्याह० ॥

तैत्रा [१.५.५]—

यद् धर्मः पर्यवर्तयत् । अन्तान् पृथिव्या दिवः । अग्निरीशान ओजसा । वरुणो धीतिभिः सह । इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह । अग्निस्तिग्मेन शोचिषा । तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्याहितम् । वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये । सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये । शिवेनाऽस्योपवर्तये । शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ तद्धतं तत्सत्यम् । तद् व्रतं तच्छक्रेयम् । तेन शक्रेयं तेन राध्यासम् ॥

तैत्रा [१.४.१०]^१—यद्वरुणप्रघासैर्यजते । आदित्यमेव तत् परिवत्सरमामोति । तस्माद्वरुणप्रघासैर्यजमानः । परिवत्सरीणा५ स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत् ॥

मैसं [१.१०.२]—

अग्ने वेहोत्र० वेदूत्यमूर्ध्वो अध्वरो अस्थादवतां नो द्यावापृथिवी स्विष्ट-
कृदिन्द्राय देवेभ्यो भवाऽस्य घृतस्य हविषो जुषाणो वीहि स्वाहा ॥
प्रघास्यान् हवामहे.... ॥ मो षू ण इन्द्राऽत्र पृतसु.... ॥ मही चिद्यस्य.... ॥
यद् ग्रामे.... यदिन्द्रिये । यदेनश्चक्रुमा वयं यदप्सश्चक्रुमा वयम् ।
तदेकस्याऽपि चेतसि तदेकस्याऽपि धर्मणि । तस्य सर्वस्याऽहसोऽव-
यजनमसि ॥ अक्रन् कर्म.... मयोम्वा । देवेभ्यः कर्म.... ॥

मैसं [१.१०.१]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्चरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः । सारस्वतश्चरुः । पौष्णश्चरुः । ऐन्द्राग्नौ द्वादशकपालः । मारुत्यामिक्षा । वारुण्यामिक्षा । काय एककपालः । वाजिना० वाजिनम् ॥

[१.१०.१०-१३]—

यद्वरुणप्रघासैर्यजेत० सावित्रोऽष्टाकपालो भवति० द्वादशकपाल ऐन्द्राग्नौ देवतया० अथैतानि पञ्च हवींषि संतत्यै । निरवत्यै मारुती । निर्वरुणत्वाय वारुणी । कन्त्वाय कायः० अनृतं स्त्री । अनृतं वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथाऽन्यैश्चरति० यन्मिथुया प्रति-
ब्रूयात्प्रियतमेन याजयेत् । अथ यद्वाचयति मेघ्यामेवैनां करोति । आमपेषा भवन्ति० यद्वृज्येयु-
रनवेष्टमहः स्यात्० यत्पात्राणि । पात्रेभ्य एवैना वरुणान्मुञ्चति । प्रतिपुरुषं भवन्ति० एकमधि भवति । तस्माच्छूर्पेण जुहुतः । स्त्रीपुंसौ जुहुतः० पुरस्तात्प्रत्यश्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतः०
अथ यन्मेषश्च मेषी च लोमशौ भवतो मेघ्यत्वाय० शमीपर्णानि भवन्ति शन्त्वाय । भूर्जो वै नामैष वृक्षः । कार्या एतस्य सुचः० परःशतानि कार्याणि० परःसहस्राणि कार्याणि० यदा पात्राणि जुह्वत्यथाऽग्निं संमार्ष्टि० यत्करीराणि भवन्ति० न वै वैश्वदेव उत्तरवेदिमुपवपन्ति ।
उपाऽत्र वपन्ति० येयमुत्तरा वेदिः० येयं दक्षिणा वेदिः० समे प्राची भवतः० असंभिन्ने भवतः० एकस्यां पश्चात्संभिन्नत्यनुसंतत्यै । उपेमा वपति नेमाभ्यन्वभ्यारोहयत्० नाना यजतः०
यदेवाऽर्च्युः करोति तत्प्रतिप्रस्थाता करोति० न वै वैश्वदेवे त्रिंशदाहुतयः सन्ति न साकमेघेषु । वरुणप्रघासेषु वाव त्रिंशदाहुतयः० यत्तर्ह्यवभृथमभ्यवयन्ति० यन्निष्काषेणा-
ऽवभृथमभ्यवयन्ति० अनपेक्षमाणा आयन्ति० परोगोष्ठं मार्जयन्ते० एधोऽस्येधिषीमहि इति० समिदसि समेधिषीमहि इति समिद्व्या एव० ॥

कासं [९.४]—

नमस्त आतान ॥ अनर्वा ग्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह राय-
स्पोषेण ॥ प्रघास्यान् हवामहे....॥ मो षू ण इन्द्राऽत्र पृत्यु देवाः.... ॥
मही देवस्य मीढुषोऽवया.... ॥ यद् ग्रामे.... ॥ यदेकस्याऽपि धर्मण्ये-
तत्तदवयजामहे स्वाहा ॥ अक्रन् कर्म.... मयोभुवा । ॥

कासं [९.४]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्वरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः । सार-
स्वतश्वरुः । पौष्णश्वरुः । ऐन्द्राग्नौ द्वादशकपालः । मारुत्यामिक्षा । वारुण्यामिक्षा । काय
एककपालः ॥

कासं [३६.५-७]—

अैहसो वा एषाऽवेष्टिर्यद्वरुणप्रघासाः० अथैतानि पञ्च हवींषि संतत्यै । सावित्रो-
ऽष्टाकपालः० ऐन्द्राग्नौ द्वादशकपालः० निरवत्या एव मारुती । निर्वरुणत्वाय वारुणी । कन्त्वाय
कायः० अनृतं स्त्री । अनृतमेषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथाऽन्यैश्चरति० यद्वाचयति

मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोति । न मिथु ब्रूयात् । यन्मिथु ब्रूयात्प्रियतमेन यातयेत्० आमपेषां भवन्ति० यत्पात्राणि० प्रतिपुरुषं भवन्ति० एकमधि भवति० तस्माच्छूर्पेण हूयते । स्त्रीपुंसौ जुहुतः० पुरस्तात्प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतः० यन्मेषश्च मेषी च० पात्राणि हुत्वाऽग्निं संमार्ष्टि० शमीं च यवं च न गृह्णाति० स्त्रीपुंसौ भवतः० लोमशौ भवतः० शमीपर्णानि भवन्ति शन्त्वाय । भूर्जो वै नामैष वृक्षः । कार्या वा एतस्य सूचः० परश्शतानि कार्याणि० परस्सहस्राणि कार्याणि० यत्करीराणि भवन्ति० न वैश्वदेव उत्तरवेदिमुपवपन्ति । उपाऽत्र वपन्ति० योत्तरा वेदिः० या दक्षिणा वेदिः० समे कार्ये० असंभिन्ने भवतः० एकस्फ्यामनु संभिन्दन्त्यनुसंतत्यै । उपोत्तरां वपन्ति न दक्षिणाम्० नाना यजन्ति० यदध्वर्युः करोति तत्प्रतिप्रस्थाता करोति० न वैश्वदेवे त्रिंशदाहुतयस्सन्ति न साकमेधेषु । वरुणप्रघासेषु वाव त्रिंशदाहुतयः० यदेतर्ह्यव-भृथमवैति० यन्निष्काषेणाऽवभृथमवैति० अनपेक्षमाणा आयान्ति० एधोऽस्येधिषीमहि इति० समिदसि समेधिषीमहि इति० तेजोऽसि तेजो मयि धेहि इति० ॥

कपिसं [८.७] ≡ कासं [९.४]—

--- यदेकस्याऽपि धर्मणीदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ---

वासं [३.४४-४८]—

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । कर्मभेण सजोषसः ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥

मो षू ण इन्द्राऽत्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।

महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः.... कृत्वाऽस्तं प्रेत सचामुवः ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।

अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्याहि ॥

शत्रा [२.५.२]—

वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः प्रजाः ससृजे । ता अस्य प्रजाः सृष्टा वरुणस्य यवान् जक्षुः । वरुण्यो ह वा अग्रे यवः । तद्यन्वेव वरुणस्य यवान् प्रादन् तस्माद्वरुणप्रघासा नाम० अथ यदेष एतैश्चतुर्थे मासि यजते० तद्वै द्वे वेदी द्वावग्नी भवतः० स उत्तरस्यामेव वेदावुत्तर-वेदिमुपकिरति, न दक्षिणस्याम्० अथैतान्येव पञ्च हवींषि भवन्ति० अथैन्द्राग्नौ द्वादश-कपालः पुरोडाशो भवति० उभयत्र पयस्ये भवतः० वारुण्युत्तरा भवति० मारुती दक्षिणा० तयोरुभयोरेव करीराण्यावपति० तयोरुभयोरेव शमीपलाशान्यावपति० अथ काय एककपालः

पुरोडाशो भवति० अथ पूर्वैद्युरन्वाहार्यपचनेऽनुष्ठानिव यवान् कृत्वा तानीषदिवोपतप्य तेषां
 कार्म्मपात्राणि कुर्वन्ति यावन्तो गृह्याः स्युस्तावन्येकेनाऽतिरिक्तानि । तत्राऽपि मेषं च मेषीं च
 कुर्वन्ति । तयोर्मेषे च मेष्यां च यद्यनैडकीरूणां विन्देत् ताः प्रणिज्य निश्लेषयेत् । यद्यु अनैडकीर्णं
 विन्देदयो अपि कुशोर्णा एव स्युः० स उत्तरस्यामेव पयस्यायां मेषीमवदधाति दक्षिणस्यां मेषम्०
 स सर्वाण्येव हवींश्चैष्यध्वर्युरुत्तरस्यां वेदावासादयति । अथैतामेव पयस्यां प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्यां
 वेदावासादयति । आसाद्य हवींश्चैष्यग्निं मन्यति । अग्निं मथित्वाऽनुग्रह्याऽभिजुहोति । अथा-
 ऽध्वर्युरेवाऽऽह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । ता उभावेवेध्मावभ्याधत्तः । उभौ समिधौ परि-
 शिष्टः । उभौ पूर्वावाधारावाधारयतः । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽह अग्निमग्नीत्संमृडि इति । असंमृष्टमेव
 भवति संप्रेषितम् । अथ प्रतिप्रस्थाता प्रतिपरैति । स पत्नीमुदानेष्यन् पृच्छति केन चरसि इति०
 तां वाचयति प्रधासिनो हवामहे.... सजोषसः इति० पात्राणि भवन्ति० शूर्पेण जुहोति०
 पत्नी जुहोति० पुरा यज्ञात्पुराऽऽहुतिभ्यो जुहोति० सा वै दक्षिणेऽग्नौ जुहोति यद्ग्रामे यदरण्ये
 इति० अथैन्द्रीं मरुत्वतीं जपति० मो षू ण इन्द्राऽत्र... वन्दते गीः इति । अथैनां वाचयति
 अक्रन् कर्म कर्मकृतः इति० प्रतिपराणीयोदैति प्रतिप्रस्थाता । संमृजन्त्यग्निम् । संमृष्टेऽग्नौ ता
 उभावेवोत्तरावाधारावाधारयतः । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽश्राव्य होतारं प्रवृणीते । प्रवृत्तो होतोत्तरस्यै
 वेदेर्होतृषदन उपविशति । उपविश्य प्रसूति । ता उभावेव प्रसूतौ सुच आदायाऽतिक्रामतः ।
 अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह समिधो यज इति । यज यज इति चतुर्थे चतुर्थे प्रयाजे
 समानयमानौ नवभिः प्रयाजैश्चरतः । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽह अग्नयेऽनुब्रूहि इत्याग्नेयमाज्यभागम् ।
 ता उभावेव चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामतः । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह अग्निं यज
 इति । ता उभावेव वषट्कृते जुहुतः । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽह सोमायाऽनुब्रूहि इति सौम्य-
 माज्यभागम् । ता उभावेव चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामतः । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह
 सोमं यज इति । ता उभावेव वषट्कृते जुहुतः । तद्यत्किंच वाचा कर्तव्यमध्वर्युरेव तत्करोति
 न प्रतिप्रस्थाता० पाणावेव प्रतिप्रस्थाता सुचौ कृत्वोपास्ते । अथाऽध्वर्युरेवैतैर्हविर्भिः प्रचरति
 आग्नेयेनाऽष्टाकपालेन पुरोडाशेन, सौम्येन चरुणा, सावित्रेण द्वादशकपालेन वाऽष्टाकपालेन वा
 पुरोडाशेन, सारस्वतेन चरुणा, पौष्णेन चरुणा, ऐन्द्राग्नेन द्वादशकपालेन पुरोडाशेन । अथैताभ्यां
 पयस्याभ्यां प्रचरिष्यन्तौ विपरिहरतः । स यो मेषो भवति मारुत्यां तं वारुण्यामवदधाति ।
 या मेषी भवति वारुण्यां तां मारुत्यामवदधाति० अथाऽध्वर्युरेवाऽऽह वरुणायाऽनुब्रूहि इति । स
 उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्यै वारुण्यै पयस्यायै द्विरवद्यति । सोऽन्यतरेणाऽवदानेन सह
 मेषमवदधाति । अथोपरिष्टादाज्यस्याऽभिधारयति । प्रत्यनक्त्यवदाने । अतिक्रामति । अति-
 क्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह वरुणं यज इति । वषट्कृते जुहोति । सव्ये पाणावध्वर्युः सुचौ कृत्वा

दक्षिणेन प्रतिप्रस्थातुर्वासोऽन्वारभ्याऽऽह मरुद्ब्रह्मोऽनुब्रूहि इति । उपस्तृणीत आज्यं प्रतिप्रस्थाता । अथाऽस्यै मारुत्यै पयस्यायै द्विरवधति । सोऽन्यतरेणाऽवदानेन सह मेषीमवदधाति । अथो-
परिष्ठादाज्यस्याऽभिघारयति । प्रत्यनक्त्यवदाने । अतिक्रामति । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽश्राव्याऽऽह
मरुतो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽध्वर्युरेव कायेनैककपालेन पुरोडाशेन प्रचरति ।
कायेनैककपालेन पुरोडाशेन प्रचर्याऽध्वर्युरेवाऽऽह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । स सर्वेषामेव
हविषामध्वर्युः सकृत्सकृदवधति । अथैतस्या एव पयस्यायै प्रतिप्रस्थाता सकृदवधति । अथो-
परिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयतः । ता उभावेवाऽतिक्रामतः । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह
अग्निं स्विष्टकृतं यज इति । ता उभावेव वषट्कृते जुहुतः । अथाऽध्वर्युरेव प्राशिन्नमवधति ।
इडां समवदाय प्रतिप्रस्थात्रेऽतिप्रजिहीते । तत्राऽपि प्रतिप्रस्थाता मारुत्यै पयस्यायै द्विरभ्य-
वधति । अथोपरिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयति । उपहूय मार्जयन्ते । अथाऽध्वर्युरेवाऽऽह ब्रह्मन्
प्रस्थास्यामि समिधमाधायाऽग्निमग्नीत्संमृड्ढि इति । स सुचोरेवाऽध्वर्युः पृषदाज्यं व्यानयते ।
अथ यदि प्रतिप्रस्थातुः पृषदाज्यं भवति तत्स द्वेधा व्यानयते । उतो तत्र पृषदाज्यं
न भवति स यदेवोपभृत्याज्यं तत् स द्वेधा व्यानयते । ता उभावेवाऽतिक्रामतः । अति-
क्रम्याऽऽश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह देवान् यज इति । यज यज इति चतुर्थे चतुर्थेऽनुयाजे समानय-
मानौ नवभिरनुयाजैश्चरतः० ता उभावेव सादयित्वा सुचो व्यूहतः । सुचो व्यूह्य परिधीन्
समज्य परिधिमभिपद्य आश्राव्याऽध्वर्युरेवाऽऽह इषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो
मानुषः सूक्तवाकाय इति । सूक्तवाकं होता प्रतिपद्यते । अथैता उभावेव प्रस्तरौ समुल्लुम्पतः ।
उभावनुप्रहरतः । उभौ तृणे अपगृह्योपासते यदा होता सूक्तवाकमाह । अथाऽग्नीदाह ।
अनुप्रहर इति । ता उभावेवाऽनुप्रहरतः । उभावात्माना उपस्पृशेते । अथाऽऽह संवदस्व इति ।
अगानग्नीत् । अगन् । श्रावय । श्रौषट् । खगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः शंयोर्ब्रूहि इति
अध्वर्युरेवैतदाह । ता उभावेव परिधीननुप्रहरतः । उभौ सुचः संप्रगृह्य स्फ्ये सादयतः ।
अथाऽध्वर्युरेव प्रतिपरेत्य पत्नीः संयाजयति । उपास्त एव प्रतिप्रस्थाता । पत्नीः संयाज्योदेत्य-
ध्वर्युः । त्रीणि समिष्टयजूंषि जुहोति । तूष्णीमेव प्रतिप्रस्थाता सुचं प्रगृह्णाति । तद्ये
वैश्वदेवेन यजमानयोर्वीससी परिहिते स्यातां ते एवाऽत्राऽपि स्याताम् । अथाऽस्यै वारुण्यै
पयस्यायै क्षामकर्षमिश्रमादायाऽवभृथं यन्ति० तत्र न साम गीयते० तूष्णीमेवेत्याऽभ्यवेत्योप-
मारयति । अवभृथ निचुम्पुण.... देव रिषस्याहि इति । कामं हैते यस्मै कामयेत तस्मै
दद्यात् । न हि दीक्षितवसने भवतः० अथ केशश्मश्रूत्वा समारोह्याऽग्नी उदवसायेव ह्येतेन
यजते० गृहानित्वा निर्मथ्याऽग्नी पौर्णमासेन यजते ।

[२.६.४.६]—अथ यद्वरुणप्रघासैर्यजते० तत् त्रेणी शल्ली भवति । छोहः
क्षुरः । तेन परिवर्तयते० ॥

वाकासं [३.५] = वासं

काशत्रा [१.५.१; १.६.४] = शत्रा

शात्रा [५.३-४]—

य एवं विद्वान् वरुणप्रघासैर्यजते । अथ यदग्निं प्रणयन्ति० यदग्निर्मथ्यते तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्ब्रन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा नवैतानि हवींषि० समानानि पञ्च संचराणि हवींषि पौष्णान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यदैन्द्राग्नौ द्वादशकपालः० अथ यद्गारुणी पयस्या० अथ यन्मारुती पयस्या० अथ यत्काय एककपालः० अथ यन्मिथुनौ गावौ ददाति० अथ यद्वाजिनो यजति तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यदप्सु वरुणं यजति० अथ यत्परस्तात्पौर्णमासेन यजते० ॥

गोत्रा [२.१.२१-२२]—

तत एतं प्रजापतिर्यज्ञक्रतुमपश्यत् वरुणप्रघासान् । तमाहरत् । तेनाऽयजत । तेनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात्० अथ यदग्निं प्रणयन्ति यमेवाऽमुं वैश्वदेवे मन्यन्ति तमेव तत्प्रणयन्ति । यन्मथ्यते तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्ब्रन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा नवैतानि हवींषि । समानानि त्वेव पञ्च संचराणि हवींषि भवन्ति पौष्णान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यदैन्द्राग्नौ द्वादशकपालो भवति० अथ यद्गारुण्यामिक्षा० अथ यन्मारुती पयस्या० अथ यत्काय एककपालः० अथ यन्मिथुनौ गावौ ददाति० अथ यदप्सु वरुणं यजति० अथ यत् परस्तात् पौर्णमासेन यजते० ॥

असं—

अग्ने ग्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥४.१४.५
इदमापः प्र वहताऽवद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाऽभिदुद्रोहाऽनृतं यच्च शेषे अभीरुणम् ॥७.९४.३
वरुणोऽपामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन्.... ॥५.२४.४
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४.२.१

अपैसं—

अग्ने ग्रेहि प्रथमो देवयतां.... मर्त्यानाम् । सजोषसः..... ॥३.३८.३
इदमापः.... । यच्च दुद्रोहाऽनृतं.... ॥१.३३.३॥ वरुणोऽपामच्यक्षः ।

॥१५.७.२॥ य ओजोदा बलदाः.... । ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः....
॥४.१.२-३

वरुणप्रधासपर्वहौत्रम्

ऋसं—

इन्द्राग्नी अवसा गतम्.... ॥ ७.९४.७
भथद्वृत्रमुत सनोति वाजम्.... ॥ ६.६०.१
मरुतो यस्य हि क्षये.... ॥ १.८६.१
अराइवेदचरमा अहेव.... ॥ ५.५८.५
इमं मे वरुण श्रुधि.... ॥ १.२५.१९
तच्चा यामि ब्रह्मणा बन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १.२४.११
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४.३१.१
हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०.१२१.१
मरुतो यद्ध वो बलं जनां अचुच्यवीतन ।
गिरीरचुच्यवीतन ॥ १.३७.१२
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हन्यदार्ति यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५.५५.१०
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुताऽपवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ १.२४.८-९

तैसं [४.२.११]^१—

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥

१. अग्निप्रणयनार्था ऋचो निरूढपञ्चबन्धे द्रष्टव्याः २. प्रधानयागायाज्यापुरोनुवाक्याः ।
आदितः पञ्चानां देवतानां याज्यापुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः ।

अथद्वृत्रमुत सनोति वाजं.... ॥
 प्र चर्षणिभ्यः पृतना हवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
 प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥
 मरुतो यस्य हि क्षये.... ॥
 यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥
 श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्भिः सुखादयः ।
 ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥
 अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्मिः ।
 क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेनासि शिश्रथः कृतानि ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ कया नश्चित्र आ भुवत्.... ॥
 को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून् ।
 आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥
 १अग्रे नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
 युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥
 आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोढुम् ।
 अग्निर्विद्वान्तस यजात्सेदु होता सो अध्वरान्तस ऋतून् कल्पयाति ॥
 २शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु.... ॥ वाजेवाजेऽवत वाजिनः.... ॥
 ३अप्स्वग्रे सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सज्जायसे पुनः ॥
 वृषा सोम द्युमासि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥
 इमं मे वरुण श्रुधि.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥
 त्वं नो अग्रे वरुणस्य विद्वान्.... ॥ स त्वं नो अग्रेऽवमो भवोती.... ॥

मैसं [४.१०.४]—

१प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥
 अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
 रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥
 अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
 सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ॥

१. स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये २. वाजिनयागस्य याज्यानुवाक्ये ३. अबभृथेष्टिद्वौत्रम्
 ४. अग्निप्रणयनार्था ऋचः

इडायास्त्वा पदे० वयं.... ॥

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।

कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्.... ॥ नि होता होतृषदने विदानः.... ॥

त्वं दूतस्त्वष्टु नः परस्पास्त्व वस्या आ वृषभ प्रणेता ।

अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुञ्जन् दीद्यद्बोधि गोपाः ॥

^१अग्निना रयिमभ्रवत्पोषमेव दिवे दिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥

^२इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु.... ॥

मरुतो यद्द वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू ना उपगन्तन ॥

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताऽधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥

इमं मे वरुण श्रुधि.... ॥ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ कया

नश्चित्र आभुवत्.... ॥ को अद्य शुङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य.... ॥

^३पिप्रीहि देवं उशतो यविष्ठ विद्वं ऋतूँ ऋतुपते यजेह ।

ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः ॥

अग्ने यदद्य विशो अश्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।

ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥

^४अप्स्वग्ने सधिष्टव.... ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । आपश्च विश्वशंभुवः ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ अव ते हेडो वरुण नमोभिः.... ॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्.... ॥ स त्वं नो अग्ने.... ॥

कासं [२१.१३]—

^५इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाऽजनि ॥

१. आज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये २. प्रधानयागयाज्यापुरोनुवाक्याः । आदितः पञ्चानां देवतानां याज्यापुरोनुवाक्याः वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः ३. स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये ४. अवभृथेष्टि-
होत्रम् ५. अग्निप्रणयनार्था ऋचो निरूढपशुबन्धे द्रष्टव्याः ६. प्रधानयागयाज्यापुरोनुवाक्याः ।
शिष्टानां देवतानां याज्यापुरोनुवाक्याः वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः

शुचिं नु स्तोमं नवजातमघेन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
 उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥
 मरुतो यद्व वो दिवः.... ॥ या वश्शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥ इमं मे
 वरुण श्रुधि.... ॥ तत्त्वाऽऽयामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ कया नश्चित्र
 आभुवत्.... ॥
 कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु काचिदृष्वः ।
 पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥
 'उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाऽधमानि जीवसे ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ त्वं नो अग्रे.... ॥ स त्वं नो अग्रे.... ॥

साकमेधपर्व

तैसं [१.८.४-६]—

पूर्णां दर्विं परा पत सुपूर्णां पुनरापत ।
 वस्त्रेव वि क्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥
 देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
 निहारमिन्नि मे हरा निहारं नि हरामि ते ॥
 एतत्ते तत ये च त्वामनु ॥ एतत्ते पितामह ये च त्वामनु ॥ एतत्ते
 प्रपितामह ये च त्वामनु ॥ अत्र पितरो यथाभागं मन्दध्वम् ॥
 सुसंहशं त्वा वयं मघवन् मन्दिषीमहि ।
 प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो यासि वशाऽनु । योजा न्विन्द्र ते हरी ॥
 अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
 अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती । योजा न्विन्द्र ते हरी ॥
 अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरः ॥
 परेत पितरः सोम्या गम्भीरैः पथिभिः पूज्यैः ।
 अथा पितृन्त्सुविदत्राऽअपीत यमेन ये सधमार्दं मदन्ति ॥
 मनो न्वा हुवामहे नाराशऽसेन स्तोमेन पितृणां च मन्मभिः ॥

आ न एतु मनः पुनः कृत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातः सचेमहि ॥

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिःसिम ।

अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु

दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥

यावन्तो गृह्याः स्मस्तेभ्यः कमकरम् । पशूनां शर्माऽसि शर्म यजमानस्य

शर्म मे यच्छ ॥ एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे । आखुस्ते रुद्र

पशुस्तं जुषस्व । एष ते रुद्र भागः सह स्वप्नाऽम्बिकया तं जुषस्व ।

भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजमथो अस्मभ्यं भेषजं सुभेषजं यथाऽसति ।

सुगं मेषाय मेघ्या अवाऽम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नः

श्रेयसः करद्यथा नो वस्यसः करद्यथा नः पशुमतः करद् यथा नो

व्यवसाययात् ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

एष ते रुद्र भागस्तं जुषस्व तेनाऽवसेन परो मूजवतोऽतीह्यवततधन्वा

पिनाकहस्तः कृत्तिवासाः ॥

तैसं [१.८.४-६]—

अग्नयेऽनीकवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति साकः सूर्येणोद्यता । मरुद्भ्यः सांत-
पनेभ्यो मध्यंदिने चरुं मरुद्भ्यो गृहमेधिम्यः सर्वासां दुग्धे सायं चरुम्० मरुद्भ्यः क्रीडिम्यः
पुरोडाशः सप्तकपालं निर्वपति साकः सूर्येणोद्यता । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुः सावित्रं
द्वादशकपालः सारस्वतं चरुं पौष्णं चरुमैन्द्राग्नमेकादशकपालमैन्द्रं चरुं वैश्वकर्मेणमेककपालम् ।
सोमाय पितृमते पुरोडाशः षट्कपालं निर्वपति पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यो धानाः पितृभ्योऽग्निष्वा-
त्तेभ्योऽभिवान्याये दुग्धे मन्थम्० प्रतिपूरुषमेककपालानिर्वपत्येकमतिरिक्तम्० ॥

तैब्रा [१.६.६-१०]—

यदग्नयेऽनीकवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति० साकः सूर्येणोद्यता निर्वपति०
यन्मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यश्चरुं निर्वपति० मध्यंदिने निर्वपति० सर्वासां दुग्धे गृहमेधीयं चरुं
निरवपन्० यत्थैवं विदुषो मरुद्भ्यो गृहमेधिम्यो गृहे जुह्वति० यन्नेध्माबर्हिर्भवति । न सामिधेनी-
रन्वाह^१ । न प्रयाजा इज्यन्ते । नाऽनूयाजाः ० आज्यभागौ यजति० मरुतो गृहमेधिनी

यजति० अग्निं स्विष्टकृतं यजति० इडान्तो भवति० यत्पत्नी गृहमेधीयस्याऽश्रीयात् । गृह-
मेध्येव स्यात् । वि त्वस्य यज्ञ ऋध्येत । यन्नाऽश्रीयात् । अगृहमेधी स्यात् । नाऽस्य यज्ञो
व्यूध्येत । प्रतिवेशं पचेयुः । तस्याऽश्रीयात्० गृहमेधीयेनेष्ट्वा । आशिता भवन्ति । आञ्जते-
ऽभ्यञ्जते । अनु वत्सान् वासयन्ति० गृहमेधीयेनेष्ट्वा । इन्द्राय निष्कासं निदध्यात्० गार्हपत्ये
जुहोति० ऋषभमाह्वयति० यन्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रथमं हविर्निरूप्यते विजित्यै । साकं
सूर्येणोद्यता निर्वपति० एतद्वाहणान्येव पञ्च हवींषि । एतद्वाहण ऐन्द्राग्नः । अथैष ऐन्द्र-
श्चरुर्भवति० वैश्वकर्मण एककपालो भवति० यद्वैश्वदेवेन यजते । प्रजा एव तद्वजमानः
सृजते । ता वरुणप्रघासैर्वरुणपाशान्मुञ्चति । साकमेधैः प्रतिष्ठापयति । त्र्यम्बकै रुद्रं निरवदयते ।
पितृयज्ञेन सुवर्गं लोकं गमयति । दक्षिणतः प्राचीनावीती निर्वपति० अनादृत्य तत् ।
उत्तरत एवोपवीय निर्वपेत्० अथो यदेव दक्षिणार्धेऽधिश्नयति० सोमाय पितृमते पुरोडाशं
षट्कपालं निर्वपति० पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यो धानाः० बहुरूपा धाना भवन्ति० पितृभ्यो-
ऽग्निष्वातेभ्यो मन्थम्० अभिवान्यायै दुग्धे भवति० अर्ध उपमन्थति० एकयोपमन्थति० दक्षिणो-
पमन्थति० अनारम्योपमन्थति० इमां दिशं वेदिमुद्धन्ति० चतुःसक्तिर्भवति० अखाता भवति०
मध्यतोऽग्निराधीयते० वर्षीयानिष्म इध्माद्भवति व्यावृत्तै । परिश्नयति० समूलं बर्हिर्भवति व्यावृत्तै ।
दक्षिणाऽऽस्तुणाति० त्रिः पर्येति० त्रिः पुनः पर्येति० यत् प्रस्तरं यजुषा गृहीयात् । प्रमायुको
यजमानः स्यात् । यज्ञ गृहीयात् । अनायतनः स्यात् । तूष्णीमेव न्यस्येत्० द्वौ परिधी
परिदधाति० एकैकमनूचीनान्युदाहरन्ति० कशिपु कशिपव्याय । उपबर्हणमुपबर्हण्याय ।
आञ्जनमाञ्जन्याय । अम्यञ्जनमम्यञ्जन्याय । यथाभागमेवैनान् प्रीणाति० अग्नये देवेभ्यः पितृभ्यः
समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इत्याह० एकामन्वाह^१० त्रिरन्वाह० आधारावाधारयति० नाऽऽर्वेयं
वृणीते । न होतारम्० अपबर्हिषः प्रयाजान् यजति० आज्यभागौ यजति० प्राचीनावीती
सोमं यजति० पञ्चकृत्वोऽवद्यति० संततमवद्यति० प्रैवेभ्यः पूर्वया पुरोनुवाक्ययाऽऽह । प्रणयति
द्वितीयया । गमयति याज्यया० दक्षिणतोऽवदाय उदङ्ङतिक्रामति व्यावृत्तै । आस्वधा इत्या-
श्रावयति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावयति^२ । स्वधा नमः इति वषट्करोति^३० सोममग्रे
यजति० सोमं पितृमन्तं यजति० पितृन् बर्हिषदो यजति० पितृनग्निष्वात्तान् यजति० अग्निं कव्य-
वाहनं यजति० अथो यथाऽग्निं स्विष्टकृतं यजति । तादृगेव तत् । एतत्ते तत् ये च त्वामनु इति
तिसृषु सक्तीषु निदधाति० अत्र पितरो यथाभागं मन्दध्वम् इत्याह० उदञ्चो निष्क्रामन्ति०
आहवनीयमुपतिष्ठन्ते० आ तमितोरुपतिष्ठन्ते० सुसंद्दशं त्वा वयम् इत्याह० योजा न्विन्द्र ते
हरी इत्याह० अक्षन्नीमदन्त हि इति गार्हपत्यमुपतिष्ठन्ते० अमीमदन्त पितरः सोम्याः इत्यभि-
प्रपद्यन्ते० अपः परिषिञ्चति० अपबर्हिषावनूयाजौ यजति० चतुरः प्रयाजान् यजति । द्वावनू-

याजौ० न पत्यन्वास्ते । न संयाजयन्ति० प्रतिपूरुषमेककपालान् निर्वपति० एकमतिरिक्तम्० नाऽभिघारयति० एकोलमुकेन यन्ति० इमां दिशं यन्ति० असौ ते पशुः इति निर्दिशेद्यं द्विष्यात्० यदि न द्विष्यात् । आसुस्ते पशुः इति ब्रूयात्० चतुष्पथे जुहोति० अग्निवत्येव जुहोति । मध्यमेन पर्णेन जुहोति० अथो खलु । अन्तमेनैव होतव्यम्० एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया इत्याह० मेषजं गवे इत्याह० अवाऽम्ब रुद्रमदिमहि इत्याह० त्र्यम्बकं यजामहे इत्याह० उक्किरन्ति० मूते कृत्वा सजन्ति० एष ते रुद्र भागः इत्याह निरवस्यै । अप्रतीक्षमायन्ति । अपः परिषिञ्चति० आदित्यं चरुं पुनरेत्य निर्वपति० ॥

तैत्रा [१.५.५]—

यो अस्याः पृथिव्यास्त्वचि । निर्वर्तयत्योषधीः । अग्निरीशान ओजसा । वरुणो धीतिभिः सह । इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह । अग्निस्तिग्मेन शोचिषा । तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्याहितम् । वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निर्वर्तये । सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये । शिवेनाऽस्योपवर्तये । शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ तद्वत् तत्सत्यम् । तद् व्रतं तच्छकेयम् । तेन शकेयं तेन राध्यासम् ॥

तैत्रा [१.४.१०]—

यत् साकमेधैर्यजते । चन्द्रमसमेव तदिदावत्सरमामोति । तस्मात् साकमेधैर्यजमानः । इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत । यत् पितृयज्ञेन यजते । देवानेव तदन्व-वस्यति ।

मैस [१.१०.२-४]—

पूर्णां दर्वे परा पत.... ॥

देहि मे ददामि.... नि ते दधौ ।

अपामित्यमिव संभर को अम्बाऽददते ददत् ॥

अत्र पितरो मादयध्वम् ॥

सुसंद्दशं त्वा वयं वसो मघवन् मन्दिषीमहि । प्र नूनं.... ॥

यदन्तरिक्षं पृथिवीं.... जिहिंसिम ।

अग्निर्नस्तस्मादेनसो गार्हपत्या उन्निनेतु दुष्कृताज्जातवेदाः ॥

अमीमदन्त पितरः ॥ नमो वः पितर इषे नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः

पितरः शुष्माय नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरो यज्जीवं तस्मै

नमो वः पितरो यद्वोरं तस्मै स्वधा वः पितरो नमो नमो वः पितरः ॥

एषा युष्माकं पितर इमा अस्माकं जीवा वो जीवन्त इह सन्तः स्याम ॥

परेतन पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्वैभिः ।

दधथ नो द्रविणं यच्च भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत ॥

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुर्वराय गातुः ।

स प्रत्यङ्ङैर्द्वरुणो मध्वो अग्रं स्वां यत्तनूं तन्वामैरयत ॥

अक्षन्नमीमदन्त.... ॥ मनो न्वाहुवामहे.... ॥ आ न एतु मनः पुनः.... ॥

पुनर्नः पितरो मनः.... ॥

अग्रे तमद्याऽश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा ता ओहैः ॥

आखुं ते रुद्र पशुं करोमि ॥ एष ते रुद्र भागस्तं जुषस्व सह स्वस्त्राऽ-

म्बिकया स्वाहा ॥ अवाऽम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो

वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करत् । यथा नो भूयस्स्करद्यथा नः प्रतरं

तिराद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ भेषजं गवे अश्वाय पुरुषाय भेषजं.... ॥

त्र्यम्बकं यजामहे.... ॥ रुद्रैष ते भागस्तेनाऽवसेन परो मूजवतोऽतीहि

पिनाकहस्तः कृत्तिवासा अवततधन्वा ॥

मैसं [१.१०.१]—

अग्नयेऽनीकवते प्रातरष्टाकपालः । मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यो मध्यंदिने चरुः । मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्यः सर्वासां दुग्धे सायमोदनः । इन्द्रस्य निष्काषः । मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः साकं रश्मिभिः सप्तकपालः । आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्चरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः । सारस्वतश्चरुः । पौष्णश्चरुः । ऐन्द्राग्नौ द्वादशकपालः । इन्द्राय वृत्रघ्ने चरुः । वैश्वकर्माण एककपालः ० षट्कपालः पुरोडाशो धाना मन्यः । प्रतिपुरुषं पुरोडाशो एकश्चाऽधि आदित्यश्चरुः ॥

[१.१०.१४-२०]—

मरुद्भिर्विशाऽग्निनाऽनीकेनोपप्लायत ० स वा एनं तदतपंस्तस्मात्सांतपनाः ० मध्यंदिने चरुर्निरूप्यः ० त एतमोदनमपचन ० तं मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्योऽजुह्वुः ० अपि प्रतिवेशं पचेत् ० न प्रयाजान् यजति नाऽनुयाजान् । न सामिधेनीरन्वाह १ । आज्यभागौ यजति यज्ञतायै । अग्नये समवद्यति ० इडामुपह्वयन्ते ० निष्काषं निदधात्यनुसंतत्यै ० ते देवा एतमिन्द्राय भागं न्यदधुः ० ऋषभमाह्वयन्ति ० रुवथो वषट्कारः ० सवत्सा गावो वसन्ति साकमेधत्वाय । स्यश्नाति साकमेधत्वाय ० यद्व्या जुहोति ० ते मरुतः क्रीडीन् क्रीडतोऽपापश्यन् ० साकं रश्मिभिः

प्रचरति विजित्यै० अथैतानि पञ्च हवींषि संतत्यै । अथैष ऐन्द्राग्रः० अथैष ऐन्द्रः० अथैष वैश्वकर्मणः० अथैष आधार आहुतीनां संतत्यै त्रिंशत्वाय० यद् द्वादशाऽऽहुतयः० यत्षट् षट् संपादयति० यदेष पितृयज्ञः० दक्षिणतो निरुप्यम्० अथो आहुरुभयत एव निरुप्यमिति । उभये हीज्यन्ते । तन्न सूक्ष्मम् । दक्षिणत एव निरुप्यम्० षट्कपालः पुरोडाशो भवति० न वै धानाभिर्न मन्येन यज्ञः । यदेष पुरोडाशस्तेन यज्ञः । अथैता धानाः० न वै धानाभिर्न पुरोडाशेन पितृयज्ञः । यदेष मन्यस्तेन पितृयज्ञः । अभिवान्याया गोर्दुग्धे स्यात्० नेदिष्ठं दक्षिणाऽऽसीना उपमन्यति० एकयोपमन्यति० इक्षुशलाकयोपमन्यति० न प्राच्युद्धत्या० न दक्षिणा० उमे दिशा अन्तरोद्धन्ति० उपमूलं बर्हिर्दाति० परिश्रयन्ति० समन्तं बर्हिः परिस्तृणाति० गार्हपत्ये शृतं कुर्वन्ति यज्ञतायै । ओदनपचनादग्निमाहरन्ति० उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ इत्यन्वाह^१० अनुष्टुभ-मन्वाह० एकामन्वाह० त्रिरन्वाह० न होतारं वृणीते नाऽऽर्षेयम्० अपबर्हिषः प्रयाजान् यजति० दक्षिणतो देवेभ्यो उपव्ययते । अथाऽत्र प्राचीनाववीतेन भव्यं व्यावृत्त्यै । दक्षिणतोऽवदायोदङ्घतिक्रम्य दक्षिणा तिष्ठन् जुहोति० सोममग्रे यजति० यत्सोमं पितृमन्तं यजति० यद्बर्हिषदः० यदग्निष्वात्तान्० यदग्निं कव्यवाहनम्० द्वे वै देवानां याज्यानुवाक्ये । प्राऽण्यया यच्छति गमयत्यन्यया । अथाऽत्र तिस्रः कार्याः० पञ्च कृत्वोऽवद्यति० स्वधा नमः इति वषट् करोति^१० स्रक्तिषु निदधाति० त्रिर्निदधाति० सर्वासु स्रक्तिषु निदधाति० नाऽमुष्यां निदधाति० अथ यत्तस्यां निमार्ष्टि तामेव तेन प्रीणाति । अत्र पितरो माद-यध्वम् इत्युक्त्वा परायन्ति । त आहवनीयमुपतिष्ठन्ते सुसंदृशं त्वा वयम् इति । आ तमितो-स्तिष्ठन्ति० अमीमदन्त पितरः इत्युक्त्वा प्रपद्यन्ते । त ऊर्णां दशां वा न्यस्यन्ति० परेतन पितरः सोम्यासः इत्याह० समन्तमपः परिषिञ्चन् पर्येति० तदपरिषिञ्चन् पुनः पर्येति० यत्प्राजापत्यामृचमन्वाह^१० यत्पङ्क्त्या पुनरायन्ति० मनस्वतीभिरायन्ति० यदेते त्र्यम्बका-स्तेनैवाऽस्य रुद्रा अमीष्टाः प्रीता भवन्ति । एककपाला भवन्ति० अभिघार्या^३ नाभिघार्या^३ इति मीमांसन्ते० अभिघार्या एव० एकोल्मुकं हरन्ति० धूपायद्धरन्ति० एतां दिशं हरन्ति० पराचीनं हरन्ति० आहुं ते रुद्र पशुं करोमि इत्याहुकिरा एकमुपवपति० चतुष्पथे याजयेत्० एष ते रुद्र भागस्तं जुषस्व सह स्वप्ताऽम्बिकया स्वाहा इति० मध्यमपर्णेन जुहोति० आरण्येन जुहोति० अवाऽम्ब रुद्रमदिमहि इति० भेषजं गवे अश्वाय पुरुषाय भेषजम् इति० त्र्यम्बकं यजामहे इति परियन्ति । तत्राऽपि पतिकामा पर्येति । पतिवेदनमेवाऽस्याः । तत्तानूर्ध्वानुदस्य प्रतिलभन्ते० तान् यजमानाय समावपन्ति० या पतिकामा स्यात्तस्यै समावपेयुः० तान् मूते कृत्वा वृक्ष आसञ्चति रुद्रैष ते भागस्तेनाऽवसेन परो मूजवतोऽतीहि पिनाकहस्तः कृत्तिवासा

अवततधन्वा इति० अनपेक्षमाणा आयन्ति० परोगोष्ठं मार्जयन्ते० आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत्
पुनरेत्य गृहेषु ॥

कासं [९.५-७]—

पूर्णां दर्वे परापत.... ॥ देहि मे ददामि ते.... । अपामित्यमिव संभरेष-
मूर्जं शतक्रतो ॥ अग्ने वेहोत्रं वेदूत्यमूर्ध्वोऽध्वरेऽस्था अवतां त्वा द्यावा-
पृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृदिन्द्राय देवेभ्यो भव जुषाणो अस्य
हविषो घृतस्य वीहि स्वाहा ॥ एतत्ते तत ये च त्वाऽनु ॥ एतत्ते
पितामह ये च त्वाऽनु ॥ एतत्ते प्रपितामह ये च त्वाऽनु ॥ अत्र
पितरो मादयध्वम् ॥ सुसंदृशं त्वा वयं.... ॥

परेत पितरस्सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः ।

दत्त्वायाऽस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं.... ॥

अमीमदन्त पितरः ॥

अया विष्ठा.... । स प्रत्युदैद्धरुणं मध्वो अग्नी स्वा यत्तनू तन्वमैरयत ॥

अक्षन्नमीमदन्त.... ॥ नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरश्शुष्माय
नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः क्रूराय
नमो वः पितरो बलाय नमो नमो वः पितरस्स्वधा वः पितरः ॥ याऽत्र
पितरस्स्वधा यत्र यूयं स्थ सा शुष्मासु । तया यूयं यथाभागं मादयध्वम् ।
येह पितर ऊर्ग्यत्र वयं स्मस्ताऽस्मासु तस्यै वयं ज्योग्जीवन्तो भूयास्म ॥
मनो न्वाहुवामहे.... ॥ आ न एतु मनः पुनः.... ॥ पुनर्नः पितरो मनः.... ॥

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाऽजरम् ।

यद्ध स्या ते पनीयसी समिहीदयति द्यवि । इषीं स्तोतृभ्य आभर ॥

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यत्पितरं मातरं वा जिहिंसिम ।

अग्निर्नस्तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु चक्रम यानि दुष्कृता ॥

रुद्राऽऽखुं ते पशुं करोमि तेन त्वा पशुभ्यो निरवदय ॥ एष ते रुद्र
भागस्तह स्वस्ताऽम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ॥

अवाऽम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।

यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥

भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय सुगं भेषाय मेत्यै ।

अथो अस्मभ्यं भेषजं सुभेषजं यथाऽसति ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं रयिपोषणम् । उर्वारुकमिव..... ॥

भगस्स्थ भगस्य वो लप्सीय ॥ एष ते रुद्र भागस्तेनाऽवसेन परो मूज-
वतोऽतीहि कृत्तिवासाः पिनाकहस्तोऽवततधन्वा ॥ एधोऽस्येधिषीमहि ॥
समिदसि समेधिषीमहि ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रातरष्टाकपालः । मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यो मध्यंदिने चरुः । मरुद्भ्यो
गृहमेधेभ्यस्सर्वासां दुग्धे सायमोदनः । निष्काषो निधीयते संतत्यै० मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रात-
स्सप्तकपालस्साकी सूर्यस्य रश्मिभिः । आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्चरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः ।
सारस्वतश्चरुः । पौष्णश्चरुः । ऐन्द्राग्न एकादशकपालः । ऐन्द्रश्चरुः । वैश्वकर्मण एककपालः०
सोमाय पितृमत आज्यम् । पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यश्चष्टकपालः पुरोडाशः । पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यो
धानाः । अग्नये कव्यवाहनाय मन्यः ॥

कपिसं [८.८-१०]—

पूर्णां दर्विं परापत..... ॥ दधे । निहारमिन्नि मे हर निहारं निहरामि
ते..... ॥ --- अया विष्ठा..... । स प्रत्यङ्ङैद्वरणं..... ॥ अक्षन्नमीमदन्त..... ॥
नमो वः पितरो मन्यवे..... नमो वः पितरो बलाय नमो वः पितरो यत्क्रूरं
तस्मै नमो नमो वः पितरः स्वधा वः पितरो याऽत्र..... भूयास्म ॥ ---
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां..... गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरितानि यानि चक्रुः ॥
रुद्राऽऽखुं ते पशुं करोमि ॥ एष ते रुद्र भागः..... ॥ अवाऽम्ब रुद्र-
मदिमहि..... ॥ भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय सुभगं..... ॥ त्र्यम्बकं यजा-
महे..... ॥ भगोऽसि । भगस्य ते लप्सीय ॥ ---

--- मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातः सप्तकपालः पुरोडाशः । आग्नेयोऽष्टाकपालः ; --- ॥

वासं [३.४९-६१]—

पूर्णां दर्विं परा पत..... ॥ देहि मे ददामि..... दधे । निहारं च हरासि
मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥

अक्षन्नमीमदन्त..... ॥

सुसंष्टं त्वा वयं मधवन् वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णवन्धुरः..... ॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥

आ न एतु मनः पुनः..... ॥ पुनर्नः पितरो मनः..... ॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राऽम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ॥

एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।

यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्ट्यै ॥

त्र्यम्बकं यजामहे.... ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय माऽमुतः ॥

एतत्ते रुद्राऽवसं तेन परो मूजवतोऽस्तीहि ।

अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽस्तीहि ॥

शब्रा [२.५.३-४; २.६.१-३]—

अथैतैः साकमेधैः० तस्माद्वा एष एतैश्चतुर्थे मासि यजते । स वै द्व्यहमनूचीनाहं यजते । स पूर्वैश्चरग्नयेऽनीकवतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपति० अथ मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यो मध्यदिने चरुं निर्वपति० अथ मरुद्भ्यो गृहमेधिम्यः शाखया वत्सानपाकृत्य पवित्रवति संदोह्य तं चरुं श्रपयति० तद्यक्षीरौदनो भवति० तस्याऽऽवृत् । सैव स्तीर्णां वेदिर्भवति या मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यः । तस्यामेव स्तीर्णायां वेदौ परिधींश्च शकलांश्चोपनिदधति । तथा संदोह्य चरुं श्रपयति । श्रपयित्वाऽभिघार्योद्वासयति । अथ द्वे पिशीले वा पात्र्यौ वा निर्णेनिजति । तयोरेनं द्वेधोद्धरन्ति । तयोर्मध्ये सर्पिरासेचने कृत्वा सर्पिरासिञ्चति । सुवं च सुचं च संमार्ष्टि । अथैता ओदनावादायोदैति । सुवं च सुचं चाऽऽदायोदैति । स इमामेव स्तीर्णां वेदिमभिमृश्य परिधीन् परिधाय यावतः शकलान् कामयते तावतोऽभ्यादधाति । अथैता ओदनावासादयति । सुवं च सुचं चाऽऽसादयति । उपविशति होता होतृषदने । सुवं च सुचं चाऽऽददान आह अग्नये-ऽनुब्रूहि इत्याग्नेयमाज्यभागम् । स दक्षिणस्यौदनस्य सर्पिरासेचनाच्चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह सोमाया-ऽनुब्रूहि इति सौम्यमाज्यभागम् । स उत्तरस्यौदनस्य सर्पिरासेचनाच्चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह सोमं यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह मरुद्भ्यो गृहमेधिम्योऽनुब्रूहि इति । स दक्षिणस्यौदनस्य सर्पिरासेचनाच्चत आज्यमुपस्तृणीते । तस्य द्विरवद्यति । अथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभिघारयति । अतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो गृहमेधिनो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । स उत्तर-

स्यौदनस्य सर्पिरासेचनात्तत्त आज्यमुपस्तृणीते । तस्य द्विरवद्यति । अथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभि-
 धारयति । अतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं स्विष्टकृतं यज इति । वषट्कृते
 जुहोति । अथेडामेवाऽवद्यति न प्राशिन्नम् । उपहूय मार्जयन्ते । एतन्वेकमयनम् । अथेदं
 द्वितीयम् । सैव स्तीर्णा वेदिर्भवति या मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यः । तस्यामेव स्तीर्णायां वेदौ परि-
 धींश्च शकलांश्चोपनिदधति । तथा संदोह्य चरुं श्रपयति । नेदेव^१ प्रतिवेशमाज्यमधिश्रयति ।
 श्रपयित्वाऽभिघार्योद्वास्याऽनक्ति । स्थाल्यामाज्यमुद्वासयति । सुवं च सुचं च संमार्ष्टि । अथैतं
 सोखमेव चरुमादायोदैति । स्थाल्यामाज्यमादायोदैति । सुवं च सुचं चाऽऽदायोदैति । स इमामेव
 स्तीर्णा वेदिमभिमृश्य परिधीन् परिधाय यावतः शकलान् कामयते तावतोऽभ्यादधाति ।
 अथैतं सोखमेव चरुमासादयति । स्थाल्यामाज्यमासादयति । सुवं च सुचं चाऽऽसादयति ।
 उपविशति होता होतृप्रदने । सुवं च सुचं चाऽऽददान आह अग्नयेऽनुब्रूहि इत्याग्नेयमाज्य-
 भागम् । स स्थाल्यै चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं यज
 इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह सोमायाऽनुब्रूहि इति सौम्यमाज्यभागम् । स स्थाल्या
 एव चतुराज्यस्याऽवदायाऽतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह सोमं यज इति । वषट्कृते
 जुहोति । अथाऽऽह मरुद्भ्यो गृहमेधिम्योऽनुब्रूहि इति । स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य
 चरोद्विरवद्यति । अथोपरिष्ठादाज्यस्याऽभिधारयति । प्रत्यनक्त्यवदाने । अतिक्रामति । अति-
 क्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो गृहमेधिनो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह अग्नये
 स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य चरोः सकृदवद्यति । अथो-
 परिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिधारयति । न प्रत्यनक्त्यवदानम् । अतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्या-
 ऽऽह अग्निं स्विष्टकृतं यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथेडामेवाऽवद्यति न प्राशिन्नम् ।
 उपहूय प्राश्नन्ति । यावन्तो गृह्या हविरुच्छिष्टाशाः स्युस्तावन्तः प्राश्नीयुः । अथो अप्यूत्विजः
 प्राश्नीयुः । अथो अप्यन्ये ब्राह्मणाः प्राश्नीयुः यदि बहुरोदनः स्यात् । अथैतामनिरशितां
 कुम्भीमपिधाय निदधति पूर्णदर्वाय । मातृभिर्वत्सान्समवार्जन्ति० यवावैतां रात्रिमग्निहोत्रं
 जुहोति । निवान्यां प्रातर्दुहन्ति पितृयज्ञाय । अथ प्रातर्दुहे वाऽहुते वा यतरथा कामयेत
 सोऽस्या अनिरशितायै कुम्भ्यै दव्योपहन्ति पूर्णां दर्वि परापत.... इषमूर्जं शतक्रतो इति ।
 यथा पुरोनुवाक्या एवमेषा० अथ ऋषभमाह्वयितवै ब्रूयात् । स यदि रुयात् स वषट्कार इत्यु हैक
 आहुः । तस्मिन् वषट्कारे जुहुयादिति० यद्यु न रुयात् ब्राह्मण एव दक्षिणत आसीनो ब्रूयात्
 जुहुधि इति० स जुहोति देहि मे ददामि ते.... निहराणि ते स्वाहा इति । अथ मरुद्भ्यः
 क्रीडिभ्यः सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति० ॥

अथाऽतो महाहविष एव । तद्यथा महाहविषस्तथो तस्य० तस्याऽऽवृत् । उप-
किरन्त्युत्तरवेदिम् । गृह्णन्ति पृषदाज्यम् । मन्यन्त्यग्निम् । नवप्रयाजं भवति नवानुयाजम् ।
त्रीणि समिष्टयजूंषि भवन्ति । अथैतान्येव पञ्च हवींषि भवन्ति । स यदाग्नेयोऽष्टाकपालः
पुरोडाशो भवति० अथ यत्सौम्यश्चरुर्भवति० अथ यत्सावित्रो द्वादशकपालो वाऽष्टाकपालो
वा पुरोडाशो भवति० अथ यत्सारस्वतश्चरुर्भवति० अथ यत्पौष्णश्चरुर्भवति० अथैन्द्राग्नौ
द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति० अथ माहेन्द्रश्चरुर्भवति० अथ वैश्वकर्म्मण एककपालः पुरोडाशो
भवति० ॥

तस्मात् पितृयज्ञो नाम० अथ यदेष एतेन यजते० स पितृभ्यः सोमवद्भ्यः
षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति सोमाय वा पितृमते० अथ पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः । अन्वाहार्य-
पचने धानाः कुर्वन्ति । ततोऽर्धाः पिंषन्ति । अर्धा इत्येव धाना अपिष्टा भवन्ति ।
ता धानाः पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः । अथ पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः । निवान्यायै दुग्धे सकृदुप-
मथित एकशलाकया मन्यो भवति० स जघनेन गार्हपत्यं प्राचीनावीती भूत्वा दक्षिणाऽऽसीन
एतं षट्कपालं पुरोडाशं गृह्णाति । स तत एवोपोत्यायोत्तरेणाऽन्वाहार्यपचनं दक्षिणा
तिष्ठन्नवहन्ति । सकृत्फलीकरोति० स दक्षिणैव दृषदुपले उपदधाति । दक्षिणार्धे गार्हपत्यस्य
षट् कपालान्युपदधाति० अथ दक्षिणेनाऽन्वाहार्यपचनं चतुःस्रक्तिं वेदिं करोति । अवान्तर-
दिशोऽनु स्रक्तीः करोति० तन्मध्येऽग्निं समादधाति० स तत एव प्राक् स्तम्बयजुर्हरति ।
स्तम्बयजुर्हत्वा अथेत्येवाऽग्रे परिगृह्णाति, अथेति अथेति पूर्वेण परिग्रहेण परिगृह्य लिखति ।
हरति यद्भार्यं भवति । स तथैवोत्तरेण परिग्रहेण परिगृह्णाति । उत्तरेण परिग्रहेण परिगृह्य
प्रतिमृज्याऽऽह प्रोक्षणीरासादय इति । आसादयन्ति प्रोक्षणीः । इध्मं बर्हिरुपसादयन्ति । सुचः
संमार्ष्टि । आज्येनोदैति । स यज्ञोपवीती भूत्वाऽऽज्यानि गृह्णाति । तदाहुर्द्विरुपभृति गृहीयात् ।
द्वौ ह्यत्राऽनुयाजौ भवत इति । तद्वष्टावेव कृत्व उपभृति गृहीयात्० आज्यानि गृहीत्वा स
पुनः प्राचीनावीती भूत्वा । प्रोक्षणीरर्च्युरादत्ते । स इध्ममेवाग्रे प्रोक्षति । अथ वेदिम् ।
अथाऽस्मै बर्हिः प्रयच्छन्ति । तत्पुरस्ताद्ग्रन्थि आसादयति । तत्प्रोक्ष्य उपनिनीय विस्रंशस्य
ग्रन्थि न प्रस्तरं गृह्णाति० अथ संनहनमनुविस्रंशस्य अपसलवि त्रिः परिस्तृणन् पर्येति ।
सोऽपसलवि त्रिः परिस्तीर्य यावत्प्रस्तरभाजनं तावत्परिशिनष्टि । अथ पुनः प्रसलवि त्रिः
पर्येति० स दक्षिणैव परिधीन् परिदधाति । दक्षिणा प्रस्तरं स्तृणाति । नाऽन्तर्दधाति
विधृती० स तत्र जुहूमासादयति । अथ पूर्वामुपभृतम्, अथ ध्रुवाम्, अथ पुरोडाशम्, अथ
धानाः, अथ मन्यमासाद्य हवींषि संमृशति । ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा इत्याद्यजमानश्च
ब्रह्मा च पश्चात्परीतः । पुरस्तादग्नीत् । तेनोपांशु चरन्ति० परिवृते चरन्ति० अथेध्ममभ्या-
दधदाह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । स एकामेव होता सामिधेनीं त्रिरन्वाह० सोऽन्वाह

उशन्तस्त्वा निधीमद्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितृन् हविषे अत्तवे इति । अथ अग्निमावह, सोममावह, पितृन् सोमवत आवह, पितृन् बर्हिषद आवह, पितृन् अग्निष्वात्तानावह, देवाँ आज्यपाँ आवह, अग्निं होत्रायाऽऽवह स्वं महिमानमावह इत्यावाहोपविशति । अथाऽऽश्राव्य न होतारं प्रवृणीते० सीद होतः इत्येवाऽऽह । उपविशति होता होतृषदने । उपविश्य प्रसूति । प्रसूतोऽध्वर्युः सुचावादाय प्रत्यङ्ङतिक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह समिधो यज इति । सोऽपबर्हिषश्चतुरः प्रयाजान् यजति० अथाऽऽज्यभागाम्यां चरन्ति । आज्यभागाम्यां चरित्वा ते सर्व एव प्राचीनावीतिनो भूत्वा एतैर्हविर्भिः^१ प्रचरिष्यन्त इत्याद् यजमानश्च ब्रह्मा च पुरस्तात्परीतः । पश्चादग्नीत् । तदुताऽऽश्रावयन्ति ओँ स्वधा इति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावणम् । स्वधा नमः इति वषट्कारः । तद् हुवाचाऽऽसुरिः । आश्रावयेयुरेव प्रत्याश्रावयेयुर्वषट्कुर्युः० अथाऽऽह पितृभ्यः सोमवद्भ्योऽनुब्रूहि इति । सोमाय वा पितृमते । स^२ द्वे पुरोनुवाक्ये अन्वाह० स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य पुरोडाशस्याऽवद्यति । स तेनैव सह धानानाम् । तेन सह मन्यस्य । तत्सकृदवदधाति । अथोपरिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयति । प्रत्यनक्त्यवदानानि । नाऽतिक्रामति । इत एवोपोत्थाय आश्राव्याऽऽह पितृन्सोमवतो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह पितृभ्यो बर्हिषद्भ्योऽनुब्रूहि इति । स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽऽसां धानानामवद्यति । स तेनैव सह मन्यस्य । तेन सह पुरोडाशस्य । तत्सकृदवदधाति । अथोपरिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयति । प्रत्यनक्त्यवदानानि । नाऽतिक्रामति । इत एवोपोत्थाय आश्राव्याऽऽह पितृन् बर्हिषदो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्योऽनुब्रूहि इति । स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य मन्यस्याऽवद्यति । स तेनैव सह पुरोडाशस्य । तेन सह धानानाम् । तत्सकृदवदधाति । अथोपरिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयति । प्रत्यनक्त्यवदानानि । नाऽतिक्रामति । इत एवोपोत्थायाऽऽश्राव्याऽऽह पितृन् अग्निष्वात्तान् यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह अग्नये कव्यवाहनायाऽनुब्रूहि इति । तत्स्विष्टकृते० स उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य पुरोडाशस्याऽवद्यति । स तेनैव सह धानानाम् । तेन सह मन्यस्य । तत्सकृदवदधाति । अथोपरिष्ठाद् द्विराज्यस्याऽभिघारयति । न प्रत्यनक्त्यवदानानि । नाऽतिक्रामति । इत एवोपोत्थायाऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं कव्यवाहनं यज इति । वषट्कृते जुहोति० तद्वैके एतमेव होत्रे मन्यमादधति । तं होतोपहूयाऽवैव जिघ्रति । तं ब्रह्मणे प्रयच्छति । तं ब्रह्माऽवैव जिघ्रति । तमग्नीध्रे प्रयच्छति । तमग्नीदवैव जिघ्रति । एतन्वैवैतत्कुर्वन्ति । यथा त्वेवेतरस्य यज्ञस्येडाप्राशित्रं समवद्यन्ति एवमेवैतस्याऽपि समवद्येयुः । तामुपहूयाऽवैव जिघ्रन्ति । न प्राश्नन्ति । प्राशितव्यं त्वेव वयं मन्यामह इति ह स्माऽऽहाऽऽसुरिर्यस्य कस्य चाऽग्नौ जुह्वतीति । अथ

१. 'एतैर्वै हविर्भिः' इति पाठान्तरम् २. होता

यतरो दास्यन् भवति यद्यध्वर्युर्वा यजमानो वा स उदपात्रमादायाऽपसलवि त्रिः परिषिञ्चन् पयैति । स यजमानस्य पितरमवनेजयति असाववनेनिक्ष्व इति । असाववनेनिक्ष्व इति पितामहम् । असाववनेनिक्ष्व इति प्रपितामहम् । अथाऽस्य पुरोडाशस्याऽवदाय सव्ये पाणौ कुरुते । धानानामवदाय सव्ये पाणौ कुरुते । मन्यस्याऽवदाय सव्ये पाणौ कुरुते । स येमामवान्तरदिशमनु सक्तिः तस्यां यजमानस्य पित्रे ददाति असावेतत्ते इति । अथ येमामवान्तरदिशमनु सक्तिः तस्यां यजमानस्य पितामहाय ददाति असावेतत्ते इति । अथ येमामवान्तरदिशमनु सक्तिः तस्यां यजमानस्य प्रपितामहाय ददाति असावेतत्ते इति । अथ येमामवान्तरदिशमनु सक्तिः तस्यां निमृष्टे अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् इति । ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा उदञ्च उपनिष्कम्य आहवनीयमुपतिष्ठन्ते । ऐन्द्रीभ्यामाहवनीयमुपतिष्ठन्ते । इन्द्रो ह्याहवनीयः । अक्षन्नमीमदन्त हरी ॥ सुसंद्दशं त्वा वयं हरी इति । अथ प्रतिपरेत्य गार्हपत्यमुपतिष्ठन्ते मनो न्वाह्वामहे मन्मभिः ॥ आ न एतु दृशे ॥ पुनर्नः पितरो सचेमहि इति । अथ यतरो ददाति । स पुनः प्राचीनावीती भूत्वाऽभिप्रपद्य जपति अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत् इति । अथोदपात्रमादाय पुनः प्रसलवि त्रिः परिषिञ्चन् पयैति । स यजमानस्य पितरमवनेजयति असाववनेनिक्ष्व इति । असाववनेनिक्ष्व इति पितामहम् । असाववनेनिक्ष्व इति प्रपितामहम् । अथ नीविमुदवृह्य नमस्करोति । षट्कृत्वो नमस्करोति । गृहान्नः पितरो दत्त इति । ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा अनुयाजाभ्यां प्रचरिष्यन्तः इत्याद्यजमानश्च ब्रह्मा च पश्चात्परीतः । पुरस्तादग्नीत् । उपविशति होता होतृषदने । अथाऽऽह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामि समिधमाधायाऽग्निमग्नीत्संमृड्ढि इति । सुचावादाय प्रत्यङ्ङितक्रामति । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह देवान् यज इति । सोऽपबर्हिषौ द्वावनुयाजौ यजति । अथ सादयित्वा सुचौ व्यूहति । सुचौ व्यूह्य परिधीन्समज्य परिधिमभिपद्याऽऽश्राव्याऽऽह इषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय इति । सूक्तवाकं होता प्रतिपद्यते । नाऽध्वर्युः प्रस्तरं समुल्लुम्पतीत्येवोपास्ते यदा होता सूक्तवाकमाह । अथाऽग्नीदाह अनुप्रहर इति । स न किञ्चनाऽनुप्रहरति । तूष्णीमेवाऽऽत्मानमुपस्पृशति । अथाऽऽह संवदस्व इति । अगानग्नीत् । अगन् । श्रावय । श्रौषद् । स्वगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः शंयोर्ब्रूहि इति । उपस्पृशत्येव परिधीन् । नाऽनुप्रहरति । अथैतद्बर्हिर्नुसमस्यति परिधींश्च । तद्धैके हविरुच्छिष्टमनुसमस्यन्ति । तदु तथा न कुर्यात् । तस्मादपो वैवाऽभ्यवहरेयुः प्राश्नीयुर्वा ॥

० यत् त्र्यम्बकैरयजन्त । अथ यदेष एतैर्यजते । ते वै रौद्रा भवन्ति । एककपाला भवन्ति । ते वै प्रतिपुरुषं यावन्तो गृह्याः स्युस्तावन्त एकेनाऽतिरिक्ता भवन्ति । स जघनेन गार्हपत्यं यज्ञोपवीती भूत्वोदङ्ङासीन एतान् गृह्णाति । स तत एवोपोत्थाप्योदङ्ङ तिष्ठन्नवहन्ति ।

उदीच्यौ दृषदुपले उपदधाति । उत्तरार्धे गार्हपत्यस्य कपालान्युपदधाति० ते वा अक्ताः स्युः० त उ वा अनक्ता एव स्युः० तान्त्सार्द्धं पात्र्यां समुद्रास्य अन्वाहार्यपचनादुल्मुकमादायोदङ् परेत्य जुहोति० पथि जुहोति० चतुष्पथे जुहोति० पलाशस्य पलाशेन मध्यमेन जुहोति० स सर्वेषामेवाऽवद्यति । एकस्यैव नाऽवद्यति य एषोऽतिरिक्तो भवति । स जुहोति एष ते रुद्र भागः सह स्वप्ताऽम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा इति० अथ य एष एकोऽतिरिक्तो भवति तमाखूत्कर उपकिरति एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः इति० अथ पुनरेत्य जपन्ति अव रुद्रमदीमहाव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् । मेषजमसि मेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय मेषजं सुखं मेषाय मेघ्यै इति० अथाऽपसलवि त्रिः परियन्ति सव्यानूरुनुपाघ्नानाः । त्र्यम्बकं यजामहे माऽमृतात् इति० तदु हाऽपि कुमार्यः परीयुः भगस्य भजामहे इति० तासामुताऽऽसां मन्त्रोऽस्ति त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय माऽमुतः इति० अथ पुनः प्रसलवि त्रिः परियन्ति दक्षिणानूरुनुपाघ्नानाः एतेनैव मन्त्रेण० अथैतान् यजमानोऽञ्जलौ समोप्य ऊर्ध्वानुदस्यति यथा गौर्नोदाप्नुयात्० तान् विलिप्सन्त उपस्पृशन्ति० तान् द्वयोर्मूतकयोरुपनह्य वेणुयष्ट्यां वा कुपे वा उभयत आबध्य उदङ् परेत्य यदि वृक्षं वा स्थाणुं वा वेणुं वा कल्मीकं वा विन्देत्तस्मिन्नासजति एतत्ते रुद्राऽवसं तेन परो मूजवतोऽतीहि इति० अवततधन्वा पिनाकावसः इति । अहिंसनः शिवोऽतीहि इत्येवैतदाह । कृत्तिवासाः इति० अथ दक्षिणान् बाहूनन्वावर्तन्ते । तेऽप्रतीक्षं पुनरायन्ति । पुनरेत्याऽप उपस्पृशन्ति० अथ केशश्मश्रूष्वा समारोह्याऽग्नी उदवसायेव ह्येतेन यजते० गृहानित्वा निर्मध्याऽग्नी पौर्णमासेन यजते० ॥

[२.६.४.७]—अथ यत्साकमेधैर्यजते० तत् त्र्येनी शलली भवति । लोहः क्षुरः । तेन परिवर्तयते ॥

वाकास [३.६-८]—

पूर्णां दर्विं परा पत ॥ नि मे धेहि नि ते दधौ । निहारं निहरामि ते निहारं निहरासि मे स्वाहा ॥ --- मनो न्वाहुवामहे ॥ --- एतेन रुद्राऽवसेन परो मूजवतः.... अहिंसन्नश्शिवश्शान्तोऽतीहि ॥

काशत्रा [१.५; १.६.१; २; ४]—

.... परिधींश्चैव शकलांश्चोपनिदधति१ । सुवं चो एव सुचं च संमार्ष्टि । अथ द्वे पिशीले वा पात्र्यौ वा निर्णिज्य तयोरेतं मेधौदनमुद्धरति । तयोः सर्पिरासेचनं कृत्वा सर्पिरासिष्य । तावादायोदाव्रति । स तामेव वेदिं स्तीर्णामभिमृश्य परिधीन् परिधाय यावतः

कामयते शकलां स्तावतोऽभ्यादधाति । अथाऽऽह मरुद्भयो गृहमेधिम्योऽनुब्रूहि इति । सोऽस्य दक्षिणस्यौदनस्य तत एवाऽऽज्यमुपस्तृणीते । ततो द्विरवद्यति । अभिघारयति । न प्रत्यनक्त्यवदाने । अतिक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो गृहमेधिनो यज इति । वषट्कृते जुहोति । अथाऽऽह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । सोऽस्योत्तरस्यौदनस्य तत एवाऽऽज्यमुपस्तृणीते । ततो द्विरवद्यति । अभिघारयति । न प्रत्यनक्त्यवदाने एतन्वेकमयनम् । अथ द्वितीयम् । अथाऽऽह मरुद्भयो गृहमेधिम्योऽनुब्रूहि इति । उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य चरोद्विरवद्यति । अभिघारयति । न प्रत्यनक्त्यवदाने । अथाऽऽह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । उपस्तृणीत आज्यम् । अथाऽस्य चरोः सकृदवद्यति । द्विरवद्यति । न प्रत्यनक्त्यवदानम् सुचः संमार्ष्टि^१ । नाऽत्र पत्नी^२ संनहति । अथाऽऽज्यानि ग्रहीष्यन् यज्ञोपवीती भवति । अथ धाना अथ करम्भमासाद्य^३ स्वं महिमानमावहान्ववह जातवेदः सुयजा च यज इति । आधारावाधार्य अध्वर्युराश्राव्य न होतारं प्रवृणीते होतोपहूयाऽवजिघ्रति । तमग्नीधे प्रयच्छन्ति । तमग्नीदवजिघ्रति । तं ब्रह्मणे प्रयच्छन्ति । तं ब्रह्माऽवजिघ्रति ॥

शांत्रा [५.५-७]—

ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्साकमेधाः० अथ यदग्निमनीकवन्तं प्रथमं देवतानां यजति० अथ यन्मध्यंदिने मरुतः सांतपनान् यजति० अथ यत्सायं गृहमेधीयेन चरन्ति० तस्मात् पोषवन्तावाज्यभागौ यजति० अथ यत्प्रातः पूर्णदर्वेण चरन्ति० अथ यन्मरुतः क्रीडिनो यजति० अथ यदग्निं प्रणयन्ति । यन्मध्यते तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्दिन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा अष्टौ हवींषि स्विष्टकृन्नवमम्० समानानि षट् संचराणि हवींष्यैन्द्राग्रान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्महेन्द्रमन्ततो यजति० अथ यद्वैश्वकर्मण एककपालः० अथ यदृषभं ददाति० अथ यदपराद्धे पितृयज्ञेन चरन्ति० अथ यदेकां सामिधेनीमन्वाह० सा वा अनुष्ठुम्भवति० अथ यद्यजमानस्याऽऽर्वेयं नाऽऽह० अथैतं निगदमन्वाह तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ सोमं पितृमन्तं पितृन् वा सोमवतः, पितृन् बर्हिषदः, पितृन् अग्निष्वात्तानित्यावाहयति० अथ यदग्निं कव्यवाहनमावाहयति० न हैके स्वं महिमानमावाहयन्ति० आवाहयेदिति त्वेव स्थितम्० अथ यत्प्रयाजा-नुयाजेभ्यो बर्हिष्मन्ता उत्सृजति० अथ यज्जीवनवन्तावाज्यभागौ यजति० अथ यत्तिस्रस्तिस्र एकैकस्य हविषो भवन्ति० अथो देवकर्मणैवैतत्पितृकर्म व्यावर्तयति० आह्वयत्येवैनान् प्रथमया द्वितीयया गमयति त्रैव तृतीयया यच्छति । अथ यदग्निं कव्यवाहनमन्ततो यजति० अथ यदिडामुपहूयाऽवघ्राय न प्राश्नन्ति० अथ यदध्वर्युः पितृभ्यो ददाति० अथ यत्पवित्रवति

मार्जयन्ते० अथ यद्वचं जपन्ति० अथ यदुदञ्चः परेत्य गार्हपत्याहवनीया उपतिष्ठन्ते० अथ यत्प्राञ्च उपनिष्कम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठन्ते० अथ यत्सूक्तवाके यजमानस्य नाम न गृह्णाति० अथ यत्पत्नीसंयार्जैर्न चरन्ति० अथ यदुदञ्चः परेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति० अथ यदन्तत इष्ट्वेष्टया यजते० अथ यत्पुरस्तात्पौर्णमासेन यजते० ॥

असं—

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरुची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आऽमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥ ३.३.१
सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुष्टन । अस्माकोती रिशादसः ॥ ७.८२.१
तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनास्रग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्तव्हसः ॥ ४.२७.७
पूर्णां दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥ ३.१०.७
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आबवृत्रन्तसदनाद्यतस्याऽऽदिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥ ६.२२.१
ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्रयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्चकर्मा ॥ २.३५.१
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्....॥१८.१.५१॥ उपहूता नः पितरः सोम्यासः
....॥ १८.३.४५
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयि च नः सर्ववीरं दधात ॥ १८.३.४४
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ १८.४.७१
अया विष्ठा जनयन् कर्बराणि स हि घृणिरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद्वरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥ ७.३.१
उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिषतस्य मीढुषः ॥ १३.२.१
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ३.२१.७
यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृषे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ ७.९२.१

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ठयो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययेतान् ममाऽमित्रान् वि विध्यतु ॥ १.१९.३

अपैसं—

अचिक्रदत् स्वपा इह भवदग्रे दम्भ[य] रोदसी उरूची ।
आऽमुं नय नमसा रातहव्यं युञ्जन्ति सुप्रजसं पञ्च जनाः ॥ २.७४.१
तिग्ममनीकं विततं.... ॥४.३५.७॥ पूर्णा दर्वे संपृञ्चतीषमूर्जं न आ
भर ॥ १.१०६.५ ॥ कृष्णं नियानं व्योदुः^१ ॥ १६.७९.१३
ये भक्षयन्तः दुरिष्टा स्विष्टं तद्विश्वकर्मा कृणोतु ॥ १.८८.३ ॥ अया
विष्टा.... । स प्रत्युदैद्धरणे मध्वो अग्रं स्वा यत्तनू तन्वामैरयन्त ॥ २०.२.१॥
उदस्य केतवो दिवि.... ॥ १८.२०.५ ॥ दिवं पृथिवीमनु.... ॥ ३.१२.७
यो रुद्रो अग्रौ.... अस्त्वद्य ॥ २०.३२.६
यः समानो योऽसमानो [अ]मित्रो नो जिघांसति ।
रुद्रः शरव्यया तानमित्रान्नो वि विध्यतु ॥ १.२०.३

गोत्रा [२.१.२३-२५]—

ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्साकमेधाः० अथ यदग्निमनीकवन्तं प्रथमं देवतानां यजति०
अथ यन्मध्यदिने मरुतः सांतपनान् यजति० अथ यत् सायं गृहमेधीयेन चरन्ति० अथ
यच्छ्रुवो भूते गृहमेधीयस्य निष्काशमिश्रेण पूर्णदर्वेण चरन्ति० अथ यत् प्रातर्मरुतः क्रीडिनो
यजति० अथ यदग्निं प्रणयन्ति यमेवाऽमुं वैश्वदेवे मन्यन्ति तमेव तत् प्रणयन्ति । यन्मध्यते
तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्दन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तेषामुक्तं
ब्राह्मणम् । अथ यन्नव प्रयाजा नवाऽनुयाजा अष्टौ हवींषि समानानि त्वेव षट् संचराणि
हवींषि भवन्त्यैन्द्राग्नान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्महेन्द्रमन्ततो यजति० अथ यद्वैश्व-
कर्षण एककपालः० अथ यदृषभं ददाति० अथ यदपराह्णे पितृयज्ञेन चरन्ति० अथ यदेकां
सामिधेनीं त्रिरन्वाह^२० अथ यद्यजमानस्याऽऽर्षेयं नाऽऽह^२० अथ यत् सोमं पितृमन्तं पितृन्
वा सोमवतः, पितृन् बर्हिषदः, पितृन्ग्निष्वात्तान् इत्यावाहयति । न हैके स्वं महिमानमावाहयन्ति
यजमानस्यैष महिमेति वदन्तः । आवाहयेदिति त्वेव स्थितम् । अग्नेर्ह्येष महिमा भवति ।
ओं स्वधा इत्याश्रावयति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावयति० अथ यत् प्रयाजानुयाजेभ्यो
बर्हिष्मन्ताबुद्धरति० ते वै षट् संपद्यन्ते० अथ यज्जीवनवन्तावाज्यभागौ भवतः० अथ यदे-

कैकस्य हविषस्तिस्त्रस्तिस्रो याज्या भवन्ति० अथो देवयज्ञमेवैतत् पितृयज्ञेन व्यावर्तयति । अथो दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञः । तमेवैतदुदक्संस्थं कुर्वन्ति । अथ यदग्निं कव्यवाहन-
मन्ततो यजति० अथ यदिडामुपहूयाऽवघ्राय न प्राश्नन्ति० अथ यत् सूक्तवाके यजमानस्या-
ऽऽशिषोऽन्वाह^१० अथ यत् पत्नीं न संयाजयन्ति० अथ यत्पवित्रवति मार्जयन्ते० अथ
यदध्वर्युः पितृभ्यो निपृणाति० अथ यत् प्राञ्चोऽभ्युक्तम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठन्ते० अथ
यदक्षिणाञ्चोऽभ्युक्तम्याऽग्नीनुपतिष्ठन्ते० अथ यदुदञ्चोऽभ्युक्तम्य त्रैयम्बकैर्यजन्ते० अथ यदन्तत
आदित्येष्टया यजति० अथ यत् परस्तात्पौर्णमासेन यजते० ॥

साकमेधपर्वहौत्रम्

ऋसं—

^१सैनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।

अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ २.९.६

^२अग्निः प्रत्नेन मन्मना.... ॥ ८.४४.१२ ॥ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं....
॥ १.९१.११

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ७.५९.९

यो नो मरुतो अभि दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।

द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ७.५९.८

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विश्व जन्तवः ।

शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोळ्ळवे ॥ १.४५.६

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्चं विभावसो ।

महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्राजा उदीरते ॥ ५.२५.७

^३अग्निना रयिमश्रवत्.... ॥ १.१.३ ॥ गयस्कानो अमीवहा.... ॥ १.९१.१२

गृहमेधास आ गत मरुतो माऽप भूतन ।

युष्माकोती सुदानवः ॥ ७.५९.१०

प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।

सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ ७.५६.१४

प्रेद्धो अग्ने.... ॥ ७.१.३ ॥ इमो अग्ने.... ॥ ७.१.१८

१उत ब्रुवन्तु जन्तवः.... ॥ १.७४.३

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्धिदित् सोमः ।

ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ ८.७९.१

क्रीळं वः शर्वो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥१.३७.१

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।

ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ ७.५६.१६

जुष्टो दमूना अतिथिः.... ॥५.४.५॥ अग्रे शर्व महते.... ॥५.२८.३

२आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरुतिभिः ॥४.३२.१

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।

अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषद्ये ॥ ६.२५.८

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहाऽस्माकं मधवा स्वरिस्तु ॥ १०.८१.६

या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।

शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ १०.८१.५

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमृतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।

स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥ १०.८१.७

३उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।

उशन्नुशत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ १०.१६.१२

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।

असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १०.१५.१

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।

वन्वन्नवातः परिधीँ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ९.९६.११

उपहृताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।

त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ १०.१५.५

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ १०.१४.६

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
 तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशङ्निः प्रतिकाममत्तु ॥ १०.१५.८
 त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
 तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १.९१.१
 सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
 सादन्यं विदध्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ १.९१.२०
 त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
 तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ८.४८.१३
 बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चक्रमा जुषध्वम् ।
 त आ गताऽवसा शंतमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ॥ १०.१५.४
 आऽहं पितृन्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
 बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहाऽऽगमिष्ठाः ॥ १०.१५.३
 इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
 ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विश्व ॥ १०.१५.२
 अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
 अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ १०.१५.११
 ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विन्न याँ उ च न प्रविन्न ।
 त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ १०.१५.१३
 ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
 तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ १०.१५.१४
 अव सृज पुनरग्रे पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
 आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥ १०.१६.५
 इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
 आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥ १०.१४.४
 अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
 विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ १०.१४.५
 परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
 वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १०.१४.१

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अकैः ।
 आग्ने याहि सुविदत्रेभिरवाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्धर्मसद्भिः ॥ १०.१५.९
 त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
 त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्याधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ४.११.३
 स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
 आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १.९६.१
 यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितृन् यक्षद्वतावृधः ।
 प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ १०.१६.११
 त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाङ् हव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ १०.१५.१२
 सुसंष्टं त्वा वयं मधवन् वन्दिषीमहि ।
 प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशां अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १.८२.३
 अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
 अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५.६.१
 मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । माऽन्तः स्थुर्नो अरातयः ॥
 यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि ॥
 मनो न्वा हुवामहे.... ॥ आ त एतु मनः पुनः.... ॥
 पुनर्नः पितरो मनः.... ॥
 वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ १०.५७.१-६
 अग्ने त्वं नो अन्तमः.... ॥ वसुरग्निर्वसुश्रवाः.... ॥
 स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ५.२४.१-४
 अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
 अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १.८२.२
 उपो षु शृणुही गिरो मधवन् माऽतथाइव ।
 यदा नः स्रुतावतः कर आदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १.८२.१
 तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुचरत् ।
 पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ ७.६६.१६
 १ अग्निना रयिमश्रवत्.... ॥ १.१.३ ॥ गयस्फानो अमीवहा.... ॥ १.९१.१२

१उत त्वामदिते महि.... ॥८.६७.१०॥ २प्रेद्धो अग्ने.... ॥७.१.३॥ इमो अग्ने.... ॥७.१.१८

३मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥३.५९.६
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ३.५९.५

तैसं [४.३.१३]—

४अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥

त्व५ सोमाऽसि सत्पतिस्त्व५ राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृघोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।

न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तनुवि रेप आ धुः ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।

रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चिदरुक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥

सैनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे.... ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।

यत्सीमहि दिविजात प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।

एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्र उशतो यक्षि देवान् ॥

५अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतार५ रत्नधातमम् ॥

वृषा सोम द्युमा५ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥

सांतपना इद५ हविः.... ॥

यो नो मर्तो वसवो दुर्हणायुस्तिरः सत्यानि मरुतो जिघा५ सात् ।

द्रुहः पाशं प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषेषु ।

तेऽस्मत्पाशान् प्र मुञ्चन्त्व५ हसः सांतपना मदिरा मादयिष्णवः ॥

पिप्रीहि देवा५ उशतः.... ॥ अग्ने यदद्य विशः.... ॥ ६अग्निना रयिम-

श्रवत्.... ॥ गयस्फानो अमीवहा.... ॥

१. पुरोनुवाक्या । 'महीमू षु मातरं' (तैसं १.५.११.५) इति याज्या २. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये ३. मैत्रीष्टिः ४. अनीकवतीष्टिः ५. सांतपनीयेष्टिः ६. गृहमेधीयेष्टिः

गृहमेधास आ गत मरुतो माऽप भूतन । प्रमुञ्चन्तो नो अ॑हसः ॥

पूर्वाभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । महोभिश्चर्षणीनाम् ॥

प्र बुध्निया ईरते वो महा॑सि प्र णामानि.... ॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।

उप स्वैनमरमतिर्वस्युः ॥

इमो अग्रे वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।

प्रति न ई॑ सुरभीणि वियन्तु ॥

१क्रीडं वः शर्धो मारुतं.... ॥ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चः.... ॥

प्रेषामज्मेषु विधुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।

ते क्रीडयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥

उपहरेषु यदचिध्वं ययि वय इव मरुतः केनचित्पथा ।

श्रोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥

अग्निमग्नि॑ हवीमभिः सदा हवन्त विस्पतिम् । हव्यवाहं पुरप्रियम् ॥

त॑ हि शश्वन्त ईडते सुचा देवं घृत॑चुता । अग्नि॑ हव्याय वोढवे ॥

१इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ श्रथद्वृत्रमुत सनोति वाजं.... ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

शूरो नृपाता शवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तनुवं जुषाणः ।

मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहाऽस्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।

तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत् ॥

तैसं [२.६.१२]—

१उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तः.... ॥ त्व॑ सोम प्रचिकितो मनीषा.... ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे.... ॥ त्व॑ सोम पितृभिः संविदानः.... ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत.... ॥ बर्हिषदः पितरः.... । शंतमेना-

ऽथाऽस्मभ्य॑ शं थोररपो दधात ॥

१. क्रीडिनीष्टिः २. महाद्विः । संचरदेवतानां याज्यापुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहोत्रे

ब्रह्मव्याः । ३. महापितृयज्ञः

श्री. १४

आऽहं पितृन्सुविदत्रा५ अवित्सि.... ॥ उपहृताः पितरः सोम्यासः.... ॥
 उदीरतामवर उत्परासः.... ॥ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य.... ॥
 अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्र क्रतमाशुषाणाः ।
 शुचीदयन् दीधितिमुवथशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥
 यदग्रे कव्यवाहन पितृन् यक्ष्यूतावृधः ।
 प्र च हव्यानि वक्ष्यसि देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥
 त्वमग्र ईडितो जातवेदोऽवाङ्महव्यानि सुरभीणि कृत्वा । ॥
 मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋकमिर्वावृधानः ।
 या५श्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहाऽन्ये स्वधयाऽन्ये मदन्ति ॥
 इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
 आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता बहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥
 अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
 विवस्वन्तः५ हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥
 अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
 तेषां वयः५ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

मैसं [४.१०.५-६]—

१अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्.... ॥ त्व५ सोमाऽसि सत्पतिः.... ॥
 अनीकैर्द्वेषो अर्दयाऽग्रे विश्वाभिरुतिभिः । रयिं नो धेहि यज्ञियम् ॥
 सैनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवं आयजिष्ठः स्वस्ति । अदब्धः.... ॥
 पिप्रीहि देवान्.... ॥ आ देवानामपि पन्थां.... ॥ २सांतपना इद५ हविः.... ॥
 यो नो मरुतो अभि.... । द्रुहः पाशान् प्रति.... हन्तना तम् ॥
 ३अग्निः प्रत्नेन मन्मना.... ॥ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं.... ॥
 गृहमेधासा आगत मरुतो माऽपभूतन । इमा हव्या जुजुष्टन ॥
 प्र बुध्न्या व ईरते महा५सि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् । सहस्रियं.... ॥
 प्रेद्धो अग्रे दीदिहि पुरो नः.... ॥ इमो अग्रे वीततमानि.... ॥ ४अग्निमीडे
 पुरोहितं.... ॥ वृषा सोम द्युमं असि.... ॥ क्रीड५ वः शर्धो मारुतं.... ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चः.....॥ तं हि शश्वन्ता ईडते.....॥ अग्निमग्निं
हवीमभिः..... ॥

१इन्द्राग्नी नवर्ति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥

श्रथद् वृत्रमुत सनोति वाजं..... ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥

युजे रथं गाएषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

विवाधिष्ठस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन..... ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोयुजं वाजे अद्याऽऽहुवेम ।

स नो नेदिष्ठा हवना जुजोष विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥

२उशन्तस्त्वा हवामहे..... ॥

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मर्डीकं धेहि जीवसे ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यून क्रतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥

त्वं सोम ग्रचिकितो मनीषा..... ॥ त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे..... ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानः..... ॥ बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्..... ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासः..... ॥ आऽहं पितृन्सुविदत्रान्..... । बर्हिषदः

स्वधया ये सुतस्य..... ॥ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य..... ॥ उदीरतामवरा

उत्परासः..... ॥

अग्निष्वात्ता क्रतावृधः पितरो मृडता सु नः । दीर्घायुत्वाय जीवसे ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नराशंसे सोमपीथं य आशुः ।

ते नो विप्रासः सुहवा मृडन्तु शं नो भवन्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

अग्निष्वात्ताः पितरा एह गच्छत..... ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा ।

आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥

स पूर्वया निविदा कव्यताऽऽयोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।

विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमानाः..... ॥

१. महाहविः । संचरदेवतानां याज्यानुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः ।

२. महापितृयज्ञः

कासं [२१.१३]—

१अनेकवन्तमृतयेऽग्निं धीभिर्हवामहे । स नः पर्षदति द्विषः ॥
 सैनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे.... ॥ २सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन.... ॥
 यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुः.... । द्रुहः पाशं प्रति षू मुचीष्ट.... ॥
 ३गृहमेधा रिशादसो मरुतो माऽपभूतन । प्रमुञ्चन्तो नो अहसः ॥
 प्र बुध्न्या व ईरते महीसि प्र नामानि.... ॥ ४क्रीडं वश्शर्धो मारुतं.... ॥
 अत्यासो न ये मरुतस्स्वञ्चः.... ॥ ५इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ श्वथद्
 वृत्रमुत सनोति वाजं.... ॥
 आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि । महान् महीभिरूतिभिः ॥
 त्वं मही इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मीहना मन्यत द्यौः ।
 त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान् सृजस्सिन्धूरहिना जग्रसानान् ॥
 विश्वकर्मन् हविषा.... यजस्व पृथिवीमुत धाम् ।
 मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहाऽस्माकं मधवा स्वरिस्तु ॥
 वाचस्पतिं विश्वकर्माणमृतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
 स नो नेदिष्टि हवनानि जोषद्विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥
 ६उशन्तस्त्वा हवामहे.... ॥ त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा.... ॥ त्वया हि नः
 पितरः सोम पूर्वे.... ॥ त्वं सोम पितृभिः संविदानः.... ॥ बर्हिषदः
 पितर ऊत्यर्वाक्.... ॥ आऽहं पितृन्सुविदत्री अवित्सि.... ॥ उपहूताः
 पितरः सोम्यासः.... ॥ अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत.... ॥
 अग्निष्वात्ता ऋतावृधः पितरो मृडता सु नः । प्रमुञ्चन्तु नो अहसः ॥
 अग्निष्वात्तानृतुमतः.... आनशुः ।
 त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥
 स पूर्वया निविदा कव्यताऽऽयोः.... ॥
 यो अग्निः कव्यवाहनः पितृन् यक्षदतावृधः ।
 प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥
 त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्ता जायन्ते राध्यानि ।
 त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥

१. अनीकवतीष्टिः २. सांतपनीयेष्टिः ३. गृहमेधीयेष्टिः ४. क्रीडिनीष्टिः ५. महाहविः ।
 संचरदेवतानां याज्यापुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः । ६. महापितृयज्ञः

शुनासीरीयपर्व

तैसं [१.८.७]—ऐन्द्राग्रं द्वादशकपालम् । वैश्वदेवं चरुम् । इन्द्राय शुनासीराय पुरोडाशं द्वादशकपालम् । वायव्यं पयः । सौर्यमेककपालम् । द्वादशगवः सीरं दक्षिणां ॥

तैत्रा [१.७.१]—एतद्ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि । अथेन्द्राय शुनासीराय पुरोडाशं द्वादशकपालं निर्वपति० वायव्यं पयो भवति० सौर्य एककपालो भवति० द्वादशगवः सीरं दक्षिणा समृद्धयै० ॥

तैत्रा [१.५.५]—

एकं मासमुदसृजत् । परमेष्ठी प्रजाभ्यः । तेनाऽऽभ्यो मह आवहत् । अमृतं मर्त्याभ्यः । प्रजामनु प्रजायसे । तदु ते मर्त्याऽमृतम् । येन मासा अर्धमासाः । ऋतवः परिवत्सराः । येन ते ते प्रजापते । ईजानस्य न्यवर्तयन् । तेनाऽहमस्य ब्रह्मणा । निवर्तयामि जीवसे ॥ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा । तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्याहितम् । वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये । सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये । शिवेनाऽस्योपवर्तये । शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ तदृतं तत्सत्यम् । तद्व्रतं तच्छकेयम् । तेन शकेयं तेन राध्यासम् ॥

तैत्रा [१.४.१०]—अथ वा अस्य वायुश्चाऽनुवत्सरश्चाऽप्रीतावुच्छिष्येते । यञ्छुनासीरीयेण यजते । वायुमेव तदनुवत्सरमाप्नोति । तस्माच्छुनासीरीयेण यजमानः । अनुवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत ।

मैसं [१.१०.१]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्चरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः । सारस्वतश्चरुः । पौष्णश्चरुः । वायव्या यवागूः प्रतिधुग्व । इन्द्राय शुनासीराय द्वादशकपालः । सौर्य एककपालः ॥

[४.३.३]—अथैतानि चातुर्मास्यानि० पशवो वा एते चातुर्मास्येभ्योऽध्यतिरिच्यन्ते । यञ्छुनासीर्यं तानेवाऽऽप्नोति । वर्ष्य उदके यजेत० अथैतानि पञ्च हवींषि संतत्यै ग्रामकामो यजेत० यद्वायवे० अन्नकामो यजेत० वृष्टिकामो यजेत० ।

[२.६.२]—सीरं द्वादशायोगं दक्षिणोष्ठारो वाऽनड्वान् ॥

कासं [१५.२]—आग्नेयोऽष्टाकपालः । सौम्यश्वरुः । सावित्रोऽष्टाकपालः ।
सारस्वतश्वरुः । पौष्णश्वरुः । वायवे नियुत्वते पयो वा यवागूर्वा । इन्द्राय शुनासीराय द्वादश-
कपालः । सौर्य एककपालः । उष्टारौ दक्षिणा सीरं वा द्वादशायोगम् ॥

शत्रा [२.६.३]—

अथ यस्माच्छुनासीर्येण यजेत० तस्याऽऽवृत् । नोपकिरन्त्युत्तरवेदिम् । न गृह्णन्ति
पृषदाज्यम् । न मन्थन्यग्निम् । पञ्च प्रयाजा भवन्ति । त्रयोऽनुयाजाः । एकं समिष्टयजुः ।
अथैतान्येव पञ्च हवींषि भवन्ति० अथ शुनासीर्यो द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति० अथ
वायव्यं पयो भवति० अथ सौर्य एककपालः पुरोडाशो भवति० तस्याऽश्वः श्वेतो दक्षिणा०
यद्यश्वं श्वेतं न विन्देदपि गौरैव श्वेतः स्यात्० स यत्रैव साकमेधैर्यजते तच्छुनासीर्येण यजेत०
तद्वैके रात्रीरापिपयिषन्ति । स यदि रात्रीरापिपयिषेत् यददः पुरस्तात्फाल्गुन्यै पौर्णमास्या उद्दृष्टं
तच्छुनासीर्येण यजेत० अथ दीक्षेत । तं नाऽनीजानं पुनः फाल्गुनी पौर्णमास्यभिपर्येयात्०
इति नूत्सृजमानस्य० अथ पुनः प्रयुञ्जानस्य । पूर्वेषुः फाल्गुन्यै पौर्णमास्यै शुनासीर्येण यजेत
अथ प्रातर्वैश्वदेवेन अथ पौर्णमासेन० अथाऽतः परिवर्तनस्यैव० तस्माद्वै परिवर्तयेत् । तदु
होवाचाऽऽसुरिः । किं नु तत्र मुखस्य । यदपि सर्वाण्येव लोमानि वपेत । यद्वै त्रिः संवत्सरस्य
यजते । तेनैव सर्वतोमुखः तेनाऽन्नादः । तस्मान्नाऽऽद्रियेत परिवर्तयितुमिति ।

[११.५.२.९]—तदाहुः सर्वगायत्रं वैश्वदेवं हविः स्यात् । सर्वत्रैष्टुभं वरुण-
प्रघासाः । सर्वजागतं महाहविः । सर्वानुष्टुभं शुनासीरीयम्० तदु तथा न कुर्यात्० ॥

काशत्रा [१.६.३-४; १३.५.२] ≡ शत्रा

शान्ना [५.८-१०]—

त्रयोदशं वा एतं मासमामोति यच्छुनासीर्येण यजते० अथ यदग्निर्मध्यते यद्वैश्वदेवस्य
तन्त्रं तत्तन्त्रम् । यद्यु न मध्यते पौर्णमासमेव तन्त्रं भवति० अथ यदग्निर्मध्यते तस्योक्तं ब्राह्मणम् ।
अथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्दन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणम् । अथ यन्नव
प्रयाजा नवाऽनुयाजा अष्टौ हवींषि त्विष्टकृन्नवमम्० समानानि त्वेव पञ्च संचराणि हवींषि
भवन्ति पौष्णान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् । अथ यच्छुनासीरौ यजति० अथ यद्वायुं यजति०
अथ यत्सौर्य एककपालः० अथ यच्छ्वेता दक्षिणा० अथ यत्प्रायश्चित्तप्रतिनिधीन् कुर्वन्ति
यदाहुतीर्जुह्वति० अथ यत्त्वैरग्निभिर्यजमानं संस्थापयन्ति० ॥

गौत्रा [२.१.२६]—

त्रयोदशं वा एतं मासमाप्नोति यच्छुनासीर्येण यजते० अथ यदग्निं प्रणयन्ति० यद्यु
न मध्यते पौर्णमासमेव तन्त्रं भवति० अथ यद्वायुं यजति० अथ यच्छुनासीरं यजति० अथ
यत्सूर्यं यजति० अथ यच्छ्रुवेतां दक्षिणां ददाति० अथ यत्प्रायश्चित्तप्रतिनिधिं कुर्वन्ति० ॥

शुनासीरीयपर्वहौत्रम्

ऋसं—

१आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।

उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ ७.९२.१

प्र याभिर्यासि दाश्वासमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिं सुभोजसं शुवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राघः ॥ ७.९२.३

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।

कृधि वाजाँ अपो ध्रियः ॥ ८.२६.२५

ईशानाय प्रहुति यस्त आनद् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।

कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ ७.९०.२

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥ ८.२६.२१

अध्वर्यवश्चक्रवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।

होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ५.४३.३

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यदिवि चक्रथुः पयः ।

तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ४.५७.५

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।

शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ४.५७.८

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ १०.१६०.५

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं घनानाम् ॥ ३.३०.२२

१. संचरदेवतानां याज्यापुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः, इन्द्राग्न्योर्विशेषां
देवानां च साकमेधपर्वहौत्रे

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ १.५०.४

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याऽग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १.११५.१

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिभ्राजमानः ।

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ७.६३.४^३

मैसं [४.१०.६]—

३प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयि० विश्ववार० रथग्राम् ।

द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वा०समच्छ.... ॥

इन्द्र० वय० शुनासीरमस्मिन् यज्ञे हवामहे । स नः पर्षदति द्विषः ॥

सोऽहोरात्रैः सोऽर्धमासैः स मासैः स ऋतुभिः परि यज्ञं बभूव ।

स०वत्सरस्य महिमानमेत० शुनासीरमिन्द्रमद्या हुवेम ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिःकेशं पुरुप्रिय ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥

कासं [२१.१४]—

३वायुरग्रेगा यज्ञग्रीस्साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्धिश्शिवाभिः ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वीसमच्छ.... ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा इन्द्राय सुमनसा ॥

शुनै हुवेम मघवानमिन्द्रं.... ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥

इन्द्रं वयं शुनासीरमस्मिन् यज्ञे हवामहे । इह देवी सुराधसम् ॥

इन्द्रं वयं धनपतिं सुनुमन्वारभामहे । स नः पितेव पुत्रेभ्य ईशानश्शर्म यच्छतु ॥

१. तैत्तिरीयशाखागताः संचरदेवतानां याज्यापुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः, इन्द्राग्न्योर्विशेषां देवानां च साकमेधपर्वहौत्रे । शिष्टानां देवतानां याज्यापुरोनुवाक्या आपस्तम्बहौत्र एवमादिष्टाः—‘इन्द्राय शुनासीराय’ ‘प्र हव्यानि धृतवन्त्यस्मै’ इतीन्द्रस्य शुनासीरस्य, ‘वायो शत० हरीणां’ ‘प्र याभिर्यासि’ इति वायोः, ‘उदु त्यं जातवेदसं’ ‘चित्रं देवानाम्’ इति सूर्यस्य, ‘अग्नि० स्तोमेन बोधय’ ‘स हव्यवाडमर्त्यः’ इति रिवष्टकृतः । २. संचरदेवतानां याज्या-पुरोनुवाक्या वैश्वदेवपर्वहौत्रे द्रष्टव्याः, इन्द्राग्न्योर्विशेषां देवानां च साकमेधपर्वहौत्रे ।

चातुर्मास्यप्रायश्चित्तम्

यद्येककपालः स्कन्देत् परि वा वर्तेत

तैत्रा [३.७.१०]—

प्रजापतेर्वर्तनिमनुवर्तस्व । अनु वीरैरनुराध्याम गोभिः । अन्वश्चैरनु सर्वैरु
पुष्टैः । अनु प्रजयाऽन्विन्द्रियेण । देवा नो यज्ञमृजुधा नयन्तु ॥

प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे । प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु । प्रति प्रजायां
प्रतितिष्ठामि भव्ये । विश्वमन्याऽभिवावृधे । तदन्यस्यामधिश्रितम् । दिवे
च विश्वकर्मणे । पृथिव्यै चाऽकरं नमः ॥

अस्कान् द्यौः पृथिवीम् । अस्कानृषभो युवा गाः । स्कन्नेमा विश्वा भुवना ।
स्कन्नो यज्ञः प्रजनयतु । अस्कानजनि प्राजनि । आ स्कन्नाज्जायते वृषा ।
स्कन्नात्प्रजनिषीमहि ॥

१. अस्य मन्त्रत्रयस्य विनियोगो ब्राह्मणे नोपलभ्यते । आपस्तम्बसूत्रवचनानुसारमेते
मन्त्रा अत्र संगृहीताः । तत्र प्रथममन्त्रेणाध्वर्युस्तमेककपालं पुरोडाशं यथास्थानं कल्पयति, द्वितीयेन
यजमानोऽनुमन्त्रयते तृतीयेन चाध्वर्युः प्रायश्चित्ताहुतिं जुहोति ।

चातुर्मास्यानि

वैश्वदेवपर्व

बौधायनश्रौ० [५.१-४; २१.१-६; २३.८; २५.१; २७.१४; २८.८; १४.३०; ३.१७]—

१. वैश्वदेवहविर्भिर्यक्ष्यमाणो भवति फाल्गुन्यां वा चैत्र्यां वा पौर्णमास्याम् । नक्षत्रप्रयोग इत्येक आहुः । उदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे प्रयुज्जीतेति । [अथाऽतश्चातुर्मास्यानि व्याख्यास्यामः ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यावज्जीवप्रयुक्तान्येव चातुर्मास्यानि स्युरन्तर्मिथुनानि । प्रथमे त्वेव संवत्सरे व्रतं चरेदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सांवत्सरिकाण्येव खलु चातुर्मास्यानि ब्रह्मचर्यवन्ति भवन्तीति ॥ यथाप्रयोगमित्यौपमन्यवः ॥] [कथमु खलु यावज्जीवप्रयुक्तानां चातुर्मास्यानामनुप्रयोगो भवतीति । फाल्गुन्यां वा चैत्र्यां वा पौर्णमास्यां शुनासीरीयपरुषा यजेत । अथ वैश्वदेवायोपवसेत् । वैश्वदेवेनेष्ट्वा पौर्णमासवैमृधाभ्यां यजेत । अथ चेदिष्ट्वा पशुना सोमेन वा यजेत कथं तत्र कुर्यादिति । प्रतिकृष्यैतस्य पक्षस्य शुनासीरीयपरुषा यजेत । अथैतेषामेकेन यजेत । अथ वैश्वदेवायोपवसेत् । वैश्वदेवेनेष्ट्वा पौर्णमासवैमृधाभ्यां यजेतेति । यथो एतद्वौधायनस्य कल्पं वेदयन्ते यावज्जीवप्रयुक्तान्येव चातुर्मास्यानि स्युरन्तर्मिथुनानि । प्रथमे त्वेव संवत्सरे व्रतं चरेदिति कथमत्रेष्टिपशुबन्धा इति । काममिष्ट्या कामं पशुबन्धेनेति । क उ खलु चातुर्मास्यानि समासं गच्छन्तीति । राजसूये च चातुर्मास्येषु च सोमेष्वित्येव ब्रूयात् । अथाऽप्युदाहरन्ति द्वादशाहेऽपि चातुर्मास्यैर्यजेत । वैश्वदेवेनेष्ट्वा चतुर्थ्यां वरुणप्रघासैरष्टम्यां च नवम्यां च साकमेधैर्द्वादश्यां शुनासीरीयपरुषा यजेतेति । विज्ञायते संवत्सरप्रतिमा वै द्वादशरात्रयो भवन्तीति ।] स उपकल्पयते त्रेणीं शललीं लोहितायसस्य च क्षुरं चतुष्टयानि पुरोडाशकपालानि चतस्रश्चरुस्थालीस्तावन्ति मेक्षणानि द्वयं पयः पृषदाज्याय च दधि हविरातश्चनाय च त्रेधा बर्हिः संनद्धं तदेकधा पुनः संनद्धं प्रसूमयं प्रस्तरमिति । [प्रसूमयं प्रस्तरमिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्वमेवैतद्बर्हिः प्रसूमयं स्यादिति शालीकिः ॥] [त्रिवृद्बर्हिर्भवतीति । तूष्णीकानि हाऽऽन्तराणि भवन्तीति मन्त्रवदु ह बाह्यम् । एतदेव सदन्यत्रेष्टिसंनिपाते विपरीतं भवतीति ।] [पयसां मन्त्राऽमन्त्र इति ॥ उभये सायंप्रातर्दोहा मन्त्रवन्तः स्युरिति बौधायनः ॥ तूष्णीका इति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यत्पाक्सोमेज्यायै चातुर्मासिकानि पयांसि तूष्णीकानि स्युरथोर्ध्वं सोमेज्यायै मन्त्रान् लभेरन्निति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहाऽऽज्जीगविः पञ्चैवैतानि पयांसि मन्त्रवन्ति भवन्ति दर्शपूर्णमासयोर्मेत्रावरुण्यामिक्षायां दाक्षायणयज्ञे कौण्डपायिन्ये सौत्रामण्यामिति ॥] अथोपवसथीयेऽहन् द्विहविषमारम्भणीयामिष्टिं निर्वपति वैश्वानरं द्वादशकपालं पार्जन्यं चरुम् । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । [वैश्वानरपार्जन्ययोः

करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] [पर्जन्यस्याऽहं देवयज्यया सुयवसो भूयासम् ।]

२. अथाऽस्यैतदहर्विश्वेभ्यो देवेभ्यो वत्सा अपाकृता भवन्ति । [फाल्गुन्या वा चैत्र्या वा पौर्णमास्यां विश्वेभ्यो देवेभ्यो वत्सा अपाकृता भवन्तीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ उदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याह इति शालीकिः ॥] वैश्वदेवं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूर्णी वा । अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पुराऽपां प्रणयनाद्गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा पञ्चहोतारं मनसाऽनुद्रुत्याऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने स्वाहा इति । [पञ्चहोतुर्होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ उपवसथ एव पञ्चहोतारं जुहुयादिति शालीकिः ॥] अथ पृष्ठथाः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीयाऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुं सावित्रं द्वादशकपालं सारस्वतं चरुं पौष्णं चरुं मास्तं सप्तकपालं वैश्वदेवीमामिक्षां द्यावापृथिव्यमेककपालमिति । हविष्कृता वाचं विसृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युष्य दक्षिणार्धे गार्हपत्यस्याऽष्टौ कपालान्युपदधाति । अथोत्तरतस्तिरः पवित्रमप आनीय सौम्याय चरवेऽधिभ्रयति । अथोत्तरतः सावित्राय द्वादश कपालान्युपदधाति । अथोत्तरतस्तिरः पवित्रमप आनीय सारस्वतपौष्णाभ्यामधिभ्रयति । अथोत्तरतो मास्ताय सप्त कपालान्युपदधाति । अथोत्तरतस्तिरः पवित्रं पय आनीयाऽऽमिक्षाया अधिभ्रयति । अथोत्तरतो द्यावापृथिव्यमेककपालमुपदधाति । अभीन्धते कपालानि । उपेन्धते चरुस्थालीः । कृतानि पिष्टानि समुष्य संयुत्याऽथाऽधिपृणक्त्याऽग्नेयमष्टाकपालम् । तिरः पवित्रं सौम्ये चरव्यानावपति । अथाऽधिपृणक्ति सावित्रं द्वादशकपालम् । तिरः पवित्रं सारस्वतपौष्णयोश्चरव्यानावपति । अथाऽधिपृणक्ति मास्तं सप्तकपालम् । तिरः पवित्रं तप्ते पयसि दध्यानयति । साऽऽमिक्षा भवति । तां य एव कश्च कुशलः परीन्धेन श्रपयित्वा विवाजिनां कृत्वा प्रतापे निदधाति । अथाऽधिपृणक्ति द्यावापृथिव्यमेककपालमिति । त्वचं पुरोडाशानां ग्राहयित्वा श्रपयित्वाऽमिवास्य प्राङ्मेत्याऽऽप्येभ्यो निनीय स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव प्रसिद्धं पौरोडाशिकं त्रिर्यजुषा तूर्णीं चतुर्थम् । पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्नीध्रस्त्रिहरति । यदाग्नीध्रस्त्रिहरत्यथोत्तरं परिग्राहं परिगृह्ण योयुपित्वा तिर्यश्च स्फ्यं स्तब्ध्वा संप्रैषमाह प्रोक्षणीरासादयेष्माबर्हिरुपसाद्य सुवं च सुचश्च संमृडि तूर्णीं पृषदाज्यग्रहणीं पत्नीं संनह्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेहि इति । आहृतासु प्रोक्षणीषूदस्य स्फ्यं मार्जयित्वेष्माबर्हिरुपसाद्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्गानुत्य सुवं च सुचश्च संमार्ष्टि तूर्णीं पृषदाज्यग्रहणीम् । पत्नीं संनह्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेति । आज्यं च प्रोक्षणीश्चोत्पूय प्रसिद्धं पृषदाज्यवन्त्याज्यानि गृहीत्वा प्रोक्षणीभिरुपोत्तिष्ठति । इध्मं प्रोक्षति । वेदिं प्रोक्षति । बर्हिः प्रोक्षति । बर्हिरासन्नं प्रोक्ष्योपनिनीय पुरस्तात्प्रसूमयं प्रस्तरं गृह्णाति । त्रिविधं बर्हिः स्तीर्त्वा प्रस्तरपाणिः प्राङ्भिसृप्य कार्प्यमयान् परिधीन् परिदधाति । ऊर्ध्वं समिधावादधाति । विधृती तिरश्ची सादयति । विधृत्योः प्रसूमयं प्रस्तरम् । प्रस्तरे जुह्वम् । बर्हिषीतराः । एता असदन् इति सम-

भिमृश्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखादुत्थाऽऽनुपूर्वम् हवींष्युद्वासयत्युपस्तीर्णाभिधारितान् पुरोडाशानभिघार्थं चरन् । प्रसिद्धमा मारुतात् । अथ कसे वा चमसे वाऽऽमिक्षां व्युद्धृत्य वाजिनमानीयाऽथाऽभिधारयति । अथैककपालमुद्वास्य बह्वानीयाऽऽविःपृष्ठं करोति । अथैतानि संपरिगृह्णाऽन्तर्वेद्यासादयति भूर्भुवः सुवः इत्येताभिर्व्याहृतीभिः । उत्करे वा विशये वा वाजिनम् । [अथ वै भवति चातुर्मास्यान्यालभमान एताभिर्व्याहृतीभिर्हवींष्यासादयेत् । यज्ञमुखं वै चातुर्मास्यानि ब्रह्मैता व्याहृतयः । यज्ञमुख एव ब्रह्म कुरुते । संवत्सरे पर्यागत एताभिरेवाऽऽसादयेत् । ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परिगृह्णातीति ब्राह्मणम् ।]

३. अथ निर्मन्थ्यस्याऽऽवृता निर्मन्थ्येन चरति । प्रहृत्याऽभिहुत्य । अथेध्मात् समिधमाददान आह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । अभ्यादधातीधम् । परि समिधं शिनष्टि । वेदेनोपवाजयति । अनूक्तासु सामिधेनीषु सुवेणाऽऽधारमाधारयति । संमृष्टे सुग्भ्यामुत्तरम् । अथाऽसस्पर्शयन् सुचावुदङ्ङत्याक्रम्य जुह्वा ध्रुवां समज्य सादयित्वा सुचौ प्रवरं प्रवृणीते । प्रसिद्धं होतारं वृणीते । सीदति होता । प्रसवमाकाङ्क्षति । प्रसूतः सुचावादायाऽत्याक्रम्याऽऽध्रान्याऽऽह समिधो यज इति । वषट्कृते जुहोति । यज यज इति चतुर्थाष्टमयोः समानयमानः । अष्टमे सर्वं समानयते । नव प्रयाजानिष्ट्वोदङ्ङत्याक्रम्य [प्रयाजानामनुमन्त्रण इति ॥ चतुरश्रतुर्भिरनुमन्त्र्य पञ्चमेनेतराननुसमियादिति बौधायनः ॥ चतुरश्रतुर्भिरनुमन्त्र्य सर्वेषां पारे पञ्चमेनाऽनुमन्त्रयेतेति शालीकिः ॥] सस्त्रावेणाऽऽनुपूर्वम् हवींष्यभिधारयति । अथ अग्नये, सोमाय इत्याज्यभागभ्यां चरति । अथाऽऽनुपूर्वम् हविर्भिश्चरति । प्रसिद्धमा मारुतात् । [सोमस्याऽहं देवयज्यया प्र प्रजया च पशुभिश्च जनिषीय, सुरेता रेतो धिषीय इति वा । सवितुरहं देवयज्यया स्वस्तिमान् पशुमान् भूयासम् । सरस्वत्या अहं देवयज्यया वाचमन्नाद्यं पुषेयम् । सरस्वतोऽहं देवयज्यया अश्वामना भूयासम् । पूष्णोऽहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान् भूयासम् । मरुतामहं देवयज्यया प्राणैर्ऋत्यासम् ।] विश्वेभ्यो देवेभ्योऽनुब्रूहि, विश्वान् देवान् यज इत्यामिक्षया चरति । उपांश्वेककपालेन चरति द्यावापृथिवीभ्यामनुब्रूहि, द्यावापृथिवी यज इति । [विश्वेषां देवानामहं देवयज्यया प्राणैः सायुज्यं गमेयम् । द्यावापृथिव्योरहं देवयज्ययोभयोलोकयोर्ऋत्यासं, भूमानं प्रतिष्ठां गमेयम् इति वा ।] [एककपालानां मन्त्राऽमन्त्र इति ॥ मन्त्रवन्तः स्युरिति बौधायनः ॥ तूष्णीका इति शालीकिः ॥ एककपालानामवदान इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनश्चातुर्मासिकानामेव नाऽवद्येत् । अथेतेरेषामवद्येदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिस्तन्त्रहराणामेवाऽवद्येदथेतेरेषां नाऽवद्येदिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो य एव वैश्वदेवपरुषि तस्य नाऽवद्येदथेतेरेषामवद्येदिति ॥ एककपालानामभिहोम इति ॥ यः सुचि सस्त्रावः स्यात्तेनाऽभिजुहुयादिति बौधायनः ॥ चतुर्भिश्चतुर्भिर्ऋतुनामभिरेकैकमिति शालीकिः ॥ एककपालानामाशयस्याऽनुसंहरण इति ॥ अनुसंहरेदिति बौधायनः ॥ नाऽनुसंहरेदिति शालीकिः ॥] अथ स्विष्टकृता चरति । अत्रैतानि मेक्षणान्याहवनीयेऽनुप्रहरति । अथैनानि सस्त्रावेणाऽभि-

जुहोति । अथोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा प्राशिन्नमवदायेडामवधति । उपहृतायामिडायामग्नीध आदधाति षडवत्तम् । प्राश्नन्ति । मार्जयन्ते । अथाऽऽह ब्रह्मणे प्राशिन्नं परिहर इति । परि प्राशिन्नं हरन्ति । अन्वपोऽनु वेदेन ब्रह्मभागम् । अथाऽन्वाहार्यं याचति । तस्मिन् प्रथमजं वत्सं ददाति । उद्वासयन्त्येतद्विबुच्छिष्टम् । आसादयन्ति वाजिनम् । अथ संप्रैषमाह ब्रह्मन् प्रस्थास्थामः समिधमाधायाऽग्नीदग्नीन् सकृत्सकृत्संसृङ्गि इति । अथाऽध्वर्युः पृषदाज्यं विहत्य जुह्वां समानीयाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह देवान् यज इति । वषट्कृते जुहोति । यज यज इति नवाऽनूयाजानिष्ट्वोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा वाजवतीभ्यां सुचौ व्यूहति । शंयुना प्रस्तरपरिधिं संप्रकीर्य संप्रसाव्य सुचौ विमुच्य ।

४. अथ कं सं वा चमसं वाऽनाज्यलिप्तं याचति । तमन्तर्वेदि निधाय तस्मिन् बर्हिषि विषिञ्चन् वाजिनमानयन्नाह वाजिभ्योऽनुब्रूहि इति । [वाजिनस्य चर्याया इति ॥ उपांशु चरेदिति बौधायनः ॥ उच्चैरिति शालीकिः ॥] अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह वाजिनो यज इति । वषट्कृते जुहोति वाजिभ्यः स्वाहा इति । अनुवषट्कृते हुत्वा हरति भक्षम् । [वाजिनामहं देवयज्यया रेतस्वी भूयासम् ।] स यावन्त ऋत्विजस्तेषूपहवमिष्ट्वा यजमान एव प्रत्यक्षं भक्षयति यन्मे रेतः प्रसिञ्च्यते यन्म आप्यायते यद्वा जायते पुनः । यद्वा मे प्रतितिष्ठति तेन मा वाजिनं कुरु तेन मा रेतस्विनं कुरु तेन मा शिवमाविश तस्य ते वाजिपीतस्य, वाजिभिः पीतस्य इति वा, मधुमत उपहृतस्योपहृतो भक्षयामि इति । [वाजिनस्य भक्षण इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनोऽवघ्नभक्षणेनैवेतरे भक्षयेयुः । यजमान एव प्रत्यक्षं भक्षयेदिति ॥] निर्णिज्य पात्रं प्रयच्छति । अथाऽध्वर्युः प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्ङाद्रुत्य पत्नीः संयाज्य प्राङ्तेय ध्रुवामाप्याय्य त्रीणि पाशुबन्धिकानि समिष्टयजूंषि जुहोति यज्ञं यज्ञं गच्छ, एष ते यज्ञो यज्ञपते, देवा गात्रुविदः इति । अथ पूर्णपात्रविष्णुकर्मैश्चरित्वा विसृजते^१ व्रतम् । अथ पौर्णमासवैमृधाभ्यामिष्ट्वा यजमानायतन उपविश्य । त्रेण्या शलल्या लोहितायसस्य च क्षुरेण शीर्षन्नि च वर्तयते परि च वपते ऋतमेव परमेष्ठयृतं नाऽत्येति किं चन । ऋते समुद्र आहित ऋते भूमिरियं श्रिता । अग्निस्तिग्मेन शोचिषा तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्याहितं वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये शिवेनाऽस्योपवर्तये शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ शीर्ष्णस्तदहं तत्सत्यं तद्व्रतं तच्छक्रेयं तेन शक्रेयं तेन राध्यासम् इति^२ । पुरस्ताद्देवाऽग्रेऽथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतोऽथोपरिष्ठात् । [निवर्तन इति ॥ निवर्तनेनोपवाप्योभयं केशश्मश्रु वापयीतेति बौधायनः ॥ निवर्तनेनोपवाप्य श्मश्रूयेव वापयीत न केशानिति शालीकिः ॥ निवर्तनेनोपवाप्य नैव श्मश्रूणि वापयीत न केशानित्यौपमन्यवः ॥] संतिष्ठन्ते वैश्वदेवहवींषि । संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशास्ते^३ ॥ [अथाऽतश्चातुर्मास्यान्तरालव्रतानि व्याख्यास्यामः । तस्यैतद्व्रतम् । नाऽनृतं वदति^४ । न मां समश्नाति । न स्त्रियमुपैति । नाऽस्य पल्पूलनेन वासः पल्पूलयन्ति । अमृन्मयपाप्यशद्रोच्छिष्टः । स्वयं पादौ

१. यजमानः २. यजमानः । होताऽपि 'संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते दिव्यं धामाऽऽशास्ते' इति सूक्तवाकस्याशीःभ्यनुवर्तयति ।

प्रक्षालयते । न लवणमश्नाति । न कौशीधान्यमन्यत्र तिलेभ्यः । नाऽऽसन्धाः शयीत । न स्त्रियमुपेयात् । काममृतौ जायामुपेयाद्यद्यजातपुत्रः स्यात् । उभयोः कालयोर्मधुपूर्वं व्रतमुपैति । मध्वश्चातीति ब्राह्मणम् । घृतमित्येवेदमुक्तं भवति । दैव्यं मध्विति । विज्ञायते अज्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन इति । नाऽन्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीत । नाऽन्यस्याऽऽर्त्विज्यं कुर्वीत । नाऽऽञ्जीत । नाऽभ्यञ्जीत । न श्राद्धं भुञ्जीत । न लोमानि वापयीत । न दत्तो धावते । न नखानि निकृन्तयीत^१ । कामं पर्वसु केशश्मश्रुलोमनखानि वापयीत । चतुर्षु चतुर्षु मासेषु निवर्तयेतेति ब्राह्मणम् । संवत्सरादूर्ध्वं दार्शपौर्णमासिकमेव व्रतमुपदिशन्ति तस्य चेद्वैश्वदेवस्य कालो नाऽतीयात् । यद्यतीयादग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । आऽऽमावास्यकालादिति व्याख्यातः^२ । कालातिक्रमेष्वापदि यजेत ।] [अथ वै भवति तस्माद्वैश्वदेवेन यजमानः संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत । तस्माद्वरुणप्रघासैर्यजमानः परिवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत । तस्मात् साकमेधैर्यजमानः इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीत । तस्माच्छुनासीरीयेण यजमानः अनुवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशासीतेति ।] [आशिःष्विति ॥ आशिषोऽनुवर्तेरिति बौधायनः ॥ एता एवाऽऽशिषः स्युरिति शालीकिः ॥]

वरुणप्रघासपर्व

बौधायनश्रौ० [५.५-९; २१.२-३; २५.१-२; २७.१४]—

१. अथाऽतश्चतुर्षु मासेषु वरुणप्रघासहविर्भिर्यक्ष्यमाणो भवति । स उपकल्पयते त्रेणीः शालीं लोहितायसस्य च क्षुरं चतुष्टयानि पुरोडाशकपालानि पञ्च चरुस्थालीस्तावन्ति मेषक्षणानि द्वयं पयः पृषदाज्याय च दधि हविरातश्चानाय च शमीपर्णकरीरसकू-नैषीकः शूर्पम् । [ऐषीकः शूर्पमिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ दर्भमयं वा कुशमयं वेति शालीकिः ॥ प्रत्यक्षमित्यौपमन्यवः ॥] मनागुपतप्तानां यवानामवाञ्जनपिष्टानां प्रतिपूरुषं करम्भपात्राण्येकातिरिक्तानि भवन्ति । तेषामेव मेषीं च मेषं च कुर्वन्ति । शृङ्गवान् मेषो भवत्यशृङ्गा मेषी । तौ शुक्लाभिरूर्णाभिः संप्रच्छन्नौ भवतः । द्वावध्वर्यू । द्वयानि यज्ञपात्राणि । [वरुणप्रघासेषु दक्षिणस्य विहारस्य पात्राणां करण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सौवर्णानि वा राजतानि वा स्युरिति शालीकिः ॥ शमीमयानीत्यौपमन्यवः ॥] द्वयमिध्मा-बर्हिर्द्वे वेदी । तयोः पाशुबन्धकीचोत्तरा दार्शपौर्णमासिकीव दक्षिणा । ते पश्चात्समे पुरस्ताद्विषमे पृथमात्राद्वेदी असंभिन्ने भवतः । अथाऽस्यैतदहर्द्वया वत्सा अपाकृता भवन्ति मरुद्भयो वरुणायेति । द्वयं पयो दोहयित्वोपवसति सांनाय्यस्य वाऽऽवृता तूष्णीं वा । अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पृष्ठयाः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय निर्वपत्याग्नेयमष्टाकपालमिति पञ्च संचरा-

१. एवं सुबोधिण्याम् । 'निकृन्तते' इति मुद्रितपाठः । २. एवं सुबोधिण्याम् । 'व्याख्याताः' इति मुद्रितपुस्तके ।

एनैन्द्राग्रमेकादशकपालं माख्तीमामिक्षां वारुणीमामिक्षां कायमेककपालमिति । हविष्कृता वाचं विसृजते । समानं कर्म आ पर्यग्निकरणात् । अत्रैतानि करम्भपात्राण्यभि पर्यग्निं कुर्वन्ति मेधीं च मेधं च शमीपर्णकरीरसकूनैवीकः शूर्पमिति । [ऊ उ खलु करम्भपात्राणि प्रथमं मन्त्रं लभन्त इति । प्रोक्षण इत्येव ब्रूयात् । स ह हविर्भिः करम्भपात्राण्यभि पर्यग्निं कुर्यात् । किंदेवत्यानि नु खलु करम्भपात्राणि भवन्तीति । वारुणानीत्येव ब्रूयात् । विज्ञायतेऽन्यमेव वरुणमवयजत इति । अस्तं प्रेत सुदानवः इति गृहान् प्रेक्षेतेत्येवेदमुक्तं भवति ।] त्वचं पुरोडाशानां ग्राहयित्वा श्रपयित्वाऽभिवास्य ॥

२. प्राडेत्याऽऽध्वेभ्यो निनीय स्तम्बयजुषी हरतः । अध्वर्युरेवोत्तरस्यां वेद्याः हरति प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्याम् । तयोर्हरतोरध्वर्युः पूर्वं एति, पुनरायतोः प्रतिप्रस्थाता पूर्वं एति । [स्तम्बयजुषोर्हरण इति ॥ व्यतिचारः स्तम्बयजुषी हरेयातामिति बौधायनः ॥ सहेति शालीकिः ॥] [तौ व्यतिचारः स्तम्बयजुषी हरेयाताम् । इतश्चाऽमुतश्च यन्तं प्रतिप्रस्थाताऽध्वर्युं परिगृहीयात् । सह निरुतस्य प्रतिप्रस्थाताऽपो निःषिच्याऽध्वर्योराज्यस्य वाचयेत् ।] इदमेव प्रसिद्धं पौरोडाशिकं त्रिर्यजुषा तूष्णीं चतुर्थम् । पूर्वौ परिग्राहौ परिगृहीतः । अध्वर्युरेव करणं जपत्युद्धते । उद्धताभ्यामाग्नीध्रस्त्रिहरति । यदाग्नीध्रस्त्रिहरत्यध्वर्युरेव चात्वालस्याऽऽवृता चात्वालं परिलिखति । उत्तरवेदेरावृतोत्तरवेदिं निवपति । उत्तरनाभिमुत्साद्याऽग्रेरावृता द्वावग्नी प्रणयतः । [अथेध्वयोरतिप्रणयनादादायाऽध्वर्युः स्वमिध्ममपक्रम्यैव तिष्ठति । अथाऽयं प्रतिप्रस्थाताऽन्तरेणेध्मं चाऽऽहवनीर्यं चोपातीत्य स्वमिध्माददीत । तावपसलैः पर्यावृत्येध्मौ हरेयाताम् । अथाऽमुतः प्रदक्षिणमावृत्येध्मौ प्रतिष्ठाप्यैतेनैव यथेतमेत्य प्रतिनिर्वैद्यते प्रतिप्रस्थाताऽन्तरेण वेदी प्राचीनमुपयमनीहारः ।] अध्वर्युरेवोत्तरस्यां वेद्यामग्निं निधायाऽध्वराहुतिभिरभिजुहोति । प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्यामग्निं निधायाऽभिजुहोति तूष्णीम् । अग्निवत्युत्तरौ परिग्राहौ परिगृह्य योयुपित्वा तिर्यञ्चौ स्फ्यौ स्तग्ध्वाऽध्वर्युरेव संप्रेषमाह प्रोक्षणीरासादयतमिध्माबर्हिषी उपसादयतः सुवौ च सुचश्च संसृष्टं तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणो पत्नीः संनह्याऽऽज्याभ्यां च दध्ना चोदेतम् इति । [अथेमा अध्वर्योः प्रोक्षण्यो दक्षिणेन प्रतिप्रस्थातारं परिगृह्याऽऽसादयेत् । एवमेताभिरनभिपरिहृतो भवति ।] आहतासु प्रोक्षणीषूदस्य स्फ्यौ मार्जयित्वेध्माबर्हिषी उपसाद्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यञ्चावावृत्य सुवौ च सुचश्च संसृष्टस्तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणो पत्नीः संनह्याऽऽज्याभ्यां च दध्ना चोदेतः । आज्ये च प्रोक्षणीश्चोत्पूय प्रसिद्धं पृषदाज्यवन्त्येवाऽऽज्यान्यध्वर्युरुत्तरस्यां वेद्यां गृहीते । दार्शपौर्णमासिकानि प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्याम् । [आज्यस्याऽवेक्षण इति ॥ दार्शपौर्णमासिकायै दक्षिणत उपविश्य दक्षिणमवेक्ष्योत्तरमवेक्षेतेति बौधायनः ॥ वेदिसंधातुपविश्य दक्षिणमवेक्ष्योत्तरमवेक्षेतेति शालीकिः ॥ मध्यत इत्यौपमन्यवः ॥] अथ प्रोक्षणीभिरुपोत्तिष्ठतः । इध्मौ प्रोक्षतः । वेदी प्रोक्षतः । बर्हिषी प्रोक्षतः । बर्हिषी आसन्ने प्रोक्ष्योपनिनीय पुरस्तात्प्रस्तारौ गृहीतः । पञ्चविधमेवाऽध्वर्युरुत्तरस्यां वेद्यां बर्हिः स्तृणाति । त्रिविधं प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्याम् । अथ प्रस्तरपाणी प्राञ्चावभिसृज्य कार्ष्मर्यमयान् परिधीन् परिधत्तः । ऊर्ध्वाः समिध आधत्तः । विधृतीस्तिरश्चीः सादयतः । विधृतीषु

प्रस्तरौ । प्रस्तरयोर्जुहौ । बर्हिषोरितराः । एता असदन् इति समभिमुख्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यञ्चावाद्रवतो दक्षिणत एवाऽध्वर्युरुत्तरतः प्रतिप्रस्थाता । आनुपूर्वः हवीः प्युद्वासयतः । आग्नेयप्रभृतीन्येवाऽध्वर्युरुद्वासयति । प्रसिद्धमा पेन्द्राग्नात् । मारुतीं प्रतिप्रस्थाता कः से वा चमसे वाऽऽमिक्षां व्युद्धृत्य तस्यां मेषीमवदधाति । अथाऽस्मै शमीपर्णकरीरसकूना-मिक्षामित्युपवपति । वाजिनमानीयाऽथाऽभिघारयति । वारुणीमध्वर्युस्तथैव कः से वा चमसे वाऽऽमिक्षां व्युद्धृत्य तस्यां मेषमवदधाति । अथाऽस्मै शमीपर्णकरीरसकूनामिक्षा-मित्युपवपति । वाजिनमानीयाऽथाऽभिघारयति । [अथेयं मारुती दक्षिणां वेदिं गच्छति सप्तमी हविषामधिधीयते । कथमेतया व्यवेतानि भवन्तीति । प्रतिकृष्यैनामग्रेण दक्षिणेन हवीः प्यनभिघारितामुद्वासयेत् । अथैनां पुनरधिधित्याऽभिघारितामुद्वास्याऽन्तर्वेद्यासाद-येत् । एवमेतान्यव्यवेतानि भवन्ति ।] तथैककपालमुद्वास्या बह्वानीयाऽऽविःपृष्ठं करोति । अथैतानि संपरिगृह्याऽन्तर्वेद्यासादयतः । आग्नेयप्रभृतीन्येवाऽध्वर्युरुत्तरस्यां वेद्यामासा-दयति । प्रसिद्धमा पेन्द्राग्नात् । मारुतीं प्रतिप्रस्थाता दक्षिणस्थाम् । वारुणीमध्वर्युरुत्तरस्यां कार्यं चैककपालम् । तथैवोत्करे वा विशये वा वाजिने ।

३. अध्वर्युरेव निर्मन्थ्यस्याऽऽवृता निर्मन्थेन चरति । प्रहृत्याऽभिहुत्य । अथे-ध्मात्समिधमाददान आह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । अभ्याघत्त इध्मौ । परि समिधौ शिनष्टः । वेदाभ्यामुपवाजयतः । अनूक्तासु सामिधेनीषु सुवाभ्यामाघारावाधारयतः । अध्वर्यु-रेव संप्रैषमाह अग्नीदमीः खिन्निः संमृडि इति । संमृष्ट उत्तरोऽग्निर्भवत्यसंमृष्टो दक्षिणः । अथ प्रतिप्रस्थाता पत्नीं पृच्छति पतिन कस्ते जारः इति । असौ इति । तं वरुणो यज्ञातु इति निर्दिशति । यज्जारः सन्तं न प्रव्यात्प्रियं ज्ञातिः रुन्ध्यात् । असौ मे जारः इति निर्दिशेत् । निर्दिश्यैवेनं वरुणपाशेन ग्राहयतीति ब्राह्मणम् । अत्रैतानि करस्मपात्राण्यभिपर्यग्निकृतान्यैषीके शूर्पे समुप्य पत्न्यै प्रयच्छति । तानि पत्नी शीर्षन्नधिनिधत्ते । अथैनां दक्षिणया द्वारोपनिष्क-मय्य दक्षिणेनाऽन्वाहार्यपचनं दक्षिणेनोमे वेदी परीत्य प्राचीमुदानयन् वाचयति प्रधास्यान् हवामहे मरुतो यज्ञवाहसः करम्भेण सजोषसः इति । अथ दक्षिणमग्निमग्रेण पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखा-स्तिष्ठन्त्युत्तर एवाऽध्वर्युर्दक्षिणो यजमानो दक्षिणा पत्नी । अत्रैतानि करस्मपात्राणि पत्नी यजमानाय प्रयच्छति । तानि यजमानः शीर्षन्नधिनिधत्ते । अथ पुरोनुवाक्यामन्वाह^१ मो षू ण इन्द्र पृष्ठु देवाऽस्तु स्म ते शुष्मिन्नवया । महो ह्यस्य मीढुषो यव्या । हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः इति । उभौ याज्यां पत्नी च यद्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रये । यच्छूद्रे यदर्य एनश्चक्रमा वयम् । यदेकस्याऽधि धर्मणि तस्याऽजयजनमसि स्वाहा इति । अत्रैतद्वैषीकः शूर्पमग्नावनुप्रहरति । अपि वाऽद्भिरभ्युक्ष्य भुञ्जते । [शूर्पस्याऽनुप्रहरण इति ॥ अनुप्रहरेदिति बौधायनः ॥ नाऽनु-प्रहरेदिति शालीकिः ॥ अद्भिरभ्युक्ष्य भुञ्जतेत्यौपमन्यवः ॥] व्यवयतः । अध्वर्युरनु-मन्त्रयते अकन्कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेत सुदानवः इति । अथ प्रतिप्रस्थाता दक्षिणमग्निः संमार्ष्टि । उभौ सुच्यावाघारावाधारयतः । अध्वर्युरेव प्रवरं प्रवृणीते । प्रसिद्धः होतारं वृणीते । सीदति होता । प्रसवमाकाङ्क्षतः । प्रसूतौ सुच

आदायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह समिधो यज इति । वषट्कृते जुहुतः । यज यज इति चतु-
र्थाष्टमयोः समानयमानौ । अष्टमेऽध्वर्युः सर्वं समानयते । परि प्रतिप्रस्थाता सः स्याव-
शिनष्ठयनूयाजेभ्यः । नव प्रयाजानिष्ट्वोदञ्चावत्याक्रम्य सः स्यावाभ्यामानुपूर्वं हवींष्यभि-
धारयतः । आग्नेयप्रभृतीन्येवाऽध्वर्युरभिधारयति । प्रसिद्धमा ऐन्द्राग्नात् । मारुतीं प्रति-
प्रस्थाता । वारुणीमध्वर्युः कायं चैककपालम् । अथ अग्नये, सोमाय इत्याज्यभागाभ्यां चरतः ।
अथ प्रतिप्रस्थातोपरमति ।

अथाऽध्वर्युरानुपूर्वं हविर्मिश्चरति । प्रसिद्धमा ऐन्द्राग्नात् । अथाऽध्वर्युरप-
रमति । अथ प्रतिप्रस्थाता मारुत्या अवद्यन्नाह मरुद्भ्योऽनुब्रूहि इति । [अथाऽयं प्रति-
प्रस्थाता मारुत्यै दैवतस्य सकृदेवाऽनुवाचयेत् सकृदाश्रावयेत् । अथाऽन्यत्राऽध्वर्योः कृतानु-
कारो भवतीति । तद्यदिहाऽऽश्रावयतीह यजतीति तत्प्रतिप्रस्थाता कृतानुकार एव भवति ।]
प्रथमेनाऽवदानेन शमीपर्णकरीरसकूनामिक्षाया इत्यवद्यति । द्वितीयेनाऽवदानेन शमीपर्ण-
करीरसकूनामिक्षां मेधीमित्यवदधाति । अभिधारयति । [आमिक्षयोरवदान इति ॥ सूत्रं
शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन आमिक्षयोरवदाय मेधीमवदध्यान्न शमीपर्णकरीर-
सकूनामवधेत् । घासोक्ता ह्येते भवन्तीति ॥ उत्तमेनाऽवदानेन सर्वं विश्वलोपं सम-
वदध्यादित्यौपमन्यवः ॥] प्रत्यनक्ति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो यज इति । वषट्-
कृते जुहोति । अथ प्रतिप्रस्थातोपरमति । [मारुत्यै चर्याया इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
उत्तर एवाऽग्नौ मारुत्या चरेदिति शालीकिः ॥] अथाऽध्वर्युर्वारुण्या अवद्यन्नाह वरुणाया-
ऽनुब्रूहि इति । प्रथमेनाऽवदानेन शमीपर्णकरीरसकूनामिक्षाया इत्यवद्यति । द्वितीयेना-
ऽवदानेन शमीपर्णकरीरसकूनामिक्षां मेषमित्यवदधाति । अभिधारयति । प्रत्यनक्ति । अत्या-
क्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह वरुणं यज इति । वषट्कृते जुहोति । [वरुणस्याऽहं देवयज्यया धर्मभाग-
भूयासम् ।] उपांश्चैककपालेन चरति कायाऽनुब्रूहि, कं यज इति । [कस्याऽहं देवयज्यया
शविष्ठो भूयासम् ।] अथ स्विष्टकृता चरतः । आग्नेयप्रभृतीनामेवाऽध्वर्युरवद्यति । प्रसिद्धमा
ऐन्द्राग्नात् । मारुत्यै प्रतिप्रस्थाता । वारुण्या अध्वर्युराशयादेककपालस्य च । द्विरभि-
धारयतः । न प्रत्यङ्कतः । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह अग्निं स्विष्टकृतं यज इति । वषट्कृत
उत्तरार्धपूर्वार्धयोरितिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहुतः । अत्रैतानि मेक्षणान्याहवनीययोरनुप्रहरतः ।
[मारुत्यै मेक्षणस्याऽनुप्रहरण इति ॥ अनुप्रहरेदिति बौधायनः ॥ नाऽनुप्रहरेदिति
शालीकिः ॥] [अथेदं मारुत्यै मेक्षणमग्नेयौत्तरवेदिकमग्निं परिगृह्याऽनुप्रहरेत् ।] अथैनानि
सः स्यावाभ्यामभिजुहुतः । अथोदञ्चावत्याक्रम्य यथायतनं सुचः सादयित्वा प्राशिन्नम-
वदायेडामवद्यतः । आग्नेयप्रभृतीनामेवाऽध्वर्युरवद्यति । प्रसिद्धमा ऐन्द्राग्नात् । मारुत्यै प्रति-
प्रस्थाता । वारुण्या अध्वर्युराशयादेककपालस्य च । अभिधारयति । अथ प्रतिप्रस्थातोत्तरां
वेदिमुपसर्पति । उपहृतायामिडायामग्नीध्र आदधाति षडवत्तम् । प्राश्नन्ति । मार्जयन्ते ।
अथाऽऽह ब्रह्मणे प्राशिन्नं परिहर इति । परि प्राशिन्नं हरन्ति । अन्वपोऽनु वेदेन ब्रह्मभागम् ।
अथाऽन्वाहार्यं याचति । तस्मिन् यथाश्रद्धं ददाति । उद्भासयन्त्येतद्विवरुच्छिष्टम् ।

४. आसादयन्ति वाजिने । अध्वर्युरेव संप्रैषमाह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः समिधमाधायान्-

ऽमीदमीन् सकृत्सकृत्समृद्धि इति । अथाऽध्वर्युः पृषदाज्यं विहृत्य जुह्वाः समानीयाऽत्याक्रम्याऽऽ-
 श्राव्याऽऽह देवान् यज इति । वषट्कृते जुहुतः । यज यज इति नवाऽनूयाजानिष्ट्वोदश्चावत्याक्रम्य
 यथायतनं सुचोः सादयित्वा वाजवतीभ्यां सुचो व्यूहृतः । शंयुना प्रस्तरपरिधिं संप्रकीर्य
 संप्रसाव्य सुचो विमुच्य तथैव कंसौ वा चमसौ वाऽनाज्यलिप्तौ याचतः । समानी
 वाजिनयोश्चर्या । अध्वर्युरेव प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखाद्रुत् पत्नीः संयाज्य प्राडेत्य ध्रुवा-
 माप्याय्य त्रीणि पाशुबन्धकानि समिष्टयजूंषि जुहोति । एकं प्रतिप्रस्थाता दार्शपौर्ण-
 मासिकं दक्षिणे । अथ पूर्णपात्रविष्णुक्रमैश्चरित्वा न विसृजते व्रतम् । अथ याचत्याज्य-
 स्थालीं सुचुवां सुचं बर्हिः प्रतिवसनीये वाससी वारुण्यै निष्कासें तुषानिति । एतत्
 समादायाऽऽह एहि यजमान इति । अन्वग्यजमानोऽनूची पत्न्यन्तरेण चात्वालोत्करा-
 बुदङ्कुपनिष्क्रम्य यत्राऽऽपस्तद्यन्ति । [अवभृथ इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह
 स्माऽऽहौपमन्यवस्तुषैश्च निष्कासेन चाऽवभृथमवेयादिति ॥] प्रसिद्धोऽवभृथः । [आख्यात-
 मुदकान्तस्य प्रत्यसनम् । आख्यातमाप्लवनम् । आख्यातं समिधां करणम् ।] [यथो
 एतदौपमन्यवस्य कल्पं वेदयन्ते तुषैश्च निष्कासेन चाऽवभृथमवेयादिति । दैवतं प्रदाय
 स्विष्टकृतं प्रयच्छेत्तुषान् संप्रकीर्योदकान्तं प्रत्यस्येत् । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ।] साम चैव
 नाऽऽह देवीराव एष वो गर्भः इति च । अथाऽप्रतीक्षमायन्ति वरुणस्याऽन्तर्हित्यै । प्रपथे
 समिधः कुर्वते एधोऽस्येधिषीमहि इति । एत्याऽऽहवनीयेऽभ्यादधाति समिदसि तेजोऽसि तेजो
 मयि वेहि इति । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठन्ते अपो अन्वचारिषं रसेन समसृक्षमहि । पयस्वां
 अग्न आगमं तं मा सः सृज वर्वसा इति । अत्र विसृजते व्रतम् । अथ पौर्णमासवैमृधाभ्या-
 मिष्ट्वा यजमानायतन उपविश्य । त्रेण्या शलल्या लोहितायसस्य च क्षुरेण शीर्षानि च
 वर्तयते परि च वपते यद् धर्मः पर्यवर्तयदन्तान् पृथिव्या दिवः । अभिरीशान ओजसा वरुणो धीतिभिः
 सह । इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह ॥ अभिस्तिग्मेन शोचिषा तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्यादितं
 वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये शिवेनाऽस्योपवर्तये
 शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ शीर्ष्णस्तदन्तं तत्सत्यं तद्भृतं तच्छक्रेयं तेन शक्रेयं तेन राध्यासम् इति^१ ।
 पुरस्तादेवाऽग्रेऽथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतोऽथोपरिष्ठात् । संतिष्ठन्ते वरुणप्रघास-
 हवींषि । परिवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशास्ते^२ ॥

साकमेधपर्व

बौधायनश्रौ० [५.१०-१७; २१.३-५; २५.२-३; २७.१४]—

१. अथाऽतश्चतुर्षु मासेषु साकमेधहविर्भिर्यक्ष्यमाणो भवति । स उपकल्पयते
 त्रेणीं शललीं लोहितायसस्य च क्षुरं चतुष्टयानि पुरोडाशकपालानि चतस्रश्चस्थाली-

१. यजमानः २. यजमानः । होताऽपि 'परिवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते दिव्यं धामा-
 ऽऽशास्ते' इति सूक्ताकस्याऽऽशीः अनुवर्तयति ।

स्तावन्ति मेषानि पृषदाज्याय दधि । अथ पौर्णमास्या उपवसथेऽग्नयेऽनीकवते पुरोडाश-
मष्टाकपालं निर्वपति साकः सूर्येणोद्यता । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । [आनीकवतस्य
निर्वपण इति ॥ पाणिसंमर्शनेनाऽऽदित्यस्योदयमाकाङ्क्षेतेत्याचार्ययोः ॥ मुष्टिमेव ग्रहीष्य-
न्नित्यौपमन्यवः ॥ साकः रश्मिभिः प्रचरेदित्यौपमन्यवीपुत्रः ॥ एष एवाऽपि सांतपनस्य
प्रदेशः । एष कैडिनस्य ॥] अथ मध्यंदिने मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यश्चरुं निर्वपति । सा प्रसिद्धेष्टिः
संतिष्ठते । अथाऽस्यैतदहर्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो वत्सा अपाकृता भवन्ति । अथ सायः
हुतेऽग्निहोत्रे सर्वासां दुग्धे गार्हपत्ये गृहमेधीयं चरुः श्रपयित्वाऽभिघार्योदञ्चमुद्रासयति ।
अथैतां पात्रीं निर्णिज्योपस्तीर्य तस्यामेनमसंघ्नन्निवोद्धरति । [गृहमेधीयस्य मन्त्राऽमन्त्र
इति ॥ मन्त्रवान् स्यादिति बौधायनः ॥ तूष्णीक इति शालीकिः ॥ गृहमेधीयस्य निर्वपण
इति ॥ पवित्रवता पात्रेण मन्त्रवन्तमिति बौधायनः ॥ अपवित्रेण तूष्णीकमिति शालीकिः ॥
गृहमेधीयस्य श्रपण इति ॥ पयसि श्रपयेदिति बौधायनः ॥ अप्स्विति शालीकिः ॥ शाक-
लानां करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] सर्पिरासेचनं
कृत्वा प्रभूतमाज्यमानीयाऽन्तर्वेद्यासादयति । [गृहमेधीयस्याऽऽसादन इति ॥ दात एव
बर्हिष्यासादयेदिति बौधायनः ॥ येऽन्येऽनुपयुक्ताः कुशाः स्युस्तेष्विति शालीकिः ॥]
अथ अग्नये, सोमाय इत्याज्यभागाभ्यां चरति । अथोपस्तीर्य पूर्वार्धाच्चरोरवद्यन्नाह मरुद्भ्यो
गृहमेधिभ्योऽनुब्रूहि इति । पूर्वार्धादवदायाऽपरार्धादवद्यति । अभिघारयति । प्रत्यनक्ति ।
अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह मरुतो गृहमेधिनो यज इति । वषट्कृते जुहोति । [गृहमेधीयस्य
चर्याया इति ॥ उपाः शु चरेदिति बौधायनः ॥ उच्चैरिति शालीकिः ॥] अथ स्विष्टकृता
चरति । इडान्तो गृहमेधीयः संतिष्ठते । [शाकलानामनुप्रहरण इति ॥ अनुप्रहरेदिति
बौधायनः ॥ नाऽनुप्रहरेदिति शालीकिः ॥] पूर्णदर्व्याय क्षामकाषं परिशिनष्टि । प्रतिवेशः
स्त्रीकुमारेभ्यः पचन्ति । [प्रतिवेशस्य श्रपण इति ॥ अन्वाहार्यपचने श्रपयेदिति बौधायनः ॥
ग्रामान्नाविति शालीकिः ॥] आशिता भवन्ति । आज्ञते । अभ्यञ्जते । अनु वत्सान्
वासयन्ति । सवात्योरेवैताः रात्रिं वत्सं बध्नन्ति । [अथाऽयं गृहमेधीय आज्यभागप्रति-
पत्केडान्तः संतिष्ठते । तत्र नाऽस्ति प्राशित्रम् । तूष्णीः समकाञ्चाकलान् परिधीनश्ना-
वनुप्रहरेत् । अभिवान्यायामविद्यमानायाः संधिनीक्षीरं दोहयेदिति ।] अथाऽध्वर्युरपररात्र
आद्रुत्य नित्यवत्सायै पयसाऽग्निहोत्रं जुहोति । अथैतां दर्वीं निर्णिज्योपस्तीर्य तस्यामेतः
सर्वश एव क्षामकाषमवदधाति । द्विरभिघारयति । अथ पुरोनुवाक्यामन्वाह पूर्णां दर्विं
परा पत सुपूर्णा पुनरापत । वलेव वि क्रीणावहा इषमूर्जः शतक्रतो इति । यजति देहि मे ददामि ते
नि मे घेहि नि ते दधे । निहारमिन्नि मे हरा निहारं निहरामि ते स्वाहा इति । ऋषभ एहि इति
ऋषभस्य रवथे जुहुयात् । ब्रह्मणो हिंकार इत्येतदपरम् । गार्हपत्ये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने
खाहा इति । [पूर्णदर्व्यस्य होम इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ व्याहृतीरुक्त्वा ब्रह्मणो हिंकारे
जुहुयादिति गौतमः ॥]

२. अथ पृष्ठ्याः स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः पुरोडाशः सप्तकपालं
निर्वपति साकः सूर्येणोद्यता । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथ तदानीमेव पृष्ठ्याः

स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय निर्वपत्याग्नेयमष्टाकपालमिति पञ्च संचराण्यैन्द्राग्नमेकादशकपालमैन्द्रं चरं वैश्वकर्मणमेककपालमिति । त्वचं पुरोडाशानां ग्राहयित्वा श्रपयित्वाऽभिवास्य प्राडेत्याऽऽप्येभ्यो निनीय स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव प्रसिद्धं पौरोडाशिकं त्र्ययजुषा तूष्णीं चतुर्थम् । पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्नीध्रं हरति । यदाग्नीध्रं हरित्यथ चात्वालस्याऽऽवृता चात्वालं परिलिखति । उत्तरवेदेरावृतोत्तरवेदिं निवपति । उत्तरनाभिमुत्साद्याऽग्नेरावृताऽग्निं प्रणयति । अग्निवत्युत्तरं परिग्राहं परिगृह्य योयुपित्वा तिर्यश्च स्फ्यं स्तब्ध्वा संप्रैषमाह प्रोक्षणीरासादयेध्माबर्हिंरुपसादय सुवं च सुचश्च संमृड्ढि तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणीं पत्नीं संनह्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेहि इति । आहृतासु प्रोक्षणीषूदस्य स्फ्यं मार्जयित्वेध्माबर्हिंरुपसाद्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखादुत्थ सुवं च सुचश्च संमार्ष्टि तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणीं पत्नीं संनह्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेति । आज्यं च प्रोक्षणीश्चोत्पूय प्रसिद्धं यथा वैश्वदेवहवींष्येव संतिष्ठतेऽन्यत्र वाजिनात् । [विश्वकर्मणोऽहं देवयज्या विश्वानि कर्माण्यवबन्धीय ।] अथ पूर्णपात्रविष्णुकर्मैश्चरित्वा न विसृजते व्रतम् ॥

३. महापितृयज्ञं करिष्यन्पुनः कल्पयते व्रीहींश्च यवांश्च षट् कपालान्यभिवा-
न्यायै दुग्धमर्धपात्रं द्वे नवे पात्रे इक्षुशलाकां त्रीन् पर्णसेवान् समूलं बर्हिर्वर्षीयांसमिध्म-
मिध्मात्परिश्रयणं कशिपूपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने दशां स्फ्यमुदकुम्भौ यज्ञायुधानीति ।
[महापितृयज्ञस्य बर्हिणीति ॥ समूलमेतद्बर्हिर्भवतीति बौधायनस्तत्र नास्ति प्रत्यभिमर्शनं
इति ॥ सातिशेषं भवतीति शालीकिस्तत्र सिद्धः प्रत्यभिमर्शन इति ॥ निर्मूललूनमेवैत-
ल्लुनुयादित्यौपमन्यवः ॥] [अथाऽयं महापितृयज्ञः ॥ तस्य कः कर्मण उपक्रमो भवतीति ।
बर्हियजुषा कुर्याद् देवानां पितॄणां परिषृतमसि देवपितृबर्हिर्मा त्वाऽन्वज्वा तिर्यक्पर्वं ते राध्यासम्
इति ।] अथ गार्हपत्यं परिस्तृणाति । तमुत्तरेणैकैकं स सादयति कशिपूपबर्हणे आज्ञ-
नाभ्यञ्जने दशां स्फ्यमुदकुम्भौ यज्ञायुधानीति । अथ यज्ञोपवीतं कृत्वोत्तरेण गार्हपत्य-
मुपविश्य [पाणी संमृशीत । परिस्तृणीयात् । पात्राणि निर्णिज्य स सादयेत् । ब्रह्माणं
दक्षिणत उपवेश्याऽत्रैवोत्तरत उदपात्रं निधाय जघनेन गार्हपत्यं स्फ्यं निदध्यात् स्फ्योपरि
पात्रीम् । पात्र्यां व्रीहीनावपेत् । शूर्पादानप्रभृति कर्मान्तस्तायत आप्यान्तः ।] पवित्रवत्या-
ऽग्निहोत्रहवण्या निर्वपति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूणो हस्ताभ्यां सोमाय पितृमते
जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपति । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यो
जुष्टं निर्वपामि इति चतुरो यवानाम् । एतामेव प्रतिपदं कृत्वा पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यो जुष्टं निर्वपामि
इति चतुर एव यवानाम् । तेषां व्रीहिष्वेव हविष्कृतमुद्रादयति । उपोद्यच्छन्ते यवान् । [तेषां
व्रीहिष्वेव हविष्कृतमुद्रादयत्युपोद्यच्छन्ते यवानिति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
बौधायन आवपनप्रभृति यवेषु मन्त्रकर्माभ्यावर्तेत । तन्त्रं तु हविष्कृतं स्यादिति ॥]
हविष्कृता वाचं विसृजते । समानं कर्म आ अधिवपनात् । अध्युप्य दक्षिणार्धं गार्हपत्यस्य
षट् कपालान्युपदधाति । अथैतान् यवानुलूखले परिक्षुध्य गार्हपत्य एककपालमधिश्रित्य
भर्जयन्ति । बहुरूपा धानाः कृत्वा तेषामर्धा धाना भवन्ति । अथैतान् सकून् कुर्वन्ति ।
कृतानि पिष्टानि समुप्य संयुत्याऽधिपृणकिं पुरोडाशं षट्कपालम् । अथोत्तरतो भस्-

मिश्रानङ्गाराभिरूह्य तेषु नवं पात्रमधिश्रित्य तिरः पवित्रमाज्यमानीय तिरः पवित्रं धाना
 आवपति । अथैतदभिवान्यायै दुग्धमर्धपात्रं याचति । [अथैतदभिवान्यायै दुग्धमर्धपात्र-
 मिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अथ यदि कनीयः स्यादङ्गिरभ्युन्नीयेति शालीकिः ॥]
 तस्मिन् स्तिरः पवित्रं सक्तूनोप्यैकयेक्षुशलाकयोपमन्थति । दक्षिणोपमन्थति । अना-
 रभ्योपमन्थतीति ब्राह्मणम् । अथोत्तरतो भस्ममिश्रानङ्गाराभिरूह्य तेष्वधिभ्रयति । त्वचं
 पुरोडाशस्य ग्राहयित्वाऽभिवान्याऽऽत्रैवाऽऽप्येभ्यो निनयति । [आप्यनिनयन इति ॥
 जघनेन गार्हपत्यमाप्येभ्यो निनयेदिति बौधायनः ॥ अग्रेणाऽतिहायेति शालीकिः ॥ अग्रेण
 वा जघनेन वेत्यौपमन्यवः ॥] [जघनेन गार्हपत्यमाप्येभ्यो निनयेत् ।] दक्षिणत एष
 समः स्थण्डिलः कृतो भवति । तदेतां चतुरश्रां वेदिमालिखत्येव । न खनति । [वेद्यै करण
 इति ॥ उपनिष्कभ्याऽग्न्यगारादक्षिणे पूर्वोऽवान्तरदेशे कुर्यादिति बौधायनः ॥ अन्तरेचैतां
 दिशमिति शालीकिः ॥ अन्वाहार्यपचनमेवाऽभित इत्यौपमन्यवः ॥] तस्यै मध्यतोऽन्वा-
 हार्यपचनमुपसमाधाय । [अन्वाहार्यपचनस्योपसमिन्धन इति ॥ स्वे स्थान उपसमिन्धी-
 रन्निति बौधायनः ॥ इधमेवाऽतिप्रणयेयुरिति शालीकिः ॥] स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव
 प्रसिद्धं पौरोडाशिकं त्रिर्यजुषा तूष्णीं चतुर्थम् । अपहतोऽरुः पृथिव्यै देवपितृयजन्ये इति ।
 अपहतोऽरुः पृथिव्या अदेवपितृयजनः इति । एवमेतेष्वधिकरणेषु कुर्याद्यत्र देवाश्च पितरश्च
 संनिगच्छेयुः ।] पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्नीध्र-
 स्त्रिर्हरति । यदाग्नीध्रस्त्रिर्हरत्यथोत्तरं परिग्राहं परिगृह्णा योयुपित्वा तिर्यश्च स्फ्यं स्तब्ध्वा
 संप्रैषमाह प्रोक्षणीरासादयेध्माबर्हिरुपसाद्य सुवं च सुचश्च संमृडव्याज्येनोदेहि इति । आहतासु
 प्रोक्षणीषूदस्य स्फ्यं मार्जयित्वेध्माबर्हिरुपसाद्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मृडावृत्य सुवं च सुचश्च
 संमार्ष्टि । आज्येनोदेति । आज्यं च प्रोक्षणीश्चोत्पूय प्रसिद्धं पञ्चगृहीतानि वा षड्गृहीतानि
 वाऽऽज्यानि गृहीत्वा । [आज्यग्रहाणां ग्रहण इति ॥ पञ्चगृहीतानि वा षड्गृहीतानि वा
 स्युरिति बौधायनः ॥ षड्गृहीतान्येवेति शालीकिः ॥] प्रोक्षणीभिरुपोत्तिष्ठति । इध्मं
 प्रोक्षति । वेदिं प्रोक्षति । बर्हिः प्रोक्षति । बर्हिरासन्नं प्रोक्ष्योपनिनीय पुरस्तात्समूलं प्रस्तरं
 गृह्णाति तूष्णीम् । [प्रस्तरस्य मन्त्राऽमन्त्र इति ॥ ग्रहणं चैवाऽस्य न्यसनं च तूष्णीकं
 स्यात् । अथेतरन्मन्त्रवत्स्यादिति बौधायनः ॥ संभरणं चैवाऽस्य न्यसनं च तूष्णीकं
 स्यात् । अथेतरन्मन्त्रवत्स्यादिति शालीकिः ॥ यावन्न्यसनमेव तूष्णीकं स्यात् । अथेतर-
 न्मन्त्रवत्स्यादित्यौपमन्यवः ॥] अथ प्राचीनाचीतं कृत्वा त्रिरपसलैः परिस्तृणन् पर्येति ।
 संतरामेवाऽग्रे । अथ वितराम् । अथ वितराम् । [त्रिरपसलैः परिस्तृणन् पर्येतीति ॥
 सूत्रं बौधायनस्य ॥ यथोत्पन्नैर्नैव सः स्तृणीयादिति शालीकिः ॥ वेद्यै स्तरण इति ॥ सूत्रं
 बौधायनस्य ॥ ऊर्णाग्रदंसं त्वा स्तृणामि इत्येव त्रूयादिति शालीकिः ॥] अथ यज्ञोपवीतं कृत्वा
 यथेतं त्रिः पुनः प्रतिपर्येति । अथ प्रस्तरपाणिद्वौ परिधी परिदधाति मध्यमं चैव दक्षिणं च ।
 [परिधीनां परिधान इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः सर्वान् परिधीन्
 परिदध्यात् । पितृकर्मणि क्रियमाणे दक्षिणतश्चोत्तरमुपनिदध्यादिति ॥] ऊर्ध्वं समिधा-
 वादधाति । विधृती तिरश्ची सादयति । विधृत्योः समूलं प्रस्तरं न्यस्यति तूष्णीम् । प्रस्तरे

जुह्वम् । बर्हिषीतरे । एता असदन् इति समभिमुख्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखाऽऽनुपूर्व-
हवीं प्युद्वासयत्युपस्तीर्णमिधारितं पुरोडाशमभिधार्य धानाः करम्भमिति । [हविषामुद्वा-
सन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ यथाशृतमेव हवीं प्युद्वासयेदिति शालीकिः ॥] तेषा-
मेकैकमनूचीनान्युदाहरन्ति । दक्षिणतः पुरोडाशमासादयति । उत्तरतो धानाः । उत्तरतः
करम्भम् । [हविषां संचरोऽध्वर्योश्चेति ॥ दक्षिणेनेति बौधायनः ॥ उत्तरेणेति शालीकिः ॥]
दक्षिणत एतत्परिश्रयणं कशिपूपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने दशां स्प्यमिति निदधाति । उत्तरत
उदकुम्भौ । दक्षिणत उपविशतो ब्रह्मा च यजमानश्चोत्तरतोऽध्वर्युश्चाऽऽग्नीध्रश्च ।

४. अथेध्मात्समिधमाददान आह अग्नये देवेभ्यः पितृभ्यः समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति ।
अभ्यादधातीध्मं सकृद्वा त्रिर्वा । परि समिधं शिनष्टि । वेदेनोपवाजयति । अनूक्तासु
सामिधेनीषु सुवेणाऽऽधारमाधारयति संमृष्टे सुग्भ्यामुत्तरम् । अथाऽसंस्पर्शयन् सुचावु-
दङ्मुत्थाक्रम्य जुह्वा ध्रुवां समज्य सादयित्वा सुचौ प्रवरं प्रवृणीते । अथाऽऽध्रावयति
ओ ध्रावय, अस्तु ध्रावद्, अग्निर्देवो होता देवान् पितॄन् यक्षत् सीद इत्येतावान् प्रवरः । [प्रवर
इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ विद्वांश्चिकित्वन् इत्यौपमन्यवः ॥] सीदति होता । प्रसव-
माकाङ्क्षति । प्रसूतः सुचावादायाऽत्याक्रम्याऽऽध्राव्याऽऽह समिधो यज इति । वषट्कृते
जुहोति । यज यज इत्यपबर्हिषश्चतुरः प्रयाजानिध्वोदङ्मुत्थाक्रम्य संस्त्रावेणाऽऽनुपूर्व-
हवीं प्यभिधारयति । अथ अग्नये, सोमाय इत्याज्यभागाभ्यां चरति । अथोदङ्मुत्थाक्रम्य
यथायतनं सुचौ सादयित्वा प्राचीनावीतानि कुर्वते । विपरिक्रामन्त्येत ऋत्विजः । विपरि-
हरन्ति हवींषि । उत्तरतः पुरोडाशमासादयति । दक्षिणतः करम्भम् । आशय एव धाना
भवन्ति । उत्तरत उपविशतो ब्रह्मा च यजमानश्च । दक्षिणतोऽध्वर्युश्चाऽऽग्नीध्रश्च ।
[विपरिक्रामन्त्येत ऋत्विजो विपरिहरन्ति हवींषीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नाऽत्र
हवींषि विपरिहरेयातामिति शालीकिः ॥ नाऽत्र हवींषि विपरिहरेयातामध्वर्युश्चैवा-
ऽऽग्नीध्रश्च विपरिक्रामेतामित्यौपमन्यवः ॥] [विपरिक्रामन्त्येत ऋत्विजः । अध्वर्यु-
रनन्तरोऽग्नेः स्यादथ यजमानोऽथ ब्रह्माऽथाऽऽग्नीध्रः । अपि वाऽऽग्नीध्र एवाऽनन्तरोऽग्नेः
स्यादथ यजमानोऽथ ब्रह्माऽथाऽध्वर्युः । विपरिहरन्ति हवींष्यग्नेण पुरोडाशं धाना
जघनेन धानाः करम्भमिति । एवं विपरिहृतानामेवैतेषां हविषामेकैकमुद्वासयेत् ।]
अथैनत्परिश्रयन्ति । तस्योदीचीं द्वारं कुर्वन्ति । स यो बलवांस्तमाह अनेनोदकुम्भेन संततया
धारया त्रिरपसलैः परिषिञ्चन् परीहि इति । स तथा करोति । निधाय कुम्भं यथेतं त्रिः पुनः
प्रतिपर्येति । अथोपस्तीर्य पूर्वार्धात्पुरोडाशस्याऽवद्यन्नाह सोमाय पितृमतेऽनु स्वधा इति ।
पूर्वार्धात्पुरोडाशस्याऽवद्यति । पूर्वार्धाद्धानानाम् । पूर्वार्धात्करम्भस्य । अभिधारयति ।
प्रत्यनक्ति । दक्षिणतोऽवदायोदङ्मुत्थाक्रम्यति । ओ स्वधा इत्याध्रावयति । अस्तु स्वधा इति
प्रत्याध्रावयति । [आध्रावण इति ॥ ओ स्वधा इति बौधायनः ॥ आ स्वधा इति शालीकिः ॥
स्वधा इत्यौपमन्यवः ॥] सोमं पितृमन्तं स्वधा कुर्व इति । ये स्वधा इत्यागूः ये स्वधामहे

इति वा^१ । स्वधा नमः इति वषट्करोति^२ । वषट्कृते जुहोति । अथोपस्तीर्य मध्याह्नानानामवद्यन्नाह पितृभ्यो बर्हिषद्भ्योऽनु स्वधा इति । मध्याह्नानानामवद्यति । मध्याह्नकरम्मस्य । मध्याह्नपुरोडाशस्य । अभिधारयति । प्रत्यनक्ति । दक्षिणतोऽवदायोदङ्ङतिक्रामति । ओ स्वधा इत्याश्रावयति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावयति । पितृन् बर्हिषदः स्वधा कुरु इति । ये स्वधा इत्यागूः ये स्वधामहे इति वा । स्वधा नमः इति वषट्करोति । वषट्कृते जुहोति । अथोपस्तीर्याऽपरार्धात्करम्मस्याऽवद्यन्नाह पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्योऽनु स्वधा इति । अपरार्धात्करम्मस्याऽवद्यति । अपरार्धात्पुरोडाशस्य । अपरार्धाह्नानानाम् । अभिधारयति । प्रत्यनक्ति । दक्षिणतोऽवदायोदङ्ङतिक्रामति । ओ स्वधा इत्याश्रावयति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावयति । पितृनग्निष्वात्तान् स्वधा कुरु इति । ये स्वधा इत्यागूः ये स्वधामहे इति वा । स्वधा नमः इति वषट्करोति । वषट्कृते जुहोति । अथोपस्तीर्य दक्षिणार्धात्पुरोडाशस्याऽवद्यन्नाह अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृतेऽनु स्वधा इति । दक्षिणार्धात्पुरोडाशस्याऽवद्यति । दक्षिणार्धाह्नानानाम् । दक्षिणार्धात्करम्मस्य । द्विरभिधारयति । न प्रत्यनक्ति । दक्षिणतोऽवदायोदङ्ङतिक्रामति । ओ स्वधा इत्याश्रावयति । अस्तु स्वधा इति प्रत्याश्रावयति । अग्निं कव्यवाहनं स्विष्टकृतं स्वधा कुरु इति । ये स्वधा इत्यागूः ये स्वधामहे इति वा । स्वधा नमः इति वषट्करोति । वषट्कृते दक्षिणार्धपूर्वार्धेऽतिहाय पूर्वा आहुतीजुहोति । अत्रैतन्मेक्षणं शलाकामित्यन्नावनुप्रहरति । अथैने सः स्वावेणाऽभिजुहोति ।

अथ दक्षिणतोऽत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा यज्ञोपवीतानि कुर्वते^३ । विपरिक्रामन्त्येत ऋत्विजः । विपरिहरन्ति हवींषि । दक्षिणतः पुरोडाशमासादयति । उत्तरतः करम्मम् । आशय एव धाना भवन्ति । दक्षिणत उपविशतो ब्रह्मा च यजमानश्चोत्तरतोऽध्वर्युश्चाऽऽग्नीध्रश्च । अथ प्राशिन्नमवदायेडामवद्यति । उपहूतायामिडायामग्नीध आदधाति षडवत्तम् । निघ्रेण भक्षयित्वा बर्हिषि संन्यस्यन्ति । अथ प्राचीनावीतानि कृत्वा^३ पुरोडाशं धानाः करम्ममिति पात्र्याः संप्रयौति । तिसृषु रुक्तिषु पर्णसेवेषु त्रीन् पिण्डान् ददाति । एतत्ते तताऽसी ये च त्वामनु इति दक्षिणस्याः श्रोण्याम् । एतत्ते पितामहाऽसी ये च त्वामनु इति दक्षिणेः से । एतत्ते प्रपितामहाऽसी ये च त्वामनु इत्युत्तरेः से । [आख्यातं पिण्डानां दानम् । आख्यातमाञ्जनाभ्यञ्जनयोः । आख्यातं पिण्डानामनुप्रहरणम् ।] उत्तरस्याः श्रोण्यां लेपं निमार्ष्टि एषा शुष्माकमियमस्माकमिमां वयं जीवा जीवन्तोऽनुसंचरन्तो भूयास्म इति । अत्र पितरो यथाभागं मन्दध्वम् इत्युक्त्वा उदञ्चो निष्क्रम्य यज्ञोपवीतानि कृत्वाऽऽहवनीयमुपतिष्ठन्ते^३ सुसंदृशं त्वा वयं मधवन् मन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुरः स्तुतो यासि वशाः अनु । योजा न्विन्द्र ते हरोऽम् इति । आ तमितोरुपतिष्ठन्ते । अथ गार्हपत्यमुपतिष्ठन्ते^३ अक्षजमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्टया मती । योजा न्विन्द्र ते हरोऽम् इति । आ तमितोरुपतिष्ठन्ते । अथ प्राचीनावीतानि कृत्वाऽन्वाह्यैर्यपचनमभिप्रपद्यन्ते^३ । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतुपन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरः । परेत पितरः सोम्याः^३ इत्या तमितो-

१. होता २. ऋत्विजो यजमानश्च ३. अस्य मन्त्रस्योपस्थाने विनियोगः सुबोधिनी-टीकासारेण ।

रुपतिष्ठन्ते^१ । स यो बलवाःस्तमाह अनेनोदकुम्भेन संततया धारया त्रिरपसलैः परिषिञ्चन् परीहि इति । स तथा करोति । निधाय कुम्भं यथेतं त्रिः पुनः प्रतिपर्येति । आहरण-
प्रीत्येव कशिपूपबर्हणे आज्ञनाभ्यञ्जने ददाति^२ । अथ वासाःसि ददाति^३ । अथ षड्-
भिर्नमस्कारैर्विपर्यासमुपतिष्ठते^४ । अथ वीरं याचते^५ । अथैनानुत्थाप्य प्रवाह्य तिसृभिर्मन
आह्वयते^६ मनो न्वाहुवामहे, आ न एतु मनः पुनः, पुनर्नः पितरो मनः इति । अत्रैतान् पिण्डान्
सह पर्णसेवैरग्रावनुग्रहरति^७ । व्यवच्छिन्दन्ति परिश्रयणम् । अथ यज्ञोपवीतानि कुर्वते^८ ।
अथ संप्रैषमाह ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः समिधमाधायाऽमीदग्नीन् सकृत्सकृत्संमृडि इति । अथ जुह्वपश्रुता-
वादायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह देवी यज इति । वषट्कृते जुहोति । यज यज इत्यप-
बर्हिषौ द्वावनूयाजाविश्वोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा वाजवतीभ्यां सुचौ
व्यूहति । शंयुना प्रस्तरपरिधिं संप्रकीर्य संप्रसाव्य सुचौ विमुच्याऽत्रैव समिष्टयजुर्जुहोति ।
अथैतेषां शस्त्राणां द्वेद्वे उदाहरन्ति । अथ यज्ञोपवीतानि कृत्वा प्राजापत्ययर्चा गार्हपत्य-
मुपतिष्ठन्ते^९ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः इति । अत्रैतां द्वितीयां जपति यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्याम्
इति । संतिष्ठते महापितृयज्ञः । [सर्वमेव याजमानं पितृयज्ञ उत्सीदेत्पशुबन्धे सौम्ये-
ऽध्वरेऽन्यत्र तत्रोत्पत्तिवचनात् ।]

५. यावदेवाऽत्राऽध्वर्युश्चेष्टति तावदेष प्रतिप्रस्थाता प्रतिपूरुषं त्रैयम्बकानेक-
कपालानेकातिरिक्तान् गार्हपत्ये श्रपयित्वाऽनभिघारितानुद्वास्य सते वा शरावे वा जर-
त्कोशबिले वा समुप्योपास्ते । [त्रैयम्बकाणां मन्त्राऽमन्त्र इति ॥ मन्त्रवन्तः स्युरिति
बौधायनः ॥ तूष्णीका इति शालीकिः ॥ अप्येनानेककपाल एव श्रपयेदित्यौपमन्यवः ॥]
[क उ खलु त्रैयम्बका निरुप्यन्त इति । उद्वास्य हवीं वि रुद्रायाऽम्बिकायै जुष्टं निर्वपामि इति
यस्य मन्त्रवन्तः । काय इति कार्यं निर्वपेत् । कायाऽनुब्रूहि इत्यनुब्रूयात् । कं यज इति यजेत् ।]
अथ याचति^१ नीललोहिते सूत्रे अन्तमं पर्णमन्तमागारादेकोऽमुकमुदपात्रमिति । [एको-
ऽमुकस्य हरण इति ॥ अन्वाहार्यपचनाद्धरेदिति बौधायनः ॥ ग्रामाग्रेरिति शालीकिः ॥]
एतत्समादाय गार्हपत्यमुपतिष्ठन्ते यावन्तो गृह्याः स्मस्तेभ्यः कमकरं पशूनां शर्माऽसि शर्म
यजमानस्य शर्म मे यच्छ इति । [एतत्समादाय गार्हपत्यमुपतिष्ठन्त इति ॥ स ह स्माऽऽह
बौधायन उभय एष मन्त्रो भवत्याध्वर्यवश्च याजमानश्चेति ॥ याजमान एवेति शालीकिः ॥]
अथोदश्चो निष्क्रम्य तां दिशं यन्ति^२ यत्राऽस्य नित्यसंपन्नश्चतुष्पथः स्पष्टो भवति । यद्यु वै न
भवत्यनसा वा रथेन वा वियान्ति । तदेतदेकोऽमुकमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याऽन्तमे पर्णे
सर्वेषां त्रैयम्बकाणां सकृत्सकृत्समवदाय जुहोति एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्य आबुस्ते रुद्र
पशुस्तं जुषस्वैष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राऽम्बिकया तं जुषस्व भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजमथो
अस्मभ्यं भेषजं सुभेषजं यथाऽसति । सुगं मेषाय मेघ्या अवाऽम्ब रुद्रमदिमहाव देवं त्रैयम्बकम् । यथा
नः श्रेयसः करद्यथा नो वस्यसः करद्यथा नः पशुमतः करद्यथा नो व्यवसाययात्स्वाहा इति । अत्रैत-
वन्तमं पर्णं यं द्वेष्टि तस्य संचरे पशूनां न्यस्यति । यद्यु वै न द्वेष्ट्याखवटे न्यस्यति ।

अथैतेषां त्रैयम्बकाणामेकैकं व्युत्पन्नं च्छति । द्वौ यजमाना य । अथैतमग्निं त्रिः प्रदक्षिणं परि-
यन्ति^१ दक्षिणानूरुतुपाघ्नानाः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-
र्मुक्षीय माऽमृतात् इति । सकृत्परीत्योत्तरतस्तिष्ठन्ति । उत्खिदन्ति । भगाय त्वा इति लिप्सन्ते ।
एवमेव द्वितीयं परियन्ति । एवं तृतीयम् । [त्रैयम्बकाणामुत्खेदन इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥
अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनस्त्रिरेवाऽव्यतिषजन् परीत्य त्रिरुत्खिदेत् भगाय त्वा भगाय त्वा
इति ॥] अथैषा पतिकामा त्रिरपसलैः पर्येति सव्यमूरुमुपाघ्नाना त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं
पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मा पतेः इति । सकृत्परीत्योत्तरतस्तिष्ठति ।
उत्खिदति । भगाय त्वा इति लिप्सते । एवमेव द्वितीयं पर्येति । एवं तृतीयम् । अथैनान्
यजमानस्याऽञ्जलावावपति^२ प्रजया त्वा सः सृजामि मासरेण सुरामिव इति । तान् यजमानः
पत्न्यञ्जलावावपति प्रजया त्वा पशुभिः सः सृजामि मासरेण सुरामिव इति । तान् पत्नी दुहित्रे
भगकामायै भगेन त्वा सः सृजामि मासरेण सुरामिव इति । [अथैनान् यजमानस्याऽञ्जला-
वावपतीति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो यजमानस्यैवैकस्य मन्त्रेणा-
ऽऽवपेत्तूष्णीं पत्न्यै च भगकामायै चेति ॥]

अथैनान् मूत ओष्य नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां विप्रथ्य शुष्के वा स्थाणौ
विशाखायां वा बध्नाति । [अथैनान्मूत ओष्य नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां विप्रथ्य शुष्के
वा स्थाणौ विशाखायां वा बध्नातीति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] [क
उ खलु त्रैयम्बकाणां सौविष्टकृतं भवतीति । यदेवाऽतो मूत आसजतीति ।] एष ते रुद्र
भागस्तं जुषस्व तेनाऽवसेन परो मूजवतोऽतीह्यवततधन्वा पिनाकहस्तः कृतिवासोऽम् इत्या तमितोरुप-
तिष्ठन्ते^३ । अथाऽपो व्यतिषिच्य परास्य पात्रमनवेक्षमाणा आयन्ति । [उदपात्रस्योपनि-
नयन इति ॥ प्रदक्षिणमुपनिनयेदिति बौधायनः ॥ यथोपपादमिति शालीकिः ॥] हस्त-
पादान् प्रक्षाल्यैतेनैव यथेतमेत्याऽऽदित्यं चरुं पुनरेत्य निर्वपति । इयं वा अदितिरस्यामेव
प्रतितिष्ठन्तीति ब्राह्मणम् । [अदित्या अहं देवयज्ययाऽऽहसो मुच्येय ।] सा प्रसिद्धेष्टिः
सन्तिष्ठते । अत्र विसृजते व्रतम् । अथ पौर्णमासवैमृधाभ्यामिष्ट्वा यजमानायतन उपविश्य ।
त्रेण्या शलल्या लोहितायसस्य च क्षुरेण शीर्षिणि च वर्तयते परि च वपते य इमां महौ
पृथिवीमृतुभिः पर्यवर्तयद्यो अस्याः पृथिव्यास्त्वचि निवर्तयत्योषधीः । अभिरीशान ओजसा वरुणो धीतिभिः
सह । इन्द्रो मरुद्भिः सखिभिः सह ॥ अभिस्तिग्मेन शोचिषा तप आक्रान्तमुणिहा । शिरस्तपस्यादितं
वैश्वानरस्य तेजसा । ऋतेनाऽस्य निवर्तये सत्येन परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये शिवेनाऽस्योपवर्तये
शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ शीर्ष्णस्तद्वतं तत्सत्यं तद्व्रतं तच्छक्रेयं तेन शक्रेयं तेन राध्यासम् इति^४ ।
पुरस्तादेवाऽप्रेऽथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतोऽथोपरिष्ठात् । सन्तिष्ठन्ते साकमेधहवींषि ।
इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते इत्याशास्ते^५ ॥

१. यजमानतत्पुत्रादयः २. पुत्रादिः सर्वः ३. यजमानः ४. यजमानः । होताऽपि
'इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते दिव्यं धामाऽऽशास्ते' इति सूक्तवाकस्याऽऽशीर्ष्वनुवर्तयति ।

शुनासीरीयपर्व

बौधायनश्रौ० [५.१८; २१.६; २५.३; २७.१४; २८.१२]—

१. अथाऽतश्चतुर्षु मासेषु शुनासीरीयहविर्भिर्यक्ष्यमाणो भवति । [शुनासीरीय-
परुष इज्याया इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो य एवाऽत ऊर्ध्व-
मापूर्यमाणपक्ष आगच्छेत्स्मिञ्शुनासीरीयपरुषा यजेत । त्रयोदशस्यैवैतन्मासस्याऽपी-
ज्यार्थं दृष्टं भवतीति ॥] स उपकल्पयते त्रेणी५ शललीं लोहितायसस्य च क्षुरं पञ्चतयानि
पुरोडाशकपालानि पञ्च चरुस्थालीस्तावन्ति मेक्षणानि पृषदाज्याय दधीति । अथाऽस्यैता५
रात्रिं वायवे वत्सा अपाकृता भवन्ति । प्रातर्वायव्यं पयो दोहयति सांनार्यस्य वाऽऽवृता
तूर्णीं वा । अथ प्रातर्हुतेऽग्निहोत्रे पृष्ठया५ स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय निर्वपत्याग्नेयमष्टाकपालमिति
पञ्च संचराण्यैन्द्राग्रं द्वादशकपालं वैश्वदेवं चरुमिन्द्राय शुनासीराय पुरोडाशं द्वादशकपालं
वायव्यं पयः सौर्यमेककपालमिति । त्वचं पुरोडाशानां ग्राहयित्वा श्रपयित्वाऽभिवास्य
प्राडेत्याऽऽप्येभ्यो निनीय स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव प्रसिद्धं पौरोडाशिकं त्रिर्यजुषा तूर्णीं
चतुर्थम् । पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्नीध्रिर्हरति ।
[वैथे करण इति ॥ दार्शपौर्णमासिकी स्यादिति बौधायनः ॥ पाशुबन्धिकीति शालीकेः ॥]
स यद्युत्तरवेदिं करोति यथा महाहवी५प्येव५ संतिष्ठते । यद्यु वा उत्तरवेदिं न करोति
यथा वैश्वदेवहवी५प्येव५ संतिष्ठतेऽन्यत्र वाजिनात् । [वायोरहं देवयज्यया रत्नभागभूयासम् ।
सूर्यस्याऽहं देवयज्यया सुदशीको भूयासम् ।] अथ पूर्णपात्रविष्णुकमैश्चरित्वा विसृजते व्रतम् ।
अथ पौर्णमासवैमृधाभ्यामिष्ट्वा यजमानायतन उपविश्य । त्रेण्या शलल्या लोहितायसस्य
च क्षुरेण शीर्षेभि च वर्तयते परि च वपते एकं मासमुदसृजत्परमेष्ठी प्रजाभ्यः । तेनाऽऽभ्यो मह
आवहदमृतं मर्त्याभ्यः ॥ प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्याऽमृतम् । येन मासा अर्धमासा क्रतवः परि-
वत्सराः ॥ येन ते ते प्रजापते ईजानस्य न्यवर्तयन् । तेनाऽहमस्य ब्रह्मणा निर्वर्तयामि जीवसे ॥ अभिस्ति-
ग्मेन शोचिषा तप आक्रान्तमुष्णिहा । शिरस्तपस्याहितं वैश्वानरस्य तेजसा । क्रतेनाऽस्य निर्वर्तये सत्येन
परिवर्तये । तपसाऽस्याऽनुवर्तये शिवेनाऽस्योपवर्तये शग्मेनाऽस्याऽभिवर्तये ॥ शीर्ष्णस्तद्वत् तत्सत्यं तद्व्रतं
तच्छक्रेयं तेन शक्रेयं तेन राध्यासम् इति१ । पुरस्तादेवाऽग्रेऽथ दक्षिणतोऽथ पश्चादथोत्तरतोऽथो-
परिष्ठात् । संतिष्ठन्ते शुनासीरीयहवी५षि । अनुवत्सरीणा५ स्वस्तिमाशास्ते इत्याशास्ते२ ॥
[दक्षिणानां दान इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो हिरण्यं वैश्वानरे
दद्याद्धेनुं पार्जन्ये द्वादश वैश्वदेवे द्वादश वरुणप्रघासहविःषु तिस्र आनीकवते तिस्रः
सांतपने चतस्रो गृहमेधीय ऋषभं पूर्णदव्यं तिस्रः कैंडिने द्वादश महाहविःषु तिस्र आदित्ये
द्वादश शुनासीरीयहविःष्विति ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवश्चतुःषष्टिश्चातुर्मास्यदक्षिणाः
समाम्नाता भवन्ति । ताश्चेन्नाऽधिगच्छेद्वासा५स्येतावन्ति मन्थान् बौदनान् वैतावतो

१. यजमानः २. यजमानः । होताऽपि 'अनुवत्सरीणा५ स्वस्तिमाशास्ते दिव्यं धामा-
ऽऽशास्ते' इति सूक्ताकस्याऽऽशीःष्वनुवर्तयति ।

दद्यात् । तेनो हैवैतं काममवाप्नोतीति ॥] [असमुदित ऋषभं ददातीति । महाहविषा-
मेवैषोऽसमुदिते दातव्यो भवति ।] [चातुर्मास्यानामन्त इति ॥ सोमान्तानि स्युरिति
बौधायनः ॥ पश्वन्तानीति शालीकिः ॥ सवनेष्टया यजेतेत्यौपमन्यवः ॥] [आ वरुण-
प्रधासानां कालाद्वैश्वदेवस्य कालो नाऽतीयादा साकमेधेभ्यो वरुणप्रधासानामा शुनासीर्यात्
साकमेधानामा वैश्वदेवाच्छुनासीर्यस्य ।]

चातुर्मास्यप्रायश्चित्तानि

एककपालः परावर्तते

बौ० २९.१३—अथ यद्येककपालः परावर्तते प्रजापतेर्वर्तनिमनुवर्तस्व इत्यध्वर्युः
स्वस्थाने प्रतिष्ठापयेत् । प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे, विश्वमन्याऽभिवावृधे इत्येताभ्यां यजमानो-
ऽनुमन्त्रयते । अस्कान् द्यौः पृथिवीं, अस्कानजनि प्राजनि इत्येताभ्यां स्तुवाहुती जुहुयात् ।
संस्थिते वैश्वानरीमिष्टिं निर्वपेत् । विज्ञायते च यत् प्राङ् पद्येत देवलोकमभिजयेत् ।
यदक्षिणा पितृलोकम् । यत्प्रत्यग् रक्षांसि यज्ञं हन्युः । यदुदङ् मनुष्यलोकमभिजयेत् ।
प्रतिष्ठितो होतव्य इति ।

षण्मासान्.... अनिष्ट्वा चातुर्मास्यैः

बौ० २८.१२—अथ षण्मासानहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणै-
श्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पथिकृतेऽग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय
इति पुरोडाशाग्निरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशु-
बन्धेन च ।

संवत्सरम्.... अनिष्ट्वा चातुर्मास्यैः

बौ० २८.१२—अथ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणै-
श्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्नये पवमानायाऽग्नये पावकायाऽग्नये शुचयेऽग्नये पथिकृतेऽग्नये
तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायाऽग्नये व्रतपतय इति पुरोडाशाग्निरुप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्ण-
मासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ॥

निरूढपशुबन्धः^१

यूपनिर्माणम्

शत्रा [११.७.१-४]—

पशुबन्धेन यजते । पशवो वै पशुबन्धः । स यत् पशुबन्धेन यजते । पशुमानसानीति । तेन गृहेषु यजेत । गृहेषु पशून् बध्ना इति । तेन सुयवसे यजेत । सुयवसे पशून् बध्ना इति । जीर्यन्ति ह वै जुह्वतो यजमानस्याऽग्नयः । अग्नीन् जीर्यतोऽनु यजमानः । यजमानमनु गृहाश्च पशवश्च । स यत् पशुबन्धेन यजते । अग्नीनेवैतत् पुनर्णवान् कुरुते । अग्नीनां पुनर्णवतामनु यजमानः । यजमानमनु गृहाश्च पशवश्च । आयुष्यो ह वा अस्यैष आत्मनिष्क्रयणो भवति । माँसीयन्ति ह वै जुह्वतो यजमानस्याऽग्नयः । ते यजमानमेव ध्यायन्ति । यजमानं संकल्पयन्ति । पचन्ति वा अन्येष्वग्निषु वृथा माँसम् । अथैतेषां नाऽतोऽन्या माँसाशा विद्यते । यस्यो चैते भवन्ति । स यत् पशुबन्धेन यजते । आत्मानमेवैतन्निष्क्रीणीते । वीरेण वीरम् । वीरो हि पशुः । वीरो यजमानः । एतद् ह वै परममन्नाद्यं यन्माँसम् । स परमस्यैवाऽन्नाद्यस्याऽत्ता भवति । तं वै संवत्सरो नाऽनीजानमतीयात् । आयुर्वै संवत्सरः । आयुरेवैतदमृतमात्मन् धत्ते । हविर्यज्ञविधो ह वा अन्यः पशुबन्धः । सवविधोऽन्यः । स ह्येष हविर्यज्ञविधः । यस्मिन् व्रतमुपनयति । यस्मिन्नपः प्रणयति । यस्मिन् पूर्णपात्रं निनयति । यस्मिन् विष्णुक्रमान् क्रमयति । अथ ह्येष सवविधः । यस्मिन्नेतानि न क्रियन्ते० अध्वर्युश्च प्रतिप्रस्थाता च । होता च मैत्रावरुणश्च । ब्रह्मा चाऽऽग्नीध्रश्च । एतैर्वा एष षड्ढोता । तमनुद्रुत्य षड्ढोतारं जुहोति । एकामाहुतिं कृत्वा पञ्च वाऽऽज्यात् द्यौष्पृष्ठमन्तरिक्षमात्माऽङ्गैर्यज्ञं पृथिवीं^५ शरीरैः । वाचस्पतेऽच्छिद्रया वाचाऽच्छिद्रया जुह्वा दिवि देवावृधं^५ होत्रामैरयत् स्वाहा इति० तस्मात् पालाशमेव यूपं कुर्वीत । स य एष बहुसारः स हाऽपशव्यः । तस्मात्तादृशं पशुकामो यूपं न कुर्वीत ।

१. निरूढपशुबन्धयागसंबन्धिनो मन्त्रास्तद्विधायकं ब्राह्मणं च कृष्णयजुर्वेदे पृथक्त्वेन नोपलभ्यते । शुक्लयजुर्वेदेऽपि एतद्विषयका मन्त्रा न विद्यन्ते । शतपथब्राह्मणस्य एकादशे काण्डे निरूढपशुबन्धस्य किर्यांश्चिद् विधिः प्रतिपादितः । सोऽत्रोद्दिश्यते । तैत्तिरीयब्राह्मणे तैत्तिरीयसंहितायां च पठिताः पाशुकहौत्रमन्त्राः अत्र संगृह्यन्ते । आश्वलायनशाङ्खायनाभ्यां पशुहौत्रे विनियोजिता ऋग्वेदीया ऋकोऽप्यत्रैव विनिवेश्यन्ते । वैतानसूत्रानुसारेण विनियुक्ता आथर्वणमन्त्रा अप्यत्र दत्ताः । पशुयागविषयका अवशिष्टा मन्त्राः ब्राह्मणं च श्रौतकोशस्य द्वितीयखण्डेऽग्निष्टोमप्रकरणे द्रष्टव्यम् । ब्राह्मणोक्तानि पशुप्रायश्चित्तान्यपि तत्रैव द्रष्टव्यानि । अग्निष्टोमयागे सवनीयदिनात् पूर्वस्मिन्नहनि योऽग्नीबोमीयपशुयागो विधीयते स निरूढपशुबन्धस्य प्रकृतिः । तमनुसृत्य निरूढपशुबन्धस्य निखिलः प्रयोगः सूत्रकारैरुपवर्णितः ।

अथ य एष फल्गुप्रासहः । स ह पशव्यः । तस्मात्तादृशं पशुकामो यूपं कुर्वीत । अथ यस्यैतत् वक्रस्य सतः शूल इवाऽग्रं भवति । स ह कपोती नाम । स यो ह तादृशं यूपं कुरुते । पुरा ह आयुषोऽमुं लोकमेति । तस्मात्तादृशमायुष्कामो यूपं न कुर्वीत । अथ य एष आनत उपरिष्ठादपनतो मध्ये । सोऽशनायै रूपम् । स यो ह तादृशं यूपं कुरुते । अशनायुका हाऽस्य भार्या भवन्ति । तस्मात्तादृशमन्नाद्यकामो यूपं न कुर्वीत । अथ य एष आनत उपरिष्ठादुपनतो मध्ये । सोऽन्नाद्यस्य रूपम् । तस्मात्तादृशमन्नाद्यकामो यूपं कुर्वीत । स यत्पशुना यक्ष्यमाण एकारलिं यूपं कुरुते० अथ यद् द्वयरलिम्० अथ यत् त्रयरलिम्० अथ यच्चतुररलिम्० स वा एष त्रयरलिर्वै चतुररलिर्वा पशुबन्धयूपो भवति । अथ योऽत ऊर्ध्वः सौम्यस्यैव सोऽध्वरस्य ॥

काशत्रा [१३.७.१-४] ≡ शत्रा

असं—

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
 घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥७.२७.३
 एकया च दशभिश्च सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
 तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥७.४.१
 शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
 यदिवि चक्रथुः पयस्तेनेमागुप सिञ्चतम् ॥३.१७.७
 सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन्.... ॥५.२४.९
 अरातीयोभ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ॥१०.६.१

अपैसं—

उरु विष्णो वि क्रमस्व.... ॥२०.६.७॥ एकया च दशभिश्च.... ॥
 २०.१.१०॥ सूर्यो दिवोऽध्यक्षः.... ॥१५.७.४॥ अरातीयोः.... । प्र
 वृश्चाम्येनदोजसा ॥१६.४२.१

गोत्रा [२.२.१]—य एतमैन्द्राग्रं पशुं षष्ठे षष्ठे मास आलभते० आयुष्काम आलभते० प्रजाकाम आलभते० पशुकाम आलभते० योनीन् वा एष काम्यान् पशूनालभते । योऽनिष्ट्वैन्द्राग्नेन काम्यं पशुमालभते । इष्ट्वाऽऽलम्भः समृद्धयै० ॥

अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तम्

असं—

यत्त्वा शिकः परावधीत्तक्षा हस्तेन वास्या ।
 आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥१०.६.३
 अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाऽभ्यञ्जते ।
 सिन्धोरुच्छ्रवासे पतयन्तमुक्षुणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥१८.३.१८
 स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
 स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत ॥७.३१.१
 यत्ते वासः परिधानं यां नीर्वि कृणुषे त्वम् ।
 शिवं ते तन्वे३ तत्कृष्मः संस्पर्शेऽद्रक्ष्णमस्तु ते ॥८.२.१६
 वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिर्गृष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
 त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥१२.३.३३
 वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपवाधमानः ।
 स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥१२.३.१५
 धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्रयावयन्तु ।
 तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्राबुद्धासयातः पर्यग्निधानात् ॥१२.३.३५
 विष्णोः कर्माणि पश्यत.... ॥ तद्विष्णोः परमं पदं.... ॥७.२७.६-७

अपैसं—

यत्त्वा शिकः.... वास्या ।....॥१६.४२.३॥ यत्ते वासः परिधानं.... ॥
 १६.४.६॥ वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिः.... ददृश्राम् ॥१७.३९.३॥
 वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्.... ॥१७.३७.५॥ धर्ता ध्रियस्व धरुणे
 पृथिव्याः.... । तं दंपती.... ॥१७.३९.४

अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तं हौत्रम्

ऋसं—

१ प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥

अयमु ऽप्य प्र देवगुहोता यज्ञाय नीयते ।
 रथो न योरभीवृतो घृणीवाश्चेतति त्मना ॥
 अयमग्निरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
 सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ॥१०.१७६.२-४
 इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
 जातवेदो नि धीमह्यग्रे हव्याय वोळहवे ॥३.२९.४
 अग्रे विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
 कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥६.१५.१६
 इमं महे विदध्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईज्याय प्र जभुः ।
 शृणोतु नो दस्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥३.५४.१
 अयमिह प्रथमो धायि.... ॥४.७.१
 सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
 देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्रे बृहद्यजमाने वयो धाः ॥३.२९.८
 नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
 अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥
 त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
 अग्रे तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन् दीद्यद्वोधि गोपाः ॥२.९.१-२
 'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
 यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥३.८.१
 उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
 सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३.८.३
 समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात् ब्रह्म बन्वानो अजरं सुवीरम् ।
 आरे अस्मदमर्ति बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥३.८.२
 ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
 ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥
 ऊर्ध्वो नः पाहं हसो नि केतुना विश्वं समन्त्रिणं दह ।
 कृधी न ऊर्ध्वाश्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१.३६.१३-१४

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्थ आ विदथे वर्धमानः ।
 पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियति वाचम् ॥३.८.५
 युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
 तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्योऽ मनसा देवयन्तः ॥३.८.४

तैसं [३.५.११]—

प्र देवं देव्या धिया.....॥ अयमु ष्य प्र देवयुः.....॥ अयमग्निरुप्यति.....॥
 इडायास्त्वा पदे वयं..... ॥ अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैः..... ॥ सीद होतः
 स्व उ लोके चिकित्वान्..... ॥ नि होता होतृषदने विदानः..... ॥ त्वं
 दूतस्त्वमु नः परस्पाः..... ॥

तैव्रा [३.६.१]—

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः..... । यदूर्ध्वस्तिष्ठात्..... ॥ उच्छ्रयस्व वन-
 स्पते.....॥ समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात्.....॥ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये..... ॥
 ऊर्ध्वो नः पाह्यहसो नि केतुना..... ॥ जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां.....॥
 युवा सुवासाः परिवीत आगात्..... ॥

मैसं [४.१३.१]—

प्र देवं देव्या धिया इत्यद्यौ^१ ॥
 अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः..... । यदूर्ध्वस्तिष्ठाः..... ॥ उञ्श्रयस्व वन-
 स्पते.....॥ समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात्.....॥ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये.....॥
 ऊर्ध्वो नः पाह्यहसः..... ॥ जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां..... ॥ युवा
 सुवासाः परिवीता आगात्..... ॥

कासं [१५.१२]—

प्र देवं देव्या धिया..... ॥ अयमु ष्य प्र देवयुः..... ॥ अयमग्निरुप्यति.....॥
 इडायास्त्वा पदे वयं..... ॥ अग्ने विश्वेभिस्स्वनीक देवैः..... ॥ सीद होतः
 स्व उ लोके चिकित्वान्..... ॥ नि होता होतृषदने विदानः..... ॥ त्वं
 दूतस्त्वमु नः परस्पाः..... ॥ अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः..... । यदूर्ध्व-
 स्तिष्ठात्.....॥ उच्छ्रयस्व वनस्पते.....॥ समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात्.....॥

१. चातुर्मास्येषु वरुणप्रवासपर्वण्यग्निप्रणयनार्थं विनियुक्ताः (मैसं ४.१०.४) ।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये.... ॥ ऊर्ध्वो नः पाद्भिहसो नि केतुना.... ॥ युवा
सुवासाः परिवीत आगात्.... ॥

पर्याम्भिकरणान्तम्

असं—

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीप्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः सस्रनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥५.२७.१

अपैसं—

ऊर्ध्वा अस्य.... । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य स्रनोः ॥९.१.१

पर्याम्भिकरणान्तं हौत्रम्

ऋसं—

१अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ॥१.२४.३
मही द्यौः पृथिवी च नः.... ॥१.२२.१३
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः ॥
तद्यु त्वा दध्यङ्ङुषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरंदरम् ॥
तद्यु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धर्नजयं रणेरणे ॥६.१६.१३-१५
अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा । स्वे क्षये शुचिव्रत ॥
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत्त्वा सुचः समस्थिरन् ॥
स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा । सुचा प्रतीकमज्यते ॥
घृतेनाऽग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः ॥
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाऽग्निं सपर्यत । अदाम्यं गृहपतिम् ॥
अदाम्येन शोचिषाऽग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत ॥
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधरे । यजिष्ठं मानुषे जने ॥१०.११८.१-९

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदभिर्वृत्रहाऽजनि । धनंजयो रणेरणे ॥१.७४.३
 आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरम् ॥
 प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥
 आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीताऽतिथिम् ।
 स्योन आ गृहपतिम् ॥६.१६.४०-४२
 अभिनाऽग्निः समिध्यते.... ॥१.१२.६
 त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता ।
 सखा सख्या समिध्यसे ॥८.४३.१४
 तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥८.८४.८
 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
 ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥१.१६४.५०
 'समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
 होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥
 नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति महा स्वर्चिः ।
 घृतपुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥
 ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन् देवान् यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
 स आ बह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥
 देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
 घृतेनाऽक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥
 वि श्रयन्तामृर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
 व्यचस्वतीर्विं प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥
 साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
 'तन्तुं ततं संवयन्ती समीचीं यज्ञस्य पेशः सुदुधे पयस्वती ॥
 दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
 देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥
 सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
 तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥

पिशङ्गरूपः सुमरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
 प्रजां त्वष्टा वि प्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥
 वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः स्रदयाति प्र धीभिः ।
 त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥
 घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्बस्य धाम ।
 अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥२.३.१-११
 'जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृष्वन् ।
 उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥
 नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
 ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥
 ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
 मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥
 सपर्यवो भरमाणा अभिजु प्र वृज्जते नमसा बर्हिरशौ ।
 आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥
 स्वाभ्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्नयू रथयुर्देवताता ।
 पूर्वीं शिशुं न मातरा रिहाणे समश्रुवो न समनेष्वज्जन् ॥
 उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुषेव धेनुः ।
 बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥
 विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्वै ।
 ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥
 आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
 सरस्वती सारस्वतेभिरवाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥
 तन्नस्तुरीयमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
 यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥
 वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता स्रदयाति ।
 सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥

आ याह्यग्रे समिधानो अर्वाङ्गिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥७.२.१-११

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥
आजुह्वान ईड्यो बन्धश्चाऽऽ याह्यग्रे वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्य होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्वाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्वै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विष्ठा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरर्पिशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यतस्य वाचि
स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥१०.११०.१-११

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्रे हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥
 नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधु जिह्वं हविष्कृतम् ॥
 अग्रे सुखतमे रथे देवाः ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥
 स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्राऽमृतस्य चक्षणम् ॥
 वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥
 नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥
 ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥
 इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥
 इह त्वष्टारमंग्रियं.... ॥

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥
 स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥१.१३.१-१२

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्तुचे ।
 तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥
 घृतवन्तस्तुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
 यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥
 शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
 नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥
 ईळितो अग्न आ बहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
 इयं हि त्वा मतिर्ममाऽच्छा सुजिह्व वच्यते ॥
 स्तृणानासो यतस्तुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
 वृज्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥
 वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
 पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥
 आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
 यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥
 मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
 यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
 इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥
 तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वाऽरं पुरु त्मना ।
 त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥
 अवसुजन्नुप त्मना देवान् वक्षि वनस्पते ।
 अग्निर्हव्या सुष्टुदति देवो देवेषु मेधिरः ॥
 पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
 स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥
 स्वाहाकृतान्या गङ्गुप हव्यानि वीतये ।
 इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अश्वरे ॥१.१४२.१-१३

'समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥
 तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥
 आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥
 प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्राऽऽदित्या विराजथ ॥
 विराद् सम्राड् विम्बीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥
 सुरुक्मे हि सुपेशसाऽधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥
 प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥
 भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान्तसमानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥
 उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥
 पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥१.१८८.१-११

'समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमर्ति रासि वस्वः ।
 आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन्सुमना यक्ष्यमे ॥
 यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
 सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपादृतयोनिं विधन्तम् ॥

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यज्यै ।
 अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्द्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् ॥
 ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोर्चीषि प्रस्थिता रजांसि ।
 दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥
 सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्मृतेन ।
 नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी३मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वाः ॥
 आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
 यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वां उत वा महोभिः ॥
 दैव्या होतारा प्रथमा न्यूञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
 ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥
 आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
 सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥
 तन्नस्तुरीपमध पोषयित्तु.... ॥ वनस्पतेऽव सृजोप.... ॥
 आ याद्यन्ने समिधानो अर्वाङ्निद्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
 बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥३.४.१-११

१सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥
 नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥
 ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखे रथेभिरूतये ॥
 ऊर्णप्रदा वि प्रथस्वाऽभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥
 देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥
 सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥
 वातस्य पत्नमीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥
 इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥
 शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥
 यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥
 स्वाहाऽग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥५.५.१-११

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । ग्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥
 तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् ॥
 ईक्षेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥
 बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते ॥
 उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥
 सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥
 उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥
 भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
 इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥
 त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।
 इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥
 वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्गिध धारया ।
 सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥
 विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
 वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥९.५.१-११
 इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
 वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥
 आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
 क्रतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥
 शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
 वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेनाऽऽ देवान् वक्षि नि षदेह होता ॥
 वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
 अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठौ उशतो यक्षि देवान् ॥
 दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
 उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्ये उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
 आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥
 ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
 पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥
 तिस्रो देवीर्बर्हिर्दिदं वरीय आ सीदत चक्रमा वः स्योनम् ।
 मनुष्यद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥
 देव त्वष्टर्यद्वा चारुत्वमानइ यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
 स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥
 वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
 स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥
 आऽग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
 सीदन्तु बर्हिर्विंश्च आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥

१०.७०.१-११

‘अग्निर्होता नो अश्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥
 परि त्रिविष्टचध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥
 परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥४.१५.१-३

तैसं [३.५.११]—

अभि त्वा देव सवितः.... ॥ मही द्यौः पृथिवी च नः.... ॥ त्वामग्ने
 पुष्करादधि.... ॥ तस्य त्वा दध्यङ्गुषिः.... ॥ तस्य त्वा पाथ्यो वृषा.... ॥
 उत भुवन्तु जन्तवः.... ॥ आ य५ हस्ते न खादिनं.... ॥ प्र देवं देव-
 वीतये.... ॥ आ जातं जातवेदसि.... ॥ अग्निनाऽग्निः समिध्यते.... ॥
 त्व५ ह्यग्ने अग्निना.... ॥ तं मर्जयन्त सुक्रतुं.... ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त
 देवाः.... ॥

तैत्रा [३.६.१-४]—

‘पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाद ॥
 ‘त५ सबाधो यतस्तुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आचक्रुरग्निमृतये ॥

१त्वं वरुण उत मित्रो अग्रे त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

२होता यक्षदग्निं५ समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्याः संगथे वामस्य ।

वर्ष्मन् दिव इडस्पदे वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे.... ॥

३होता यक्षत्तनूनपातमदितेर्गर्भं भुवनस्य गोपाम् । मध्वाऽद्य देवो देवेभ्यो देवयानान् पथो अनक्तु वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

४तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्.... ॥

५होता यक्षन्नराशं५ सं नृशस्त्रं नृः५ःप्रणेत्रम् । गोभिर्वपावान्त्स्याद्वीरेः शक्तीवान् रथैः प्रथमयावा हिरण्यैश्चन्द्री वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

६नराशं५ सस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।

ते सुक्रतवः शुचयो धियंघाः स्वदन्तु देवा उभयानि हव्या ॥

होता यक्षदग्निमिड ईडितो देवो देवा५ आवक्षद् दूतो हव्यवाडमूरः ।

उपेमं यज्ञमुपेमां देवो देवहूतिमवतु वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च.... ॥

होता यक्षद्वर्हिः सुष्टरीमोर्णम्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथता५ स्वासस्थं देवेभ्यः । एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु प्रियमिन्द्रस्याऽस्तु वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः.... ॥

होता यक्षद् दुर ऋष्याः कवप्योऽकोषधावनीरुदाताभिर्जिहतां वि पक्षोमिः श्रयन्ताम् । सुग्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो वियन्त्वाज्यस्य होतयज ॥

व्यचस्वतीरुर्विया भवथ सुग्रायणाः ॥

होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नृः५ःपतिभ्यो योर्नि कृष्णाने ।

सं५ समयमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतयज ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके.... ॥

१. परिधानीया । २. प्रयाजग्रैषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः प्रयाजग्रैषः अपरा प्रयाज-
याज्या, एवं क्रमेण । ३. 'नराशंसो द्वितीयः प्रयाजो वसिष्ठश्चुनकानाम् । तनूनपादितरेषां गोत्राणाम्'
(आपञ्चौ २४.११.१६) इति सूत्रानुसारेण प्रयाजविकल्पः ।

होता यक्षदैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा । स्विष्टमद्याऽन्यः
करदिषा स्वभिगूर्तमन्य ऊर्जा सतवसेमं यज्ञं दिवि देवेषु धत्तां वीता-
माज्यस्य होतर्यज ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा.... ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमद्येदमपस्तन्वताम् । देवेभ्यो
देवीर्देवमपो वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु.... ॥

होता यक्षच्चष्टारमचिष्टुमपाकः रेतोधां विश्रवसं यशोधाम् । पुरुरूपमकाम-
कर्शेनः सुपोषः पोषैः स्यात्सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री.... ॥

होता यक्षद्वनस्पतिमुपावस्रक्षद्वियो जोष्टारः शशमन्तरः । स्वदात्स्वधिति-
र्ऋतुथाऽद्य देवो देवेभ्यो हव्याऽवाङ् वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्.... ॥^१

^२अग्निर्होता नो अघ्वरे.... ॥ परि त्रिविष्टयध्वरं.... ॥ परि वाजपतिः
कविः.... ॥

मैसं [४.१३.१-४]—

अभि त्वा देव सवितः इति त्रयोदश^३

^४होता यक्षदग्निः समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्याः संगथे वामस्य ।
वर्ष्मन्दिव इडस्पदे वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे.... ॥

^५होता यक्षत्तनूनपातमदितेर्गर्भं भुवनस्य गोपाम् । मध्वाऽद्य देवो देवेभ्यो
देवयानान्पथो अनक्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

^६तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्.... ॥

^७होता यक्षन्नराशंसं नृशस्तं नृष्प्रणेत्रम् । गोभिर्वपावान्त्स्याद्वीरैः शक्तीवान्
रथैः प्रथमयावा हिरण्यैश्चन्द्री वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

१. एकादशः प्रयाजो वपायागहौत्रे दृश्यताम् । २. पर्याग्निकरणार्था ऋचः । ३. चातु-
र्मास्येषु वैश्वदेवपर्वण्यग्निमन्थनार्थं विनियुक्ताः (मैसं ४.१०.३) । दृश्यतां ४९४ पृष्ठम् ।
४. पूर्वः प्रयाजप्रैषः अपरा प्रयाजयाज्या, एवं क्रमेण । ५. द्वितीयः प्रयाजो वैकल्पिकः ।

‘नराश’सस्य महिमानमेषां.... ॥

होता यक्षदग्निमिड ईडितो देवो देवं आ च वक्षद् दूतो हव्यवाडमूरः ।
उपेमं यज्ञमुपेमां देवो देवहूतिमवतु वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

आजुह्वाना ईड्यो वन्द्यश्च.... ॥

होता यक्षद्वर्हिः सुष्टरीमोर्णम्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथतां
स्वासस्थं देवेभ्यः । एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः स्वदन्तु प्रिय-
मिन्द्रस्याऽस्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः.... ॥

होता यक्षद् दुर ऋष्याः कवष्योऽकोशधावनीरुदाताभिर्जिहतां वि
पक्षोभिः श्रयन्ताम् । सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वा-
ज्यस्य होतर्यज ॥

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां.... ॥

होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नृष्पतिभ्यो योर्नि कृष्वाने । सस्मय-
माने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके.... ॥

होता यक्षदैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा । स्विष्टमद्याऽन्यः
करदिषा स्वभिगूर्तमन्य ऊर्जा सतवसेमं यज्ञं दिवि देवेषु धत्तां वीता-
माज्यस्य होतर्यज ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा.... ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमधेदमपस्तन्वताम् । देवेभ्यो
देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु.... ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमचिष्टमपाकं रेतोधां विश्रवसं यशोधाम् । पुरुरूपम-
कामकर्शनं सुपोषः पोषैः स्यात्सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री.... ॥

१. द्वितीयः प्रयाजो वैकल्पिकः । २. ‘कवष्यो कोश०’ इति मुद्रितपुस्तकपाठः ।
‘कवष्यः । कोष०’ इति पदपाठः । संहितायां ‘कवष्यो कोष०’ इति संधिभावात् ‘कवष्यः
अकोष०’ इति पदद्वयमनुमीयते । ‘कोश०’ इत्यत्र ‘को’ इत्यस्य उदात्तस्वरस्तु चिन्त्यः ।
‘कवष्योऽकोष०’ इति तैत्तिरीय ३.६.२ । ‘कवष्यो कोष०’ इति कास्य-पाठः ।

होता यक्षद्वनस्पतिमुपावस्रक्षद्वियो जोष्टारं शशमन्त्रः । स्वदात्स्वधिति-
ऋतुथाऽद्य देवो देवेभ्यो हव्याऽवाह वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्.... ॥^१

^२अग्निर्होता नो अश्वरे.... ॥ परि त्रिविष्टयध्वरं.... ॥ परि वाजपतिः
कविः.... ॥

कासं [१५.१२-१३; १६.२०-२१]—

^३अभि त्वा देव सवितः.... ॥ मही द्यौः पृथिवी च नः.... ॥ त्वामग्रे
पुष्करादधि.... ॥ तमु त्वा दध्यङ्दृषिः.... ॥ तमु त्वा पाथ्यो वृषा.... ॥
अग्नी रक्षीसि सेधति.... ॥ उत ब्रुवन्तु जन्तवः.... ॥ आ यै हस्ते न
खादिनं.... ॥ प्र देवं देववीतये.... ॥ आ जातं जातवेदसि.... ॥ अग्नि-
नाऽग्निस्समिध्यते.... ॥ त्वी ह्यग्ने अग्निना.... ॥ तं मर्जयन्त सुक्रतुं.... ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः.... ॥

^४होता यक्षदग्निं समिधा.... ॥ समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे.... ॥ होता
यक्षत्तनूनपातमदितेर्गर्भं.... ॥ तनूनपात्यथ ऋतस्य यानान्.... ॥ होता
यक्षदग्निमिड ईडितः.... ॥ आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च.... ॥ होता यक्ष-
द्वर्हिस्सुष्टरीमोर्णम्रदाः.... ॥ प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः.... ॥ होता
यक्षद् दुर ऋष्याः.... ॥ व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां.... ॥ होता यक्ष-
दुषासानक्ता.... ॥ आ सुष्वयन्ती यजते उपाके.... ॥ होता यक्षद्वैव्या
होतारा.... ॥ दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा.... ॥ होता यक्षत्तिस्रो देवी-
रपसामपस्तमाः.... ॥ आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु.... ॥ होता यक्ष-
त्त्वष्टारमचिष्टुमपाकं.... ॥ य इमे द्यावापृथिवी जनित्री.... ॥ होता यक्ष-
द्वनस्पतिं.... ॥ उपावसृज त्मन्या समञ्जन्.... ॥^५

^६अग्निर्होता नो अश्वरे.... ॥ परि त्रिविष्टयध्वरं.... ॥ परि वाजपतिः
कविः.... ॥

असं—

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे.... ॥ तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्.... ॥

१. एकादशः प्रयाजो वपायागहौत्रे दध्यताम् । २. पर्याश्रिकरणार्था ऋचः । ३. अग्नि-
मन्थनार्थाः । ४. पूर्वः प्रयाजप्रेषः अपरा प्रयाजयाज्या, एवं क्रमेण । ५. एकादशः प्रयाजो
वपायागहौत्रे दध्यताम् । ६. पर्याश्रिकरणार्था ऋचः ।

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च.... ॥ प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः.... ॥
 व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां.... ॥ आ सुष्वयन्ती यजते उपाके.... ॥
 दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा.... ॥ आ नो यज्ञं भारती सरस्वतीः
 स्वपसः सदन्ताम् ॥ य इमे द्यावापृथिवी जनित्री.... ॥ उपावसृज त्मन्या
 समञ्जन्.... ॥ सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञं.... । अस्य होतुः प्रशिष्युतस्य
 ॥५.१२.१-११

वपायागः

शत्रा [११.८.२-३]—

चत्वारो ह वा अग्नयः । आहितः उद्धृतः प्रहृतः विहृतः ० गार्हपत्य एवाऽऽहितः ।
 आहवनीय उद्धृतः । अथ यमेतमाहवनीयात् प्राञ्चं प्रणयन्ति स प्रहृतः । अथ यमेतमुदञ्चं
 पशुश्रपणायाऽऽहरन्ति यं चोपयङ्म्यः स विहृतः । तस्मात् प्रहार्येऽग्नौ पशुबन्धेन यजेत ।
 तदाहुः किं देवत्य एष पशुः स्यादिति । प्राजापत्यः स्यादित्याहुः ० अथो अप्याहुः सौर्य एवैष
 पशुः स्यादिति ० अथो अप्याहुर्नैन्द्राग्न एवैष पशुः स्यादिति ० सोऽस्याऽयं पशुरालब्धः संज्ञसो-
 ऽश्नयत् । तमेताभिराग्नीभिराग्नीणात् ० तस्माद् पशुश्च संज्ञसं ब्रूयात् शेतान्मु मुहूर्तम् इति ॥

शत्रा [११.७.४.२-४]—

तदाहुः । यजेदाज्यभागौ नाश् इति । यजेदित्याहुः ० उपस्तृणीत आज्यम् ०
 हिरण्यशकलमवदधाति ० वपामवदधाति ० हिरण्यशकलमवदधाति ० अथ यदुपरिष्ठादभिघारयति ०
 सा वा एषा पञ्चावत्ता वपा भवति ॥

काशत्रा [१३.८.१-२; १३.७.४.२-४] ≡ शत्रा

अपैसं [५.२८.१-३]—

प्रमुच्यमानो भुवनस्य गोप पशुर्नो [अ]त्र प्रति भागमेतु ।
 अग्निर्यज्ञं त्रिवृतं सप्ततन्तुं देवो देवेभ्यो हव्यं बहत्तु प्रजानन् ॥
 यौ ते 'दंष्ट्रा सुदिहौ रोपयिष्णू जिह्वायेते दक्षिणा सं च पश्यतः ।
 अनाष्ट्रं नः पितरस्तत् कृणोत यूपे बद्धं 'प्र वि 'मुच्यमा यदन्नम् ॥

अक्लिष्टस्त्वमभिजुष्टः परेहीन्द्रस्य गोष्ठमपि धाव विद्वान् ।
धीरासस्त्वा कवयः सं सृजन्त्विषमूर्जं यजमानाय भत्सतः ॥

वपायागहौत्रम्

तैत्रा [३.६.५-६]—

अजैदधिरसनद्वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्याऽवाद् प्राञ्जोभिर्हिन्वानो धेनाभिः
कल्पमानो यज्ञस्याऽऽयुः प्रतिरन्नुपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः ॥

दैव्याः शमितार उत मनुष्या आरभध्वमुपनयत मेध्या दुर आशासाना
मेधपतिभ्यां मेधम् । प्राऽस्मा अग्निं भरत स्तृणीत बर्हिरन्वेनं माता
मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । उदीचीनाः
अस्य पदो निधत्तात्स्यै चक्षुर्गमयताद्वातं प्राणमन्ववसृजतादिशः श्रोत्र-
मन्तरिक्षमसुं पृथिवीं शरीरम् । एकधाऽस्य त्वचमाच्छयतात्पुरा नाभ्या
अपिशसो वपायुत्विदतात् । अन्तरेवोष्माणं वारयतात् । इयेनमस्य वक्षः
कृणुतात्प्रशसा बाहू शला दोषणी कश्यपेवाऽसाऽच्छिद्रे श्रोणी कवषोरू
त्नेकपर्णाऽष्टीवन्ता षड्विंशतिरस्य वङ्कयस्ता अनुष्ठयोच्छ्यावयतात्
गात्रंगात्रमस्याऽनूनं कृणुतात् । ऊवध्यगोहं पार्थिवं खनतात् । अस्ना
रक्षः सः सृजतात् । वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना नेद्वस्तोके
तनये रविता रवच्छमितारः । अधिगो शमीध्वः सुशमि शमीध्वः शमीध्व-
मधिगो ॥ अधिगुश्चाऽपापश्च । उमौ देवानाः शमितारौ । ताविमं पशु-
श्रपयतां प्रविद्धाः सौ । यथायथाऽस्य श्रपणं तथातथा ॥

ऋसं—

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ १.७५.१
इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्रे मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्रोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥

१. 'अहुस्तस्व०' इति वैश्वी । २. 'मृजन्त्व०' इति वैश्वी । ३. 'दत्त्वा'
इति वैश्वी । ४. मैत्रावरुणप्रेषः । ५. होतुः अधिगुप्रेषः । ६. स्तोकीयाः ।

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्रे विप्राय सन्त्य ।
 ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥
 तुभ्यं श्रोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्रे मेदसो घृतस्य ।
 कविशस्तो बृहता भानुनाऽऽगा हव्या जुषस्व मेधिर ॥
 ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
 श्रोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥३.२१.१-५
 १आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्रे अर्वाक् ।
 युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राऽग्रे अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥६.६०.३
 शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥७.९३.१
 ३उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्यै.... ॥६.६०.१३
 ३इदमापः प्र बहत् यत् किं च दुरितं मयि ।
 यद्वाऽहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उताऽनृतम् ॥१.२३.२२

तैत्रा [३.६.७-९]—

१जुषस्व सप्रथस्तमं.... ॥ इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि.... ॥ घृतवन्तः पावक
 ते.... । स्वधर्म.... ॥ तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतः.... ॥ तुभ्यं श्रोतन्त्य-
 ध्रिगो शचीवः.... ॥ ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं.... ॥
 १होता यक्षदग्निं स्वाहाऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा
 स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवां आज्यपान्तस्वाहाऽग्निं
 होत्राज्जुषाणा अग्न आज्यस्य वियन्तु होतर्यज ॥
 १सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञं.... ॥
 १आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैः.... ॥
 १होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य वपाया मेदसो जुषेता हविर्होतर्यज ॥
 १गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईद्वे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
 इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र णो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥

१. वपायागस्य याज्यानुवाक्ये । एकादशप्रयाजयाज्या पर्यग्निकरणान्तहौत्रे द्रष्टव्या ।
 २. शाङ्खायनमते वपायागस्य पुरोनुवाक्या । ३. मार्जनीयार्था । ४. स्तोकीयाः । ५. एकादशः प्रयाजप्रेषः ।
 ६. एकादशप्रयाजयाज्या । ७. वपायागस्य पुरोनुवाक्या । ८. वपायागस्य प्रेषः । ९. वपायागस्य
 याज्या ।

मैसं [१.१३.४-५]—

१अजैदग्निरसनद्वाजं.... ॥

२दैव्याः शमितार उत मनुष्याः.... मेध्या दुर आशासाना मेधपतये....
वातं प्राणमन्ववसृजतादन्तरिक्षमसुं कवषोरुस्त्रे कपर्णाऽष्ठीवन्ता....
अनुष्ठुयोच्च्यावयतात्.... रविता स्वत् । अधिगो.... ॥ अधिगुश्च विषा-
पश्च देवानां शमितारौ । ता एनं प्रविद्वांसौ श्रपयत् यथाऽस्य
श्रपणं तथा ॥

३जुषस्व सप्रथस्तमं.... ॥ इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि.... ॥ घृतवन्तः
पावक ते.... ॥ तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतः.... ॥ तुभ्यं श्रोतन्त्यधिगो
शचीवः.... ॥ ओजिष्ठं ते मध्यतो मेदा उद्धृतं.... ॥ ४होता यक्षदग्निं
स्वाहा.... देवा आज्यपा जुषाणा अग्रा आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥

५सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञं.... ॥ ६अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्.... ॥

होता यक्षदग्निमाज्यस्य जुषतां हविर्होतर्यज ॥

त्वं सोमाऽसि सत्पतिः.... ॥

होता यक्षत् सोममाज्यस्य जुषतां हविर्होतर्यज ॥

७शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥

होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य वपाया मेदसो जुषेतां हविर्होतर्यज ॥

भथद् वृत्रमुत सनोति वाजं.... ॥

कासं [१६.२०-२१; १५.१३]—

१अजैदग्निरसनद्वाजं.... ॥ २दैव्याः शमितार उत मनुष्याः.... उदीचीनी
अस्य पदः कृणुतात्.... अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्.... शमीध्वमधिगो ॥

३जुषस्व सप्रथस्तमं.... ॥ इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि.... ॥ घृतवन्तः
पावक ते.... ॥ तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतः.... ॥ तुभ्यं श्रोतन्त्यधिगो
शचीवः.... ॥ ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्धृतं.... ॥ ४होता यक्षदग्निं
स्वाहा.... ॥ ५सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञं.... ॥

१. मैत्रावरुणप्रेषः । २. होतुः अधिगुप्रेषः । ३. स्तोकीयाः । ४. एकादशः
प्रयाजप्रेषः । ५. एकादशप्रयाजयाज्या । ६. आज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये प्रेषौ च । ७. वपायागस्य
पुरोनुवाक्या प्रेषो याज्या च । ८. मैत्रावरुणप्रेषः । ९. होतुः अधिगुप्रेषः । १०. स्तोकीयाः ।
११. एकादशः प्रयाजप्रेषः । १२. एकादशप्रयाजयाज्या ।

पुरोडाशयागहविर्यागौ

शत्रा [११.७.२.४-५]—

तद्वैके वपायाँ हुतायां दक्षिणा नयन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० इत्थमेव कुर्यात् ।
पुरोडाशेडायामेवोपहूतायां दक्षिणा नयेत्० ॥

शत्रा [११.७.४.२-३]—

स यत्रैतद्धोताऽन्वाह अस्त्रा रक्षः सँ सुजतात् इति० एतद्वै पशोः संज्ञप्यमानस्य
हृदयँ शुक् समवैति । हृदयाच्छूलम् । तद्ये सह हृदयेन पशुँ श्रपयन्ति । पुनः पशुँ शुगानु-
विष्यन्देत । पार्श्वत एवैनत् काष्ठे प्रतृद्य श्रपयेत्० ॥

काशत्रा [१३.७.२; ४] ≡ शत्रा

पुरोडाशयागहविर्यागहौत्रम्

ऋसं—

१आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्री अवतं शचीभिः ।

इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥१.१०९.७

गीर्भिर्विभ्रः प्रमतिमिच्छमानः.... ॥७.९३.४

२आ वृत्रहणा वृत्रहभिः.... ॥६.६०.३

३इळामग्रे पुरुदंसं सर्नि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सनुस्तनयो विजावाऽग्रे सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥३.२२.५

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।

विश्वाँ अग्रे पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥३.५४.२२

४अग्निं सुदीर्तिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेज्यं जातवेदः ।

त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥३.१७.४

५त्वं ह्यग्रे प्रथमो मनोताऽस्या धियो अभवो दस्म होता ।

त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्वै ॥

१. पशुपुरोडाशस्य याज्यापुरोनुवाक्ये । २. शाङ्खायनमते पशुपुरोडाशस्य पुरोनुवाक्या ।
३. पशुपुरोडाशस्विष्टकृत्वागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये । ४. शाङ्खायनमते पशुपुरोडाशस्विष्टकृत्वाज्या ।
५. मनोतालुक्म् ।

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
 तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥
 वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैः स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
 रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥
 पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
 नामानि चिदधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥
 त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
 त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥
 सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वः शिर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
 तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप जुबाधो नमसा सदेम ॥
 तं त्वा वयं सुध्योऽ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
 त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥
 विशां कविं विस्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
 प्रेतीषणिमिषयन्तं पात्रकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥
 सो अग्र ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनद् समिधा हव्यदातिम् ।
 य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥
 अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
 वेदी सूनो सहसो गीर्मिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥
 आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यः स्तरुत्रः ।
 बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥
 नृवद्वसो सदमिद्वेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पथः ।
 पूर्वोरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥
 पुरुण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसुनि राजन् वसुता ते अश्याम् ॥
 पुरुणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ ६.१.१-१३
 'उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्वै ।
 उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ ६.६०.१३

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या गिरिचाथे दिवश्च ।
 प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा ग्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥१.१०९.६
 १ता योषिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्र ऊळ्हाः ।
 दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्रे युवसे नियुत्वान् ॥६.६०.२
 १पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ.... ॥१०.२.१॥
 अग्रे यदद्य विशः.... ॥६.१५.१४

तैत्रा [३.६.८-१२]—

१वि ह्यख्यन्मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
 नाऽन्या युवत्प्रमतिरस्ति मद्यः स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥
 होता यक्षदिन्द्राग्नी पुरोडाशस्य जुषेताः हविर्होतयज ॥
 मा च्छेद्य रश्मीः रिति नाधमानाः पितृणाः शक्तीरनुयच्छमानाः ।
 इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥
 १त्वामीडते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
 यस्य देवैरासदो बर्हिर्ग्रेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्तु ॥
 होता यक्षदग्निं पुरोडाशस्य जुषताः हविर्होतयज ॥
 अग्निः सुदीतिः सुदृशं गृणन्तः.... ॥ १त्वः ह्यग्रे प्रथमो मनोता.... ॥
 अधा होता न्यसीदो यजीयान्.... ॥
 वृतेव यन्तं बहुभिर्वसच्यैः.... ॥ पदं देवस्य नमसा वियन्तः.... ॥ त्वां
 वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां.... ॥ स पर्येण्यः स प्रियो विश्वग्निः.... ॥
 तं त्वा वयः सुधियो नव्यमग्रे.... ॥ विशां कविं विश्वपतिः शश्वतीनां.... ॥
 सो अग्र ईजे शशमे च मर्तः.... ॥ अस्मा उ ते महि महे विधेम.... ॥
 आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा.... ॥ नृवद्वसो सदमिद्वेहस्मे.... ॥
 पुरुष्यग्रे पुरुधा त्वाया.... ॥ १आभरतः शिक्षतं आयन् ॥

१. शाङ्खायनमते हविर्यागस्य पुरोनुवाक्या । २. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये । स्विष्ट-
 कृद्यागात्पूर्वं कर्तव्यस्य वनस्पतियागस्य याज्यानुवाक्ये 'देवेभ्यो वनस्पते हवींषि' 'वनस्पते रश्मनया
 नियूय' इति ऋग्वेदखिलेषु प्रैषाध्याये पठिते । दृश्यतां वैदिक-संशोधन-मण्डल-प्रकाशिता सभाष्या
 ऋग्वेदसंहिता ४ खण्डे १८४-८५ पृ० । ३. पञ्चपुरोडाशयागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च ।
 ४. पञ्चपुरोडाशस्विष्टकृतः पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च । ५. मनोताकृतम् । ६. हविर्यागस्य
 पुरोनुवाक्या ।

होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्धृतं पुरा
द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभः । घस्तां नूनं धासेअजाणां यवसप्रथमानां
सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः
शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवेन्द्राग्नी जुषेतां हवि-
र्होतयज ॥

१उपो ह यद्विदथं वाजिनो गूर्गाभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।

अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥

२देवेभ्यो वनस्पते हवींषि हिरण्यपर्णं प्रदिवस्ते अर्थम् ।

प्रदक्षिणिद्रशनया नियुयर्तस्य वक्षि पथिमी रजिष्ठैः ॥

३होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाऽऽधित ।

यत्रेन्द्राग्नियोऽङ्गागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया

पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राऽग्नेर्होतुः प्रिया

धामानि तत्रैतं प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयांसमिव कृत्वी करदेवं

देवो वनस्पतिर्जुषतां हविर्होतयज ॥

४वनस्पते रशनयाऽभिधाय पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् ।

बह देवत्रा दिधिषो हवींषि प्र च दातारममृतेषु वोचः ॥

५पिप्रीहि देवां उशतो यविष्ठ.... ॥

६होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरिन्द्राग्नियोऽङ्गागस्य हविषः प्रिया

धामान्ययाड वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाड देवानामाज्यपानां प्रिया

धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या

इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषतां हविर्होतयज ॥

७अग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरिन्द्राग्नियोऽङ्गागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाड

वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाड देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्ने-

र्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो

अध्वरा जातवेदा जुषतां हविः । अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य.... ॥

१. हविर्यागस्य प्रेषः । २. हविर्यागस्य याज्या । ३. वनस्पतियागस्य पुरोनुवाक्या ।

४. वनस्पतियागस्य प्रेषः । ५. वनस्पतियागस्य याज्या । ६. स्विष्टकृद्यागस्य पुरोनुवाक्या ।

७. स्विष्टकृद्यागस्य प्रेषः । ८. स्विष्टकृद्यागस्य याज्या ।

मैसं [४.१३.५-७]—

१ उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्वै.... ॥ होता यक्षदिन्द्राग्नी पुरोडाशस्य जुषेता० हविर्होतयज ॥ प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु.... ॥

२ इडामग्ने पुरुद० स० सर्नि गोः.... ॥ होता यक्षदग्निं पुरोडाशस्य जुषता० हविर्होतयज ॥ अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तः.... ॥

३ इडोपहूतोपहूतेडोपास्मं इडा ह्वयतामिडोपहूता मानवी घृतपदी मैत्रावरुणी । ब्रह्म देवकृतमुपहूतं दैव्या अध्वर्यवा उपहूता उपहूता मनुष्या य इमं यज्ञमवान् ये च यज्ञपतिं वर्धानुपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावरी देवी देवपुत्रे । उपहूतोऽयं यजमाना उत्तरस्यां देवयज्याया-मुपहूतो भूयसि हविष्करणे दिव्ये धामन्नुपहूतो देवा म इदं हविर्जुषन्ता-मिति तस्मिन्नुपहूतः ॥

४ त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता.... ॥ अधा होता न्यसीदो यजीयान्.... ॥ वृतेव यन्तं बहुभिर्वस३व्यैः.... ॥ पदं देवस्य नमसा व्यन्तः.... ॥ त्वा० वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां.... ॥ सपर्येण्यः स प्रियो वि३क्ष्वग्निः.... ॥ तं त्वा वयं सु३ध्यो नव्यमग्ने.... ॥ विशां कविं वि३षतिं शश्वतीनां.... ॥ सो अग्न ईजे शशमे च मर्तः.... ॥ अस्मा उ ते महि महे विधेम.... ॥ आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा.... ॥ नृवद्वसो सदमिद्वेह्यस्मे.... ॥ पुरुण्यग्ने पुरुधा त्वाया.... ॥

५ आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैः.... ॥ होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य हविषः.... ॥ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः.... ॥

६ देवेभ्यो वनस्पते हवी० षि.... ॥ होता यक्षद्वनस्पतिमभि.... । यत्राऽग्ने-राज्यस्य प्रिया धामानि यत्र सोमस्याऽऽज्यस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्राग्न्योऽश्वागस्य हविषः.... ॥ वनस्पते रशनया नियूय.... ॥

७ पिप्रीहि देवं उशतो यविष्ठ.... ॥ होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः

१. पशुपुरोडाशयागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च । २. पशुपुरोडाशस्विष्टकृचागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च । ३. इडोपाह्वानम् । ४. मनोतासूक्तम् । ५. हविर्यागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च । ६. वनस्पतियागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च । ७. स्विष्टकृचागस्य पुरोनुवाक्या प्रैषो याज्या च ।

प्रिया धामान्ययाद् सोमस्याऽऽज्यस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रान्यो-
श्छागस्य हविषः^१.....॥ अग्रे यदद्य विशो अध्वरस्य.....॥ ^२इडोपहूता.....॥

कासं [१८.२०]—

^३त्वि ह्यग्रे प्रथमो मनोता..... ॥ अधा होता न्यसीदो यजीयान्..... ॥
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैः..... ॥ पदं देवस्य नमसा व्यन्तः..... ॥ त्वां
वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां..... ॥ सपर्येण्यस्स प्रियो विश्वग्निः..... ॥ तं त्वा
वयं सुध्यो नव्यमग्रे..... ॥ विशां कविं विश्वर्तिं शश्वतीनां..... ॥ सो
अग्र ईजे शशमे च मर्तः..... ॥ अस्मा उ ते महि महे विधेम..... ॥ आ
यस्ततन्थ रोदसी वि भासा..... ॥ नृवद्वसो सदमिद्वेद्वस्मे..... ॥ पुरुष्यग्रे
पुरुधा त्वाया..... ॥

अनूयाजादि

असं [७.८८.१]—

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥

अपैसं [२०.३२.४]—

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो मिथो हिरण्ययः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामा वि नो मुञ्चत ॥

अनूयाजादिहौत्रम्

तैव्रा [३.६.१३-१५]—

^४देवं बर्हिः सुदेवं देवैः स्यात्सुवीरं वीरैर्वस्तोर्बुज्येताऽक्तोः प्रभ्रियेताऽत्य-
न्यान् राया बर्हिष्मतो मदेम वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

१. अग्रे गत्वा 'सो अध्वराज्ञातवेदाः' इति मुद्रितपुस्तके । लिखितपुस्तकेषु 'सो
अध्वरा जातवेदाः' इति पाठः । स एव तैव्रा ३.६.१२ अत्रापि । २. इडोपाह्वानम् ।
३. मनोतासूक्तम् । ४. पूर्वः अनुयाजप्रेषः अपरा अनुयाजयाज्या, एवं क्रमेण ।

देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥

देवीद्वारः संघाते विड्वीर्यामञ्जिथिरा ध्रुवा देवहूतौ वत्स ईमेनास्तरुण
आमिमीयात्कुमारो वा नवजातो मैना अर्वा रेणुककाटः पृणग्वसुवने वसु-
धेयस्य वियन्तु यज ॥

देवीद्वारो वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु ॥

देवी उषासानक्ताऽद्याऽस्मिन्यज्ञे प्रयत्यह्वेतामपि नूनं दैवीर्विशः प्रायासिष्टाः
सुग्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवी उषासानक्ता वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥

देवी जोष्ट्री वसुधितौ ययोरन्याऽद्या द्वेषाः सि युयवदाऽन्या वक्षद्वसु वार्याणि
यजमानाय वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवी जोष्ट्री वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥

देवी ऊर्जाहुती इषमूर्जमन्याऽऽ वक्षत्सग्धिः सपीतिमन्या नवेन पूर्वं
दयमानाः स्याम पुराणेन नवं तामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने अधातां वसुवने
वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवी ऊर्जाहुती वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥

देवा दैव्या होतारा नेशारा पोतारा हताघशः सावाभरद्वसु वसुवने वसु-
धेयस्य वीतां यज ॥

देवा दैव्या होतारा वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरिडा सरस्वती भारती द्यां भारत्यादित्यैरस्पृक्षत्सर-
स्वतीमः रुद्रैर्यज्ञमावीदिहैवेडया वसुमत्या सधमादं मदेम वसुवने वसुधेयस्य
वियन्तु यज ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु ॥

देवो नराशः सस्त्रिशीर्षा षडक्षः शतमिदेनः शितिपृष्ठा आदधति सहस्रमीं
प्रवहन्ति मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाऽऽध्वर्यवं वसु-
वने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवो नराशः सो वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥

देवो वनस्पतिर्वर्षप्रावा घृतनिणिग्धामग्रेणाऽस्पृक्षदाऽन्तरिक्षं मध्येनाऽऽग्राः
पृथिवीमुपरेणाऽदृष्टः हीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवो वनस्पतिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां निधे धासि प्रच्युतीनामप्रच्युतं निकामधरणं पुरुस्पाहं यशस्वदेना बर्हिषाऽन्या बर्हिःप्यभिष्याम वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां वसुवने वसुधेयस्य वेतु ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृत् सुद्रविणा मन्द्रः कविः सत्यमन्माऽऽयजी होता होतुर्होतुरायजीयानग्ने यान् देवानयाज्याः अपिप्रेर्ये ते होत्रे अमत्सत ताः ससनुषीः होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमः स्विष्टकृच्चाऽग्ने होताऽभूर्वसुवने वसुधेयस्य नमोवाके वीहि यज ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृत्....वसुधेयस्य नमोवाके वीहि ॥

१अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राग्निभ्यां छागः सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राग्निभ्यां छागेनाऽघस्तां तं मेदस्तः प्रति पचताऽग्रभीष्टामवीवृधेतां पुरोडाशेन त्वामद्यर्ष आर्षेयर्षीणां नपादवृणीताऽयं यजमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देवदानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्स्वाऽऽ च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥

मैसं [४.१३.८-१०]—

१देवं बर्हिः सुदेवं.... ॥ देवं बर्हिर्वसुवने.... ॥ देवीर्द्वारः संघाते वीड्वीः.... प्रणग्.... ॥ देवीर्द्वारो वसुवने.... ॥ देवी उषासानक्ताऽद्य.... ॥ देवी उषासानक्ता वसुवने.... ॥ देवी जोष्ट्री वसुधिति यूयवदाऽन्या.... ॥ देवी जोष्ट्री वसुवने.... ॥ देवी ऊर्जाहुती इषं.... ॥ देवी ऊर्जाहुती वसुवने.... ॥ देवा दैव्या होतारा पोतारा नेष्टारा.... ॥ देवा दैव्या होतारा वसुवने.... ॥ देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीरिडा.... ॥ देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीर्वसुवने.... ॥ देवो नराशंसस्त्रिशीर्षा.... ॥ देवो नराशंसो वसुवने.... ॥

१. सूक्तवाक्यैः । २. होतुः सूक्तवाकः दर्शपूर्णमासेष्ट्यां सूत्रवाक्यहोत्रे पठितः । स एवाऽत्र देवतानामोहपूर्वकं पठनीयः । पत्नीसंयाजहौत्रमपि दर्शपूर्णमासवत् । ३. अनुयाजप्रेषा अनुयाजयाज्याश्च । पूर्वोऽनुयाजप्रेषः अपराऽनुयाजयाज्या, एवं क्रमेण ।

देवो वनस्पतिर्वर्षप्रावा.... ॥ देवो वनस्पतिर्वसुवने.... ॥ देवं बर्हिर्वारि-
तीनां निधेधाऽसि पुरुषस्पर्ह.... ॥ देवं बर्हिर्वारितीनां वसुवने.... ॥
देवो अग्निः स्विष्टकृत् यज ॥ देवो अग्निः स्विष्टकृत्.... ॥

१अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं
गृह्णन्नग्नया आज्यं गृह्णन्सोमायाऽऽज्यं बभ्रन्निन्द्राग्निभ्यां वनस्पति-
रभवदग्नया आज्येन सोमायाऽऽज्येनेन्द्राग्निभ्यां.... ॥

३इदं द्यावापृथिवी उपश्रुति शंगवी अप्रवेदे असंबाधे
इन्द्राग्नी इदं हविरजुषेतामवीवृधेतां महो ज्यायोऽक्राताम् । वनस्पति-
रिदं हविरजुषताऽवीवृधत महो ज्यायोऽकृत । देवा आज्यपाः सुप्रजा-
स्त्वमाशास्ते विश्वं प्रियमाशास्ते देवेभ्यो वनुतां अहसस्पातामेह
गतिर्वामस्येदं नमो देवेभ्यः ॥

३तज्शं योरावृणीमहे.... ॥ ४आप्यायस्व.... ॥ सं ते पयांसि.... ॥
इह त्वष्टारमग्रियं.... ॥ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु.... ॥ देवानां पत्नी-
रुशतीरवन्तु नः.... ॥ उत ग्रा व्यन्तु देवपत्नीः.... ॥ राकामहं.... ॥
यास्ते राके ॥ सिनीवालि.... ॥ या सुपाणिः.... ॥ कुहूमहं.... ॥
कुहूर्देवानां.... ॥ अग्निर्होता गृहपतिः स राजा.... ॥ हव्यवाडग्निः.... ॥
१इडोपहूता.... ॥

१. सूक्तवाक्यैषः । २. होतुः सूक्तवाकः । ३. शंयुवाकः । ४. पत्नीसंयाजहौत्रम् ।
५. आज्येडोपाह्वानम् । दर्शपूर्णमासहौत्रं मै० संहितायां न पृथगभिहितं, पाशुकहौत्रप्रसङ्गेन तदंशतो
निरूपितम् ।

निरूढपशुबन्धः

यूपच्छेदनम् उत्तरवेदिनिवपनं च

बौधायनश्रौ० [४.१-२; २०.२५; २४.३४-३६]—

१. पशुना यक्ष्यमाणो भवति । स उपकल्पयते पौतुद्रवान् परिधीन् गुल्गुलु सुगन्धि-
तेजनः शुक्लामूर्णास्तुकां या पेत्यस्याऽन्तरा शृङ्गे द्वे रशने द्विगुणां च त्रिगुणां च द्वे
वप्राश्रपणी विशाखां चाऽविशाखां च हृदयशूलं कार्ष्ण्यमयान् परिधीनौदुम्बरं मैत्रावरुण-
दण्डं मुखेन संमितमिध्मावर्हिर्ध्वं प्रणयनीयं प्लक्षशाखामिडसूतं यवान् यवमतीभ्यः
सक्तून् सक्तुहोमाय पृषदाज्याय दधि हिरण्यमिति । [अथाऽतः पशुबन्धं व्याख्यास्यामः ॥
स ह स्माऽऽह बौधायनः सोपवसथा इष्टिपशुबन्धा इति ॥ सोपवसथा वा सद्योयज्ञा वेति
शालीकिः ॥ इष्टिकरण इति ॥ पशौपशावेवाऽऽग्नेयेनाऽष्टाकपालेन यजेतेति बौधायनः ॥
बभ्रुकर्ण्यौ चैवैतदजवशायां च दृष्टं भवतीति शालीकिः ॥] [सक्तुकरण इति ॥ सूत्रं
बौधायनस्य ॥ व्रीहीणामपि कुर्यादिति शालीकिः ॥] अथाऽऽमावास्यायां वा हविषेऽवा
नक्षत्रे वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा षड्ढोतारं मनसाऽनु-
दुत्याऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने स्वाहा इति । [षड्ढोतुर्होम इति ॥ सूत्रं
बौधायनस्य ॥ उपवसथ एव षड्ढोतारं जुहुयादिति शालीकिः ॥] अपरं चतुर्गृहीतं
गृहीत्वा यूपानुतिं जुहोति उरु विष्णो विक्रमस्त्रोऽक्षाय नः कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपति
तिर स्वाहा इति । [यूपानुत्यै हवन इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
बौधायनः आज्यं चाऽऽरणी चाऽऽदाय यूपस्याऽन्तिकेऽग्निं मथित्वा यूपानुतिं जुहुयादिति ॥]
अपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽथ याचत्याज्यस्थालीः सक्तुवां बर्हिर्हिरण्यमुदपात्रम् । ह्वयन्ति
तक्षाणः सपरशुम् । आह एहि यजमान इति ।

पूर्वया द्वारोपनिष्क्रम्य तां दिशं यन्ति यत्राऽस्य यूपः स्पष्टो भवति यत्र वा
वेत्यन् मन्यते । स यः समे भूम्यै स्वाद्योने रुढो बहुपर्णो बहुशाखोऽप्रतिशुष्काग्रः प्रत्यङ्-
कुपनतस्तमुपतिष्ठते अत्यन्यानां नाऽन्यानुपागामवाक्त्वा परैरविदं परोऽवरैस्तं स्वा जुषे वैष्णवं
देवयज्यायै इति । अथैनमाज्येनाऽनक्ति देवस्वा सविता मध्वाऽनक्तु इति । ऊर्ध्वाग्रं बर्हि-
रनूच्छ्रयति ओषधे त्रायस्वैनम् इति । स्वधितिना तिर्यञ्चं प्रहरति स्वधिते मेनः हिंस्रीः इति ।
यः प्रथमः शकलः परापतति तं प्रज्ञातं निदधाति । तमपरिभिन्दन्नक्षसङ्गं वृश्चति । प्राञ्चं
वोदञ्चं वा प्रयान्तमनुमन्त्रयते दिवसप्रेण मा लेखीरन्तरिक्षं मध्येन मा हिंस्रीः पृथिव्या सं भव
इति । अथाऽऽवश्चने हिरण्यं निधाय संपरिस्तीर्याऽभिजुहोति वनस्पते शतवत्शो वि रोह
स्वाहा इति । सहस्रवत्शो वि वयः रुहेम इत्यात्मानं प्रत्यभिमृशते । [आवश्चनस्याऽभिहोम
इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः एवमेव जुहामन्तर्धाय हिरण्य-
मभिजुहुयात् वनस्पते शतवत्शो वि रोह स्वाहा इति । सहस्रवत्शो वि वयः रुहेम इत्यात्मानं

प्रत्यभिमृशीताऽथोदकं स्पृशेदिति ॥] अन्वग्रं शाखाः प्रसृजयति यं त्वाऽयं स्वधिति-
स्तेतिजानः प्राणिनाय महते सौभगाय इति । पञ्चारत्निं तस्मै वृश्चेदिति । एष ब्राह्मणवतामवमः ।
[पञ्चारत्निप्रभृतयः पाशुबन्धिका यूपा भवन्ति आ नवारत्नेः । नवारत्निप्रभृतय आग्नि-
ष्टोमिका यूपा भवन्ति आ एकविंशत्यरत्नेः । त्र्यरत्निश्चतुररत्निर्वा निरूपशुबन्धस्य
पालाशो यूपः ॥] तं परिष्वङ्गपरमं प्रादेशावमं चषालस्य काले परिवासयति अच्छिन्नो
रायः सुवीरः इति । यत्परं भवति तस्य चतुरङ्गुलं चषालाय प्रच्छेदयति । तं चतुरश्रिं
वाऽष्टाश्रिं वा कृत्वाऽऽवाहयत्या वा हारयति । [यूपस्याऽऽवाहन इति ॥ यः प्राङ्
चोदङ् वा पद्येत तमावाहयेदिति बौधायनः ॥ यां कांचिद्दिशमभिपद्येताऽव्यापकश्चेत्
स्यादावाहयेदेवेति शालीकिः ॥] ओह्य निस्तिष्ठति । अवतक्षणा नामेव स्वरं कुरुते ।
[स्फ्यो यूपो भवतीति ॥ स्फ्यप्रकार एवाऽयं चषालवान् यूपो भवतीति बौधायनः ॥ अस्फ्य
एवाऽयमन्यगारिकोऽचषालो यूपः स्यादिति शालीकिः ॥ विशाखो यूपो भवतीति ॥ ऊर्ध्वं
रशनाकालाद् द्वे शाखे चतुरश्रे चतुरश्रचषाले स्यातामथेतरोऽष्टाश्रिर्यूपः स्यादिति
बौधायनः ॥ शाखैवेयमचषाला स्यादथेतरोऽष्टाश्रिर्यूपः स्यादिति शालीकिः ॥] [स्फ्यो
यूपो भवतीति । कथमु खत्वस्य स्वरधिमन्थने यूपशकले इति भवन्तीति । एतस्यैवाऽव-
तक्षण्यात् । अपि वाऽन्यस्य तज्जातीयस्य वृक्षस्य कुर्यात् । अचषाल एष भवति ।]

२. अथाऽस्यैषा पूर्वैरग्रेव पाशुबन्धिकी वेदिर्विमिता भवति दशपदा पञ्चात्तिरश्ची
द्वादशपदा प्राच्यष्टापदा पुरस्तात्तिरश्ची । [वेद्यै करण इति ॥ सूत्रमौपमन्यवीपुत्रस्य ॥
अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो रथसंमिता स्याद्रथाक्षेण पञ्चात्तिरश्ची रथेषया प्राची रथयुगेन
पुरस्तात्तिरश्च्युत्तरयुगेनोत्तरनाभिरिति ॥ चक्षुर्निमिता वा स्यात्सर्वतो वा दशपदा
विषदसंपन्नेति शालीकिः ॥] तां परिस्तीर्य स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव प्रसिद्धं पौरोडा-
शिकम् । त्रिर्यजुषा तूष्णीं चतुर्थम् । [अथाऽयं पशुः सोपवसथः । तस्य कः कर्मण
उपक्रमो भवतीति । अजलैरग्निभिरुदवसाय षड्ढोतारं हुत्वा यूपाहुतिं हुत्वा यूपं
सयजुषं कृत्वा वेदिं विमाय व्रतोपायनीयमशित्वाऽग्नीनन्वादध्यात् । व्रतमुपेयात् । इध्मा-
बर्हिः संनह्योपवसेत् । अथ प्रातराग्नेयेनाऽष्टाकपालेन यजेत । इति नु बौधायनस्य कल्पः ।
नाऽग्नीनन्वादध्यान्न व्रतमुपेयात् । पाणी संमृशीत । परितृणीयात् । पात्राणि निर्णिज्य
संसादयेत् । ब्रह्माणं दक्षिणत उपवेशयेत्तूष्णीम् । प्रणीते त्वौत्तरवेदिके मन्त्रेणोपविशेत् ।
प्रोक्षणीः संस्कृत्य पात्राणि प्रोक्षेत् । आज्यं निरुप्याऽधिधित्य पर्यग्निं कृत्वा स्फ्यहस्तः
प्राडेत्य स्तम्बयजुर्हरेत् । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ॥ अथ शालीकेः । अरण्योरग्नीन् समारोह्यो-
दवसाय मथित्वाऽग्नीन् विहृत्यैवमेव षड्ढोतारं हुत्वा यूपाहुतिं हुत्वा यूपं सयजुषं कृत्वा
वेदिं विमायाऽग्नीनन्वादध्यात् । व्रतमुपेयात् । इध्माबर्हिः संनह्येत् । पाणी संमृशीत । परि-
तृणीयात् । पात्राणि निर्णिज्य संसादयेत् । ब्रह्माणं दक्षिणत उपवेशयेत्तूष्णीम् । प्रणीते
त्वौत्तरवेदिके मन्त्रेणोपविशेत् । प्रोक्षणीः संस्कृत्य पात्राणि प्रोक्षेत् । आज्यं निरुप्याऽधि-

श्रित्य पर्यग्निकृत्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धत्याहवनीये पूर्णाहुतिः कृत्वा स्फ्यहस्तः प्राडेत्य स्तम्बयजुर्हरेत् । सिद्धमत ऊर्ध्वम् ॥] पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्नीध्रस्त्रिहरेति । यदाग्नीध्रस्त्रिहरेत्यथ याचति स्फ्यमुदपात्रं बर्हिः शम्यामिति । एतत्समादायाऽऽह एहि यजमान इति । उत्तरेण वेदिं द्वयोर्वा त्रिषु वा प्रक्रमेषु स्फ्येनोद्धत्याऽवोक्ष्य शम्यया चात्वालं परिमिमीते । वितायनी मेऽसि इति पुरस्तादुदीचीनकुम्बयाऽन्तरतः स्फ्येनाऽऽलिखति । तिकायनी मेऽसि इति दक्षिणतः प्राचीनकुम्बयाऽन्तरतः स्फ्येनाऽऽलिखति । अवतान्मा नाथितम् इति पश्चादुदीचीनकुम्बयाऽन्तरतः स्फ्येनाऽऽलिखति । अवतान्मा व्यथितम् इत्युत्तरतः प्राचीनकुम्बयाऽन्तरतः स्फ्येनाऽऽलिखति । [चात्वालस्य परिलेखन इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन एवमेव परिलिखन् बाह्यतः पुरस्ताच्चोत्तरतश्चाऽऽलिखेदिति ॥] अथ चात्वाले बर्हिर्निधाय तस्मिन् स्फ्येन प्रहरति विदेरभिर्नभो नामाऽग्ने अङ्गिरो योऽस्यां पृथिव्यामसि इति । आदत्ते आयुषा नाम्नेहि इति । हत्वोत्तरवेद्यां निवपति यत्तेऽनावृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वाऽऽदधे इति । द्वितीयं प्रहरति विदेरभिर्नभो नामाऽग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि इति । आदत्ते आयुषा नाम्नेहि इति । हत्वोत्तरवेद्यां निवपति यत्तेऽनावृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वाऽऽदधे इति । तृतीयं प्रहरति विदेरभिर्नभो नामाऽग्ने अङ्गिरो यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि इति । आदत्ते आयुषा नाम्नेहि इति । हत्वोत्तरवेद्यां निवपति यत्तेऽनावृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वाऽऽदधे इति । तूर्णीं चतुर्थं हरति सह बर्हिषा । [किमु खलु प्रवसतः पशुबन्धः सिध्यतीति न सिध्यतीति इति । सिध्यतीत्येक आहुः । अथ हैक आहुर्न सिध्यतीति । लोकाग्नीन् खल्विमान् द्वितीयमग्न्याधेयं ब्रुवते । न तु खलु प्रवसतः पशुबन्धः सिध्यतीति । कियन्तु खलु पशुबन्धे याजमानं भवतीति । व्रतोपायनव्रतविसर्जने यज्ञस्य पुनरालम्भः । आज्यावकाशमु हैके ब्रुवते ।] [लोकाग्नीनां हरण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन उत्तरवेद्यामाग्नीध्रमुपवेश्य ततो लोकाग्नीन् हरेदिति । उद्देशादेव लोकाग्नीन् हरेदित्यौपमन्यवः ॥] अथाऽध्वयुः स्फ्येन चात्वालात् पुरीषमुद्धन्ति । अथाऽऽग्नीध्रमाह अग्नीदितस्त्रिहरे इति । ततस्त्रिराग्नीध्रो हरति । यदाग्नीध्रस्त्रिहरेत्यथाऽध्वयुरुत्तरवेद्यै पुरीषं संप्रयौति सिंहीरसि महिषोरसि इति । प्रथयति उरु प्रथखोर ते यज्ञपतिः प्रथताम् इति । स्फ्येन संहन्ति भुवाऽसि इति । अथैनामङ्गिरवोश्नति देवेभ्यः इन्धस्व इति । देवेभ्यः शुम्भस्व इति सिकताभिरनुप्रक्रियति । तां प्रादेशमात्रीं चतुरश्रां निःश्राय शम्यया परिमिमीते । [उत्तरवेद्यै परिमाण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो रथसंमितायामेव धौरेयशम्यया परिमिमीत । नाऽत्र मध्यमा वेदिर्भवतीति ॥] उत्तरनाभिमुत्साद्य । अथैनां प्रतिच्छाद्य । [उत्तरवेद्या अलंकरण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पूर्वं गुरोच्चरनाभिं परिनिस्तिष्ठेदिति शालीकिः ॥] अग्निमादत्ते देवस्य त्वा सविदुः प्रसवेऽधिर्नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे इति । आदायाऽभिमन्त्रयते अग्निरसि नाऽरिरसि इति । तथा यूपवटं परिलिखति यथाऽन्तर्वैद्यं स्याद्वह्विर्वैद्यं परिलिखितं रक्षः परिलिखिता अरातय इदमदं रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वथे द्विष्म इदमस्य ग्रीवा अपि

कृन्तामि इति । अथाऽऽग्नीध्रमाह अग्नीदेहीमं यूपावटं खनोपरसमितं प्राक् पुरीषमुद्रपताच्चतुर-
ङ्गुलेनोपरमतिखनतात् इति । त५ स खनति वा खानयति वा । [आख्यातं यूपावटस्य
परिलेखनम् ॥]

यावदेवाऽत्राऽध्वर्युश्चेद्वति तावदेष प्रतिप्रस्थाताऽभ्यादधातीध्मं प्रणयनीयम् ।
उपोपयमनीः कल्पयन्ति चात्वालात् । आत्मनेन्द्रघोषवतीः प्रोक्षणीरध्वर्युरादत्ते । परिकर्मिणे
पञ्चगृहीतमाज्यं प्रयच्छति । ब्रह्मणि संभारा भवन्ति । अथ संप्रैषमाह अग्नये प्रणीयमाना-
याऽनुब्रूहमीदेकस्फ्ययाऽनुसंधेहि इति । त्रिरुक्तायामुद्यच्छन्ते । होतुर्वशं यन्ति । उत्तरेण वेदिं
प्रतिपद्यन्ते । धारयन्त्येतमग्निम् । [स्फ्येनाऽऽग्नीध्रो निज्जन्नन्वेति होतुः पदानीति ॥
सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः पदात्पदं पा५सूनुपस५हत्य तानुत्तरे-
णोत्तरनाभिमतिकिरेदिति ।] अथाऽध्वर्युरिन्द्रघोषवतीभिः प्रोक्षणीभिरुत्तरवेदिं प्रोक्षति ।
इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु इति पुरस्तात् । मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु इति
दक्षिणतः । प्रवेतास्त्वा रद्रेः पश्चात्पातु इति पश्चात् । विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैस्तरतः पातु
इत्युत्तरतः । [उत्तरवेद्यै प्रोक्षण इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो
मन्त्रानुदिशं चैनां प्रोक्षेन्मन्त्रानुलोकं चेति ॥] अथ यत्प्रोक्षणीनामुच्छिद्यते तद्दक्षिणत
उत्तरवेद्यै निनयति । यदेव तत्र कूरं तत्तेन शमयतीति ब्राह्मणम् । [अतिशिष्टानां निनयन
इति ॥ वेद्यै दक्षिणेऽ५से निनयेदिति बौधायनः ॥ उत्तरवेद्या इति शालीकिः ॥ रथसंमि-
तायामेव दक्षिणम५समुपनिनयेदित्यौपमन्यवः ॥] [अथेमाः पशुबन्धे षट् प्रोक्ष्यन्तिस्तिस्रो
ह मन्त्रवत्यस्तिस्त्रसूणीकाः । यवमतीरिन्द्रघोषवतीः पशुप्रोक्षणीरिति तूणीकाः पशुपुरो-
डाशीयप्रोक्षणीः पात्रप्रोक्षणीरिध्माबर्हिः प्रोक्षणीरिति मंत्रस५स्कृताः ।]

अग्निप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तम्

बौधायनश्रौ० [४.३-४; २०.२६-२७; २४.३५]—

१. अथैना५ हिरण्यमन्तर्धायाऽक्षण्या पञ्चगृहीतेन व्याधारयति । सि५ हीरसि
सपत्नसाही स्वाहा इति दक्षिणे५से । सि५ हीरसि सुप्रजावनिः स्वाहा इत्युत्तरस्या५श्रोण्याम् ।
सि५ हीरसि रायस्पोषवनिः स्वाहा इति दक्षिणस्या५श्रोण्याम् । सि५ हीरस्यादित्यवनिः स्वाहा
इत्युत्तरेऽ५से । सि५ हीरस्या वह देवान् देवयते यजमानाय स्वाहा इति मध्ये । [उत्तरवेद्यै
व्याधारण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ प्रत्यनीकेष्वेनां व्याधारयेदिति शालीकिः ॥ अक्षण्यैव
व्याधारयन् मध्ये हुत्वोत्तरम५समभिजुहुयादित्यौपमन्यवः ॥] अथ भूतेभ्यस्त्वा इति
सुचमुद्गृह्णाति । अथ पौतुद्रवान् परिधीन् परिदधाति । विश्वायुरसि पृथिवीं द५ह इति
मध्यमम् । ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं द५ह इति दक्षिणम् । अन्वुतक्षिदसि दिवं द५ह इति उत्तरम् ।
अथाऽतिशिष्टान् संभारान्निवपति गुल्गुलु सुगन्धितेजन्५शुक्लामूर्णास्तुकाम् अग्नेर्मत्साऽस्यमः
पुरीषमसि इति । अथैनान् स५सावेणाऽभिधारयति । अथ प्रदक्षिणमावृत्त्येध्मं प्रतिष्ठापयति
य५ प्रतिष्ठिष्ठ सुमती दुशेवा आ त्वा वसूनि पुरुधा विशन्तु । दीर्घमायुर्थजमानाय कृण्वन्नथाऽभूतेन

जरितारमङ्गविध इति । [इध्मस्य निधान इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ तूष्णीमेवेध्मं निदध्यादिति शालीकिः ॥] अथैनं विस्रस्याऽऽहुतिषाहं कृत्वाऽध्वराहुतिभिरभिषुहोति अभिर्यज्ञं नयतु प्रजानन् मेनं यज्ञह्नो विदन् । देवेभ्यः प्रब्रूताद्यज्ञं प्रप यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ वायुर्यज्ञं नयतु प्रजानन् मेनं यज्ञह्नो विदन् । देवेभ्यः प्रब्रूताद्यज्ञं प्रप यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ सूर्यो यज्ञं नयतु प्रजानन् मेनं यज्ञह्नो विदन् । देवेभ्यः प्रब्रूताद्यज्ञं प्रप यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ यज्ञो यज्ञं नयतु प्रजानन् मेनं यज्ञह्नो विदन् । देवेभ्यः प्रब्रूताद्यज्ञं प्रप यज्ञपतिं तिर स्वाहा इति । [अध्वराहुतीनां होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ चत्वारि चतुर्गृहीतानि जुहुयादिति शालीकिः ॥] अथैता यजमान एव स्वयं जुहोति अभिरज्ञादोऽन्नपतिरन्नस्येशे स मेऽन्नं ददातु स्वाहा ॥ वायुः प्राणदाः प्राणस्येशे स मे प्राणं ददातु स्वाहा ॥ आदित्यो भूरिदा भूयिष्ठानां पशूनामीशे स मे भूयिष्ठान् पशून् ददातु स्वाहा इति ।

२. अग्निवत्युत्तरं परिग्राहं परिगृह्य योयुपित्वा तिर्यञ्च स्फ्यं स्तब्ध्वा संप्रैष-
माह प्रोक्षणीरासादयेध्माबर्हिर्नृपसादय सुव स्वधितिं सुचश्च संमृड्ढि तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणीं पत्नीं संनद्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेहि इति । आहतासु प्रोक्षणीषूदस्य स्फ्यं मार्जयित्वेध्माबर्हिर्नृपसाद्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्ङाद्रुत्य सुव स्वधितिं सुचश्च संमार्ष्टि तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणीम् । [पृषदाज्यग्रहण्यै संमार्जनसादन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ लभेतौपभृते संमार्जनसादने इति शालीकिः ॥ न संमृजेदित्यौपमन्यवः ॥] पत्नीं संनद्याऽऽज्येन च दध्ना चोदेति । आज्यं च प्रोक्षणीश्चोत्पूय प्रसिद्धमाज्यानि गृहीत्वा पृषदाज्यग्रहण्यामुपस्तृणीते महीनां पयोऽसि इति । विषेष्वा देवानां तनूः इति द्वितीयम् । बर्हिषी अन्तर्धाय दधानयति ऋध्या-
समद्य पृषतीनां ग्रहं पृषतीनां ग्रहोऽसि इति । अपोऽदृत्य बर्हिषी अथाऽभिघारयति विष्णोर्हृदयमसि इति । एकमिष विष्णुस्त्वाऽनुविवकपे इति द्वितीयम् । [पृषदाज्यस्य ग्रहण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ हृदयान्तेन गृहीयादिति शालीकिः ॥ स सृज्याऽऽज्यं च दधि चैतैः पञ्चभिर्गृहीयादित्यौपमन्यवः ॥ अत्रो ह साऽऽहौपमन्यवीपुत्रस्तूष्णीं द्विरुपस्तीर्य सर्वैर्मन्त्रैर्दधानीय तूष्णीं द्विरभिघारयेदिति ॥ पृषदाज्यस्य प्रायश्चित्तकरण इति ॥ ग्रहणादग्रा-
चरणादत्रैवाऽस्य प्रायश्चित्तं कुर्वतेति बौधायनः ॥ सादनादग्राचरणादत्रैवेति शालीकिः ॥ न तु पृषितमात्र इत्यौपमन्यवः ॥] अथ प्रोक्षणीभिरुपोत्तिष्ठति । इध्मं प्रोक्षति । वेदिं प्रोक्षति । बर्हिः प्रोक्षति । बर्हिरासन्नं प्रोक्ष्योपनिनीय पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति । पञ्चविधं बर्हिः स्तीर्त्वा प्रस्तरपाणिः प्राङ्मिसृज्य कार्मर्यमयान् परिधीन् परिदधाति । ऊर्ध्वं समिधा-
चादधाति । विधृती तिरश्ची सादयति । विधृत्योः प्रस्तरम् । प्रस्तरे जुहम् । बर्हिषीतराः । एता असदन् इति समभिमृश्य प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्ङाद्रुत्य याचति यवमतीः प्रोक्षणीर्बर्हि-
र्हस्तमाज्यस्थालीं ससुवां स्वरुशानं मैत्रावरुणदण्डं यूपशकलं हिरण्यमुदपात्रमिति ।

३. एतत्संनिधाय यूपं प्रक्षालयति यत्ते शिकः परावधीतक्षा हस्तन वास्या । आपस्ते तद्वनस्पतेऽपनुदन्तु शुन्धनीः इति । [यूपस्य प्रक्षालन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ तूष्णीमेव यूपं प्रक्षालयेदिति शालीकिः ॥] यूप एष प्रक्षालितः प्रपन्नः संपन्नचवालः प्रागघटापुपशेते । तमुसरेणाऽऽहवनीयं तिष्ठन् पराञ्चं प्रोक्षति पृथिव्यै त्वा, अन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वा इति ।

[यूपस्य प्रोक्षण इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनः स्वररशनं मैत्रावरुणदण्डं यूपशकलं
 हिरण्यमुदपात्रमित्येतत्सन्निधाय यूपं प्रोक्षेदिति ॥ एवं यूपेन यूपसंयोजनानि प्रोक्षेत्पशुना
 पशुसंयोजनानीति शालीकिः ॥] [प्रोक्षणप्रवृत्ति मन्त्रान् साधयेदा परिव्ययणात् । तृतीय-
 वेलायां परिव्ययेत् । एवमुपरसंमितायाम् ।] अवटेऽपोऽवनयति शुन्धतां लोकः पितृषदनः इति ।
 यवान् प्रस्कन्दयति यवोऽसि यवयाऽऽमद् द्वेषो यवयाऽऽरातीः इति । बर्हिर्हस्तं व्यतिषज्याऽव-
 स्तृणाति पितृणां सदनमसि इति । अथैनद्धिरण्यमन्तर्धाय सुबाहुत्याऽभिजुहोति पितृभ्यः स्वाहा
 इति । यूपशकलमवास्यति स्वावेशोऽस्यग्रेणा नेतृणां वनस्पतिरधि त्वा स्थास्यति तस्य वित्तात् इति ।
 अथाऽऽदत्त आज्यस्थालीं ससुवां स्वररशनं मैत्रावरुणदण्डमुदपात्रमिति । एतत्समा-
 दायाऽऽह एहि यजमान इति । अन्वग्यजमानोऽनूची पत्न्यग्रेण यूपं परीत्य दक्षिणत
 उदङ्मुखस्तिष्ठन्ति पूर्वं एवाऽध्वर्युरपरो यजमानोऽपरा पत्नी । [यूपस्य परिक्रमण
 इति ॥ दक्षिणेनेति बौधायनः ॥ उत्तरेणेति शालीकिः ॥] अथ प्रवृह्य चषालं यूपस्या-
 ऽग्रमनक्ति देवस्त्वा सविता मच्चाऽनक्तु इत्यन्तरतश्च बाह्यतश्च । स्वभ्यक्तं कृत्वा चषालं
 प्रतिमुञ्चति सुपिण्णलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः इति । अथ सुवेणाऽग्निष्ठामश्रिमभिधारयन्नाह यूपायाऽज्य-
 मानायाऽनुब्रूहि इति । आऽन्तमनक्ति । आऽन्तमेव यजमानं तेजसाऽनक्ति । [यूपस्याऽञ्जन
 इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अग्निष्ठामेवेति शालीकिः ॥] नोपरमनक्ति । पत्न्युपरमनक्ति ।
 सर्वतः परिमृशति । अपरिवर्गमेवाऽस्मिन् तेजो दधातीति ब्राह्मणम् । उच्छ्रयन्नाह उच्छ्रीय-
 माणायाऽनुब्रूहि इति । उच्छ्रयति उदिवं स्तमानाऽन्तरिक्षं पृण पृथिवीमुपरेण द२ह इति । अथैनं
 वैष्णवीभ्यामृग्भ्यां कल्पयति ते ते धामानि, विष्णोः कर्माणि पश्यत इति द्वाभ्याम् । स यत्रा-
 ऽग्निष्ठामश्रिमाहवनीयेन संपादयति तद् भुवस्य चषालं परेक्षयति तद्विष्णोः परमं पदं सदा
 पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् इति । अथैनं प्रदक्षिणं पुरीषेण पर्यूहति ब्रह्मविं त्वा
 क्षत्रविनं सुप्रजाविनं रायस्पोषविनं पर्यूहामि इति । मैत्रावरुणदण्डेन स२हन्ति ब्रह्म द२ह क्षत्रं
 द२ह प्रजां द२ह रायस्पोषं द२ह इति । अन्यूनमनतिरिक्तं परिन्यस्योदपात्रमुपनिनीय ।
 [उदपात्रस्योपनिनयन इति ॥ प्रदक्षिणमुपनिनयेदिति बौधायनः ॥ यथोपपादमिति
 शालीकिः ॥] अथैतां त्रिगुणां रशनां त्रिः संभुज्य मध्यमेन गुणेन नाभिदध्ने परिव्य-
 यन्नाह परिवीयमाणायाऽनुब्रूहि इति । त्रिः प्रदक्षिणं परिव्ययति परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो
 व्ययन्तां परीमं रायस्पोषो यजमानं मनुष्याः इति । [यूपस्य परिव्ययण इति ॥ त्रिरेव मन्त्रं
 ब्रूयात् त्रिः कर्माऽऽवर्तयेदिति बौधायनः ॥ सकृदेव मन्त्रं ब्रूयात्सकृत्कर्मति शालीकिः ॥
 नाभिदध्ने परिव्ययतीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ मध्यदेश इति शालीकिः ॥] उपान्ते
 व्यतिषजति । आऽन्तं प्रवेष्टयति । अणिमति स्थविमत् प्रवयति । अथोत्तरेणाऽग्निष्ठामश्रि
 मध्यमे गुणे स्वरुमवगूहति अन्तरिक्षस्य त्वा सानावव गूहामि इति । [स्वरोरवगूहन इति ॥
 सूत्रं बौधायनस्य ॥ अग्निष्ठां प्रतीति शालीकिः ॥] स्वर्वन्तं यूपमुत्सृजति ॥

१०. तैमा १.१.१ सायणभाष्ये बौधायनीयं हीत्रसूत्रमेवमुद्धृतम्—

तत्र बौधायन आह—“यदाऽनुजानाति यूपायाऽज्यमानायाऽनुब्रूहि इति तज्जघने-
 (अग्रिमं पृष्ठं द्रष्टव्यम्)

पर्याग्निकरणान्तम्

बौधायनश्रौ० [४.५-६; २०.२६-२८]—

१. अथैतं पशुं पल्पूलितमन्तरेण चात्वालोत्करौ प्रपाद्याऽग्नेण यूपं पुरस्तात् प्रत्यङ्मुखमुपस्थापयति । तम् इषे त्वा इति बर्हिषी आदायोपाकरोति उपवीरस्युपो देवान् देवीर्विशः प्रागुर्वहीन्विजो बृहस्पते धारया वसूनि हव्या ते स्वदन्तां देव त्वर्ध्वसु रण्व रेवती रमध्वम् । प्रजापतेर्जायमाना इमं पशुं पशुपते ते अद्येन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टमुपाकरोमि इति । यद्देवत्यो वा भवति । [पशोरुपाकरण इति ॥ सूत्रमौपमन्यवीपुत्रस्य ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन एवमेवोपाकुर्यान्न तु जोषयेदिति ॥ जोषयेच्चैव जुहुयाच्चोपाकरणायेति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यव एवमेवैनं पुरस्तात्प्रत्यगावृत्तं बर्हिष्यां च प्लक्षशाख्या चाऽभिसेधे- देतस्यां च प्लक्षशाख्यायां हृदयं निधायाऽवद्येदिति ॥] प्रज्ञाते बर्हिषी निधायाऽधि- मन्थनं शकलं निदधाति अमेर्जेनित्रमसि इति । वृषणावन्वञ्चौ वृषणौ स्थः इति । अथाऽरणी आदत्ते उर्वश्यस्यायुरसि पुरुरवाः इति । अथैने आज्यस्थाल्यां समनक्ति घृतेनाऽक्ते वृषणं दधाथाम् इति । [अरण्योः समञ्जन इति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः अमेर्जेनित्रमसि इति शकलमाददीत । वृषणौ स्थः इति दूर्वं वा शकले वा निदध्यात् । उर्वश्यसि इत्यधरारणिमाददीत । पुरुरवाः इत्युत्तरारणिम् । अथैने आज्यस्थाल्यां समज्य घृतेनाऽक्ते वृषणं दधाथाम् इति समवदध्यादिति ॥] अथ प्रजातीर्वाचयति गायत्रं छन्दोऽनु प्र जायस्व, त्रैष्टुभं छन्दोऽनु प्र जायस्व, जागतं छन्दोऽनु प्र जायस्व इति । अथाऽऽह अग्नये मध्य- मानायाऽनुब्रूहि इति । जात आह जातायाऽनुब्रूहि इति । प्रहरन्नाह प्रहियमाणायाऽनुब्रूहि इति । प्रहरति भवतं नः समनसी इति । प्रहृत्याऽभिजुहोति अभावमिश्चरति प्रविष्टः इति । अथ रश- नामादत्ते देवस्य त्वा सविनुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे इति । [पशुरशनाया आदान इति ॥ मन्त्रेणाऽऽददीतेति बौधायनः ॥ तूष्णीमिति शालीकिः ॥] तथाऽक्षण्या पशुमभिदधाति दक्षिणमध्यर्धशीर्षम् ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेनाऽऽ रमे इति । [पशोर- मिधान इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ ग्रीवायामेवाऽभिदध्यादिति शालीकिः ॥] द्विगुणायै च त्रिगुणायै चाऽन्तौ संदधाति धर्षा मानुषान् इति । नियुनक्ति । [पशोर्नियोजन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ यूप एव पशुं नियुञ्ज्यादिति शालीकिः ॥] अथैनमद्भिः प्रोक्षति अद्भ्यस्त्वौषधीभ्य इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि इति । यद्देवत्यो वा भवति । [पशोः प्रोक्षण

(पूर्वस्मात् पृष्ठात्)

नोत्तरे वेदितुं (नोत्तरवेदिं तृणं ?) निरस्योपविश्य यूपाञ्जनीया अन्वाह अज्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः इति सप्त । तासां त्रिः प्रथमामन्वाह । उत्तमेन वचनेनाऽर्धेर्च उपरमति । यदा जानाति उच्छ्रीयमाणायाऽनुब्रूहि इति यद्वर्ध्वस्तिष्ठात् इति प्रतिपद्य स मर्य आ विदथे वर्धमानः इत्यर्धेर्च उपरमति । यदा जानाति परिवीयमाणायाऽनुब्रूहि इति पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा इति प्रतिपद्य उत्तमया त्रिः परिदधाति । ”

बौश्रौ० मुद्रितपुस्तकेऽयमंशो नोपलभ्यते ।

इति ॥ तूष्णीं स ऋक् सूक्ताभिरङ्गिः प्रोक्षेदिति बौधायनः ॥ कमण्डलुभिरिति शालीकिः ॥
पाययति अपां पेक्षसि इति । स्वात्तं चित्सदेव हव्यमापो देवीः स्वदत्तैर्नम इत्युपरिष्ठात्प्रोक्ष्या-
ऽधस्तादुपोक्षति । सर्वत एवैनं मेध्यं करोतीति ब्राह्मणम् । उदूह्य प्रोक्षणीधानम् ।

२. अथेष्मात्समिधमाददान आह अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि इति । अभ्या-
दधातीधमम् । परि समिधं शिनष्टि । वेदेनोपवाजयति । अनूक्तासु सामिधेनीषु सुवेणा-
ऽऽधारमाधारयति । संवृष्टे सुगम्यामुत्तरम् । अथाऽसंस्पर्शयन् सुचाबुदङ्कुल्याक्रम्य
जुह्वा पशुं समनक्ति । सं ते प्राणो वायुना गच्छताम् इति ललाटे । सं यज्ञत्रैरङ्गानि इति
ककुदि । सं यज्ञपतिराशिषा इति दक्षिणस्यां श्रोण्याम् । [पशोः समञ्जन इति ॥ सूत्रं
शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो ललाटे सुचं प्रतिष्ठाप्याऽनुच्छिन्दन् कर्षेदा
दक्षिणायै श्रोणेति ॥] अथ यथायतनं सुचौ सादयित्वा प्रवरं प्रवृणीते । प्रसिद्धं
होतारं वृणीते । अथाऽऽश्रावयति ओ श्रावय, अस्तु श्रौषट्, मित्रावरुणौ प्रशास्तारौ प्रशान्ना
इति । असौ मानुषः इति मैत्रावरुणस्य नाम गृह्णाति । अथाऽऽश्रावयति । यद्यत्राऽत्या-
श्रावयति ओ श्रावय, अस्तु श्रौषट्, अग्निर्ह दैवीनां विशां पुरस्तादयं यजमानो मनुष्याणां तयोरस्थूरि
गार्हपत्यं दीदयच्छतं हिमा द्वा यू राधांसीत्संपृञ्चानावसंपृञ्चानौ तन्वः इति । [अत्याश्रावण इति ॥
सूत्रं बौधायनस्य ॥ सोम एवाऽत्याश्रावयेदिति शालीकिः ॥] सीदति होता । प्रसव-
माकाङ्क्षति । प्रसूतः सुचावादायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह समिद्धयः प्रेष्ठ इति । वषट्कृते
जुहोति । प्रेष्ठ प्रेष्ठ इति चतुर्थाष्टमयोः समानयमानः । अष्टमे सर्वं समानयते । परि
स्वाहाकृतीभ्यः संस्त्रावं शिनष्टि । दश प्रयाजानिह्वोदङ्कुल्याक्रम्य स्वरं च शासं च
याचति । तौ जुह्वामङ्कत्वा ताभ्यां पशुं समनक्ति घृतेनाऽक्नौ पशुं त्रायेथाम् इति । [पशोः
समञ्जन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यथा समञ्ज्यान्न तथा विशस्यान्न त्वेतया
शृतस्याऽवघेदिति ॥ यथोपपादमिति शालीकिः ॥] प्रयच्छति शासम् । अवगूहति
स्वरम् । [स्वरुरशनस्योत्पादन इति ॥ यूपः स्वरुरशनमुत्पादयेदिति बौधायनः ॥
पशुरिति शालीकिः ॥ तन्त्रमित्यौपमन्यवः ॥ देवतेत्यौपमन्यवीपुत्रः ॥] अथ यथायतनं
सुचौ सादयित्वाऽऽह पर्यग्नये क्रियमाणायाऽनुब्रूहि इति । अथैष आग्नीध्र आहवनीयादुल्मुक-
मादाय अन्तरेण चात्वालौत्करावुत्तरेण शामित्रदेशमग्रेण पशुं जघनेन सुच इत्येवं
त्रिः प्रदक्षिणं पर्येति । [पशोः पर्यग्निकरण इति ॥ सहशामित्रं पर्यग्निरुपार्थं कुर्यादिति बौधायनः ॥
यदन्यच्छामित्रादिति शालीकिः ॥ पशुं चाऽऽज्यानि चेति राथीतरः ॥ पशुमेवेत्यौ-
पमन्यवः ॥] अथाऽनुपरिसरणमपाव्यानि जुहोति प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्ति पूर्वं, येषामीशे पशुपतिः
पशूनाम्, ये बध्यमानसु बध्यमानाः, य आरण्याः पशवो विश्वरूपाः, प्रमुञ्चमाना भुवनस्य रेतः इति ।
[अपाव्यानां होम इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन एकं प्रथमे पर्याये जुहुयाद् द्वे मध्यमे
द्वे उत्तम इति ॥ यथोपपादमिति शालीकिः ॥] निधायाऽऽग्नीध्र उल्मुकं यथेतं त्रिः पुनः
प्रतिपर्येति ॥

पर्याग्निकरणान्तं हौत्रम्

बौधायनश्रौ० [३.३१]—

१. अथ पशानुपधीयन्ते । यदा जानाति अग्नये मध्यमानायाऽनुब्रूहि इति तदेते ऋचौ जपति यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि ॥ यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः । अग्निष्टोता ऋतुविद्विजानन् यजिष्ठो देवाः ऋतुशो यजाति इति । मैत्रावरुणदण्डेऽध्वर्युर्यजमानं वाचयति त्वां गावोऽङ्गुत राज्याय त्वाः हवन्त मरुतः स्वर्काः । वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुभिः शिश्रियाणस्ततो न उग्रो विभजा वसूनि इति । तमग्रे गृहीत्वा मैत्रावरुणाय प्रयच्छति मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा प्रयच्छामि इति । तः स स्थूरतः प्रतिगृह्णाति मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा प्रतिगृह्णामि इति दक्षिणोत्तरी । अथैनमूर्ध्वमुन्मार्ष्टि अवक्रोऽविधुरो भूयासम् इति । तमादाय संप्रेष्यति होता यक्षदमिः समिधा सुषमिधा समिद्धम् इतीध्मान्तं पशोः^१ ।

वपायागः

बौधायनश्रौ० [४.६-७; २०.२८-२९; २४.३६]—

१. अथोल्मुकप्रथमाः प्रतिपद्यन्ते । अन्वक्छमिता पशुना । पशुमध्वर्युर्वपाश्रपणीभ्यामन्वारभते । वपाश्रपणी यजमानः । अथाऽऽश्राव्य संप्रेष्यति उपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः इति । [उपप्रेषाश्रावण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नाऽऽश्रावयेदिति शालीकिः ॥] [उपप्रेषाश्रावण इति । किंदेवत्यं नु खल्विदं भवतीति । मृत्युदेवत्यमित्येव ब्रूयात् ।] अथैतं पशुमन्तरेण चात्वालोत्कराबुदञ्चं नीयमानमनुमन्त्रयते नाना प्राणो यजमानस्य पशुना, रेवतीर्यज्ञपतिं प्रियधाऽऽ विशत इति द्वाभ्याम् । स यत्रैतदाग्नीध्र उल्मुकं निदधाति तदग्रेण वोत्तरेण वा पशवे निहन्यमानाय बर्हिरुपास्यति पृथिव्याः संपृचः पाहि इति । तदेतं पशुं प्रतीचीनशिरसमुदीचीनपादं निष्पन्ति । [पशोर्निहनन इति ॥ प्रतीचीनशिरसमुदीचीनपादमिति बौधायनः ॥ उदीचीनशिरसं प्रतीचीनपादमिति शालीकिः ॥ प्राचीनशिरसमुदीचीनपादमित्यौपमन्यवः ॥] अकृण्वन्तं मायुः संज्ञपयत इत्युक्तवैतेनैव यथेतमेत्यपृषदाज्यावकाश आसते इह प्रजा विश्वरूपा रमन्तामस्मिन् यज्ञे विश्वविदो घृताचीः । अग्निं कुलायमभिसंवसाना अस्माः अवन्तु पयसा घृतेन इति । संज्ञसं प्राहुः । जुहोति संज्ञसाहुतिं यत्पशु-

१. तैत्रा १.६.२ सायणभाष्ये बौधायनीयं हौत्रसूत्रमेवमुद्धृतम्—

तथा च बौधायन आह—“यदा जानाति समिद्धयः प्रेष्य इति तं मैत्रावरुणः प्रेष्यति होता यक्षदमिः समिधा सुषमिधा समिद्धम् इति । अथ होता यजति समिद्धो अथ मनुषो दुरोणे इति । ताविमावेव व्यतिषङ्गमुत्तरेणोत्तरेण मैत्रावरुणः प्रेष्यत्युत्तरेणोत्तरेण होता यजति” इति ।

बौधायनश्रौ० मुद्रितपुस्तकेऽयमंशो नोपलभ्यते ।

मार्गमुक्कत इति । अथाऽभ्यैति शमितार उपेतन इति । पाशात्पशुं प्रमुच्यमानमनुमन्त्रयते
 अदितिः पाशं प्रमुमोक्तेतम् इति । अविशाखयोपसज्येमां दिशं निरस्यति अरातीयन्तमधरे
 कृणोमि यं द्विष्मस्तस्मिन् प्रतिमुञ्चामि पाशम् इति । [पशुरशनाया उदसन इति ॥ चात्वाले
 रशानामुदस्येदिति बौधायनः ॥ अङ्गिरभ्युक्ष्याऽसंचर इति शालीकिः ॥] अथ प्रति-
 प्रस्थाता पत्नीमुदानयत्युदकमण्डलमुत्थाप्य । अथैनामादित्यमुदीक्षयति नमस्त आतान इति ।
 अथैनामन्तरेण चात्वालोत्कराबुदङ्गुपनिष्क्रम्य प्राचीमुदानयन् वाचयति अनर्वा प्रेहि घृतस्य
 कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण इति । [पत्न्या उदानयन इति ॥ सूत्र५ शालीकिः ॥
 अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः अनर्वा प्रेहि इत्येनां प्रणयेत् । अथैनामादित्यमुदीक्ष्य अनर्वा प्रेहि
 इत्येव प्रणयेदिति ॥] आगतामध्वर्युरप्सु वाचयति आपो देवीः शुद्धायुवः शुद्धा वयं देवाः
 ऊर्ध्वः शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारो वो भूयास्म इति । [अपामवेक्षण इति ॥ उपरिष्ठा-
 चात्वालस्याऽवेक्षयेदिति बौधायनः ॥ पार्श्वतः पशोरिति शालीकिः ॥] साऽऽनुपूर्वं पशोः
 प्राणानाप्याययति । वाक् आ प्यायताम् इति वाचम् । प्राणस्त आ प्यायताम् इति प्राणम् ।
 चक्षुस्त आ प्यायताम् इति चक्षुः । श्रोत्रं त आ प्यायताम् इति श्रोत्रम् । एतानेव पुनः संमृशति
 या ते प्राणान्छुग्जगाम या चक्षुर्यां श्रोत्रं यत् कूरं यदास्थितं तत्त आ प्यायतां तत् एतेन शुन्धताम्
 इति । नाभिस्त आ प्यायताम् इति नाभिम् । पायुस्त आ प्यायताम् इति पायुम् । संप्रगृह्य पदः
 प्रक्षालयति शुद्धाश्वरित्राः शमद्भ्यः शमोषधीभ्यः शं पृथिव्यै इति । शमहोभ्याम् इत्यतिशिष्टा
 दक्षिणतोऽनुपृष्ठं निनयति । नयन्ति पत्नीम् । उत्तानं पशुं पर्यस्यन्ति । तस्य दक्षिणस्य
 पार्श्वस्य विवृत्तमनु प्राचीनाग्रं बर्हिर्निदधाति ओषधे प्रायस्वैनम् इति । स्वधितिं तिर्यञ्चं
 निदधाति स्वधिते मैनः हिंसीः इति । छिनत्ति बर्हिः । वि त्वचं कृणन्ति । अथैतस्यैव
 बर्हिषोऽणिमत्सचते । स्थविमदुभयतो लोहितेनाऽङ्गुक्त्वेमां दिशं निरस्यति रक्षसां भागो-
 ऽसीदमहं रक्षोऽधमं तमो नयामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इदमेनमधमं तमो नयामि इति ।
 अथाऽप उपस्पृश्य । [बर्हिषः समञ्जन इति ॥ सूत्र५ शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
 बौधायनस्तथाऽकमेवेतरत्स्यात् । इतरत एवैनदक्त्वा निरस्येत् रक्षसां भागोऽसि इति ।
 अथोदकं स्पृशेदिति ॥] वरीय आच्छाय इषे त्वा इति वषामुत्खिदति । तया वषाश्रपणी
 प्रोर्णोति घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णायाम् इति ॥ अविशाखयोपतृयाऽधस्तात्परिवासयति अञ्छिजो
 रायः सुवीरः इति । अथैनां प्रदक्षिणमावृत्याऽङ्गिरभ्युक्ष्य शामित्रे प्रतितपति ।

२. अथोलुक्प्रथमाः प्रतिपद्यन्ते । अन्वगध्वर्युर्वपया । अत्र वषाश्रपणी पुनर-
 न्वारभते यजमानः । ऐति उर्वन्तरिक्षमन्विहि इति । एत्याऽऽहवनीयस्याऽन्तमेष्वङ्गारेषु
 वषायै प्रतितप्यमानायै बर्हिषोऽग्रमुपास्यति वायो वीहि स्तोकानाम् इति । अथैनामन्तरेण
 यूपं चाऽऽहवनीयं चोपातिहृत्य तां दक्षिणत उदङ्मुखः प्रतिप्रस्थाता श्रपयति । अथैनां
 सुवाहुत्याऽभिजुहोति त्वासु ते दधिरे हव्यवाहम् इति । अथाऽऽह स्तोकेभ्योऽनुब्रूहि इति ।
 परिहितासु स्तोकीयासु श्रुतायां वषायां जुह्वपभृतावादायाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह स्वाहा-
 क्लीभ्यः प्रेष्य इति । वषदृकृते जुहोति । अथोदङ्गुत्याक्रम्य सः स्रावेण पृषदाज्यमभिघार्य
 वषामभिघारयति । [पशुबन्धे चेदाज्यभागाबुदाजिहीर्षेत् कस्मिन् खल्वेनौ काले

यजेदिति । स्वाहाकृतिप्रेषेण चरित्वा प्राग्वपायै ।] अथोपस्तीर्य द्विः सुवेण वपाः सम-
वलुम्पन्नाह इन्द्राग्निभ्यां छागस्य वपाया मेदसोऽवदीयमानस्याऽनुबृहि इति । द्विरभिघारयति ।
अत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह इन्द्राग्निभ्यां छागस्य वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य इति । [वपायाः प्रदान
इति ॥ आज्यसुवा वा स्युर्हिरण्यं वा द्वितीये चतुर्थे चेति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः
शालीकेः ॥] अथ पुरस्तात्स्वाहाकृतिः सुवाहुतिं जुहोति स्वाहा देवेभ्यः इति । [पुरस्ता-
त्स्वाहाकृतयो वा अन्ये देवा उपरिष्ठात्स्वाहाकृतयोऽन्य इति । आदित्यस्यैवैते रश्मयः
प्राचीनाश्च प्रतीचीनाश्च भवन्ति ।] वषट्कृते वपां जुहोति जातवेदो वपया गच्छ देवान्
त्वं हि होता प्रथमो बभूथ । घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व स्वाहाकृतः हविरदन्तु देवाः स्वाहा इति ।
अथोपरिष्ठात् स्वाहाकृतिः सुवाहुतिं जुहोति देवेभ्यः स्वाहा इति । अत्र वपाश्रपणी अनु-
प्रहरति प्राचीं विशाखां प्रतीचीमविशाखाः स्वाहोर्ध्वनभसं मासतं गच्छतम् इति । अथैने
सः स्वावेणाऽभिजुहोति । अथोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनः सुचौ सादयित्वा समुत्क्रम्य
चात्वाले मार्जयन्ते । ह्वयन्ति पत्नीः ह्वयन्ति होतारः ह्वयन्ति ब्रह्माणः ह्वयन्ति प्रति-
प्रस्थातारः ह्वयन्ति प्रशास्तारः ह्वयन्त्याग्नीध्रम् एहि यजमान इति इदमापः प्रवहताऽवद्यं च मलं
च यत् । यच्चाऽभिदुद्रोहाऽनृतं यच्च शेषे अभीक्षणम् । निर्मा मुञ्चामि शपथाग्निर्मा वरुणादुत । निर्मा यमस्य
पङ्कबीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषादथो मनुष्यकिल्बिषात् इति । अथाऽञ्जलिनाऽप उपहन्ति सुमित्रा न
आप ओषधयः सन्तु इति । तां दिशं निरुक्षति यस्यामस्य दिशि द्वेष्ट्यो भवति दुर्मित्रास्तस्मै
भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति । अथाऽप उपस्पृश्य यथायतनमुपविशन्ति ।

पुरोडाशयागहविर्यागौ

बौधायनश्रौ० [४.८-९; २०.२९-३०; २४.३६-३७]—

१. अथ संप्रैषमाह अग्नीत्पशुपुरोडाशं निर्वप प्रतिप्रस्थातः पशुं विशाधि इति । [पशु-
पुरोडाशस्य निर्वपण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पशुमालभ्य पुरोडाशं निर्वपेदिति
शालीकिः ॥] निर्वपत्येष आग्नीध्र ऐन्द्राग्नमेकादशकपालम् । [अथाऽयं पशुपुरोडाशः ।
तस्य कः कर्मण उपक्रमो भवतीति । जघनेन गार्हपत्यः स्फ्यं निदध्यात् । स्फ्योपरि
पात्रीम् । पात्र्यां व्रीहीनावपेत् । शूर्पादानप्रभृति कर्मान्तस्तायत आप्यनिनयनान्तः ।
जघनेन गार्हपत्यमाप्येभ्यो निनयेत् । प्रोक्षणीशेषेण पुरोडाशीयानि पिष्टानि संयौयात् ।
एवः सवनीयानाम् ।] अथ प्रतिप्रस्थाता पशुं विशास्ति शमितर्हदयं जिह्वां वक्षस्तानि

१. ऐत्रा १.९ सायणभाष्ये बौधायनीयं हीत्रसूत्रमेवमुद्धृतम्—

मैत्रावरुणोपप्रेषादूर्ध्वं होतुरग्निगुप्रेषो बौधायनेन दर्शितः—“ यदा जानाति उपप्रेष्य
होतर्हव्या देवेभ्यः इति तं मैत्रावरुणः प्रेष्यति अजैदग्निः इति । अथ होताऽग्निगुमन्वाह दैव्याः
शमितारः इति ।”

बौश्रौ० मुद्रितपुस्तकेऽयमंशो नोपलभ्यते ।

सार्धं कुस्तात्तनिम मतस्तौ तानि सार्धं सव्यं दोरेकचरं कुस्ताभ्याना पार्श्वे अवधत्ताक्षिणीं
 श्रोणिमच्युद्धि कुस्ताक्षिणं दोः सव्यां श्रोणिमणिमद् गुदस्य तानि त्र्यङ्गानि कुस्ताद्वनिष्ठं
 च जाघनीं चाऽवधत्ताद्बहु यूः कुस्तात्रिः पशुं प्रच्यावयतात्रिः प्रच्युतस्य पशोर्हृदयमुत्तमं कुस्तात्
 इति । [पशोः प्रच्यावन इति ॥ हृदयजिह्वे प्रच्यावयेदिति बौधायनः ॥ हृदयमेवेति
 शालीकिः ॥ हृदयस्य श्रपण इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः
 शूलपाक्यमेवैनच्छूयेत् । अत्रैव हृदयशूलं परिनिस्तिष्ठेत् । उपरिष्ठाच्च मन्त्रेणोप-
 स्पृशेदिति ॥] शृते पशौ पशुपुरोडाशं याचति । तमुपस्तीर्णाभिधारितमुद्रास्याऽन्त-
 र्वेद्यासादयति । अथ जुहूपभृतोरुपस्तृणान आह इन्द्राग्निभ्यां पुरोडाशस्याऽवदीयमानस्याऽनु-
 ब्रूहि इति । पूर्वार्धादवदायाऽपरार्धादवधति । अभिधारयति । प्रत्यनक्ति । अथोपभृति
 स्विष्टकृते सकृदुत्तरार्धादवधति । द्विरभिधारयति । न प्रत्यनक्ति । अत्याक्रम्याऽऽश्राव्या-
 ऽऽह इन्द्राग्निभ्यां पुरोडाशं प्रस्थितं प्रेष्य इति । वषट्कृते जुहोति । अथ समावपमान
 आह अग्नयेऽनुब्रूहि इति । आश्राव्याऽऽह अग्नये प्रेष्य इति । वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धेऽतिहाय
 पूर्वा आहुतीर्जुहोति । अथोदङ्ङत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा प्राशिन्नमवदाये-
 ङामवधति । [पशुपुरोडाशस्येङाया अवदान इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह
 बौधायनो निरवदायैवाऽस्य स्विष्टकृतमिङामवधेत् । एव सवनीयानामिति ॥] [यथो
 एतद्वौधायनस्य कल्पं वेदयन्ते निरवदायैवाऽस्य स्विष्टकृतमिङावधेत्कथमत्र चतुरवत्तं
 भवतीति । उपस्तीर्य पुरोडाशं द्वेधा कृत्वाऽभिधारयेदेवमस्य चतुरवत्तं भवति । अथ हैक
 आचार्या एकादश धर्मान् पशुबन्ध उत्सादयन्त्यग्न्यन्वाधानं व्रतोपायनं पृष्ठ्यां प्रणीतां
 याजमानमाज्यभागौ प्राशिन्नं यजमानभागब्रह्मभागौ चतुर्धाकरणं विष्णुक्रमानिति । कियञ्च
 खलु पशुबन्धे दर्विहोमा दृष्टा भवन्तीति । षड्ढोता यूपाहुतिः स्तोत्र्या दिशां प्रतीज्यौपयज
 इति ।] उपहृतायामिडायामग्नीध्र आदधाति षडवत्तम् । प्राश्नन्ति । मार्जयन्ते । अथ
 संप्रैषमाह अग्नीदुत्तरबर्हिषसादय प्रतिप्रस्थातः पशौ संवदस्व इति । अथैष आग्नीध्रः प्लक्षशाखाया-
 मिडसूनमुपगृहति । तदुत्तरबर्हिर्भवति । [इडसूनस्य करण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
 बर्हिष्येव प्लक्षशाखायां हृदयं निधायाऽवधेदिति शालीकिः ॥]

२. अथ प्रतिप्रस्थाता पृषदाज्यं विहृत्य जुह्वां समानीयाऽन्तरेण चात्वालोत्करा-
 बुदङ्ङुपनिष्क्रम्य पृच्छति शृतं हवीः शमितः इति । शमितैष उत्तरतो हृदयशूलं धारय-
 स्तिष्ठति । सः शृतम् इति प्रत्याह । तं तथैव द्वितीयमुत्क्रम्य पृच्छति । तं तथैवेतरः
 प्रत्याह । तं तथैव तृतीयमुत्क्रम्य पृच्छति । तं तथैवेतरः प्रत्याह । [पशोः संवदन
 इति ॥ सूत्रं शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः पृष्ट्वाऽभिक्रामेत् पूषा मा पशुषाः
 पातु इति । द्वितीयं पृष्ट्वाऽभिक्रामेत् पूषा मा प्रपथे पातु इति । तृतीयं पृष्ट्वाऽभिक्रामेत्
 पूषा माऽधिपतिः पातु इति ॥] अथ शमितुर्हृदयशूलमादाय तेन हृदयमुपतृच्य तं शमित्रे
 संप्रदाय पृषदाज्येन हृदयमभिधारयति सं ते मनसा मनः सं प्राणेन प्राणो जुष्टं देवेभ्यो हव्यं
 घृतवत्स्वाहा इति । वियुः कृत्वाऽऽहरत इत्युक्त्वैतेनैव यथेतमेत्य चतसृषूपस्तृणीते जुहूपभृतो-
 रिडाधाने यस्मिंश्च वसाहोमं ग्रहीष्यन् भवति । आहरन्ति तं पशुमन्तरेण चात्वालो-

त्करावन्तरेण यूपं चाऽऽहवनीयं च । उपातिहृत्य तं दक्षिणतः पञ्चहोत्राऽऽसादयति । एतेनैव यूराहरन्ति । एतेनैवेडसूनम् । [पशोरभिघारण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पृष-
दाज्येन हृदयमभिघार्याऽऽज्येनेतराण्यभिघारयेदिति शालीकिः ॥] अथ प्लक्षशाखायां
हृदयं निधाय स्वधितिना तस्याऽग्रेऽवद्यन्नाह मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्याऽनुब्रूहि इति ।
[किदेवत्या उ खलु मनोता भवतीति । आग्नेयीत्येव ब्रूयात् ।] हृदयस्यैवाऽग्रे द्विरवद्यति ।
अथ जिह्वाया अथ वक्षसोऽथ तनिष्ठोऽथ वृक्ययोरथ सव्यस्य दोष्णोऽथ दक्षिणस्य
पार्श्वस्याऽथ सव्यस्याऽथ दक्षिणायै श्रोणेरध्वुद्धयै । त्रैधं गुदं कृत्वाऽणिमत्स्विष्टकृते निद-
धाति स्थविमदुपयडुभ्यो मध्यं द्वैधं कृत्वा जुह्वामवदधाति । [पशोरासादन इति ॥
पञ्चहोत्राऽऽसादयेदिति बौधायनः ॥ तूष्णीमिति शालीकिः ॥ पशोरवदान इति ॥ स ह
स्माऽऽह बौधायनो हृदयस्य जिह्वाया वक्षस इत्येतेषामेवाऽऽनुपूर्वमवद्येत्तृतीयं चाऽत्रा-
ऽवदानं पञ्चावत्तिनां कुर्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शालीकिः सर्वेषामेवाऽऽनुपूर्वमवद्येन्न
चाऽत्र तृतीयमवदानं पञ्चावत्तिनां कुर्यादिति ॥] अथ वृक्यमेदो यूषन्नवधाय तेन जुह्वं
प्रोर्णोति । यूष्णोपसिञ्चति । अभिघारयति । अथोपभृति स्विष्टकृते सर्वेषां त्र्यङ्गाणां
सकृत्सकृत्समवद्यति । सकृद्दक्षिणस्य दोष्णः पिशितं प्रच्छिद्याऽवदधाति । सकृत्सव्यायै
श्रोणेरणिमद् गुदस्य । अथ वृक्यमेदो यूषन्नवधाय तेनोपभृतं प्रोर्णोति । यूष्णोपसिञ्चति ।
द्विरभिघारयति । अथ हृदयं जिह्वां वक्षस्तनिम मतस्नौ वनिष्ठुमिति^१ पात्र्या^२ समवधाय
यूष्णोपसिञ्चति । अभिघारयति । अथ क^३से वा चमसे वा वसाहोमं गृह्णाति । यूष्णो-
पसिञ्चति । अभिघारयति । अथ पशोरवदानानि संमृशति ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निदेध्यदैन्द्रो-
ऽपानो अङ्गेअङ्गे विबोभुवदेव त्वष्टर्भूरि ते स^४समेतु विषुरुपा यत्सलक्षमाणो भवथ । देवत्रा यन्तमवसे
सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु इति । [पशोः संमर्शन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन
उभयानि संमृशेद्येभ्यश्चाऽवद्येत्सुगगतानि चेति ॥ सुगगतान्येवेति शालीकिः ॥] अथ
दक्षिणेन पार्श्वेन वसाहोमं प्रयौति कुम्बतः श्रीरस्यमिस्त्वा श्रीणात्वापः समरिणन् वातस्य त्वा
प्रज्यै पूष्णो र^५ह्वा अपामोषधीनां^६ रोहिष्यै इति । [कुम्बतः श्रीणातीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥
समस्तेनैवाऽस्य पार्श्वेन वसाहोमं^७ श्रीणीयादिति शालीकिः ॥] संमृष्टस्य पशोः प्रतीचीं
जाघनीं^८ हरन्ति । प्रतिपरिहरन्ति पशुम् । [पशोः प्रतिपरिहरण इति ॥ प्रतिपरिहरे-
दिति बौधायनः ॥ न प्रतिपरिहरेदिति शालीकिः ॥]

अथ जुह्वपभृतावाद्दान आह इन्द्रामिभ्यां छागस्य हविषोऽनुब्रूहि इति । अत्याक्रम्या-
ऽऽश्राव्याऽऽह इन्द्रामिभ्यां छागस्य हविः प्रस्थितं प्रेष्य इति । [अत्याक्रमण इति ॥ सूत्रं
बौधायनस्य ॥ जघनेनोत्तरवेदिं परिक्रम्याऽऽश्रावयेदिति शालीकिः ॥] प्रतिप्रस्थातैष
उत्तरतो वसाहोमं धारय^९स्तिष्ठति । सोऽर्धर्चं याज्यायै वसाहोमं जुहोति घृतं घृतपावानः
पिबत वसां वसापावानः पिबताऽन्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा त्वाऽन्तरिक्षाय स्वाहा इति । वषट्कृते
हविर्जुहोति । एतस्य होममनु प्रतिप्रस्थाता वसाहोमोद्रेकेण दिशो जुहोति दिशः प्रदिश

आदिशो विदिश उदिशः स्वाहा दिग्भ्यो नमो दिग्भ्यः स्वाहा इति । [दिशां प्रतीज्याया इति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनः पुरस्ताद्वनस्पतेः समान्यो दिशः प्रतियजेत् दिशे स्वाहा इति । हुत्वोपतिष्ठेत् स्वाहा दिग्भ्यो नमो दिग्भ्यः इति ॥] अथ प्रदक्षिणमावृत्य पृषदाज्यात्सुवेणोपघ्नन्नाह वनस्पतयेऽनुब्रूहि इति । आश्राव्याऽऽह वनस्पतये प्रेष्य इति । [वनस्पतेश्चर्याया इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पृषदाज्याच्चतुर्गृहीतेन चरेदिति शालीकिः ॥] [किदेवत्य उ खलु वनस्पतिर्भवतीति । वैष्णव इत्येव ब्रूयात् । विज्ञायते वैष्णवा वै वनस्पतय इति । अथाऽप्युदाहरन्ति यज्ञो वै विष्णुरिति ।] वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धेऽतिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहोति । अथ समावपमान आह अग्नये स्विष्टकृतेऽनुब्रूहि इति । आश्राव्याऽऽह अग्नये स्विष्टकृते प्रेष्य इति । वषट्कृत उत्तरार्धपूर्वार्धेऽतिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहोति । अथोदङ्-
ङत्याक्रम्य यथायतनं सुचौ सादयित्वा होत्र इडामुपोद्यच्छन्ते मेदसः । उपहृतायामिडायामग्रीध आदधाति षड्वत्तमर्धवनिष्ठमथाऽर्धवनिष्ठम् । [वनिष्ठोराधान इति ॥ षड्वत्तं संपादयेदिति बौधायनः ॥ सकलमेवेति शालीकिः ॥] मेदस्वत्प्राश्रन्ति । मार्जयन्ते । अथाऽऽह ब्रह्मणे वक्षः परिहर इति । तद्ब्रह्मा प्रतिगृह्णाति वयं सोम व्रते तव मनस्तनुषु विभ्रतः । प्रजावन्तो अशीमहि इति ॥

अनूयाजादि

बौधायनश्रौ० [४.१०-११; २०.३०-३१; २४.३७; २८.१२-१३]—

१. अथ संप्रैषमाह अग्नीदीपयजानङ्गारानाहरोपयष्टरूपसीद ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः समिध-
माधायाऽग्नीदग्नीन् सकृत्सकृत्संसृङ्गि इति । आहरन्त्येताञ्छामित्रादीपयजानङ्गारान् । तानग्रेण
होतारं निवपति । [औपयजेष्विति ॥ सूत्र५ शालीकेः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायन
आहवनीयादेवोदीचोऽङ्गारान्निर्वर्त्य तेषूपयष्टोपयजेदिति ॥] उपसीदत्युपयष्टा गुदतृतीयेन ।
अथाऽध्वर्युः पृषदाज्यं विहत्य जुह्वां समानीयाऽत्याक्रम्याऽऽश्राव्याऽऽह देवेभ्यः प्रेष्य
इति । वषट्कृते जुहोति । प्रेष्य प्रेष्य इति । एवमेवोपयष्टोपयजति गुदस्य प्रच्छेदं समुद्रं
गच्छ स्वाहा इत्येतैरेकादशभिः । अग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा इति सर्वमन्ततोऽनुप्रहरति ।
[गुदतृतीय इति ॥ एकादशधा कृत्वोपयष्टोपयजेदिति बौधायनः ॥ अपच्छेदमिति
शालीकिः ॥ समस्तमेवैनमनुग्रह्य सर्वैर्मन्त्रैरनुमन्त्रयेतेत्यौपमन्यवः ॥] अथ बर्हिषि हस्तौ
निमार्ष्टि अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो मनो मे हार्दि यच्छ इति । [अथ बर्हिषि हस्तौ निमार्ष्टीति ॥
सूत्रं बौधायनस्य ॥ अपोऽप्यस्मा अत्राऽऽनयेयुरिति शालीकिः ॥] अथाऽस्य धूममन्वीक्षते
तनूं त्वचं पुत्रं नक्षारमशीय इति । एकादशाऽनूयाजानिष्ट्वोदङ्ङत्याक्रम्य जुह्वां स्वस्मवधाय
पुरस्तात्प्रत्यङ् तिष्ठञ्जुहोति दिवं ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षमर्विः पृथिवीं भस्मना पृणस्व स्वाहा इति ।
[स्वरोर्होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ चतुर्गृहीतेऽवधाय जुहुयादिति शालीकिः ॥]
अथ यथायतनं सुचौ सादयित्वा वाजवतीभ्यां सुचौ व्यूहति । शंयुना प्रस्तरपरिधि

संप्रकीर्य संप्रसाव्य सुचौ विमुच्य जाघन्या पत्नीः संयाजयन्ति । [पत्नीनां संयाजन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ आज्येनैव पत्नीः संयाजयेदिति शालीकिः ॥] आज्यस्यैव सोमं च त्वष्टारं च यजति । उत्तानायै जाघन्यै देवानां पत्नीर्यजति । नीच्या अग्निं गृहपतिम् ॥ [उत्तानायै जाघन्यै देवानां पत्नीर्यजति नीच्या अग्निं गृहपतिमिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्वमेवैतदुत्तानायै जाघन्यै कुर्यादिति शालीकिः ॥] उत्तानायै जाघन्यै होत्र इडामवधति । नीच्या अग्नीध्रे षडवत्तम् । [उत्तानायै जाघन्यै होत्र इडामवधति नीच्या अग्नीध्रे षडवत्तमिति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ सर्वमेवैतदुत्तानायै जाघन्यै कुर्यादिति शालीकिः ॥] प्राश्नीतः । मार्जयेते । अथ सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽपसलैः पर्यावृत्याऽन्वाहार्यपचने प्रायश्चित्तं हुत्वा न फलीकरणहोमेन चरति । [फलीकरणहोमस्य करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] अथ प्राडेत्य ध्रुवामाप्याय्य । [ध्रुवाया आप्यायन इति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायन उभावेव ध्रुवामाप्याययेतामध्वर्युश्च यजमानश्चेति ॥ अध्वर्युरेव ध्रुवामाप्याय्य समिष्टयजूंषि जुहुयादिति शालीकिः ॥] त्रीणि समिष्टयजूंषि जुहोति यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा इति । सुवेणैव द्वितीयम् एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्वाकः सुवीरः स्वाहा इति । सुचा तृतीयं देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं नो देव देवेषु यज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः स्वाहा इति । उदूहति सुचम् । [समिष्टयजुषां होम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ त्रीणि चतुर्गृहीतानि जुहुयादिति शालीकिः ॥]

२. अथ याचति स्फ्यमुदपात्रं हृदयशूलमिति । एतत्समादायाऽऽह एहि यजमान इति । अन्वग्यजमानोऽनूची पत्नी । अन्तरेण चात्वालोत्कराबुदइडुपनिष्कम्याऽग्नेण गृपं स्फ्येनोद्धृत्याऽवोक्ष्य शुष्कस्य चाऽऽर्द्रस्य च संधौ हृदयशूलमुद्गासयति शुगसि तमभिश्चोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति । [हृदयशूलस्योद्गासन इति ॥ कुर्वीताऽत्र सुमित्राश्च दुर्मित्राश्चेति बौधायनः ॥ न कुर्वीतेति शालीकिः ॥] अथाऽद्भिर्मर्जयन्ते धात्रोधात्रो राज-
क्षितो वरुण नो मुञ्च यदापो अग्निया वरुणति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च इति । अथाऽप्रती-
क्षमायन्ति वरुणस्याऽन्तर्हित्यै । प्रपथे समिधः कुर्वते एधोऽस्येधिषीमहि इति । [समिधां करण इति ॥ सर्व एव आर्द्राः सपलाशाः कुर्वीरन्निति बौधायनः ॥ यजमानश्चैव पत्नी चेति शालीकिः ॥] एत्याऽऽहवनीयेऽभ्यादधाति समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि इति । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठन्ते अपो अन्वचारिषं रसेन समसृक्षमहि । पयस्वां अन्न आगमं तं मा सः सृज्ज वर्चसा इति । अथौपयजिकेऽग्नौ बर्हिषोषति यत्कुसीदमप्रतीत्तं मयि येन यमस्य बलिना चरामि । इहैव सन्निरवदये तदेतत्तदमे अनृणो भवामि इति । [बर्हिषः पर्युपोषण इति ॥ वेद्यै दक्षिणेऽसे पर्युपोषेदिति बौधायनः ॥ उत्तरवेद्या इति शालीकिः ॥] अथाऽञ्जलिनोपस्तीर्णाभिघारितान् सकून् प्रदाव्य जुहोति विश्वलोप विश्वदावस्य त्वाऽऽसञ्जुहोमि स्वाहा इति । [सकुहोमस्य करण इति ॥ त्रीन् सकुहोमान् कुर्यादिति बौधायनः ॥ एकमेवेति शालीकिः ॥ प्रदाव्य एव सकुहोमेन चरेदित्यौपमन्यवः ॥] हस्तौ प्रध्वंसयते अग्धादेकोऽहुतादेकः समनसादेकस्ते नः कुण्वन्तु मेषजं सदः सहो वरेण्यम् इति । द्वितीयं जुहोति यान्यपामित्यान्यप्रतीसान्यस्मि यमस्य

बलिना चरामि । इहैव सन्तः प्रति तद्यातयामो जीवा जीवेभ्यो निहराम एनत्स्वाहा इति । हस्तौ प्रध्वंसयते अग्धादेकोऽहुतादेकः समनसादेकस्तेन कृण्वन्तु भेषजं सदः सहो वरेण्यम् इति । तृतीयं जुहोति अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्स्तृतीये लोके अनृणाः स्याम । ये देवयाना उत पितृयाणाः सर्वान् पथो अनृणा आक्षीयेम स्वाहा इति । हस्तौ प्रध्वंसयते अग्धादेकोऽहुतादेकः समनसादेकस्ते नः कृण्वन्तु भेषजं सदः सहो वरेण्यम् इति । अथ देवता उपतिष्ठते अयं नो नभसा पुरः इत्यग्निम् । स त्वं नो नभसस्पते इति वायुम् । देव संस्फान इत्यादित्यम् । अथ यूषमुपतिष्ठते आशासानः सुवीर्यं रायस्पोषं स्वश्वियम् । बृहस्पतिना राया स्वगाकृतो मह्यं यजमानाय तिष्ठ इति । [आख्यातं^१ देवतानामुपस्थानम् ॥ यूषस्योपस्थान इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ आहवनीयमेवैतेन यजुषोपतिष्ठेतेति शालीकिः ॥] अथ पूर्वान्निं शकले समारोपयति अयं ते योनिर्ऋत्विग्यः इति । तं मध्यमेऽन्नावपिसृजति आजुह्वानः, उद्बुध्यस्वाऽग्ने इति द्वाभ्याम् । [समन्वानयन इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ नाऽऽद्विद्येतेति शालीकिः ॥] अथ मध्यममग्निमुपसमाधाय मध्यमेऽग्नौ पूर्णाहुतिं जुहोति सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः इति । [पूर्णाहुत्यै करण इति ॥ कुर्यादिति बौधायनः ॥ न कुर्यादिति शालीकिः ॥] पूर्णाहुतौ वरं ददाति । धेनुवरं वाऽनडुद्वरं वा दद्यादिति ह स्माऽऽह बौधायनः ॥ [दक्षिणायै दान इति ॥ धेनुं वाऽनडुवाहं वा दद्यादिति बौधायनः ॥ अन्यद्वैकधनमिति शालीकि-रन्यद्वैकधनमिति शालीकिः ॥] [दक्षिणानां काले गौर्हिरण्यं वासस्तेषामलामे फलानां मूलानां भक्ष्याणां दद्यात् । न त्वेव न यजेत ।] [अथाऽयं पशुः सार्वत्रैष्टुभो भवति एकादश प्रयाजा एकादशाऽनूयाजा एकादशकपालः पशुपुरोडाश एकादशाऽवदानान्येकादशोपयाजा इति । एवं पशुः सार्वत्रैष्टुभो भवति । यथो एतच्छालीकिः कल्पं वेदयन्तेऽरण्योरग्नीन् समारोह्योदवस्येत्तं चेत्तत्र चेष्टन्तमादित्योऽभ्यस्तमियात्कथं तत्र प्रायश्चित्तं सिध्यतीति न सिध्यतीति इति । सिध्यतीत्येक आहुः । अथ द्वैक आहुर्न सिध्यतीति । यज्ञाभिपरीत एष आकाशो भवति । नैव सिध्यति । इतीन्वा अयं पशुः सार्वत्रैष्टुभो व्याख्यातः ॥] [आ दक्षिणायनपशोः कालादुत्तरायणपशोः कालो नाऽतीयात् । आ उत्तरायणपशोर्दक्षिणायनपशोः ।] संतिष्ठते पशुबन्धः संतिष्ठते पशुबन्धः ॥

पशुप्रायश्चित्तानि

अङ्गहीनः पशुः रूपतो वर्णतो वा

बौ० २८.७—अथ यद्यङ्गहीनः पशु रूपतो वर्णतो वाऽऽग्नेयीमाग्नावैष्णवीमैन्द्रीं वायव्यां प्राजापत्यामिति च हुत्वा तमेवोपाकुर्यात् ।

१. बौ० १०.२४—'आदित्यस्योपस्थान इति ॥ उपनिष्क्रम्याऽग्न्यगारादादित्यमुपतिष्ठेतेति बौधायनः ॥ अत्रैव तिष्ठन्निति शालीकिः ॥'

पशुरुपाकृतो वाश्येत

बौ० २८.६—अथाऽतः पशुप्रायश्चित्तानि व्याख्यास्यामः । स यदि पशुरुपाकृतो वाश्येत यदस्य पारे रजसः इत्येतां हुत्वा नैमित्तिकीं द्वितीयां जुहोति यस्माद्धीषाऽवाशिष्टास्ततो नो अभयं कृधि । प्रजाभ्यः सर्वाभ्यो मृड नमो वदाय मीढुषे स्वाहा इति । य इदमकस्तस्मै नमस्तस्मै स्वाहा इति तृतीयाम् ।

पशुरुपाकृतो वेपेत

बौ० २८.६—यस्माद्धीषाऽवेपिष्ठाः, पलायिष्ठाः, समज्ञास्थाः, शक्रदकृथाः, मूत्रमकृथाः इत्येतेषु निमित्तेषु य इदमकस्तस्मै नमस्तस्मै स्वाहा इति तृतीयाम् ।
दृश्यतां 'पशुरुपाकृतो वाश्येत'

पशुरुपाकृतः पलायेत

पशुरुपाकृतः शकृत् कुर्यात्

पशुरुपाकृतो मूत्रं कुर्यात्

पशुरुपाकृतो म्रियेत

दृश्यतां 'पशुरुपाकृतो वेपेत' 'पशुरुपाकृतो वाश्येत'

पशुः यदि निषीदेत्

बौ० २८.६—स यदि निषीदेत् यस्माद्धीषा न्यषदः इत्येतां हुत्वा तं मैत्रावरुण-दण्डेनोत्थापयेदन्येनौदुम्बरेण वा । ऊर्ग्वी उदुम्बर ऊर्क् पशव ऊर्जैवाऽस्मा ऊर्जं पशून-वरुद्ध इति ब्राह्मणम् । उदुल तिष्ठ इत्युलम्, उदक्ष इत्यश्वम्, उच्छाग इति छागम्, उन्मेष इति मेषम्, उदशे इति वशाम् ।

प्राक् पर्याग्निकरणात् म्रियेत

बौ० २८.६—स उ चेत्प्राक् पर्याग्निकरणान्म्रियेत याऽश्वमेधे प्रायश्चित्तिस्तां कृत्वाऽथाऽन्यं तद्वैवृत्यं तद्वर्णं तद्वयसं तद्रूपं तज्जातीयं पशुमालमेत । तस्योपाकरणादि सर्वमावर्तते निर्मन्ध्य सामिधेनीतच्छेषाधारसंप्रैषसंमार्गप्रवरप्रयाजवर्जम् । अथ यदि तज्जा-तीयं न विन्देताऽजावयो गोअश्वा इत्यन्योन्यस्य प्रतिनिधयो भवन्तीति । तेषां छागश्च मेष-श्चोपाकरणीयौ । अलामेऽन्यतममालमेत । त्वाष्ट्रेण प्रचरणकल्पो व्याख्यातः । अथाऽस्य शरीरमप्सु प्रवेशयति न वा उवेतन्म्रियसे, आशानां त्वा, विश्वा आशाः इति द्वाभ्याम् ।

असंस्थिते पशौ शकुनिश्चाल उपविशेत्

बौ० २८.७—अथ यद्यसंस्थिते पशौ शकुनिश्चाल उपविशेच्चालं प्रक्षाल्य यूपं प्रोक्ष्य तथैवाऽऽज्येन जुहोति आपवस्व वदस्व वा सोमपीतये गातुमस्मिन् यज्ञे यजमानाय विन्द स्वाहा इति ।

गर्भयागः

बौ० १४.१४—वशाया यक्ष्यमाण आह गर्भमीक्ष्वम् इति । ते चेद्गर्भं पश्यन्ति संप्रच्छाद्य वशां वपयाऽऽद्रवन्ति । अथाऽस्यै वपां जुहोति सूर्यो देवो दिविषद्भ्यो धाता क्षत्राय वायुः प्रजाभ्यः । बृहस्पतिस्त्वा प्रजापतये ज्योतिष्मतां जुहोतु स्वाहा इति । वशामनुमन्त्रयते यस्यास्ते हरितो गर्भोऽथो योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यहुता यस्यै तां देवैः समजीगमम् इति । अथ याचत्यष्टाप्रूड्ढिरण्यं कोशं चाऽऽन्तरकोशं च वासश्चोष्णीषं च । अथैतद्विरण्यमङ्गिः प्रक्षाल्य वाससोपनह्योष्णीषेण विग्रथ्य दहे कोशेऽवधाय महति कोशेऽवदधाति । स आह प्रत्यञ्चं गर्भमन्तरेण सक्थिनी प्रतिनिवर्तयत इति । तं निवर्त्यमानमनुमन्त्रयते आ वर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तयेन्द्र नर्दबुद । भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभिरावर्तया पुनः इति । उल्बाद्गर्भं विस्रस्यमानमनुमन्त्रयते वि ते भिनक्षि तकरीं वि योनिं वि गवीन्यौ । वि मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायु च । बहिस्ते अस्तु बालिति इति । अथैनं गर्भं संदंशेन परिगृह्याऽद्विरभ्युक्ष्य शामित्रे प्रतितपति । तस्याऽभ्यर्धाद्वसाहोमं प्रश्नोतयति । अथैतं गर्भमन्तरेण चात्वालोत्करावन्तरेण यूपं चाऽऽहवनीयं चोपातिहृत्य तं दक्षिणतः प्राश्नमायातयन् पञ्चहोत्राऽऽसादयति । अथ वशायाँ हविषा चरति । अथ पुरस्तात्स्विष्टकृतो गर्भस्याऽवद्यन्नाह विष्णवे शिपिविष्टायाऽनुब्रूहि इति । अथ वै भवति पुरस्तान्नाभ्या अन्यदवद्येदुपरिष्टादन्यदिति । स पुरस्तान्नाभ्या अन्यदवद्यत्युपरिष्टादन्यत् । द्विरभिघारयति । आश्राव्याऽऽह विष्णुं शिपिविष्टं यज इति । वषट्कृते जुहोति उरुद्रप्सो विश्वरूप इन्दुः पवमानो धीर आनज्ज गर्भम् । एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी पञ्चपदी षट्पदी सप्तपद्यापदी भुवनाऽनु प्रथतां स्वाहा इति । अथ स्विष्टकृता चरति । अथैतं गर्भं यथाहृतं प्रतिपर्याहृत्योत्तरार्धे आहवनीयस्य प्रत्यञ्चमायात्य भस्मनाऽभिसमूहति मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षतां पिपृतां नो भरीमभिः इति । अध्वर्योरेतत् कोशमिश्रं भवति । ब्राह्मणमुत्तरम् । [बौ० २३.६—अष्टापदै गर्भस्य वसाहोम इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ न गर्भस्य वसाहोमं जुहुयादिति शालीकिः ॥ न च गर्भस्य वसाहोमं जुहुयाज्जेडां न स्विष्टकृतमित्यौपमन्यवः ॥]

वपामाहियमाणां श्येनोऽपहरेन्नश्येद्वा

बौ० २८.७—अथ यदि वपामाहियमाणां श्येनोऽपहरेन्नश्येद्वा पात्र्यां हिरण्यमन्तर्धाय चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये जुहोत्यन्वारब्धे यजमाने उद्यन्त्सुपर्णो न विभाति सर्वं हिरण्यकुक्षिः सप्तशिराः पुरस्तात् । सर्वेषु लोकेषु विभुः प्रविष्टो गातुमस्मिन् यज्ञे यजमानाय विन्द स्वाहा इति । अथैतस्यै वपायै स्थाने यत्किञ्चिन्मेदोरूपमवशिष्टं स्यात्तदुत्पात्य तेन प्रचरेत् । अथ यद्येनां पुनर्विन्देत नैनामाद्वियेत ।

पशुबन्धो लुप्येत

बौ० २९.१३—अथ यदि पशुबन्धः सोमो वा लुप्येत वैश्वानरीमिष्ट्वा पुनर्यजेत ।

वपा हविरवदानं वा स्कन्देत्

बौ० २८.७—अथ यदि वपा हविरवदानं वा स्कन्देत् आ त्वा ददे यशसे वीर्याय

चाऽस्मास्वग्निया यूयं दधायेन्द्रियं पयः इत्यादाय जुहोति यस्ते द्रप्तो यस्त उदर्षो दैव्यः केतुर्विश्वं भुवनमाविवेश । स नः पाह्यरिष्ट्यै स्वाहा इति ।

षण्मासान्.... अनिष्ट्वा पशुबन्धेन

बौ० २८.१२—अथ षण्मासानहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्रये पथिकृतेऽग्रये तन्तुमतेऽग्रये वैश्वानरायाऽग्रये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरूप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ।

संवत्सरम्.... अनिष्ट्वा पशुबन्धेन

बौ० २८.१२—अथ संवत्सरमहुतेऽग्निहोत्रे दर्शपूर्णमासाभ्यामनिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन चाऽग्रये पवमानायाऽग्रये पावकायाऽग्रये शुचयेऽग्रये पथिकृतेऽग्रये तन्तुमतेऽग्रये वैश्वानरायाऽग्रये व्रतपतय इति पुरोडाशान्निरूप्याऽग्निहोत्रं हुत्वा दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽऽग्रयणैश्चातुर्मास्यैः पशुबन्धेन च ।

काम्याः पशवः^१

तैसं [३.४.३]—

इमे वै सहाऽऽस्ताम् । ते वायुर्व्यवात् । ते गर्भमदधाताम् । त५ सोमः प्राजन-
यदग्निरग्रसत । स एतं प्रजापतिराग्नेयमष्टाकपालमपश्यत् । तं निरवपत् । तेनैवैनामग्नेरधि निर-
क्रीणात् । तस्मादप्यन्यदेवत्यामालभमान आग्नेयमष्टाकपालं पुरस्तान्निर्वपेत्^२ । अग्नेरेवैनामधि
निष्क्रीयाऽऽ लभते० ॥

कासं [१३.१२]—

इमे वै सहाऽऽस्ताम् । ते वायुर्व्यवात् । ते गर्भमदधाताम् । ततोऽजा वशाऽ-
जायत । तामग्निरग्रसत । तां प्रजापतिरेतेन पुरोडाशेन निरक्रीणात् । यदाग्नेयः पुरोडाशो
भवति निष्क्रीत्यै० ॥

अजग्निवांसमभिःसेयुः

तैसं [२.१.१०]—वायव्यं गोमृगमा लभेत यमजग्निवा५समभिः५सेयुः० ।

तैत्रा [२.८.१]—

पीवोन्ना५ रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ रायेऽनु यं जज्ञत् रोदसी उभे.... ॥
आ वायो भूष शुचिपा उप नः.... ॥ प्र याभिर्यासि दाश्वा५समच्छ.... ॥
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं.... ॥
कासं [१३.६]—सारस्वतीं घेनुष्टरीमालभेत यमजग्निवीसमभिःसेयुः० ॥^३

अतिष्ठायस्स्याम्

कासं [१३.४]—ब्राह्मणस्पत्यमतिष्ठायमालभेत यः कामयेताऽतिष्ठायस्स्यामिति० ॥

अनभिजितमभिजयेयम्

तैसं [३.४.२-३]—प्राजापत्यामा लभेत यः कामयेताऽनभिजितमभि जयेय-
मिति० ॥

मन्त्राः ' भूतिः ' इत्यत्र द्रष्टव्याः

१. अकाराद्यनुक्रमेण । प्रतियागं याज्यापुरोनुवाक्यायुग्मत्रयं प्रदत्तम् । वपायागस्य, पशुपुरोडाशयागस्य, हविर्यागस्य चेति तत्र क्रमः । कच्चित् वैकल्पिक्यपि ऋग् भवेत् । २. अग्निं विहाय अन्यासां सर्वासां देवतानां पशुयागे आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदिति बौधायनमतम् । बभ्रुकर्ण्यां अजवशायाश्च याग एव निर्वपेदिति शालीकिः । दृश्यतां बौध्वा० २०.२५; २४.३४ । ३. काठक-संहितायां काम्यपशूनां याज्यानुवाक्या नोपलभ्यन्ते । कपिष्ठलकठसंहितायां तु न विधिर्नाऽपि मन्त्राः ।

अनाज्ञातमिव ज्योगामयेत्

तैसं [२.१.६]—प्राजापत्यं तूपरमा लभेत यस्याऽनाज्ञातमिव ज्योगामयेत्० ।

तैब्रा [२.८.१]—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
रयीणां पतिं यजतं बृहन्तमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
प्रजापतिं प्रथमजामृतस्य यजाम देवमधि नो ब्रवीतु ॥
प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणो देवानां पिता जनिता प्रजानाम् ।
पतिर्विश्वस्य जगतः परस्पा हविर्नो देव विहवे जुषस्व ॥
तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च परावतो निवत उद्वतश्च ।
प्रजापते विश्वसृज्जीवधन्य इदं नो देव प्रतिहर्ष हव्यम् ॥
प्रजापतिं प्रथमं यज्ञियानां देवानामग्रे यजतं यजध्वम् ।
स नो ददातु द्रविणं सुवीर्यं रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥
यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यो यः पशूनां रक्षिता विष्टितानाम् ।
प्रजापतिः प्रथमजा क्रतस्य सहस्रधामा जुषतां हविर्नः ॥

कासं [१३.६]—आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेताऽनाज्ञातयक्ष्मगृहीतोऽनाज्ञात-
यक्ष्मो वा० ॥

दृश्यतां ' ज्योगामयावी '

अन्नम्

तैसं [२.१.३]—सौम्यं बभ्रुमा लभेताऽन्नकामः० ।

तैब्रा [२.८.३]—

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु परि.... ॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि दिवि या
पृथिव्यां.... ॥

तैसं [२.१.६]—पौष्णं श्याममा लभेताऽन्नकामः० ।

तैत्रा [२.८.५]—

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
 याभिर्यासि दूत्याः सूर्यस्य कामेन कृतः श्रव इच्छमानः ॥
 शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवाऽसि ।
 विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥
 पूषेमा आशा अनुवेद सर्वाः सो अस्माः अभयतमेन नेषत् ।
 स्वस्तिदा अघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥
 प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
 उमे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥
 पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इडस्पतिर्मधवा दस्मवर्चाः ।
 तं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसः स्वञ्चम् ॥
 अजाश्वः पशुपा वाजवस्त्यो धियंजिन्वो विश्वे भुवने अर्पितः ।
 अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥

तैसं [२.१.६]—मारुतं पृश्निमा लभेताऽन्नकामः ० ।

तैत्रा [२.८.५]—

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनाः शुचिः हिनोम्यध्वरः शुचिभ्यः ।
 ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥
 प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
 ये सहाः सि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥
 अः सेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिथ्रियाणाः ।
 वि विद्युतो न व्यृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥
 या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताऽधि ।
 अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥
 इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आनमन्ति ।
 इमे शः सं वनुष्यतो निपान्ति गुरुद्वेषो अरुरुषे दधन्ति ॥
 अरा इवेदचरमा अहेव प्र प्रजायन्ते अकवा महोभिः ।
 पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः संमिमिक्षुः ॥

तैसं [२.१.६]—वैश्वदेवं बहुरूपमा लभेताऽन्नकामः ० ।

तैत्रा [२.८.६]—

आ नो विश्वे अस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
 भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥
 शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
 शमभिषाचः शम् रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥
 ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
 ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥
 अग्ने याहि दूत्यं वारिषेण्यो देवा अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
 सरस्वतीं मरुतो अश्विनाऽपो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥
 द्यौः पितः पृथिवि मातरधुग्ने भ्रातर्वसवो मृडता नः ।
 विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वियन्त ॥
 विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
 ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

तैसं [२.१.७]—वैश्वदेवीं बहुरूपां लभेताऽनकामः ० ।

तैत्रा [२.८.६]—

आ नो विश्वे अस्क्रा गमन्तु.... ॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु.... ॥
 ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे.... ॥ अग्ने याहि दूत्यं वारिषेण्यः.... ॥
 द्यौः पितः पृथिवि मातरधुग्.... ॥ विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे.... ॥

तैसं [२.१.९]—मैत्रं श्वेतमा लभेत वारुणं कृष्णमपां चौषधीनां च संधावन्न-
 कामः ० विशाखो यूपो भवति ० ।

तैत्रा [२.८.७]—

मित्रो जनान् यातयति प्रजानन्.... ॥ प्र स मित्र-मर्तो अस्तु प्रयस्वान्.... ॥
 अयं मित्रो नमस्यः सुशेवः.... ॥ अनमीवास इडया मदन्तः.... ॥
 मित्रं न ईं शिम्या गोषु गव्यवत्.... ॥ महा आदित्यो नमसो-
 पसद्यः.... ॥

तैत्रा [२.८.१]—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ अस्तभ्नाद् द्यामृषभो अन्तरिक्षं.... ॥
 यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जने.... ॥ कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि.... ॥
 अव ते हेडो वरुण नमोभिः.... ॥ तत्त्वाऽऽ यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

तैत्रा [२.८.८]^१—

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः ।
 यो मा ददाति स इदेव माऽऽवा अहमन्नमन्नमदन्तमन्त्रि ॥
 पूर्वमग्रेरपि दहत्यन्नं यत्तौ हाऽऽसाते अहमुत्तरेषु ।
 व्यात्तमस्य पशवः सुजम्भं पश्यन्ति धीराः प्रचरन्ति पाकाः ॥
 जहाम्यन्यं न जहाम्यन्यमहमन्नं वशमिच्चरामि ।
 समानमर्थं पर्येमि भुञ्जत्को मामन्नं मनुष्यो दयेत ॥
 पराके अन्नं निहितं लोक एतद्विश्वैर्देवैः पितृभिर्गुप्तमन्नम् ।
 यदद्यते लुप्यते यत्परोप्यते शततमी सा तनूर्मे बभूव ॥
 महान्तौ चरू सकृद् दुग्धेन पप्रौ दिवं च पृश्नि पृथिवीं च साकम् ।
 तत्संपिबन्तो न मिनन्ति वेधसो नैतद्भूयो भवति नो कनीयः ॥
 अन्नं प्राणमन्नमपानमाहुरन्नं मृत्युं तस्य जीवातुमाहुः ।
 अन्नं ब्रह्माणो जरसं वदन्त्यन्नमाहुः प्रजननं प्रजानाम् ॥
 मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
 नाऽर्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाधो भवति केवलादी ॥
 अहं मेघः स्तनयन्वर्षन्नस्मि मामदन्त्यहमद्वयन्यान् ।
 अहं सदमृतो भवामि मदादित्या अधि सर्वे तपन्ति ॥
 आ गावो अगमन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
 प्रजावतीः पुरुरुपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥
 इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
 भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ले निदधाति देवयुम् ॥
 न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नैना अमित्रो व्यथिरादधर्षति ।
 देवाश्च याभिर्विजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥
 न ता अर्वा रेणुककाटो अश्रुते न सः स्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि ।
 उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्त्यस्य विचरन्ति यज्वनः ॥

१. विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । आपश्चौ० १९.१६.१७-१८

—‘अत्राय वेदतमालभते... आ गावो अगमन्निद्युपहोमाः ॥’ २. उपहोमार्था ऋचः । ‘वाच्’
 ‘श्रद्धा’ (तैत्रा २.८.८) अत्राप्येताभिरेवोपहोमा होतव्याः ।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
 इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीदृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥
 यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्लीलं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
 भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥
 प्रजावतीः स्रयवसः रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ॥
 मा वः स्तेन ईशत माऽघशः सः परि वो हेती रुद्रस्य वृञ्ज्यात् ॥
 उपेदमुपपर्चनमासु गोषूपपृच्यताम् । उपर्षभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥

मैसं [२.५.४]—द्यावापृथिवीये घेनू संमातरा आलभेताऽन्नकामः० स वत्स०
 वायवा आलभेत० ।

[४.१४.७]—

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवता० शुचयद्भिरकैः ।
 यत्सी० वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्नुवद्भोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥
 प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः..... ॥
 स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
 उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अव० शे धीरः शच्या समैरत् ॥
 भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
 नित्यं न स्रुतं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥
 इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ॥
 भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेष० वृजनं जीरदानुम् ॥
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उपब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
 दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥

[४.१४.२]—

वायो शत० हरीणां..... ॥ ईशानाय प्रहुति० यस्ता आनद..... ॥ युक्ष्वा
 हि त्वं रथासहा..... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये..... ॥ आ नो वायो महे
 तने..... ॥ सं ते वायुर्मातरिश्वा..... ॥

मैसं [२.५.७]—भौमी कृष्णशबलीमालभेताऽन्नकामः० न चर्माऽप्याहरेयुः० ।

[४.१४.११]—

सत्यं बृहद्वत्सुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति ।
 सा नो भूतस्य भुवनस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवीं नः कृणोतु ॥
 असंबाधा या मध्यतो मानवेभ्यो यस्या उद्वतः प्रवतः समं महत् ।
 नानारूपा ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवीं नः प्रथतां राध्यतां नः ॥
 या रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमग्रमादम् ।
 सा नो मधु घृतं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥
 यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
 या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेयं दधातु ॥
 यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्याश्च भूम्यधराग्याश्च पश्चा ।
 शिवास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा निपसं भुवने शिश्रियाणः ॥
 विश्वंभरा वसुधानी पुरुक्षुद्विरण्यवर्णा जगतः प्रतिष्ठा ।
 वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणं नो दधातु ॥

कासं [१३.७]—धावापृथिव्ये घेन् संमातरा आलमेताऽन्नकामः० वायव्यं
 वत्सी अ आलमेत० ॥

[१३.१२]—अग्नीषोमीयामालमेताऽन्नकामः० ॥

दृश्यतां 'बुभूषन्'

अन्नवान् अन्नादः स्याम्

तैसं [३.४.३]—अग्नीषोमीयामा लमेत यः कामयेताऽन्नवानन्नादः स्यामिति० ।

तैत्रा [२.८.७]—

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
 तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्रियम् ॥
 यो अग्नीषोमा हविषा सर्पयाद् देवद्वीचा मनसा यो घृतेन ।
 तस्य व्रतं रक्षतं पातमहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥
 अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्विष्कृतिम् ।
 स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पर्णि गोः ।
अवातिरतं प्रथयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥
अग्नीषोमाविमं सु मे.... ॥ अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य.... ॥

दृश्यतां 'भूतिः'

अन्नाद्यं नोपनमेत्

तैसं [२.१.९]—यमलमन्नाद्याय सन्तमन्नाद्यं नोपनमेत्स एतां वारुणीं कृष्णां
वशामा लभेत० ।

तैब्रा [२.८.१]—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ अस्तन्नाद् घामृषभो अन्तरिक्षं.... ॥
यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जने.... ॥ कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि.... ॥ अव
ते हेडो वरुण नमोभिः.... ॥ तत्त्वाऽऽ यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

अभिचरन्

तैसं [२.१.५]—ब्राह्मणस्पत्यं तूपरमा लभेताऽभिचरन्० स्फ्यो यूपो भवति०
शरमयं बर्हिः० वैभीदक इध्मः० ।

तैब्रा [२.८.५]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचिर्द्भिर्गोधायसं वि धनसैरतर्दत् ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानद् ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथा वशं सत्यो मन्युर्महिकर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाऽभजन्महीव रीतिः शवसाऽसरत्पृथक् ॥
इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति सृत्प्रसृत्सते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो विवस्वतः ।
वीरेषु वीरां उपपृङ्गि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥

तैसं [२.१.७]—रौद्री५ रोहिणीमा लभेताऽभिचरन्० स्यो यूपो भवति०
शरमयं बर्हिः० वैमीदक इध्मः० ।

तैत्रा [२.८.६]—

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाम्ने ।
अषाढाय सहमानाय मीढुषे तिग्मायुधाय भरता शृणोतन ॥
त्वा दत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शत५ हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्य५हो व्यमीवा५ श्वातयस्वा विषूचीः ॥
अर्हन्विभर्षिं सायकानि धन्वाऽर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमब्भुवं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो बधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥
आ ते पितर्मरुता५ सुभ्रमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न ह५सि ।
हावनश्रूनों रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
परि णो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मधवद्भ्यस्तनुष्व मीद्वस्तोकाय तनयाय मृडय ॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्ति वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥
अर्हन् विभर्षिं सायकानि धन्व.... ॥
त्वमग्रे रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व५ शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैरुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्र५ होतार५ सत्ययज५ रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥

तैसं [२.१.८]—ब्राह्मणस्पत्यां बभ्रुकर्णीमा लभेताऽभिचरन् । वारुणं दशकपालं
पुरस्तान्निर्वपेत्० स्यो यूपो भवति० शरमयं बर्हिः० वैमीदक इध्मः० ।

तैत्रा [२.८.१]—

उदुत्तमं वरुणं पाशमस्मत्.... ॥ अस्तभ्राद् घामृषभो अन्तरिक्षं.... ॥
यत्किंचेदं वरुणं दैव्ये जने.... ॥ कितवासो यद्रिगिर्पुर्न दीवि.... ॥ अव
ते हेडो वरुणं नमोभिः.... ॥ तच्चाऽऽ यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

[२.८.५]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता.... ॥ स ई५ सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः.... ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथा वशं.... ॥ इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः.... ॥ ब्रह्मण-
स्पते सुयमस्य विश्वहा.... ॥ स इज्जनेन स विशा स जन्मना.... ॥

मैसं [२.५.६]—वारुणं कृष्णं पेतृमालभेताऽभिचरन्० कृष्णो भवति० तं
नियुज्यात् पशुं बध्नामि वरुणाय राज्ञा इन्द्राय भागमृषभं केवलो हि । गात्राणि देवा
अभिसंविशन्तु यमो गृह्णातु निर्ऋतिः सपत्नान् इति० ।

[४.१४.९]—

वि मञ्श्रथाय रक्षनामिवाऽऽगः.... ॥ पर क्रणा सावीरध मत्कृतानि.... ॥
अपो षु म्यक्ष.... ॥ यो मे राजन् युज्यः.... ॥ मा नो वधैर्वरुण.... ॥
क त्यानि नौ सख्या बभूवुः.... ॥

मैसं [२.५.७]—०सा बभ्रुर्वशाऽभवत्० तां ब्राह्मणस्पत्यामालभेताऽभिचरन्० ।

[४.१४.१०]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता.... ॥ स ई५ सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः.... ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं.... ॥ इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः.... ॥ ब्रह्मण-
स्पते सुयमस्य विश्वहा.... ॥ स इज्जनेन स विशा स जन्मना.... ॥

मैसं [२.५.९]—०तं ब्राह्मणस्पत्यामालभेताऽभिचरन्० अरुणस्तूपरो भवति० ।

[४.१४.१०]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता.... ॥ स ई५ सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः.... ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं.... ॥ इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः.... ॥ ब्रह्मण-
स्पते सुयमस्य विश्वहा.... ॥ स इज्जनेन स विशा स जन्मना.... ॥

मैसं [२.५.११]—एतानेव१ अभिचरन्नालभेत० ।

[४.१४.२, ५, ९]—

वायो शत॰ हरीणां.... ॥ ईशानाय प्रहुति॰ यस्ता आनद.... ॥ युक्ष्वा
हि त्व॰ रथासहा.... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः.... ॥ आ नो वायो
महे तने.... ॥ सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता
हवन्ते.... ॥ युजे रथं गाएषण॰ हरिभ्यां.... ॥ जगृह्णा ते दक्षिण-
मिन्द्र हस्तं.... ॥ तवेद॰ विश्वमभितः पश३व्यं.... ॥ समिन्द्र नो
मनसा नेषि गोभिः.... ॥ आराञ्शत्रुमपबाधस्व दूरं.... ॥ वि मञ्ज्रथाय
रशनामिवाऽऽगः.... ॥ पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि.... ॥ अपो षु
म्यक्ष वरुण.... ॥ यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा.... ॥ मा नो वधै-
र्वरुण ये त इष्टौ.... ॥ क त्यानि नौ सख्या बभूवुः.... ॥

दृश्यतां ' राजन्यायाऽभिचरते ' (कासं १०.४)

कासं [१३.२]—वारुणं कृष्णं वृष्णिमभिचरन्नालमेत॰ पशुं बध्नामि वरुणाय
राज्ञ इन्द्राय भागमृषभं केवलो हि । गात्राणि देवा अभिसंविशन्तु यमो गृह्णातु
निर्ऋतिस्सपत्नान् इति० ।

[१३.३]—इन्द्राय वज्रिणे रोहितमृषभं प्रथमकुसिन्धमालमेत राजन्यायाऽभिचरते
वा बुभूषते वा० ॥

[१३.४]—बार्हस्पत्यमरुणं तूपरमभिचरन्नालमेत० ॥

[१३.८]—ब्राह्मणस्पत्यां बभ्रूमभिचरन्नालमेत० ॥

अभिषस्यमानः

मैसं [२.५.२]—वायव्यामजामालमेत सारस्वतीं मेषीमदित्या अजामभिषस्य-
मान॰ याजयेत्० ।

[४.१४.२-४]—

वायो शत॰ हरीणां.... ॥ ईशानाय प्रहुति॰ यस्ता आनद.... ॥ युक्ष्वा
हि त्व॰ रथासहा.... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः.... ॥ आ नो वायो
महे तने.... ॥ सं ते वायुः.... ॥ पावीरवी कन्या चित्रायुः.... ॥ आ
नो दिवो बृहतः.... ॥ इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः.... ॥ यस्ते स्तनः
शशयो यो मयोभूः.... ॥ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यः.... ॥ इदं ते

हव्यं घृतवत्सरस्वति.... ॥ सुत्रामाणं पृथिवीं घामनेहसं.... । महीमू षु
मातरं सुव्रतानां.... ॥ अदितिः पाशान् प्रमुमोक्तु.... ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणा पृथिव्याः.... ॥ स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीम.... ॥

[२.५.५]—गोमृगं वायवा आलमेताऽभिशस्यमानं याजयेत् ० ।

[४.१४.२]—

वायो शतं हरीणां.... ॥ ईशानाय प्रहुतिं यस्ता आनद्.... ॥ युक्ष्वा
हि त्वं रथासहा.... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः.... ॥ आ नो वायो
महे तने.... ॥ सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु.... ॥

आनुजावरः

मैसं [२.५.६]—आश्विनं कृष्णललाममालमेताऽऽनुजावरं याजयेत् ० ।

[४.१४.१०]—

आ वां रथो रोदसी बद्धधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविमी रुचान इषां वोढा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसाऽऽयातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥
स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाग्दत्ता निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो व३ध्वा यादमानोऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्त्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥
युवोः श्रियं परि योषाऽवृणीत स्रो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्नंसमोमना वां वथो गात् ॥
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥

कासं [१३.७]—आश्विनं कृष्णललाममालमेताऽऽनुजावरः ० ॥

आपः^१

तैब्रा [२.८.९]—

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ।
 अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
 यासाꣳ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
 मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
 यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
 याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
 शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तनुवोप स्पृशत त्वचं मे ।
 सर्वाꣳ अग्नीꣳरप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो नि धत्त ॥
 आपो भद्रा घृतमिदाप आसुरग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत्ताः ।
 तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गन् ॥
 आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मन आसाम् ।
 मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥
 १नाऽसदासीन्नो सदासीत्तदानीं नाऽऽसीद्रजो नो व्योमाऽपरो यत् ।
 किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्बहनं गभीरम् ॥
 न मृत्युरमृतं तर्हि न रात्रिया अह्ना आसीत्प्रकेतः ।
 आनीदवातꣳ स्वधया तदेकं तस्माद्वाऽन्यं^२ न परः^३ किंच नाऽऽस ॥
 तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतꣳ सलिलꣳ सर्वमा इदम् ।
 तुच्छेनाऽऽभ्वपिहितं यदासीत्तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम् ॥
 कामस्तदग्रे समवर्तताऽधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
 सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥

१. अन्देवताकः पशुयागोऽयम् । एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते ।
 आपश्चौ० १९.१६.२२-२३—‘अद्भ्यो वेहतम् ॥ तत्र सलिलमुपजुहुयात् ॥’ अन्देवतायै वेहतः
 पशोर्यागं कुर्यात्, तत्र सलिलसूक्तगतैर्मन्त्रैः नासदासीदित्यादिभिरुपहोमाञ्जुहुयादिति सूत्रार्थः । अस्य
 यागस्य कामना न ज्ञायते । २. उपहोमार्था ऋचः । ३. सायणभाष्ये भट्टभास्करभाष्ये च ‘अन्यत्’
 ‘परं’ इति पदं स्वीकृतं, ‘न’ इति पदं न व्याख्यातं च । ‘तस्माद्वाऽन्यन्न परः किं चनाऽऽस’
 इति ऋचं १०.१२९.२ ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
 रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥
 को अद्वा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
 अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनायाऽथा को वेद यत आ बभूव ॥
 इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
 यो अस्याऽध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
 किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीद्यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
 मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥
 ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीद्यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
 मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माऽध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥

आमयावी

मैसं [२.५.१]—श्वेतं वायवे नियुत्वता आलमेताऽऽमयाविनं याजयेत्०
 नियुत्वती याज्यानुवाक्ये भवतः० ।

[४.१४.२]—

पीवोअन्नं रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे.... ॥ आ
 वायो भूष शुचिपा उप नः.... ॥ प्र वायुमछा बृहती मनीषा.... ॥ प्र
 याभिर्यासि दाश्वांसमछ.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिः.... ॥

मैसं [२.५.६]—आश्विनं कृष्णललाममालमेताऽऽमयाविनं याजयेत्० ।

[४.१४.१०]—

आ वा रथो रोदसी बद्धधानः.... ॥ स पप्रथानो अभि पञ्च भूम.... ॥
 स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाक्.... ॥ यो ह स्य वा रथिरा वस्त उस्त्राः.... ॥
 युवोः श्रियं परि योषाऽवृणीत.... ॥ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्रे.... ॥

कासं [१३.२]—वारुणं कृष्णं पेत्वमेकशितिपादमालमेताऽऽमयावी ज्योगाम-
 यावी० द्वीपे यजेत० ॥

[१३.७]—आश्विनं कृष्णललाममालमेताऽऽमयावी० ॥

गोब्रा [२.२.१]—यामं शुक्रहरितमालमेत शुण्ठं वा यः कामयेताऽनामयः
 पितृलोके स्यामिति० ॥

दृश्यतां 'ज्योगामयावी' 'वारुणग्रहीतः'

इन्द्रियम्

तैसं [२.१.६]—ऐन्द्रमरुणमा लभेतेन्द्रियकामः० अरुणो भ्रूमान् भवति० ।

तैब्रा [२.८.५]—

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते वृत्रमनु वृत्रहत्ये ।
 अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषहे ॥
 य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
 त्वं हि दृढा मघवन् विचेता अपावृधि परिवृति न राघः ॥
 इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
 ततो ददातु दाशुषे वसूनि चोदद्राघ उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥
 तमु दृहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
 अषाढमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥
 स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु दृवाम विदथेभ्विन्द्रम् ।
 यो वायुना जयति गोमतीषु ग्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥
 आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्वादोत्तरादधरागा पुरस्तात् ।
 आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाडिन्द्र द्युम्नं सुवर्वद्वेह्यस्मे ॥

कासं [१३.४]—०यस्तस्या^१ अधिजायेत तमैन्द्रमालभेतेन्द्रियकामः० ॥

दृश्यतां ' बुभूषन् ' (कासं १३.४)

ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न वदेत्

दृश्यतां ' वाच् '

उभे जनते ऋच्छेयम्

कासं [१३.५]—इन्द्राय विघनाय विशालमृषभमालभेत जनतयोस्संधौ यः
 कामयेतोभे जनते ऋच्छेयमिति० ॥

ऊर्जं

कासं [१२.१३]—यज्ञेतानामुत्तमो जायेत तमूर्जं आलभेतोक्तामः० औदुम्बरो
 यूषो भवति० ॥

ऋषभो गोषु जीर्यति^१

तैसं [३.३.९]—

एतं युवानं परि वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरत प्रियेण ।
 मा नः शाप्तं जनुषा सुभागा रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥
 नमो महिम्न उत चक्षुषे ते मरुतां पितस्तदहं गृणामि ।
 अनु मन्यस्व सुयजा यजाम जुष्टं देवानामिदमस्तु हव्यम् ॥
 देवानामेष उपनाह आसीदपां गर्भं ओषधीषु न्यक्तः ।
 सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा बृहन्नद्रिरभवत् तदेषाम् ॥
 पिता वत्सानां पतिरघ्नियानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
 वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा मस्तु घृतमस्य रेतः ॥
 त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वां हवन्त मरुतः स्वर्काः ।
 वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुभि शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥
 व्यृद्धेन वा एष पशुना यजते यस्यैतानि न क्रियन्ते । एष ह त्वै समृद्धेन यजते
 यस्यैतानि क्रियन्ते ॥

एकाष्टकायां जायेत

मैसं [२.५.९]—यः प्रथम एकाष्टकायां जायेत यस्तमालप्स्यमानः स्यात्स
 आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्० अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं मासि मासि निर्वपेत्० स यदा
 मेघं गच्छेदथेन्द्रायाऽभिमातिघ्न आलमेत० अश्वोऽव्युप्तवहो दक्षिणा० अथ योऽपरस्यामेकाष्टकायां
 जायेत तमेवमेवोत्सृज्याऽथेन्द्राय वृत्रतुरा आलमेत० शतमव्युप्तवहा दक्षिणा० ।

[४.१४.१२-१३]—

इन्द्रस्तरस्वानभिमातिहोग्रो हिरण्यवर्ण इषिरः स्वर्षाः ।
 तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥
 हिरण्यवर्णो अभयं कृणोत्वभिमातिहेन्द्रः पृतनासु जिष्णुः ।
 स नः शर्म त्रिवरूथं वियं सद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
 इन्द्रं स्तुहि वज्रिणं सोमपृष्ठं पुरोडाशस्य जुषतां हविर्नः ।
 हत्वाऽभिमातीः पृतनाः सहस्वानथाऽभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥

१. एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । इदं यतां बौध्वा १४.१३ ।

स्तुहि शूर० वज्रिणमप्रतीक० वृत्रहणं पुरुहूतमिन्द्रम् ।
 य एका इञ्शतपतिर्जनेषु तस्मा इन्द्राय हविषा जुहोत ॥
 इन्द्रो देवानामधिपाः पुरोहितो विशां पतिरभवद्वाजिनीवान् ।
 अभिमातिहा तविषस्तुविष्मानस्मभ्यं चित्र० वृषण० रयिं दात् ॥
 य इमे द्यावापृथिवी महित्वा बलेनाऽदृहदभिमातिहेन्द्रः ।
 स नो हविः प्रतिगृभ्णातु रातये देवानां देवो निधिपा नो अव्यात् ॥
 इन्द्रो वृत्रमतरद् वृत्रतूर्येऽनाधृष्यो मधवा शूरा इन्द्रः ।
 अन्वेन० विशो अमदन्त पूर्वोरय० राजा जगतश्चर्षणीनाम् ॥
 स एव वीरः स उ वीर्यावान्त्स एकराजो जगतः परस्पाः ।
 यदा वृत्रमतरञ्छूरा इन्द्रो अथैकराजो अभवज्जनानाम् ॥
 इन्द्रो यज्ञ० वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशस्य जुषता० हविर्नः ।
 वृत्रं तीर्त्वा दानव० वज्रबाहुर्दिशोऽदृहद् दृ०हिता दृ०हणेन ॥
 इम० यज्ञ० वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशं प्रतिगृभ्णात्विन्द्रः ।
 यदा वृत्रमतरञ्छूरा इन्द्रो अथाऽभवद्दमिताऽभिक्रतूनाम् ॥
 अहन् वृत्र० वृत्रतुर० व्य०सं.... ॥
 इन्द्रो देवाञ्शम्बरहत्य आवदिन्द्रो देवानामभवत्पुरोगाः ।
 इन्द्रो यज्ञे हविषा वावृधानो वृत्रतूर्नो अभय० शर्म य०सत् ॥

कासं [१३.३]—य एकाष्टकायां जायेत तमुत्सृजेत् । यदि द्वौ जायेयातां
 ता उभा उत्सृजेत् । यदि संवत्सरे द्वितीयो जायेत तौ संवत्सरेऽनूत्सृजेत् । आग्नेयमष्टाकपालं
 निर्वपेज्जातयोः० अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्संवत्सरे पर्येते० आ मेध्याभ्यां भवितो-
 स्संवत्सरे संवत्सरेऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्० इन्द्रायाऽभिमातिघ्ने पूर्वमालमेत०
 इन्द्राय वृत्रतुर उत्तरम्० शतमन्यस्य दक्षिणाऽश्वोऽन्यस्य पूर्ववाट् । या एव कौ च द्वा एत-
 द्वाह्मणा अनेवमुत्सृष्टा आलमेत० तत्र यत्किंच ददाति सा दक्षिणा ।

कामः

मैसं [२.५.७]—वैश्वदेवीं बहुरूपामालमेत यस्मै कामाय कामयेत० ।

[४.१४.११]—

आ नो विश्वा आस्का गमन्त देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विधुरं न शवः ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
 शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥
 ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
 ते सौभगं वीरवद्रोमदण्णो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥
 सुगा वो देवा सदनमकर्म.... ॥ विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे.... ॥
 द्यौः पितः पृथिवि मातरध्रुगग्रे आतर्वसवो मृडता नः ।
 विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वियन्त ॥

कासं [१२.१३]—तामेतामेवमालभेताऽदित्यै कामाय० साऽविर्वशाऽभवत्० ते
 एते एवमालभेताऽदित्या अन्यां कामायाऽऽदित्येभ्योऽन्यां कामेभ्यः० ॥

[१२.१३]—वायवे श्वेतमजमालभेत कामेभ्यः० ॥

[१३.१]—प्राजापत्यमजं तूपरं विश्वरूपमालभेत सर्वेभ्यः कामेभ्यः० द्वादश
 धेनवो दक्षिणा तार्यं हिरण्यमधीवासः । प्रजापतेर्यास्तामिधेन्यस्तास्तामिधेन्यः । प्रजापतेर्या
 आप्रियस्ता आप्रियः । हिरण्यगर्भवत्याऽऽधारः । एतस्य सूक्तस्य याज्यानुवाक्ये० ॥

दृश्यतां ' पशवः ' (मैसं २.५.१)

[१३.८]—वैश्वदेवीं बहुरूपामालभेत कामेभ्यः० ॥

कृषमाणः प्रतिष्ठाकामः

तैसं [३.४.३]—द्यावापृथिव्यामा लभेत कृषमाणः प्रतिष्ठाकामः० ॥

कासं [१३.११-१२]—द्यावापृथिव्यामालभेत कृषिमवस्यन्० ॥

मन्त्राः ' बुभूषन् ' ' भूतिः ' अत्र द्रष्टव्याः

क्षत्रियाद्विडभ्यर्धश्चरेत्

कासं [१३.३]—ऐन्द्रामारुतं पृश्निसक्यमालभेत यस्मात् क्षत्रियाद्विडभ्यर्धश्चरेत्० ॥

क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत

मैसं [२.५.४]—सारस्वतीं धेनुष्टरीमालभेत यः क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत० ।

[४.१४.७]—

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोपश्रुवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।

धुतधुभिर्नमस्यैरियाणा राया धुजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥

प्र क्षोदसा धायसा सप्त एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
 प्र बाधमाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥
 एकाऽचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्या आ समुद्रात् ।
 रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्धृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥
 इदमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्रीयश्वाय दाशुषे ।
 या शश्वन्तमाचखादाऽवसं पर्णि ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥
 अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारा ऋतस्य सुभगे व्यावः ।
 वर्षे शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
 इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवाऽरुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
 पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥

ग्रामः

तैसं [२.१.१]—वायवे नियुत्वत आ लमेत ग्रामकामः ० ।

तैत्रा [२.८.१]—

पीवोन्नां रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ रायेऽनु यं जज्ञतू रोदसी उमे.... ॥
 आ वायो भूष शुचिपा उप नः.... ॥ प्र यामिर्यासि दाश्वाः समच्छ.... ॥
 प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं.... ॥

तैसं [२.१.३]—इन्द्राय मरुत्वते पृश्निसक्थमा लमेत ग्रामकामः ० पश्चात्पृश्निसक्थो भवति ० ।

तैत्रा [२.८.३]—

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
 विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥
 जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
 अवर्धन्मिन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्वनिष्ठा ॥
 क स्या वो मरुतः स्वधाऽऽसीद्यन्मामेकं समधत्ताऽहिहत्ये ।
 अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥
 वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
 मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥

वर्धी वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥
स यो वृषा वृष्णिनेभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्त्वा हव्यो भरेषु मरुत्वाच्चो भवत्विन्द्र ऊती ॥

तैसं [२.१.६]—बार्हस्पत्यः शितिपृष्ठमा लभेत ग्रामकामः ० ।

तैब्रा [२.८.२]—

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं.... ॥ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः.... ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः.... ॥ बृहस्पतिः समजयद्वसनि.... ॥ बृहस्पते
परि दीय रथेन.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥

तैसं [२.१.६]—वैश्वदेवं बहुरूपमा लभेत ग्रामकामः ० ।

तैब्रा [२.८.६]—

आ नो विश्वे अस्का गमन्तु.... ॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु.... ॥
ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे.... ॥ अग्ने याहि दूत्यं वारिषेण्यः.... ॥
द्यौः पितः पृथिवि मातः.... ॥ विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे.... ॥

मैसं [२.५.८]—ऐन्द्रामारुतं पृश्निसक्थमालभेत राजन्यं ग्रामकामं याजयेत् ० ।

[४.१४.१३]—

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञः.... ॥ जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय.... ॥
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिः.... ॥ भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे.... ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवस इन्द्र देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥
यः सप्त सिन्धूँरदधात् पृथिव्यां यः सप्त लोकानकृणोद्दिशश्च ।
इन्द्रो हविष्मान्तसगणो मरुद्भिर्वृत्रतूर्नो यज्ञमिहोपयासत् ॥

मैसं [२.५.१]—श्वेतं वायवे नियुत्वता आलभेत ग्रामकामं याजयेत् ० नियुत्वती

याज्यानुवाक्ये भवतः ० ।

[४.१४.२]—

पीवोअन्नं रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिशीः ।
ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
 अध वायुं नियुतः सश्वत स्वा उत श्वेत॑ वसुधितिं निरेके ॥
 आ वायो भूष शुचिपाः.... ॥ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा.... ॥
 प्र याभिर्यासि दाश्वा॑समल.... ॥
 आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वर॑ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ।
 वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ज्योगपरुद्धः

तैसं [२.१.४]—द्यावापृथिव्यां धेनुमा लभेत ज्योगपरुद्धः० पर्यारिणी भवति०
 वायव्यं वत्समा लभेत० ।

तैत्रा [२.८.४]—

मही नु द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवता॑ शुचयद्भिरकैः ।
 यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्नुवद्भ्योऽक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥
 प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्व॑ सदने ऋतस्य ।
 आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥
 स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
 उर्वी गभीरे रजसी सुमेकेऽव॑शे धीरः शच्या समैरत् ॥
 भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
 नित्यं न स्रुतं पित्रोरुपस्थे तं पिपृत॑ रोदसी सत्यवाचम् ॥
 इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
 भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते उपब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
 दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥

[२.८.१]—

पीवोन्ना॑ रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ रायेऽनु यं जज्ञतू रोदसी उभे.... ॥
 आ वायो भूष शुचिपाः.... ॥ प्र याभिर्यासि.... ॥ प्र वायुमच्छा बृहती
 मनीषा.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वर॑.... ॥

दृश्यतां 'ज्योद्ध निबद्धः' ।

ज्योगामयावी

तैसं [२.१.१]—वायवे नियुत्वत आ लभेत ज्योगामयावी० ।

तैत्रा [२.८.१]—

पीवोन्ना५ रयिवृधः.... ॥ रायेऽनु यं जज्ञत् रोदसी उभे.... ॥ आ
वायो भूष शुचिपा उप नः.... ॥ प्र याभिर्यासि दाश्वा५ समच्छ.... ॥ प्र
वायुमच्छा बृहती मनीषा.... ॥ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं.... ॥

तैसं [२.१.२]—आग्नेयं कृष्णग्रीवमा लभेत सौम्यं बभ्रुं ज्योगामयावी० ।

तैत्रा [२.८.२]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥

[२.८.३]—

सोमो धेनु५ सोमो अर्वन्तमाशु५ सोमो वीरं कर्मण्यं ददातु ।
सादन्यं विदध्य५ समेयं पितुःश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥
अषाढं युत्सु पृतनासु पग्नि५ सुवर्षामप्स्वां वृजनस्य गोषाम् ।
भरेषुजा५ सुक्षिति५ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥
त्व५ सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युमन्यभवो नृचक्षाः ॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्ष५ स्त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन् राजन्तसोम प्रति हव्या गृभाय ॥

तैसं [२.१.९]—मैत्र५ श्वेतमा लभेत वारुणं कृष्णं ज्योगामयावी० ।

तैत्रा [२.८.७]—

मित्रो जनान् यातयति प्रजानन्.... ॥ प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्.... ॥

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवः.... ॥ अनमीवास इडया मदन्तः.... ॥
मित्रं न ई५ शिम्या गोषु गव्यवत्.... ॥ महा५ आदित्यो नमसोपसद्यः.... ॥

[२.८.१]—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ अस्तभ्राद् द्यामृषभो अन्तरिक्षं.... ॥
यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जने.... ॥ कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि.... ॥ अव
ते हेडो वरुण नमोभिः.... ॥ तत्त्वाऽऽ यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

मैसं [२.५.६]—यो ज्योगामयावी स्यात्तमेतेन याजयेत्० यद्धारुणः० द्वीपे

याजयेत्० ।

[४.१४.९]—

वि मञ्ज्रथाय रशनामिवाऽऽग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तु०छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर क्रतोः ॥
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माऽह० राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषासा आ नो वीरान् वरुण तासु शाधि ॥
अपो षु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राडृतावोऽनु नो गृभाय ।
दामेव वत्साद्विमुग्ध्य०हो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥
यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मद्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टा एनः कृण्वन्तमरुण श्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥
क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहै यदवृकं पुरा चित् ॥
बृहन्तं मान० वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥

दृश्यताम् 'अनाज्ञातमिव ज्योगामयेत्' 'आमयावी' 'वरुणगृहीतः' ।

ज्योङ् निरुद्धः

दृश्यतां 'ज्योगपरुद्धः' 'निरुद्धो ज्योङ् निरुद्धः' ।

तेजः

मैसं [२.५.४]—य० सूत्वा सूतवशा भवति तमैन्द्रमालमेत तेजस्कामः० ।

[४.१४.७]—

इन्द्रो भूतस्य भुवनस्य.... ॥ इन्द्रः पृणन्तं पपुर्नि.... ॥ इन्द्रो द्यौरु३-
व्युत भूमिः.... ॥ इन्द्रो वृत्रं वज्रेणाऽवधीत्.... ॥ इन्द्रो बभूव ब्रह्मणा
गभीरः....॥ इन्द्रोऽस्मं अवतु वज्रबाहुः.... ॥

दृश्यतां 'भूतिः' (तैसं २.१.५) ।

मैसं [२.५.१०]—यस्तेजस्कामः स्यात्स एतानैन्द्रानृषभानालमेत । यल्ललामा
आलुभ्यन्ते० यञ्जितिककुदः० यञ्जेतानूकाशाः० प्राजापत्यं दशमं द्वादशे मासा आलमेत०
नवाऽऽलभ्यन्ते० दशाऽऽलभ्यन्ते० ।

नमो महिम्ने चक्षुषे मरुतां पितस्तदहं गृणे ते ।
हुतो याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥
देवानामेष उपनाह आसीदपां पतिर्दृषभ ओषधीनाम् ।
सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा बृहन्नद्रिरभवद्यत्तदासीत् ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामुताऽयं पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा मस्तु घृतमस्य योनिः ॥
त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वां वर्धन्ति मरुतः स्वर्काः ।
वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुब्भिः शिश्रियाणस्ततो न उग्रो विभजा वसूनि ॥

[४.१४.१४]—

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृढमरुजः पर्वतस्य ।
राजाऽभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्दत्ता मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
युष्मस्य ते वृषभस्य स्वराज्ञ उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृन्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्रः श्रुतस्य महतो महानि ॥

इदं नमो वृषभाय स्वराज्ञ उक्थशुष्माय तवसेऽवाचि ।
 अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्तस्याम ॥
 अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु.... ॥
 आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
 अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥
 न दक्षिणा विचिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
 पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥
 धारयन्त आदित्यासो जगत्स्थाः.... ॥
 तिस्रो भूमीर्धारयन्स्त्रीभ्रुत द्यून्स्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
 ऋतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥
 यज्ञो देवानां प्रत्येतु सुम्नं.... ॥
 शुचिरपः स्रयवसा अदब्धा उपक्षयन्ति वृद्धवयाः सुवीरः ।
 नकिष्टं म्रन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥

मैसं [२.५.११]—अग्निर्वै सृष्टो न व्यरोचत । सोऽग्नये तेजस्विनेऽजं कृष्ण-
 ग्रीवमालभत । तेन तेजस्यभवत् ० यः कामयेत तेजस्वी स्या ० सर्वत्र विभवेय ० सर्वत्राऽपिभागः
 स्यां दानकामा मे प्रजाः स्युरिति स एतानजान् कृष्णग्रीवानालभेत ० ।

[४.१४.१५]—

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
 अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा स०शिशधि ॥
 अग्ने स क्षेषदृतापा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
 यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तम०हः ॥
 तेजिष्ठा यस्याऽऽरतिर्वनेराद् तोदो अध्वन्न बृधसानो अद्यौत् ।
 अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥
 आ यदिषे नृपतिं तेजा आनद् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
 अग्निः शर्धमनवद्य० युवान० स्वाध्यं जनयत् स्रदयच्च ॥
 स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
 अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥

स इदस्तेव प्रतिधादसिष्यञ्छीत तेजोऽयसो न धाराम् ।

चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न दृषद्वा रघुपत्मजः ॥

कासं [१३.१३]—अग्निर्वै जातो न व्यरोचत । सोऽकामयत तेजस्वी स्यामिति । सोऽग्नये तेजस्विनेऽजं कृष्णप्रीवमालभत० यः कामयेत तेजस्वी स्या सर्वत्र विभवेयै सर्वत्राऽपिभागस्त्यामिति स एतानाग्नेयानजान् कृष्णप्रीवानालभेत० ॥

दानकामा मे प्रजाः स्युः

मैसं [२.५.११]—अग्निर्वै सृष्टो न व्यरोचत० सोऽकामयत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति । सोऽग्नये दात्रेऽजं कृष्णप्रीवमालभत० यः कामयेत तेजस्वी स्या सर्वत्र विभवेय सर्वत्राऽपिभागः स्या दानकामा मे प्रजाः स्युरिति स एतानजान् कृष्णप्रीवानालभेत० ॥

[४.१४.१६]—

अग्ने दा दाशुषे रयिं.... ॥ दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणः.... ॥
अग्निर्ददाति सत्पतिं.... ॥ अन्नपते अन्नस्य नो देहि.... ॥ अग्निना
रयिमश्नवत्.... ॥ स० समिद्युवसे वृषन्.... ॥ यास्ते अग्ने सूर्ये रुचः.... ॥

दुर्ब्राह्मणः सोमं पिपासेत्

तैसं [२.१.१०]—आश्विनं धूम्रललाममा लभेत यो दुर्ब्राह्मणः सोमं पिपासेत्० ।

तैत्रा [२.८.७]—

आ वा० रथो रोदसी बद्धधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोढा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥
स पप्रथानो अभि पञ्चभूम त्रिवन्धुरो मनसाऽऽयातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्राचिद्याममश्विना दधाना ॥
स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाक् दत्ता निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वा० रथो बध्वा यादमानोऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥
युवोः श्रियं परि योषा वृणीत स्ररो दुहिता परितक्मियायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परिघ्न० स वां मना वां वयो गाम् ॥
यो ह स्य वा० रथिरा वस्त उस्त्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना बहतं यज्ञे अस्मिन् ॥
युवं भुज्युमवविद्ध० समुद्र उदूहथुरणसो अस्त्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्वैरव्यथिभिर्द० सनाभिरश्विना पारयन्ता ॥

कासं [१३.६]—आश्विनं धूम्रललाममालमेत यो दुर्ब्राह्मणी सोमं पिपाययिषेत् ० ॥

दुश्चर्मा भविष्यामि

तैसं [२.१.४]—यदि बिभीयाद्दुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णं इयाममा लमेत ० ।

तैब्रा [२.८.१]—

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विष्ववृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥
दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं विष्यतां नाभिमस्मे ॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥

निर्ऋतिगृहीत इव मन्येत

दृश्यतां ' बुभूषन् ' ।

निरुद्धो ज्योङ् निरुद्धः

कासं [१३.५]—द्यावापृथिव्यां धेनुं पर्यारिणीमालमेत निरुद्धो ज्योङ् निरुद्धः ०
एतस्या एव वायव्यं वत्सी श्व आलमेत ० ॥

दृश्यतां ' ज्योगपरुद्धः ' ।

पण्डकः

मैसं [२.५.५]—सौमापौष्णं नपुंसकमालमेत पण्डकं याजयेत् ० यान्यनव-
दानीयानि तैर्नैर्ऋतैः पूर्वैः प्रचरन्ति ० ।

[४.१४.१]—

सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ जुषन्त.... ॥

सोमापूषणा रजसो विमानं.... ॥ दि३व्यन्यः सदनं चक्र उच्चा.... ॥
धियं पूषा जिन्वतु.... ॥ विश्वान्यन्यो भुवना जजान.... ॥

कासं [१३.७]—ऐन्द्रं विपुसकमालभेत यः पण्डकत्वाद्विभीयात्० ऋषभो
दक्षिणा० ॥

पशवः

तैसं [२.१.१]—सोमापौषणं त्रैतमा लभेत पशुकामः० औदुम्बरो यूपो भवति० ।

तैब्रा [२.८.१]—

सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥ सोमापूषणा
रजसो विमानं.... ॥ दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा.... ॥ धियं पूषा
जिन्वतु विश्वमिन्वः.... ॥ विश्वान्यन्यो भुवना जजान.... ॥

तैसं [२.१.१]—यः प्रजाकामः पशुकामः स्यात्स एतं प्राजापत्यमजं तूपरमा
लभेत० ।

तैब्रा [२.८.१]—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥ रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं.... ॥ प्रजा-
पते त्वं निधिपाः पुराणः.... ॥ तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च.... ॥
प्रजापतिं प्रथमं यज्ञियानां.... ॥ यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यः.... ॥

तैसं [२.१.२]—यः कामयेत प्रथेय पशुभिः प्र प्रजया जायेयेति स एतामवि
वशामादित्येभ्यः कामायाऽऽ लभेत० ।

तैब्रा [२.८.१]—

आदित्यानामवसा नूतनेन.... ॥ न दक्षिणा विचिकिते न सव्या.... ॥
धारयन्त आदित्यासो जगत्स्थाः.... ॥ तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत
द्युन्.... ॥ यज्ञो देवानां प्रत्येति.... ॥ शुचिरपः स्रयवसाः.... ॥

तैसं [२.१.५]—यः पशुकामः स्यात्स एतमैन्द्रमुन्नतमा लभेत० यदा सहस्रं
पशून् प्राप्नुयादथ वैष्णवं वामनमा लभेत० ।

तैब्रा [२.८.२-३]—

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्याम्.... ॥ जगृभ्णा
ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं.... ॥ समिन्द्र णो

मनसा नेषि गोभिः.... ॥ आराच्छत्रमपबाधस्व दूरं.... ॥ विष्णोर्नुकं
वीर्याणि प्रवोचं.... ॥ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां.... ॥ प्र तद् विष्णुः
स्तवते.... ॥ परो मात्रया तनुवा.... ॥ विचक्रमे पृथिवीमेष एतां.... ॥
त्रिदेवः पृथिवीमेष एतां.... ॥

तैसं [२.१.८]—त्वाष्ट्रं वडबमा लभेत पशुकामः ० ।

तैब्रा [२.८.७]—

त्वष्टा दधदिन्द्राय शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरुणि ।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्तु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥
त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरवा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि प्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो बिभर्त्रम् ।
तिग्मानीकः स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परिषीं नयन्ति ॥
आविष्टयो वर्धते चारुरासु जिह्वानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिं हं प्रतिजोषयेते ॥

मैसं [२.५.१]—सौम्यं बभ्रुं लोमशं पिङ्गलमालभेत पशुकामः ० ।

[४.१४.१]—

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं ददाति । पितृश्रवणं.... ॥
अषाढं युत्सु पृतनासु पग्निं.... ॥ त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥ त्वमिमा ओषधीः सोम
विश्वाः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥

मैसं [२.५.१]—यक्षैतानामुत्तमो जायेत तं सौमापौष्णमालभेत पशुकामः ०
यदौदुम्बरो यूपो भवति ० ।

[४.१४.१]—

सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ जुषन्त.... ॥

सोमापूषणा रजसो विमानं.... ॥ दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा.... ॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वः.... ॥ विश्वान्यन्यो भुवना जजान.... ॥

मैसं [२.५.१]—प्राजापत्यं त्परमालमेत पशुकामः० हिरण्यगर्भवत्याऽऽधारः ।
याः प्रजापतेः सामिधेनीस्ताः सामिधेनीर्याः प्रजापतेराग्रियस्ता आग्रियः० तार्यं देयं सयो-
नित्वाय । अधीवासो देयः० यद् द्वादश दीयन्ते० ।

[४.१४.१]—

प्रजापते नहि त्वत्तान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यस्मै कं जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
रयीणां पतिं यजतं बृहन्तमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
प्रजापतिं प्रथमजामृतस्य यजाम देवमधि नो ब्रवीतु ॥
प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणो देवानां पिता जनिता प्रजानाम् ।
पतिर्विश्वस्य जगतः परस्पा हविर्नो देव विहवे जुषस्व ॥
तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च परावतो निवत उद्वत्तश्च ।
प्रजापते विश्वसृग् जीवधन्य इदं नो देव प्रतिहर्य हव्यम् ॥
प्रजापतिं प्रथमं यज्ञियानां देवानामग्रे यजतं यजध्वम् ।
स नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्मै ते देव हविषा विधेम ॥
यो राय ईशे शतदाय उ३क्थ्यो यः पशूनां रक्षिता विष्टितानाम् ।
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य सहस्रधामा जुषतां हविर्नः ॥

दृश्यतां ' कामः ' (कासं १३.१) ।

मैसं [२.५.१]—श्वेतं वायवे नियुत्वता आलमेत पशुकामं याजयेत्०
नियुत्वती याज्यानुवाक्ये भवतः० ।

[४.१४.२]—

पीवोअन्नं रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ राये नु यं जज्ञत् रोदसीमे.... ॥ आ
वायो भूष शुचिपाः.... ॥ प्र वायुमछा बृहती मनीषा.... ॥ प्र याभिर्यासि
दाश्वांसमछ.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिः.... ॥

मैसं [२.५.२]—यः प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्यात्स एतामविं वशा-
मालमेत० ।

[४.१४.२]—

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां.... ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः.... ॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवाः.... ॥ आ वो देवास ईमहे.... ॥ उत देवा
अवहितं.... ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः.... ॥

मैसं [२.५.३]—स एष समीषितः कुभ्र इति । तमैन्द्रमालभेत पशुकामः०
स यदा सहस्रं पशून् गच्छेदथैतं वामनं वैष्णवमालभेत० ।

[४.१४.५]—

इन्द्रो बलं रक्षितारं दुधानां करेणेव विचकर्ता रवेण ।
स्वेदाङ्गिभिराशिरमिलमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥
अध्वर्यवो यो दधीकं जघान यो गा उदाजदपि हि बलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥
इन्द्रा ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।
विभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाऽभवद्मिताऽभिक्रतूनाम् ॥
यो हत्वाऽहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरिर्गि जजान स वृक् समत्सु स जनासा इन्द्रः ॥
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतः.... ॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृढितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमान्येषां सोमस्य ता मदा इन्द्रश्चकार ॥
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं.... ॥ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां.... ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण.... ॥ परो मात्रया तन्वा वृधानः.... ॥ विच-
क्रमे पृथिवीमेष एतां.... ॥ त्रिदेवः पृथिवीमेष एतां.... ॥

मैसं [२.५.५]—त्वाष्ट्रमवलितमालभेत पशुकामः० ।

[४.१४.८]—

त्वष्टा दधदिन्द्राय शुष्मं.... ॥ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्सु.... ॥ त्वष्टा वीरं
देवकामं जजान.... ॥ पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः.... ॥ देव त्वष्टर्भूरि
ते सत्समेतु.... ॥ आविष्टयो वर्धते चारुरासु प्रतिचेतयेते ॥

मैसं [२.५.५]—यः प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्यात् स एतं त्वष्ट्रे च पत्नी-
भ्यश्च नपुंसकमालभेत० ।

[४.१४.९]—

त्वष्टा पत्नीभिरिह नः सजोषा देवो देवीभिर्हविषो जुषाणः ।
 उपो रयिं बहुलं विष्यतां नः शृणोत नः सुमतिं यज्ञियासः ॥
 रेतोधा यस्य भुवनस्य देवः ससाद योनौ जनिता जनिष्ठः ।
 रूपाणि कृण्वन् विदधद्वपूषि त्वष्टा पत्नीभिश्चरति प्रजानन् ॥
 त्वष्टा पत्नीभिरनु म॑हनेवाऽग्रेयावा धिषणे यं दधाते ।
 विश्वा वसु हस्तयोरादधानोऽन्तर्मही रोदसी याति साधन् ॥
 आ नो वीरेभिर्जनिता मतीनां गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्वसूयन् ।
 समञ्जानो धामभिर्विश्वरूपैस्त्वष्टा पत्नीभिश्चरति प्रजानन् ॥
 त्वष्टा रेतो भुवनस्य पत्नीर्विकृण्वानास्तनयं भूरि पश्वः ।
 ग्रा वो देवी रोदसी तञ्जृणोता नो रयिं जनत विश्ववारम् ॥
 यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां च रयिं च नो जनत विश्वरूपम् ।
 योनौ रेतो दधदस्मे नु त्वष्टा देवीः पत्नीर्जनत जीवसे नः ॥

मैसं [२.५.७]—मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत पशुकामः ० ।

[४.१४.१०]—

आयातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
 स॑ या अमःस्थो अपसेव जनाञ्श्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥
 युव॑ वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरछिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
 अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥
 को नु वां मित्रावरुणा ऋतायन् दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
 ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो नु वाजान् ॥
 तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुहे ।
 विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविराववर्त ॥
 यद्व॑हिष्ठं नाऽतिविधे सुदानू अछिद्र॑ शर्म भुवनस्य गोपा ।
 तेन नो मित्रावरुणा अविष्ट॑ सिषासन्तो जिगीवा॑सः स्याम ॥
 प्र बाह्वा सिसृतं जीवसे नः.... ॥

मैसं [२.५.११]—प्राजापत्यं बहुरूपमालभेत पशुकामः ० ।

[४.१४.१]—

प्रजापते नहि त्वत्तान्यन्यः.... ॥ रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं.... ॥
 प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणः.... ॥ तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च.... ॥
 प्रजापतिं प्रथमं यज्ञियानां.... ॥ यो राय ईशे शतदाय उश्कथ्यः.... ॥

कासं [१२.१३]—एतमेव^१ सौमापौष्णमालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा० ॥

[१३.३]—ऐन्द्रमुत्पृष्टिमालभेत पशुकामः० तमेतं पुरस्तात्सहस्रस्याऽऽलभेत०
 यदा सहस्रं पशून् प्राप्नुयादथ वैष्णवं वामनमालभेत प्रतिष्ठित्यै० ता एता एवमभित आलभेत
 सहस्रस्य परिगृहीत्यै० येन वामनेनेत्सेददित्यै चरुं पुरस्तान्निर्वपेत्० ॥

[१३.६]—त्वाष्ट्रमीसेपादमालभेत पशुकामः० ॥

[१३.७]—त्वाष्ट्रं विपुंसकमालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा० ॥

पशुषु विवदेत

मैसं [२.५.४]—सारस्वतीं घेनुष्टरीमालभेत यः क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत० ।

[४.१४.७]—

उत स्या नः सरस्वती.... ॥ प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा.... ॥ एका-
 ऽचेतत् सरस्वती नदीनां.... ॥ इदमददाद्रभसमृणच्युतं.... ॥ अयमु ते
 सरस्वति.... ॥ इयं शुष्मेभिर्विसखा इवाऽरुजत्.... ॥

पाप्मना गृहीतः

तैसं [२.१.३]—इन्द्रायाऽभिमातिघ्ने ललामं प्राशृङ्गमा लभेत यः पाप्मना
 गृहीतः स्यात्० ।

तैत्रा [२.८.४]—

इन्द्रस्तरस्वानभिमातिहोत्रो हिरण्यवाशीरिषिरः सुवर्षाः ।
 तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥
 हिरण्यवर्णो अभयं कृणोत्वभिमातिहेन्द्रः पृतनासु जिष्णुः ।
 स नः शर्म त्रिवरूथं वियं सद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
 इन्द्रं स्तुहि वज्रिणं स्तोमपृष्ठं पुरोडाशस्य जुषतां हविर्नः ।
 हत्वाऽभिमातीः पृतनाः सहस्वानथाऽभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥

स्तुहि शूरं वज्रिणमप्रतीतमभिमातिहनं पुरुहूतमिन्द्रम् ।
य एक इच्छतपतिर्जनेषु तस्मा इन्द्राय हविराजुहोत ॥
इन्द्रो देवानामधिपाः पुरोहितो दिशां पतिरभवद्वाजिनीवान् ।
अभिमातिहा तविषस्तुविष्मानस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दात् ॥
य इमे द्यावापृथिवी महित्वा बलेनाऽदृहदभिमातिहेन्द्रः ।
स नो हविः प्रतिगृभ्णातु रातये देवानां देवो निधिपा नो अव्यात् ॥

तैसं [२.१.४]—यः पाप्मना गृहीतः स्यात् स आग्नेयं कृष्णग्रीवमा
लभेतैन्द्रमृषभम्० ।

तैत्रा [२.८.२]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वा नि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥
प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाऽग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूष्यन्तर्विश्वा नि विद्वाना जिगाति ॥
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वश्र्वं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरजरेभिर्यजत्र ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥
प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीची नयथ देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमश्रुः ।
वित्राधिष्ठाऽस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥
जगृभ्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
वित्रा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥

• मैसं [२.५.३]—यः पाप्मना तमसा गृहीतो मन्येत स एतमैन्द्रमृषभमाल-
मेताऽऽग्नेयं तु पूर्वमजमालमेत० ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यः.... ॥ अछा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने
त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥ इन्द्रं
नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ युजे रथं गाएषणं हरिभ्यां.... ॥ जगृह्णा
ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥ तवेदं विश्वमभितः पशुर्व्यं.... ॥ समिन्द्र
नो मनसा नेषि गोभिः.... ॥ आराञ्जन्नुमपवाधस्व दूरं.... ॥

[୪.୧୪.୮]—

जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥
सुब्रह्माणं देववन्तं महान्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतक्रषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥
वनीवानो मम दूतासा इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियाणाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं.... ॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमुग्रमस्मभ्यं.... ॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रवातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं.... ॥
सनद्राजं विप्रवीरं तरुत्रं धनुस्पृतं शूशुवासं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूभिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं.... ॥

मैसं [२.५.९]—यः पाप्मना तमसा गृहीतो मन्येत स एतमाश्विनमङ्गि-
मालमेत० ।

[४.१४.१०]—

आ वा० रथो रोदसी बद्धधानः.... ॥ स पप्रथानो अभि पञ्च भूम.... ॥
स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाक्.... ॥ यो ह स्य वा० रथिरा वस्त उत्ताः.... ॥
युवोः श्रियं परि योषाऽवृणीत.... ॥ युवं भुज्युमवविद्ध० समुद्रे.... ॥

कासं [१३.४]—आग्नेयमजमालमेतैन्द्रमृषभं बुभूषन् यः पाप्मगृहीत इव मन्येत० ॥

पिता पितामहः पुण्यः स्यादथ तन्न प्राप्नुयात्

कासं [१३.५]—आग्नेयमजमालमेत सौम्यमृषभं यस्य पिता पितामहः पुण्य-
स्यादथ तन्न प्राप्नुयात् । अग्निस्सर्वा देवताः । मुखत एव देवता आलभते । इन्द्रियेण वा
एष व्यूच्यते यस्य पिता पितामहः पुण्यो भवत्यथ तन्न प्राप्नोति । सौम्यो ब्राह्मणो देवतया ।
इन्द्रियमस्य सोमपीथः । यत् सौम्य इन्द्रियेणैवैनी सोमपीथेन समर्धयति ॥

पिता पितामहः सोमं न पिबेत्

तैसं [२.१.५]—ऐन्द्राग्रं पुनरुत्सृष्टमा लमेत य आ तृतीयात् पुरुषात् सोमं
न पिबेत्० ।

तैत्रा [२.८.५]—

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वा० सुहवा जोहवीमि ता वाज० सद्य उशते धेष्टा ॥
अथद् वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषा० रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतना हवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युव० राधोभिरकवेभिरिन्द्राऽग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईद्रे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र णो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥

मैसं [२.५.५]—ऐन्द्राग्नमनुसृष्टमालमेत यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबेत्० ।

[४.१४.८]—

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥ श्रथद् वृत्रमुत सनोति वाजं.... ॥ उभा
वामिन्द्राग्नी आहुवध्यै.... ॥ प्र चर्षणिभ्यः पृतना हवेषु.... ॥ आ वृत्र-
हणा वृत्रहभिः.... ॥ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः.... ॥

कासं [१३.५]—ऐन्द्राग्नमेतमनुसृष्टमालमेत यस्य पिता पितामहस्तोमं न
पिबेत्० ॥

पुरा पुण्यः सन् पश्चात्पापत्वं गच्छेत्

मैसं [२.५.४]—सावित्रं पुनरुत्सृष्टमालमेत यः पुरा पुण्यः सन् पश्चात्पापत्वं
गच्छेत्० ।

[४.१४.६]—

आ देवो याति सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरुणि निवेशयश्च प्रसुवश्च भूम ॥
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविर्षी दधानः ॥
स धा नो देवः सविता सहावाऽसाविषद्वसुपतिर्वह्नि ।
विश्रयमाणो अमतिगुरुर्ची मर्तभोजनमध रासते नः ॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः.... ॥ वाममद्य सवितर्वाममु श्वः.... ॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरंधि नराशंसो ग्रास्पतिर्नो अव्यात् ।
आऽये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥

कासं [१३.६]—सावित्रं पुनरुत्सृष्टमालमेत यः पुरा पुण्यो भूत्वा पश्चात्
पापीयान् स्यात्० ॥

पुरोध्या

तैसं [२.१.२]—आग्नेयं कृष्णप्रीवमा लमेत सौम्यं बभ्रुमाग्नेयं कृष्णप्रीवं पुरोध्याय
स्पर्धमानः० ।

तैत्रा [२.८.२-३]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ अग्ने
त्वं पारया नव्यो अस्मान् ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥
सोमो धेनुः सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु पर्णि.... ॥
त्वः सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि दिवि या
पृथिव्यां.... ॥

कासं [१३.१२]—आग्नेन्दीमालमेत पुरोधाकामः० आ वायो भूष शुचिपा
उपा नः इति० किकिटा ते इति जुहोति० पञ्चैतानि जुहोति० यदप्सु प्रवपति व्यृद्धिस्सा ।
यदग्नौ जुहोति स्वगाकृतिस्सा । यन्मेघ आलभते व्यृद्धा तेन० वीध्र एवैतया यजेत । त्रयाणां
वावैषाऽवरुद्धा संवत्सरसदो गृहमेधिनस्सहस्रयाजिनः । त एवैतया यजेरन्० ।

[१३.११]—

आ वायो भूष शुचिपा उपा नः.... ॥ आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे
त्वा किकिटा ते मनः प्रजापतये स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते चक्षुः
सूर्याय स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥
आकूत्यै किकिटा ते वाचं सरस्वत्यै स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा
ते प्राणं वाताय स्वाहा ॥ वशाऽसि वशिनी सकृत्.... ॥ अजाऽसि
रयिष्ठाः.... ॥ तन्तुं ततं रजसो भानुमन्विहि.... ॥ तपसो हविरसि.... ॥

पुष्टिः

तैसं [२.१.९]—यः पुष्टिकामः स्यात् स एतामाश्विनीं यमीं वशामा लभेत० ।

तैब्रा [२.८.७]—

आ वाः रथो रोदसी बद्धधानः.... ॥ स पप्रथानो अभि पञ्चभूम.... ॥
स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाक्.... ॥ युवोः श्रियं परि योषा वृणीत.... ॥ यो
ह स्य वाः रथिरा वस्त उसाः.... ॥ युवं भुज्युमवविद्धः समुद्रे.... ॥

प्रजाः

तैसं [२.१.१]—वायवे नियुत्वत आ लभेत प्रजाकामः० ।

तैब्रा [२.८.१]—

पीवोन्नाः रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिथ्रीः ।
ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥

रायेऽनु यं जज्ञत् रोदसी उमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
 अधा वायुं नियुतः सश्वत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥
 आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
 उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥
 प्र याभिर्यासि दाश्वाः समच्छा नियुद्धिर्वायविष्टये दुरोणे ।
 नि नो रयिः सुभोजसं युवेह नि वीरवद्रव्यमश्वियं च राधः ॥
 प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयि विश्ववाराः रथग्राम् ।
 द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥
 आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरः सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
 वायो अस्मिन् हविषि मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

तैसं [२.१.१]—यः प्रजाकामः पशुकामः स्यात्स एतं प्राजापत्यमजं तूपरमा

लभेत० ।

तैत्रा [२.८.१]—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥ रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं.... ॥ प्रजापते
 त्वं निधिपाः पुराणः.... ॥ तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च.... ॥ प्रजापतिं
 प्रथमं यज्ञियानां.... ॥ यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यः.... ॥

तैसं [२.१.२]—यः कामयेत प्रथेय पशुभिः प्र प्रजया जायेयेति स एतामविं
 वशामादित्येभ्यः कामाया लभेत० ।

तैत्रा [२.८.२]—

ते शुक्रासः शुचयो रश्मिवन्तः सीदन्नादित्या अधि बर्हिषि प्रिये ।
 कामेन देवाः सरथं दिवो न आयान्तु यज्ञमुप नो जुषाणाः ॥
 ते सूनवो अदितेः पीवसामिषं घृतं पिन्वत् प्रतिहर्यन्मृतेजाः ।
 प्र यज्ञिया यजमानाय येमुर आदित्याः कामं पितुमन्तमस्मे ॥
 आ नः पुत्रा अदितेर्यान्तु यज्ञमादित्यासः पथिभिर्देवनैः ।
 अस्मे कामं दाशुषे संनमन्तः पुरोडाशं घृतवन्तं जुषन्ताम् ॥
 स्कभायत निर्ऋतिः सेधताऽमर्तिं प्र रश्मिभिर्यतमाना अमृधाः ।
 आदित्याः काम प्रयतां वषट्कृतिं जुषध्वं नो हव्यदाति यजत्राः ॥

आदित्यान् काममवसे हुवेम ये भूतानि जनयन्तो विचिख्युः ।
सीदन्तु पुत्रा अदितेरुपस्थं स्तीर्णं बर्हिर्विरिधाय देवाः ॥
स्तीर्णं बर्हिः सीदता यज्ञे अस्मिन्ध्राजाः सेधन्तो अमर्ति दुरेवाम् ।
अस्मभ्यं पुत्रा अदितेः प्रयंसताऽऽदित्याः काम हविषो जुषाणाः ॥

तैसं [२.१.२]—सौम्यं बभ्रुमा लभेताऽऽग्नेयं कृष्णग्रीवं प्रजाकामः ० ।

तैब्रा [२.८.३; २]—

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु पग्निं.... ॥
त्वं सोमं क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि दिवि या
पृथिव्यां.... ॥ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय
भानवे भरध्वं.... ॥ अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने त्वम-
स्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ प्र कारवो
मनना वच्यमानाः.... ॥

तैसं [२.१.५]—ओषधीभ्यो वेहतमा लभेत प्रजाकामः ० ।

तैब्रा [२.८.४]—

या जाता ओषधयो देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मन्दामि बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधयः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तनुवां रपः ॥
या ओषधयः सोमराज्ञीः प्रविष्टाः पृथिवीमनु ।
तासां त्वमस्युत्तमा प्र णो जीवातवे सुव ॥
अश्वावतीं सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आ वित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
रपांसि विघ्नतीरिति रपश्चातयमानाः ॥
अन्या वो अन्यामवत्वन्त्याऽन्यस्या उपावत ।
ताः सर्वा ओषधयः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥

तैसं [२.१.७]—मित्रावरुणीं द्विरूपामा लभेत प्रजाकामः० ।

तैत्रा [२.८.६]—

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं.... ॥ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे.... ॥
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वं.... ॥ यद्व० हिष्ठं नाऽतिविदे सुदानू.... ॥
आ नो मित्रावरुणा हव्यदातिं.... ॥ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नः.... ॥

मैसं [२.५.२]—यः प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्यात्स एतामवि० वशा-
मालभेत० ।

[४.१४.२]—

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना० रातिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा ना आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाऽक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा० सस्तनूभिर्व्यशेम देवहित० यदायुः ॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषिताऽऽयुर्गन्तोः ॥
आ वो देवास ईमहे.... ॥
उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उताऽऽगश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः.... ॥

मैसं [२.५.४]—ओषधीभ्यो वेहतमालभेत प्रजाकामः० ।

[४.१४.६]—

या ओषधयः प्रथमजाः.... ॥ अश्वावती० सोमवर्ती.... ॥ ओषधीरिति
मातरः.... ॥ अति विश्वाः परिष्ठाः.... ॥ यदोषधयः संगच्छन्ते.... ॥
अन्या वो अन्यामवतु.... ॥

दृश्यतां 'पशवः' (मैसं २.५.५) ।

कासं [१२.१३]—एतमेव० सौमापौष्णमालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा० ॥

[१३.४]—ओषधिभ्यो वेहतमालभेत प्रजाकामः० यावन्तस्तां वाशितामन्वा-
धावन्ति ते दक्षिणा समृद्धयै० ॥

[१३.७]—त्वाष्ट्रं विपुंसकमालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा० ॥

[१३.८]—मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत प्रजाकामः० ॥

गोत्रा [२.२.१]—त्वाष्ट्रं वडवमालभेत प्रजाकामः० ॥

प्रतिष्ठा

तैसं [२.१.३]—इन्द्राय वृत्रतुरे ललामं प्राशृङ्गमा लभेत गतश्रीः प्रतिष्ठाकामः० ।

तैत्रा [२.८.३]—

इन्द्रो वृत्रमतरद् वृत्रतूर्येऽनाधृष्यो मघवा शूर इन्द्रः ।
अन्वेनं विशो अमदन्त पूर्वीरयं राजा जगतश्चर्षणीनाम् ॥
स एव वीरः स उ वीर्यावान्तस एकराजो जगतः परस्पाः ।
यदा वृत्रमतरच्छूर इन्द्रोऽथाऽभवद्दमिताऽभिक्रतूनाम् ॥
इन्द्रो यज्ञं वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशस्य जुषतां हविर्नः ।
वृत्रं तीर्त्वा दानवं वज्रबाहुर्दिशोऽदृहद् दृहता दृहणेन ॥
इमं यज्ञं वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशं प्रतिगृभ्णात्विन्द्रः ।
यदा वृत्रमतरच्छूर इन्द्रोऽथैकराजो अभवज्जनानाम् ॥
इन्द्रो देवाञ्छम्बरहत्य आवदिन्द्रो देवानामभवत्पुरोगाः ।
इन्द्रो यज्ञे हविषा वावृधानो वृत्रतूर्णो अभयं शर्म यंसत् ॥
यः सप्त सिन्धूँरदधात्पृथिव्यां यः सप्त लोकानकृणोद्दिशश्च ।
इन्द्रो हविष्मान्तसगणो मरुद्भिर्वृत्रतूर्णो यज्ञमिहोपयासत् ॥

बुभूषन्

कासं [१२.१३]—वायवे श्वेतमालभेत बुभूषन्० ॥

[१३.२]—आग्नेयमजमालभेत वारुणं कृष्णं पेतवं बुभूषन्० ॥

[१३.३]—इन्द्राय वज्रिणे रोहितमृषभं प्रथमकुसिन्धमालभेत राजन्यायाऽभिचरते
वा बुभूषते वा० ॥

[१३.४]—ऐन्द्रीं सूतवशामालभेत राजन्याय बुभूषते० यस्तस्या अधिजायेत
तमैन्द्रमालभेतेन्द्रियकामः० ॥

कासं [१३.५]—ऐन्द्रानैर्ऋतं विपुंसकमालमेत बुभूषन् यो निर्ऋतिगृहीत इव मन्येत । तस्य यदनवदानीयं स्यात्तेन पूर्वेण प्रचरेदक्षिणा परेत्य स्वकृत इरिणे जुषाणा निर्ऋति-र्वेत्तु' स्वाहा इति । अथेतारं पुनरेत्यैन्द्रं संस्थापयेत् ॥

[१३.७]—त्रीन् ललामानृषभान् वसन्ताऽऽलमेत त्रीञ्छितिककुदो ग्रीष्मे त्रीञ्छितिभसदः शरदि० संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते० ऐन्द्रास्स्युः । बुभूषन् यजेत० आजापत्यं सर्वरूपं दशममालमेत संवत्सरे पर्येते० ॥

[१३.८]—बार्हस्पत्यमुक्षाणमालमेत बुभूषन् ॥

[१३.१२]—वायव्यामालमेत बुभूषन्० आ वायो भूष शुचिपा उपा नः इति० किकिटा ते इति जुहोति० पञ्चैतानि जुहोति० यदप्सु प्रवपति व्युद्धिस्सा । यदग्नौ जुहोति स्वगाकृतिस्सा । यन्मेघ आलभते व्युद्धा तेन० वीध्र एवैतया यजेत० त्रयाणां वावैषा-ऽवरुद्धा संवत्सरसदो गृहमेधिनस्सहस्रयाजिनः । त एवैतया यजेरन्० ।

[१३.११]—

आ वायो भूष शुचिपा उपा नस्सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।

उपो ते अन्धो मद्यमयामि यतो देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥

आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा किकिटा ते मनः प्रजापतये स्वाहा ॥

आकूत्यै किकिटा ते चक्षुः सूर्याय स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते वाचि सरस्वत्यै स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते प्राणं वाताय स्वाहा ॥

वशाऽसि वशिनी सकृद्यत्ते मनसा गर्भमाशयत् ।

वशा त्वं वशिनी गच्छ देवान् सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥

अजाऽसि रयिष्ठा पृथिव्यां सीद ऊर्ध्वाऽन्तरिक्षमुपतिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भास्स्वाहा ॥

तन्तुं ततं रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।

अनुल्बणं वयसि जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥

तपसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णो गात्राणां ते गात्रभागभूयासि सूर्यो दिवो दिविषद्भ्यो धाता क्षत्रस्य वायुः प्रजानां बृहस्पतिस्त्वा प्रजापतये ज्योतिष्मते ज्योतिष्मतीं जुहोतु स्वाहा ॥

दृश्यतां 'पाप्मना गृहीतः' (कासं १३.४) 'भूतिः' 'रुच्' 'वाच्' ।

ब्रह्म^१

तैब्रा [२.८.८]—

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
 स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥
 पिता विराजामृषभो रयीणामन्तरिक्षं विश्वरूप आविवेश ।
 तमकैरभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्तः ॥
 ब्रह्म देवानजनयद् ब्रह्म विश्वमिदं जगत् ।
 ब्रह्मणः क्षत्रं निर्मितं ब्रह्म ब्राह्मण आत्मना ॥
 अन्तरस्मिन्निमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ।
 ब्रह्मैव भूतानां ज्येष्ठं तेन कोऽर्हति स्पर्धितुम् ॥
 ब्रह्मन् देवास्त्रयस्त्रिंशद् ब्रह्मन्निन्द्रप्रजापती ।
 ब्रह्मन् ह विश्वा भूतानि नावीवाऽन्तः समाहिता ॥
 चतस्र आशाः प्रचरन्त्वग्नय इमं नो यज्ञं नयतु प्रजानन् ।
 घृतं पिन्वन्नजरं सुवीरं ब्रह्म समिद्धवत्याहुतीनाम् ॥

ब्रह्मवर्चसम्

तैसं [२.१.२]—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एता मल्हा आ लभेता-
 ऽऽग्नेयीं कृष्णग्रीवीं संहितामैन्द्रीं श्वेतां बार्हस्पत्याम्० वसन्ता प्रातराग्नेयीं कृष्णग्रीवीमा लभेत
 ग्रीष्मे मध्यंदिने संहितामैन्द्रीं शरदपराह्णे श्वेतां बार्हस्पत्याम्० संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते०
 गर्भिणयो भवन्ति० ।

तैब्रा [२.८.२]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
 अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः ॥ अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ अग्ने
 त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥ इन्द्रं
 नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्याम्.... ॥ जगृभ्या

१. एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । 'ब्रह्मण ऋषभम् । आ गावो
 अग्मन्नित्युपहोमाः' इति आपश्चौ० १९.१६.१७-१८ । उपहोमार्थां ऋचः 'अन्नम्' (तैब्रा
 २.८.८) अत्र द्रष्टव्याः ।

ते दक्षिणमिन्द्र.... ॥ तवेदं विश्वमभितः.... ॥ समिन्द्र णो मनसा नेषि
 गोभिः.... ॥ आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरं.... ॥
 आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिः सदने सादयध्वम् ।
 सादद्योनिं दम आदीदिवाः सः हिरण्यवर्णमरुषः सपेम ॥
 स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्यूर्हिरण्यवाशीरिषिरः सुवर्षाः ।
 बृहस्पतिः स स्वावेश ऋषाः पुरु सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥
 बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
 सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमाः सि ॥
 बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो ब्रजान् गोमतो देव एषः ।
 अपः सिषासन्सुवरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥
 बृहस्पते परि दीय रथेन रक्षोहाऽमित्राः अपबाधमानः ।
 प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता स्थानाम् ॥
 एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
 बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयः स्याम पतयो रयीणाम् ॥

तैसं [२.१.४]—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एतां दशर्षभामा लभेत० वसन्ता
 प्रातर्हन् ललामाना लभेत ग्रीष्मे मध्यदिने त्रीञ्छितिपृष्ठाञ्छरधपराह्णे त्रीञ्छितिवारान्० संवत्सरं
 पर्यालयन्ते ० संवत्सरस्य परस्तात् प्राजापत्यं कद्रुमा लभेत० ।

तैत्रा [२.८.१]—

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
 अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥
 न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
 पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरदयाम् ॥
 धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
 दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥
 तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
 ऋतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥
 यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
 आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्त्यादः होश्चिद्या वरिवोवित्तराऽसत् ॥

शुचिरपः स्रयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥ रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं.... ॥ प्रजापते
त्वं निधिपाः पुराणः.... ॥ तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च.... ॥ प्रजापतिं
प्रथमं यज्ञियानां.... ॥ यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यः.... ॥

तैसं [२.१.७]—बार्हस्पत्याः शितिपृष्ठामा लभेत ब्रह्मवर्चसकामः ० ।

तैत्रा [२.८.२]—

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं.... ॥ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः.... ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः.... ॥ बृहस्पतिः समजयद्वस्त्रनि.... ॥ बृहस्पते
परि दीय रथेन.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥

तैसं [२.१.७]—बार्हस्पत्यमुक्षवशमा लभेत ब्रह्मवर्चसकामः ० ।

तैत्रा [२.८.२]—

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं.... ॥ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः.... ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः.... ॥ बृहस्पतिः समजयद्वस्त्रनि.... ॥ बृहस्पते
परि दीय रथेन.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥

तैसं [२.१.८]—यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एताः सौरीः श्वेतां वशामा
लभेत ० बैल्वो यूपो भवति ० ।

तैत्रा [२.८.७]—

सूर्यो देवीमृषसः रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एदग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततः संजभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याऽभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे ।
अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्वरितः संभरन्ति ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरः हसः पिपृताभिरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
 नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता आयन्नर्थानि कृण्वन्नपांसि ॥
 शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
 यथा शमस्मै शमसद् दुरोणे तत्सूर्यं द्रविणं धेहि चित्रम् ॥
 चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याऽग्नेः ।
 आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

मैसं [२.५.२]—श्वेता मल्हा आलभेत ब्रह्मवर्चसकाम आग्नेयीं बार्हस्पत्यां सौरीम् । वसन्ताऽऽग्नेयीं प्रावृषि बार्हस्पत्यां शिशिरे सौरीम्० स०वत्सरं पर्यालभ्यन्ते० ।

[४.१४.३-४]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
 अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ अछा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥
 अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥ आ
 वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं.... ॥ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः
 ऋष्वः.... ॥ बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः.... ॥ स सुष्टुभा स ऋक्ता
 गणेन.... ॥ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हात्.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय
 वृष्णे.... ॥ सूर्यो देवीशुषसं रोचमानां.... ॥ भद्रा अश्वा हरितः
 सूर्यस्य.... ॥ तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं.... ॥ तन्मित्रस्य वरुणस्या-
 ऽभिचक्षे.... ॥ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य.... ॥ चित्रं देवानामुदगा-
 दनीकं.... ॥

मैसं [२.५.७]—रोहिणीं बार्हस्पत्यामालभेत ब्रह्मवर्चसकामः० ।

[४.१४.४]—

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं.... ॥ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः.... ॥
 बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः.... ॥ स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन.... ॥
 बृहस्पते अति यदर्यो अर्हात्.... ॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे.... ॥

मैसं [२.५.७]—सौरीं श्वेतामालभेत ब्रह्मवर्चसकामः० ।

[४.१४.४]—

सूर्यो देवीशुषसं रोचमानां.... ॥ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य.... ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं.... ॥ तन्मित्रस्य वरुणस्याऽभिचक्षे.... ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य.... ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥

मैसं [२.५.११]—सौर्यं वलक्षं पेतुमालमेत ब्रह्मवर्चसकामः ० ।

[४.१४.४]—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां.... ॥ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य.... ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं.... ॥ तन्मित्रस्य वरुणस्याऽभिचक्षे.... ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य.... ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥

कासं [१३.१]—तिस्रोऽजाश्चेता मल्हा गर्भिणीरालमेत ब्रह्मवर्चसकामः ।

आग्नेयीं वसन्ता सौरीं ग्रीष्मे बार्हस्पत्यीं शरदि० संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते ० ॥

[१३.७]—बार्हस्पत्यीं शितिपृष्ठमालमेत ब्रह्मवर्चसकामः ० ॥

[१३.८]—बार्हस्पत्यीं रोहिणीमालमेत ब्रह्मवर्चसकामः ० ॥

ब्राह्मणो विद्यामनूच्य न विरोचेत

तैसं [२.१.२]—आग्नेयं कृष्णग्रीवमा लमेत सौम्यं बभ्रुं यो ब्राह्मणो विद्यामनूच्य न विरोचेत ० ।

तैब्रा [२.८.२-३]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥

सोमो धेनुः सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु.... ॥ त्वं सोम

क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥ त्वमिमा

ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥

भगः^१

तैब्रा [२.८.९]—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।

प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥

१. भगदेवताकः पशुयागोऽयम् । एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । आपश्च ० १९.१६.२४—‘भगाय वाशितामिति ।’ भगदेवतायै वाशितायाः पशोर्यागं कुर्यादिति सूत्रार्थः । अस्य यागस्य कामना न ज्ञायते ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयों विधत्ता ।
 आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजाचिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥
 भग प्रणेतर्मग सत्यराधो भगेमां धियमुदव ददन्नः ।
 भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्मग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥
 उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्वाम् ।
 उतोदिता मधवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥
 भग एव भगवांस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
 तं त्वा भग सर्वं इज्जोहवीमि स नो भग पुर एता भवेह ॥
 समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
 अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाऽश्वा वाजिन आवहन्तु ॥
 अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
 घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

भूतिः

तैसं [२.१.१]—वायव्यं श्वेतमा लभेत भूतिकामः ० ।

तैत्रा [२.८.१]—

पीवोन्मां रयिवृधः सुमेधाः.... ॥ रायेऽनु यं जज्ञत् रोदसी उमे.... ॥
 आ वायो भूष शुचिपाः.... ॥ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छ.... ॥ प्र
 वायुमच्छा बृहती मनीषा.... ॥ आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं.... ॥

तैसं [२.१.५]—ऐन्द्रीं सूतवशामा लभेत भूतिकामः ० यं सूत्वा वशा स्यात्त-
 मैन्द्रमेवाऽऽ लभेत ० ।

तैत्रा [२.८.२]—

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यां.... ॥
 जगृभ्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं.... ॥
 समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः.... ॥ आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरं.... ॥

दृश्यतां 'तेजः' (मैसं २.५.४) ।

तैसं [३.४.३]—वायव्यामा लभेत भूतिकामः ० वायव्ययोपाकरोति ० किक्किटा-
 कारं जुहोति ० पर्यग्नौ क्रियमाणे जुहोति ० तस्यै वा एतस्या एकमेवाऽदेवयजनं यदालब्धायामभो

भवति । यदालब्धायामन्नः स्यादप्सु वा प्रवेशयेत् सर्वा वा प्राश्नीयात् । यदप्सु प्रवेशयेच्चक्ष्वेशसं कुर्यात् । सर्वमिव प्राश्नीयात्० सा वा एषा त्रयाणामेवाऽवरुद्धा संवत्सरसदः सहस्रयाजिनो गृहमेधिनः । त एवैतया यजेरन्० ।

[३.४.२]—

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥
आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा किकिटा ते मनः प्रजापतये स्वाहा ॥
आकूत्यै किकिटा ते प्राणं वायवे स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते
चक्षुः सूर्यायः स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्यां
स्वाहा ॥ आकूत्यै किकिटा ते वाचं सरस्वत्यै स्वाहा ॥
त्वं तुरीया वशिनी वशाऽसि सकृद्यत् त्वा मनसा गर्भ आशयत् ।
वशा त्वं वशिनी गच्छ देवान्सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
अजाऽसि रयिष्ठा पृथिव्यां सीदोर्ध्वाऽन्तरिक्षमुप तिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भाः ॥
तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥
मनसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णो गात्राणां ते गात्रभाजो भूयास्म ॥

दृश्यताम् 'अनभिजितमभिजयेयम्' 'अन्नवानन्नादः स्याम्' 'कृषमाणः प्रतिष्ठाकामः' 'वाच्' ।

मैस [२.५.१]—श्वेतं वायवा आलभेत भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१४.२]—

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथा आयातु पाजसा ॥
ईशानाय प्रहुतिं यस्ता आनद् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातो जातो जायते वाज्यस्य ॥
युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबाऽस्माकं सवनाऽऽगहि ॥
कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यासा आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ॥

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
 वयं हि ते चक्रमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥
 सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु.... ॥

मैसं [२.५.२]—आग्नेयमजमालभेत वारुणं पेत्वं भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१४.३]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
 अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्.... ॥ अछा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥
 अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्.... ॥ अस्तभ्नाद् घामृषभो अन्तरिक्षं.... ॥
 इमां धियं शिक्षमाणस्य देव.... ॥ कितवासो यद्रिग्पुर्न दीवि.... ॥
 अव ते हेडो वरुण नमोभिः.... ॥ तत्त्वाऽऽयामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

मैसं [२.५.४]—ऐन्द्रीं सूतवशामालभेत राजन्यं भूतिकामं याजयेत्० ।

[४.१४.७]—

इन्द्रो भूतस्य भुवनस्य राजेन्द्रो दाधार पृथिवीमुतेमाम् ।
 इन्द्रे ह विश्वा भुवना श्रितानीन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥
 इन्द्रः पृणन्तं पपुर्णि चेन्द्रा इन्द्रः स्तुवन्तं स्तवितारमिन्द्रः ।
 दधाति शक्रः सुकृतस्य लोक इन्द्रं.... ॥
 इन्द्रो द्यौरुर्ध्व्युत भूमिरिन्द्रा इन्द्रः समुद्रो अभवद्गभीरः ।
 उर्वन्तरिक्षं स जनासा इन्द्रा इन्द्रं.... ॥
 इन्द्रो वृत्रं वज्रेणाऽवधीद्वीन्द्रो व्यसमुत शुष्णमिन्द्रः ।
 इन्द्रः पुरः शम्बरस्याऽमिनद्वीन्द्रं.... ॥
 इन्द्रो बभूव ब्रह्मणा गभीर इन्द्रा आभूतः परिभूष्विन्द्रः ।
 इन्द्रो भविष्यदुत भूतमिन्द्रा इन्द्रं.... ॥
 इन्द्रोऽस्मं अवतु वज्रबाहुरिन्द्रे भूतानि भुवनानीन्द्रे ।
 अस्माकमिन्द्रो भवतु प्रसाह इन्द्रं.... ॥

मैसं [२.५.५]—आग्नेयमजमालभेत सौम्यं बभ्रुमृषभं पिङ्गलं भूतिकामं

याजयेत्० ।

[४.१४.१; ३]—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.... ॥ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं.... ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यः.... ॥ अछा गिरो मतयो देवयन्तीः.... ॥ अग्ने
त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः.... ॥ प्र कारवो मनना वच्यमानाः.... ॥ सोमो
धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु.... ॥ त्वं सोम
क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥ त्वमिमा
ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥

मैसं [२.५.७]—०स उक्षाऽभवत् ० तं ब्राह्मणस्पत्यमालमेत ब्राह्मणं भूतिकामं
याजयेत् ० ।

[४.१४.१०]—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता.... ॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचिर्द्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानद् ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाऽभजन्महीव रीतिः शवसाऽसरत् पृथक् ॥
इन्धानो अग्निं वनवद्भुष्यतः कृतब्रह्मा शशुवद्रातहव्या इत् ।
जातेन जातमति स प्रसर्त्येते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥
ब्रह्मणस्पते स्यमस्य विश्वहा.... ॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥

मैसं [२.५.८]—इन्द्राय वज्रिण ऋषभमालमेत राजन्यं भूतिकामं याजयेत् ०
यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेत् ० ।

[४.१४.१३]—

समिद्धा इन्द्र उषसामनीके.... ॥ अनवस्ते रथमश्वाय.... ॥
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्तर्दं प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टाऽस्मै वज्रं स्वयं ततश्च ।
वाश्वा इव धेनवः स्यन्दमाना अज्जः समुद्रमवजग्मुरापः ॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
 ... सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरात्र नेमिः परि ता बभूव ॥
 अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषमेणा पुरोऽभेत् ।
 स० वज्रेणाऽभिनद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरञ्जशाशदानः ॥

मैसं [२.५.११]—वायव्यमजमालभेतैन्द्र० वृष्णि० वृषभ० वा वारुणं पेतुं
 भूतिकाम० याजयेत्० ।

[४.१४.२; ५; ९]—

वायो शत० हरीणां.... ॥ ईशानाय प्रहुति० यस्ता आनद्.... ॥ युक्ष्वा
 हि त्व० रथासहा.... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः.... ॥ आ नो वायो
 महे तने.... ॥ सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता
 हवन्ते.... ॥ युजे रथं गाएषण० हरिभ्यां.... ॥ जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र
 हस्तं.... ॥ तवेद० विश्वमभितः पशव्यं.... ॥ समिन्द्र नो मनसा नेषि
 गोभिः.... ॥ आराञ्जशत्रुमपबाधस्व दूरं.... ॥ विमञ्ज्रथाय रशनामि-
 वाऽऽगः.... ॥ पर ऋणा सावीरघ मत्कृतानि.... ॥ अपो षु म्यक्ष
 वरुण.... ॥ यो मे राजन् युज्यो वा.... ॥ मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टौ.... ॥
 क त्यानि नौ सख्या बभूवुः.... ॥

दृश्यतां 'बुभूषन्' ।

भ्रातृव्यवान्

तैसं [२.१.४]—यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स स्पर्धमानो वैष्णावरुणीं वशामा
 लभेतैन्द्रमुक्षाणम्० ।

तैत्रा [२.८.४; २]—

विष्णुं देवं वरुणमृतये भगं मेदसा देवा वपया यजध्वम् ।
 ता नो यज्ञमागतं विश्वधेना प्रजावदस्मे द्रविणेह धत्तम् ॥
 मेदसा देवा वपया यजध्वं विष्णुं च देवं वरुणं च रातिम् ।
 ता नो अमीवा अपबाधमानाविमं यज्ञं जुषमाणुबुपेतम् ॥
 विष्णूवरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
 दीर्घप्रयज्यु हविषा वृधाना ज्योतिषाऽरातीर्दहतं तमा०सि ॥

ययोरोजसा स्कमिता रजांसि वीर्येभिर्वीरितमा शविष्ठा ।
 या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन् वरुणा पूर्वहूतौ ॥
 विष्णूवरुणावभिश्चिप्ता वां देवा यजन्त हविषा घृतेन ।
 अपाऽमीवांसं सेधत रक्षसश्चाऽथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥
 अहोमुचा वृषभा सुप्रतूर्ती देवानां देवतमा शविष्ठा ।
 विष्णूवरुणा प्रतिहर्षतं न इदं नरा प्रयतमूतये हविः ॥
 इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते.... ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यां.... ॥
 जगृभ्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं.... ॥
 समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः.... ॥ आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरं.... ॥

दृश्यतां 'सपत्नवान्' ।

मैसं [२.५.३]—यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात्स एतं वामनं वैष्णव-
 मालभेत ० विषम इवाऽऽलभेत ० ।

[४.१४.५]—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं.... ॥ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां.... ॥
 प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण.... ॥
 परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
 उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥
 विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मेनुषे दशस्यन् ।
 ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥
 त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
 प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयांस्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥

मैसं [२.५.३]—यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात्स एतौ मिथुनौ परं
 आलभेत ऋषभं च वशां च । वैष्णववारुणीं तु पूर्वां वशामालभेत ० ।

[४.१४.६; ५]—

विष्णुं देव वरुणमूतये भगं.... ॥ मेदसा देवा वपया यजध्वं.... ॥
 ता नो अमीवामपबाधमाना.... ॥ विष्णूवरुणा युवमध्वराय नः.... ॥ ययो-
 रोजसा स्कमिता रजांसि पूर्वहूतिम् ॥ विष्णूवरुणा अभिश्चिप्ता-

पावा.... ॥ अ०होमुचा वृषभा सुप्रतूर्ती.... ॥ इन्द्रं नरो नेमधिता
हवन्ते.... ॥ युजे रथं गाएषणं.... ॥ जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं.... ॥
तवेद० विश्वमभितः पशव्यं.... ॥ समिन्द्र नो मनसा नेषि गोभिः.... ॥
आराञ्शत्रुमपवाधस्व दूरं.... ॥

मैसं [२.५.८]—इन्द्रायाऽभिमातिघ्न ऋषभमालमेत भ्रातृव्यवान्० ।

[४.१४.१२]—

इन्द्रस्तरस्वानभिमातिहोग्रः.... ॥ हिरण्यवर्णो अभयं कृणोतु.... ॥ इन्द्र०
स्तुहि वज्रिण० सोमपृष्ठं.... ॥ स्तुहि शूर० वज्रिणमप्रतीकं.... ॥ इन्द्रो
देवानामधिपाः पुरोहितः.... ॥ य इमे द्यावापृथिवी महित्वा.... ॥

मैसं [२.५.८]—स१ इन्द्राय वृत्रतुरा आलमेत० ।

[४.१४.१३]—

इन्द्रो वृत्रमतरद् वृत्रतूर्ये.... ॥ स एव वीरः स उ वीर्यावान्.... ॥ इन्द्रो
यज्ञ० वर्धयन् विश्ववेदाः.... ॥ इम० यज्ञ० वर्धयन् विश्ववेदाः.... ॥
अहन् वृत्र० वृत्रतुर० व्य०सं.... ॥ इन्द्रो देवाञ्शम्बरहत्य आवत्.... ॥

कासं [१३.३]—वैष्णवं वामनमालमेत भ्रातृव्यवान्० विषमे यजेत ॥

[१३.४]—ता एता एवमालमेत यो भ्रातृव्येण व्यायच्छेत वैष्णुवारुणीं वशा-
मैन्द्रमृषभम्० ॥

[१३.५]—आश्विनं कृष्णललाममालमेत भ्रातृव्यवान्० ॥

[१३.६]—सारस्वतीं घेनुष्टरीमालमेत यं भ्रातृव्या नीव आसथेरन्० घेनुर्वा
एषा सती न दुहे तस्माद्धेनुष्टर्युच्यते० ॥

मृत्युः^३

तैआ [३.१४]—

भर्ता सन् प्रियमाणो बिभर्ति । एको देवो बहुधा निविष्टः ।
यदा भारं तन्द्रयते स भर्तुम् । निधाय भारं पुनरस्तमेति ॥

१. भ्रातृव्यवान् । २. ऋषभम् । ३. एतद्यागविधायकं वाक्यं तैत्तिरीयशाखायां
नोपलभ्यते, नापि याज्यापुरोनुवाक्याः । आपश्चौ० १९.१६.१९-२०—‘मृत्यवे वेदतम् । तत्र
भर्तारमुपजुहुयात् ।’ मृत्युदेवतायै वेदतपश्यागं कुर्यात्, तत्र भर्तृसूक्तेनोपहोमाञ्जुहुयादित्यर्थः । केवलं
भर्तृसूक्तमत्र संग्रह्यते ।

तमेव मृत्युममृतं तमाहुः । तं भर्तारं तमु गोप्तारमाहुः ।
 स भृतो भ्रियमाणो विभर्ति । य एनं वेद सत्येन भर्तुम् ॥
 सद्योजातमुत जहात्येषः । उतो जरन्तं न जहात्येकम् ।
 उतो बहूनेकमहर्जहार । अतन्द्रो देवः सदमेव प्रार्थः ॥
 यस्तद्वेद यत आबभूव । संधां च या५ संदधे ब्रह्मणैषः ।
 रमते तस्मिन्नुत जीर्णे श्याने । नैनं जहात्यहस्सु पूर्व्येषु ॥
 त्वामापो अनु सर्वाश्चरन्ति जानतीः । वत्सं पयसा पुनानाः ।
 त्वमग्नि५ हव्यवाह५ समिन्त्से । त्वं भर्ता मातरिश्वा प्रजानाम् ॥
 त्वं यज्ञस्त्वमु वेवाऽसि सोमः । तव देवा हवमायन्ति सर्वे ।
 त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः । नमस्ते अस्तु सुहवो म एधि ॥
 नमो वामस्तु शृणुत५ हवं मे । प्राणापानावजिर५ संचरन्तौ ।
 ह्वयामि वां ब्रह्मणा तूर्तमेतम् । यो मां द्वेष्टि तं जहितं युवाना ॥
 प्राणापानौ संविदानौ जहितम् । अमुष्याऽसुना मा संगसाथाम् ।
 तं मे देवा ब्रह्मणा संविदानौ । वधाय दत्तं तमह५ ह्वयामि ॥
 असज्जजान सत आबभूव । यं यं जजान स उ गोपो अस्य ।
 यदा भारं तन्द्रयते स भर्तुम् । परास्य भारं पुनरस्तमेति ॥
 तद्वै त्वं प्राणो अभवः । महान् भोगः प्रजापतेः ।
 भुजः करिष्यमाणः । यदेवान् प्राणयो नव ॥

यक्ष्मः

दृश्यतां ' व्येमानं यक्ष्मो गृहीयात् ' ।

यज्ञो नोपनमेत्

तैसं [२.१.८]—वैष्णवं वामनमा लभेत यं यज्ञो नोपनमेत्० ।

तैत्रा [२.८.३]—

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वोचं.... ॥ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां.... ॥
 प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याय.... ॥ परो मात्रया तनुवा वृधान.... ॥ विच-
 क्रमे पृथिवीमेष एतां.... ॥ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां.... ॥

यमलोक ऋन्नुयाम्

मैसं [२.५.११]—याम् शुक्हरिमालभेत शुण्ठ वा यः कामयेत यमलोक
ऋन्नुयामिति० परे वयसि यष्टव्यम्० ।

[४.१४.१६]—

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वैर्मर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥
अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः स विदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्भिर्वावृधानः ।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहाऽन्ये स्वधयाऽन्ये मदन्ति ॥
परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥

यमौ श्वेतं कृष्णं चैकयूपे^१

तैत्रा [२.८.९]—

ता सूर्याचन्द्रमसा विश्वभृत्तमा महत्तेजो वसुमद्राजतो दिवि ।
सामात्माना चरतः सामचारिणा ययोर्व्रतं न ममे जातु देवयोः ॥
उभावन्तौ परियात अमर्या दिवो न रश्मीस्तनुतो व्यर्णवे ।
उभा भुवन्ती भुवना कविक्रतू सूर्या न चन्द्रा चरतो हतामती ॥
पती द्युमद्विश्वविदा उभा दिवः सूर्या उभा चन्द्रमसा विचक्षणा ।
विश्ववारा वरिवोभा वरेण्या ता नोऽवतं मतिमन्ता महिब्रता ॥
विश्ववपरी प्रतरणा तरन्ता सुवर्विदा दृश्ये भूरिरश्मी ।
सूर्या हि चन्द्रा वसु त्वेषदर्शता मनस्विनोभाऽनुचरतो नु सं दिवम् ॥

१. एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । 'सूर्याचन्द्रमोभ्यां यमौ श्वेतं कृष्णं चैकयूपे' इति आपश्रौ० १९.१६.२१ । अस्य यागस्य कामना न ज्ञायते ।

अस्य श्रवो नद्यः सप्त विभ्रति द्यावा क्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाऽभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो विचर्तुरम् ॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाऽभिचष्ट ऋतूनन्यो विदधज्जायते पुनः ॥

यं पर्यम्युः

कासं [१३.१]—तिस्रो मल्हा गर्भिणीरालमेत यं पर्यम्युः । वायव्यी श्वेती
सारस्वती मेघीमादित्यामजामधोरामां मेघी वा० ॥

राजन्याय बुभूषते

दृश्यतां 'बुभूषन्' ।

राजन्यायाऽभिचरते वा बुभूषते वा

दृश्यताम् 'अभिचरन्' 'बुभूषन्' ।

राजन्यो भूतिकामः

दृश्यतां 'भूतिः' ।

राजन्योऽभ्यर्धो विशश्चरेत्

मैसं [२.५.४]—द्यावापृथिवीयां धेनुं पर्यारिणीमालमेत यो राजन्योऽभ्यर्धो
विशश्चरेत्० स श्रो भूते वत्स० वायवा आलमेत० ।

[४.१४.७; २]—

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे.... ॥ प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः.... ॥ स
इत्स्वपा भुवनेष्वास.... ॥ भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं.... ॥ इदं द्यावा-
पृथिवी सत्यमस्तु.... ॥ उर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते.... ॥ वायो शत०
हरीणां.... ॥ ईशानाय प्रहुति० यस्ता आनद्.... ॥ युक्त्वा हि त्व०
रथासहा.... ॥ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः.... ॥ आ नो वायो महे
तने.... ॥ सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु.... ॥

राज्यं नोपनमेत्

तैसं [२.१.३]—सौम्यं बभ्रुमा लमेत यमल५ राज्याय सन्त५ राज्यं नोपनमेत्० ।

तैत्रा [२.८.३]—

सोमो धेनुः सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु पर्णि.... ॥
 त्वः सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥
 त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि दिवि या
 पृथिव्यां.... ॥

तैसं [२.१.३]—इन्द्राय वज्रिणे ललामं प्राशृङ्गमा लभेत यमलः राज्याय सन्तः
 राज्यं नोपनमेत् ० ।

तैत्रा [२.८.४]—

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
 ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥
 वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
 अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥
 इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
 अहन्नहिमन्वपस्ततर्दं प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥
 अहन्नर्हि पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टाऽस्मै वज्रः स्वर्थं ततक्ष ।
 वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः ॥
 इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
 सेदु राजा क्षेति चर्षणीनामरान्न नेमिः परिता बभूव ॥
 अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
 सं वज्रेणाऽसृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥

मैसं [२.५.८]—सौम्यं बभ्रुमृषभं पिङ्गलमालभेत योऽलः राज्याय सन् राज्यं
 न प्राप्नुयात् ० ।

[४.१४.१]—

सोमो धेनुः सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥ अषाढं युत्सु पृतनासु पर्णि.... ॥
 त्वः सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः.... ॥ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥
 त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥ या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥

कासं [१३.३]—सौम्यं बभ्रुमृषभं प्रथमकुसिन्धमालभेत यो राज्यं आशीसेत् ० ॥

रुक्

कासं [१३.८]—सौरी^१ श्वेतामालमेत रुक्कामः० ॥

[१३.११-१२]—ततोऽजा वशाऽजायत० यदाग्नेयः पुरोडाशो भवति० सौरी-
मालमेत रुक्कामः० ॥

दृश्यतां 'बुभूषन्' ।

वरुणगृहीतः

तैसं [२.१.२]—यो वरुणगृहीतः स्यात् स एतं वारुणं कृष्णमेकशितिपादमा
लमेत० ।

तैत्रा [२.८.१]—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽध्वमं वि मध्यमं^२ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवाऽनागसो अदितये स्याम ॥
अस्तन्नाद् द्यामृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्या ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचिन्तौ यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥
कितवासो यद्विरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विन्न ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाऽथा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥
अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेना^३सि शिश्रथः कृतानि ॥
तत्त्वाऽऽ यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥

दृश्यताम् 'अनाज्ञातमिव ज्योगामयेत्' 'आमयावी' 'ज्योगामयावी' ।

वाच

तैसं [२.१.२]—सारस्वतीं मेषीमा लमेत य ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न
वदेत्० अपन्नदती भवति० ।

तैत्रा [२.८.२]—

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मानो वाचमुशती शृणोतु ॥

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धातु ।
 आभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यं सत् ॥
 इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
 तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥
 यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुण्यसि वार्याणि ।
 यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवेऽकः ॥
 सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा पस्फरीः पयसा मा न आधक् ।
 जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥
 इयं शुष्मेभिर्विसखा इवाऽरुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
 पारावदभीमवसे सुवृत्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥

तैसं [३.४.२-३]—सारस्वतीमा लभेत य ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न
 वदेत् ० ।

मन्त्राः 'भूतिः' (तैसं ३.४.२-३) अत्र द्रष्टव्याः ।

तैत्रा [२.८.८]^१—

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
 सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सृष्टुतैतु ॥
 यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
 चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥
 अनन्तामन्तादधि निर्मितां महीं यस्यां देवा अदधुर्भोजनानि ।
 एकाक्षरां द्विपदां षट्पदां च वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे ॥
 वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः ।
 वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥
 वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः ।
 सा नो जुषाणोपयज्ञमागादवन्ती देवी सुहवा मे अस्तु ॥

१. एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोपलभ्यते । आपत्रौ० १९.१६.१७-१८—
 'वाचे वेहतम्... आ गावो अग्नित्युपहोमाः ॥' वाक्संपादनार्थं वेहत्पश्यागं कुर्वीतेत्यर्थः ।
 उपहोमार्था ऋचः 'अन्नम्' (तैत्रा २.८.८) अत्र द्रष्टव्याः ।

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणोऽन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण ।
तां देवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

मैसं [२.५.२]—सारस्वतीं मेधीमालभेत यो वाचो गृहीतः० अपनदती भवति सर्वत्वाय । अनधिस्कन्ना समृद्धयै० ।

[४.१४.३]—

पावीरवी कन्या चित्रायुः.... ॥ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा.... ॥ इमा
जुह्वाना युष्मदा नमोभिः.... ॥ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः.... ॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यः.... ॥ इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वति.... ॥

कासं [१२.१३]—सारस्वतीं मेधीमालभेत यस्माद्वागपक्रामेत्० अपनदती भवति सर्वत्वाय । अनास्कन्ना समृद्धयै० ॥

[१३.१२]—ततोऽजा वशाऽजायत० यदाग्नेयः पुरोडाशो भवति० सारस्वती-मालभेत यस्माद्वागपक्रामेत्० ॥

दृश्यतां ' बुभूषन् ' ।

वृष्टिः

तैसं [२.१.७]—मैत्रावरुणीं द्विरूपामा लभेत वृष्टिकामः० ।

तैत्रा [२.८.६]—

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसाऽऽववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सहा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥
युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुहे ।
विश्वाः पिन्वथ स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविराववर्ति ॥
यद्वह्निष्ठं नाऽतिविदे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
ततो नो मित्रावरुणाववीष्टं सिषासन्तो जीगिवांसः स्याम ॥

आ नो मित्रावरुणा हव्यदार्तिं घृतेर्गव्यूतिमुक्षतमिडाभिः ।
 प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्रो दिव्यस्य चारोः ॥
 प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
 आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥

तैसं [२.१.८]—प्राजापत्यं कृष्णमा लभेत वृष्टिकामः० शबलो भवति० अवा-
 शृङ्गो भवति० ।

तैत्रा [२.८.१]—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः.... ॥ रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं.... ॥ प्रजापते
 त्वं निधिपाः पुराणः.... ॥ तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च.... ॥ प्रजापतिं
 प्रथमं यज्ञियानां.... ॥ यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यः.... ॥

मैसं [२.५.७]—आग्निमारुतीं पृश्निमालमेत वृष्टिकामः० ।

[४.१४.११]—

ईडे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसक्तो विचयत् कृतं नः ।
 रथैरिव प्रभरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममश्याम् ॥
 त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् त्रिषुच्यवसो जुह्वो नाऽग्नेः ।
 अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥
 अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवं अल्ला ब्रह्मकृता गणेन ।
 सरस्वतीं मरुतो अश्विनाऽपो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥
 प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय.... ॥
 ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
 अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृमणैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥
 आ वो यन्तूदवाहासो अद्य.... ॥

मैसं [२.५.७]—मैत्रावरुणीं कृष्णकर्णीमालमेत वृष्टिकामः० ।

[४.१४.१२]—

आ वां मित्रावरुणा हव्यदार्तिं.... ॥
 ऋतस्य गोपा अधितिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमन् ।
 यमत्र मित्रावरुणाऽवथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः ॥

वाचं सु मित्रावरुणा ऋतावरीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
 अभ्रा वसथ मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥
 सम्राजा अस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दशा ।
 वृष्टिं वा राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी विचरन्ति तन्यवः ॥
 आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टि.... ॥
 सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
 चित्रेभिरभ्रैरुपतिष्ठतो रवं द्यां वर्षयतो असुरस्य मायया ॥
 कासं [१३.८]—मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत वृष्टिकामः ० ॥

वेहत

दृश्यताम् 'अन्नम्' 'मृत्युः' 'वाच्' 'श्रद्धा' ।

व्येमानं यक्ष्मो गृह्णीयात्

कासं [१३.६]—वारुणीं श्यामशितिकण्ठमालभेत यं व्येमानं यक्ष्मो गृह्णीयात् ० ॥

श्रद्धा^१

तैत्रा [२.८.८]—

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया विन्दते हविः ।
 श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसाऽऽवेदयामसि ॥
 प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
 प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥
 यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
 एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥
 श्रद्धां देवा यजमाना वायुर्गोपा उपासते ।
 श्रद्धां हृदय्ययाऽऽकूत्या श्रद्धया हूयते हविः ॥
 श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
 श्रद्धां सूर्यस्य निमृचि श्रद्धे श्रद्धापयेह मा ॥

१. एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशास्त्रायां नोपलभ्यते । आपश्रौ० १९.१६.१७-१८—
 'श्रद्धायै वेहतम् ... आ गावो अन्नमित्रियुपहोमाः ॥' श्रद्धाकामः वेहत्पशुयां कुर्वीतित्यर्थः ।
 उपहोमार्थां ऋचः 'अन्नम्' (तैत्रा २.८.८) अन्नं ब्रह्मण्याः ।

श्रद्धा देवानधिवस्ते श्रद्धा विश्वमिदं जगत् ।
श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वर्धयामसि ॥

संग्रामः

तैसं [२.१.३]—इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललामं प्राशृङ्गमा लभेत संग्रामे संयत्ते ० ।

तैत्रा [२.८.३]—

आ ते मह इन्द्रोत्पुग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाहुवोर्मा ते मनो विष्वद्वियग् विचारीत् ॥
यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृग्नस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदायो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाड्युध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः ॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुत मन्त्रयमुत प्रकृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृढं भयत एजदस्मात् ॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्याऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सघ्नीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाऽहन्नभिद्यून ॥

तैसं [२.१.८]—मैत्रं श्वेतमा लभेत संग्रामे संयत्ते समयकामः ० विशालो

भवति ० ।

तैत्रा [२.८.७]—

मित्रो जनान् यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाऽभि चष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम ॥
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमं हो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

अनमीवास इडया मदन्तो मितज्मवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
 आदित्यस्य व्रतमुपक्ष्यन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥
 मित्रं न ई५ शिम्या गोषु गव्यवत्स्वाधियो विदथे अप्सवजीजनन् ।
 अरेजयता५ रोदसी पाजसा गिरा प्रति ग्रियं यजतं जनुषामवः ॥
 महा५ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
 तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥

मैसं [२.५.८]—इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललाममालभेत संग्रामे० ।

[४.१४.१२]—

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र.... ॥ यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.... ॥ अभि
 गोत्राणि सहसा गाहमानः.... ॥ आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्.... ॥
 अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्.... ॥ अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्य.... ॥
 कासं [१३.४]—इन्द्राय मन्युमते ललाममृषभमालभेत संग्रामे० ॥

संग्रामो न विजयेतेति

कासं [१३.५]—ऐन्द्रं विशालमृषभमालभेत संग्रामे यः कामयेताऽयं संग्रामो न
 विजयेतेति० ॥

सजातकामः

कासं [१२.१३]—वायवे नियुत्वते श्वेतमजं पिप्पुकर्णमालभेत सजातकामः० ॥

सनिः

तैसं [२.१.६]—सावित्रमुपध्वस्तमा लभेत सनिकामः० ।

तैत्रा [२.८.६]—

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षग्रा वहमानो अश्वैः ।
 हस्ते दधानो नर्या पुरुणि निवेशयन् च प्रसुवन् च भूम ॥
 अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
 आस्थाद्रथ५ सविता चित्रभानुः कृष्णा रजा५सि तविर्षी दधानः ॥
 सद्या नो देवः सविता सवायाऽऽसाविषद्वसुपतिर्वदनि ।
 विश्रयमाणो अमतिमुरुर्चीं मर्तभोजनमध रासते न ॥

वि जनाञ्छयावाः शितिपादो अख्यन् रथः हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
 शश्वदिशः सवितुर्देव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥
 वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
 केदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्याऽऽततान ॥
 भगं धियं वाजयन्तः पुरंधि नराशंसो प्रास्पतिर्नो अव्यात् ।
 आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥

सपत्नवान्

मैसं [२.५.३]—यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात्स एतं वामनं वैष्णव-
 मालमेतं विषम इवाऽऽलमेतं ।

[४.१४.५]—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं.... ॥ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां.... ॥
 प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण.... ॥ परो मात्रया तन्वा वृधान.... ॥ विच-
 क्रमे पृथिवीमेष एतां.... ॥ त्रिदेवः पृथिवीमेष एतां.... ॥

दृश्यतां ' भ्रातृव्यवान् ' ।

समान्तमभिद्रुह्येदभिद्रुक्षेत् वा

मैसं [२.५.६]—अग्नये वैश्वानराय कृष्णं पेतृमालमेत समान्तमभिद्रोक्ष्यन् ।

[४.१४.९]—

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्याः.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ वैश्वा-
 नरस्य सुमतौ स्याम.... ॥ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानः.... ॥ अग्निः प्रातः-
 सवनात् पात्वस्मान्.... ॥ विश्वं विव्याच पृथिवीव पुष्पं.... ॥

दृश्यतां ' स्पर्धमानः ' ।

कासं [१३.१]—अग्नये वैश्वानराय कृष्णं पेतृमालमेत यस्समान्तमभिद्रुह्येदो
 वाऽभिद्रुक्षेत् ।

सर्वत्र विभवेयम्

मैसं [२.५.११]—० अग्निर्वै सृष्टो न व्यरोचत । सोऽकामयेत सर्वत्र विभवेय-
 मिति । सोऽग्नये विभूतिमतेऽजं कृष्णग्रीवमालभत । यः कामयेत तेजस्वी स्यात् सर्वत्र विभवेयं
 सर्वत्राऽपिमागः स्यात् दानकामा मे प्रजाः स्युरिति स एतानजान् कृष्णग्रीवानालभेत ।

[४.१४.१५]—

हव्यवाडग्निरजरः पिता नः.... ॥

मथीघदी० विष्टो मातरिश्वा होतार० विश्वाप्सु० विश्वदेव्यम् ।

नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावम् ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्रेधते जरिताऽभिष्टौ ।

ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋभूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाऽग्रे यजस्व रोदसी उरूची ।

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।

विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु पर्यभूदतिथिर्जातवेदाः ॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाऽजस्रः ।

आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिहृतो अत्यो न सप्तिः ॥

कासं [१३.१३]—अग्निर्वै जातो न व्यरोचत० सोऽकामयत सर्वत्र विभवेय-
मिति । सोऽग्नये विभुमतेऽजं कृष्णग्रीवमालभत० यः कामयेत तेजस्वी स्या सर्वत्र विभवेयं
सर्वत्राऽपिभागस्यामिति स एतानाग्नेयानजान् कृष्णग्रीवानालभेत० ॥

सर्वत्राऽपिभागः स्याम्

मैसं [२.५.११]—अग्निर्वै सृष्टो न व्यरोचत० सोऽकामयत सर्वत्राऽपिभागः
स्यामिति । सोऽग्नये भागिनेऽजं कृष्णग्रीवमालभत० यः कामयेत तेजस्वी स्या सर्वत्र
विभवेयं सर्वत्राऽपिभागः स्यां दानकामा मे प्रजाः स्युरिति स एतानजान् कृष्णग्रीवानालभेत० ।

[४.१४.१५]—

यदग्र एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।

रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥

एता ते अग्र उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।

शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥

वि पृक्षो अग्रे मघवानो अश्रुर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।

सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरुतिभिः सरण्यन् ।

अस्मे रयि बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥

कुर्मस्ता आयुरजरं यदग्रे यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
 अथा वहसि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥
 हविषीव भजमानो ना आभाग् देवेभ्यः शिक्षन्नुत मानुषेभ्यः ।
 त्वं देवानामसि यह्य होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥

कासं [१३.१३]—अग्निर्वै जातो न व्यरोचत० सोऽकामयेत सर्वत्राऽपि-
 भागस्यामिति । सोऽग्रे भागिनेऽजं कृष्णप्रीवमालभत० यः कामयेत तेजस्वी स्यी सर्वत्र
 विभवेयै सर्वत्राऽपिभागस्यामिति स एतानाग्रेयानजान् कृष्णप्रीवानालभेत० ॥

सूपकाशो मे पुत्रो जायेत

कासं [१३.५]—त्वाष्ट्रं शुण्ठमालभेत यः कामयेत सूपकाशो मे पुत्रो जायेतेति० ॥

सूर्याचन्द्रमसौः

तैत्रा [२.८.९]—

ता सूर्याचन्द्रमसा विश्वभृत्तमा महत्तेजो वसुमद्राजतो दिवि ।
 सामात्माना चरतः सामचारिणा ययोर्व्रतं न ममे जातु देवयोः ॥
 उभावन्तौ परियात अम्यां दिवो न रश्मीस्तनुतो व्यर्णवे ।
 उभा भुवन्ती भुवना कविक्रतू सूर्या न चन्द्रा चरतो हतामती ॥
 पती द्युमद्विश्वविदा उभा दिवः सूर्या उभा चन्द्रमसा विचक्षणा ।
 विश्ववारा वरिवोभा वरेण्या ता नोऽवतं मतिमन्ता महिब्रता ॥
 विश्ववपरी प्रतरणा तरन्ता सुवर्विदा दृश्ये भूरिरश्मी ।
 सूर्या हि चन्द्रा वसु त्वेषदर्शता मनस्विनोभाऽनुचरतो नु सं दिवम् ॥
 अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावा क्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
 अस्मे सूर्याचन्द्रमसाऽभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो विचर्तुरम् ॥
 पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम् ।
 विश्वान्यन्यो भुवनाऽभिचष्ट क्रतूनन्यो विदधज्जायते पुनः ॥

१. सूर्याचन्द्रमोदेवताकोऽयं पशुयागः । एतदर्थं विधिवाक्यं तैत्तिरीयशाखायां नोप-
 लभ्यते । 'सूर्याचन्द्रमोभ्यां यमौ श्वेतं कृष्णं चैकयूपे' इति आपश्चौ० १९.१६.२१ । अथ यागस्य
 कामना न शक्यते ।

स्पर्धमानः

तैसं [२.१.३]—वैष्णवं वामनमा लभेत स्पर्धमानः० विषम आ लभेत० ।

तैत्रा [२.८.३]—

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणत्वेधोरुगायः ॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अस्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥
परो मात्रया तनुवा वृधान न ते महित्वमन्वभ्यनुवन्ति ।
उमे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥
विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्थन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिः सुजनिमा चकार ॥
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषः ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥

ऋग्वेदान्तर्गताः

पशुयागानां याज्यापुरोनुवाक्याः^१

अग्निः—

वपा०

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्ति विधेम ॥ऋसं १.१८९.१

१. अग्निमारभ्य वरुणं यावत् पश्चैकादशिन्या याज्यापुरोनुवाक्याः, अनन्तरम् अग्नीषोमा-
वारभ्य रात्री यावत् प्राजापत्यपशूनां याज्यापुरोनुवाक्याः आश्वलायनश्रौतसूत्रं (३.७-८) शाङ्खायन-
श्रौतसूत्रं (६.१०-११) चानुसृत्य प्रदर्शयन्ते । वपापुरोडाशहविर्यागमेदेनैता अत्र संगृहीताः ।
आश्वलायनशाङ्खायनयोर्भेदे आश्वलायनोक्ता ऋक् पूर्वं प्रोक्ता । एवमतिरिक्तास्तु ऋक्षु याज्यापुरो-
नुवाक्याविवेकः ' दुरस्ताल्लक्षणाऽनुवाक्या उपरिष्ठाल्लक्षणा याज्या ' (आश्वश्रौ० २.१४) इति
परिभाषया कर्तुं शक्यः । एवंप्रकारेणोद्धृता याज्यापुरोनुवाक्याः तत्तदेवताकै वागे विनियोज्याः ।

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाऽग्नये सुपूतम् ।

यो दैव्यानि मानुषा जनुंष्यन्तर्विश्वानि विद्वाना जिगाति ॥७.४.१

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।

दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्रे चकृषे हव्यवाहम् ॥१०.८.६

पुरोडाश० अग्रे त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरिति दुर्गाणि विश्वा ।

पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥१.१८९.२

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।

एवा होतः सत्यतर त्वमद्याऽग्रे मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥१.७६.५

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वम्.... ॥७.४.१

हवि० पाहि नो अग्रे पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्रान् ।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्माऽपरं सहस्वः ॥१.१८९.४

अग्रे त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।

पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥१.१८९.३

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीर्चीं नयत देवयन्तः ।

दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥३.६.१

सरस्वती—

वपा० एकाऽचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥७.९५.२

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।

हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥५.४३.११

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।

प्रबावधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥७.९५.१

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।

ग्राभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥६.४९.७

पुरोडाश० उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।

मितज्जुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥७.९५.४

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥१०.१७.७

पावीरवी कन्या चित्रायुः.... ॥६.४९.७

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा.... ॥७.९५.१

हवि०

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माऽप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।

जुषस्व नः सख्या वेद्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥६.६१.१४

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।

यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१.१६४.४९

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।

तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥७.९५.५

सोमः—

वपा०

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।

तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥१.९१.१

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां.... ॥१.९१.४

पुरोडाश०

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।

त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युमन्यभवो नृचक्षाः ॥१.९१.२

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वाः.... ॥१.९१.२२

अषाब्धं युत्सु पृतनासु परि.... ॥१.९१.२१

हवि०

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।

त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥८.४८.१५

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं.... ॥१.९१.२०

या ते धामानि हविषा यजन्ति.... ॥१.९१.१९

पूषन्—

वपा०

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।

ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥६.५८.३

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः.... ॥१०.१७.५

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवाऽसि ।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥६.५८.१

पुरोडाश०

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मधवा दस्मवर्चाः ।

यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥६.५८.४

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा.... ॥१०.१७.६

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे.... ॥६.५८.३

हवि०

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः.... ॥१०.१७.५

पथस्पथः परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।

स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥६.४९.८

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्याः.... ॥६.५८.४

बृहस्पतिः—

वपा०

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।

तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्रोतन्त्यमितो विरण्डम् ॥४.५०.३

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।

यथा भवेम मीळुहुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥७.९७.२

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।

बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि बिभ्वाऽभवत् समृते मातरिश्वा ॥१.१९०.२

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।

बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरु सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७.९७.७

पुरोडाश०

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।

सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४.५०.४

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।

सादद्योर्नि दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥५.४३.१२

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्रौ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥१.१९०.७

स सुष्टुभा स ऋकता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिकदद् वावशतीरुदाजत् ॥४.५०.५

हवि०

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु ।

यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥२.२३.१५

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।

अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥६.७३.३

एवाः पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४.५०.६

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।

कामो रायः सुवीर्यस्य तं दातु पर्षन्नो अति सश्वतो अरिष्टान् ॥७.९७.४

विश्वे देवाः—

वपा०

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।

विश्वे नो देवा अवसाऽऽ गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१०.३५.१३

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ट ।

ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥६.५२.१३

ये के च ज्मा महिनो अहिमायाः.... ॥६.५२.१५

पुरोडाश०

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।

तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१०.३१.१

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।

प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०.६३.१४

ये के च ज्मा महिनो अहिमायाः.... ॥६.५२.१५

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।

ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥१०.७७.८

हवि०

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्तुषाहा विथुरं न शवः ॥१.१८६.२

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे.... ॥६.५२.१३

अग्रे याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।

सरस्वतीं मरुतो अश्विनाऽपो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥७.९.५

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्रौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।

अस्मिन् नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥६.५२.१७

इन्द्रः—

वपा०

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।

शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥७.२७.१

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।

ऋषा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥६.४७.८

पुरोडाश० य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।

त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृद्धि परिवृतं न राधः ॥७.२७.२

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥७.२७.३

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून्.... ॥१०.१८०.१

आ नो विश्वाभिरुतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्षश्च याहि ।

वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥७.२४.४

हवि० इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम्.... ॥७.२७.३

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजः.... ॥१०.१८०.३

स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।

रायो वन्तारो बृहतः स्यामाऽस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥३.३०.१८

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।

आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङ्मिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्वेह्यस्मे ॥६.१९.९

मरुतः—

वपा० शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।

ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥७.५६.१२

गोमदश्चावद्रथवत् सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।

प्रशस्ति नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥५.५७.७

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय.... ॥६.६६.९

अराइवेदचरमा अहेव.... ॥५.५८.५

पुरोडाश० नू छिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।

सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१.६४.१५

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्विरयो बृहदुक्षमाणाः ॥५.५७.८

अराइवेदचरमा अहेव.... ॥५.५८.५

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताऽधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१.८५.१२

हवि० आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्रार्ची रार्ति मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्रयावी हवते व उक्थैः ॥७.५६.१८
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां.... ॥७.५६.१२
या वः शर्म शशमानाय सन्ति.... ॥१.८५.१२
यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छ.... ॥५.५५.१०

इन्द्राग्नी—

वपा० आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैः.... ॥६.६०.३
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्यै.... ॥६.६०.१३
शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य.... ॥७.९३.१

पुरोडाश० आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू.... ॥१.१०९.७
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैः.... ॥६.६०.३
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः.... ॥७.९३.४

हवि० उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्यै.... ॥६.६०.१३
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र.... ॥६.६०.२

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।

प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥

१.१०९.६

सविता—

वपा० आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षग्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरुणि निवेशयश्च प्रसुवश्च भूम ॥७.४५.१
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥६.५०.८
उदीरय कवितमं कवीनां.... ॥५.४२.३
वाममद्य सवितर्वाममु श्वः.... ॥६.७१.६

पुरोडाश० स घा नो देवः सविता सहावाऽऽसाविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमूर्च्छीं मर्तभोजनमद्य रासते नः ॥७.४५.३
आ देवो यातु सविता सुरत्नः.... ॥७.४५.१

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो आस्पतिर्नो अव्याः ।

आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥२.३८.१०

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
 तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगोभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥१.३५.११
 हवि० इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगमस्तिमीळते सुपाणिम् ।
 चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७.४५.४
 सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता धामदंहत् ।
 अश्वमिवाऽधुक्षदुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१०.१४९.१
 अस्मभ्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
 शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥२.३८.११

वरुणः—

वपा०

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
 गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥७.८७.६
 अस्तभ्राद् धामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
 आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राद् विश्वेत् तानि वरुणस्य व्रतानि ॥८.४२.१
 तच्चा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥१.२४.११
 एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
 स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत् पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥८.४२.२

पुरोडाश०

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
 शं नः क्षेमे शम्भु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७.८६.८
 तच्चा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥१.२४.११
 तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद् आ वि चष्टे ।
 शुनःशेषो यमहृद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१.२४.१२
 इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशधि ।
 ययाऽति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥८.४२.३

हवि०

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं.... ॥८.४२.२
 अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
 क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१.२४.१४
 अस्तभ्राद् धामसुरो विश्ववेदाः.... ॥८.४२.१
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
 अथा वयमादित्य व्रते तवाऽनागसो अदितये स्याम ॥१.२४.१५

अग्नीषोमौः—

- वपा० अग्नीषोमाविमं सु मे.... ॥१.९३.१
युवमेतानि दिवि रोचनानि.... ॥१.९३.५
- पुरोडाश० अग्नीषोमा यो अद्य वाम्.... ॥१.९३.२
आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभार.... ॥१.९३.६
- हवि० अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्विष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥१.९३.३
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥१.९३.७

मित्रावरुणौः—

- वपा० आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सहा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥१.१५२.७
युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१.१५२.१
- पुरोडाश० आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावमःस्थो अपसेव जनाञ्छुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा ॥६.६७.३
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥७.६२.५
- हवि० आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्रो दिव्यस्य चारोः ॥७.६५.४
यद् बंहिष्ठं नाऽतिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥५.६२.९

प्रजापतिः—

- वपा० हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे.... ॥१०.१२१.१
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाऽऽहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०.१२१.४

- पुरोडाश० य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
 यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०.१२१.२
 येन द्यौरग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
 यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०.१२१.५
 हवि० यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
 य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०.१२१.३
 यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
 यत्राऽधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०.१२१.६

सूर्यः१—

- वपा० चित्रं देवानामुदगादनीकं.... ॥१.११५.१
 तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
 यदेदद्युक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१.११५.४
 पुरोडाश० सूर्यो देवीषुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
 यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१.११५.२
 तन्मित्रस्य वरुणस्याऽभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे ।
 अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥१.११५.५
 हवि० भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
 नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥१.११५.३
 शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
 यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०.३७.१०

वायुर्नियुत्वान्१—

- वपा० आ वायो भूष शुचिपा उप नः.... ॥७.९२.१
 पीवोअन्नां रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभित्रीः ।
 ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥७.९१.३
 पुरोडाश० प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छ.... ॥७.९२.३
 राये नु यं जज्ञत् रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
 अध वायुं नियुतः सश्वत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥७.९०.३

हवि० आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७.९२.५
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयि विश्ववारं रथग्राम् ।
द्युतधामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ६.४९.४

वायुः१—

वपा० तव वायवृतस्पते.... ॥ ८.२६.२१
कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ॥ ७.९१.१
पुरोडाश० त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे ।
ग्रावाणं नाऽश्वपृष्ठं मंहना ॥ ८.२६.२४
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनद.... ॥ ७.९०.२
हवि० स त्वं नो देव मनसा.... ॥ ८.२६.२५
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥ १०.६४.७

अदितिः१—

वपा० उत त्वामदिते मद्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥ ८.६७.१०
सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १०.६३.१०
पुरोडाश० अनेहो न उरुव्रज उरुचि वि प्रसर्तवे ।
कृधि तोकाय जीवसे ॥ ८.६७.१२
हवि० अदितिर्द्यौर्जनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥ १०.७२.५
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १.८९.१०

१. आश्वलायनश्रौतसूत्रानुसारेण । २. महीम् शु मातरं सुप्रतानां... (तैसं १.५.११.५)

विष्णुः—

वपा०

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
 उदस्तन्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थं प्रार्चीं ककुभं पृथिव्याः ॥७.९९.२
 विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
 यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१.१५४.१
 त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां.... ॥७.१००.३

पुरोडाश०

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
 य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥१.१५४.४
 त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
 पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥७.१००.२
 प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
 यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥१.१५४.२
 परो मात्रया तन्वा बृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
 उमे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥७.९९.१
 तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
 उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥१.१५४.५

हवि०

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
 ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥७.१००.४
 प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
 य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥१.१५४.३
 इरावती धेनुमती हि भूतं स्रयवसिनी मनुषे दशस्या ।
 व्यस्तन्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूखैः ॥७.९९.३
 ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
 अत्राऽह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥१.१५४.६

विश्वकर्मा—

वपा०

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः.... ॥१०.८१.६
 य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद्विर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
 स आशिषा ब्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१०.८१.१

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं क्रतमतः स्विद् कथाऽऽसीत् ।

यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१०.८१.२

या ते धामानि परमाणि याऽवमा.... ॥१०.८१.५

पुरोडाश० वाचस्पतिं विश्वकर्माणमृतये.... ॥१०.८१.७

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं.... ॥१०.८१.२

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥१०.८२.३

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः.... ॥१०.८१.६

हवि० विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।

तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तक्रवीन् पर एकमाहुः ॥१०.८२.२

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥१०.८१.३

या ते धामानि परमाणि याऽवमा.... ॥१०.८१.५

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमृतये.... ॥१०.८१.७

त्वष्टा—

वपा० य इमे द्यावापृथिवी जनित्री.... ॥१०.११०.९

देव त्वष्टर्यद्व चारुत्वमानद् ॥१०.७०.९

पुरोडाश० तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु.... ॥३.४.९

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः.... ॥२.३.९

हवि० देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।

इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३.५५.१९

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।

होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥६.४९.९

सोमापूषणौ—

वपा० सोमापूषणा जनना रथीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।

जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥२.४०.१

दिव्यन्यः सदनं चक्रं उच्चा पृथिव्यामन्यो अभ्यन्तरिक्षे ।

तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं विष्यतां नामिमस्मे ॥२.४०.४

पुरोडाश० इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।

आभ्यामिन्द्रः पक्वामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२.४०.२

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।

सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥२.४०.५

हवि० सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।

विष्ववृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥२.४०.३

धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।

अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२.४०.६

आदित्याः^१—

वपा० आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।

अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥७.५१.१

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।

आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२.२७.२

पुरोडाश० इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।

शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥२.२७.१

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीं रूत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।

क्रतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥२.२७.८

हवि० त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।

अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥२.२७.३

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पथा ।

पान्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥

२.२७.११

द्यावापृथिवी—

वपा० मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरकैः ।

यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा प्रप्रथानेभिरेवैः ॥४.५६.१

भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।

नित्यं न स्रजुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.२

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सवाध ईळे बृहती यजत्रे ।

ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥७.५३.१

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।

अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.५

पुरोडाश० ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।

पातामवद्याद् दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१.१८५.१०

अनेहो दात्रमदितेरनर्व हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।

तद् रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.३

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः.... ॥७.५३.२

उर्वी सन्ननी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।

दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.६

हवि०

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।

भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१.१८५.११

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती अनु प्याम रोदसी देवपुत्रे ।

उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥१.१८५.४

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।

देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१.१५९.१

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते.... ॥१.१८५.७

रुद्रः—

वपा०

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।

यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥१.११४.२

आ ते पितर्मरुतां सुन्नमेतु मा नः सूर्यस्य संहशो युयोथाः ।

अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥२.३३.१

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।

नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥२.३३.८

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।

उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्मिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥२.३३.४

पुरोडाश०

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीहवः ।

सुन्नायन्निद् विशो अस्माकमा चराऽरिष्टवीरा जुह्वाम ते हविः ॥१.११४.३

त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
 व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२.३३.२
 स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
 ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ॥२.३३.९
 हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
 ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिग्रो रीरधन्मनायै ॥२.३३.५
 आ ते पितर्मरुतां सुम्रमेतु.... ॥२.३३.१
 श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियाऽसि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
 पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥२.३३.३
 अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वाऽर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
 अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥२.३३.१०
 उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
 घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्रम् ॥२.३३.६

अश्विनौ—

वपा० आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
 आ विश्वतः पाश्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७.७२.५
 नासत्याभ्यां बर्हिर्वि प्र वृद्धे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
 यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१.११६.१
 उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
 आविवासन् रोदसी धिण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥७.७२.३
 तिस्रः क्षपस्त्रिरहाऽति व्रजद्धिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
 समुद्रस्य धन्वन्नाद्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ॥१.११६.४
 पुरोडाश० आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
 अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पर्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥७.७२.१
 वीळपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
 तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥१.११६.२
 वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
 ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्रयः समिधा जरन्ते ॥७.७२.४

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।

यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥१.११६.५

हवि०

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।

युवोहिं नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥७.७२.२

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।

तमूहथुनौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षगुहिरपोदकामिः ॥१.११६.३

हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।

मनोजवा अश्विना वातरंहा येनाऽतिथाथो दुरितानि विश्वा ॥५.७७.३

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।

तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत पैद्रो वाजी सदमिद्व्यो अर्यः ॥१.११६.६

इन्द्रः—

वपा०

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।

स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद् युधा ते ॥७.२१.६

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।

अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥३.३०.८

पुरोडाश०

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।

त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्तसृजः सिन्धूरहिना जग्रसानान् ॥४.१७.१

स्तुत इन्द्रो मघवा यद् वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।

अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥४.१७.१९

हवि०

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।

हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४.१७.८

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।

पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥४.२१.१०

वाच्—

वपा०

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।

चतस्र ऊँज दुदुहे पयांसि क स्विदस्याः परमं जगाम ॥८.१००.१०

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१०.१२५.१

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नुषिषु प्रविष्टाम् ।

तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥१०.७१.३

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥१०.१२५.४

पुरोडाश० पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्भर्मे अन्तः ।

तां द्योतमानां स्वयं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥१०.१७७.२

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुग्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥१०.१२५.२

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।

उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१०.७१.४

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥१०.१२५.५

हवि० चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्ग्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥१.१६४.४५

अहं राष्ट्रीं संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥१०.१२५.३

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥८.१००.११

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥१०.१२५.६

सरस्वान्—

वपा० जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥७.९६.४

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥१.१६४.५२

स वावृधे नर्यो योषणासु.... ॥७.९५.३

पुरोडाश० ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतञ्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥७.९६.५

सं वावृधै नर्यो योषणासु.... ॥७.९५.३

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तं.... ॥१.१६४.५२

हवि० पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥७.९६.६१

इन्द्रापूर्वणौ—

वपा० इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥६.५७.१
यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाऽभवत् सचा ॥६.५७.४

पुरोडाश० सोममन्य उपासदत् पातवे चम्बोः सुतम् ।
करम्भमन्य इच्छति ॥६.५७.२
तां पूषणः सुमर्ति वयं वृक्षस्य प्र वयामिव ।
इन्द्रस्य चा रभामहे ॥६.५७.५

हवि० अजा अन्यस्य बह्व्यो हरी अन्यस्य संभृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥६.५७.३
उत् पूषणं युवामहेऽभीश्रिव सारथिः । मद्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६.५७.६

इन्द्राविष्णू—

वपा० सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥६.६९.१
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥६.६९.४

पुरोडाश० या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अकैः ॥६.६९.२
इन्द्राविष्णू तत् पनयार्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽग्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥६.६९.५

हवि० इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्वक्कुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥६.६९.३

१. यस्य व्रतं पशवः... (तैसं ३.१.११.१३) इति याज्या । खिलं २.१५ द्रष्टव्यम् ।

२. शाङ्खायनश्रौतसूत्रानुसारेण ।

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाऽग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।

घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६.६९.६

रात्री—

वपा० रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः ।

विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१०.१२७.१

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविष्महि ।

वृक्षे न वसति वयः ॥१०.१२७.४

पुरोडाश० ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्धतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥१०.१२७.२

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।

नि श्येनासश्चिदर्धिनः ॥१०.१२७.५

हवि० निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥१०.१२७.३

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव ॥१०.१२७.६

काम्याः पशवः

बौधायनश्रौ० [२४.३८]—

अथाऽतः काम्यान् पशून् व्याख्यास्यामः । को नु खल्वेषामुपांशु भवतीति । य एवाऽऽश्वमेधिकाः प्राजापत्याः सावित्राः सारस्वताः पौष्णा याम्याः पितृदेवत्या द्यावा-पृथिव्या वायव्याः सौर्या वैश्वकर्मेणा इति । गर्भिणयो भवन्तीति कथमत्र प्रायश्चित्तं सिध्यतीति न सिध्यतीति इति ।* सिध्यतीत्येक आहुः । अथ द्वैक आहुर्न सिध्यतीति । एतत्समृद्धय एता भवन्ति । नैव सिध्यतीति ।

अनभिजितमभिजयेयम्

दृश्यतां 'भूतिः' ।

अन्नम्

बौ० २४.३९—विषम आलमेतेति । देवयजनं वा विषमं स्याद्यस्मिन् वा पशु-मालमेत । अपां चौषधीनां च संधावालभत इति । उदकान्त इत्येक आहुः । अथ द्वैक आहुः प्रावृषि वा शरदि वेति ।

अन्नवानन्नादः स्याम्

दृश्यतां 'भूतिः' ।

ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न वदेत्

दृश्यतां 'भूतिः' ।

ऋषभो गोषु जीर्यति

बौ० १४.१३-१४—ऋषभो गोषु जीर्यति तेन यक्ष्यमाणो भवति । तस्य तदुप-कल्लसं भवति यत्पशुना यक्ष्यमाणस्य । अथ यद्युत्सक्ष्यन् भवति तस्य निहत्य दक्षिणं कर्णमाजपति शिवस्त्वष्टः, पिशङ्गरूपः इति द्वाभ्याम् । अथैनं गोष्वपिसृजते एतं युवानं परि वो ददामि इति । अपियन्तमनुमन्त्रयते त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वां हवन्त मरुतः स्वर्काः । वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुभि शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भजा वसूनि इति । अथेतरं त्वाहं वैन्द्रं वा प्राजापत्यं वा पशुमालभते । एता हि साण्डस्य देवताः । तस्योपाकरणीययोरनुवर्तयति नमो महिम्न उत चक्षुषे ते इति । अथाऽस्य वपां जुहोति-देवानामेष उपनाह आसीत् इति ।

१. बौधायनश्रौतसूत्रे काम्यपशूनां विधिर्न संपूर्णः प्रतिपादितः । तैसं २.१.१-१० अत्र प्रतिपादितं विधिमनुलक्ष्य केषांचन यागानां केचन विशेषा एव कर्मान्तसूत्रे सूत्रिताः । तेऽत्र संगृह्यन्ते । तथा च बौ० १४ प्रश्ने केचन पशुयागाः प्रोक्ताः । तेऽप्यत्र दीयन्ते । सर्वेषां काम्यपशुयागानां विधि-वाक्यानि याज्यानुवाक्याश्च पूर्वं प्रदर्शितास्ता द्रष्टव्याः ।

अथाऽस्य हविर्जुहोति पिता वत्सानां पतिरध्विनानाम् इति । समानमुत्तरं पशुकर्म ।
[बौ० २३.६—ऋषभो गोषु जीर्यतीति ॥ सूत्रं शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह बौधायनो
यमप्यन्यं बहिस्तन्त्रात्पशुमालभेत तत्राऽप्येतानि कुर्यादुपाकरणीययोर्वपायां देवतास्विति ॥]

कृषमाणः प्रतिष्ठाकामः

दृश्यतां भूतिः ।

ज्योगपरुद्धः

बौ० २४.३८—पर्यारिणी भवतीति । परिहारसूरित्येक आहुः । अथ हैक
आहुर्नुजैवेषोक्ता भवति । वेहदित्येतामाचक्षते ।

पशवः

बौ० २४.३९—सोमापौष्णं त्रैतमालभेतेति । त्रयाणामेवैष उक्तो भवति । अथा-
ऽप्युदाहरन्ति यस्तिस्रो ध्ययतीति ।

बौ० २४.३९—त्वाष्ट्रं वडबमालभेतेति । यमेवैतं पुमांसस्य सन्तमधिरोहति
स वडबः ।

ब्रह्मवर्चसम्

बौ० २४.३८—आदित्यां मल्हां गर्भिणीमालभत इत्यृषिनामधेयमेवैतद्भवति ।
अपन्नदती भवतीत्यहीनदतीत्येवेदमुक्तं भवति । अथेयं दशर्षभा संवत्सरमभिविहिता ।
प्राजापत्य एवैषां कद्रुर्दशमो भवतीति । कथमत्र ब्रह्मचर्यं सिध्यतीति न सिध्यतीति इति ।
सिध्यतीत्येक आहुः । अथ हैक आहुर्न सिध्यतीति । संतिष्ठते । नैव सिध्यतीति ।

भूतिः

बौ० १४.१५—अजवशया यक्ष्यमाणो भवति । स यान्यहान्यमेघसंपन्नानि
मन्यते तेष्वग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति । या पता ब्राह्मणाभिविहिता देवतास्तासामेनामेकस्यै
देवताया आलभते । तस्या उपाकरणीययोरनुवर्तयति आ वायो भूष शुचिपाः इति ।
[बौ० २३.७—अजवशया उपाकरण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ वायव्ययैवैनामुपा-
कुर्यादिति शालीकिः ॥ अत्रो ह स्माऽऽह ज्यायान् कात्यायनो यथाप्युपाकरण उपाकरणं
नुदत एवमेवाऽप्युत्तरे मन्त्रा नुद्येरन्निति ॥] नियोजनेऽनुवर्तयति आकूल्यै त्वा कामाय त्वा
समृधे त्वा इति । पर्यग्नौ क्रियमाणे पञ्च किक्किटाकारं जुहोति किक्किटा ते मनः प्रजापतये
स्वाहा ॥ किक्किटा ते प्राणं वायवे स्वाहा ॥ किक्किटा ते चक्षुः सूर्याय स्वाहा ॥ किक्किटा ते श्रोत्रं
द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ किक्किटा ते वाचं सरस्वत्यै स्वाहा इति । अथैनामन्तरेण चात्वालो-

१. तैसं ३.४.३—वायव्यामा लभेत भूतिकामः० द्यावापृथिव्यामा लभेत कृषमाणः प्रतिष्ठा-
कामः० अग्नीषोमीयामा लभेत यः कामयेताऽन्नवानजादः स्यामिति० सारस्वतीमा लभेत य ईश्वरो वाचो
वदितोः सन् वाचं न वदेत्० प्राजापत्यामा लभेत यः कामयेताऽनभिजितमभि जयेयमिति० ।

त्कराबुदीचीं नीयमानामनुमन्त्रयते त्वं दुरीया वशिनी वशाऽसि सकृद्यत्वा मनसा गर्भं आशयत् ।
 वशा त्वं वशिनी गच्छ देवान्सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः इति । उपासनेऽनुवर्तयति अजाऽसि
 रयिष्ठा पृथिव्याः सीदोर्ध्वाऽन्तरिक्षमुपतिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भाः इति । अथाऽस्यै वपां जुहोति
 तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि इति । अथाऽस्यै हविर्जुहोति मनसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णः इति ।
 अथाऽस्या अवदानानां प्राश्नाति गात्राणां ते गात्रभाजो भूयास्म इति । अथ वै भवति तस्यै वा
 एतस्या एकमेवाऽदेवयजनं यदालब्धायामभ्रो भवति । यदालब्धायामभ्रः स्यादप्सु वा
 प्रवेशयेत् सर्वं वा प्राश्नीयादिति । उत्सन्नमेतस्या अप्सु प्रवेशनम् । एतेनैवाऽस्यै मन्त्रेणा-
 ऽवदानानां प्राश्याऽथेतरदग्नावनुग्रहरेदिति बौधायनः । अनुनिधायमेनामद्यादित्याजीगविः ।
 अथ वै भवति सा वा एषा त्रयाणामेवाऽवरुद्धा संवत्सरसदः सहस्रयाजिनो गृहमेधिनः ।
 त एवैतया यजेरन् । तेषामेवैषाऽऽप्तेति । तेषामु हैवैनयैको यजते । [बौ० २३.७—यदा-
 लब्धायामभ्रो भवतीति ॥ स ह स्माऽऽह बौधायनो यद्यहाऽन्तःश्रिता अकृष्णा मेघाः
 स्युः सःस्थापयेदेव । अथ चेत्कृष्णाः स्युरथैवं कुर्यादिति ॥ अत्रो ह स्माऽऽह शाली-
 किर्यद्यह नाऽऽदित्यमन्तर्दध्युः सःस्थापयेदेव । अथ चेदेनमन्तर्दध्युरथैवं कुर्यादिति ॥
 नाऽऽलब्धायामसःस्थापनं विद्यत इति गौतमः ॥]

सौत्रामणी^१ कौकिलसौत्रामणी

तैब्रा [२.६.१-६]—

स्वाद्धीं त्वा स्वादुना तीत्रां तीत्रेणाऽमृताममृतेन मधुमतीं मधुमता ।
सृजामि सꣳ सोमेन । सोमोऽस्यश्चिभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय
सुत्राम्णे पच्यस्व ॥

परीतो विश्वता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।

दधन्त्रा यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥

पुनातु ते परिस्तुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना । वायुः
पूतः पवित्रेण प्राङ्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ पुनातु ते
परिस्तुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना । वायुः पूतः
पवित्रेण प्रत्यङ्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय ।

शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनाऽन्नं यजमानाय धेहि ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।

इहहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥

१. सौत्रामणीयागो द्विविधः— (१) चरकसौत्रामणीयागः (२) कौकिलसौत्रामणी-
यागश्चेति । तत्र तैत्तिरीयसंहितायां राजसूययागानुषङ्गेण यः पठितः स चरकसौत्रामणीयागः । ‘ अग्निं
चित्वा सौत्रामण्या यजेत मैत्रावरुण्या वा ’ (तैब्रा ३.१२.५.१२) इतिविध्युपदिष्टोऽपि चरक-
सौत्रामणीयाग एव । तैब्रा १.४.२; १.८.५-६ अत्रापि चरकसौत्रामणीसंबन्धिनो मन्त्रा विधि-
श्चोपदिष्टः । सोऽयं यागो नैमित्तिकः काम्यश्च । तैब्रा २.६ अत्र प्रदत्तस्तु कौकिलसौत्रामणी, स च
नित्यो हविःसंस्थारूपः । अस्य विधायकं ब्राह्मणं नास्ति । मैत्रायणीकाठकसंहितयोरपि कौकिल-
सौत्रामणीयागस्य विधायकं ब्राह्मणं नास्ति । कपिष्ठलकठशाखायां सौत्रामणीप्रकरणं नास्ति । वाज-
सनेयसंहितायां राजसूयानन्तरं चरकसौत्रामणीयागः पठितः, चयनानन्तरं च कौकिलसौत्रामणी ।
उभयोः ब्राह्मणं पृथग्विद्यते । तत्र चरकसौत्रामणीयागोऽङ्गभूतो नैमित्तिकश्च । कौकिलसौत्रामणीयागो
नित्यनैमित्तिककाम्यमेदेन त्रिविधः । तत्र नित्ये ब्राह्मणस्यैवाधिकारः । चरककौकिलयोः बहुशः
साम्यभावात् प्रतिशाखमुभौ यागौ सम्यग्बोधार्थं क्रमेण प्रदत्तौ । तत्रापि कौकिलसौत्रामणीयागस्य
हविःसंस्थारूपत्वादादौ स दीयते । शाङ्खायनब्राह्मणे गोपथब्राह्मणे च केवलं कौकिलसौत्रामणी-
यागो निरूपितः ।

उपयामगृहीतोऽस्यश्चिभ्यां त्वा जुष्टं गृह्णामि ॥ उपयामगृहीतोऽसि सर-
स्वत्यै त्वा जुष्टं गृह्णामि ॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय सुत्राम्णे त्वा जुष्टं
गृह्णामि ॥ एष ते योनिस्तेजसे त्वा ॥ एष ते योनिर्वीर्याय त्वा ॥
एष ते योनिर्बलाय त्वा ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ वीर्यमसि वीर्यं
मयि धेहि ॥ बलमसि बलं मयि धेहि ॥

नाना हि वां देवहितं सदः कृतं मा सः सुक्षाथां परमे व्योमन् ।

सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिंसीः स्वां योनिमाविशन् ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्चिनं तेजः ॥ उपयामगृहीतोऽसि सारस्वतं वीर्यम् ॥
उपयामगृहीतोऽस्यैन्द्रं बलम् ॥ एष ते योनिर्मोदाय त्वा ॥ एष ते
योनिरानन्दाय त्वा ॥ एष ते योनिर्महसे त्वा ॥ ओजोऽस्योजो मयि
धेहि ॥ मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ॥ महोऽसि महो मयि धेहि ॥ सहोऽसि
सहो मयि धेहि ॥

या व्याघ्रं विषूचिका उभौ वृकं च रक्षति ।

श्येनं पतत्रिणं सिंहं सेमं पात्वहसः ॥

संपृचः स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त ॥ विपृचः स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥

सोमो राजाऽमृतं सुत ऋजीषेणाऽजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं
विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हंसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं
विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ अद्भ्यः क्षीरं
व्यपिबत् कुङ्कुमाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्र-
मन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ अन्नात्परिस्तुतो रसं ब्रह्मणा
व्यपिबत्क्षत्रम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु ॥

रेतो मूत्रं विजहाति । योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणाऽऽवृतः ।

उल्बं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्र-
स्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ वेदेन रूपे व्यकरोत् सतासतीं प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

सोमेन सोमौ व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं

शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ दृष्ट्वा रूपे व्यकरोत्

सत्यानृते प्रजापतिरश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाः सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्य-
मिन्द्रियं विपानः शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसः शुकेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन
सत्यमिन्द्रियं विपानः शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

सुरावन्तं बर्हिषदः सुवीरं यज्ञः हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।

दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥

यस्ते रसः संभृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।

तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसनोदिन्द्रियाय ।

इमं तः शुक्रं मधुमन्तमिन्दुः सोमः राजानमिह भक्षयामि ॥

यदत्र रिप्तः रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।

अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमः राजानमिह भक्षयामि ॥

पितृभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः ॥ पितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा

नमः ॥ प्रपितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः ॥ अक्षन्पितरोऽमीमदन्त

पितरोऽतीतृपन्त पितरः । अमीमृजन्त पितरः । पितरः शुन्धध्वम् ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।

पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।

पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्रवै ॥

अग्न आयूः षि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत्पोषः रथि मयि ॥

पवमानः सुवर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्व आयवः ॥

जातवेदः पवित्रवत् पवित्रेण पुनाहि मा ।

शुकेण देव दीद्यदग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः ।

तया मदन्तः सधमाद्येषु वयः स्याम पतयो रयीणाम् ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
 तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥
 ये सजाताः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
 तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतं समाः ॥
 द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामृत मर्त्यानाम् ।
 याम्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥
 इदं हविः प्रजननं मे अस्तु । दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये । आत्मसनि
 प्रजासनि । पशुसन्यभयसनि लोकसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोतु ।
 अन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त । रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासु दीधरत्स्वाहा ॥
 सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
 अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥
 तदस्य रूपममृतं शचीभिस्तिस्त्रो दधुर्देवताः स रराणाः ।
 लोमानि शण्यैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मां समभवन्न लाजाः ॥
 तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरः ।
 अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥
 सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
 रसं परिस्नुता न रोहितं नग्रहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥
 पयसा शुक्रममृतं जनित्रं सुरया मूत्राज्जनयन्ति रेतः ।
 अपाऽमर्ति दुर्मति बाधमाना ऊवध्यं वातं सबुवं तदारात् ॥
 इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
 यकृत्क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥
 आन्त्राणि स्थाली मधु पिन्वमाना गुदा पात्राणि सुदुधा न धेनुः ।
 श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥
 कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
 प्लाशीर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥
 मुखं सदस्य शिर इत्सदेन जिह्वा पवित्रमश्विना स सरस्वती ।
 चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेषो हरसा तरस्वी ॥
 अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
 पक्ष्माणि गोधूमैः कलैरुतानि पेशो न शुक्लमसितं वसाते ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
 सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्वदरैर्जजान ॥
 इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याः श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ॥
 यवा न बर्हिर्भुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारधं मुखात् ॥
 आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोमम् ।
 केशा न शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिःहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥
 अङ्गान्यात्मन्मिषजा तदश्विनाऽऽत्मानमङ्गैः समधात्सरस्वती ।
 इन्द्रस्य रूपः शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना ॥
 सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
 अपाः रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रः श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥
 तेजः पशूनाः हविरिन्द्रियावत्परिस्रुता पयसा सारधं मधु ।
 अश्विभ्यां दुग्धं मिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥
 मित्रोऽसि वरुणोऽसि । समहं विश्वेर्देवैः ॥ क्षत्रस्य नाभिरसि । क्षत्रस्य
 योनिरसि ॥ स्योना मा सीद सुषदा मा सीद ॥ मा त्वा हिःसीन्मा
 मा हिःसीत् ॥
 निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥
 देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामश्विनोर्भैषज्येन ।
 तेजसे ब्रह्मवर्चसायाऽभिषिञ्चामि ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो-
 र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याः सरस्वत्यै भैषज्येन । वीर्यायाऽन्नाद्यायाऽभि-
 षिञ्चामि ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या-
 मिन्द्रस्येन्द्रियेण । श्रियै यशसे बलायाऽभिषिञ्चामि ॥ कोऽसि कतमोऽसि ।
 कस्मै त्वा काय त्वा ॥ सुश्लोकाँ३ सुमङ्गलाँ३ सत्यराजा३न् ॥
 शिरो मे श्रीः । यशो मुखम् । त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे
 प्राणोऽमृतम् । सम्राट् चक्षुः । विराट्श्रोत्रम् । जिह्वा मे भद्रम् । वाङ्
 महः । मनो मन्युः । स्वराद् भामः । मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि ।
 चित्तं मे सहः । बाहू मे बलमिन्द्रियम् । हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा
 क्षत्रपुरो मम । पृथ्वीर्मे राष्ट्रमुदरमसौ । ग्रीवाश्च श्रोण्यौ । ऊरू अरत्नी
 जानुनी । विशो मेऽङ्गानि सर्वतः । नाभिर्मे चित्तं विज्ञानम् । पायुर्मे-
 ऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे । भगः सौभाग्यं पसः ॥

जङ्घाभ्यां पङ्क्यां धर्मोऽस्मि । विशि राजा प्रतितिष्ठतः ॥

प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे । प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति-
तिष्ठाम्यात्मन् । प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे । प्रति द्यावापृथिव्योः ।
प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥

त्रया देवा एकादश । त्रयस्त्रिंशः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिताः ।
देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा । प्रथमा द्वितीयैः । द्वितीया-
स्तृतीयैः । तृतीयाः सत्येन । सत्यं यज्ञेन । यज्ञो यजुर्भिः । यजूंषि
सामभिः । सामान्यृग्भिः । ऋचो याज्याभिः । याज्या वषट्कारैः ।
वषट्कारा आहुतिभिः । आहुतयो मे कामान्तसमर्धयन्तु ॥ भूः स्वाहा ॥
लोमानि प्रयतिर्मम । त्वङ्म आनतिरागतिः । मांसं म उपनतिः ।
वस्वस्थि । मज्जा म आनतिः ॥

यद्देवा देवहेडनम् । देवासश्चक्रमा वयम् ।

अग्निर्मा तस्मादेनसः । विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥

यदि दिवा यदि नक्तम् । एनांसि चक्रमा वयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसः । विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्ने । एनांसि चक्रमा वयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसः । विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये । यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यच्छूद्रे यदर्ये । एनश्चक्रमा वयम् ।

यदेकस्याऽधि धर्मणि । तस्याऽवयजनमसि ॥

यदापो अग्निया वरुणेति शपामहे । ततो वरुण नो मुञ्च ॥

अवभृथ निचङ्कुण निचेरुरसि निचङ्कुण । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयाद् ।

अव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् । उरोरा नो देव रिषस्पाहि ॥ सुमित्रा न आप

ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

दुपदादिवेन्मुमुक्षुचानः । स्विन्नः स्नात्वी मलादिव ।

पृतं पवित्रेणेवाऽऽज्यम् । आपः शुन्धन्तु मेनसः ॥

उद्वयं तमसस्परि । पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यम् । अगन्म ज्योतिरुत्तरम् ॥

प्रतियुतो वरुणस्य पाशः । प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशः ॥ एधोऽस्येधिषीमहि ।
समिदसि । तेजोऽसि । तेजो मयि धेहि ॥ अपो अन्वचारिषः रसेन
समसृक्ष्महि । पयस्वाः अग्न आगमम् । तं मा सः सृज वर्चसा । प्रजया च
धनेन च ॥ समाववर्ति पृथिवी । समुषाः । समु सूर्यः । समु विश्वमिदं
जगत् । वैश्वानर ज्योतिर्भूयासम् । विभुं कामं व्यश्रवै ॥ भूः स्वाहा ॥

कौकिलसौत्रामणीहौत्रम्

तैत्रा [२.६.७-८]—

‘होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्स-
मिध्वत ओजिष्ठश्चर्षणीसहान् वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्रावृधानः ।

त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जधान वृत्रं वि दुरो ववार ॥

होता यक्षत्तनूनपातमृतिभिर्जेतारमपराजितम् । इन्द्रं देवः सुवर्विदं पथि-
भिर्मधुमत्तमैः । नराशः सेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

नराशः सः प्रतिशूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।

गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् । देवो देवैः सवीर्यो
वज्रहस्तः पुरंदरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

ईडितो देवैर्हरिवाः अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।

पुरंदरो मधवान् वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥

होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् । वसुभी रुद्रेरादित्यैः
सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् इन्द्रः प्राचीनः सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।

उरुव्यचाः प्रथमानः स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥

होता यक्षदोजो न वीर्यः सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् । सुप्रायणा विश्रयन्ता-
मृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

१. ऐन्द्रपशुयागे प्रयाजप्रेषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः प्रेषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण ।
एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः ।

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
 द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताः सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥
 होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुषे मातरौ मही । सवातरौ न तेजसी वत्स-
 मिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥
 उषासा नक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुषे शूरमिन्द्रम् ।
 पेशस्वती तन्तुना संव्ययन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥
 होता यक्षदैव्या होतारा भिषजा सखाया । हविषेन्द्रं भिषज्यतः कवी देवौ
 प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥
 दैव्या मिमाना मनसा पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
 मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥
 होता यक्षत्तिस्रो देवीस्त्रयस्त्रिधातवोऽपसः । इडा सरस्वती भारती मही-
 न्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥
 तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा वृषाणं न पत्नीः ।
 अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥
 होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपं सुरेतसं
 मघोनिमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥
 त्वष्टा दधदिन्द्राय शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरुणि ।
 वृषा यजन् वृषाणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥
 होता यक्षद्वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा
 समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति हव्यं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य
 होतर्यज ॥
 वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्वन्त्या समञ्जच्छमिता न देवः ।
 इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति हव्यं मधुना घृतेन ॥
 होता यक्षदिन्द्रं स्वाहाऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा
 स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवाः आज्यपान्त्स्वाहेन्द्रं
 होत्राज्जुषाणा इन्द्र आज्यस्य वियन्तु होतर्यज ॥
 स्तोकानामिन्द्रं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाद ।
 घृतमुषा मधुना हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य जुषतां स्वाहा ॥

[२.६.९]—

१ आचर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
 स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्विग्युक्त्वा हरी वृषणा याद्वर्वाङ् ।
 विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमहः ।
 अहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥
 २ तं सध्रीचीरूतयो वृष्णिन्यानि पौंस्यानि नियुतः सञ्चुरिन्द्रम् ।
 समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आविशन्ति ॥
 सत्यमित्तन्न त्वावा अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
 अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजोऽपो अच्छा समुद्रम् ॥
 ३ प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून् ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
 इन्द्राऽऽभर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥
 स शेवृधमधिधा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यम् ।
 रक्षा च नो मघोनः पाहि स्रूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ।

[२.६.१०]—

१ देवं बर्हिर्निन्द्रं सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तो-
 र्भृतं राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्रसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥
 देवीर्द्वार इन्द्रं संघाते विड्वीर्यामन्नवर्धयन्ना वत्सेन तरुणेन कुमारेण च
 मीविता अपाऽर्वाणम् । रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु
 यज ॥
 देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेतां दैवीर्विशः प्रायासिष्टाम् । सुग्रीते
 सुधिते अभूतां वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥
 देवी जोष्ट्री वसुधिते देवमिन्द्रमवर्धयताम् । अयाव्यन्याऽघा द्वेषाऽस्या-
 ऽन्याऽवाक्षीद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां
 यज ॥
 देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रमवर्धयताम् । इषमूर्जमन्याऽवाक्षीत् सग्धिः

१. ऐन्द्रपशुयागे वपायागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये । २. पशुपुरोडाशयागस्य याज्या-
 पुरोनुवाक्ये । ३. दधिर्यागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये । ४. ऐन्द्रपशावनुयाजग्रीवाः । अनुयाजयाज्या
 निरुदपशुवत् ।

सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम् । हताघशंसावाभार्ष्टा वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवः रुद्रै-
र्यज्ञः सरस्वतीडा वसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देव इन्द्रो नराशंसस्त्रिवरुथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठा-
नामाहितः सहस्रेण प्रवर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिः स्तोत्रम-
श्विनाऽऽध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देव इन्द्रो वनस्पतिर्हिरण्यपणो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्रेणाऽऽग्रादाऽन्तरिक्षं पृथिवीमदृहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणाऽऽसन्नमन्या
बर्हीः प्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्तिस्विष्टकृत् स्विष्टमघ
करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

[२.६.११-१२]—

'होता यक्षत्समिधाऽग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रः सरस्वतीम् । अजो धूम्रो न
गोधूमैः कलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं
मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।

दुहे धेनुः सरस्वती सोमः शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वत्यविर्भेषो न भेषजम् । पथा मधुमताऽऽभरन्नश्वि-
नेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं
मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

तनूपा भिषजा सुते अश्विनोभा सरस्वती ।

मध्वा रजाः सीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नगहुं पतिः सुरायै भेषजम् । भेषः सरस्वती भिष-

१. त्रिवक्तृवागे प्रयाजग्रैवाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः ग्रैवः अपरा वाक्या, एवं क्रमेण ।
एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः ।

ग्रथो न चन्द्राश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः
पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

इन्द्रायेन्दुः सरस्वती नराशः सेन नग्रहुः ।

अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीम् । इन्द्रं बलेन वर्धयन्नुषमेण गवे-
न्द्रियमश्विनेन्द्राय वीर्यं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।

इडाभिरश्विनाविषः समूर्जः सः रयि दधुः ॥

होता यक्षद्वर्हिः सुष्टरीमोर्णग्रदा भिषद् नासत्या । भिषजाऽश्विनाऽश्वा
शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता
घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

अश्विना नमुचेः सुतः सोमः शुक्रं परिस्रुता ।

सरस्वती तमाभरद्वर्हिषेन्द्राय पातवे ॥

होता यक्षद् दुरो दिशः कवण्यो न व्यचस्वतीः । अश्विभ्यां न दुरो दिश
इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे कामान्त्सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजः शुक्रं न
ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

कवण्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।

इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तंदिवाऽश्विना संजानाने । समञ्जाते सरस्वत्या
त्विषिमिन्द्रे न भेषजः श्येनो न रजसा हृदा पयः सोमः परिस्रुता घृतं
मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

उषासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रः सायमिन्द्रियैः ।

संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥

होता यक्षदैव्या होतारा भिषजाऽश्विनेन्द्रं न जागृवी दिवा नक्तं न भेषजैः ।
शूषः सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु
वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तः सरस्वति ।

दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रः सचा सुते ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसः । रूपमिन्द्रे हिरण्ययम-
श्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दधुरिन्द्रियं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा ।

तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीम् । ओजो न जूतिरिन्द्रियं
वृको न रभसो भिषक् यशः सुरया भेषजं श्रिया न मासरं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।

इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियं रूपं रूपमधुः सुते ॥

होता यक्षद्वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुम् । भीमं न मन्युं राजानं व्याघ्रं
नमसाऽश्विना भामं सरस्वतीं भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

क्रतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।

कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥

होता यक्षदग्निं स्वाहाऽऽज्यस्य स्तोकाणां स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा
छागमश्विभ्यां स्वाहा भेषं सरस्वत्यै स्वाहर्षभमिन्द्राय सिंहाय
सहसेन्द्रियं स्वाहाऽग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रं
सुत्रामाणं सवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा वनस्पतिं ग्रियं पाथो
न भेषजं स्वाहा देवां आज्यपान्तस्वाहाऽग्निं होत्राज्जुषाणो अग्निर्भेषजं
पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वियन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिष्कृता ।

समधातां सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥

[२.६.११; १३]—

होता यक्षदश्विना सरस्वतीमिन्द्रं सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणञ्छागैर्न
मेवैर्ऋषभैः सुताः शण्यैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परि-
ष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुञ्चुतस्तानश्विना

सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां सौम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु वियन्तु
सोमं होतर्यज ॥

^१अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्विया सरस्वती ।

आ शुक्रमासुरादसु मधमिन्द्राय जग्निरे ॥

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।

स बिभेद बलं मधं नमुचावासुरे सचा ॥

तमिन्द्रं पशवः सचाऽश्विनोभा सरस्वती ।

दधाना अम्यनूषत हविषा यज्ञमिन्द्रियम् ॥

^२य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ।

स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्वत ॥

सविता वरुणो दधयजमानाय दाशुषे ।

आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।

सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥

^३अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।

हविषेन्द्रं सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा ।

सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मेसु नोऽवत ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुधा सरस्वती ।

स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥

[२.६.१४]—

^४देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधु-
रिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधु-
रिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

१. त्रिपशुयागे वपायागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः । २. पशुपुरोडाशयागस्य याज्या-
पुरोनुवाक्याः । ३. हविर्यागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः । ४. त्रिपशुयागेऽनुयाजप्रेषाः । अनुयाजयाज्या
निरुद्धपशुवत् ।

देवी उषासावश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । बलं न वाचमास्य उषाभ्यां
दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवी जोष्ट्री अश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां
दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रः सरस्वत्यश्विना भिषजाऽवत । शुक्रं
न ज्योतिः स्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥
देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना । वषट्कारैः सरस्वती त्विषि
न हृदये मतिः होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः सरस्वत्यश्विना भारतीडा । शूषं न मध्ये नाभ्या-
मिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देव इन्द्रो नराशः सस्त्रिवरुथः सरस्वत्याऽश्विभ्यामीयते रथः । रेतो न
रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु
यज ॥

देव इन्द्रो वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽश्विभ्याम् । सरस्वत्याः सुपिप्पल इन्द्राय
पच्यते मध्वोजो न जूतिमृषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि
वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्याः स्योनमिन्द्र
ते सद ईशायै मन्युः राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य
वियन्तु यज ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृदेवान् यक्षद्यथायथम् । होताराविन्द्रमश्विना वाचा
वाचः सरस्वतीमग्निः सोमः स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो
भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपा इष्टो अग्निरग्निना होता
होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिः स्वधां वसुवने वसुधेयस्य
वियन्तु यज ॥

[२.६.१५]—

अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं सुतासुती यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरो-
डाशान् गृह्णन् ग्रहान् बभ्रन्नश्विभ्यां छागः सरस्वत्या इन्द्राय बभ्रन्त्सर-

स्वत्यै मेषमिन्द्रायाऽश्विम्यां बभ्रमिन्द्रायर्षभमश्विम्यां सरस्वत्यै सूपस्थां
अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विम्यां छागेन सरस्वत्या इन्द्राय सरस्वत्यै मेषे-
णेन्द्रायाऽश्विम्यामिन्द्रायर्षभेणाऽश्विम्यां सरस्वत्या अक्षस्तान् मेदस्तः
प्रति पचताऽग्रभीषुरवीवृधन्त ग्रहैरपातामश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा
सोमान्सुराम्ण उपो उक्थामदाः श्रौद्रिमदा अदन्नवीवृधन्ताऽऽङ्गूषै-
स्त्वामद्यर्ष आर्षेयर्षीणां नपादवृणीताऽयं सुतासुती यजमानो बहुभ्य
आसंगतेभ्यः । एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देवदाना-
न्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय
प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥

[२.६.१६]—

‘उशन्तस्त्वा हवामहे.... ॥ आ नो अग्ने सुकेतुना.... ॥ त्वं सोम महे
भगम्.... ॥ त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा.... ॥ त्वया हि नः पितरः
सोम पूर्वे.... ॥ त्वं सोम पितृभिः संविदानः.... ॥ बर्हिषदः पितर
उत्त्यर्वाक्.... ॥ आऽहं पितृन्सुविदत्रां अविस्ति.... ॥ उपहूताः पितरः
सोम्यासः.... ॥ अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत.... ॥
अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नराशंसे सोमपीथं य आशुः ।
ते नो अर्वन्तः सुहवा भवन्तु शं नो भवन्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
ये अग्निष्वात्ता येऽनग्निष्वात्ता अहोमुचः पितरः सोम्यासः ।
परेऽवरेऽमृतासो भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान् ॥
वान्यायै दुग्धे जुषमाणाः करम्भमुदीराणा अवरे परे च ।
अग्निष्वात्ता ऋतुभिः संविदाना इन्द्रवन्तो हविरिदं जुषन्ताम् ॥
यदग्ने कव्यवाहन.... ॥ त्वमग्र ईडितो जातवेदः.... ॥ मातली कव्यै-
र्यमो अङ्गिरोभिः.... ॥
ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्रावृधः स्तोमतष्टासो अकैः ।
आऽग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्धर्मसद्भिः ॥
हव्यवाहमजरं पुरुप्रियमग्निं घृतेन हविषा सपर्यन् ।
उपासदं कव्यवाहं पितृणां स नः प्रजां वीरवतीं समृण्वतु ॥

[२.६.१७-१८]—

होता यक्षदिडस्पदे समिधानं महद्यशः सुषमिद्धं वरेण्यम् । अग्निमिन्द्रं वयोधसं गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

समिद्धो अग्निः समिधा सुषमिद्धो वरेण्यः ।

गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविगौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षच्छुचिव्रतं तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे । शुचिमिन्द्रं वयोधसमुष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाच्च सरस्वती ।

उष्णिक् छन्द इन्द्रियं दित्यवाह् गौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरिड्यः सहः । सोममिन्द्रं वयोधसमनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

इडाभिरग्निरिड्यः सोमो देवो अमर्त्यः ।

अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षत्सुबर्हिषदं पूषण्वन्तममर्त्यः सीदन्तं बर्हिषि प्रिये । अमृतेन्द्रं वयोधसं बृहतीं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

सुबर्हिरग्निः पूषणाः स्तीर्णवर्हिरमर्त्यः ।

बृहती छन्द इन्द्रियं पञ्चाविगौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षद्वयचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । ब्रह्माण इन्द्रं वयोधसं पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।

पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाह् गौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षत्सुपेशसे सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते । विश्वमिन्द्रं वयोधसं त्रिष्टुभं छन्द इन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्यः ।

त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रियं पष्ठवाह् गौर्वयो दधुः ॥

१. वायोधसपञ्चयागे प्रयाजप्रेषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः प्रैषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण । एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः ।

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी । सयुजेन्द्रं
वयोधसं जगतीं छन्द इहेन्द्रियमनइवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य
होतर्यज ॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ।

जगती छन्द इहेन्द्रियमनइवान् गौर्वयो दधुः ॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्त्रो देवीर्हिरण्ययीभारतीर्बृहतीर्महीः । पतिमिन्द्रं
वयोधसं विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥
तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।

विराद् छन्द इहेन्द्रियं धेनुगौर्न वयो दधुः ॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि विभ्रतं पृथक् । पुष्टिमिन्द्रं
वयोधसं द्विपदं छन्द इहेन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥
त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।

द्विपाच्छन्द इहेन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥

होता यक्षच्छतक्रतुं हिरण्यपर्णमुक्थिनं रशनां विभ्रतं वशिम् । भगमिन्द्रं
वयोधसं ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य
होतर्यज ॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।

ककुच्छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्रौर्न वयो दधुः ॥

होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविम् । क्षत्रमिन्द्रं
वयोधसमतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहद्वषभं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य
होतर्यज ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।

अतिच्छन्दाश्छन्द इन्द्रियं बृहद्वषभो गौर्वयो दधुः ॥

[२.६.१९]—

वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् ।

रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् ।

बृहता यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

वर्षाभिर्ऋतुनाऽऽदित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतम् ।

वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

शारदेनर्तुना देवा एकविंश ऋभवः स्तुतम् ।

वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

हेमन्तेनर्तुना देवा मरुतस्त्रिणवे स्तुतम् ।

बलेन शक्ररीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

शैशिरेणर्तुना देवास्त्रयस्त्रिंशेऽमृतं स्तुतम् ।

सत्येन रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

[२.६.२०]—

देवं बर्हिर्निद्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयद्वायत्रिया छन्दसेन्द्रियम् । तेज इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवीद्वारो देवमिन्द्रं वयोधसं देवीर्देवमवर्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

देवी देवं वयोधसमुषे इन्द्रमवर्धतामनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियम् । वाचमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवी जोष्टी देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियं श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवी ऊर्जाहुती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियं शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवा देवमवर्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वियन्तु यज ॥

१. पशुपुरोडाशयागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये । २. हविर्यागस्य याज्यापुरोनुवाक्ये ।

३. वायोधसपशुयागेऽनुयाजप्रैषाः । अनुयाजयाज्यां निरूढपशुवत् ।

देवो नराशंसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । विराजा छन्दसेन्द्रियं रेत इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

चरकसौत्रामणी

तैसं [१.८.२१]—

स्वार्द्धी त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणाऽमृताममृतेन सृजामि सः सोमेन ॥

सोमोऽस्यश्चिभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥

पुनातु ते परिस्तुतः सोमः सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥

वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं विपूय ।

इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्ति न जग्मुः ॥

तैत्रा [१.४.२]—

नाना हि वां देवहितः सदो मितं मा सः सृक्षार्थां परमे व्योमन् ।

सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिःसीः स्वां योनिमाविशन् ॥

यदत्र शिष्टः रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।

अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमः राजानमिह भक्षयामि ॥

द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।

ताभ्यामिदं विश्वं भुवनः समेत्यन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥

यस्ते देव वरुण गायत्रछन्दाः पाशस्तं त एतेनाऽवयजे ॥ यस्ते देव

वरुण त्रिष्टुप्छन्दाः पाशस्तं त एतेनाऽवयजे ॥ यस्ते देव वरुण जगती-

छन्दाः पाशस्तं त एतेनाऽवयजे ॥

तैसं [१.८.२१]—आश्विनं धूम्रमा लभते सारस्वतं मेषमैन्द्रमृषभम् । ऐन्द्रमेका-
दशकपालं निर्वपति सावित्रं द्वादशकपालं वारुणं दशकपालम् । सोमप्रतीकाः पितरस्तृण्युत ।
वडबा दक्षिणा ॥

तैत्रा [१.८.५-६]—

इन्द्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं परापतत् । स यत्प्रथमं निरष्टीवत् तत् कलम-
भवत् । यद् द्वितीयम् । तद्वदरम् । यत्तृतीयम् । तत्कर्केन्दु । यन्नस्तः । स सि५ हः । यदक्ष्योः ।
स शार्दूलः । यत्कर्णयोः । स वृकः । य ऊर्ध्वः । स सोमः । याऽवाची । सा सुरा । त्रयाः
सक्तवो भवन्ति० त्रयाणि लोमानि० त्रयो ग्रहाः० सीसेन क्लीबाच्छष्पाणि क्रीणाति० स्वाद्वीं
त्वा स्वादुना इत्याह० सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व इत्याह०
तिस्रः स५ सृष्टा वसति० पुनातु ते परिस्सुतम् इति यजुषा पुनाति व्यावृत्त्यै । पवित्रेण
पुनाति० वायुः पूतः पवित्रेण इति नैतया पुनीयात्० अतिपवितस्यैतया पुनीयात् । कुविदङ्ग
इत्यनिरुक्त्या प्राजापत्यया गृह्णाति० एकयर्चा गृह्णाति० आश्विनं धूम्रमालभते० सारस्वतं
मेषम्० ऐन्द्रमृषभम्० एकयूप आलभते० नैतेषां पशूनां पुरोडाशा भवन्ति । ग्रहपुरोडाशा
ह्येते । युव५ सुराममश्विना इति सर्वदेवत्ये याज्यानुवाक्ये भवतः० ब्राह्मणं परिक्रीणीयादुच्छेष-
णस्य पातारम्० यदि ब्राह्मणं न विन्देत् । वल्मीकवपायामवनयेत्० नानादेवत्याः पशवश्च
पुरोडाशाश्च भवन्ति समृद्धयै । ऐन्द्रः पशूनामुत्तमो भवति । ऐन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमः०
पुरस्तादनूयाजानां पुरोडाशैः प्रचरति० ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपति० सावित्रं द्वादशकपालम्०
वारुणं दशकपालम्० वडबा दक्षिणा० बार्हस्पत्यं पशुं चतुर्थमतिपवितस्याऽऽलभते० पुरोडाश-
वानेष पशुर्भवति । न ह्येतस्य ग्रहं गृह्णन्ति । सोमप्रतीकाः पितरस्तृण्युत इति शतातृण्णाया५
समवनयति० दक्षिणेऽग्नौ जुहोति० हिरण्यमन्तरा धारयति । पूतामेवैनां जुहोति । शतमानं
भवति० यत्रैव शतातृण्णां धारयति । तन्निदधाति प्रतिष्ठित्यै । पितॄन् वा एतस्येन्द्रियं वीर्यं
गच्छति । य५ सोमोऽतिपवते । पितॄणां याज्यानुवाक्याभिरुपतिष्ठते० तिसृभिरुपतिष्ठते०
अध्वर्युर्होता ब्रह्मा । त उपतिष्ठन्ते० ॥

चरकसौत्रामणीहौत्रम्

तैत्रा [१.४.२]—

युव५ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥

१. ग्रहाणां याज्यापुरोनुवाक्ये ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्राऽवतं कर्मणा द॑सनाभिः ।
 यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मधवन्नमीष्णात् ॥
 १अहाव्यग्रे हविरास्ये ते सुचीव घृतं चमू इव सोमः ।
 वाजसनि॑ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥
 यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशामेषा अवसृष्टास आहुताः ।
 कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मर्तिं जनय चारुमग्नये ॥

कौकिलसौत्रामणी

मैसं [३.११.७]—

परीतो पिञ्चता सुतं.... ॥ सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व.... ॥ पुनातु ते
 परिस्त्रुतं.... ॥ वायुः पूतः पवित्रेण प्राक्सोमः.... ॥ वायोः पूतः पवित्रेण
 प्रत्यक्सोमः.... ॥ ब्रह्म क्षत्रं पवते सुरायाः सोमः.... ॥ कुविदङ्ग
 यवमन्तः.... ॥ नाना हि वां देवहितं.... ॥ या व्याघ्र॑ विषूचिकोभौ.... ॥

[३.११.६-७]—

१सोमो राजाऽमृत॑ सुत ओषधीनामपा॑ रसः । ऋतेन सत्यमिन्द्रिय॑
 विपान॑ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥
 अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुड्डाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रिय॑
 विपान॑ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियं मधु ॥
 अद्भ्यः सोम॑ व्यपिबच्छन्दोभिर्ह॑सः शुचिषत् ।
 ऋतेन सत्यमिन्द्रियं.... ॥
 अन्नात्परिस्त्रुतो रसं ब्रह्मणा क्षत्र॑ व्यपिबत् ।
 ऋतेन सत्यमिन्द्रियं.... ॥
 रेतो मूत्रं विजहाति जहाति जन्मना ।
 ऋतेन सत्यमिन्द्रियं.... ॥
 दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाश्रद्धा॑
 सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं.... ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं.... ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसः शुक्रेण ॥

सुरावन्तं बर्हिषदं.... ॥

यस्ते रसः संभृता ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरायाः सुतस्य ।

तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विना इन्द्रमग्निम् ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय । ॥

यदत्र शिष्टः रसिनः सुतस्य यमस्येन्द्रो अपिबञ्शचीभिः । अहं तमस्य....॥

[३.११.८]—

देवस्य त्वा सवितुः हस्ताभ्यामाददे ॥ त्रया देवा एकादश देवा
देवैरवन्तु त्वा ॥ प्रथमास्त्वा द्वितीयैरभिषिञ्चन्तु द्वितीयास्त्वा तृतीयै-
स्तृतीयास्त्वा सत्येन सत्यं त्वा ब्रह्मणा ब्रह्म त्वा यजुर्मिर्यजूंषि त्वा सामभिः
सामानि त्वा ऋग्भिर्ऋचस्त्वा पुरोनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्यास्त्वा याज्याभि-
र्याज्यास्त्वा वषट्कारैर्वषट्कारास्त्वाऽऽहुतिभिरभिषिञ्चन्त्वाहुतयस्ते कामा-
न्तसमर्धयन्त्वसा अश्विनोस्त्वा तेजसा ब्रह्मवर्चसायाऽभिषिञ्चामि सर-
स्वत्यास्त्वा वीर्येण यशसेऽन्नाद्यायाऽभिषिञ्चामीन्द्रस्य त्वेन्द्रियेणौजसे
बलायाऽभिषिञ्चामि ॥ भूः स्वाहा ॥

शिरो^१ मे श्रीर्यशो मुखं....॥ अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ बाहू मे
बलमिन्द्रियं.... ॥ पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरं.... ॥ नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं.... ॥
लोमानि प्रयतिर्मम । ॥ जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धीरोऽस्मि.... ॥

प्रति ब्रह्मन् प्रतितिष्ठामि क्षत्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु ।

प्रति प्रजायां प्रतितिष्ठामि पृष्ठे प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्

द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥

[३.११.९]—

सीसेन तन्त्रं मनसा.... ॥ तदस्य रूपममृतं शचीभिः.... ॥ तदश्विना
भिषजा पेशो अन्तरम् । अस्थि मज्जानं मासरं.... ॥ सरस्वती मनसा
पेशलं.... । रसं परिस्रुतः.... ॥ पयसः शुक्रममृतं जनयन्त रेतः ।
अपाऽमर्ति दुर्मर्ति बाधमाना ऊर्ध्वं वातासन्वं तदारात् ॥ इन्द्रः

सुत्रामा.... ॥ आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः.... ॥ कुम्भो
 वनिष्ठुर्जनिता.... ॥ प्लाशिव्यक्तः शतधारः.... ॥ मुखं सदस्य शिरा
 इत्सतेन सन्त्सरस्वती । चप्यं न.... ॥ अश्विभ्यां चक्षुरमृतं हविषा
 घृतेन । ॥ अविर्न मेषो नसि वीर्याय.... ॥ इन्द्रस्य रूपमृषभः.... ।
 यवैर्न बर्हिर्भुवि सारधं मुखे ॥ आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य व्याघ्र-
 लोम । ॥ अङ्गैरात्मानं भिषजा शुक्रं न ज्योतिरमृतं दधाना ॥
 सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः.... ॥ तेजः पशूनां हविरिन्द्रियावत्
 सरस्वती.... ॥

[३.११.१०]—

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।

पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्रवै ॥

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण व्यश्रवै ॥

अग्रा आयूषि पवसे.... ॥ पवमानः स्वर्जनः.... ॥

पुनन्तु मा देवजनाः.... ।

पुनन्तु विश्वा भूता मा जातवेदः पुनाहि मा ॥

पवमानः पुनातु मा ऋत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनाहि विश्वतः ॥

पवित्रेण पुनाहि मा.... ॥ यत्ते पवित्रमर्चिषि.... ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्या बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः । ॥

वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु वातः प्राणेनेशिरो मयोभूः ।

द्यावापृथिवी पयसा पयोभिर्ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥

बृहद्भिः सवितस्त्रिभिर्वर्षिष्ठैर्देव मन्मभिः । अग्ने दक्षैः पुनीमहे ॥

ये समानाः समनसः पितरः.... ॥ ये समानाः समनसो जीवाः.... ॥

द्वे स्त्रुती अमृणवं पितृणाम्.... ॥

इदं हविः प्रजननं.... । आत्मसनि प्रजासनि क्षेत्रसनि पशुसनि लोक-

सन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे कृणोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धेहि ॥

यद्देवा देवहेडनं.... ॥ यदि स्वपन् यदि जाग्रदेनासि.... ॥ यदि दिवा

यदि.... ॥ धाम्नोधाम्नो राजन्.... ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये.... ॥

पवित्रमसि यज्ञस्य पवित्रं यजमानस्य । तन्मा पुनातु सर्वतो विश्वस्मादेव-
किल्बिषात्सर्वस्मादेवकिल्बिषात् ॥

द्रुपदादिवेन्मुमुक्षुः विश्वे मुञ्चन्तु मैनसः ॥

समावृतत्पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभुं कामं
व्यशीय भूः स्वाहा ॥

कौकिलसौत्रामणीहौत्रम्

मैसं [३.११.१]—

१समिद्धा इन्द्र उषसामनीके.... ॥ नराशंसः प्रति शूरो मिमानः.... ॥
इडितो देवैर्हरिवां अभिष्टिः.... । पुरंदरो गोत्रभृद्ब्रजबाहुरायातु.... ॥
जुषाणो बर्हिर्हरिवाक्ना इन्द्रः प्राचीनं सीदात्प्रदिशा पृथिव्याः । उरुप्रथाः
प्रथमानं.... ॥ इन्द्रं दुरः कवष्यः वृषाणं यन्ति जनयः सुपत्नीः ।
.... ॥ उषासानक्ता बृहती सवयन्ती देवानां.... ॥ दैव्या मिमाना
मनसा पुरुत्रा होतारा इन्द्रं.... ॥ तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमानाः.... ॥ त्वष्टा
दधदिन्द्राय शुष्मं.... ॥ वनस्पतिरवसृष्टो न स्वदातु हव्यं मधुना
घृतेन ॥ स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरा इन्द्रः.... । घृतमुषा मनसा हव्यमुन्द-
न्त्स्वाहाकृतं जुषतां हव्यमिन्द्रः ॥

[४.१४.१८]—

२आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां.... ॥ विवेष यन्मा धिषणा जजान.... ॥
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि.... ॥ सत्यमित्तन्न त्वावं अन्यः.... ॥ प्र-
ससाहिषे पुरुहूत शत्रून्.... ॥ स शेवृधमधिधा द्युम्नमस्मे.... ॥

[३.११.२-३]—

३होता यक्षत्समिधाऽग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रं सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः

१. ऐन्द्रपशुप्रयाजयाज्याः । एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः । ऐन्द्रपशु-
प्रयाजप्रेषा मैत्रायणीसंहितायां नोपलभ्यन्ते । तैत्रा-अन्तर्गताः प्रेषाः ७०४ पृष्ठे द्रष्टव्याः । २. ऐन्द्र-
पशुयागे वपापुरोडाशहविषां याज्यापुरोनुवाक्याः । ३. त्रिपशुयागे प्रयाजप्रेषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः
प्रेषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण । एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः ।

कुवलैर्भेषजं मधु शर्षपैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु
~~व्यन्त्राज्यस्य होतर्यज ॥~~

समिद्धो अग्निरश्विना.... ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषः पथा मधुमदाभरन् वेत्वाज्यस्य
 होतर्यज ॥

तनूपा भिषजा सुते पथिभिर्वह ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नग्रहुं पतिं सुरायाः चन्द्र्यश्विनोर्वपा
 वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नग्रहुम् । ॥

होता यक्षदिडेडितः भेषजं यवैः होतर्यज ॥

आजुह्वाना सरस्वती । इडाभिरश्विना इषं.... ॥

होता यक्षद्वर्हिर्गृणम्रदा भिषङ्णासत्या भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः
 होतर्यज ॥

अश्विना नमुचेः सुतं.... ॥

होता यक्षद् दुरो दिशः अश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुधे
 दुहे धेनुः सरस्वती शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः होतर्यज ॥

कवप्यो न व्यचस्वती.... । इन्द्रो न रोदसी उमे दुहे.... ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना संजानाने सुपेशसा समञ्जाते
 सरस्वत्या वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥

उषासा नक्तमश्विना.... ॥

होता यक्षद्वैव्या होतारा होतर्यज ॥

पातं नो अश्विना दिवा.... ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न रूपमिन्द्रः सरस्वती महा इन्द्राय दुहे
 होतर्यज ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वती इन्द्रायाऽऽसुषुवुर्मदम् ॥

होता यक्षत्त्वष्टारं रूपकृतं सुपेशसं वृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना
 भिषजं न सरस्वतीमोजो न सुराया भेषजं वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥
 अश्विना भेषजं मधु.... ॥

होता यक्षद्वनस्पति० शमितार० शतक्रतुं वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः..... ॥

होता यक्षदग्नि० स्वाहाऽऽज्यस्य स्तोकानां सहस इन्द्रियं भेषजैः
स्वाहा सोममिन्द्रियैः स्वाहेन्द्रं पाथो न भेषजैः स्वाहा देवा आज्यपा
जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः होतर्यज ॥

गोभिर्न सोममश्विना.... परिस्रुता । ॥

[३.११.४]—

^१अश्विना हविरिन्द्रियं मधमिन्द्राय जग्निरे ॥ यमश्विना सरस्वती
बलं मधं नमुचा आसुरे सचा ॥ तमिन्द्रं पशवः सचा यज्ञ इन्द्रियम् ॥
य^२ इन्द्र इन्द्रियं दधुः ॥ सविता वरुणो दधत् ॥ वरुणः
क्षत्रमिन्द्रियं यज्ञमाशत ॥

^३युव० सुराममश्विना नमुचा आसुरे सचा ।

विपिपाना सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥

^४होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न भेषैर्ऋषभैः
सुताः शष्पैर्न तोक्मभिलाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिस्रुता शुक्राः
पयस्वन्तोऽमृताः ग्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रो जुषन्ता०
सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्ता० व्यन्तु होतर्यज ॥

^५पुत्रमिव पितरा अश्विनोमेन्द्राऽऽवधुः काव्यैर्द० सन्नाभिः ।

यत् सुराम० व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मधवन्नभिष्णक् ॥

^६अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।

हविषेन्द्र० सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा ।

सरस्वती हविष्मतीन्द्रं कर्मस्ववतु ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुधा सरस्वती ।

स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥

१. त्रिपशुवपायागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः । तैत्रा-अन्तर्गतः प्रैषः ७०९ पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

२. त्रिपशुपुरोडाशयागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः । ३. ग्रहाणां पुरोनुवाक्या । ४. ग्रहाणां प्रैषः ।

५. ग्रहाणां याज्या । ६. त्रिपशुहविर्यागस्य याज्यापुरोनुवाक्याः ।

‘अहाव्यग्रे हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्बीव सोमः ।
 वाजसनि० रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥
 यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्ष्णो वशा मेषा अवसृष्टासा आहुताः ।
 कौलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मर्ति जनये चारुमग्रये ॥

[३.११.५]—

‘देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रायाऽश्विना तेजो न चक्षुरक्षोर्बर्हिषा
 वेतु यज ॥
 देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्र० सरस्वती । प्राणान्न व्यन्तु यज ॥
 देवी उषासा अश्विना सुत्रामेन्द्र० सरस्वती वीता० यज ॥
 देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । श्रोत्रं न वीता० यज ॥
 देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधेन्द्र० सरस्वत्यश्विना भिषजाऽवतं वीता० यज ॥
 देवा देवानां भिषजा होतारा इन्द्रमश्विना वीता० यज ॥
 देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती शूषं न मध्ये नाम्या इन्द्राय
 व्यन्तु यज ॥
 देव इन्द्रो नराश०सस्त्रिवरूथः वेतु यज ॥
 देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरेण्यपर्णः जूतिर्वृषभो न भामं वेतु यज ॥
 देवं बर्हिर्वारितीनां ते सद ईशाया मन्युं वेतु यज ॥
 देवो अग्निः स्विष्टकृत् होतारा इन्द्रमश्विना स्विष्टो अग्निः होत्रे
 स्विष्टकृत्सहो न वेतु यज ॥

[३.११.११]—

‘समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धः त्रियविगौर्वयो दधुः ॥
 तनूनपाञ्शुचित्रतः ॥
 इडाभिरग्निरीड्यः । अनुष्टुप्छन्द इन्द्रियं पञ्चाविगौर्वयो दधुः ॥
 सुबर्हिरग्निः पूषण्वान् । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥
 दुरो देवीर्दिशो महीः । पङ्क्तिश्छन्द इन्द्रियं तुर्यवाङ् गौर्वयो दधुः ॥

१. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये । २. त्रिपञ्चनुयाजप्रेषाः । अनुयाजयाज्या निरूढ-
 पञ्चवत् । ३. वायोवसपशुप्रयाजयाज्याः । तैत्रा-अन्तर्गताः प्रेषाः ७१३ पृष्ठे द्रष्टव्याः ।

उषे यह्वी सुपेशसा अमर्त्याः । पृष्ठवाङ् गौर्वयो दधुः ॥
 दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण । जगती छन्द इन्द्रियं वयो दधुः ॥
 तिस्रो देवीरिडा मही भारती मरुतो विशः ।
 विराट्छन्द इन्द्रियं धेनुगौर्न वयो दधुः ॥
 त्वष्टा तुरीपो अद्भुतः । द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥
 शमिता नो वनस्पतिः । ककुप्छन्द इहेन्द्रियमृषभो गौर्वयो दधुः ॥
 स्वाहा यज्ञं वरुणः । अतिछन्दा इन्द्रियं बृहद्वशा वेहद्वयो दधुः ॥

[३.११.१२]—

वसन्तेन ऋतुना देवाः । ग्रीष्मेण ऋतुना देवाः ॥ वर्षाभिर्ऋतु-
 नाऽऽदित्याः ॥ शारदेन ऋतुना देवाः ॥ हेमन्तेन ऋतुना देवा-
 स्त्रिणवे मरुतः स्तुतम् । ॥ शैशिरेण ऋतुना देवाः ॥

चरकसौत्रामणी

मैसं [२.३.८]—

स्वार्द्धी त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेण शुक्रां शुक्रेण ।
 देवीं देवेनाऽमृताममृतेन सृजामि स० सोमेन ॥
 सोमोऽस्यश्चिभ्यां पच्यस्व.... ॥ पुनातु ते परिस्त्रुतं.... ॥ वायोः पूतः
 पवित्रेण.... ॥ कुविदङ्ग यवमन्तः ये बर्हिषा नमउक्ति न जग्मुः ॥
 उपयामगृहीतोऽस्यछिद्रां त्वाऽछिद्रेणाऽश्चिभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ एष ते
 योनिरश्चिभ्यां त्वा ॥ उपयामगृहीतोऽस्यछिद्रां त्वाऽछिद्रेण सरस्वत्यै
 जुष्टं गृह्णामि ॥ एष ते योनिः सरस्वत्यै त्वा ॥ उपयामगृहीतोऽस्यछिद्रां
 त्वाऽछिद्रेणेन्द्राय सुत्राम्णे जुष्टं गृह्णामि ॥ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
 सुत्राम्णे ॥
 यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य यमस्येन्द्रो अपिबञ्शचीभिः ।
 अहं तमस्य मनसा घृतेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥

नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा मा हिंसीष्टं स्व योनिमा-
विशन्तौ ॥

द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।

याभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

ये भक्षयन्तो न वसून्त्यानशुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।

या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां विश्वकर्मा कृणोतु ॥

अयज्ञियान् यज्ञियान् मन्यमानः प्राणस्य विद्वान्त्समरे न धीरः ।

एनो महच्चक्रवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्रमुञ्चा स्वस्तये ॥

यजमानमृषया एनसाऽऽहुर्विहाय प्रजामनुतप्यमानाः ।

मध्व्यौ स्तोका अप तौ रराध सं नस्ताभ्यां सृजतु विश्वकर्मा ॥

मैसं [२.३.९; २.४.१-२]—

कुवल्सक्तुभिराश्विनं श्रीणाति बदरसक्तुभिरैन्द्रं कर्कन्धुसक्तुभिः सारस्वतम्० सिंहा
अर्च्युर्ध्यायति व्याघ्रौ प्रतिप्रस्थाता वृकौ यजमानः० ब्राह्मणस्य मूर्धन्त्साद्या मेध्यत्वाय० एका
पुरोरुगेका याज्या० ब्राह्मणः पाययितव्यः० आत्मना पेया० अग्नौ सर्वा होतव्याः० यदा-
हवनीये जुहुयात्० अथ यदक्षिणे जुहोति० अथ यद्विक्षारयति० शतक्षरो भवति० यत्
पितृमतीभिरनुमन्त्रयते० यत्सिः० अथ यच्चत्वारः० यदितोऽमुच्यत तौ सिंहा अभवतां
यदितस्तौ व्याघ्रौ यदितस्तौ वृकौ । यत्प्रथमं निरष्टीवत्^१ तत्कुवल्मभवद्यद् द्वितीयं तद्वदरं यत्तृतीयं
तत् कर्कन्धुर्यदधस्तात्सा सुरा । तं वा एतयाऽश्विना अयाजयतां सौत्रामण्या० सोमेनाऽति-
पुपुवानं याजयेत्० राजसूयेनाऽभिषिषिचानं याजयेत्० भूतिकामं याजयेत्० योऽलं भूत्यै
सन्न भवति० ज्योगामयाविनं याजयेत्० नाऽनार्तेन यष्टव्यमित्याहुः० तदाहुर्ग्रष्टव्यमेव०
यदाश्विनी० यत्सारस्वती० यदैन्द्री० सीसेन क्लीबात्कार्या० तदाहुः कार्या वडबा दक्षिणेति०
सृत्वरी वडबा । आश्विनं प्रथममालभन्तेऽथ सारस्वतीमथैन्द्रम् । एवमेव वपाभिश्चरति । इन्द्र
एवैषु तदधिभवति । ऐन्द्रः पुनः प्रचरतां प्रथमो भवति० ऐन्द्री वपानामुत्तमा भवति । ऐन्द्रः
पुरोडाशानां प्रथमः० प्रसवाय सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः० यदुपरिष्ठात् पुरोडाशो भवति०
सह समवत्तं भवति । सहेडामुपह्वयन्ते० यदन्यदेवत्याः पुरोडाशा भवन्त्यन्यदेवत्याः पशवः०
तस्माद्ब्राह्मणः सुरां न पिबेत्० ॥

चरकसौत्रामणीहौत्रम्

मैसं [४.१२.५]—

‘युव’ सुराममश्विना.... ॥ ‘होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र’ सुराम्णा
सोमानां पिबतु मदन्ता’ व्यन्तु होतर्यज ॥ ‘पुत्रमिव पितरौ.... ॥
‘इन्द्रः सुत्रामा स्ववं अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
तस्य वय’ सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववं इन्द्रो अस्मदाराचिद् द्वेषः सनुतयुयोतु ॥

कौकिलसौत्रामणी

कासं [३७.१८; ३८.१-५]—

स्वाद्धी त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणाऽमृताममृतेन मधुमतीं मधुमता सृजामि
सी सोमेन ॥ सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व.... ॥ परीतो विश्वता सुतं.... ॥
वायुः पूतः.... ॥ पुनातु ते परिसुतं.... ॥ ब्रह्म क्षत्रं पवते सुरया
सोमः.... ॥ कुविदङ्ग बर्हिषो नमोवृत्तिं न जग्मुः ॥ उपयामगृहीतो-
ऽस्यश्विभ्यां त्वा जुष्टं गृह्णामि ॥ उपयामगृहीतोऽसि सरस्वत्यै त्वा जुष्टं
गृह्णामि ॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय सुत्राम्णे त्वा जुष्टं गृह्णामि ॥ एष ते
योनिस्तेजसे त्वा ॥ एष ते योनिर्वीर्याय त्वा ॥ एष ते योनिर्बलाय
त्वा ॥ नाना हि वां देवकृतं हिंसीस्त्वं योनिमाविशन् ॥ उपयाम-
गृहीतोऽस्याश्विनं तेजः ॥ उपयामगृहीतोऽसि सारस्वतं वीर्यम् ॥ उप-
यामगृहीतोऽस्यैन्द्रं बलम् ॥ एष ते योनिर्मोदाय त्वा ॥ एष ते योनि-
रानन्दाय त्वा ॥ एष ते योनिर्महसे त्वा ॥ या व्याघ्रं विषूचिकोभौ
सोमं पात्वीहसः ॥ संपृचस्स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त । विपृचस्स्थ वि मा
पाप्मना पृङ्क्त ॥

सोमो राजाऽमृते सुत ऋजीषेणाऽजहान्मृत्युम् । ऋतेन.... ॥ सोममद्भ्यो

१. ग्रहाणां पुरोनुवाक्या । २. ग्रहाणां प्रैषः । ३. ग्रहाणां याज्या । ४. इन्द्रस्य
सुत्राम्णः पशुपुरोडाशस्य याज्यापुरोनुवाक्ये ।

व्यपिबच्छन्दसा ह्रीसश्शुचिषत् ॥ अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् ॥ अन्ना-
त्परिस्सुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रम् । ॥ रेतो मूत्रं विजहाति
जरायुणाऽऽवृतः ॥ वेदेन रूपे व्यपिबत् ॥ दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् ॥
दृष्ट्वा परिस्सुतो रसं ॥ सुरावन्तं बर्हिषदीं सुवीरं ॥ यस्ते रस-
स्संभृत ओषधीषु सुरया सुतस्य । ॥ यमश्विना नम्रुचेरा-
सुरादधि सरस्वत्यसनोत् ॥ यदत्र रिप्तं रसिनस्सुतस्य यदिन्द्रः ॥
अहं तदस्य ॥

पितृभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमः ॥ पितामहेभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमः ॥
प्रपितामहेभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमः ॥ अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरो-
ऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।

पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।

पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥

अग्न आर्यूषि पवसे ॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि ॥ पवित्रेण पुनीहि मा ॥ यत्ते पवित्र-
मर्चिषि । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ पवमानस्स्वर्जनः ॥ उभाभ्यां
देव सवितः मां पुनीहि विश्वतः ॥ वैश्वदेवी पुनती यस्या इमा-
स्तन्वः ॥ ये समानास्समनसः पितरः ॥ ये समानास्समनसो
जीवाः ॥ द्वे सुती अशृणवं पितृणां । ताभ्यामिदं ॥ इदी हविः
प्रजननं प्रजासनि पशुसन्त्यभयसनि लोकसनि । अग्निः प्रजां बहुलां
मे करोत्वन्नं धत्त ॥

सीसेन तन्त्रं भिषज्यम् ॥ तदस्य रूपं ददुर्देवताः ॥ तदश्विना
भिषजा मासैरः करोतरेण ॥ सरस्वती मनसा परिस्सुता
नग्रहुर्वीरः ॥ पयसा शुक्रममृतं वाती सव्वं तदारात् ॥ इन्द्र-
स्सुत्रामा ॥ अन्त्राणि स्थाली मधु पिन्वमाना ॥ कुम्भो वनिष्ठु-
र्जनिता शचीभिः ॥ मुखी सदस्य शिर इत्सतेन ॥ अश्विभ्यां
चक्षुः हविषा शृतेन । ॥ अविर्न मेषः अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
.... ॥ इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय ॥ यवा न बर्हिः सारधं

मुखात् ॥ आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम.... ॥ अङ्गान्यात्मन् भिषजा
चन्द्रेण ज्योतिः.... ॥ सरस्वती योन्यां.... । अपां रसेन वरुणेन.... ॥
तेजः पशूनां सरस्वत्या.... ॥ क्षत्रस्य नाभिरसि । क्षत्रस्य योनिरसि ॥
स्योनाऽसि सुषदाऽसि । स्योनामासीद सुषदामासीद ॥ मा त्वा हिंसीन्मा
मा हिंसीः ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामश्विनोर्भैषज्येन
तेजसे ब्रह्मवर्चसायाऽभिषिञ्चामि ॥ देवस्य त्वा हस्ताभ्यां सरस्वत्या
भैषज्येन वीर्यायाऽन्नाद्यायाऽभिषिञ्चामि ॥ देवस्य त्वा हस्ताभ्या-
मिन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ कोऽसि को नामाऽसि
कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोका३ सुमङ्गला३ सत्यराजा३न् ॥

शिरो मे श्रीः.... ॥ जिह्वा मे भद्रं.... ॥ बाहू मे बलं.... ॥ पृष्टीर्मे
राष्ट्रं.... ॥ नाभिर्मे चित्तं.... ॥ जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि.... ॥ प्रति
क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे.... ॥

प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पृष्ठे ।

प्रति द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥

त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिंशास्सुराधसः ।

बृहस्पतिप्रसूता देवस्य सवितुस्सवे ॥

देवा देवैरवन्तु मा प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयास्सत्येन सत्यं यज्ञेन
यज्ञो यजुर्भिर्यजूषि सामभिस्सामान्यृग्भिर्ऋचो याज्याभिर्याज्या वषट्कारै-
र्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान् समर्धयन्तु भूस्स्वाहा ॥ लोमानि
प्रयतिर्मम.... ॥

यद्देवा देवहेडनं.... ॥ यदि दिवा यदि नक्तं । वायुर्मा तस्मात्.... ॥
यदि जाग्रद्यदि स्वप्ने । सूर्यो मा.... ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये.... ।
यच्छूद्रे यदर्य एनश्चक्रमा वयम् । यदेकस्याऽधि धर्मेणि तस्याऽव-
यजनमसि ॥

यदापो अघ्न्या वरुणेति शपामहे । ततो वरुण नो मुञ्च ॥

अवभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयाद् ।

अव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् । उरोरा नो देव रिषस्पाहि ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तस्सं त्वा विशन्त्वोषधीरुताऽऽपः ॥
 सुमित्रा ण आप ओषधयो भवन्तु ॥ दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि
 यं च वयं द्विष्मः ॥
 द्रुपदादिव आपश्शुन्धन्तु मैनसः ॥
 उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् ।
 देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥
 प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशः प्रतियुतो वरुणस्य पाशः ॥ एधोऽस्येधिषीमहि ॥
 समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥
 अपो अद्याऽन्वचारिषं रसेन समगन्महि ।
 पयस्वानग्र आगमं तं मा सीसृज वर्चसा ॥
 समाववर्ति व्यश्रवै ॥ भूस्स्वाहा ॥

कौकिलसौत्रामणीहौत्रम्

कासं [३८.६]—

१समिद्ध इन्द्र उषसामनीके.... ॥ नराशीसः प्रति शूरो मिमानः.... ॥
 इडितो देवैर्हरिवी अभिष्टिः.... ॥ जुषाणो बर्हिर्हरिवान् इन्द्रः.... ॥ इन्द्रं
 दुरः यन्तु जनयः.... ॥ उषासानक्ता संव्ययन्ती ॥ दैव्या
 मिमाना मनसा पुरुत्रा.... ॥ तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमानाः.... ॥ त्वष्टा
 दधदिन्द्राय शुष्मं ॥ वनस्पतिरवसृष्टो स्वदाति यज्ञं ॥
 स्तोकानामिन्दुं मूर्धन् यज्ञस्य जुषती स्वाहा ॥

[३८.७]—

२आ चर्षणिग्रा वृषभो जनानां.... ॥ विवेष यन्मा धिषणा जजान.... ॥
 ती सध्रीचीरुतयो वृष्ण्यानि.... ॥ सत्यमित्तन्न त्वावी अन्यः.... ॥
 प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून्.... ॥ स शेवृधमधिधा द्युम्नमस्मे.... ॥

[३८.८]—

३समिद्धो अग्निरश्विना.... ॥ तनूपा मिषजा पथिभिर्वहान् ॥ इन्द्रायेन्दु

१. ऐन्द्रपशुप्रयाजयाज्याः । २. ऐन्द्रपशुयागे वपापुरोडाशहविषां याज्यापुरोनुवाक्याः ।
 ३. त्रिपशुप्रयाजयाज्याः ।

सरस्वती.... ॥ आजुह्वाना सरस्वती.... ॥ अश्विना नम्रुचेस्सुतं.... ॥
कवण्यो न रोदसी दुषे दुहे.... ॥ उषासा नक्तमश्विना.... ॥ पातं
नो अश्विना दिवा.... ॥ तिस्रस्त्रेधा सरस्वती.... ॥ अश्विना भेषजं
मधु^१.... ॥ गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिहृतम् । ॥

[३८.९]—

^२अश्विना हविरिन्द्रियं.... ॥ यमश्विना सरस्वती.... ॥ तमिन्द्रं पशवः
सचा.... ॥ य इन्द्र इन्द्रियं दधुः.... ॥ सविता वरुणो दधत्.... ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं.... ॥ अश्विना गोभिरिन्द्रियं.... ॥ ता नासत्या
नरा । हविष्मतीन्द्रं कर्मसु नोऽवत ॥ ता भिषजा सुकर्मणा.... ॥
^३युर्व सुराममश्विना.... । विषिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ पुत्रमिव
पितरा अश्विनोभा.... ॥ ^४यस्मिन्नश्वासः अवसृष्टा आहुताः ।
जनय चारुमग्नये ॥ अहान्यग्रे हविरास्ये ते.... ॥

[३८.१०]—

^५समिद्धो अग्निस्समिधा.... ॥ तनूनपाच्छुचित्रतः उष्णिहा छन्दः.... ॥
इडाभिरग्निरिड्यः.... ॥ सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्.... ॥ दुरो देवीर्दिशः
पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं.... ॥ उषे यह्वी इहेन्द्रियं पष्ठवाद्.... ॥ दैव्या
होतारा.... ॥ तिस्र इडा सरस्वती भारती इहेन्द्रियं ॥ त्वष्टा
तुरीपो अद्भुतः.... ॥ शमिता नो वनस्पतिः वशा वेहद्वयो दधुः ॥
स्वाहा यज्ञं वरुणः बृहद् वृषभो गौर्वयो दधुः ॥

[३८.११]—

^६वसन्तेनर्तुना.... ॥ ग्रीष्मेण देवा ऋतुना.... ॥ वर्षाभिर्ऋतुना.... ॥
शारदेनर्तुना.... ॥ हेमन्तेनर्तुना.... ॥ शैशिरेणर्तुना....^७ ॥

१. काठकसंहितायाम् 'अश्विना भेषजं मधु...' इत्यादियाज्याया अर्धर्च एवो-
पलभ्यते । मैत्रायणीसंहितायां (३.११.३) तैत्तिरीयब्राह्मणे (२.६.१२) वाजसनेयसंहितायां
(२०.६४) च सा संपूर्णोपलभ्यते । 'इन्द्रे त्वष्टा यशः अग्रियं रूपं रूपमधुः सुते' इति तस्या
उत्तरार्धः । समानपाठत्वादियमत्र प्रतीकरूपेणोद्धृता । २. त्रिपशुयागे वपापुरोडाशहविषां याज्या-
पुरोनुवाक्याः । ३. ग्रहाणां याज्यापुरोनुवाक्ये । ४. स्विष्टकृतो याज्यापुरोनुवाक्ये । ५. बायो-
धसपशुप्रयाजयाज्याः । ६. बायोधसपशुयागे वपापुरोडाशहविषां याज्यापुरोनुवाक्याः । ७. कपिष्ठल-
कठसंहितायां सौत्रामणीप्रकरणं नोपलभ्यते ॥

चरकसौत्रामणी

कासं [१२.९]—

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेण देवीं देवेन शुक्रां शुक्रेणाऽमृताममृतेन
सृजामि सी सोमेन ॥ सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व.... ॥ पुनातु ते
परिभुतं.... ॥ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्.... ॥ कुविदङ्ग बहिषो
नमोवृक्ति न जग्मुः ॥ उपयामगृहीतोऽस्यच्छिद्रां त्वाऽच्छिद्रेणाऽश्विभ्यां
जुष्टां गृह्णामि ॥ एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा ॥ उपयामगृहीतः सरस्वत्यै
जुष्टां गृह्णामि ॥ एष ते योनिस्सरस्वत्यै त्वा ॥ उपयामगृहीतः
सुत्राम्णे जुष्टां गृह्णामि ॥ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥

[१२.९-१२]—

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना इति ब्रह्मणैवैनीं सिसृजति । तिस्रो रात्रीस्सिसृष्टा वसति०
अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व इत्येताभ्यो ह्येषा देवताभ्यः पच्यते । वायुः
पूतः पवित्रेण इति व्यृद्धरयाऽतिपवितरयैतया पुनीयात् । एका पुरोरुक्० अनिरुक्ता प्राजापत्या०
तस्य यन्नस्तोऽमुच्यत तौ सिंहा अभवताम् । यदक्षिभ्यां तौ शार्दूलौ यत्कर्णाभ्यां तौ वृकौ
यदधस्तात्सा सौत्रामणी । यत्प्रथमं निरष्टीवत्१ तत्कुवलमभवच्चद्वितीयं तद्वदरं यत्तृतीयं तत्कर्कन्धु ।
तमश्विना अभिषज्यतां तमयाजयतामेतया सौत्रामण्या० एतया यजेत यी सोमोऽतिपवेत० एषैव
राजसूयेऽपि भवति० एतयैव ब्राह्मणो वा राजन्यो वा बुभूषन् यजेत० तदाहुरार्तयज्ञो वा एष
नाऽनार्त एतया यजेतेति । तदाहुर्यष्ट्यमेव० यदाश्विनः० यत्सारस्वतः० यदैन्द्रः० कुवल-
सक्तुभिराश्विनीं श्रीणाति बदरसक्तुभिरैन्द्रं कर्कन्धुसक्तुभिस्सारस्वतम्० सिंहा अर्च्युर्मनसा ध्याये-
च्छार्दूलौ प्रतिप्रस्थाता वृकौ यजमानः । सुरा भवति० ब्राह्मणस्य मृधन् सादयेत्० एका
पुरोरुगेका याज्या० सर्वहुतं जुहोति० ब्राह्मणं पाययेत्० आत्मना पेया० तत्तन्न सूक्ष्मम्०
यत्समयाऽत्येति० यदक्षिणेऽग्नौ जुहोति० यद्विधारयति० यत्पितृमतीभिरभिमन्त्रयन्ते० यत्ति-
सृभिस्तिष्ठति० यच्चत्वारः० शताक्षरा भवति० ह्यीवात्सीसेन तोकमानि क्रीणाति० वडवा
दक्षिणा सृत्वरी० आश्विनमजमालभेत सारस्वतीं मेषीमैन्द्रमृषभं वा वृष्णि वा । एवमेव वपा-
भिश्चरन्ति । यदैन्द्री वपानामुत्तमा भवति० यत्प्रचरन्त ऐन्द्रेण पुनः प्रथमेन प्रचरन्ति०
यदाश्विनः० यत्सारस्वती० ऐन्द्री वपानामुत्तमा भवत्यैन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमः० प्रसवायैव
सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः० यदुपरिष्ठात्पुरोडाशा भवन्ति० सह समवत्तं भवति । सहेडा-
मुपह्वयन्ते० यदन्यदेवत्याः पशवो भवन्त्यन्यदेवत्याः पुरोडाशाः० तस्माद्ब्राह्मणसुरां न पिबति० ॥

चरकसौत्रामणीहौत्रम्^१

कासं [१६.२१]—

^१होता यक्षद् बृहस्पतिं छागस्य वपाया मेदसो जुषती हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदश्विना छागस्य वपाया मेदसो जुषेती हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेघ्या वपाया मेदसो जुषती हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदिन्द्रं मेषस्य वपाया मेदसो जुषती हविर्होतर्त्यज ॥

[१८.२१]—

^२होता यक्षद् बृहस्पतिं छागस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेअज्राणां यवसप्रथमानीं सुमत्क्षराणीं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतश्श्रोणित-
श्शितामत^३ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवं बृहस्पतिर्जुषती हवि-
र्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदश्विना छागस्य हविष आत्तां घस्तां करत एवमश्विना जुषेती हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेघ्या हविष आवयद्वसत्करदेवीं सरस्वतीं जुषती हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदिन्द्रं मेषस्य हविष आवयद्वसत्करदेवमिन्द्रो जुषती हवि-
र्होतर्त्यज ॥

^४देवेभ्यो वनस्पते हवींषि.... ॥

^५होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाऽऽधित । यत्र

१. अत्रोद्धृते हौत्रे बृहस्पत्यश्विसरस्वतीन्द्राणां प्रेषादयः प्रोक्ताः । सामान्यतः सौत्रामणीयागे अश्विसरस्वतीन्द्राः प्रधानदेवताः । परं 'बाह्वस्पत्यं पशुं चतुर्थं सोमातिपवितस्याऽऽ-
लभते' इति तैत्तिरीयब्राह्मणवचनात् (१.८.६) बृहस्पतिरिति चतुर्थी देवताऽपि भवितुमर्हति ।
अत्रोद्धृते हौत्रे बृहस्पतिदेवता प्रथमत्वेन परिगृहीता । यद्यपि काठकसंहितायां चरकसौत्रामणी-
ब्राह्मणे बाह्वस्पत्यपशुर्न विहितः तथापि सोमातिपवितेऽयं पशुरादिमत्वेन कार्यं इति काठकसंप्रदायो-
ऽस्माद्बौत्रादनुमीयते । एवमनेन हौत्रेण चरकसौत्रामणीयागसंबन्धेन भाव्यमिति मत्वा इद-
मत्रोद्धृतम् । २. वपायागप्रेषाः । ३. '०श्रोणित०' इति मुद्रितपुस्तके । मुद्रणदोषः ? ४. हवि-
र्यागप्रेषाः । ५. वनस्पतियागस्य पुरोनुवाक्या प्रेषो याज्या च ।

बृहस्पतेऽश्वागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राऽश्विनोऽश्वागस्य हविषः
प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेघ्या हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य
मेघस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पार्थीसि यत्र देवाना-
माज्यपानां प्रिया धामानि यत्राऽग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्ये-
वोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषती हवि-
र्होतयज ॥

वनस्पते रशनयाऽभिधाय पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् ।

वहा देवत्रा दिधिषो हवींषि प्र च दातारममृतेषु वोचः ॥

१पिप्रीहि देवी उशतो यविष्ठ.... ॥

होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः प्रिया धामान्ययाद् सोमस्य प्रिया
धामान्ययाद् बृहस्पतेऽश्वागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडश्विनोऽश्वागस्य
हविषः प्रिया धामान्ययाद् सरस्वत्या मेघ्या हविषः प्रिया धामान्यया-
डिन्द्रस्य मेघस्य हविषः प्रिया धामान्ययाड वनस्पतेः प्रिया पार्थीस्ययाड
देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं
महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अश्वराज्जातवेदा जुषती हवि-
र्होतयज ॥

आ देवानाम्.... ॥ २इडामग्ने.... ॥

३अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्य जातवेदः ।

त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥

कौकिलसौत्रामणी

वासं [२०.२४-२६]—

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।

व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाऽग्निना ॥

१. स्विष्टकृद्यागस्य पुरोनुवाक्या प्रेषो याज्या च । २. स्विष्टकृतो वैकल्पिक्यौ याज्या-
पुरोनुवाक्ये ।

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥

[१९.१]—स्वार्द्धी त्वा स्वादुना.... ॥ सोमोऽस्यश्चिभ्यां पच्यस्व.... ॥

[२०.२७]—

अंशुना ते अंशुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥

[१९.२]—परीतो षिञ्चता सुतं.... ॥

[२०.२८]—

सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च ।
सुरायै बध्नै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥

[१९.३-५]—

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्ग सोमः....॥ वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्....॥
पुनाति ते परिष्ठुतं.... ॥ ब्रह्म क्षत्रं पवते.... ॥

[२०.३१]—

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आनय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥

[१९.६]—

कुविदङ्ग यवमन्तः नमउक्तिं यजन्ति ॥ उपयाम गृहीतोऽस्यश्चिभ्यां
त्वा ॥ उपयाम गृहीतोऽसि सरस्वत्यै त्वा ॥ उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा
सुत्राम्णे ॥ एष ते योनिस्तेजसे त्वा ॥ एष ते योनिर्वीर्याय त्वा ॥
एष ते योनिर्बलाय त्वा ॥

[२०.३३]—

उपयाम गृहीतोऽस्यश्चिभ्यां त्वा ॥ उपयाम गृहीतोऽसि सरस्वत्यै त्वा ॥
उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ एष ते योनिरश्चिभ्यां त्वा ॥
एष ते योनिः सरस्वत्यै त्वा ॥ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥

[१९.७-९]—

नाना हि वां स्वां योनिमाविशन्ती ॥ उपयाम गृहीतोऽस्याश्चिभ्यां.... ॥
एष ते योनिर्मोदाय त्वा ॥ एष ते योनिरानन्दाय त्वा ॥ एष ते योनि-
र्महसे त्वा ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥

बलमसि बलं मयि धेहि ॥ ओजोऽस्योजो मयि धेहि ॥ मन्युरसि मन्युं
मयि धेहि ॥ सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

[१९.७२-७९]—

सोमो राजाऽमृतं सुतं.... ॥ अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्.... ॥ सोममद्भ्यो
व्यपिबत्.... ॥ अन्नात्परिस्तुतो रसं.... ॥ रेतो मूत्रं विजहाति.... ॥
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्.... ॥ वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः.... ॥
दृष्ट्वा परिस्तुतो रसं.... ॥

[१९.१०-३४]—

या व्याघ्रं विषूचिका.... ॥
यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
एतत्तदग्रे अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया ॥
संपृचः स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त । विपृचः स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥
देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाऽश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायैन्द्रियाणि दधन्तः ॥
दीक्षायै रूपं शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमांशवो मधु ॥
आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्रहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरा सुता ॥
सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्तुत् परिषिच्यते ।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रं सरस्वत्या ॥
आसन्दी रूपं राजासन्धौ वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥
वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥
हविर्धानं यदश्विनाऽऽग्नीध्रं यत्सरस्वती ।
इन्द्रायैन्द्रं सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥
प्रैषेभिः प्रैषानामोत्याग्नीमिराग्नीर्यज्ञस्य ।
प्रयाजेभिरनुयाजान् वषट्कारेभिराहुतीः ॥

पशुभिः पशूनामोति पुरोडाशैर्हवींष्या ।
 छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥
 धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
 सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥
 धानानां रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
 सक्तूनां रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥
 पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।
 सोमस्य रूपं वाजिनं सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥
 आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः ।
 यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥
 अर्धऋचैरुक्थानां रूपं पदैरामोति निविदः ।
 प्रणवैः शस्त्राणां रूपं पयसा सोम आप्यते ॥
 अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यंदिनम् ॥
 वैश्वदेवं सरस्वत्या तृतीयमाप्तं सवनम् ॥
 वायव्यैर्वायव्यान्यामोति सतेन द्रोणकलशम् ।
 कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीरामोति ॥
 यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
 छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नाऽवभृथ आप्यते ॥
 इडाभिर्मक्षानामोति सूक्तवाकेनाऽऽशिषः ।
 शंयुना पत्नीसंयाजान् समिष्टयजुषा स स्था ॥
 व्रतेन दीक्षामामोति दीक्षयाऽऽमोति दक्षिणाम् ।
 दक्षिणा श्रद्धामामोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥
 एतावद्रूपं यज्ञस्य यदेवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
 तदेतत्सर्वमामोति यज्ञे सौत्रामणीसुते ॥
 सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं.... ॥ यस्ते रसः संभृत ओषधीषु.... ॥
 यमश्विना नमुचेरासुरादधि.... ॥

[१९.३५-४८; ५२-६०]—

यदत्र रिप्तं रसिनः सुतस्य.... ॥ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः
 स्वधा नमः ॥ अक्षन् पितरोऽभीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः
 शुन्धध्वम् ॥ पुनन्तु मां पितरः सोम्यासः.... ॥ अग्रं आयुं षि पवसे.... ॥
 पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
 पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥
 पवित्रेण पुनीहि मा.... ॥ यत्ते पवित्रमर्चिष्यसे ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥
 पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण.... ॥
 उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥
 वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः । ॥
 ये समानाः समनसः पितरः.... ॥ ये समानाः समनसो जीवाः.... ॥
 द्वे सृती अशृणवं.... । ताभ्यामिदं.... ॥
 इदं हविः प्रजननं लोकसन्त्यभयसनि । अग्निः प्रजां रेतो
 अस्मासु धत्त ॥
 त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् ।
 तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥
 त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
 बन्वन्नवातः परिधी २ ॥ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥
 त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ ।
 तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
 बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चक्रुमा जुषध्वम् ।
 त आगताऽवसा शंतमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ॥
 आऽहं पितृन्सुविदत्राँ २ ॥ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
 बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहाऽऽगमिष्ठाः ॥
 उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
 त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

१. एतदादि नवर्चमध्वर्युयजमानं वाचयतीति कात्याश्रौ १९.३.२४ । वासं
 १९.४९-५१; ६१-७१ मन्त्राः कात्यायनेन सौत्रामणीप्रकरणे न विनियुक्ताः ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
 अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥
 अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
 अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥
 ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
 तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥

[२०.१-४]—

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ॥ मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥
 निषसाद धृतव्रतः.... ॥ मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥ देवस्य त्वा
 हस्ताभ्यामश्विनोभैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाऽभिषिञ्चामि ॥ देवस्य
 त्वा हस्ताभ्यां सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायाऽन्नाद्यायाऽभिषिञ्चामि ॥
 देवस्य त्वा हस्ताभ्यामिन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि-
 षिञ्चामि ॥ कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ॥ सुश्लोक सुमङ्गल
 सत्यराजन् ॥

[१९.८०-९५]—

सीसेन तन्त्रं मनसा.... ॥ तदस्य रूपममृतं.... ॥ तदश्विना भिषजा
 अन्तरम् । ॥ सरस्वती मनसा पेशलं वसु.... ॥ पयसा शुक्रममृतं
 जनयन्त रेतः । वातं सव्वं तदारात् ॥ इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन
 सत्यं.... ॥ आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः.... ॥ कुम्भो वनिष्ठु-
 र्जनिता शचीभिः.... ॥ प्राशिर्व्यक्तः कुम्भी.... ॥ मुखं सदस्य
 शिर इत्सतेन.... । चप्यं न पायुर्भिषगस्य.... ॥ अश्विभ्यां चक्षुरमृतं
 ग्रहाभ्यां.... । पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि.... ॥ अविर्न मेषो नसि
 वीर्याय.... ॥ इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय.... ॥ आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य
 लोम व्याघ्रलोम । ॥ अङ्गान्यात्मन् भिषजा अमृतं दधानाः ॥
 सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः.... ॥ तेजः पशूनां हविरिन्द्रियावत्.... ॥

[२०.५-१०]—

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं.... ॥ जिह्वा मे भद्रं मित्रं मे सहः ॥ बाहू
 मे बलं.... ॥ पृष्टीर्मे राष्ट्रं ग्रीवाश्च श्रोणी.... ॥ नाभिर्मे चित्तं.... ॥
 प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि.... ॥

[२०.३२; ३०]—

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नुतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥

[२०.११-१२]—

त्रया देवा एकादश.... ॥ प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैः ऋचः पुरोनु-
वाक्याभिः पुरोनुवाक्या याज्याभिः.... ॥

[२०.३४-३५]—

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥
अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राग्णा कृतस्य ।
उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥

[२०.१३-२३]—

लोमानि प्रयतिर्मम.... ॥ यद्देवा देवहेडनं.... ॥ यदि दिवा यदि
नक्तं.... ॥ यदि जाग्रद्यदि स्वप्ने.... ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये.... ॥
यदापो अघ्न्या इति.... ॥
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुताऽऽपः ॥
सुमित्रिया न आपः.... ॥ दुर्मित्रियास्तस्मै.... ॥
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । ॥
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । ॥
अपो अद्याऽन्वचारिष् रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्ने.... ॥ एधोऽस्येधिषीमहि ॥ समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि
धेहि ॥ समाववर्ति पृथिवी विभून् कामान् व्यश्रवै भूः स्वाहा ॥

शत्रा [१२.७-९]—

०त्रयलिङ्गशदक्षिणा भवन्ति० अप वा एतस्मात्तेज इन्द्रियं धीर्यं कामति । यङ्

सोमोऽतिपवत ऊर्ध्वं वाऽवाञ्च वा । तदाहुः । अन्नं वा एतद्ब्राह्मणस्य यत् सोमः । न वै सोमेन
ब्राह्मणः सोमवामी सः । यो वा अलं भूत्यै सन् भूतिं न प्राप्नोति । यो वाऽलं पशुम्यः सन्
पशून् विन्दते । स सोमवामी० स एतमाश्विनं धूम्रमालभेत । सारस्वतं मेघम् । ऐन्द्रमृषभम्०
वडवाऽनुशिशुर्मवति० आरण्यानां पशूनां लोमानि भवन्ति० वृकलोमानि भवन्ति० व्याघ्र-
लोमानि भवन्ति० सिंहेल्लोमानि भवन्ति० व्रीहयश्च श्यामाकाश्च भवन्ति । गोधूमाश्च कुवलानि
च । उपवाकाश्च बदराणि च । यवाश्च कर्कन्धूनि च । शष्पाणि च तोक्मानि च० सीसेन
शष्पाणि क्रीणाति । ऊर्णाभिस्तोक्मानि । सूत्रैर्व्रीहीन्० उभयश्च सौत्रामणी इष्टिश्च पशु-
बन्धश्च० ऊर्णासूत्रेण क्रीणाति० तद्वैतदन्येऽध्वर्यवः सीसेन ह्रीबाच्छष्पाणि क्रीणन्ति० तदु
तथा न कुर्यात्० सोमविक्रयिण एव क्रीणीयात्० शतातृष्णा कुम्भी भवति० सतं भवति०
चपं भवति० पवित्रं भवति० वालो भवति० सुवर्णं हिरण्यं भवति० शतमानं भवति०
आश्वत्थं पात्रं भवति० औदुम्बरं भवति० नैयग्रोधं भवति० स्थाल्यो भवन्ति० पालाशान्युप-
शयानि भवन्ति० अपाष्टिहस्य पत्रे भवतः० तदाहुरन्यदेवत्याः पशवो भवन्ति । अन्यदेवत्याः
पुरोडाशाः० ऐन्द्रः पशूनामुत्तमो भवति । ऐन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमः । सावित्रः पुरोडाशो
भवति० वारुणो भवति० एकादशकपाल ऐन्द्रो भवति० द्वादशकपालः सावित्रो भवति०
दशकपालो वारुणो भवति० वडवाऽनुशिशुर्दक्षिणा भवति० स यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् । स
सौत्रामण्या यजेत० स्वाद्वीं त्वा स्वादुना इति सुराश्च संदधाति० तिस्रो रात्रीर्वसति० ।

द्वे वेदी भवतः० उत्तराऽन्या भवति । दक्षिणाऽन्या० पयश्च सुरा च भवतः० वायोः
पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्सोमो अतिद्रुतः इति सोमातिपूतस्य पुनाति० वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्सोमो
अतिद्रुतः इति सोमवामिनः पुनाति० पुनाति ते परिस्रुतम् इति समृद्धिकामस्य पुनाति० वालेन
ह्येषा पूयते । ब्रह्म क्षत्रं पवते इति पयः पुनाति० पूर्वं पयोग्रहा गृह्यन्ते । परे सुराग्रहाः०
कुविदङ्ग यवमन्तो यवंचित् इति पयोग्रहान् गृह्णाति० एकया गृह्णाति० नाना हि वां देवहितं
सदस्कृतम् इति सुराग्रहान् गृह्णाति० व्यतिषक्तान् गृह्णाति० यदेतेषां पशूनां लोमभिः पयोग्रहा-
ञ्छीणीयात्० सुराग्रहानेवैतेषां पशूनां लोमभिः श्रीणाति० या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणं० सिंहेहं० सेमं पाल्वं० हसः ॥ यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया इति० अध्वर्युश्च प्रतिप्रस्थाता च जघनेन वेदिं
प्राञ्चमावृत्तं यजमानं श्येनपत्राम्यामूर्ध्वं चाऽवाञ्चं च पावयतः० संपृचः स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त
इति पयोग्रहान् संमृशति० विपृचः स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त इति सुराग्रहान्० उत्तरेऽग्नौ
पयोग्रहान् जुहति० स जुहोति सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरम् इति० हुत्वा भक्षयन्ति० स भक्ष-
यति यमश्विना नमुचेरासुरादधि इति० दक्षिणेऽग्नौ सुराग्रहान् जुहति० स जुहोति यस्ते

रसः संभृत ओषधीषु इति० हुत्वा भक्षयन्ति० स भक्षयति यदत्र रितं रसिनः सुतस्य इति० तद्धैतदन्येऽध्वर्यवो राजन्यं वा वैश्यं वा परिक्रीणन्ति । स एतद् भक्षयिष्यतीति । तदु तथा न कुर्यात्० दक्षिणस्यैवाऽग्नेखीनङ्गारान् निर्वर्त्य बहिष्परिधि । तदेताभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयात् । पितृभ्यः स्वधायिम्यः स्वधा नमः इति० पितामहेभ्यः स्वधायिम्यः स्वधा नमः इति० प्रपितामहेभ्यः स्वधायिम्यः स्वधा नमः इति० अप आनीय निनयति । अक्षन् पितरः इति० अमीमदन्त पितरः इति० अतीतृपन्त पितरः इति० पितरः शुन्धध्वम् इति० त्रिभिः पवित्रैः पावयन्ति० पावमानीभिः पावयन्ति० तिसृभिस्तिसृभिः पावयन्ति० नवभिः पावयन्ति० अजाविकेनैवैनं पुनन्ति० वालेन पावयन्ति० हिरण्येन पावयन्ति० सुरया पावयन्ति० तदाहुः । याजयितव्यं सौत्रामण्या ३ न याजयितव्या ३ मिति० तदु ह स्माऽऽह रेवोत्तरा स्थपतिः पाटवश्चाक्रोऽपि । प्रदानं प्रदाय याजयितव्यमेव० पितृलोकं वा एतेऽन्ववयन्ति । ये दक्षिणेऽग्नौ चरन्ति । आज्याहुतिं जुहोति० स जुहोति ये समानाः समनसः कल्पताम् इति० सर्वे यज्ञोपवीतानि कृत्वा उत्तरमग्निमुपसमायन्ति० आज्याहुतिं जुहोति० स जुहोति ये समानाः समनसो जीवाः शतं समाः इति० पयः समन्वारब्धेषु जुहोति० स जुहोति द्वे सृती अशृणवं पितृणामहम् इति० एकाकी हुतोच्छिष्टं भक्षयति० स भक्षयति इदं हविः प्रजननं मे अस्तु इति० अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त इति० हिरण्येन मार्जयन्ते० प्रतितिष्ठन्ति० ।

०^१ सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत० तस्मादेतस्य यज्ञस्य व्रतमेव दीक्षा० एते खलु वा एतस्य यज्ञस्य सोमांशव इत्याहुर्व्यच्छपाणि तोक्मानि लाजा इति० आश्विनेन पयसा प्रथमां रात्रिं परिषिञ्चति० सारस्वतेन पयसा द्वितीयां रात्रिं परिषिञ्चति० ऐन्द्रेण पयसा तृतीयां रात्रिं परिषिञ्चति० एकस्यै दुग्धेन प्रथमां रात्रिं परिषिञ्चति । द्वयोर्दुग्धेन द्वितीयाम् । तिसृणां दुग्धेन तृतीयाम्० परीतो विश्वता सुतम् इति परिषिञ्चति^२० सर्व ऋत्विजो भक्षयन्ति^३० आश्विनमध्वर्यवो भक्षयन्ति० सारस्वतं होता ब्रह्मा मैत्रावरुणः० ऐन्द्रं यजमानो भक्षयति० आश्विनात्सारस्वतेऽवनयति० सारस्वतादैन्द्रे० त्रय आश्विनं भक्षयन्ति । अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाताऽऽग्नीध्रः० त्रयः सारस्वतम् । होता ब्रह्मा मैत्रावरुणः० एकाव्यैन्द्रं यजमानो भक्षयति० षड् ऋत्विजो भक्षयन्ति० द्वादश भक्षा भवन्ति० पुनः पुनरभिनिवर्तमृत्विजो भक्षयन्ति० त्रयोदशं यजमानो भक्षयति० त्रयः पशवो भवन्ति^४० इममेव लोकमाश्विनेन ।

१. एतद्ब्राह्मणोक्तानि (शब्रा १२.८.२) कानिचन विधिवाक्यानि पूर्वोक्तविधिमनुसंदधति । २. मुरासंधानविषयकोऽयं विधिः । ३. ग्रहशेषभक्षणं पूर्वं निर्दिष्टम् । ४. ग्रहासादनानन्तरम् ।

अन्तरिक्षे सारस्वतेन । दिवमैन्द्रेण० त्रयः पुरोडाशा भवन्ति^१० ग्रोष्ममेवैन्द्रेण । वर्षाः सावित्रेण । हेमन्तं वारुणेन० षड् ग्रहा भवन्ति^२० ।

कृष्णाजिनेऽभिषिञ्चति० लोमतः० आसन्ध्यामभिषिञ्चति० औदुम्बरी भवति० जानुसंमिता भवति० परिमिता तिरश्ची० द्वा उत्तरस्यां वेद्यां पादौ भवतः । द्वौ दक्षिणस्याम्० स आसन्दीमास्तृणाति । क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि इति० अथैनां कृष्णाजिनेनाऽऽस्तृणाति । मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः इति० अथाऽधिरोहति वारुण्यर्चा० निषसाद धृतव्रतः सुक्रतुः इति० अथ सुवर्णरजतौ रुक्मौ व्युपास्यति । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि इति० पशूनां वसयाऽभिषिञ्चति० शफग्रहा भवन्ति० त्रयस्त्रिंशद्ग्रहा भवन्ति० जगतीभिर्जुहोति० षोडशभिर्ऋग्भिर्जुहोति० सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिणः इति द्वौ द्वौ समासं हुत्वा । सते सँस्रवान्समवनयति० वैतसः सतो भवति० सर्वसुरभ्युन्मर्दनं भवति० पुरस्तात्प्रत्यङ्मभिषिञ्चति० आ मुखादन्वस्त्रावयति० सर्वतः परिक्रामम्० आश्विनेन प्रथमेन यजुषाऽभिषिञ्चति । अथ सारस्वतेन । अथैन्द्रेण० तँ हैक एताभिश्च देवताभिरभिषिञ्चन्ति । भूर्भुवः स्वरित्येताभिरु च व्याहृतिभिः० न तथा कुर्यात् । एताभिरैवैनं देवताभिरभिषिञ्चेत्० पुरस्तात् स्विष्टकृतोऽभिषिञ्चति० अन्तरा वनस्पतिं च स्विष्टकृतं चाऽभिषिञ्चति० अथैनं जानुमात्रे धारयन्ति । अथ नाभिमात्रे । अथ मुखमात्रे० कृष्णाजिने प्रत्यवरोहति० प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठाभि राष्ट्रे इति० अथ साम गायति० बृहत्यां गायति० ऐन्द्र्यां बृहत्यां गायति० अथ यस्मात् सँशानानि नाम० सँश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे श्रवसे इति सामानि भवन्ति० चतुर्निधनं भवति० सर्वे निधनमुपावयन्ति० अथो त्रया देवा एकादश इति त्रयस्त्रिंशं ग्रहं जुहोति० स भक्षयति लोमानि प्रयतिर्मम मज्जा म आनतिः इति० ।

० तस्मादेष ब्राह्मणयज्ञ एव० अवभृथमिष्ट्वा यन्ति० यद्देवा देवहेडनम् इति० सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु इत्यञ्जलिनाऽप उपाचति० दुर्मित्रियास्तस्मै वयं द्विष्मः इति यामस्य दिशं द्वेष्ट्यः स्यात्तां दिशं परासिञ्चेत्० द्रुपदादिव मुमुचानः शुन्धन्तु मैनसः इति वासोऽपप्लावयति० स्नाति० उद्वयं तमसस्पति इत्यनपेक्षमेत्याऽऽहवनीयमुपतिष्ठते । अपो अद्याऽन्वचारिषम् इति० एधोऽस्येधिषीमहि इति समिधमादत्ते० समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि घेहि इत्याहवनीये समिधमभ्यादधाति० आदित्यं चरुं यक्ष्यमाणो निर्वपति । आदित्यमीजानः० घेनुर्दक्षिणा० वत्सं पूर्वस्यां ददाति । मातरमुत्तरस्याम्० अवभृथादुदेत्य मैत्रावरुण्या पयस्यया यजते० आत्मा वै यज्ञस्य यत्सौत्रामणी । बाहू ऐन्द्रश्च वयोधाश्च । तद्यदेतावभितः पशू भवतः० तद्यदेतं सौत्रामणिकं यूपमेतौ यूपावभितो भवतः० ॥

वाकासं [२१.१]—

.... कुविदङ्ग यवमन्तः ये बर्हिषो नमउक्तिं न जग्मुः ॥ यदापिपेष
मातरं वि मा पापेन पृङ्क्त ॥

[२१.३]—.... सुरावन्तं बर्हिषदं वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

[२१.४]—.... त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाङ्ढव्यानि ॥

[२१.६]—मुखं सदस्य चप्पं न.... ॥

[२२.२]—.... अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं पुनीहीन्द्राय पातवे ॥

काशत्रा [१४.४-६] ≡ शत्रा

कौकिलसौत्रामणीहौत्रम्

वासं [२८.१-११; २०.३६-४६]—

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ समिद्ध इन्द्र
उषसामनीके.... ॥

होता यक्षत्तनूनपातं.... ॥ नराशंसः प्रति शूरो मिमानः.... ॥

होता यक्षदिडाभिः.... ॥ ईडितो देवैर्हरिवान्.... । पुरंदरो गोत्रमिद्वज्र-
बाहुरायातु.... ॥

होता यक्षद्वर्हिषीन्द्रं.... ॥ जुषाणो बर्हिर्हरिवान्.... । उरुप्रथाः.... ॥

होता यक्षदोजो न.... । सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्ताम् व्यन्त्वा-
ज्यस्य होतर्यज ॥ इन्द्रं दुरः कवण्यो धावमानाः.... ॥

होता यक्षदुषे मातरा मही । ॥ उषासानक्ता बृहती बृहन्तं.... ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती.... ॥

होता यक्षदैव्या होतारा.... ॥ दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा.... ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवः.... ॥ तिस्रो देवीर्हविषा
वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः । ॥

होता यक्षत्त्वष्टारं.... ॥ त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णे.... ॥

१. ऐन्द्रपशुयागे प्रयाजप्रेषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः प्रेषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण ।
एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्व यष्टव्यः ।

होता यक्षद्वनस्पति स्वदाति यज्ञं....॥ वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैः....॥
होता यक्षदिन्द्रं स्वाहा.... । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र
आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ स्तोकानामिन्दुं.... । घृतश्रुषा मनसा मोद-
मानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥

[२०.४७-५२]—

१आयात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वौघैर्न क्षत्रमभिभूति पुण्यात् ॥
आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छाऽर्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरण्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२॥ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२॥ इन्द्रो अस्मे आराचिद् द्वेषः सनुतयुयोतु ॥

[२८.१२-२२]—

१देवं बर्हिर्दिन्द्रं सुदेवं....॥ देवीर्द्वार इन्द्रं संघाते वीड्वीर्यामन् आ
वत्सेन तरुणेन कुमारेण व्यन्तु यज ॥ देवी उषासानक्तेन्द्रं सुप्रीते
सुधिते वसुवने....वीतां यज ॥ देवी जोष्ट्री वसुधितौ द्वेषास्याऽन्या
वक्षद्वसु वीतां यज ॥ देवी ऊर्जाहुती इषमूर्जमन्याऽवक्षत्
नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वीतां यज ॥ देवा दैव्या होतारा
.... वीतां यज ॥ देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः व्यन्तु यज ॥ देव इन्द्रो
नराशंसः वेतु यज ॥ देवो देवैर्वनस्पतिः.... । दिवमग्रेणाऽस्पृक्ष-

१. ऐन्द्रपशुयागे वपापुरोडाशहविषां याज्यापुरोनुवाक्याः । २. ऐन्द्रपश्वनुयाजप्रैषाः ।

दाऽन्तरिक्षं वेतु यज ॥ देवं बर्हिर्वारितीनां वेतु यज ॥ देवो
अग्निः स्विष्टकृत् वेतु यज ॥

[२८.२३]—

^१अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं
बध्नन्निन्द्राय छागं^२ स्रपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेना-
ऽघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताऽग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे.... ॥

[२१.२९-४०; २०.५५-६६]—

^३होता यक्षत्समिधाऽग्निमिडस्पदे कुवलैः व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
समिद्धो अग्निरश्विना.... ॥

होता यक्षत्तनूनपात् सरस्वतीमविर्मेघः व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
तनूपा मिषजा सुते.... ॥

होता यक्षन्नराशं^४सं पतिं^५ सुरया भेषजं व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
इन्द्रायेन्दुं नग्नहुम्.... ॥

होता यक्षदिडेडितः अश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः व्यन्त्वाज्यस्य
होतयज ॥ आजुह्वाना सरस्वती.... ॥

होता यक्षद्वर्हिर्गुणप्रदाः व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
अश्विना नमुचेः सुतं.... ॥

होता यक्षद् दुरो दिशः दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय व्यन्त्वाज्यस्य
होतयज ॥ कवण्यो न व्यचस्वतीः.... ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना समञ्जाते सरस्वत्या रजसा
हृदा श्रिया न मासरं पयः व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
उषासानक्तमश्विना.... ॥

होता यक्षद्वैव्या होतारा जागृवि व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
पातं नो अश्विना दिवा.... ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीः इन्द्राय दुह इन्द्रियं व्यन्त्वाज्यस्य होतयज ॥
तिस्रस्त्रेधा सरस्वती.... ॥

१. ऐन्द्रपशुसूक्तवाक्यैः । २. त्रिपशुयागे प्रयाजप्रेषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः

प्रेषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण । एकादशः प्रयाजो वपायागात् पूर्वं यष्टव्यः ।

होता यक्षत्सुरेतसमृषमं नर्यापसं व्यन्त्वाज्यस्य होतर्त्यज ॥

अश्विना मेषजं मधु.... ॥

होता यक्षद्वनस्पतिं व्यन्त्वाज्यस्य होतर्त्यज ॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः.... ॥

होता यक्षदग्निं स्वाहाऽऽज्यस्य सहस इन्द्रियं स्वाहा देवा

आज्यपा जुषाणः व्यन्त्वाज्यस्य होतर्त्यज ॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिष्कृता । समधातं सरस्वत्या.... ॥

[२१.४१]—

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेतां हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्त्यज ॥

[२१.४३-४५]—

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा
द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेअज्जाणां यवसप्रथमानां
सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः
शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाऽश्विना जुषेतां हवि-
र्होतर्त्यज ॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य घसन्नूनं करदेव
सरस्वती जुषतां हविर्होतर्त्यज ॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य करदेवमिन्द्रो जुषतां
हविर्होतर्त्यज ॥

[२०.६७-७५]—

अश्विना हविरिन्द्रियं....॥ यमश्विना सरस्वती.... ॥ तमिन्द्रं पशवः
यज्ञ इन्द्रियैः ॥ य इन्द्र इन्द्रियं दधुः.... ॥ सविता वरुणो दधत्.... ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं.... ॥ अश्विना गोभिरिन्द्रियं.... ॥ ता नासत्या
सुपेशसा.... ॥ ता भिषजा सुकर्मणा.... ॥

१. त्रिपशुवपायागप्रैषाः । २. त्रिपशुहविर्यागप्रैषाः । ३. त्रिपशूनां वपापुरोडाश-
हविषां याज्यापुरोनुवाक्याः, प्रतिपशु तिष्ठः ।

[२०.७६-७७]—

‘युव’ सुराममश्विना.... । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥
 पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्राऽऽवधुः काव्यैर्दसनाभिः ।
 यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥

[२१.४२]—

‘होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र’ सुत्रामाणं सुत्रामा मदन्तु
 व्यन्तु होतयज ॥

[२१.४६]—

‘होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्टया रशनयाऽधित । यत्रा-
 ऽश्विनोऽश्वागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः
 प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः
 प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया
 धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि
 यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथासि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि
 यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस
 इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषता हविर्होतयज ॥

[२१.४७]—

‘होता यक्षदग्नि’ स्विष्टकृतमयाडशिरश्विनोऽश्वागस्य हविषः प्रिया
 धामान्ययाद् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य
 हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाद् सोमस्य प्रिया
 धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाद् सवितुः प्रिया
 धामान्ययाद् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाद् वनस्पतेः प्रिया पाथा-
 स्ययाद् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि
 यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा
 जुषता हविर्होतयज ॥

[२०.७८-७९]—

^१यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्ष्णः.... ॥ अहाव्यग्रे हविरास्ये ते चम्बीव सोमः । ॥

[२१.४८-५८]—

देवं बर्हिः सरस्वती व्यन्तु यज ॥

देवीर्द्वारो अश्विना व्यन्तु यज ॥

देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे व्यन्तु यज ॥

देवी जोषी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । व्यन्तु यज ॥

देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधेन्द्रे मिषजाऽवतः । व्यन्तु यज ॥

देवा देवानां मिषजा व्यन्तु यज ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती । व्यन्तु यज ॥

देव इन्द्रो नराशंसः व्यन्तु यज ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्यां सरस्वत्या जूतिर्ऋषभः व्यन्तु यज ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे व्यन्तु यज ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृत् व्यन्तु यज ॥

[२१.५९-६१]

^२अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभं सुन्वन्नश्विभ्यां सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाऽक्षंस्तान् मेदस्तः प्रति पचताऽगृभीषताऽवीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीताऽयं यजमानः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥

[२०.८०-९०]—

^३अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।

वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥

गोमदं पु णासत्याऽश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥

१. स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये । २. अनुयाजप्रेषाः । अनुयाजयाज्या निरूढपशुवत् ।

३. सूक्तवाकप्रेषः । ४. शस्त्रम् ।

न यत्परो नाऽऽन्तर आदधर्षद् वृषण्वस्र । दुःशं^१सो मर्त्यो रिपुः ॥
 ता न आ वोढमश्विना रयि पिशङ्गसंदशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥
 पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥
 चोदयित्री स्रुतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥
 महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ॥
 इन्द्राऽऽयाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥
 इन्द्राऽऽयाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥
 इन्द्राऽऽयाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥
 अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
 इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां^२ सोम्यं मधु ॥

[२१.१-११]^३—

^१इमं मे वरुण श्रुधी.... ॥ ^२तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः.... ॥ ^३त्वं
 नो अग्रे वरुणस्य विद्वान्.... ॥ ^४स त्वं नो अग्रेऽवमो भवोती.... ॥
^५महीमू षु मातरं^४ सुव्रतानाम्.... ॥ ^६सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम्.... ॥
 सुनावमारुहेयम्.... ॥ ^७आ नो मित्रावरुणा.... ॥ ^८प्र बाहवा सिसृतं
 जीवसे नः.... ॥ ^९शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु.... ॥ ^{१०}वाजेवाजेऽवत
 वाजिनो नः.... ॥

[२८.२४-३४; २१.१२-२२]—

^१होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं.... ॥ समिद्धो अग्निः समिधा.... ॥
 होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं.... ॥
 तनूनपात् शुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्दः.... ॥
 होता यक्षदीडेन्यमीडितं पश्चार्वि गां वयो दधत्.... ॥
 इडाभिरभ्रिरीड्यः पश्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥
 होता यक्षत्सुबर्हिषं त्रिवत्सं गां वयो दधत्.... ॥
 सुबर्हिरग्निः पूषण्वान् त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥

१. याज्यापुरोनुवाक्याः । २. वारुणपुरोडाशस्य । ३. आग्निवारुणयागस्य ।
 ४. आदित्यचरोः । ५. मैत्रावरुणपयस्यायाः । ६. वाजिनयागस्य । ७. वायोधसपशुयागे
 प्रयाजप्रैषाः प्रयाजयाज्याश्च । पूर्वः प्रैषः अपरा याज्या, एवं क्रमेण । एकादशः प्रयाजो वपायागात्
 पूर्वं यदह्यः ।

होता यक्षद् व्यचस्वतीः व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥
 दुरो देवीर्दिशो महीः..... ॥
 होता यक्षत्सुपेशसा वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥
 उषे यह्वी सुपेशसा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं..... ॥
 होता यक्षत्प्रचेतसा वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥
 दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण.... । जगती छन्द इन्द्रियं..... ॥
 होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रः व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥
 तिस्र इडा सरस्वती..... ॥
 होता यक्षत्सुरेतसं द्विपदं छन्द इन्द्रियं..... ॥
 त्वष्टा तुरीपो अद्भुतः । द्विपदा छन्द इन्द्रियं..... ॥
 होता यक्षद्वनस्पतिः^१ शमितार^२ शतक्रतुं गां वयो दधत्..... ॥
 शमिता नो वनस्पतिः..... । ककुच्छन्दः वेहद्वयो दधुः ॥
 होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ स्वाहा यज्ञं वरुणः
 । अतिच्छन्दा इन्द्रियं..... ॥

[२१.२३-२८]—

वसन्तेन ऋतुना स्तुताः । ॥ ग्रीष्मेण ऋतुना स्तुताः । ॥
 वर्षाभिर्ऋतुना स्तुताः । ॥ शरदेन ऋतुना स्तुताः । ॥
 हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतः स्तुताः । ॥ शैशिरेण ऋतुना
 देवास्त्रयस्त्रिंशेऽमृताः स्तुताः । ॥

[२८.३५-४५]—

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत् । गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे..... ॥
 देवीर्द्धारो वयोधसं^१ शुचिमिन्द्रमवर्धयन् व्यन्तु यज ॥ देवी उषासा-
 नक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । बलमिन्द्रे..... ॥ देवी
 जोष्टी वसुधिती..... ॥ देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रं वयोधसं
 देवी देवमवर्धताम् । ॥ देवा दैव्या होतारा देवौ देवमवर्ध-
 ताम् । ॥ देवीस्तिस्रस्तिस्रः शूषमिन्द्रे व्यन्तु यज ॥ देवो

१. वायोधसपशुयागे वपापुरोडाशहविषां वाज्यापुरोनुवाक्याः । २. वायोधसपश्वनु-
 याजप्रेषाः । अनुयाजवाज्या निरुदपशुवत् ।

नराशंसः रूपमिन्द्रे.... ॥ देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं.... ॥ देवं
बर्हिर्वारितीनां देवं देवमवर्धयत् । ॥ देवो अग्निः स्विष्टकृत्.... ॥

[२८.४६]—

अग्निमद्य होतारमवृणीताऽयं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं
बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागं सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय
वयोधसे छागेन । अद्यत्तं मेदस्तः प्रतिपचताऽग्रभीदवीवृधत् पुरोडाशेन ।
त्वामद्य ऋषे.... ॥

शब्रा [१२.८.२]—

०तदाहुः । यद् ग्रावभिः सोमः सूयतेऽथ कथं सौत्रामणीति । प्रैषाप्रैभिरिति
ब्रूयात् ० सर्वे^२ पयस्वन्तो भवन्ति ० सर्वे सोमवन्तो भवन्ति ० सर्वे परिसुन्मन्तो भवन्ति ० सर्वे
घृतवन्तो भवन्ति ० सर्वे मधुमन्तो भवन्ति ० सर्व आश्विना भवन्ति ० सर्वे सारस्वताः ० सर्वे
ऐन्द्राः ० संतता याज्यापुरोनुवाक्या^३ भवन्ति समानदेवत्याः ० सर्वा आश्विन्यो भवन्ति । सर्वाः
सारस्वत्यः । सर्वा ऐन्द्र्यः ० अनुष्टुभ आप्रियो भवन्ति ० सर्वा आश्विन्यो भवन्ति । सर्वाः
सारस्वत्यः । सर्वा ऐन्द्र्यः ० जागता अनुप्रैषा भवन्ति ० सर्व आश्विना भवन्ति । सर्वे सारस्वताः ।
सर्व ऐन्द्राः ० संतता याज्यापुरोनुवाक्या भवन्ति^४ समानदेवत्याः ० सर्वाः पुरोनुवाक्या भवन्ति ।
सर्वा याज्याः ० सर्वाः प्रथमा भवन्ति । सर्वा मध्यमाः । सर्वा उत्तमाः ० सर्वेषां ग्रहाणां
द्वे याज्यापुरोनुवाक्ये भवतः ० ॥

वाकासं [२२-२३; ३०]^५ ≡ वासं

काशब्रा [१४.५] ≡ शब्रा

१. वायोधसपशुसूक्तवाकप्रैषः । २. प्रैषाः । ३. त्रिपशुवपायागानाम् । एवमेव
पशुपुरोडाशहविर्यागानामपि । ४. ग्रहाणाम् । ५. वाकासं २३.१ अध्याये सौत्रामणीप्रकरणे
'शं नो भवन्तु...' 'वाजेवाजेऽवत...' इत्यनयोर्ऋचोर्मध्ये

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।

सहस्रसा मेघसाता इव त्मना महो ये धनं^६ समिथेषु जग्निरे ॥

इति ऋग् भवति । अयं तृचः वाजपेयप्रकरणे वाकासं १०.३ अत्राप्युपलभ्यते । माध्यंदिनसंहिताया-
मयं तृचः केवलं वाजपेयप्रकरणे (९.१७) एवोपलभ्यते । सौत्रामणीप्रकरणे 'शं नो भवन्तु...' 'वाजेवाजेऽवत...' इत्युग्वयमेवोपलभ्यते ।

चरकसौत्रामणी

वासं [१०.३१-३२]—

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ वायुः पूतः
पवित्रेण प्रत्यङ्ग.... ॥ कुविदङ्ग यवमन्तः.... । इहेहैषां कृणुहि
नमउक्ति यजन्ति ॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा ॥ उपयामगृहीतोऽसि
सरस्वत्यै त्वा ॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥

शत्रा [१.६.३]—

त्वष्टुर्ह वै पुत्रस्त्रिशीर्षा षडक्ष आस । तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुः० तस्य सोम-
पानमेवैकं मुखमास सुरापाणमेकमन्यस्मा अशनायैकम् । तमिन्द्रो दिद्वेष । तस्य तानि शीर्षाणि
प्रचिच्छेद । स यत्सोमपानमास ततः कपिञ्जलः समभवत्० अथ यत्सुरापाणमास ततः कल-
विङ्कः समभवत्० अथ यदन्यस्मा अशनायाऽऽस ततस्तिरिः समभवत्० स त्वष्टा चुक्रोध
कुविन्मे पुत्रमवधीदिति । सोऽपेन्द्रमेव सोममाजहे । स यथाऽयं सोमः प्रसुत एवमपेन्द्र
एवाऽऽस । इन्द्रो ह वा ईक्षांचक्रे । इदं वै मा सोमादन्तर्यन्तीति । स यथा बलीयानबलीयसः
एवमनुपहूत एव यो द्रोणकलशे शुक्र आस तं भक्षयांचकार । स हैनं जिहिँस । सोऽस्य
विष्वङ्खेव प्राणेभ्यो दुद्राव । मुखाद्वैवाऽस्य न दुद्राव० तददः सौत्रामणीतीष्टिः । तस्यां
तद्व्याख्यायते यथैनं देवा अभिषज्यन्० ॥

[५.५.४]—

० इथेत आश्विनो भवति० अविर्मल्हा सारस्वती भवति । ऋषभमिन्द्राय सुत्राम्ण
आलभते० यद्येवं समृद्धान् विन्देदप्यजानेवाऽऽलभेरन्० स यद्यजानालभेरन् लोहित आश्विनो
भवति० त्वष्टुर्ह वै पुत्रस्त्रिशीर्षा षडक्ष आस० स त्वष्टा चुक्रोध कुविन्मे पुत्रमवधीदिति ।
सोऽपेन्द्रमेव सोममाजहे० इन्द्रो ह वा ईक्षांचक्रे । इदं वै मा सोमादन्तर्यन्तीति० यो द्रोण-
कलशे शुक्र आस तं भक्षयांचकार । स हैनं जिहिँस । सोऽस्य विष्वङ्खेव प्राणेभ्यो दुद्राव ।
मुखाद्वैवाऽस्य न दुद्राव । तस्मात्प्रायश्चित्तिरास । स यद्वाऽपि मुखादद्रोष्यत् न हैव प्राय-
श्चित्तिरभविष्यत्० ते देवा अब्रुवन् सुत्रातं बतैनमत्रासाताम् इति । तस्मात् सौत्रामणी नाम ।
स हैतयाऽपि सोमातिपूतं भिषज्येत्० तद्यदेतया राजसूययाजी यजते० अथ यदाश्विनो
भवति० अथ यत्सारस्वतो भवति० अथ यदैन्द्रो भवति० एतेषु पशुषु सिँहलोमानि
वृकलोमानि शार्दूललोमानित्यावपति० तदु तथा न कुर्यात्० तस्मादु परिसृत्येवाऽऽवपेत्०

अथ पूर्वेषुः परिस्रुतः संदधाति अश्विन्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व इति । सा यदा परिस्रुद् भवत्यथैनया प्रचरति० द्वावग्नी उद्धरन्ति । उत्तरवेदावेवोत्तरम् । उद्धते दक्षिणम् । नेत्सोमाहुतीश्च सुराहुतीश्च सह जुहवामेति० अथ यदा वपाभिः प्रचरन्ति । अथैतया परिस्रुता प्रचरति । तां दमैः पावयति पूताऽसदिति । वायुः पूतः पवित्रेण सखा इति । तत्कुवल्सक्तून् कर्कन्धुसक्तून् बदरसक्तूनित्यावपति० अथ ग्रहान् गृह्णाति एकं वा त्रीन् वा । एकस्त्वेव ग्रहीतव्यः । एका हि पुरोरुग् भवति एकाऽनुवाक्या एका याज्या० स गृह्णाति कुविदङ्ग यवमन्तः यजन्ति ॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विन्यां सुत्राम्णे इति । यद्यु त्रीन् गृह्णीयादेतयैव गृह्णीयात् । उपयामैस्तु तर्हि नाना गृह्णीयात् । अथाऽऽह अश्विन्यां सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णेऽनुब्रूहि इति । सोऽन्वाह^१ युवः सुराममश्विना कर्मस्वावतम् इति । आश्राव्याऽऽह अश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रः सुत्रामाणं यज इति । स^१ यजति पुत्रमिव पितरा मघवन्नभिष्णक् इति । द्विर्होता वषट्करोति द्विरव्ययुर्जुहोति । आहरति भक्षम् । यद्यु त्रीन् गृह्णीयात् । एतस्यैवाऽनुहोममितरौ ब्रूयेते । अथ कुम्भः शतवितृष्णो वा भवति नववितृष्णो वा० तः शिष्योदुतमुपर्युपर्याहवनीयं धारयन्ति । सा या परिशिष्टा परिस्रुद्भवति तामासिञ्चति । तां विक्षरन्तीमुपतिष्ठते^२ पितृणां सोमवतां तिसृभिर्ऋग्भिः पितृणां बर्हिषदां तिसृभिर्ऋग्भिः पितृणामग्निष्वात्तानां तिसृभिर्ऋग्भिः० अथैतानि हवींषि निर्वपति । सावित्रं द्वादशकपालं वाऽष्टकपालं वा पुरोडाशं वारुणं यवमयं चरुमैन्द्रमेकादशकपालं पुरोडाशम्० स यदि हैतयाऽपि सोमातिपूतं मिषज्येत् इष्टा अनुयाजा भवन्ति । अव्यूढे स्रुचौ । अथैतैर्हविर्भिः प्रचरति० आश्विनमु तर्हि द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । अथ यदा वपाभिः प्रचरति । अथैतेनाऽऽश्विनेन द्विकपालेन पुरोडाशेन प्रचरति । तदु तथा न कुर्यात्० तस्माद्यत्रैवैतेषां पशूनां वपाभिः प्रचरन्ति । तदेवैतैर्हविर्भिः प्रचरेयुः । नो तर्ह्याश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् । तस्य नपुंसको गौर्दक्षिणा० अश्वा वा रथवाही० ॥

वाकासं [११-१०]—

अश्विन्यां पच्यस्व । ॥ वायोः पूतः पवित्रेण सखा ॥ कुविदङ्ग

ये बर्हिषो नमउक्तिं न जग्मुः ॥ उपयाम^० सुत्राम्णे ॥

काशत्रा [७.५.१]—

....अथैतः सावित्रं द्वादशकपालं वाऽष्टकपालं पुरोडाशं निर्वपति० ऐन्द्रमेकादशकपालम्.... ॥

चरकसौत्रामणीहौत्रम्

वासं [१०.३३-३४]—

‘युव’^५ सुराममश्विना.... ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्राऽऽवथुः काव्यैर्द^५सनाभिः ।

यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मधवन्नभिष्णक् ॥

वाकासं [११.१०]—

‘युव’^५ सुराममश्विना नमुचा आसुरे सचा । ॥

पुत्रमिव पितरा अश्विनोभेन्द्राऽऽवथुः.... ॥

कौकिलसौत्रामणी

शांत्रा [१६.१०]—

सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत श्रियं प्रजां विराजं चेच्छन् । ऐन्द्रो वा एष यज्ञ-
क्रतुर्यत्सौत्रामणी । आत्मा वै यज्ञस्य त्रिपशुः । बाहू पशुः । तस्मादात्मानमभितो बाहू भवतः ।
तस्मादात्मानमभितः पार्श्वे स्याताम् । यत्सुरासोमग्रहाननुवषट्कृत्य सर्वे । तस्मात्सोमेनेष्ट्वा सौत्रामणीं
कुर्यात् । य एवं विद्वान्सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत स श्रियं प्रजां विराजमाप्नोति यश्चैवं वेद ।
श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्यै । अवभृथमवैति यथा सोमे । मैत्रावरुण्या वा
पयस्यया यजेत तस्या उक्तं ब्राह्मणम् ॥

गोत्रा [२.५.६]—

विश्वरूपं वै त्वाष्ट्रमिन्द्रोऽहन् । स त्वष्टा हतपुत्रोऽभिचरणीयमपेन्द्रं सोममाहरत् ।
तस्येन्द्रो यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् । स विश्वं व्यार्च्छत् । तस्मात् सोमो नाऽनुपहूतेन
पातव्यः । सोमपीयोऽस्य व्यर्धुको भवति । तस्य मुखात् प्राणेभ्यः श्रीर्यशांस्यूर्ध्वान्युदक्रामन् ।
तानि पशून् प्राविशन् । तस्मात् पशवो यशः । यशो ह भवति य एवं वेद । ततोऽस्मा
एतदश्विनौ च सरस्वती च यज्ञं समभरन्तसौत्रामणिं भैषज्याय । तयेन्द्रमम्यषिञ्चन् । ततो वै स
देवानां श्रेष्ठोऽभवत् । श्रेष्ठः स्वानां चाऽन्येषां च भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वान्सौत्रा-
मण्याऽभिषिच्यते ॥

चरकसौत्रामणी^१

बौधायनश्रौ० [१७.३१-३८; २३.१६; २६.२२; १४.२३; ३०]—

१. सौत्रामण्या यक्ष्यमाणो भवति । स उपकल्पयते रोहितं चर्माऽऽनडुहं सीसं च क्लीबं च शष्पाणि च तोक्माणि च व्रीहीन्ग्रहं चूर्णकृतं त्रीणि नानावृक्ष्याणि पात्राणि त्रयान् सकतूँस्त्रयाणि लोमानि यूपं च श्येनपत्रं च गर्भिणीं वडवामासन्दीमिण्ड्वं कुम्भं कारोतरं विशाल्यौ दीर्घवँशं शिक्यं शतातृष्णां शतमानं हिरण्यं सतं च वालं च ब्राह्मणमाहुत्या उच्छेषणस्य पातारम् । यदि ब्राह्मणं न विन्दति, बल्मीकवपाम् । अथाऽऽमावास्येन वा हविषेष्ट्वा नक्षत्रे वाऽग्रेण शालां रोहिते चर्मणि सुरासोमः सन्नः शेते । [रोहिते चर्मणीति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ अप्यरोहितं स्यादिति शालीकिः ॥] तं दक्षिणतः क्लीब उपास्ते । सीसेन क्लीबाच्छष्पाणि क्रीणाति इदं तवेदं मम इति । क्रीतः सुरासोमः इति । अथैनमादाय पूर्वया द्वारा शालां प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमुपसादयति । अथैतेषां व्रीहीणामर्धानवघ्नन्ति । अथेतरान् गार्हपत्य एककपालमधिश्चित्य भर्जन्ति । तेषां ये फलन्ति लाजास्ते भवन्ति । अथ य उ न फलन्ति तास्तर्ह्यः । गार्हपत्ये नवां कुम्भीमधिश्चित्य प्रोदकमिवौदनं श्रपयन्ति । अथैनं विस्त्राव्य कठिने वा पाजके वा विषजन्ति । अथैनान् भृग्वानवघ्नन्ति । तेषां यानि च क्षुद्राणि याश्च तर्ह्यस्ता उत्सेके संप्रकिरन्ति । तं मासर इत्याचक्षते । अथ मानमादाय विमिमीत एकं शष्पाणां द्वे तोक्माणां त्रीणि लाजानां चत्वारि नग्नहोः । [सौत्रामणिकी सुरा पादकिष्वा वा भवत्यपि वा पञ्चिका । शष्पाणि च तोक्माणि चेति । यवानामु ह शष्पाणि भवन्ति व्रीहीणामु ह तोक्माणि । माषास्तु नग्नहुः ।] अथैतमोदनं चूर्णैरनुप्रकिरन् मासरेणाऽवोक्षन् संपादयति स्वाद्रीत्वा स्वादुना तोत्रां तीव्रेणाऽमृतामष्टेन सृजामि सँ सोमेन इति । अथैतामासन्दीमग्रेणाऽऽहवनीयं पर्याहृत्य दक्षिणतो निदधाति । आसन्ध्यामिण्ड्वमिण्ड्वे कुम्भं कुम्भे कारोतरमवदधाति । अथैतमोदनमभितः कारोतरं परिचिनोति । [अथाऽयं कारोतरो दारुमयो वा वैदलो वा मृन्मयो वा चर्मणा त्वेवाऽभिविदि स्यात् । अयं सुतासुतीति । सुतमु हाऽस्याऽमुत्र भवत्यासुतमु हाऽस्येह भवति ।] अथैनमपिधायाऽभिमृशति सोमोऽस्थिभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व इति । तिस्रः सँसृष्टा वसति । तिस्रो हि रात्रीः क्रीतः सोमो वसतीति ब्राह्मणम् ।

२. अथ तिसृषु व्युष्टासु तायते त्रिपशुर्वा चतुष्पशुर्वा पशुबन्धः । अथाऽस्यैषा पूर्वैशुरेव सौत्रामणिकी वेदिर्विमिता भवति । तां परिस्तीर्य स्तम्बयजुर्हरति । इदमेव प्रसिद्धं पौरोडाशिकम् । त्रियंजुषा तूष्णीं चतुर्थम् । पूर्वं परिग्राहं परिगृह्णाति । करणं जपति । उद्धन्ति । उद्धतादाग्रीध्रस्त्रिहरेति । यदाग्रीध्रस्त्रिहरेत्यथ चात्वालस्याऽऽवृता चात्वालं

परिलिखति । उत्तरवेदेरावृतोत्तरवेदिं निवपति । उत्तरनाभिमुत्साद्य यूपावटं खात्वा-
ऽग्नेरावृता द्वावग्नी प्रणयत आहवनीयादेवाऽध्वर्युरन्वाहार्यपचनात्प्रतिप्रस्थाता । अग्निवत्यु-
त्तरं परिग्राहं परिगृह्य योयुपित्वा तिर्यञ्च५ स्फ्य५ स्तब्ध्वा संप्रैषमाह प्रोक्षणीरासादयेष्मा-
बर्हिषसादय सुव५ स्वधिति५ सुचश्च समृद्धिं तूष्णीं पृषदाज्यग्रहणीं पत्नी५ संनह्याऽऽज्येन च दध्ना
चोदेहि प्रतिप्रस्थातः सुरासोमस्य विद्धि इति । अध्वर्युरेव प्रसिद्धं पाशुबन्धिकं कर्म चेष्टति । अथ
प्रतिप्रस्थाता सुरा५ संपवय्य सशस्त्रामादाय पूर्वया द्वारोपनिर्हृत्याऽन्तर्वेद्यासादयति । याव-
देवाऽत्राऽध्वर्युश्चेष्टति तावदेष प्रतिप्रस्थाता सत उदीचीनदशेन वालेन सुरां पुनाति पुनातु
ते परिक्षुत५ सोम५ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना इति । वायुः पूतः पवित्रेण इति यदि सोमा-
तिपवितो भवति । [उभयनीतस्य करण इति । उमे ऋचौ द्विरभ्यावर्तयेदिति बौधायनः ॥
सकृदेव ब्रुवन् द्विर्ब्रूयादिति शालीकिः ॥ प्राङ् सोमः प्रत्यङ् सोमः । प्रत्यङ् सोमः प्राङ् सोम
इति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः शालीकेः ॥] [सौत्रामणिकायै सुरायै संधान
इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो ह स्माऽऽहौपमन्यवो यत्रैव सुरा स्यात्तत एवाऽऽहारये-
दिति ॥] अथाऽऽदत्ते पर्णमयं पात्रम् । तेन गृह्णाति कुविदज्ञ यवमन्तः इति अनुद्रुत्य
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा जुष्टं गृह्णामि इति । बर्हिषी अन्तर्धाय कलसकुमिश्च सि५हलोम-
मिश्च श्रीणाति । अपोद्धृत्य बर्हिषी इयेनपत्रेण परिमृज्य सादयति एष ते योनिरश्विभ्यां
त्वा इति । अथाऽऽदत्ते नैयग्रोधं पात्रम् । तेन गृह्णाति कुविदज्ञ यवमन्तः इत्यनुद्रुत्य उपयाम-
गृहीतोऽसि सरस्वत्यै त्वा जुष्टं गृह्णामि इति । बर्हिषी अन्तर्धाय बदरसकुमिश्च व्याघ्रलोम-
मिश्च श्रीणाति । अपोद्धृत्य बर्हिषी इयेनपत्रेण परिमृज्य सादयति एष ते योनिः सरस्वत्यै
त्वा इति । अथाऽऽदत्त आश्वत्थं पात्रम् । तेन गृह्णाति कुविदज्ञ यवमन्तः इत्यनुद्रुत्य
उपयामगृहीतोऽसिन्द्राय त्वा सुत्राग्ने जुष्टं गृह्णामि इति । बर्हिषी अन्तर्धाय कर्कन्धुसकुमिश्च
वृकलोममिश्च श्रीणाति । अपोद्धृत्य बर्हिषी इयेनपत्रेण परिमृज्य सादयति एष ते योनि-
रिन्द्राय त्वा सुत्राग्ने इति । [सुराग्रहाणां ग्रहण इति ॥ सूत्रं बौधायनस्य ॥ पयोग्रहानप्यत्र
गृहीयादिति शालीकिः ॥] ताजघनेन छुग्दण्डान् प्राचो वोदीचो वाऽऽयातयति ।
[ताजघनेन छुग्दण्डान् प्राचो वोदीचो वाऽऽयातयतीति ॥ पूर्वः कल्पो बौधायनस्योत्तरः
शालीकेः ॥] अथैता५ सुरा५ सप्ररेकामादाय दक्षिणमग्निमुपस५सर्पति । तमभितो गतौ
खानयति । तदुपसादयति विशाख्यौ दीर्घव५श५ शिक्व५ शतातृण्णा५ शतमान५
हिरण्य५ सतं च वालं च । अथ दक्षिणमग्निमग्रेण पुराणभस्मनः खरं करोति । तदुप-
सादयति ब्राह्मणमाहुत्या उच्छेषणस्य पातारम् । यदि ब्राह्मणं न विन्दति, वल्मीकवपाम् ।

३. अथाऽप उपस्पृश्य यूपस्याऽऽवृता यूपमुच्छ्रयति । स्वर्वन्तं यूपमुत्सृज्य
अथैतान् पशुनुपाकरोति आश्विनं धूम५ सारस्वतं मेघमैन्द्रमुषभम् । बार्हस्पत्यं पशुं चतुर्थं
यदि सोमातिपवितो भवति । तेषां प्रसिद्धं वपाभिश्चरित्वाऽऽश्विनसारस्वतावध्वर्युरादत्ते ।
येन्द्रं प्रतिप्रस्थाता । ग्रहावादायोपोत्तिष्ठन्नाह अश्विभ्या५ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राग्ने सुराग्ना५
सोमानामनुब्रूहि इति । युव५ सुराममश्विना इत्येतामन्वाह । [बौ० १४.२३—युव५ सुराममश्विना
इति सौत्रामण्यामेष भवति ।] अत्याक्रम्याऽऽश्रव्याऽऽह अश्विभ्या५ सरस्वत्या इन्द्राय

सुराम्णे सुराम्णः सोमान् प्रस्थितान् प्रेष्य इति । मैत्रावरुणो होता यक्षदक्षिणा सरस्वतीमिन्द्रं
सुरामाणम् इति । पुत्रमिव पितरावधिनोभा इति यजति । अहान्यमे हविरास्ये ते इति वषट्कृते
जुहोति । यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणः इत्यनुवषट्कृते हुत्वाऽऽश्विनस्य सः स्रावः सार-
स्वतेऽवनयति । सारस्वतस्य सः स्रावमैन्द्रे । तं ब्राह्मणो भक्षयति नाना हि वां देवहितं,
यदत्र इति द्वाभ्याम् । यदि ब्राह्मणं न विन्दति, बल्मीकवपायामवनयत्येतेनैव मन्त्रेण ।
[सुरासोमस्य संचर इति ॥ दक्षिणेन हत्वोत्तरेणाऽवनयेदिति बौधायनः । उत्तरेण हत्वा
दक्षिणेनाऽवनयेदिति शालीकिः ॥ यत एवैनं हरेत्त एवैनमवनयेदित्यौपमन्यवः ॥]
अथैतानि पात्राणि बल्कशस्य पूरयित्वा पर्णमये श्येनपत्रमवगृहति । तद्विशाल्यावुच्छ्रित्य
दक्षिणाग्रं वः शं प्रोहति वः शे शिक्यं सजति शिक्ये शतातृण्णां शतातृण्णायां वालं
वाले शतमानं हिरण्यम् । अथैतां सुरां सप्ररेकामादाय शतातृण्णायां समवनयति
सोमप्रतीकाः पितरस्तृण्यत इति । क्षरति शतातृण्णा इत्युपतिष्ठन्ते पवमानः सुवर्जनः इत्येतेना-
ऽष्टर्चनं । [बौ० १४.३०—पवमानः सुवर्जनः इति सौत्रामण्यामेष भवति ।] अथ यदि सोमाति-
पवितो भवति पितृणां याज्यानुवाक्याभिरुपतिष्ठन्ते उदीरतामवर उत्परासः, आऽहं पितृन्सुवि-
दत्रां अविस्ति, इदं पितृभ्यो नमो अस्तवद्य इति । अध्वर्युर्होता ब्रह्मा त उपतिष्ठन्ते । [पावमानी-
भिरुपस्थान इति ॥ पावमानीभिरुपस्थाय पितृणां याज्यानुवाक्याभिरुपतिष्ठेरन्निति
बौधायनः ॥ पितृणामेव याज्यानुवाक्याभिर्न पावमानीभिरिति शालीकिः ॥] यत्रैव
शतातृण्णां धारयति तन्निदधाति प्रतिष्ठित्या इति ब्राह्मणम् । तदेवैनां निधाय दक्षिणतो
निदधाति । अथैतानि पात्राणि पुराणभस्मनः खरे सादयति । पितृभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा
नमः, पितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः, प्रपितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः इति । अत्र
गर्भिणीं वडवां ददाति । अथाऽप उपस्पृश्य बार्हस्पत्यस्य पशुपुरोडाशं याचति । तेन
प्रचरति देवताप्रभृतिनेडान्तेन । अथ पशुभिश्चरति मनोताप्रभृतिभिरिडान्तैः । अथैतान्
पुरोडाशान् याचत्यैन्द्रमेकादशकपालं सावित्रं द्वादशकपालं वारुणं दशकपालमिति ।
तैश्चरति देवताप्रभृतिभिरिडान्तैः । अनूयाजैश्चरित्वा प्रदक्षिणमावृत्य प्रत्यङ्मुखाद्रुत्पत्नीः
संयाज्य प्राडेत्य ध्रुवामाप्याय्य त्रीणि पाशुबन्धकानि समिष्टयजूंषि जुहोति यज्ञ यज्ञं
गच्छ, एष ते यज्ञो यज्ञपते, देवा गातुविदः इति ।

४. अत्रैतमवभृथं सः सादयन्ति । [अवभृथ इति ॥ सूत्रमाचार्ययोः ॥ अत्रो
ह स्माऽऽहौपमन्यवः शूलैश्च मासरेण चाऽवभृथमवेयादिति ॥ आख्यातमुदकान्तस्य प्रत्य-
सनम् । आख्यातमाप्लवनम् । आख्यातं समिधां करणम् ।] यत्किञ्चित्सुरालिप्तं भवति
तत्सह हृदयशूलानि भवन्ति । एतत्समादायाऽन्तरेण चात्वालोत्करावुदङ्मुपनिष्कामन्ति ।
द्वे सुती अशृण्वं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वं भुवनं समेत्यन्तरा पूर्वमपरं
च केतुम् इति । प्रसिद्धं हृदयशूलैश्चरित्वाऽथैतानि पात्राण्युदकान्ते पराञ्चि सादयति
यस्ते देव वरुण गायत्रछन्दाः पाशो ब्रह्मन् प्रतिष्ठितः । तं त एतेनाऽवयजे इति पर्णमयम् । यस्ते
देव वरुण त्रिष्टुप्छन्दाः पाशः क्षत्रे प्रतिष्ठितः । तं त एतेनाऽवयजे इति नैयग्रोधम् । यस्ते देव वरुण
अगतीछन्दाः पाशो विश्व प्रतिष्ठितः । तं त एतेनाऽवयजे इत्याश्वत्थम् । यस्ते देव वरुणाऽनुष्टुप्छन्दाः

पाशः पशुषु प्रतिष्ठितः । तं त एतेनाऽवयजे इति शतातृणाम् । तूष्णीं सतं वालं च । प्रसिद्धोऽवभृथः । साम चैव नाऽऽह देवीराप एष वो गर्मः इति च । अथाऽप्रतीक्षमायन्ति वरुणस्याऽन्तर्हित्यै । प्रपथे समिधः कुर्वते एधोऽस्येधिषीमहि इति । एत्याऽऽहवनीयेऽभ्या-
दधाति समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि इति । अथाऽऽहवनीयमुपतिष्ठन्ते अपो अन्वचारिषः
रसेन समसृक्षमहि । पयस्वाः अग्न आगमं तं मा सः सृज वर्चसा इति । अथ कुसीदेन सक्तुहोमेन
चरति । अथ देवता उपस्थाय यूपमुपतिष्ठते । संतिष्ठते सौत्रामणी ॥

इति हविर्यज्ञसंस्थाः समाप्ताः ॥

परिभाषा

बौधायनश्रौ० [२४.१-११]—

पञ्चतयेन कल्पमवेक्षेत छन्दसा ब्राह्मणेन प्रत्ययेन न्यायेन सः स्थावशेनेति ।
छन्दसेति यद्वोचाम यथाम्नायप्रणिधीदं पूर्वमिदमुत्तरमिति । अथाऽपि मन्त्र एव स्वयं
कर्म प्रब्रूते । कर्मानुवादो भवति । यथैतद्भवति प्रेयमगाद्विषणा बर्हिंरच्छ, उर्वन्तरिक्षमन्विहि,
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्रे जुष्टं निर्वपामि इति । यच्छन्दसा
न शक्नुयात्कल्पयितुं, ब्राह्मणेन तच्चिकल्पयिषेत् । ब्राह्मणमु हैवैनान् मन्त्रानप्रज्ञातान्
विदधातीदमनेन करोतीदमनेनेति । यथैतद्भवति इषे त्वोर्जे त्वा इति शाखामाच्छिनत्ति,
वायवः स्थोपायवः स्थ इति वत्सानपाकरोतीति । अथाऽप्यमन्त्राणि कर्माणि विदधाति ।
यथैतद्भवत्यष्टासु प्रक्रमेषु ब्राह्मणोऽग्निमादधीतैकादशसु राजन्यो द्वादशसु वैश्य इत्येवं
व्यवस्थावर्णसंयोगात् । यथो एतत्प्रत्ययेनेति छन्दोगबह्वृचाध्वर्युप्रत्ययेनेति । यथो
एतन्न्यायेनेति प्राकृते तन्त्रे प्राकृतं न्यायमनधिगच्छन् ग्रामन्यायं प्रतीयादयमिहा-
ऽहंताः समारम्भ इति । यथो एतत्सः स्थावशेनेति सोमेऽपहत आदाराः अ फाल्गुनानि
चाऽभिषुणुयादिति । चतुष्टयेन मन्त्रा वर्तन्ते स्तुत्या निर्देशेनाऽऽशिषा नैव स्तुत्या
नाऽऽशिषा न निर्देशेनेति चतुर्थम् । अथेमे पञ्च हविराकारा औषधं पयः पशुः सोम
आज्यमिति ॥ १ ॥

तेषां पृथक्पृथग्धर्माः पृथगधिकरणानि । यथाधिकरणं मन्त्रा दृष्टाः । तावन्न
मिथः सः सादयेदनादेशात् । येन येन यद्विधः सः सिध्येत्तेन तेन तत्कुर्यात्तत्तस्याऽधि-
करणम् । उक्तान्यधिकरणानि । यज्ञ इति । किमुपज्ञो यज्ञः ? श्रद्धोपज्ञो माङ्गल इति ।

१. बौधायनश्रौतसूत्रे कर्मान्तसूत्रस्यादितः कासुचन कण्डिकासु परिभाषारूपो विषयः
प्रोक्तः । अतस्ताः कण्डिका अत्रोद्भिद्यन्ते । यत्सत्यं सूत्रभागोऽयं हविर्यज्ञसंस्थास्वनुक्तान् बहून् विषयान्
स्पृशति । तथापि परिभाषास्वरूपस्य सर्वस्य सूत्रभागस्यैकत्रावस्थापनं शुक्तं मत्वाऽयमत्र साकल्येन मुद्रितः ।
तथा च बौ. १०.१४ अस्यां कण्डिकायां व्याख्यातानि छन्दस्यनाम्नातानि हुतानुमन्त्रणान्यप्यत्र
संगृह्यन्ते ।

क उ खलु यज्ञ इति । पुरुष इति । का उ खलु देवता दीक्षेति । वागिति । का उ खलु पथ्या स्वस्तिरिति । वागेवेति । का उ खल्वेकाक्षरा गायत्रीति । वागेवेति । क उ खलु यज्ञस्याऽऽरम्भः का प्रतिष्ठेति । विज्ञायते स्वाहा यज्ञं मनसा स्वाहा द्वावापृथिवीभ्यां स्वाहोरोन्तरिक्षात्स्वाहा यज्ञं वातादारभे इति । वात एव यज्ञस्याऽऽरम्भो वातः प्रतिष्ठेति ॥ २ ॥

कथमु खल्वेतज्जानीयादिदं तन्त्रमयमावाप इति । अग्न्यन्वाधानप्रभृति तन्त्रमा आज्यभागाभ्यामन्यत्रौषधात् । तस्मिंस्तन्त्रे सत्यावापस्थानानि भवन्ति यथैतद्धेनूनां दोहनं कपालानामुपधानं स्तम्बयजुषो हरणमाज्यग्रहा इति यच्च किंचाऽभिनिवपति । ऊर्ध्वमाज्यभागाभ्यामेष मध्यत आवापो भवति यस्मिन्नेतद्धवींष्योप्यन्ते तस्मिन्नेवाऽऽवापजानि तन्त्रस्थानं भजन्ते यथैतत्प्राशित्रं यजमानभागब्रह्मभागौ स्विष्टकृच्छेडा चेति । अवदानत आवापो भवति तन्त्रं तु प्रदानतः । क उ खलु तन्त्रमावापभूयं गच्छत्यावापो वा तन्त्रभूयमिति । मैत्राबार्हस्पत्येऽप्यन्यस्मिंस्तन्त्रमु ह निर्वपणतो भवत्यावाप उ प्रदानतः । अथ वारुणीषु च संज्ञानीष्ट्यां चाऽऽवापो ह निर्वपणतो भवति तन्त्रं तु प्रदानतः । अनूयाजप्रभृति तन्त्रमा समिष्टयजुषो होमात् । किंदेवत्या उ खल्वनूयाजा भवन्तीति । आग्नेया इत्येव ब्रूयात् । विज्ञायते तं देवा आहुतीभिरनूयाजेष्वन्वविन्दन् यदनूयाजान् यजत्यग्निमेव तत्समिन्दे इति । ऋतुदेवता उ खलु प्रयाजा भवन्तीति ॥ ३ ॥

कियत्यः पाकयज्ञसंस्थाः कियत्यो हविर्यज्ञसंस्थाः कियत्यः सोमसंस्था इति । हुतः प्रहुत आहुतः शूलगवो बलिहरणं प्रत्यचरोहणमष्टकाहोम इति सप्त पाकयज्ञसंस्था इति । अपरिमिता उ हैके ब्रुवते । यच्च किं चाऽन्यत्र विहाराद्भूयते सर्वास्ताः पाकयज्ञसंस्था इति । अथ हविर्यज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्थानि दाक्षायणयज्ञः कौण्डपायिन्य इति । सौत्रामणिमु हैके ब्रुवते । अथ सोमसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽतोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः । यदग्निष्टोमस्य ऋतुकरणं तदत्यग्निष्टोमस्य । यदुक्थ्यस्य तत् षोडशि-वाजपेयोः । यदतिरात्रस्य तदतोर्यामस्येति । सप्तानां सोमसंस्थानां द्वे सत्राणि न गच्छतो वाजपेयश्चाऽतोर्यामश्चेति ॥ ४ ॥

कथमु खल्वेतज्जानीयादियं पूर्वा ततिरियमुत्तरेति । या प्रकृतिः सा पूर्वा ततिः । अथ यद्विदधाति सोत्तरा ततिः । अग्न्याधेयं पूर्वा ततिः पुनराधेयमुत्तरा ततिः । दर्शपूर्णमासाविष्टीनां पूर्वा ततिः सर्वाः काम्या इष्टय उत्तरा ततिः । ऐन्द्राग्नौ निरूढपशु-बन्धानां पूर्वा ततिः सर्वे काम्याः पशव उत्तरा ततिः । ज्योतिष्टोमः सोमानां पूर्वा ततिः सर्वे सोमा उत्तरा ततिः । इयेनचिदग्नीनां पूर्वा ततिः सर्वे काम्या अग्नय उत्तरा ततिः । द्विरात्रोऽहीनानां पूर्वा ततिः सर्वेऽहीना उत्तरा ततिः । द्वादशाहोऽहर्गणानां पूर्वा ततिः सर्वेऽहर्गणा उत्तरा ततिः । गवामयनं सांवत्सरिकाणां सत्राणां पूर्वा ततिः सर्वाणि सांवत्सरिकाणि सत्राण्युत्तरा ततिः । कियन्ति नु खलु गवामयनानि भवन्तीति । विज्ञायते यथैतन्मासि पृष्ठमुत्तमे मासि सकृत् पृष्ठान्युपेयुर्दशमास्यं तृतीयम् । सप्त ग्राम्या ओषधयः

सप्ताऽऽरण्याः । सप्त ग्राम्याः पशवः सप्ताऽऽरण्याः । सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराणीति । सप्त ग्राम्या ओषधयस्तिलमाषवीहियवाः प्रियङ्गवोऽणवो गोधूमाः सप्तमे । कुलत्थानु हैके ब्रुवते । सप्ताऽऽरण्याः श्यामाकाश्च नीवाराश्च जर्तिलाश्च गवीधुकाश्च गर्मुताश्च वास्त्वानि च वेणुयवाश्च सप्तमे । कुरुविन्दानु हैके ब्रुवते । सप्त ग्राम्याः पशवो गोअश्वमजाविकं पुरुषश्च गर्दभश्चोष्ट्रश्च सप्तमे । अश्वतरमु हैके ब्रुवते । सप्ताऽऽरण्या द्विखुराश्च श्वापदानि च पक्षिणश्च सरीसृपाणि च हस्ती च मर्कटश्च नादेयाः सप्तमे । सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराणीति गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगतीति ॥ ५ ॥

अथेदं त्रयं भवति कर्माभ्यावर्तिं देवताभ्यावर्तिं संख्याभ्यावर्तिं । सावित्रं नु खल्विदं कर्माभ्यावर्तिं भवति । अथ देवताभ्यावर्तिं ध्रुवाज्यं द्रोणकलशः सर्वपृष्ठेति । अथ संख्याभ्यावर्तिं त्रिः पृच्छति शतं हवीः शमितः इति । अथाऽपि राज्ञो मानम् । क उ खलु मन्त्रमन्तरितं कल्पयेत् । स्थानाद्वा स्थानं प्रजिज्ञासीताऽऽभिरूपेण वा प्रौहेण वेति । स्थानात्स्थानमिति यद्वोचाम योऽनन्तरो मन्त्र आम्नातः स्यात्तेनैनं सह कल्पयेत् पूर्वकालेन वोत्तरकालेन वेति । यथो एतदाभिरूपेणेति । यथैतद्भवति आशासानः सुवीर्यं रायस्योषं स्वधियम् । बृहस्पतिना राया स्वगाकृतो मह्यं यजमानाय तिष्ठ इति । यथो एतत्प्रौहेणेत्यग्निकल्पः खल्वयमिष्टकाभूयान् समाम्नातः । तत्र यो मन्त्रोऽन्तरितः स्यादिष्टकाभूयमेनमापादयेत् ॥ ६ ॥

अथाऽयमश्वमेध आहुतिभूयान् समाम्नातः । तत्र यो मन्त्रोऽन्तरितः स्यादाहुतिभूयमेनमापादयेत् । नाऽप्रक्रान्तं प्रक्रमयेन्न प्रक्रान्तं कर्म तूष्णीं कर्मणाऽभिपूरयिषेदिति । नाऽप्रक्रान्तमिति यद्वोचाम बर्हिर्लवनः खल्वयं ह्रस्वो मन्त्र आम्नातो भवति दीर्घमु कर्म । न कर्मणो हेतोर्मन्त्रोऽभिनिवर्तेत । अथाऽयं पशोर्विंशसनो ह्रस्वो मन्त्र आम्नातो भवति दीर्घमु कर्म । न कर्मणो हेतोर्मन्त्रोऽभिनिवर्तेत । अथाऽस्यां स्वयमातृणायां दीर्घो ह मन्त्र आम्नातो भवति ह्रस्वमु कर्म । न कर्मणो हेतोर्मन्त्रो विरम्येत् । यथो एतत्त्रिर्यजुषा सकृत्तूष्णीमिति । लोकाग्नींश्च तेषामुपश्रुत्य स्तम्बयजुश्चेति । यथो एतत्पञ्चकृत्वो यजुषा पञ्चकृत्वस्तूष्णीमिति राज्ञस्तेषां मानमुपश्रुत्येति । यथो एतत् सकृद्यजुषा सकृत्तूष्णीमिति राज्ञ एव तेषां मानमुपश्रुत्येति । यथो एतच्चतुरो मुष्टीन् व्रीहीणां निर्वपतीति द्वौ देवतायै स्विष्टकृते तृतीय इडायै चतुर्थ इति सर्व पवैतेषां ब्राह्मणवन्तः ॥ ७ ॥

अथाऽत आदेशकारितानि व्याख्यास्यामः । अनादिष्टोऽग्निः । अपि तु यथैतद्भवत्यग्निदेवने जुहोति रथमुखे जुहोति रथनाड्यां जुहोति चतुष्पथे जुहोति वर्त्मनोर्जुहोत्याव्रश्चने जुहोति पदे जुहोत्यजायां जुहोत्यजस्य दक्षिणे कर्णे जुहोत्यजस्य दक्षिणे शृङ्गे जुहोति ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते जुहोति दर्भस्तम्बे जुहोत्यप्सु जुहोत्यौदुम्बर्यां जुहोति वल्मीकवपायां जुहोत्यौपासने जुहोत्युत्तपनीये जुहोति शामित्रे जुहोत्याग्नीध्रीये जुहोत्यन्वाहार्यपवने जुहोति गार्हपत्ये जुहोतीति । अनादिष्ट आहवनीय एव होतव्यम् । अनादिष्टोऽध्वर्युः । अपि तु यथैतद्भवत्युन्नेता जुहोति प्रतिप्रस्थाता जुहोतीति । अनादिष्टे-

ऽध्वर्युणैव होतव्यम् । अनादिष्टं पात्रम् । अपि तु यथैतद्भवत्यञ्जलिना जुहोति शूर्पेण जुहोति कृष्णाजिनपुटेन जुहोति मध्यमेन पर्णेन जुहोत्यन्तमेन पर्णेन जुहोत्यर्कपर्णेन जुहोति पर्णमयेन स्रुवेण जुहोत्यौदुम्बरेण स्रुवेण जुहोत्यङ्गुष्ठाभ्यां जुहोति विस्त्र-सिकाकाण्डाभ्यां जुहोति गोमृगकण्ठेन जुहोत्यश्वशफेन जुहोत्ययस्मयेन कमण्डलुना जुहोतीति । अनादिष्टे स्रुचैव होतव्यम् । अनादिष्टा समित् । आदेशादेव समिधं जानीयात् । विज्ञायते नाऽसमित्के जुहुयाद्यदसमित्के जुहुयाद्यथाऽजिह्वेऽन्नं दद्यात्तादृक् तत् । तस्मात्समित्वत्येव होतव्यम् । अनादिष्ट उपसमाधायैव होतव्यम् ॥ ८ ॥

अथातोऽवदानकल्पः । चतुरुन्नयति चतुरवत्तं भवतीति । अनादिष्ट उपहत्यैव होतव्यम् । अनादिष्टः हविः । आदेशादेवाऽन्यद् व्रीहियवेभ्यो जानीयात् । अपि तु नु खलु क्षिप्रसः स्कारतममाज्यं ब्रुवते । अनादिष्टः पशुः । आदेशादेवाऽन्यमजाज्जानीयादैन्द्राग्रात् । यदभिहारं तन्त्रः स्यात्तदभिहारं कुर्यात् । अग्न्यभिहारौ दर्शपूर्णमासौ । सोम इन्द्राभिहारः । सावित्रमौषधस्य निर्वपणं दष्टं भवति । किं स्वित्सांनान्यस्य पशो राज्ञ इति । दोहनः सांनान्यस्य । उपाकरणं पशोः । यदुपाशुसवनमभि मिमीते तद्राज्ञः । प्रज्ञातमन्येषां हविषां पर्यग्निकरणम् । किं स्वित्द्राज्ञ इति । यदेवाऽदो वसतीवरीः परिहरति तद्राज्ञ इति ॥ ९ ॥

अथाऽतः पुरोडाशान् व्याख्यास्यामः । सर्व एवाऽऽग्नेया अष्टाकपाला अन्यत्र पौनराधेयिकात् । सर्व एवैन्द्राग्रा एकादशकपाला अन्यत्राऽऽग्रयणाच्च शुनासीरीयाच्च । सर्व एवैन्द्रा एकादशकपाला अन्यत्र शुनासीरीयात् । सर्व एवाऽग्नीषोमीया एकादशकपाला अन्यत्र श्यामाकात् । सर्व एव पशुपुरोडाशा एकादशकपाला अन्यत्र वायव्यात् । यदेवत्यः पशुस्तदेवत्यः पशुपुरोडाशोऽन्यत्र वायव्याद्भवति । सर्व एवाऽऽग्रावैष्णवा एकादशकपाला अन्यत्राऽध्वरकल्पायै । तत्रैवाऽष्टाकपालश्च द्वादशकपालश्च भवतः । सर्व एव सावित्रा द्वादशकपाला अन्यत्राऽऽश्वमेधिकेभ्यः । तत्रैवाऽष्टाकपालश्चैकादशकपालश्च भवतः । सावित्रोऽष्टाकपाल इति च । सर्व एव मारुताः सप्तकपाला अन्यत्राऽऽश्वमेधिकानां चातुर्मास्यपशूनां पशुपुरोडाशेभ्यो मारुताच्चैकविंशतिकपालादन्यत्र राजसूयिकात् पञ्चशारदीयानां च पशूनां पशुपुरोडाशेभ्यः । किमनुख्यानि नु खलु ते विलेख्यानि कपालानि भवन्तीति । विज्ञायते वैश्वानरं द्वादशकपालं मृगाखरे भूमिकपालं निर्वपेदित्येतदनुख्यानि भवन्तीति । अथ पूर्वसः स्थाः । पञ्चप्रयाजस्य नवप्रयाजस्यैकादशप्रयाजस्येति प्रयाजाः पूर्वसः स्थाः । पर्यग्निकरणं पशोरुपाश्वभिषवोऽग्निष्टोमे गवामयने चतुर्विंशमहः । तदपि विज्ञायते तस्य त्रीणि च शतानि षष्टिश्च स्तोत्रीयाः । तावतीः संवत्सरस्य रात्रय इति ॥ १० ॥

अथ राजयज्ञाः । राजसूयोऽश्वमेधः पुरुषमेधः सर्वमेधः सोमसवः पृथिसवो मृत्युसवः कानान्धयज्ञः शुनस्कर्णयज्ञ इति च । अथाऽदितिदेवता । अग्न्याधेये त्वेव प्रथमश्चरुः । चातुर्मास्येषु द्वितीयः । प्रायणीयोदयनीययोरग्निदीक्षणीयायाम् । त्रयो राजसूये

रत्निमानेषु च प्रायुजेषु चाऽऽदित्यां मरुहां गर्भिणीमालभत इति च । एक इष्टिकल्पे । एको वात्यस्तोमे । चत्वारोऽश्वमेधेऽदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुदित्यै हॠससाचिरदित्यै त्रयो रोहितैतास्तिस्रो मेघ्य आदित्याः । द्वौ सौत्रामण्याम् । आदित्याऽविर्वशा । ग्रहोऽष्टादश इति च । त्रीणि तन्त्राणि यज्ञमन्वायत्तानि भवन्ति पञ्चप्रयाजं नवप्रयाजमेकादशप्रयाजमिति । पञ्चप्रयाजेन दर्शपूर्णमासौ काम्या इष्टय इति वर्तन्ते । नवप्रयाजेन चातुर्मास्यानि । एकादशप्रयाजेन पशुः सोम इति । षड्मिनि सर्वकल्पे सर्वाभिप्रायिकाणि भवन्ति । यथैतदग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोम इति । तदपि विज्ञायतेऽथ यदस्याऽग्निमुद्धरति सहस्रं तेन कामदुघा अवरुद्धे । अथ यदग्निहोत्रं जुहोति सहस्रं तेन । एषा वै वैश्वदेवस्य मात्रा । एतद्वा एतेषामवमम् । अतोऽतो वा उत्तराणि श्रेयांसि भवन्ति । सर्वान् लोकान् पशुबन्धयाज्यभिजयति । एकस्मै वै कामायाऽन्ये यज्ञकृतव आलभ्यन्ते । सर्वेभ्यः कामेभ्यः पशुः सोम इति ॥ ११ ॥

बौ० [२७.१४]—

अथाऽतश्छन्दस्यनाम्नातानि हुतानुमन्त्रणानि व्याख्यास्यामः । वैमृधमिष्टमनुमन्त्रयते इन्द्रस्य वैमृधस्याऽहं देवयज्ययेन्द्रियाव्यसपत्नो वीर्यवाञ्छीमान् भूयासम् इति असपत्नो वीर्यवान् भूयासम् इति वा । पर्जन्यस्याऽहं देवयज्यया सुयवसो भूयासम् । सोमस्याऽहं देवयज्यया प्र प्रजया च पशुभिश्च जनिषीय, सुरेता रेतो धिषीय इति वा । सवितुरहं देवयज्यया स्वस्तिमान् पशुमान् भूयासम् । सरस्वत्या अहं देवयज्यया वाचमन्नाद्यं पुषेयम् । सरस्वतोऽहं देवयज्यया श्रद्धामना भूयासम् । पूष्णोऽहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान् भूयासम् । मरुतामहं देवयज्यया प्राणैर्ऋष्यासम् । विश्वेषां देवानामहं देवयज्यया प्राणैः सायुज्यं गमेयम् । द्यावापृथिव्योरहं देवयज्ययोभयोर्लोकयोर्ऋष्यासं, भूमानं प्रतिष्ठां गमेयम् इति वा । वाजिनामहं देवयज्यया रेतस्वी भूयासम् । वरुणस्याऽहं देवयज्यया धर्मभागभूयासम् । कस्याऽहं देवयज्यया शविष्ठो भूयासम् । विश्वकर्मणोऽहं देवयज्यया विश्वानि कर्माण्यवरुन्धीय । अदित्या अहं देवयज्ययाऽहसो मुच्येय । वायोरहं देवयज्यया रत्नभागभूयासम् । सूर्यस्याऽहं देवयज्यया सुहशीको भूयासम् । अग्नाविष्ण्वोरहं देवयज्यया वीर्यवान् भूयासम् । विष्णोरहं देवयज्यया शिपिविष्टो भूयासम् । अर्यम्णोऽहं देवयज्यया सुवर्गं लोकं गमेयम् इति । यथादेवतमिष्टमनुमन्त्रयत एवम् । अनादिष्टानष्टाकपालानाग्नेयविकारानाचक्षते । एकादशकपालानग्रीषोमीयविकारान् द्वादशकपालान् वैश्वदेवविकारान् । एककपालं भूमिकपालं च द्यावापृथिव्यविकारौ । अतोऽन्यानग्नेयविकारान् । चरुन् सौम्यविकारान् । दधिपयामिक्षापशवः सांनार्यविकाराः । वनस्पतिः स्विष्टकृद्विकारः । उपांशुयाजानुपांशुयाजविकारानाचक्षत इति । अथाऽप्युदाहरन्ति हविःसामान्यं देवतासामान्यं कपालसामान्यमिति । हविर्देवताकपालसामान्ये हविःसामान्यं बलीय इति । अपि वा अस्य यज्ञस्याऽऽगुर उदचमशीय इति सार्वत्रिकम् ॥

इत्यंता 'काम्या इष्टयः' इत्यस्य प्रास्ताविकम् (पृ. ४६०) ।

पितृमेधः

अन्त्येष्टिः

ऋसं^१—

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१०.१४.१
अपेत वीत वि च सर्पताऽतोऽस्मा एतं पितरो लोकमकन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥१०.१४.२
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥१०.१८.८-९
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते ॥
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते ॥१०.१६.७-८
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वं पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायाऽवद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥१०.१४.७-८
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितृन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥

१. आश्वलायनगृह्यसूत्रोक्त (४.१-५) विधिक्रमेण ऋङ्मन्त्रा अत्र प्रोक्ताः । शाङ्खायन-
श्रौतसूत्रे (४.१४-१५) कौषीतकगृह्यसूत्रे (५.१-६) च ये ऋङ्मन्त्रा विनियुक्तास्तेऽपि विधिक्रमेण
तत्रतत्र निवेदिताः । येतु आश्व० गृह्यसूत्रोक्ता मन्त्रा विनियोगभेदेन तस्मिन् सूत्रे शाङ्खायनकौषी-
तकसूत्रयोर्वा निर्दिष्टास्ते तु न पुनरुक्ताः ।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चाऽस्मा अनमीवं च धेहि ॥

१०.१४.१०-११

मैनमग्ने वि दहो माऽभि शोचो माऽस्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः ॥
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतास्तु लोकम् ॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधामिभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥
यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश ॥१०.१६.१-६
ऋग्व्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवाऽयमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥
यो अग्निः ऋग्व्यात् प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स धर्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥१०.१६.९-१०
पूषा त्वेतश्चावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्राऽऽसते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१०.१७.३-६
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥

उच्छ्वश्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः स्रपायनाऽस्मै भव स्रपवश्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥

उच्छ्वश्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहाऽस्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥
उत्ते स्तन्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते भिनोतु

॥१०.१८.१०-१३

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवाऽपि गच्छतात् ॥

तपसा ये अनाघृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः । तपो ये चक्रिरे महस्ताँ० ॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः । ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँ० ॥

ये चित्पूर्वं क्रतसाप क्रतावान क्रतावृधः । पितृन् तपस्वतो यम ताँ० ॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१०.१५४.१-५

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।

तावस्मभ्यं दृश्ये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१०.१४.१२

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥१०.१८.२-३

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्वर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

इदमापः प्र बहत् यत् किं च दुरितं मयि ।

यद्वाऽहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उताऽनृतम् ॥

आपो अद्याऽन्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
 पयस्वानग्र आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥१०.९
 सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥
 सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नः.... ॥
 सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नः.... ॥
 पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नः.... ॥
 त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नः.... ॥
 तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नः.... ॥
 अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विवर्हसं रयिम् । अथा नः.... ॥
 अभ्यर्षाऽनपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नः.... ॥
 त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नः.... ॥
 रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नः.... ॥९.४
 आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
 विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०.१७.१०
 तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥
 ७.६६.१६

अश्मन्वती रीयते सं भरध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
 अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाऽभि वाजान् ॥१०.५३.८

ऐत्रा [७.१]—

तदाहुर्द्य आहिताग्निः प्रवसन् भ्रियेत कथमस्याऽग्निहोत्रं स्यादिति । अभिवान्य-
 वत्सायाः पयसा जुहुयात्० अपि वा यत एव कुतश्च पयसा जुहुयुः । अथाऽप्याहुरेवमेवैनानज-
 स्नानजुह्वत इन्धीरन्ना शरीराणामाहतोरिति । यदि शरीराणि न विद्येरन् पर्णशरः षष्टिल्लीणि
 च शतान्याद्वत्य तेषां पुरुषरूपकमिव कृत्वा तस्मिंस्तामावृतं कुर्युः । अथैनान्छरीरैराद्वतैः संस्पृश्यो-
 द्वासयेयुः । अर्घ्यशतं काये, सक्थिनी द्विपञ्चाशे च विंशे च, ऊरू द्विपञ्चविंशे, शेषं तु
 शिरस्युपरि दध्यात्० ॥

तैआ [६.१]—

परे युवां५ सं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्^१ ।
 वैवस्वतं५ संगमनं जनानां यमं५ राजानं५ हविषा दुवस्यत ॥

इदं त्वा वस्त्रं प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाऽविभः पुरा ।
 इष्टापूर्तमनु संपश्य दक्षिणां यथा ते दत्तं बहुधा वि बन्धुषु ॥
 इमौ युनज्मि ते बह्वी असुनीथाय वोढवे ।
 याभ्यां यमस्य सादनं सुकृतां चाऽपि गच्छतात् ॥
 पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
 स त्वैतेभ्यः परिददात्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रेभ्यः ॥
 पूषेमा आशा अनुवेद सर्वाः सो अस्मां अभयतमेन नेषत् ।
 स्वस्तिदा अघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रविद्वान् ॥
 आयुर्विश्वायुः परिपासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
 यत्राऽऽसते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥
 भुवनस्य पत इदं हविः । अग्नये रयिमते स्वाहा ॥
 पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे ।
 यथा नो अत्र नाऽपरः पुरा जरस आयति ॥
 पुरुषस्य सयावरि वि ते प्राणमसिस्त्रसम् ।
 शरीरेण महीमिहि स्वधयेहि पितृनुप प्रजयाऽस्मानिहाऽऽवह ॥
 मैवं मांस्ता प्रियेऽहं देवी सती पितृलोकं यदैषि ।
 विश्ववारा नभसा संव्ययन्त्युभौ नो लोकौ पयसाऽभ्याववृत्स्व ॥

[६.१२]—

१ अपश्याम युवतिमाचरन्तीं मृताय जीवां परिणीयमानाम् ।
 अन्धेन या तमसा प्रावृताऽसि प्राचीमवाचीमवयन्नरिष्ट्यै ॥
 मयैतां मांस्तां भ्रियमाणा देवी सती पितृलोकं यदैषि ।
 विश्ववारा नभसा संव्ययन्त्युभौ नो लोकौ पयसाऽऽवृणीहि ॥
 रयिष्ठामग्निं मधुमन्तमूर्मिणमूर्जः सन्तं त्वा पयसोप सः सदेम ।
 सः रय्या समु वर्चसा सचस्वा नः स्वस्तये ॥
 ये जीवा ये च मृता ये जाता ये च जन्त्याः ।
 तेभ्यो घृतस्य धारयितुं मधुधारा व्युन्दती ॥

माता रुद्राणां दुहिता वसूनाः स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र णु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट ।
पिबतूदकं तृणान्यत्तु । ओमुत्सृजत ॥

[६.१-३]—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्यं प्रेतम् ।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमितासुमेतद्युपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्त्वमेतत्पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव ॥
सुवर्णं हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै ब्रह्मणे तेजसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥
धनुर्हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै क्षत्रायौजसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥
मणिं हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै विशे पुष्ट्यै बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥
इममग्रे चमसं मा विजीह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व संग्रोर्णष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधद्विधक्ष्यन् पर्यङ्ख्यातै ॥
मैनमग्रे विदहो माऽभिश्चो माऽस्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं करवो जातवेदोऽथेमेनं ग्रहिणुतात्पितृभ्यः ॥
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥
सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा धां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥
अजोऽभागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तनुवो जातवेदस्ताभिर्वहेम सुकृतां यत्र लोकाः ॥
अयं वै त्वमस्मादधि त्वमेतदयं वै तदस्य योनिरसि ।
वैश्वानरः पुत्रः पित्रे लोककृज्जातवेदो वहेम सुकृतां यत्र लोकाः ॥

य एतस्य पथो गोप्तास्तेभ्यः स्वाहा ॥ य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः
 स्वाहा ॥ य एतस्य पथोऽभि रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ख्यात्रे स्वाहा ॥
 अपाख्यात्रे स्वाहा ॥ अभिलालपते स्वाहा ॥ अपलालपते स्वाहा ॥
 अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ यमत्र नाऽधीमस्तस्मै स्वाहा ॥
 यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
 दिवो विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्यः ॥
 अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
 अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥
 प्र केतुना बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि वृषभो रोरवीति ।
 दिवश्चिदन्तादुप मामुदानडपागुपस्थे महिषो ववर्ध ॥
 इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।
 संवेशनस्तनुवै चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥
 नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तः हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
 हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥
 अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
 अथा पितृन्सुविदत्राः अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥
 यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसा ।
 ताभ्याः राजन् परिदेह्येनः स्वस्ति चाऽस्मा अनमीवं च धेहि ॥
 उरुणसावसुतृपाबुलुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतोऽवशाः अनु ।
 तावस्मभ्यं दृश्ये सूर्याय पुनर्दत्तावसुमद्येह भद्रम् ॥
 सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
 येभ्यो मधु प्रधावति ताः श्विदेवाऽपि गच्छतात् ॥
 ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनुत्यजः ।
 ये वा सहस्रदक्षिणास्ताः श्विदेवाऽपि गच्छतात् ॥
 तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये सुवर्गताः ।
 तपो ये चक्रिरे महत्ताः श्विदेवाऽपि गच्छतात् ॥
 अश्मन्वती रेवतीः सः रभश्च्युत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
 अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमभि वाजानुत्तरेम ॥

यद्वै देवस्य सवितुः पवित्रं सहस्रधारं विततमन्तरिक्षे ।

येनाऽपुनादिन्द्रमनार्तमात्यै तेनाऽहं मां सर्वतनुं पुनामि ॥

या राष्ट्रात्पन्नादपयन्ति शाखा अभिमृता नृपतिमिच्छमानाः ।

धातुस्ताः सर्वाः पवनेन पूताः प्रजयाऽस्मान् रय्या वर्चसा सः सृजाथ ॥

उद्वयं तमसस्परिपश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

धाता पुनातु सविता पुनातु । अग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसा ॥

शब्रा^१ [१२.५.१-२]—

तदाहुर्यदेष दीर्घसत्र्यग्निहोत्रं जुह्वत्प्रवसन् म्रियेत जुहुयुरस्मा३इ ना३ इति । तद्वैके होतव्यं मन्यन्त आऽऽगन्तोरिति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैक आहुरेवमेवाऽन्वाहिता अहूयमानाः शयीरन्निति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैकेऽरण्योरग्नी समारोह्य निदधति । तमाह्वते निर्मन्यन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० इत्यमेव कुर्यात् । निवान्यवत्सामेष्ट्वै ब्रूयात् । तस्यै पयसा जुहुयात्० तस्य वा एतस्याऽग्निहोत्रस्योपचारः । प्राचीनावीती दोहयति० नाऽङ्गारे-
ष्वधिश्रयति० गार्हपत्यादुष्णं भस्म दक्षिणा निरुह्य तस्मिन्नेनदधिश्रयति० नाऽवज्योतयति । नाऽपः प्रत्यानयति० न त्रिः प्रतिष्ठापथं हरति० सकृदेव निकर्षन् हरति० नोन्नेष्यामीत्याह । न चतुरुक्षयति० सकृदेव तूष्णीं न्यक् पर्यस्यति० नोपरिष्ठात्समिधमभ्यस्य हरति० अधस्ता-
दुपास्य हरति० नोत्तरेण गार्हपत्यमेति० दक्षिणेन गार्हपत्यमेति० अथ यान्यमून्युदीचीनाग्राणि तृणानि भवन्ति दक्षिणाग्राणि तानि करोति० अथाऽऽहवनीये समिधमभ्याधाय सव्यं जान्वाच्य सकृदेव तूष्णीं न्यक्पर्यस्यति० नोदिङ्गयति । नोपमृष्टे । न प्राश्नाति । नोदुक्षति० तदाहुः यदेष दीर्घसत्र्यग्निहोत्रं जुह्वत्प्रवसन्म्रियेत कथमेनमग्निभिः कुर्युरिति । तथै हैके दग्ध्वा-
ऽऽहरन्ति । तमाह्वतमग्निभिः संग्रापयन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० अस्थीन्येतान्याह्व्य कृष्णाजिने न्युप्य पुरुषविधिं विधायोर्णाभिः प्रच्छाद्याऽऽज्येनाऽभिघार्य तमग्निभिः समुपोषेत्० तथै हैके ग्रामाग्निना दहन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैके प्रदव्येन दहन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैक उल्मुक्येन दहन्ति । तदु तथा न कुर्यात्० अथ हैकेऽन्तरेणा-
ऽग्नींश्चित्ति चित्वा तमग्निभिः समुपोषन्ति० तदु तथा न कुर्यात्० ॥

अथ ह स्माऽऽह नाको मौद्गल्यः । मरिष्यन्तं चेद्यजमानं मन्येत, यत्रैवाऽस्मा आशसनं जोषितं स्यात्तदरण्योरग्नी समारोह्य निर्मथ्य जुह्वद्वसेत् । स यदाऽस्माहोकाद्यजमानः

प्रेयात् । अथैनमन्तरेणाऽग्नीष्ट्विति चित्वा तमग्निभिः समुपोषेदिति । तदु तथा न कुर्यात्०
इत्यमेव कुर्यात् । तिस्र एव स्थालीरेष्टवै ब्रूयात् । तासु गोमयानि च शुम्बलानि चाऽवधाय
नाना त्रिष्वग्निषु प्रवृज्यात् । ते ये ततः संतापादग्नयो जायेरष्टैस्तैरेनं दहेयुः० तस्मादप्येत-
दृषिणाऽभ्यनूक्तम्—

यो अग्निरग्रेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्पति ।

येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्रे हेडः परि ते वृणक्तु इति ॥

यथर्कं तथा ब्राह्मणम् । अथैनं विपुरीषं कृत्वाऽस्यां पुरीषं प्रतिष्ठापयति० तदु तथा
न कुर्यात्० तमन्तरतः प्रक्षाल्याऽऽज्येनाऽन्वनक्ति० अथाऽस्य सप्तसु प्राणायतनेषु सप्त हिरण्य-
शकलान् प्रत्यस्यति० अथैनमन्तरेणाऽग्नीष्ट्विति चित्वा कृष्णाजिनमुत्तरलोम प्राचीनग्रीवं प्रस्तीर्य
तस्मिन्नेनमुत्तानं निपाद्य जुहुं धृतेन पूर्णं दक्षिणे पाणावादधाति सव्य उपभृतम्, उरसि ध्रुवां,
मुखेऽग्निहोत्रहवर्णी, नासिकयोः सुवौ, कर्णयोः प्राशिन्नहरणे, शीर्षंश्चमसं प्रणीताप्रणयनं,
पार्श्वयोः शूर्पे, उदरे पात्रीं समवत्तधानीं पृषदाज्यवतीम्, शिश्रस्याऽन्ते शम्याम्, आण्डयोरन्ते
वृषारवौ, अन्वगुल्लखलं च मुसलं च, अन्तरेणोरु अन्यानि यज्ञपात्राणि, दक्षिणे पाणौ स्फ्यम्०
तं यदि गार्हपत्यः पूर्वः प्राप्नुयात् तद्विद्यात् प्रतिष्ठ एनमग्निः पूर्वः प्रापत् । प्रतिष्ठास्यति ।
प्रत्येव तेऽस्मिँल्लोके स्थास्यन्ति येऽस्मात्प्रत्यश्च इति । अथ यद्याहवनीयस्तद्विद्यान्मुख्य एनमग्निः पूर्वः
प्रापत् । मुखतो लोकानजैषीत् । मुखमेव तेऽस्मिँल्लोके भविष्यन्ति येऽस्मात्प्रत्यश्च इति । अथ यद्य-
न्वाहार्यपचनस्तद्विद्यादन्नाद एनमग्निः पूर्वः प्रापत् । अन्नमत्स्यति । अन्नमेव तेऽस्मिँल्लोकेऽस्त्यन्ति
येऽस्मात्प्रत्यश्च इति । अथ यदि सर्वे सकृत् तद्विद्यात्कल्याणं लोकमजैषीदिति । एतान्यस्मिन्
विज्ञानानि० अथ यान्यश्ममयानि च मृन्मयानि च भवन्ति तानि ब्राह्मणाय दद्यात् । शवोद्वहमु
ह तं मन्यन्ते यस्तानि प्रतिगृह्णाति । अप एवैनान्यम्यवहरेयुः० अथैतामाहुतिं जुहोति पुत्रो वा
भ्राता वा यो वाऽन्यो ब्राह्मणः स्याद् अस्मान्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा इति । अनपेक्षमेत्याऽप उपस्पृशन्ति ॥

काशत्रा [१४.९.१-२] ≡ शत्रा

असं^१—

स्योनाऽस्मै भव पृथिव्यनुक्षरा निवेशनी । यच्छाऽस्मै शर्म सप्रथाः ॥

१. कौशिकसूत्रोक्त (८०-८६) विनियोगानुसारेण अथर्ववेदस्य शौनकसंहितान्तर्गता
मन्त्रा अत्रोद्दिश्यन्ते । ते च प्रायोऽष्टादशकाण्डस्थिताः । स्वस्त्ययनादिकाः केचन मन्त्रा अन्येषु
काण्डेषु दृश्यन्ते । एतेषु मन्त्रेष्वव्यवस्था एव मन्त्राः अपैसं—मध्ये उपलभ्यन्ते । तेषां पाठभेदाः टिप्पण्यां
निर्दिष्टाः ।

असंवाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।

स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्च्युतः^१ ॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृह्णो उप जुजुषाण एहि ।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥

१८.२.१९-२१

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।

अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणो आविवेश ॥१८.३.५५

दिव्यो गन्धर्वः.... ॥२.२॥ इमं मे अग्ने.... ॥६.१११॥ यौ ते माता....

॥८.६॥ स्तुवानमग्ने.... ॥१.७॥ इदं हविः.... ॥१.८॥ निःसालां

धृष्णुं.... ॥२.१४॥ अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥ पिशाच-

क्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥ सदान्वाक्षयणमसि सदान्वा-

चातनं मे दाः स्वाहा ॥२.१८.३-५॥ शं नो देवी.... ॥२.२५॥ आ

पश्यति.... ॥४.२०॥ तान्तसत्यौजाः.... ॥४.३६॥ त्वया पूर्वम्....

॥४.३७॥ पुरस्ताद्युक्तो बह.... ॥५.२९॥ रक्षोहणं वाजिनमा....

॥८.३.१॥ इन्द्रासोमा तपतं.... ॥८.४^२

एतत्ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।

तत्त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥१८.४.३१

एतत्त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाऽविभः पुरा ।

इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥१८.२.५७

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।

मृत्युर्यमस्याऽऽसीद्दूतः प्रचेता असन् पितृभ्यो गमयांचकार ॥१८.२.२७

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।

अवाङ्मव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१८.४.१

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥

१. अपैसं १९.५२.२-पूर्तमिष्टं पिबमानामिमां योनिमपाध्वम् । स्वधा... ॥

२. असं २.२; ६.१११; ८.६ इति सूक्तैः मातृनामभिः, १.७; १.८; २.१४; २.१८.३-५;

२.२५; ४.२०; ४.३६; ४.३७; ५.२९; ८.३; ८.४ इति चातनगणसंज्ञकैः सूक्तैश्च शान्त्युदकं

करोति ।

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥१८.३.८-९

इमौ युनज्मि ते बह्वी असुनीताय वोढवे ।

ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाऽव गच्छतात् ॥१८.२.५६

उत्तिष्ठ प्रेहि.... ॥१८.३.८

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।

उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥१८.१.५४

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व.... ॥१८.३.९

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।

तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥१८.२.४८

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्टान्यारुहन् ।

प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥१८.१.६१

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।

यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वैभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥

यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।

स नो जीवेष्वा यमेदीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१८.२.१-३

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।

उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।

स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदन्त्रियेभ्यः ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।

यत्राऽऽसते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥

१८.२.५३-५५

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।

पुरोगवा ये अभिषाचो अस्य ते त्वा बहन्ति सुकृतास्तु लोकम् ॥१८.४.४४

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।

अघा पितृन्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
 ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥
 उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनीं अनु ।
 तावस्मभ्यं दृश्ये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्^१ ॥
 सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
 येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवाऽपि गच्छतात् ॥
 ये चित्पूर्वं ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
 ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥
 तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
 तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवाऽपि गच्छतात् ॥
 ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
 ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवाऽपि गच्छतात्^२ ॥
 सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
 ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥१८.२.११-१८
 इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
 संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥१८.३.७
 प्रजानत्यध्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
 अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोह्यैनम् ॥१८.३.४
 स्योनाऽस्मै भव पृथिव्यनृक्षरा.... ॥ असंवाधे पृथिव्याः.... ॥ ह्वयामि ते
 मनसा मनः.... ॥१८.२.१९-२१
 अपेत वीत वि च सर्पताऽतोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
 अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ १८.१.५५
 ददाम्यस्मा अवसानमेतद्य एष आगन्मम चेदभूदिह ।
 यमश्चित्त्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥१८.२.३७
 उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
 असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१८.१.४४

१. अपैसं १९.५२.९-उरूणसावसुतृपा उदुम्बरौ यमस्य दूतौ चरतो जनीं अनु ।
 वेदाहं वेद सूर्यः किमेतौ किं करिष्यतः ॥ १०.९.१०-उरूणसावसुतृपा उदुम्बरौ... । तावस्मभ्यं
 दृशेदृशेद ! सूर्याय... ॥ २. अपैसं २०.४०.८-ये युध्यन्ते... । तांस्त्वं सहस्र... ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्यं प्रेतम् ।
 धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥
 उदीर्ष्व नार्यमि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
 हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥१८.३.१-२
 इदं हिरण्यं बिभृहि यत्ते पिताऽबिभः पुरा ।
 स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥१८.४.५६
 दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
 अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥
 धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
 समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेष्टुप जीवलोकम् ॥१८.२.५९-६०
 इदं पितृभ्यः प्र भराभि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
 तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥१८.४.५१
 ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकंस्य पृष्ठाद्विद्युत्पतिष्यन् ।
 तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥

१८.४.१४

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥
 दक्षिणायां त्वा दिशि.... ॥ प्रतीच्यां त्वा दिशि.... ॥ उदीच्यां त्वा
 दिशि.... ॥ ध्रुवायां त्वा दिशि.... ॥ ऊर्ध्वायां त्वा दिशि.... ॥

१८.३.३०-३५

शमग्र्ये पश्चात्तप शं पुरस्ताच्छुत्तराच्छमधरात्तपैनम् ।
 एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतास्तु लोके ॥
 शमग्रयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
 शृतं कृण्वन्त इह माऽव चिक्षिपन् ॥
 यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् । तमग्रयः सर्वहुतं
 जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः । शृतं कृण्वन्त इह माऽव चिक्षिपन् ॥
 ईजानश्चितमारुक्षदग्निं.... ॥

अग्निर्होताऽध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
 हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥१८.४.११-१५
 जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
 प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुहाम् ॥
 ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
 जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं सुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः
 सर्वा धुक्ष्वाऽहूणीयमानः ॥१८.४.५-६
 इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
 अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥१८.३.५३
 देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं सुचो यज्ञायुधानि ।
 तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥१८.४.२
 अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
 अन्धेन यत्तमसा प्रावृताऽऽसीत्प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥
 प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं.... ॥१८.३.३-४॥
 अति द्रव श्वानौ सारमेयौ.... ॥ यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ.... ॥
 उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ.... ॥१८.२.११-१३
 अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
 नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्षन् परीङ्खयातै ॥१८.२.५८
 अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
 यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृताम् लोकम् ॥ १८.२.८
 उच्चा बहन्तु मरुत उदवाहा उदग्रुतः ।
 अजेन कृष्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥१८.२.२२
 मैनमग्ने वि दहो माऽभि शूशुचो माऽस्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
 शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृरुप ॥१८.२.४
 शं तप माऽति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
 वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्वरः १ ॥१८.२.३६

१. अपैसं २०.३९.१—उत्तमोऽस्योषधीनां वीरुषां बलवत्तमः । रथन्तुमनेक-
 शुष्मोऽस्तु... ॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्भरो अस्तु ते ।
 शरीरमस्य सं दहाऽथैनं धेहि सुकृताम् लोके ॥१८.३.७१
 प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
 दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥२.३४.५
 परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
 वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥
 यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तेवा उ ।
 यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥१८.१.४९-५०
 अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
 तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१८.१.५८
 यमाय घृतवत्पयः.... ॥१८.२.३
 यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
 वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१८.३.१३
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
 य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पिपृभ्यो नमसा विधेम ॥१८.२.४९
 सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
 सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥
 सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
 आसद्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ देह्यस्मे ॥
 सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
 सहस्रार्धमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१८.१.४१-४३
 सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
 जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥
 इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितृणां हविरास्यं यत् ।
 इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥७.६८.१-२
 इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८.३.२५
 त्रीणि पदानि रूपो अन्वरोहचतुष्पदीमन्वैतद्व्रतेन ।
 अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावमि सं पुनाति ॥१८.३.४०

मैनमग्रे वि दहो माऽभि शूशुचः.... ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।

यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षड्वीरेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आपिता ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।

अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व.... ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।

अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥

अव सृज पुनरग्रे पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वभावान् ।

आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ.... ॥ यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ.... ॥ उरूण-

सावसुतृपावुदुम्बलौ.... ॥ सोम एकेभ्यः पवते.... ॥ ये चित्पूर्व क्रत-

साताः.... ॥ तपसा ये अनाधृष्याः.... ॥ ये युध्यन्ते प्रधनेषु.... ॥

सहस्रणीथाः कवयः.... ॥ १८.२.४-१८ ॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः.... ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं सुचो यज्ञायुधानि ।

तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वज्जिरसः सुकृतो येन यन्ति ।

तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्राऽऽदित्या मधु भक्षयन्ति

तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्टा इषमूर्जं यजमानाय दुहाम् ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं.... ॥ ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसं.... ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।

अत्राऽदधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वं अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो
दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।

महिमानमग्रेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शम्भः ॥

पूर्वं अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात्तपतु गार्हपत्यः ।

दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद्

दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।

अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥

शमग्ने पश्चात्तप शं पुरस्तात्.... ॥ शमग्रयः समिद्धा आ रभन्तां.... ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमानः.... ॥ ईजानश्चितमारुक्षदग्निं.... ॥ अग्निर्होता-
ऽध्वर्युष्टे.... ॥ १८.४.१-१५

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।

वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टि मा सविता कृणोतु ॥ १८.३.१२

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।

चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टि वर्धन्तु ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निः.... ॥ १८.३.१०-११

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।

इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्चवन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ १८.३.६१

अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदधम् ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः.... ॥

प्र यद्भन्दिष्ट एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः.... ॥

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः.... ॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः.... ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः.... ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाऽति नावेव पारय । अप नः.... ॥

स नः सिन्धुमिव नावाऽति पर्षा स्वस्तये । अप नः.... ॥ ४.३३

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

माऽन्तः स्थुर्नो अरातयः ॥ १३.१.५९

वि देवा जरसावृतन्.... ॥ व्यात्यर्था पवमानः.... ॥ वि ग्राम्याः पशव
आरण्यैः.... ॥ वीमे द्यावापृथिवी इतः.... ॥ त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्ति
.... ॥ अग्निः प्राणान्तसं दधाति.... ॥ प्राणेन विश्वतोवीर्यं.... ॥ आयु-
ष्मतामायुष्कृतां.... ॥ प्राणेन प्राणतां.... ॥ उदायुषा समायुषा.... ॥
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्या.... ॥ ३.३१ ॥ अप नः शोशुचदधं.... ॥ सुक्षेत्रिया
सुगातुया.... ॥ प्र यद्भन्दिष्ठ एषां.... ॥ प्र यत्ते अग्ने सूरयः.... ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतः.... ॥ त्वं हि विश्वतोमुख.... ॥ द्विषो नो विश्वतो-
मुख.... ॥ स नः सिन्धुमिव नावा.... ॥ ४.३३ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अधा वयमादित्य व्रते तवाऽनागसो अदितये स्याम ॥ १८.४.६९ ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।

अपां पयसो यत्पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ १८.३.५६ ॥

अश्वावर्ती प्र तर या सुशेवाक्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।

यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद्विदत भागधेयम् ॥ १८.२.३१ ॥

निःसालां धृष्टुं.... ॥ २.१४ ॥ ऊर्जं बिभ्रद्वसुनिः.... ॥ ७.६० ॥

अस्थिसंचयनम्

ऋसं—

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।

मण्डूक्या सु सं गम इमं स्वग्निं हर्षय ॥ १०.१६.१४ ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्रियाम्बत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥ १०.१६.१३ ॥

तैआ [६.४]—

यं ते अग्निममन्थाम वृषभायेव पक्तवे ।

इमं तं शमयामसि क्षीरेण चोदकेन च ॥

१. अनेन सूक्तेन शालानिवेशनं संप्रोक्षति । २. अनेन सूक्तेन अमात्यान् गृहं

प्रपादयति ।

यं त्वमग्ने समदहस्त्वमु निर्वापया पुनः ।
 क्याम्बूरत्र जायतां पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥
 शीतिके शीतिकावति ह्लादुके ह्लादुकावति ।
 मण्डूक्यासु संगमयेम५ स्वग्नि५ शमय ॥
 शं ते धन्वन्त्या आपः शमु ते सन्त्वनूक्याः ।
 शं ते समुद्रिया आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥
 शं ते स्रवन्तीस्तनुवे शमु ते सन्तु कूप्याः ।
 शं ते नीहारो वर्षतु शमु पृष्वाऽवशीयताम् ॥
 अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
 आयुर्वसान उपयातु शेष५ संगच्छतां तनुवा जातवेदः ॥
 संगच्छस्व पितृभिः स५ स्वधाभिः समिष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
 यत्र भूम्यै वृणसे तत्र गच्छ तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥
 यत्ते कृष्णः शकुन आततोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
 अग्निष्टद्विश्वादनृणं कृणोत सोमश्च यो ब्राह्मणमाविवेश ॥
 उत्तिष्ठाऽतस्तनुव५ संभरस्व मेह गात्रमवहा मा शरीरम् ।
 यत्र भूम्यै वृणसे तत्र गच्छ तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥
 इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।
 संवेशनस्तनुवै चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥
 उत्तिष्ठ ग्रेहि प्रद्रवौकः कृणुष्व परमे व्योमन् ।
 यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमं नाकमधिरोहेमम् ॥
 अश्मन्वती रेवतीः.... ॥ यद्वै देवस्य सवितुः पवित्रं.... ॥ या राष्ट्रात्
 पन्नात्.... ॥ उद्वयं तमसस्परि.... ॥ धाता पुनातु.... ॥
 अस्माच्चमधिजातोऽस्ययं त्वदधिजायताम् ।
 अग्रये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा१ ॥

असं—

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहसं शतधारमुत्सम् ।
 स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥१८.४.३५

१. एतस्मादनन्तरं पञ्चमेऽनुवाके यमयज्ञविषयका मन्त्राः प्रोक्ताः । किंतु यमयज्ञस्य पितृमेधभिन्नत्वात् तेऽत्रोद्भियन्ते । अस्थिसंचयनविषयका मन्त्रा ब्राह्मणं च शुक्लयजुःशाखायां न विद्यते ।

ये अग्रयो अप्स्वन्तर्ये.... ॥३.२११

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्रे पित्तमपामसि ॥

यं त्वमग्रे समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥१८.३.५-६

शं ते नीहारो भवतु शं ते मृन्वाऽव शीयताम् । शीतिके शीतिकावति ह्लादिके
ह्लादिकावति । मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥१८.३.६०

अव सृज पुनरग्रे पितृभ्यः.... ॥१८.२.१०

मा ते मनो माऽसोर्माऽङ्गानां मा रसस्य ते ।

मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥१८.२.२४

यत्ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।

तत्ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद्भासं पुनरा वेशयन्तु ॥१८.२.२६

उत्तिष्ठ ग्रेहि प्र द्रवौकः.... ॥ प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व.... ॥१८.३.८-९॥

उदन्वती द्यौरवमा.... ॥१८.२.४८॥ इत एत उदारुहन्.... ॥१८.१.६१॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं.... ॥१८.२.५३॥ इदं पूर्वमपरं नियानं....

॥१८.४.४४॥ अति द्रव श्वानौ सारमेयौ.... ॥ यौ ते श्वानौ यम

रक्षितारौ.... ॥ उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ.... ॥ सोम एकेभ्यः पवते.... ॥

ये चित्पूर्वं ऋतसाता.... ॥ तपसा ये अनाष्टृष्याः.... ॥ ये युध्यन्ते

प्रधनेषु.... ॥ सहस्रणीथाः कवयः.... ॥१८.२.११-१८

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।

लोकं पितृषु विन्त्वैधस्व यमराजसु ॥१८.२.२५

स्योनाऽस्मै भव पृथिव्यनृक्षरा.... ॥१८.२.१९॥ विवस्वान्नो अभयं

कृणोतु.... ॥ विवस्वान्नो अमृतत्वे दधातु.... ॥१८.३.६१-६२॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद्वामभिभा अत्रोचुः ।

अस्मादेतमघ्न्यौ तद्वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुषा वयोधाः ।

यौवने जीवानुपपृश्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥१८.४.४९-५०

१. अनेन सूक्तेन पालाश्या दर्व्या मन्थमुपमन्थति । २. अपैसं ११.५.४-अधि-
जरायुस्स्वरा रोहयत्यनेन... । सहोऽस्मै दुहां द्यतधारमक्षितममुष्मिहोके युग उत्तरस्मिन् ॥

अमूः पारे.... ॥१.२७१॥ पातं नः.... ॥६.३॥ त्वष्टा मे दैव्यं....
 ॥६.४॥ येन सोमाऽदितिः.... ॥६.७॥ नमो देववधेभ्यः.... ॥६.१३॥
 मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ माऽवताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्म-
 ण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामा-
 शिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५.२४.५
 उप प्रागात्.... ॥६.३७
 अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
 इन्द्राऽनमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥६.४०.३
 यमो मृत्युरघमारः.... ॥६.९३॥ बृहस्पतिर्नः परि.... ॥७.५१॥ त्यमू
 षु वाजिनं.... ॥७.८५॥ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं.... ॥७.८६॥ स
 सुत्रामा स्ववाँ.... ॥७.९२॥ इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः.... ॥७.९१॥
 आ मन्द्रैरिन्द्र.... ॥७.११७॥ मर्माणि ते वर्मणा.... ॥७.११८॥ यस्त्वा
 कृत्याभिः.... ॥८.५.१५॥ वर्म मे द्यावापृथिवी.... ॥१९.२०.४॥
 ऐन्द्राग्रं वर्म बहुलं.... ॥८.५.१९॥ गिरयस्ते पर्वताः.... ॥ यत्ते मध्यं
 पृथिवी.... ॥१२.१.११-१२॥ यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीः.... ॥
 मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्.... ॥१२.१.३१-३२॥

लोष्टचितिः

तैआ [६.६-११]—

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रमुत्सं शतधारमेतम् ।
 तस्मिन्नेष पितरं पितामहं प्रपितामहं बिभरत्पिन्वमाने ॥
 द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
 तृतीयं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥
 इमं समुद्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं भुवनस्य मध्ये ।
 घृतं दुहानामदिति जनायाऽग्रे मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥
 अपेत वीत वि च सर्पताऽतो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
 अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥

सवितैतानि शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे । तेभिर्युज्यन्तामग्निः ॥

शुनं वाहाः शुनं नाराः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्ताः शुनमष्ट्राण्युदिङ्गय शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥

शुनासीराविमां वाचं यद्विवि चक्रथुः पयः । तेनेमासुपसिञ्चतम् ॥

सीते वन्दामहे त्वाऽर्वाची सुभगे भव ।

यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि ॥

सवितैतानि शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे । तेभिरदिते शं भव ॥

विमुच्यध्वमग्निः देवयाना अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

ज्योतिरापाम सुवरगन्म ॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते सुवः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसाऽवति ॥

यथा यमाय हार्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवं वपामि हार्म्यं यथाऽसाम् जीवलोके भूरयः ॥

चितः स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वं पितरो देवता ।

प्रजापतिर्वः सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवाः सीदत ॥

आप्यायस्व.... ॥ सं ते.... ॥६॥

उत्ते तन्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहं रिषम् ।

एताः स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते मिनोतु ॥

उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।

ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत्येषा त्वा पातु निर्ऋत्या उपस्थे ॥

उच्छ्रमश्चस्व पृथिवि मा विबाधिताः सृपायनाऽस्मै भव सृपवञ्चना ।

माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूमि वृणु ॥

उच्छ्रमश्चमाना पृथिवी हि तिष्ठसि सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।

ते गृहासो मधुश्चुतो विश्वाहाऽस्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥

एणीर्धाना हरिणीरर्जुनीः सन्तु धेनवः ।

तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥

एषा ते यमसादने स्वधा निधीयते गृहे । अक्षितिर्नाम ते असौ ॥

इदं पितृभ्यः प्रभरेम बर्हिर्देवेभ्यो जीवन्त उत्तरं भरेम ।

तत्त्वमारोहासो मेघ्यो भवं यमेन त्वं यम्या संविदानः ॥

मा त्वा वृक्षौ संवाधिष्ठां मा माता पृथिवि त्वम् ।
 पितृन् ह्यत्र गच्छास्येधासं यमराज्ये ॥
 मा त्वा वृक्षौ संवाधेयां मा माता पृथिवी मही ।
 वैवस्वतः हि गच्छासि यमराज्ये विराजसि ॥
 नळं पुवमारोहैतं नळेन पथोऽन्विहि ।
 स त्वं नळप्लवो भूत्वा संतर प्रतरोत्तर ॥
 सवितैतानि शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे । तेभ्यः पृथिवि शं भव ॥
 षड्ढोता सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
 अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥
 परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
 चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाः रीरिषो मोत वीरान् ॥
 शं वातः शः हि ते घृणिः शम्भु ते सन्त्वोषधीः । कल्पन्तां मे दिशः शग्माः ॥
 पृथिव्यास्त्वा लोके सादयाम्यमुष्य शर्माऽसि पितरो देवता ।
 प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥
 अन्तरिक्षस्य त्वा लोके सादयामि.... ॥ दिवस्त्वा लोके सादयामि.... ॥
 दिशां त्वा लोके सादयामि.... ॥ नाकस्य त्वा पृष्ठे सादयामि.... ॥
 ब्रह्मस्य त्वा विष्टपे सादयाम्यमुष्य शर्माऽसि पितरो देवता ।
 प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥७॥
 अपूपवान् घृतवाः श्रुरेह सीदतूत्तम्नुवन् पृथिवीं द्यामुतोपरि । योनिकृतः
 पथिकृतः सपर्यत ये देवानां घृतभागा इह स्थ । एषा ते यमसादने स्वधा
 निधीयते गृहेऽसौ । दशाक्षरा तां रक्षस्व तां गोपायस्व तां ते परिददामि
 तस्यां त्वा मा दभन्पितरो देवता । प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतया-
 ऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥
 अपूपवाञ्शृतवाः श्रुरेह देवानां शृतभागाः । शताक्षरा.... ॥
 अपूपवान् क्षीरवाः श्रुरेह देवानां क्षीरभागाः.... । सहस्राक्षरा.... ॥
 अपूपवान् दधिवाः श्रुरेह देवानां दधिभागाः.... । अयुताक्षरा.... ॥
 अपूपवान् मधुमाः श्रुरेह सीदतूत्तम्नुवन् पृथिवीं द्यामुतोपरि । योनिकृतः
 पथिकृतः सपर्यत ये देवानां मधुभागा इह स्थ । एषा ते यमसादने

स्वधा निधीयते गृहेऽसौ । अच्युताक्षरा तां रक्षस्व तां गोपायस्व तां
ते परिददामि तस्यां त्वा मा दभन् पितरो देवता । प्रजापतिस्त्वा सादयतु
तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥८॥

एतास्ते स्वधा अमृताः करोमि यास्ते धानाः परिकिराम्यत्र ।

तास्ते यमः पितृभिः संविदानोऽत्र धेनूः कामदुघाः करोतु ॥

त्वामर्जुनौषधीनां पयो ब्रह्माण इद्विदुः ।

तासां त्वा मध्यादाददे चरुभ्यो अपिधातवे ॥

दूर्वाणां स्तम्भमाहरैतां प्रियतमां मम ।

इमां दिशं मनुष्याणां भूयिष्ठाऽनु विरोहतु ॥

काशानां स्तम्भमाहर रक्षसामपहत्यै ।

य एतस्यै दिशः पराभवन्नघायवो यथा ते नाऽभवन् पुनः ॥

दर्भाणां स्तम्भमाहर पितृणामोषधीं प्रियाम् ।

अन्वस्यै मूलं जीवादनु काण्डमथो फलम् ॥

लोकं पृण च्छिद्रं पृण.... ॥ ता अस्य स्रद्धदोहसः.... ॥

शं वातः शं हि ते घृणिः शम्भु ते सन्त्वोषधीः । कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥

इदमेव मेतोऽपरामार्तिमाराम कांचन ।

तथा तदश्विभ्यां कृतं मित्रेण वरुणेन च ॥

वरणो वारयादिदं देवो वनस्पतिः । आर्त्यैर् निर्ऋत्यै द्वेषाच्च वनस्पतिः ॥

विष्टतिरसि विधारयाऽस्मदघा द्वेषांसि ॥ शमि शमयाऽस्मदघा

द्वेषांसि ॥ यव यवयाऽस्मदघा द्वेषांसि ॥ पृथिवीं गच्छाऽन्तरिक्षं गच्छ

दिवं गच्छ दिशो गच्छ सुवर्गच्छ सुवर्गच्छ दिशो गच्छ दिवं गच्छाऽन्त-

रिक्षं गच्छ पृथिवीं गच्छाऽपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा

शरीरैः ॥ अश्मन्वती रेवतीः.... ॥ यद्वै देवस्य सवितुः पवित्रं.... ॥

या राष्ट्रात्पन्नात्.... ॥ उद्वयं तमसस्परि.... ॥ धाता पुनातु.... ॥९॥

आरोहताऽऽयुर्जरसं गृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ ।

इह त्वष्टा सुजनिमा सुरत्नो दीर्घमायुः करतु जीवसे वः ॥

यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति कल्पाः ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयैषाम् ॥

न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः । कर्पिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायु
गौरिव । अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुभ्या रयिम् । अप नः शोशुचदधं
मृत्यवे स्वाहा ॥

अनङ्वाहमन्वारभामहे स्वस्तये ।

स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः संपारणो भव ॥

इमे जीवा वि मृतैराववर्तिन्नभूद्भद्रा देवहृतिं नो अद्य ।

प्राञ्जोऽगामा नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरां दधानाः ॥

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैम द्राघीय आयुः प्रतरां दधानाः ।

आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवथ यज्ञियासः ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मा नोऽनुगादपरो अर्धमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीस्तिरो मृत्युं दद्महे पर्वतेन ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संमृशन्ताम् ।

अनश्रवो अनमीवाः सुशेवा आरोहन्तु जनयो योनिमग्ने ॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।

तेनाऽमृतस्य मूलेनाऽरातीर्जम्भयामसि ॥

यथा त्वमुद्भिन्नत्स्योषधे पृथिव्या अधि ।

एवमिम उद्भिन्दन्तु कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन ॥

अजोऽस्यजाऽस्मदधा द्वेषाँसि ॥ यवोऽसि यवयाऽस्मदधा द्वेषाँसि ॥ १० ॥

अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुभ्या रयिम् । अप नः शोशुचदधम् ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदधम् ॥

प्र यद्भिन्दिष्ठ एषां प्राऽऽस्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदधम् ॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति सूरयः । अप नः शोशुचदधम् ॥

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदधम् ॥

त्वँ हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदधम् ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाऽति नावेव पारय । अप नः शोशुचदधम् ॥

स नः सिन्धुमिव नावयाऽतिपर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदधम् ॥

आपः प्रवणादिव यतीरपाऽस्मत्स्यन्दतामघम् । अप नः शोशुचदधम् ॥

उद्वनादुदकानीवाऽपाऽस्मत्स्यन्दतामघम् । अप नः शोशुचदधम् ॥

आनन्दाय प्रमोदाय पुनरागां स्वान् गृहान् । अप नः शोशुचदधम् ॥
न वै तत्र प्रमीयते गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधीर्जीवनाय कमप नः शोशुचदधम् ॥११॥

वासं [३५]—

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः । अस्य लोक सुतावतः ।
द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥
सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः ॥
वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।
विमुच्यन्तामुस्त्रियाः ॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलाऽऽसथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥
सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आवपतु । तस्मै पृथिवि शं भव ॥
प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ । अप नः शोशुचदधम् ॥
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥
शं वातः शं हि ते घृणिः शं ते भवन्तिवष्टकाः ।
शं ते भवन्त्वग्रयः पार्थिवासो मा त्वाऽभिश्शुचन् ॥
कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः ।
अन्तरिक्षं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥
अश्मन्वती रीयते स रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाऽभि वाजान् ॥
अपाऽधमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्यं सुव ॥
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्
द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
अनङ्वाहमन्वारभामहे सौरभेयं स्वस्तये ।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो बह्विः संतारणो भव ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

अग्न आयुषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान् स्वाहा ॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँर॥ आदधर्षति ॥

क्रव्यादमग्निं ग्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहैवाऽयमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥

अस्मात्त्वमग्निं जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥

वाकासं^२ [३५.३५-५५] ≡ वासं

शत्रा [१३.८]—

अथाऽस्मै श्मशानं कुर्वन्ति० तद् वै न क्षिप्रं कुर्यात्० चिर एव कुर्यात्० यत्र समा नाऽनु चन स्मरेयुः० यद्यनु स्मरेयुः । अयुङ्गेषु संवत्सरेषु कुर्यात्० एकनक्षत्रे० अमा-वास्यायाम्० शरदि कुर्यात्० माघे वा० निदाघे वा० चतुःस्रक्ति० उमे दिशावन्तरेण विदधाति । प्राचीं च दक्षिणां च० स्रक्तिभिर्दिक्षु प्रतितिष्ठति० अथाऽतो भूमिजोषणस्य । उदीचीनप्रवणे करोति० दक्षिणाप्रवणे कुर्यादित्याहुः० न तथा कुर्यात्० दक्षिणाप्रवणस्य प्रत्यर्धे कुर्यादित्यु हैक आहुः० नो एव तथा कुर्यात्० यस्यैव समस्य सतो दक्षिणतः पुरस्तादाप एत्य । स०स्थाय । अप्रग्नत्यः । एतां दिशमभिनिष्पद्य । अक्षय्या अपोऽपिपद्येरन् । तत् कुर्यात्० कंवति कुर्यात्० अयो शंवति० नाऽधिपयं कुर्यात् । नाऽऽकाशे० गुहा सदवतापि स्यात्० न तस्मिन् कुर्यादस्येत्यादनूकाशः स्यात्० चित्रं पश्चात् स्यात्० यदि चित्रं

१. अस्याग्ने वर्तमानयोः 'वह वपां जातवेदः' 'स्योना पृथिवि नः' इति मन्त्रयोर्न श्रौते विनियोगः, किंतु स्मार्ते । २. वाकासं ३५.३९ मन्त्रान्ते 'अप नः शोशुचदधम्' इति नास्ति । 'इमं जीवेभ्यः' इति ५० मन्त्रः वासं-मध्ये 'उद्वयं तमसस्परि' इत्यस्यानन्तरं पठितः । ५५ मन्त्रान्ते वासं-अपेक्षया 'अप नः शोशुचदधम्' इत्यधिकम् ।

न स्यात् । आपः पश्चाद्वोत्तरतो वा स्युः० ऊषरे करोति० समूले० वीरिणमिश्रे० न भूमिपाश-
मभिविदध्यात् । न शरत् । नाऽश्मगन्धान् । नाऽध्याण्डान् । न पृश्निपर्णीन् । नाऽश्वत्थ-
स्याऽन्तिकं कुर्यात् । न बिभीतकस्य । न तिल्वकस्य । न स्फूर्जकस्य । न हरिद्रोः । न
न्यग्रोधस्य । ये चाऽन्ये पापनामानः० ।

अथाऽत आवृदेव । अग्निविधयाऽग्निचितः श्मशानं करोति० तद्वै न महत्
कुर्यात्० यावानपक्षपुच्छोऽग्निः । तावत् कुर्यादित्यु हैक आहुः० पुरुषमात्रं त्वेव कुर्यात्०
पश्चाद्वरीयः० उत्तरतो वर्षीयः० तद्विधायाऽपसलवि सृष्टाभिः स्पन्धाभिः पर्यातनोति० अथो-
द्धन्तवा आह । स यावत्येव निवस्यन्त्स्यात् । तावदुद्धन्यात् । पुरुषमात्रं त्वेवोद्धन्यात्०
अंतर्द्वाय उ हैके निवपन्ति० तस्मात् या दैव्यः प्रजाः । अनन्तर्हितानि ताः श्मशानानि
कुर्वते० अथैनत् परिश्रिद्धिः परिश्रयति । या एवाऽमूः परिश्रितः । ता एताः । यजुषा
ता परिश्रयति । तूष्णीमिमाः० अपरिमिताभिः० अथैनत्पलाशशाखया व्युदूहति० अपेतो यन्तु
पणयोऽसुप्ता देवपीयवः इति० अस्य लोकः सुतावतः इति० बुभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तम् इति०
यमो ददात्ववसानमस्मै इति० अथ दक्षिणतः सीरं युनक्ति । उत्तरत इत्यु हैक आहुः । स
यथा कामयेत तथा कुर्यात् । युङ्क्त इति संप्रेष्याऽभिमन्त्रयते सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां
लोकमिच्छतु इति० तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः इति० षड्गवं भवति० तदपसलवि पर्याहृत्य
उत्तरतः प्रतीचीं प्रथमां सीतां कृषति वायुः पुनातु इति । सविता पुनातु इति जघनार्धेन
दक्षिणा । अग्नेर्भाजसा इति दक्षिणार्धेन प्राचीम् । सूर्यस्य वर्चसा इत्यग्नेरोदीचीम्०
अथाऽऽत्मानं विकृषति० तूष्णीमपरिमिताभिः० अथैनद्विमुञ्चति । कृत्वा तत्कर्म । यस्मै
कर्मण एनत् युङ्क्ते विमुच्यन्तामुस्त्रियाः इति० अथ सर्वौषधं वपति० अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे
वो वसतिष्कृता इति० अथैनं निवपति० पुराऽऽदित्यस्योदयात्० यथा कुर्वतोऽभ्युदियात्०
सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आवपतु इति० तस्मै पृथिवि शं भव इति० प्रजापतौ त्वा
देवतायामुपोदके लोके निदधामि, असौ इति नाम गृह्णाति० अथ कंचिदाह एतां दिशमन-
वानन् सृत्वा कुम्भं प्रक्षीयाऽनपेक्षमाण एहि इति । तत्र जपति परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां
यस्ते अन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्
इति० अथैनं यथाङ्गं कल्पयति शं वातः शः हि ते घृणिः शं ते भवन्विष्टकाः । शं ते
भवन्त्वग्रयः पार्थिवासो मा त्वाऽभिशूचन् ॥ कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं
भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः इति० ।

अथ त्रयोदश पादमात्र्य इष्टका अलक्षणाः कृता भवन्ति । या एवाऽमूरग्राविष्टकाः । ता एताः । यजुषा ता उपदधाति । तूष्णीमिमाः० तासामेकां मध्ये प्राचीमुपदधाति, स आत्मा । तिस्रः पुरस्तात् मूर्द्धसश्चेहिताः, तच्छिरः । तिस्रो दक्षिणतः, स दक्षिणः पक्षः । तिस्र उत्तरतः, स उत्तरः पक्षः । तिस्रः पश्चात्, तत्पुच्छम् । सोऽस्यैष पक्षपुच्छवानात्मा । यथैवाऽग्नेस्तथा । अथ प्रदरात् पुरीषमाहर्तवा आह० अस्मिन्नु हैकेऽवान्तरदेशे कर्षू खात्वा । ततोऽभ्याहारं कुर्वन्ति । परिकृषन्त्यु हैके दक्षिणतः पश्चादुत्तरतः । ततोऽभ्याहारं कुर्वन्ति । स यथा कामयेत । तथा कुर्यात् । तद्वै न महत्कुर्यात् नेमहदधं करवाणीति । यावानुद्वाहुः पुरुषः । तावत् क्षत्रियस्य कुर्यात् । मुखदघ्नं ब्राह्मणस्य । उपस्यदघ्नं क्षियाः । ऊरुदघ्नं वैश्यस्य । अष्टीवद्घ्नं शूद्रस्य० अधोजानु त्वेव कुर्यात्० तस्य क्रियमाणस्य तेजनीमुत्तरतो धारयन्ति० तां न न्यस्येत् । धृत्वा वैनामूढ्वा वा गृहेषुच्छयेत्० कृत्वा यवान् वपति० अवकाभिः प्रच्छादयति० दमैः प्रच्छादयति० अथैनच्छङ्कुभिः परिणिहन्ति । पालाशं पुरस्तात्० शमीमयमुत्तरतः० वारणं पश्चात्० वृत्रशङ्कुं दक्षिणतः० अथ दक्षिणतः परिवक्त्रे खनन्ति । ते क्षीरेण चोदकेन च पूरयन्ति० सप्तोत्तरतः । ता उदकेन पूरयन्ति० अश्मन-स्त्रींस्त्रीन् प्रकिरन्ति । ता अम्युत्तरन्ति अश्मन्वती रीयते सश्मभ्यमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । अत्रा जह्मीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाऽभि वाजान् इति० अपामार्गैरपमृजते० अपाऽधमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः । अपामार्गं त्वमस्मदप दुःष्वप्यं सुव इति० यत्रोदकं भवति । तत् स्नान्ति । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु इत्यञ्जलिनाऽप उपाचति० दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति । यामस्य दिशं द्वेष्ट्यः स्यात् । तां दिशं परासिञ्चेत्० स्नात्वाऽहतानि वासांश्च परिधाय । अनडुहः पुच्छमन्वारम्याऽऽयन्ति० उद्वयं तमसस्पति इत्येतामृचं जपन्तो यन्ति० तेभ्य आगतेभ्य आज्ञनाभ्यञ्जने प्रयच्छन्ति० ।

अथ गृहेष्वग्निं समाधाय, वारणान् परिधीन् परिधाय, वारणेन सुवेणाऽग्नय आयुष्मत आहुतिं जुहोति० अग्न आयूँषि पवसे इति पुरोनुवाक्याभाजनम् । अथ जुहोति आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्त्वाहा इति० तस्य पुराणोऽनड्वान् दक्षिणा । पुराणा यवाः । पुराण्यासन्दी सोपबर्हणा । एषाऽन्वादिष्टा दक्षिणा । कामं यथाश्रद्धं भूयसीर्दधात् । इति न्वग्निचितः । अथाऽनग्निचितः । एतदेव भूमिजोषणम् । एतत्समानं कर्म । यदन्यदग्निर्कर्मणः कुर्यात् । आहिताग्नेः शर्करा इत्यु हैक आहुः० न तथा कुर्यादित्येके० स यथा कामयेत । तथा कुर्यात् ।

मर्यादाया एव लोष्टमाहृत्याऽन्तरेण निदधाति इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो
अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तर्भृत्यं दधतां पर्वतेन इति० ॥

काशब्रा [१५.८] ≡ शब्रा

असं—

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।

यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥१८.३.७०

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद..... ॥१८.३.५५

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।

आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥१८.४.६२

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥१८.१.५२

सं विशन्तिवह पितरः स्वा नः स्योनं कृष्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।

तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग्जीवन्तः शरदः पुरुचीः ॥१८.२.२९

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।

आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥१८.१.६०

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥१८.४.४२

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।

आप्यायमानाः प्रजया धनेनाऽध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥१८.३.१७

इमां मात्रां मिमीमहे यथाऽपरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥

प्रेमां मात्रां.... ॥ अपेमां मात्रां.... ॥ वीमां मात्रां.... ॥ निरिमां

मात्रां.... ॥ उदिमां मात्रां.... ॥ समिमां मात्रां.... ॥१८.२.३८-४४॥

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।

यथाऽपरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृश्ये सूर्याय ।

अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हिवा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।

ते घामुदित्याऽविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥१८.२.४५-४७

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहतनुमुग्रम् ।
 मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत्ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥१८.१.४०
 एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
 अभि ग्रेहि मध्यतो माऽप हास्थाः पितृणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥१८.३.७३
 ददाम्यस्मा अवसानमेतत्.... ॥१८.२.३७
 एदं बर्हिंसदो मेघ्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
 यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥१८.४.५२
 मा ते मनो माऽसोर्माऽङ्गानां.... ॥१८.२.२४॥ यत्ते अङ्गमतिहितं....
 ॥१८.२.२६॥ इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः.... ॥ धाता मा निर्ऋत्या
 दक्षिणाया दिशः.... ॥ अदितिर्माऽऽदित्यैः प्रतीच्या दिशः.... ॥ सोमो
 मा विश्वेदेवैरुदीच्या दिशः.... ॥
 धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
 लोककृतः.... ॥
 प्राच्यां त्वा दिशि पुरा.... ॥ दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा.... ॥ प्रतीच्यां
 त्वा दिशि पुरा.... ॥ उदीच्यां त्वा दिशि पुरा.... ॥ ध्रुवायां त्वा
 दिशि पुरा.... ॥ ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा.... ॥ धर्ताऽसि धरुणोऽसि
 वंसगोऽसि ॥ उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥१८.३.२५-३७
 यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
 तास्ते सन्तु विम्बीः प्रम्बीस्तास्ते यमो राजाऽनु मन्यताम् ॥१८.३.६९
 यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
 तास्ते सन्तूद्भवीः प्रम्बीस्तास्ते यमो राजाऽनु मन्यताम् ॥
 अक्षितिं भूयसीम् ॥१८.४.२६-२७
 धाना धेनुरभवद्वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
 तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥
 एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
 एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वाऽत्र ॥
 एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
 तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥१८.४.३२-३४

यास्ते धाना अनुकिरामि.... ॥१८.४.४३
 इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत्सजाता अव पश्यतेत ।
 मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥१८.४.३७
 ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
 तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥१८.४.५७
 ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
 तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती^१ ॥१८.३.७२
 अपूपवान् क्षीरवान्.... ॥ अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह.... ॥ अपूपवान्
 द्रप्सवांश्चरुरेह.... ॥ अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह.... ॥ अपूपवान् मांसवां-
 श्चरुरेह.... ॥ अपूपवानन्नवांश्चरुरेह.... ॥ अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह.... ॥
 अपूपवान् रसवांश्चरुरेह.... ॥ अपूपवानपवांश्चरुरेह.... ॥१८.४.१६-२४
 सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
 ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः^२ ॥१८.४.३६
 पर्णो राजाऽपिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
 आयुर्जीवेभ्यो विदधद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥
 ऊर्जो भागो य इमं जजानाऽश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
 तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥१८.४.५३-५४
 उक्ते स्तन्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
 एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥१८.३.५२
 इदमिद्रा उ नाऽपरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
 माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥
 इदमिद्रा उ नाऽपरं जरस्यन् यदितोऽपरम् ।
 जाया पतिमिव वाससाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥
 अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
 जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥१८.२.५०-५२

१. ≡ अपैसं ८.१९.५ । २. अपैसं ५.४०.८-शतधारं सहस्रधारमुत्सं ...

उप सर्प मातरं भूमिमेतां.... ॥

उच्छ्वश्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः स्रपायनाऽस्मै भव स्रपसर्पणा ।

माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥

उच्छ्वश्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।

ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहाऽस्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१८.३.४९-५१

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि

॥१८.४.६६-६७

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥१८.४.५५

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।

स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्तं वर्तनिरनु वावृत एकमित्पुरु ॥७.२२.१

वर्चसा मां पितरः सोम्यासः.... ॥ १८.३.१० ॥ विवस्वान्नो अभयं

कृणोतु.... ॥ विवस्वान्नो अमृतत्वे दधातु.... ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मद्वा पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धातु ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा विभीतन ।

सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूर्तं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥

इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१८.३.६१-६७

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।

स वेद निहितान् निधीन् पितृन् परावतो गतान् ॥१८.४.४१

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयुंषि तारिषत् ॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।

ते ते यक्षं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१२.२.१३-१४

यद्रिग्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।

आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥१२.२.४०

सीसे मृद्द्वं नडे मृद्द्वमग्नौ संकसुके च यत् ।

अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।

अव्यामसिकन्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥१२.२.१९-२०

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१२.२.२२

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।

त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥

मृत्योः पदं योषयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥१२.२.२९-३०

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहिमे वीरा बहवो भवन्तु ॥१२.२.२१

आ रोहत सवितुर्नावमेतां षडभिरुर्वीभिरमर्ति तरेम ॥१२.२.४८

सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसं सुशर्माणमदिति सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥७.७.३

महीम् पु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।

तुविश्वत्रामजरन्तीमुरुचीं सुशर्माणमदिति सुप्रणीतिम् ॥७.७.२

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाऽभि वाजान् ॥१२.२.२६

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।

अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्तस्योनानुत्तरेमाऽभि वाजान् ॥१२.२.२७

ब्रह्ममेधः^१

तैआ [३]—

चित्तिः सुक्.... ॥१॥ पृथिवी होता.... ॥२॥ अग्निर्होता.... ॥३॥ सूर्य
ते चक्षुः.... ॥४॥ महाहविर्होता.... ॥५॥ वाग्धोता.... ॥६॥ ब्राह्मण
एक होता.... ॥७॥ अग्निर्यजुर्भिः.... ॥८॥ सेनेन्द्रस्य.... ॥९॥ देवस्य
त्वा सवितुः प्रसवे.... ॥१०॥ सुवर्णं धर्मं परिवेद वेनम्.... ॥११॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः.... ॥१२॥ अद्भ्यः संभूतः पृथिव्यै रसाच्च.... ॥१३॥
भर्ता सन् भ्रियमाणो विभर्ति.... ॥१४॥

हरिः हरन्तमनुयन्ति देवाः । विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम् ।
ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात् । अयनं मा विवधीर्विक्रमस्व ॥
मा छिदो मृत्यो मा वधीः । मा मे बलं विवृहो मा प्रमोषीः ।
प्रजां मा मे रीरिष आयुरुग्र । नृचक्षसं त्वा हविषा विधेम ॥
सद्यश्चक्रमानाय । प्रवेपानाय मृत्यवे ।
प्रास्मा आशा अशृण्वन् । कामेनाऽजनयन् पुनः ॥
कामेन मे काम आगात् । हृदयाद्भृदयं मृत्योः ।
यदमीषामदः प्रियम् । तदैतूप मामभि ॥
परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम् । यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि । मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरान् ॥

१. आहिताग्नित्वे सति यो ब्रह्मतत्त्वं जानाति तस्य दहनादिसंस्कारो ब्रह्ममेध इत्युच्यते ।
अस्मिन् कर्मणि तैआ० तृतीयप्रपाठकस्य विनियोगो बौधायनभरद्वाजापस्तम्बैरुक्तः (बौ० पितृ०
२.२; भार० पितृ० २.१; आप० पितृ० २.१) । वैखानसस्मार्तसूत्रे (५.१-७; १२) एत-
द्विषयकाः केचन मन्त्राः साधारणपितृमेध एव विनियुक्ताः । तैआ० तृतीयप्रपाठके १-११ अनु-
वाकगता मन्त्रा ब्रह्मचित्तौ नाम चातुर्होत्रचयने विनियुज्यन्ते इत्यत्र तैब्रा ३.१२.५ प्रमाणम् ।
तत्र १-१० अनुवाकगता होतृमन्त्रास्तत्संबन्धिब्राह्मणेन सह (तैब्रा २.२-३) काम्यहोमप्रकरणे
(पृ० १२५-१२८) प्रोक्ताः । एकादशानुवाकस्था मन्त्रास्तु चातुर्होत्रचयनानुषङ्गे दास्यन्ते ।
अथ १२-१३ अनुवाकौ नारायणसंज्ञौ आपस्तम्बश्रौतसूत्रानुसारेण अग्निचयनप्रकरणे दास्यन्ते ।
भर्तृसूक्ताख्यः (१४) अनुवाकः आपस्तम्बमेवानुसृत्य ' काम्याः पशवः ' इत्यस्मिन् प्रकरणे
' मृत्यवे वेहतम् ' इति काम्यपशुयागमनुलक्ष्य प्रोक्तः (पृ० ६६०) । अत एते सर्वे १-१४
अनुवाका अत्र प्रतीकमात्रेण निर्दिश्यन्ते, शिष्टाः १५-२१ अनुवाकास्तु सकलपाठेन दीयन्ते ।

प्र पूर्य्य मनसा वन्दमानः । नाधमानो वृषभं चर्षणीनाम् ।

यः प्रजानामेकराण्मानुषीणाम् । मृत्युं यजे प्रथमजामृतस्य ॥१५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ।

उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजस्वत एष ते योनिः सूर्याय त्वा
भ्राजस्वते ॥१६॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वाभिरूतिभिः । भवानः सप्रथस्तमः ॥१७॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीषुषसं मर्त्यासः ।

अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥१८॥

ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि ॥ ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि ॥ ज्योतिर्विदं

त्वा सादयामि ॥ भास्वतीं त्वा सादयामि ॥ ज्वलन्तीं त्वा सादयामि ॥

मल्मलाभवन्तीं त्वा सादयामि ॥ दीप्यमानां त्वा सादयामि ॥ रोचमानां

त्वा सादयामि ॥ अजस्रां त्वा सादयामि ॥ बृहज्ज्योतिषं त्वा सादयामि ॥

बोधयन्तीं त्वा सादयामि ॥ जाग्रतीं त्वा सादयामि ॥१९॥

प्रयासाय स्वाहा ॥ आयासाय स्वाहा ॥ वियासाय स्वाहा ॥ संयासाय

स्वाहा ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ अवयासाय स्वाहा ॥ शुचे स्वाहा ॥

शोकाय स्वाहा ॥ तप्यत्वै स्वाहा ॥ तपते स्वाहा ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥

सर्वस्मै स्वाहा ॥२०॥

चित्त्वं संतानेन भवं यक्त्वा रुद्रं तनिम्ना पशुपतिं स्थूलहृदयेनाऽग्निं

हृदयेन रुद्रं लोहितेन शर्वं मतस्नाभ्यां महादेवमन्तःपार्श्वेनौषिष्ठहनं

शिङ्गीनिकोश्याभ्याम् ॥२१॥

पितृमेधः

[बौधायनीयपितृमेधसूत्रस्य मुद्रितपुस्तकान्यवलोक्य बौ० पितृमेधसूत्रमत्र मुद्राप्यते । विस्हेल्म कलान्तमहोदयेन संपादिते १८९६ ख्रिस्ताब्दे शार्मण्यदेशे मुद्रिते 'पितृमेधसूत्राणि' इत्याख्ये पुस्तके बौ० पितृमेधसूत्रस्य प्रथमः प्रश्नो मुद्रितोऽस्ति । तथा च डॉ. सी. एच्. राबमहोदयेन लिखिते १९११ ख्रिस्ताब्दे हॉलण्डदेशे लायडननगरे मुद्रिते Bijdrage tot de Kennis van het Hindoesche Doodenritueel इति डच्भाषानिबद्धे ग्रन्थे बौ० पितृमेधसूत्रस्य द्वितीयतृतीयप्रश्नौ मुद्रितौ । आभ्यां विद्वद्भ्यां स्वकीयः पितृमेधसूत्रपाठो बहूनां लिखितपुस्तकानां टीकाप्रयोगादीनां चाऽवलोकनेन निर्धारितः । पाठभेदाश्च टिप्पण्यां दत्ताः । अतः प्रायः अनयोः पाठमनुसृत्य पितृमेधसूत्रमत्र मुद्रापितम् । मैसूरुनगरे प्रकाशिते बौधायनगृह्यसूत्रपुस्तके (१९२० ख्रिस्ताब्दे मुद्रिते द्वितीये संस्करणे) बौधायनीय-पितृमेधसूत्रं संपूर्णं मुद्रितमस्ति । परं तत्रस्थः पाठोऽशुद्धियुक्तो वर्तते । तथापि तत्पुस्तकस्था बहवः पाठभेदाः टिप्पण्यां निर्दिष्टाः । कचन तत्पुस्तकपाठे स्वीकृते कलान्तमहोदयस्य राबमहोदयस्य वा पाठः टिप्पण्यां निवेशितः । कचन बौश्रौ० सूत्रपाठमनुसृत्य अननुसृत्य वाऽस्माभिरप्यभ्यूहितः पाठः । एतादृशेषु स्थलेषु मुद्रितपुस्तकपाठाः टिप्पण्यां दत्ताः । कलान्तपुस्तके सर्वे मन्त्राः सकलपाठेनोद्धृताः, मैसूरुपुस्तके तु मन्त्राः प्रायः प्रतीकेन समुद्घ्रियन्ते ।

बौधायनपितृमेधसूत्रं प्रायः संपूर्णमत्र मुद्रितम् । यावानंश आहिताग्नेः पितृमेधसंस्कारं न स्पृशति स नोद्धृतः । तत्र तावत् बौधायनपितृमेधसूत्रस्य त्रयः प्रश्ना भवन्ति । प्रथमे प्रश्ने १७ कण्डिकाः, द्वितीये ७ कण्डिकाः, तृतीये च १२ कण्डिका विद्यन्ते । मैसूरुनगरे मुद्रिते बौधायनगृह्यसूत्रपुस्तके (द्वितीये संस्करणे) तु प्रथमप्रश्ने २१, द्वितीये १२, तृतीये च १२ कण्डिका उपलभ्यन्ते ।

तत्र प्रथमप्रश्ने कलान्तमहोदयस्य या द्वितीया कण्डिका सा मैसूरुपुस्तकस्य २-३ कण्डिके, या तृतीया कण्डिका तत्र मैसूरुपुस्तके ४-५ कण्डिके, या चतुर्थी कण्डिका तत्र मैसूरुपुस्तके ६-७ कण्डिके, या च पञ्चदशी कण्डिका तत्र मैसूरुपुस्तके १८-१९ कण्डिके । एतावता उभयोः पुस्तकयोः कण्डिकापरिगणने भेदः, न ग्रन्थे न्यूनाधिक्यम् । राबमहोदयस्य पुस्तके द्वितीयप्रश्नः ७ कण्डिकात्मको भवति । तदपेक्षया अधिकाः ५ कण्डिकाः (८-१२) मैसूरुपुस्तके विद्यन्ते । तत्र चतस्रः कण्डिकाः (९-१२) एकस्मिन्नेव लिखितपुस्तके उपलब्धा इति तत्पुस्तकसंपादकैर्निर्दिष्टम् ।

तृतीयप्रश्नस्य ४; ६; ९; ११ कण्डिका वर्जयित्वा शिष्टं सर्वं बौ० पितृमेधसूत्रमाहिताग्नेः पितृमेधसंस्कारं वर्णयति । अतः तत्सर्वमुद्धृतमत्र । द्वितीयप्रश्ने ३-४ कण्डिकयोः केषुचन सूत्रेषु वर्णितो विधिः वस्तुतो न आहिताग्निविषयकः । तथापि तावतः स्वल्पस्यांशस्य वर्जने मूलग्रन्थोऽकारणं भिन्नः स्यात्, तस्यांशस्याऽवस्थापने च न काऽपि हानिरिति चिन्तयित्वा सौऽशोऽत्र मुद्रितः ।

प्रथमे प्रश्ने अन्येष्टिः, संचयनं, पुनर्दहनं, लोष्टचित्तिः इति क्रमेण संपूर्णो विधिर्निरूपितः । द्वितीये प्रश्ने १; ६; ७ कण्डिकागतानि सर्वाणि सूत्राणि तथा च ३-४ कण्डिकागतानि कानिचन सूत्राणि बौ० कर्मन्तसूत्रवत् प्रथमप्रश्नगतसूत्राण्यनुषजन्ति । अतस्तानि प्रथमप्रश्नगततत्सूत्रानुषङ्गेन

मुद्रितानि । द्वितीयकण्डिकायां ब्रह्ममेधो निरूपितः । आहिताभित्वे सति यो ब्रह्मतत्त्वं विजानाति तस्य दहनादिसंस्कारो ब्रह्ममेध इत्युच्यते । एवमस्य वैशिष्ट्यात् स लोष्टचित्यनन्तरं पृथग्विभागत्वेन मुद्रितः । ३-४ कण्डिकयोरवशिष्टानि सूत्राणि पञ्चमकण्डिकागतानि सर्वाणि सूत्राणि च यद्यपि कर्मान्तसूत्र-स्वरूपाणि, तथापि तेषां प्रथमप्रश्नगतसूत्रैः साक्षादनुषङ्गाभावात् ब्रह्ममेधसूत्रानन्तरं तानि द्वितीयप्रश्न-शेषसंज्ञया मुद्रितानि । एवं, यथा बौधायनीयश्रौतसूत्रे द्वैधकर्मान्तसूत्रयोः मूलसूत्रेण सहान्वयं कृत्वा हविःसंस्थाविषयकः सूत्रभागः पूर्वं मुद्रितः, तथैव पितृमेधसूत्रविषयेऽपि प्रयतितम् । अस्य प्रयत्नस्य साफल्ये सुधिय एव प्रमाणम् । अत्र यानि सूत्राणि सूत्रक्रमं विहाय मुद्रितानि तेषां मूलस्थाननिर्देशस्तत्र तत्र कृतः । तेन सूत्रक्रमविपर्ययेऽपि न कापि हानिः स्यादिति संभाव्यते । कलान्तमहोदयेन प्रकाशिते प्रथमप्रश्ने पूर्वकण्डिकाया अन्तेऽपरकण्डिकाया आदितो द्वित्राणि पदानि प्रायः पुनरावर्तितानि दृश्यन्ते । एतादृशी पुनरावृत्तिरनावश्यकैति मत्वात्र परिहृता ।

तृतीयप्रश्ने १-४; ७; ८; १०; १२ कण्डिकासु द्विजातीनां दहनकल्पो व्याख्यातः । तस्याऽप्याहिताभिविषयकत्वात् सोऽप्यनन्तरं दहनकल्पसंज्ञया मुद्रितः । वस्तुतः प्रथमप्रश्ने तैत्तिरीयारण्य-कान्तर्गतमन्त्रविनियोगक्रमेण सर्वः पितृमेधविधिः प्रोक्तः । स एव तृतीयप्रश्ने प्रयोगभेदेन प्रदत्तः । अस्मिन् विषये कलान्तमहोदयेन स्वकीये ग्रन्थे^१ एवं संभावितं यत् पुरा काले बौधायनीयानां संनिधौ वर्तमानायां कस्यांचित् शाखायामयं विधिः रूढः स्यात्, स च संनिधिभावात् बौधायनीयसूत्रे प्रविष्टः स्यात् । तेनैव पुनरप्ये^२ एवं संभावितं यत् बौधायनीयशाखायामेवाऽयं विधिः अन्यस्मिन् काले अवस्थाभेदेन उद्भूतः स्यात्, स च मूलसूत्रमनुस्थापितः स्यात् । कलान्तमहोदयस्यैयमपरा संभावनैव युक्तेति वयं मन्यामहे । यद्यपि द्वितीयतृतीयप्रश्नौ प्रथमप्रश्नपरिशिष्टरूपाविति स्पष्टम्, तथापि ब्राह्मण-वचनप्राचुर्यात् निबन्धप्रयोगादिषु प्रमाणत्वेनोद्धृतत्वाच्च पुरातनकाल एव तौ सूत्रितावित्यवगन्तव्यम् ।

मैसूरुनगरमुद्रिते पुस्तके द्वितीयप्रश्ने ८-१२ कण्डिकासु विविधैः कारगैर्मृतानां विधौ वैशिष्ट्यम्, एकोद्दिष्टाह्नं, सपिण्डीकरणं, सामौकरणम् इत्यादयो विषयाः प्रतिपादिताः । (उभयोः पुस्तकयोः) तृतीयप्रश्ने ५; ६; ९; ११ कण्डिकासु अनाहिताग्नेः गर्भिण्याश्च संस्काराः प्रोक्ताः । मैसूरुपुस्तके पितृमेधशेषसूत्रमपि कण्डिकात्रयात्मकं मुद्रितं वर्तते । तत्र दहनं, निखननं, शुद्धिः, भ्राद्धादिकं च प्रोक्तम् ।

एवं बौ० पितृमेधसूत्रविषये उपलब्धां सामग्रीमुपयुज्य, पाठशुद्धिं विधिक्रमबोधं च समुद्दिश्य तत्सूत्रं यथामति संशोष्यात्र मुद्रितम् । तच्च (१) अन्येष्टिः (२) अस्थिसंचयनं पुनर्दहनं च (३) लोष्टचितिः (४) ब्रह्ममेधः (५) बौ० पितृ० द्वितीयप्रश्नशेषः (६) दहनकल्पः इति षट्सु विभागेषु विभक्तम् । सूत्रस्यार्थज्ञानविषये सूत्रान्तरसंबन्धविषये च कलान्तमहोदयेन रावमहोदयेन च स्वे स्वे ग्रन्थे बहु प्रपञ्चितम् । तदवश्यमवलोकनीयम् ।]

अन्त्येष्टिः

बौधायनीयपितृमेघसूत्रम् [१.१-१०; २.१, ६, ७]—

अथ यद्याहिताग्निनिर्मारं^१ गच्छत्युपतपता वा जरया वाऽग्निष्ठ एवाऽस्य यज-
मानायतने शयनं कल्पयेयुर्जघनेन गार्हपत्यम्^२ । तदस्मै^३ भक्षानाहरन्ति यावदलं भक्षाय
मन्यते । स यद्यगदो^४ भवति पुनरेति । यद्यु वै प्रैति न पयः समासिञ्चन्ति^५ । अथैतदग्निहोत्रं
सायमुपक्रमं प्रातरपवर्गमाचार्या^६ ब्रुवते । तत्रोदाहरन्ति स यदि सायं^७ हुतेऽग्निहोत्रे प्रेयात्
प्रतिकृष्य प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । अथ यदि प्रातरग्निहोत्रे हुते कुशलम् । अथेमौ दर्शपूर्ण-
मासौ पौर्णमास्युपक्रमावमावास्यासं^८स्थावाचार्या^९ ब्रुवते । तत्रोदाहरन्ति स यदि पौर्ण-
मास्यां वृत्तायां प्रेयात् प्रतिकृष्याऽमावास्यायां यजेत । अथ यद्यमावास्यायां वृत्तायां
कुशलम् । [बौ० पितृ० २.१-यथो एतदाहिताग्नेनिर्मारं गच्छतः प्रतिकृष्य प्रातरग्निहोत्रं
जुहुयात् प्रतिकृष्याऽमावास्यायां यजेतेति । तथैते कर्मणी अभिसंत्वरयेद्यथा जीवतः कृते
स्याताम् । स उ चेदहुते प्रातरग्निहोत्रेऽग्निष्टायाममावास्यायां प्रेयात्तदानीमेवाऽस्य तूष्णीं
प्रातरग्निहोत्रं यादक्कीदक्च होतव्यम् । तदानीमेवाऽस्य तूष्णीममावास्यां यादृशीं कीदृशीं च
यजेतेति । स उ चेत्पुनरगदः स्यात् पुनरेवाऽस्य प्रातरग्निहोत्रं काल्यमव्यापन्नं होतव्यं
पुनरेवाऽमावास्यां काल्यामव्यापन्नां यजेतेति । यथो एतन्न पयः समासिञ्चन्तीत्यामिक्षार्थं
पयोऽवशेषयेयुरित्येवेदमुक्तं भवति ।] अथ यस्योमे पर्वणी अतिपन्ने स्यातामतिपन्न-
प्रायश्चित्तं कुर्वीत । अथ यद्यार्तस्याऽग्निहोत्रं विच्छिद्येत यद्यस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वाऽलं
कर्मणे^{१०} स्यात् सोऽरण्योरग्नीन् समारोहोदवसाय मथित्वाऽग्नीन् विहृत्याऽग्नये तन्तुमते
पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति । शरावं दक्षिणां ददाति । सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते । अथ
यदि विप्रक्रान्ते प्रेयात्तूष्णीमेतत्तन्त्रं^{११} संस्थाप्याऽपो भक्षानभ्यवहरेयुः । अपो भक्षानभ्यव-
हरन्ति इति विज्ञायते । अथाऽस्याऽग्नीनुपनिर्हृत्येमां दिशं विहारं कल्पयित्वा दक्षिणा-
प्राचीम् । एषा हि पितृणां प्राची दिगिति विज्ञायते । अथैनमादायाऽन्तरेण वेद्युत्करौ
प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमुपसादयन्ति । अत्र हविर्निरूप्यत इति । अथैनमादायाऽन्तर्वेदि
प्राकिशरसमासादयन्ति । अत्र हविरासाद्यत इति । अथ गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय
क्षुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा प्रेतस्य दक्षिणं बाहुमन्वारभ्याऽऽहवनीये जुहोति ॥ १ ॥

परेयुवांसं प्रवतो महीरु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पृशानम् । वैवस्वतः संगमनं जनानां यमः
राजानं हविषा दुवस्यत खाहा इति । एतयैव^{१२} गार्हपत्ये जुहोति । तूष्णीमन्वाहार्यपचने

१. सूत्रे दीक्षितस्य मरणे पितृमेघः बौश्री १४.२७ अत्र द्रष्टव्यः । २. गार्हपत्यमन्तरस्मै—
कलान्त । दृश्यतां बौश्री १४.२७ । ३. यद्यु हाऽगदो—मैसूरु । ४. समासिञ्चति—मैसूरुपुस्तके
कलान्तपुस्तके च । परम् अनन्तरमेवोद्धृतं बौ० पितृ० २.१ सूत्रं द्रष्टव्यम् । ५. ०मित्याचार्या—
मैसूरु । ६. ०वित्याचार्या—मैसूरु । ७. कर्मणे—मैसूरु । ८. ०मेतं तन्त्रं—कलान्त । ९. एतेनैव—
मैसूरु ।

हुत्वाऽथैनमादायाऽन्तरेण वेद्युत्कराबुदङ्कुपनिर्हृत्याऽथैनं परिश्रयन्ति । तस्य दक्षिणाद्वारं कुर्वन्ति । अथाऽस्य केशश्मश्रु वापयित्वा लोमानि सः हृत्य नखानि निकृन्तयति । अथाऽस्य दक्षिणं कुक्षिमपावृत्य निष्पुरीषं कृत्वाऽङ्घ्रिः प्रक्षाल्य सर्पिषाऽऽन्त्राणि पूरयित्वा दर्भैः सः सीव्यति । तदु तथा न कुर्यात् । क्षोधुकाऽस्य प्रजा भवति इति विज्ञायते । अपि वा सपुरीषमेवाऽऽप्लाव्याऽऽच्छाद्याऽलंकृत्य । अथैनमादायाऽन्तरेण वेद्युत्करौ प्रपाद्य जघनेन गार्हपत्यमासन्द्यां कृष्णाजिने दक्षिणाशिरसं संवेष्ट्य शिरस्तो नलदमालां प्रतिमुच्य पत्तोदशेनाऽहतेन वाससा प्रोर्णोति इदं त्वा वलं प्रथमं न्वागन् इति । [बौ०पितृ० २.१— यथो एतदासन्द्यामौदुम्बर्यामासन्द्यामित्येवेदमुक्तं भवति ।] अथेतरदपोहति अपैतद्वह् यदि- हाऽबिभः पुरा । इष्टापूर्तमनुसंपश्य दक्षिणां यथा ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु इति । अथाऽस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वा पत्नी वा परिदधीत । तदु हाऽऽजरसमेव वसीताऽहःशेषं वा । अथ त्रीञ्छगलानुपकल्पयते । अथ यदि न छगला भवन्त्यन्तर्वेदि परागवहतानां कृष्णानां व्रीहीणामन्वाहार्यपचने त्रीञ्छ्रूञ्छ्रपयन्त्येकं वा । गार्हपत्य आमिक्षाञ्छ्रपयन्ति । अथैतान् संभारानुपकल्पयते दधि च सर्पिर्मिश्रमाज्यं चोदकुम्भं च दर्भाञ्छ्र परिस्तरणीयान् हिरण्यं चाऽजं च शासं चेडसूनं च कुम्भीं च प्रच्यावनीञ्छ्र सिकताश्च शुल्बे च तिस्रश्च पर्णशाखाः । कथमु खल्वेनं दहेयुरिति । यो बहुयाजी स्यात्तं पूर्वाग्निना दहेयुरित्येतदेकम् । अजस्रैरेनं दहेयुरित्येतदेकम् । निर्मन्थ्यैरेनं दहेयुरित्येतदेकम् । उत्तपनीयैरेनं दहेयुरित्येतदेकम् । अपि वा तिस्र उलपराजीरादीप्य यत्राऽग्नयः संगच्छेरञ्छ्रस्तत्रोल्मुकमादीप्य तेनैनं दहेयुरित्येतदपरम् ॥ २ ॥

अथाऽतोऽनुस्तरणीकल्पः । आनयन्त्येतां कृष्णां कूटां जरतीं मूर्खां तज्जघन्या-मनुस्तरणीं पदि बद्धाम् । सव्ये पदि बद्धा भवति इति विज्ञायते । एतस्मिन् कालेऽस्याऽमात्यास्तिसृभिस्तिसृभिरङ्गुलीभिरुपहृत्य पांसूनञ्छ्रसेष्वावपन्ते खल्वधं^१ न्वा स्यादधं नो^२ एवाऽधम् इति । अथाऽस्य भार्याः कनिष्ठप्रथमाः प्रकीर्णकेश्यो व्रजेयुः पाञ्छ्रसूनञ्छ्रसेष्वावपमानाः खल्वधं^३ न्वा स्यादधं नो एवाऽधम् इति^४ । एतस्मिन् काले गार्हपत्ये पालाशं काष्ठमादीप्याऽथोल्मुकप्रथमाः प्रतिपद्यन्ते । अथ स्वधितिरथाऽग्नयोऽथ पात्राणि दध्याज्यं दर्भा राज-गवीति यञ्चाऽन्यदप्येवं युक्तम् । अथैनमेतयाऽऽसन्द्या तल्पेन कटेन वा संवेष्ट्य दासाः प्रवयसो वा वहेयुः । अथैनमनसा वहन्तीत्येकेषाम् । अनश्चेद्युञ्ज्यात् इमौ युनज्मि ते वही असुनीथाय वोढवे । याभ्यां यमस्य सादनञ्छ्र सुकृतां चाऽपिगच्छतात् इति । समोप्याऽग्नीन् हरन्ति । समारोप्य वाऽन्तरेण वा कृत्वाऽग्नीन् हरन्ति । अथैनमाददते । आदीयमानमनुमन्त्रयते पूषा त्वैतश्च्यावयतु प्रविद्वाननष्टपशुर्बुवनस्य गोपाः । स त्वैतेभ्यः परिददारिपतृभ्योऽभिर्देवेभ्यः सुवि-दत्रेभ्यः इति । तृतीयमेतस्याऽध्वनो गत्वा निदधाति । अथैतेषां छगलानामेकमशस्त्रेण^५ प्रक्ष्णौति^६ । अथ यदि न छगला भवन्ति चरुं मेक्षणेन प्रयौति । यद्यु वा एक एव भवति

१. खल्वधन्नास्याधनो-कलान् । २. अयं भागः कलान्तपुस्तके नास्ति । ३. 'मेकं शस्त्रेण-कलान् । ४. प्रक्ष्णौति-मैसूह ।

चरोस्तृतीयं मेक्षणेन प्रयूय लोष्ठानुपस५हृत्य तेषूपमृज्य कनिष्ठप्रथमाः प्रकीर्णकेशास्त्रिरप-
सलैः परियन्ति सिग्भिरुपवातयन्तः। एवममात्या एव५ स्त्रियः। संयम्य केशान् यथेतं
त्रिः पुनः प्रतिपरियन्ति। अथैनमाददते। आदीयमानमनुमन्त्रयते पूषेमा आशा अनुवेद
सर्वाः सो अस्मा५ अभयतमेन नेषत्। स्वस्तिदा अष्टुणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रविद्वान् इति।
अर्धमेतस्याऽध्वनो गत्वा निदधाति। अथैतेषां छगलानामेकमशस्त्रेण प्रक्षणौति। अथ
यदि न छगला भवन्ति चरं मेक्षणेन प्रयौति। यद्यु वा एक एव भवति चरोरर्धं मेक्षणेन
प्रयूय लोष्ठानुपस५हृत्य तेषूपमृज्य कनिष्ठप्रथमाः प्रकीर्णकेशास्त्रिरपसलैः परियन्ति सिग्भिर-
रुपवातयन्तः। एवममात्या एव५ स्त्रियः। संयम्य केशान् यथेतं त्रिः पुनः प्रतिपरियन्ति।
अथैनमाददते। आदीयमानमनुमन्त्रयते आयुर्विश्वायुः परिपासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे
पुरस्तात्। यत्राऽऽसते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु इति। समस्तमेतस्याऽध्वनो
गत्वा निदधाति। अथैतेषां छगलानामेकमशस्त्रेण प्रक्षणौति। अथ यदि न छगला भवन्ति
चरं मेक्षणेन प्रयौति। यद्यु वा एक एव भवति चरोरवशिष्टं मेक्षणेन प्रयूय लोष्ठानुपस५हृत्य
तेषूपमृज्य कनिष्ठप्रथमाः प्रकीर्णकेशास्त्रिरपसलैः परियन्ति सिग्भिरुपवातयन्तः। एवममात्या
एव५ स्त्रियः। संयम्य केशान् यथेतं त्रिः पुनः प्रतिपरियन्ति। अथैतां चरुस्थाली५ सुसंभिन्नां
भिनन्ति यथाऽस्यै कपालेषूदकं न तिष्ठेदिति। यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

अथाऽस्याऽवकाशं जोषयते पश्चादुदकमनूषरमनुपहतमविस्त्रग्दार्यमनिरिण-
मसुषिरमभङ्गुरमवल्मीकमजागर्तिबहुलौषधिम^१। यत्र क्षीरिणो वृक्षा ओषधयो वाऽभ्याशे
न स्युः। यस्मादक्षिणाप्रतीच्य आपः शनैर्गत्वा प्रतिष्ठेर५स्तथा प्रदक्षिणमभिपर्यावृत्य
महानदीमभ्यवेत्य प्राच्यः संपद्येन्। दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणमित्येकेषाम्। उदक्प्रत्यक्प्रवण-
मित्येकेषाम्। अपि वा यः समंभूमिः। तस्माद्वीरुध उद्धारयन्ति कालां च पृश्निपर्णीं च
तिल्वकां चाऽपारकां चाऽपामार्गं च शुश्रू^२ च बहुपत्रिकां च विस्त्र५सिकां च राजवृक्षपर्णीं
च याश्चाऽन्याः क्षीरिण्य ओषधयो भवन्ति। अथैनं मध्ये शकलेनोद्धृत्याऽवोक्ष्य हिरण्येन
परिकीर्य पर्णशाखया वेदयति^३ अपेत वीत वि च सर्पताऽतो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।
अहोभिरद्विरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै इति। दारुचितां कुर्वन्ति दक्षिणाप्राचीम्। एषा
हि पितृणां प्राची दिक् इति विज्ञायते। जघनेन चितां दक्षिणाप्राचीं विहारं कल्पयित्वा
दर्भैरग्निं चितां चाऽपसलैः परिस्तीर्य दक्षिणेन विहारं दक्षिणाग्रान् दर्भान् स५स्तीर्य तेष्वे-
कैकशो न्यश्चि पात्राणि स५सादयति। एकपवित्रेण प्रोक्षणीः स५स्कृत्य पात्राणि प्रोक्ष्य प्रेतं
चितां च। आज्यं निरुप्याऽधिधित्य पर्यग्निं कृत्वोद्धास्योत्पूय तूष्णीं दर्भैः पात्राणि संमृज्य
तूष्णीं दार्शपौर्णमासिकान्याज्यानि गृहीत्वा। अथाऽस्य राजगवीमुपाकरोति भुवनस्य पत
इद५ हविरप्रये रयिमते स्वाहा इति। तस्यां निपद्यमानाया५ सव्यानि जानून्युपनिघ्नन्ते पुरुषस्य
सयावर्धयेदधानि मृज्महे। यथा नो अत्र नाऽपरः पुरा जरस आयति इति। तामन्यत्रैव शस्त्रात्^४

१. 'मजागर्ति' (?)—मैसूरु; 'मनागर्त'—कलान्त। २. ? शुश्रू—मैसूरु। ३. वेदयति—
मैसूरु। ४. शस्त्रा—कलान्त।

ज्जन्ति । अथाऽस्यै प्राणान् विक्षस्यमानाननुमन्त्रयते पुरुषस्य सयावरि वि ते प्राणमसिन्नसम् । शरीरेण महीमिहि स्वधयेहि पितृनुप प्रजयाऽस्मानिहाऽऽवह इति । उपोत्थाय पा५सूनवमृजन्ते मैवं मा५स्ता प्रियेऽहं देवी सती पितृलोकं यदैषि । विश्ववारा नभसा संव्ययन्त्युमौ नो लोकौ पयसाऽभ्या-
ववृत्स्व इति । अथ^१ स५शास्ति अज्ञादज्ञादनस्थिकानि पिशितानि प्रच्छिद्य संछादयन्तोऽप्रन्यावयन्त एकोल्मुकेन श्रपयत प्रज्ञातां वपां निधत्त प्रज्ञातः हृदयं प्रज्ञातौ च मतस्नौ प्रज्ञातां जिह्वां प्रज्ञातं चर्म सशीर्षवालपादं प्रज्ञातं मेदः इति । अथाऽस्य भार्यामुपसंवेशयति ॥ ४ ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्यं प्रेतम् । विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि इति । तां पतिहितः^२ सव्ये पाणावभिपाद्योत्थापयति उदीर्ष्व नार्यमि जीवलोकमितामुमेतमुपशेष एहि । हस्तग्रामस्य दिधिषोस्त्वमेतत्पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव इति । अथाऽस्य सुवर्णेन हस्तौ निमृजते सुवर्णः हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै ब्रह्मणे तेजसे बलाय । अत्रैव त्वमिह वयः सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम इति ब्राह्मणस्य । धनुर्हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै क्षत्रा-
यौजसे बलाय । अत्रैव त्वमिह वयः सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम इति राजन्यस्य । मणिः हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै विशे पुष्ट्यै बलाय । अत्रैव त्वमिह वयः सुशेवा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम इति वैश्यस्य । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति । अथैनमेतयाऽऽसन्ध्या सह चितावादधति । अपकृष्य^३ रज्जुरासन्दीमपविध्यन्ति । कृष्णाजिने चैव रज्जुषु चोत्तानः शेते । तस्य प्राणायतनेषु हिरण्यशकलान् प्रत्यस्य नानाचतुर्गृहीताभ्यामक्ष्णोर्जुहोति चित्रं देवानामुदगादनीकम् इति । अर्धर्चाभ्यां जुहोति इति विज्ञायते । कथमु खल्वस्य पात्राणि नियुञ्ज्यादिति । दध्ना^४ सर्पिर्मिश्रेण पूरयित्वा मुखेऽग्निहोत्रहवणीम् । नासिकयोः स्नुवौ । अक्ष्णोर्हिरण्यशकलावाज्यस्नुवौ वा प्रत्यस्य । कर्णयोः प्राशिन्नहरणं भित्त्वा । शिरसि कपालानि । ललाट एककपालम् । शिरस्तः प्रणीताप्रणयनं चमसं निदधाति ॥ ५ ॥

इममग्ने चमसं मा विजीहुरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् । एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् इति । दक्षिणे हस्ते जुह्वम् । सव्य उपभृतम् । उरसि ध्रुवामरणी च । दक्षिणेऽऽसे मेक्षणम् । सव्ये पिष्टोद्वपनीम् । पृष्ठे स्फ्यम् । उदरे दारुपात्रीम् । पार्श्वयोः शूर्पं छित्त्वा वैकम् । कुक्ष्योश्चमसौ सांनाय्यापिधानीं चेडोपहवनं च । वङ्क्ष्णयोः सांनाय्यकुम्भ्यौ । श्रोण्योरन्वाहार्यस्थालीं चरुस्थालीं च । पादयोरग्निहोत्रस्थालीमाज्यस्थालीं च । ऊर्वोरुलू-
खलमुसले । अण्डयोर्द्विषदुपले । शिश्ने वृषारवः शय्यां च । शिरस्त उपसादनीयं कूर्चं निदधाति । पत्त उपावहरणीयम् । अथाऽवशिष्टानि पात्राण्यन्तरेण सक्थिनीं निवपेयुः । अपो मृन्मयान्यभ्यवहरेयुः । अपो मृन्मयान्यभ्यवहरन्ति इति विज्ञायते । अत्रैव वा निदध्युः । ब्राह्मणेभ्योऽयस्मयानि लोहमयानि च दद्युः । तेषां यान्यासेचनवन्ति तानि दध्ना सर्पि-
र्मिश्रेण पूरयेत् । स५स्पृशेदितराणि । अरिकानि पात्राणि भवन्ति इति विज्ञायते । अत्रैव वाऽध्यस्यन्त्युपवाजनं खारीण्ड्वमिति । अथाऽस्याऽऽमिक्षां व्युद्धृत्य पाण्योरादध्यात्

१. अथैन-कलान्त । २. प्रतिहितः-मैसूद । ३. अपकृत्य-कलान्त । ४. तानि दध्ना-
कलान्त ।

मित्रावस्त्राभ्यां त्वा इति । अथाऽस्य मतस्नातुत्विद्य पाण्योरेवाऽऽदध्यात् श्यामशबलाभ्यां त्वा इति । दक्षिणे दक्षिणः सव्ये सव्यम् । हृदये हृदयमास्ये जिह्वाम् । यथाङ्गमितराणि संप्रच्छाद्य वपयाऽस्य मुखं प्रच्छादयति । मेदसा प्रोर्णोति इति विज्ञायते । अथैनं चर्मणा सशीर्षवालपादेनोत्तरलोम्ना प्रोर्णोति ॥ ६ ॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्यस्य संप्रोर्णञ्च मेदसा पीवसा च । नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधद्विधक्ष्यन् पर्यङ्कयातै इति । स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमेति इति विज्ञायते । अथ यद्यनुस्तरणीं नाऽनुस्तरिष्यन्तो भवन्त्युत्सृजेद्वैनां ब्राह्मणाय वा दद्यात् । दत्ता^१ त्वेव श्रेयसे^२ भवति इति विज्ञायते । अथ यद्युत्सक्ष्यन् भवति तां त्रिरपसलैरग्निं पर्याणयति अपर्याम युवतिमाचरन्तीम् इति तिसृभिः । त्रिः^३ पर्याणीयोत्तरतः प्रतिष्ठितामनुमन्त्रयते ये जीवा ये च मृता ये जाता ये च जन्त्याः इति । अथाऽस्याः कर्णलोमान्युत्पाद्य^४ पाण्योरेवाऽऽदध्यात् मित्रावस्त्राभ्यां त्वा इति । दक्षिणे दक्षिणानि सव्ये सव्यानि । अथैनामुत्सृजति माता रुद्राणां दुहिता वसूनाः स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः । प्र णु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ठ । पिबत्दकं तृणान्यतु । ओमुत्सृजत इति । अथैनमुपोषति पुरस्तादाहवनीयेन दक्षिणतोऽन्वाहार्यपचनेन पश्चाद् गार्हपत्येनोत्तरतः सभ्यावसथ्याभ्याम् । अत्राऽप्युत्प्रेक्षा भवति तं यद्याहवनीयः प्रथममभ्युज्ज्वलयेद्देवलोकमभ्यजैषीदित्येनं जानीयात् । अथ यद्यन्वाहार्यपचनः पितृलोकम् । अथ यदि गार्हपत्यो गन्धर्वलोकम् । अथ यदि सभ्यावसथ्यौ सप्तर्षीणां लोकम् । अथ यदि सर्व एव सहाऽभ्युज्ज्वलयेद्युर्ब्रह्मलोकमभ्यजैषीदित्येनं जानीयात् । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति ॥ ७ ॥

अथैनमादीपयति । आदीप्यमानमनुमन्त्रयते मैनमग्ने विदहो माऽभिषोचो माऽस्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् । यदा शृतं करवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात्पितृभ्यः इति । प्रज्वलितमनुमन्त्रयते शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्^४ पितृभ्यः । यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति इति । अत्र षड्ढोतारं व्याचष्टे षड्ढोता सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः इति । अत्रैतमजं चित्यन्तेऽबलेन शुल्बेन बध्नाति अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तनुवो जातवेदस्ताभिर्वहेमः सुकृता यत्र लोकाः इति । स यद्यपोद्भवति नैनं प्रत्यानयति । प्रागु हैक उपोषणादुदकुम्भेन त्रिरपसलैः परिषिञ्चन्ति वारुणीभिः । तत्प्रच्छाद्येन^५ पर्णमयेन सुवेणोपघातं जुहोति य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा इति नव सुवाहुतीः । अथाऽन्यां जुहोति अयं वै त्वमस्मादधि त्वमेतदयं वै तदस्य योनिरसि । वैश्वानरः पुत्रः पित्रे लोककृजातवेदो वहेमः सुकृता यत्र लोकाः स्वाहा^६ इति । अथैव सुवमनुप्रहरति । अत्रैतान्यवदानानीडसूने प्रच्छिद्यौदुम्बरी^७ दव्योपघातं जुहोति अमये रयिमते स्वाहा इति । अथैव

१. अथात्वेव श्रेयसि-कलान्त । २. 'त्रिः' नास्ति-कलान्त । ३. 'न्युत्पाद्य'-कलान्त ।

४. परिददात्-कलान्त । ५. तं प्रत्याछेद्य-कलान्त । ६. 'स्वाहा' नास्ति-कलान्त । ७. प्रच्छाद्यी-मैस्र ।

दर्शमनुप्रहरति । जघनेन चितामथैनं नवर्चेन याम्येन सूक्तेनोपतिष्ठते प्र केतुना बृहता भात्यभिः
इति । आसीनः^१ पराचाऽनुशंसति वा । जघनेन वाऽऽदहनं तिष्ठो दक्षिणाप्राचीः कर्षूः
कुर्वन्ति । अथैना अङ्गिरनुपरिप्लाव्य सिकताभिरनुप्रकीर्य संग्राहन्ते । यवीयान्यवीयान्
पूर्वःपूर्वः संग्राहते^२ ॥ ८ ॥

अश्मन्वती रेवतीः सश्रभश्चमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्
वयमभि वाजानुत्तरेम इति । जघनेन कर्षूः पर्णशाखे निहत्याऽबलेन शुल्बेन बद्ध्वा विनिः-
सर्पन्ति यद्वै देवस्य सवितुः पवित्रं सहस्रधारं विततमन्तरिक्षे । येनाऽपुनदिन्द्रमनार्तमात्यै तेनाऽहं मां
सर्वतनुं पुनामि इति । जघन्यो व्युदस्यति या राष्ट्रात्पचादपयन्ति शाखा अभिमृता नृपतिमिच्छ-
मानाः । धातुस्ताः सर्वाः पवनेन पूताः प्रजयाऽस्मान् रय्या वर्चसा ससृजान् इति । यत्राऽऽपस्त-
घन्त्यनवेक्षमाणाः । अपः सचेला दक्षिणामुखाः समृत्तिका आप्लवन्ते धाता पुनातु सविता
पुनातु इति । नामग्राहं त्रिरुदकमुत्सिच्योत्तीर्याऽऽचम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठन्ते^३ उद्वयं तमसस्पति
इति । अथ गृह्णानायन्ति । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति । एतस्मिन् कालेऽस्याऽमात्याः
केशश्मश्रूणि वापयन्ते ये संनिधाने भवन्ति । विकल्प इतरेषु वापयेरन् वा निवर्तयेरन्
वा । श्रुतवता तु वसव्यमेवाऽसंनिधानेऽपीति बोधायनस्य कल्पः । न समावृत्ता वपेरन् ।
अन्यत्र विहारादित्येके । मातरि पितर्याचार्य इति त्रिरात्रमक्षारलवणभोजनमधःशयनं
ब्रह्मचर्यम् । त्र्यहं षडहं द्वादशाहं संवत्सरं वा यावद्ग्रहणम् । द्वादशाहावराध्य परम-
गुरुषु । एवमघोदकम् । इतरेषु त्रिरात्रम् । यावज्जीवं प्रेतपत्नी ॥ ९ ॥

अथ यद्याहिताग्निरन्यत्र प्रेयादीप्यमानैरह्यमानैरासीरन् यावदस्य शरीरमग्निभिः
समागमयेरन्निति । अथैतदभिवान्यायै पयो दोहयित्वा गार्हपत्येऽभिविष्यन्दयित्वाऽऽ-
हवनीयेऽभिविष्यन्दयेत् । अधस्तात् समिधमाहरेत् । उपरिष्ठाद्धि देवेभ्यो हरति इति
विज्ञायते । अथैनमादायाऽन्तरेण वेद्युत्करौ प्रपाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । अथ यदि दग्धः
स्यादस्थान्याहृत्य^४ अन्तर्वेदि शरीराणां कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि
चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । [बौ० पितृ० २.१—यथो एत-
दन्तर्वेदि शरीराणां कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः
प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । पात्रचयनप्रभृति सिद्धमत ऊर्ध्वम् । एतावदेव नाना ।
नाऽत्र गोरालम्भः । अनुस्तरणीकाले कुशतरुणकैः शुष्कगोमयैर्घृतनेत्यनुस्तूणीयाद् अमेर्वमं
परि गोमिर्वयस्व इति । एतदेव पर्णत्सरुच्चिति । अपि वा यथेष्टिकल्पे । अपि वा तूष्णीं
सर्वं कृत्वाऽन्यत्र गोरालम्भादिति । अपि वा तूष्णीमेव पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः
प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरन्यत्र गोरालम्भादिति ।] [बौ० पितृ० २.६—यथो एतत्परोक्ष-
प्रेतस्य यजमानस्याऽस्थान्याहृत्य सस्कुर्यादिति कथमत्राऽऽहरणं विद्यत इति । शिरस्तः
प्रथमं गृहीत्वाऽथोरस्तोऽथो जठरतोऽथोरुभ्यामथ बाहुभ्यामथ पक्ष इति त्रयस्त्रिंशतम-

१. 'इत्यासीनः' अत्र सूत्रच्छेदं मन्यते कलान्तमहोदयः । २. संग्राहन्ते-कलान्त ।

३. 'तिष्ठते-कलान्त, मैसूर । ४. 'दस्थान्या'-कलान्त ।

स्थानि गृह्णातीति । विज्ञायते त्रयस्त्रिंशत्पुरुषः इति । अथैतान्यस्थान्यद्भिः प्रक्षाल्य कृष्णाजिनं प्राचीनग्रीवमधरलोमाऽऽस्तीर्य तस्मिन्नस्थानि संभरति इन्द्रो दधीचो अस्थभिः इत्येतेनाऽनुवाकेन । अत्र तथादेवतं करोति तथा देवतयाऽङ्गिरस्वदधुवा सीद इति । अथ सूददोहसं करोति ता अस्य सूददोहसः सोमः श्रीणन्ति पृथ्वयः । जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः इति । दीर्घवः शे. विग्रथ्याऽक्षारलवणाशिनो मृन्मयभोजिन आहरन्ति । तानि ग्राममर्यादायां निधायाऽग्नीतुपनिर्हृत्य पैतृमेधिकं कर्म प्रतिपद्यते । नाऽसति यजमाने ग्राममर्यादामतिहरेयुः । यद्यतिहरेयुरग्नयो लौकिकाः संपद्येरन् । विज्ञायते प्रवत्स्यन् यजमानोऽग्निभ्यः परिदाय गृह्णानेति तस्मात् ग्राममर्यादां नाऽतिहरेयुः ।] अथ यद्यस्थानि^१ न विन्देयुस्त्रीणि षष्टिशतानि पर्णत्सरूपां^२ कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । अथ यदि दिगेव प्रज्ञायते तां दिशं विहारं कल्पयित्वा असावेहि इति नामग्राहमाह्वय पर्णत्सरूपामेव कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । [बौ० पितृ० २.६-अथ यदि परोक्षप्रेतस्य यजमानस्य दिगेव प्रज्ञायते तां दिशं विहारं कल्पयित्वा असावेहि इति नामग्राहमाह्वय पर्णत्सरूपां कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति ।] अथ यदि दिगपि न प्रज्ञायत इमां दिशं विहारं कल्पयित्वा असावेहि इति नामग्राहमाह्वय पर्णत्सरूपामेव कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति । [बौ० पितृ० २.६-अथ यदि दिगपि न प्रज्ञायत इमां दिशं विहारं कल्पयित्वा असावेहि इति नामग्राहमाह्वय पर्णत्सरूपामेव कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तेषूपरि पात्राणि चित्वा कुशतरुणकैः प्रतिच्छाद्य प्रसिद्धमुपोषेयुरिति ।] आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च इति विज्ञायते । [बौ० पितृ० २.४-आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्चेत्यविशेषाज्जायापत्योराहिताग्न्योरित्येवेदमुक्तं भवति । तयोर्यः पूर्वो म्रियेत तस्याऽग्नित्रेतया यज्ञपात्रैश्च पितृमेधः । यः पश्चात्तस्यौपासनेन । सह प्रमीतयोः सहैकः पितृमेध औपासनस्योल्मुकार्थत्वात् । औपासनेऽविद्यमाने निर्मेन्थ्येन पितृमेधः ।] पुरुषाहुतिर्ह्यस्य प्रियतमेत्येतामनुख्यां दहनस्य ब्रुवते । अथाऽप्युदाहरन्ति शरीरदायादा ह वा अग्नयो भवन्ति इति । तदपि दाशतये विज्ञायते—शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषताऽऽयुर्गन्तोः इति ॥ १० ॥

[बौ० पितृ० २.७-यद्येवं कृतेऽग्निभिर्यजमानः पुनरागच्छेत् कथं तत्र कुर्यादिति । याज्ञिकात् काष्ठादग्निं मथित्वाऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्य आऽग्निमुखात् कृत्वा^३ पक्वाज्जुहोति हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्ने इति द्वाभ्याम् । अथाऽऽज्याहुतीरुपजुहोति सहस्रशीर्षा इत्येतेनाऽनुवाकेन प्रत्युचम् । स्वहृत्कृत्यभृति सिद्धमा धेनुवग्प्रदानात् । अपरेणाऽग्निः सौवर्णेन पात्रेण घटं वा मृन्मयं कृष्णाजिनं वा द्रुतीभूतेन घृतेनाऽद्भिः पूरयित्वा जीवपितुश्चेत् पिताऽभि-

मन्त्रयते विष्णुर्योनिं कल्पयतु इति । अथैनं प्रवेशयति तां पृषञ्छिवतमामेरयस्व इति । स गर्भो भूत्वा कृष्णाजिने घटे वैता५ रात्रीं वसति । व्युष्टायां पु५सवनप्रभृति आ जातकर्मणः कारयित्वा जघनार्धादात्मानमपकृष्य जायेत । जातस्य जातकर्मप्रभृति स५स्कारान् कारयित्वा द्वादशरात्रमेतद् व्रतं चरेत् । तथैव भार्ययाऽग्नीनाधाय ब्रात्येनैन्द्राग्नेन पशुना यजेत । गिरिं गत्वाऽग्नये कामायेहिं^१ निर्वपेदायुष्मती५ शतकृष्णलाम् । दिशामवेष्टया^२ वा यजेत । अत ऊर्ध्वमीप्सितैर्यज्ञक्रतुभिर्यजेत इति विज्ञायते ।

हिरण्यगर्भसंभूतो ब्राह्मणश्चीर्णनिर्णयः ।

प्रत्युत्थानं न कस्याऽपि कुर्याद्विषमस्तु सः ॥

इति विज्ञायते । तस्मात् प्रोषिते यजमाने चतुर्विंशतिवर्षाणि परिपाल्याऽग्निहोत्र५ स५स्कुर्याद्यद्यश्रुतः स्यादिति । अथ यदि यजमाने प्रियमाणे पत्न्यनालम्भुका स्यात् कथं तत्र प्रायश्चित्तम् ? द्वादशगृहीतेन स्तुचं पूरयित्वा दुर्गा^३ मनस्वतीं^३ महाव्याहृतीर्हुत्वा तद्यमो राजा इति द्वाभ्यां पूर्णाहुति५ हुत्वाऽत ऊर्ध्वं पैतृमेधिकं कर्म प्रतिपद्येत । यद्यर्थिनो विन्देर५स्तेभ्यो धेनुं दद्यादिति । अथ यद्याग्रयणेष्टिपशुचातुर्मास्याध्वराणामसमाप्तानां व्रतान्तराले प्रमीयेत, यद्यस्य पुत्रोऽन्तेवासी वा शेषा५ञ्चैकतन्त्रेण समाप्नुयात् । पश्वलामे तत्तद्देवत्यं पुरोडाशमामिक्षां वा यजेत । अथ वै भवति तमसो वा एष तमः प्रविशति य आहिताग्निमन्यैरग्निभिः स५स्कुर्यादिति । अथाऽप्युदाहरन्ति शरीरदायादा ह वा अग्नयो भवन्तीति । मरणे श्रेयोऽवाप्नोति^४ । य एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते सौर्येण पथा स्वर्गं लोकमेत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते चान्द्रमसेन पथा पितृलोकमेति इति विज्ञायते । ता सूर्याचन्द्रमसा विश्वसृत्तमा महत् इत्येताभिराहुतिभिः षड्भिरैवैनं पूर्वपक्षं नयन्ति । उदगयन आपूर्यमाणपक्षे दिवा क्रत्वन्ते श्रेयो मरणमित्युपदिशन्ति । अन्येषु वा नियमीभूतेषु सन्नेषु दीक्षितप्रमीतप्रायश्चित्तवदेकाहेऽहीने च कुर्यादिति कुर्यादिति ।]

अस्थिसंचयनं पुनर्देहनं च

बी० पितृ० [१.११-१३; २.३-४]—

अथाऽतः संचयनम् । एकस्यां व्युष्टायां तिसृषु वा पञ्चसु वा सप्तसु वा नवसु वैकादशसु वाऽयुग्मा रात्रीरर्धमासान् मासानृतून् संवत्सरं वा संपाद्य संचिनुयुरिति । स उपकल्पयते—सतं च क्षीरं चाऽऽज्यं चोदकुम्भं च दर्भा५श्च परिस्तरणीयाबीललोहिते सूत्रे बृहतीफलं चाऽश्मानं चाऽपामार्गं च वेतसशाखां च सिकताश्च शुल्बं च पर्णशाखे च । अत एवाऽऽदहनादङ्गारान्निर्वर्त्य तिस्रोऽवसर्जनीया जुहोति अवसृज पुनरमे पितृभ्यः,

१. बीश्री १३.५ । दृश्यतां पृ. ३५०, ४६५ । २. बीश्री १२.१९ । ३. दुर्गा मनस्वती—राबमहोदयस्य पाठः । दुर्गामनस्वती—मैसूर । दृश्यतां बीश्री २८.१० । ४. श्रेयोवाप्तिः—मैसूर ।

संगच्छस्व पितृभिः, यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद इति । अथैतस्मिन् सते क्षीरं चोदकुम्भं च निषिच्य वेतसशाखयाऽवोक्षन् संपादयत्यप्रकाथयञ्छरीराणि यं ते अग्निममन्थाम इति षड्भिः । प्रथमां वोत्तमां वा द्विरभ्यावर्तयेयुः । अथैतदादहनमुदकुम्भैः स्ववोक्षितमवोक्ष्य याऽस्य स्त्रीणां मुख्या सा सव्ये पाणौ बृहतीफलं नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां विग्रथ्याऽश्मानमन्वास्थायाऽपामार्गेण सकृदुपमृज्याऽनन्वीक्षमाणा पत्तः शिरस्तो वाऽस्थि गृह्णाति उत्तिष्ठाऽतस्तनुवः संभरस्व मेह गात्रमवहा मा शरीरम् । यत्र भूम्यै वृणसे तत्र गच्छ तत्र त्वा देवः सविता दधातु इति । इदं त एकम् इति द्वितीयम् । पर ऊ त एकम् इति तृतीयम् । तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व इति चतुर्थम् । संवेशनस्तनुवै चारुरोधि इति पञ्चमम् । प्रियो देवानां परमे सधस्थे इति षष्ठम् । अथैनः सुसंचितः संचित्य भस्मपिण्डं करोति । तं तथा करोति यथाऽस्य कपोतः छायायां नोपविशेदिति । अथैनमपरिमितैः क्षुद्रमिश्रैरश्मभिः परिचिनोति । न तेन परिचिनुयाद्यथाऽस्य कपोतः छायायामुपविशेदिति । अथैतान्यस्थान्यङ्घ्रिः प्रक्षाल्य कुम्भे वा सते वा कृत्वाऽऽदायोपोत्तिष्ठति ॥ ११ ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्रव्रवौकः कृणुष्व परमे व्योमन् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमं नाकमधिरोहेमम् इति । तं गर्तदेशं कुम्भं निधाय । अथाऽतो हविर्यज्ञियं निवपनम् । यं कामयेताऽनन्तलोकः स्यादिति तमस्या उद्धते सिकतोपोत्ते परिश्रिते निदधाति पृथिव्यास्त्वा अक्षित्या अपामोषधीनां रसे सुवर्गे लोके नाकस्य त्वा पृष्ठे ब्रध्नस्य त्वा विष्टपे सादयाम्यसौ इति । अनन्तलोको हैव भवति इति विज्ञायते । [बौ० पितृ० २.३-यथो पतद्भविर्यज्ञियं निवपनं पुनर्दाहश्चेति यदहः संचिनुयात्तदहरेवैतत्कुर्यात् । कुम्भान्तमनाहिताग्नेः स्त्रियाश्च, निवपनान्तं हविर्यज्ञयाजिनः, पुनर्दहनान्तं सोमयाजिनश्चित्यन्तमग्निचितः । यदीतरं यदीतरम् । अघोदकमुत्तिसृज्य दशरात्रमाशौचम् । दशरात्रे शौचं कृत्वा शान्तिः । अथ यदि चितिश्रित्यन्ते शौचम् । चित्याः प्राक्कर्षुभ्यः कृत्वा श्वो भूते धवनेनैव प्रतिपद्यते । प्रसिद्धमत ऊर्ध्वम् ।] जघनेन कुम्भं तिस्रो दक्षिणाप्राचीः कर्षुः कुर्वन्तीति तत्पुरस्ताद्वाख्यातम् । जघनेन कर्षुः पर्णशाखे निहत्याऽबलेन शुल्बेन बद्ध्वा विनिःसर्पन्तीति तत्पुरस्ताद्वाख्यातम् । यत्राऽऽपस्तम्बान्त्यनवेक्षमाणाः । अपः सचेला दक्षिणामुखाः समृत्तिका आप्लवन्ते धाता पुनातु सविता पुनातु इति । नामग्राहं त्रिरुदकमुत्तिसृज्योत्तीर्याऽऽचम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते उद्वयं तमसस्परि इति । अथ गृह्णानायन्ति । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति ॥ १२ ॥

ते यदि पुनर्धक्ष्यन्तो भवन्ति पुरस्तादेवाऽवशेषयेयुर्जुह्वं चाऽरणी च कृष्णाजिनं दृषदुपले शम्यामिति । अथ यद्यनुग्रहतानि स्युर्यस्यैव कस्याऽश्वत्थस्याऽरणी गृहीत्वा मथित्वाऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्य दक्षिणेनाऽग्निं दक्षिणाग्रान् दर्भान् सः स्तीर्य तेषूपरि कृष्णाजिने शम्यायां दृषदुपले युक्त्वाऽथैतान्यस्थान्यवाञ्जनं पिष्ट्वा पुराणसर्पिषा समु-

१. पिण्डं-कलान्त । २. °न्यस्थान्य°-कलान्त । ३. प्रतिवेशं-कलान्त । ४. तमस्या-कलान्त । ५. बौ० पितृ० १.८ । ६. बौ० पितृ० १.९ । ७. युक्त्वास्थान्य°-कलान्त ।

दायुत्य जुह्वा प्रसेकं जुहोति असात्त्वमधि जातोऽस्यं त्वदधि जायताम् । अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा इति । अत्रैवाऽनुप्रहरति जुहं चाऽरणी च कृष्णाजिनं दृषदुपले शम्यामिति । अत्राऽप्युत्प्रेक्षा भवति तं यदि ज्वालोर्ध्वमभ्युज्ज्वलयेत् देवलोकमभ्यजैषीदित्येनं जानीयात् । अथ यदि मुहूर्तमुदेत्य व्याघ्रमेदन्तरिक्षलोकमित्येनं जानीयात् । अथ यदीमामनुविनयेदिहैवेति जानीयात् । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति । न चाऽस्याऽत ऊर्ध्वं५ इमशानं कर्तुमाद्वियेत । आकृतीर्वाऽस्याऽऽदहने वपेदपस्याभिर्वा परिचिनुयात् । [बौ० पितृ० २.४-नाऽशुचिः काम्यं तप आतिष्ठेत् । न यजेत् । न स्वाध्यायमधीयीताऽन्यत्राऽग्निहोत्रदर्शपूर्णमासाभ्याम् । न दद्यात् । काममृत्विग्भ्यो दद्यात् ।] तमभ्येवाऽऽदित्यस्तपत्यमि वातः पवते तमापः स्पृशन्ति स नाऽऽदित्यस्य सकाशात् वायोर्नाऽपाः स्पर्शाच्छिद्यते यमेवं निदध्युर्य उ चैनदेवं विदुः । एवमु हाऽहीना हाऽऽश्वत्थ्या हायनाः । तः५ हो एवं चक्रे । तस्यो हेमेऽहीना हाऽऽश्वत्थ्या हायनाः । श्रेयसीश्रेयसी ह्यस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छत्यस्मै वस्यसीवस्यसी प्रजा भवति यमेवं निदध्युर्य उ चैनदेवं विदुः ।^१ एताः५ ह कौषीतकिर्विदांचकार । तस्यो हेमे कौषीतकिनः । श्रेयसीश्रेयसी ह्यस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छत्यस्मै वस्यसीवस्यसी प्रजा भवति यमेवं निदध्युर्य उ चैनदेवं विदुर्य उ चैनदेवं विदुः ॥ १३ ॥

लोष्टचितिः^२

बौ० पितृ० [१.१४-१७; २.४]—

एकाहं धुनुयुस्त्रीण्यहानि धुनुयुः पञ्च सप्त नवैकादशाहान्यर्धमासं धुनुयुर्युग्मा रात्रीरर्धमासान् मासानृतून् संवत्सरं वा संपाद्य धुनुयुरिति । स उपकल्पयते—दधि च वाजिनमिश्रं कुम्भीं च शतातृण्णां तिलः पालादयो मेथ्यो रोहितं चर्माऽऽनडुहमाहननार्थमपसलावृत्ताः५ रज्जुं परिश्रयणीं, षट्छतानीष्टका आममयाः, अपरिमिताश्च लोकंपृणाः, द्वाया धानास्तिलमिश्राश्चाऽतिलमिश्राश्च, अथैतदभिवान्याथै दुग्धमर्धपात्रं, समूलं बर्हिः, नलेषीकां, भुक्तभोगं च वासः, क्षेत्रवितृणीं, चतुरो लोहान्, पञ्च चरुन्, पञ्चाऽपूपान्, तेषां घृतेनैकोऽभिघारितः शृतेनैकः क्षीरेणैको दध्नेनैको मधुनैकः, चतुरः स्तम्भानर्जुनस्तम्बं दूर्वास्तम्बं काशस्तम्बं कुशस्तम्बं, चतुरो नानावृक्ष्यान् परिधीन् पर्णमयवारणवैतस-

१. अतीव दुर्बोधोऽयं सूत्रभागः । कलान्तमहोदयस्य पाठ एवम्—‘एवमु हाहीनाहा श्वःश्वोहायनास्तं हो एवं चक्रे तस्यो हेमेहीनाहा श्वःश्वोहायना श्रेयसी श्रेयसी ह्यस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छति । वस्यसी वस्यसी प्रजा भवति यमेवं निदध्युर्य उ चैनदेवं विदुः ।’ उपरि मुद्रितः पाठः प्रायः मैसूरुपुस्तकमनुसरति । ‘तं हो हैवं चक्रे...श्रेयसि श्रेयसि’ इति मैसूरुपाठः । १. अस्य विधेः सम्यग्बोधार्थम् ‘अभिचयनं’ (श्रौतकोशस्य तृतीये भागे) द्रष्टव्यम् । लोष्टचितेर्विधिः बौध्वा १७.३० अत्राप्युपलभ्यते ।

शमीमयान्, द्वे शाखे वारणशाखां च शमीशाखां च, यवान् सर्वौषधीः^१ सिकताश्च शुल्बे च तिस्रश्च पर्णशाखाः। अथाऽन्तरेण ग्रामं च श्मशानं चाऽगारं वा विमितं वा कारितं भवति। तद्वृथाऽग्निमुपसमाधाय जघनेनाऽग्निं तिस्रः पालाशयो मेथ्यो निहत्य तासा-
मन्तरेणाऽस्थिकुम्भं निधाय तदुपरिष्ठाच्छतातृष्णामभ्युद्यम्य दध्ना वाजिनमिश्रेण पूरयति वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि, इमं समुद्रं शतधारमुत्सम इति द्वाभ्याम्। द्रप्साननुमन्त्रयते द्रप्स-
श्चस्कन्द पृथिवीमनु द्याम् इति। अथैनं रोहितेनाऽऽनडुहेन^२ चर्मणाऽभिघातमभिघातं त्रिरपसलैः परियन्ति अजिनमौ अजिनमौ इति त्रिः। त्रिरेव रात्रेः परियन्ति त्रिरहः। एवममात्या एव-
स्त्रियः। तदनु नर्तक्यश्चाऽनुनृत्येयुः। यश्चाऽपहन्यते^३ खार्या वा पत्वे^४ वा समव-
शमयन्ते। यदेषां समवशमितव्यं भवति तेन तथा प्रययुर्यदहर्न पुरस्तात् पश्चाच्चन्द्रमसं पश्येयुः॥ १४॥

ते महारात्र उत्थाय प्रययुर्जात्वा श्मशानकरणम्। अथैते ब्राह्मणा अभ्रीरादायो-
त्तरतो गत्वा लोष्टानुपसंहरन्तीष्टका वा। अथैतदादहनमुदकुम्भैः स्ववोक्षितमवोक्षति
अपेत वीत वि च सर्पताऽतो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः। अहोभिरद्विरक्तुमिर्व्यक्तं यमो ददात्व-
वसानमस्मै इति यथा जीवदपसर्पेत्। विज्ञायते न जीवन्तमभिनिदध्याद्यजीवन्तमभिनि-
दध्याजीवतो ह्येष प्राणानभिनिदध्यादिति। पर्णशाखया वेदयित्वाऽपसलानुत्तया रज्ज्वा
परियन्ति प्रेमां मात्रामुपस्तुहि इति। तस्य मात्रा। यदि ग्रीवदध्नं पुरस्तात्नाभिदध्नं पश्चात्।
यदि नाभिदध्नं पुरस्ताज्जानुदध्नं पश्चात्। यदि जानुदध्नं पुरस्ताद् गुल्फदध्नं पश्चात्।
यदि गुल्फदध्नं पुरस्तात् समं भूमेः पश्चात्। पुरुषमात्रं भवति इति विज्ञायते। उक्तं
विद्याभ्यासम्^५। अनुस्पन्दं लेखां लिखति। अपोद्धृत्य स्पन्दां कर्षूः खानयन्ति। उच्छ्र-
यन्त्यपस्याः। दक्षिणतश्च पश्चाच्च वर्षीयसीः^६ कुर्वन्ति। अथ द्वाभ्यामात्मन्यग्निं^७ गृह्णीते
मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निं, यो नो अग्निः इति। स्वयंचितिं जपति यास्ते अग्ने समिधो यानि धाम
इति। श्वेतमश्वमभिमृश्याऽन्तःशर्करमिमामुपदधाति प्रजापतिस्त्वा सादयतु तथा देवतया-
ऽन्निरस्वदध्नुवा सीद इति। अथाऽस्यैतत्पुरस्तादेवौदुम्बरं युगलाङ्गलं कारितं भवति सप्तगवं
वा त्रयोदशगवं वा। अयुग्मा युक्तस्य भवन्ति। अथाऽनडुहो युनक्ति सवितैतानि शरीराणि
पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे। तेभिर्युज्यन्तामग्नियाः इति। कर्षति शुनं बाहाः शुनं नराः, शुनासीरा-
विमां वाचम् इति द्वाभ्याम्। सीतां प्रत्यवेक्षते सीते वन्दामहे त्वाऽर्वाची सुभगे भव। यथा नः
सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि इति। अथाऽस्थिकुम्भं सीतायां निदधाति सवितैतानि
शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे। तेभिरदिते शं भव इति। अथाऽनडुहो विमुञ्चति विमुच्य-
ध्वमग्निया देवयाना अतारिष्म तमसस्पारमस्य। उयोतिरापाम सुवरगन्म इति। त एतेऽध्वर्योर्भवन्ति
यदि दक्षिणावान् पितृमेधः। यद्यु वै सत्रियोऽग्निर्यथागवं व्युदचन्ति। यत्रैवाऽनड्वाह-

१. सर्वौषधं—मैसूरु। दृश्यतां बौध्नी २.१८। २. रोहितेन चर्मणानडुहेन—कलान्तः।
३. 'नृत्येयुर्यथापहन्यते' इत्यन्तमेकं सूत्रं कलान्तमते। ४. पत्वे—मैसूरु। ५. बौध्नी १०.१९।
६. हसीयसीः—मैसूरु। ७. 'त्मजग्नि'—कलान्तः। दृश्यतां बौध्नी १०.२०; १९.१।

स्तद्युगलाङ्गलम् । अथैनमुपवातयति प्र वाता वाप्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिह्वे पिन्वते
 सुवः । इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीः रेतसाऽवति इति । अग्निवत्सर्वौषधीर्वपति
 यथा यमाय हार्म्यमवपन् पञ्च मानवाः । एवं वपामि हार्म्यं यथाऽसाम जीवलोके भूरयः इति । अत्र
 सिक्ता निवपति अग्ने तव श्रवो वयः इति षड्भिरनुच्छन्दसम् । अथोर्ध्वचित उपदधाति
 चितः स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वं पितरो देवता । प्रजापतिस्त्वा^१ सादयतु तथा देवतयाऽङ्गिरस्वद्भुवा
 सीद इति । अथाऽनुव्यूहति आ प्यायस्व इति गायत्र्या ब्राह्मणस्य । सं ते पयाःसि इति त्रिभुभा
 राजन्यस्य । यथासुष्ठु यथाशर्करमनुव्यूहति । अथ द्वाभ्यामात्मन्यग्निं गृहीते मयि गृह्णाम्यग्ने
 अग्नि, यो नो अग्निः इति । स्वयंचितिं जपति यास्ते अग्ने समिधो यानि धाम इति । श्वेतमश्वमभि-
 मृश्याऽधिद्रवणं जपति अपामिदं न्ययनं, नमस्ते इति द्वाभ्याम् । अथ क्षेत्रवितृष्णीं चतुरो
 लोष्ठानुपदधाति । उक्ते तन्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहः रिषम् । एताः स्थूणां
 पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते भिनोतु इति पुरस्तादुपदधाति । उपसर्प मातरं भूमिमेता-
 मुरुग्यचसं पृथिवीः सुशेवाम् । ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत्येषा त्वा पातु निर्कत्या उपस्थे इत्युत्तरतः ।
 उच्छमञ्चस्व पृथिवि मा वि बाधिथाः सूपायनाऽस्मै भव सूपवञ्चना । माता पुत्रं यथा सिन्वाऽभ्येनं भूमि
 वृणु इति पश्चात् । उच्छमञ्चमाना पृथिवी हि तिष्ठसि सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् । ते गृहासो
 मयुश्चुतो विश्वाहाऽस्मै शरणाः सन्वत्र इति दक्षिणतः । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसः करोति ।
 अथैनं तिलमिश्राभिर्धानाभिरुपकिरति एणीर्धाना हरिणीरर्जुनीः सन्तु धेनवः । तिलवत्सा
 ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्वनपस्फुरन्तीः इति । अथैतदभिवान्यायै दुग्धमर्धपात्रं दक्षिणत
 उपदधाति एषा ते यमसादने स्वधा निधीयते गृहे । अक्षितिर्नाम ते असौ इति । अत्र यजमानस्य
 नाम गृह्णाति । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसं करोति । अथ^२ दक्षिणतः समूलं बहिर्निदधाति
 इदं पितृभ्यः प्रभरेम बहिर्देवेभ्यो जीवन्त उत्तरं भरेम । तत्स्वमारोहासो मेध्यो भव यमेन त्वं यम्या
 संविदानः इति । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसं करोति । अथ नलेषीकामुपदधाति^३ नलं प्लव-
 मारोहैत नलेन पथोऽन्विहि । स त्वं नलल्लवो भूत्वा संतर प्रतरोत्तरा इति । तयादेवतं कृत्वा सूद-
 दोहसं करोति । अथाऽस्थिकुम्भं भुक्तभोगेन वाससा निर्णिज्य यथाङ्गं चिनोति सवितैतानि
 शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आदधे । तेभ्यः पृथिवि शं भव इति । अत्र षड्ढोतारं व्याचष्टे
 षड्ढोता सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अपो वा गच्छ यदि
 तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः इति । परं मृत्यो अनु परेहि पन्थाम् इति च । अथैनमुप-
 वातयति शं वातः शः हि ते घृणिः शमु ते सन्वोषधीः । कल्पन्तां मे दिशः शग्माः इति । अथैतान्
 पञ्च चरुन्त्सापूपानुपदधाति अपूपवान् घृतवाःश्चरेह सीदतूतभुवन् पृथिवीं द्यामुतोपरि । योनिवृतः
 पथिकृतः सपर्यत ये देवानां घृतभागा इह स्थ । एषा ते यमसादने स्वधा निधीयते गृहेऽसौ इति ।
 अत्र यजमानस्य नाम गृह्णाति । दशाक्षरा ताः रक्षस्व तां गोपायस्व तां ते परिददामि तस्यां
 त्वा मा दधन् पितरो देवता । प्रजापतिस्त्वा सादयतु तथा देवतयाऽङ्गिरस्वद्भुवः सीद इति पुरस्ता-
 दुपदधाति, अपूपवाञ्छतवान् इत्युत्तरतः, अपूपवान् क्षीरवान् इति पश्चात्, अपूपवान् दधिवान्

१. प्रजापतिर्वः—मैसूह । २. 'अथ' नास्ति—कलान्त । ३. नलेषीका—कलान्त ।

इति दक्षिणतः, अपूपवान् मधुमान् इति मध्ये । शताक्षरा सहस्राक्षराऽनुताक्षराऽच्युताक्षरा इति प्रतिदिशमनुषजति । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसः करोति । अथैनं^१ तिलमिश्रामिर्धानामि-
रुपकिरति एतास्ते स्वधा अमृताः करोमि यास्ते धानाः परिकिराम्यत्र । तास्ते यमः पितृभिः संवि-
दानोऽत्र धेनूः कामदुधाः करोतु इति । अथ चतुरः स्तम्बानुपदधाति चरूणामुपस्थात् ।
त्वामर्जुनौषधीनां पयो ब्रह्माण इद्विदुः । तासां त्वा मध्यादादधे चरुभ्यो अपिधातवे इति पुरस्ता-
दर्जुनस्तम्बम् । दूर्वाणां स्तम्बमाहरैतां प्रियतमां मम । इमां दिशं मनुष्याणां भूयिष्ठाऽनुविरोहतु
इत्युत्तरतो दूर्वास्तम्बम् । काशानां स्तम्बमाहर रक्षसामपहत्यै । य एतस्यै दिशः पराभवन्नघायवो यथा
ते नाऽभवन् पुनः इति पश्चात् काशस्तम्बम् । दर्माणां स्तम्बमाहर पितृणामोषधीं प्रियाम् । अन्वस्यै
मूलं जीवादनु काण्डमथो फलम् इति दक्षिणतो दर्भस्तम्बम् । चतुर्णां स्तम्बानामग्रैर्मध्यमं
चरुमपिदधात्येतैरेव चतुर्भिर्मन्त्रैः । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसः करोति । अथ चतुरो
नानावृक्षान्^२ परिधीन् परिदधाति । मा त्वा वृक्षी संबाधिष्टां मा माता पृथिवि त्वम् । पितृन्
ह्यत्र गच्छास्येधासं यमराज्ये इति पर्णमयवारणौ पुरस्ताच्चोत्तरतश्च । मा त्वा वृक्षी संबाधेथां
मा माता पृथिवी मही । वैवस्वतः हि गच्छासि यमराज्ये विराजसि इति वैतसशमीमयौ पश्चाच्च
दक्षिणतश्च । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसौ करोति । अत्र नलेषीकावित्येके ॥ १५ ॥

अथ लोष्ठानुपदधाति । पृथिव्यास्त्वा लोके सादयाम्यमुष्य शर्माऽसि पितरो देवता ।
प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद इति शतं पुरस्तादुपदधाति । अन्तरिक्षस्य
त्वा लोके सादयामि^३ इति शतमुत्तरतः । दिवस्त्वा लोके सादयामि इति शतं पश्चात् । दिशां
त्वा लोके सादयामि इति शतं दक्षिणतः । नाकस्य त्वा पृष्ठे ब्रध्नस्य त्वा विष्टपे सादयामि इति
द्विशतं मध्ये । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसः करोति । अथ लोकंपृणा उपदधाति लोकं
पृण च्छिद्रं पृणाऽथो सीद शिवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् इति । लोकं-
पृणाभिः सहस्रं संपद्यते । द्विषाहस्त्रादिज्वेतान्येव^४ पुनः पुनरुपदध्यात् । काठकाग्निचित्तावपि
पञ्चाशीतिशतमुपदध्यात् । विज्ञायते अग्निं चित्वा सौत्रामण्या यजेत मैत्रावरुण्याऽऽ-
मिक्षया वा इति काठकाग्नीनां ब्राह्मणम् । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसः करोति । अथाऽव-
द्रुत्य कृष्णमश्वमभिमृश्य तनुपुरीषमुपदधाति पृष्ठो दिवि इति । तयादेवतं कृत्वा सूददोहसं
करोति । अथैनमुपवातयति शं वातः शः हि ते घृणिः शमु ते सन्वोषधीः । कल्पन्तां ते दिशः
सर्वाः इति । अथैनमभिमृशति इदमेव मतोऽपरामार्तिमाराम कांचन । तथा तदश्विभ्यां कृतं
मित्रेण वरुणेन च इति । पुरस्ताद्वारणशाखां निदधाति वरणो वारयादिदं देवो वनस्पतिः ।
आर्यैर्निर्ऋत्यै द्वेषाच्च वनस्पतिः इति । उत्तरतः क्षेत्रवितृर्णीं निदधाति विष्टतिरसि विधारया-
ऽस्मदघा द्वेषांसि इति । पश्चाच्छमीशाखां निदधाति शमि शमयाऽस्मदघा द्वेषांसि इति ।
दक्षिणतो यवान्निदधाति यव यवयाऽस्मदघा द्वेषांसि इति । अथैनमुपतिष्ठते पृथिवी गच्छा-
ऽन्तरिक्षं गच्छ दिवं गच्छ दिशो गच्छ सुवर्गच्छ सुवर्गच्छ दिशो गच्छ दिवं गच्छाऽन्तरिक्षं गच्छ पृथिवीं

१. अतिल°—कलान्त । २. नानावृक्षीयान्—कलान्त । ३. 'अमुष्य शर्माऽसि...' इत्यनुषङ्गः सर्वत्र । ४. द्विषहस्त्रा°—कलान्त ।

गच्छाऽपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः इति । जघनेन चित्तां तिस्रो दक्षिणाप्राचीः कर्षूः कुर्वन्ति तत्पुरस्ताद्व्याख्यातम्^१ । जघनेन कर्षूः पर्णशाखे निहत्या-
ऽबलेन शुब्धेन बद्ध्वा चिन्तिः सर्पन्ति तत्पुरस्ताद्व्याख्यातम्^२ । यत्राऽऽपस्तम्बान्त्यनवेक्ष-
माणाः । अपः सचेला दक्षिणामुखाः समृत्तिका आप्लवन्ते धाता पुनातु सविता पुनातु
इति । नामग्राहं त्रिरुदकमुत्सिच्योत्तीर्याऽऽचम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते उद्वयं तमसस्परि इति ।
अथ गृहानायन्ति । यच्चाऽत्र स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति । अत्र शान्तिं कुर्वन्ति । सौत्रामण्या
प्रत्यान्नायो भवत्यत्राऽऽमिक्षया^३ वेति । संतिष्ठते लोष्टचितिः संतिष्ठते लोष्टचितिः ॥ १६ ॥

अथ गृहानेष्यश्रुपकल्पयते वारणं^४ सुक्लृवं च वारणान् परिधीन् कुशमयं
बर्हिः पर्णमयमिध्मं^५ रोहितं^६ चर्माऽऽनडुहं नवं च सर्पिराञ्जनं चाऽश्मानं चाऽनड्वाहं
च शमीशाखां च कुशतरुणकानि च दर्भस्तम्बं चाऽजं च यवांश्चेति । [बौ० पितृ०
२.४-यथो एतत् गृहानेष्यश्रुपकल्पयत इति स्वान् स्वान् गृहस्थधर्मान् प्रतिपत्स्यन्नित्येवेद-
मुक्तं भवति ।] अथाऽन्तरेण ग्रामं च श्मशानं च तद्वृथाऽग्निमुपसमाधाय कुशमयं
बर्हिः स्तीर्त्वा वारणान् परिधीन् परिधाय पर्णमयमिध्ममभ्यज्य स्वाहाकारेणाऽभ्याधाय ।
अथैतद्रोहितं^७ चर्माऽऽनडुहं जघनेनाऽग्निं प्राचीनग्रीवमुत्तरलोमोपस्तृणाति । तदारोहन्ति
यावन्तोऽस्य ज्ञातयो भवन्ति आरोहताऽऽयुर्जरसं गृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ । इह त्वष्टा
सृजनिमा सुरतो दीर्घमायुः करतु जीवसे वः इति । अथैनाननुपूर्वं कल्पयति यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति
यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति कल्माः । यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयैषाम् इति । अथ
वारणेन सुवेण वारण्यां^८ सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा जुहोति न हि ते अग्ने तजुर्व कूरं चकार
मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायु गौरिव । अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुच्या रयिम् । अप नः
शोशुचदधं मृत्यवे स्वाहा इति । अथ वारणेन सुवेणोपघातं जुहोति अप नः शोशुचदधम् इति
द्वादश सुवाहुतीः । अथोपोत्थायाऽनड्वाहमन्वारभन्ते अनड्वाहमन्वारभामहे स्वस्तये । स न
इन्द्र इव देवेभ्यो बहिः संपारणो भव इति । प्राञ्चो यन्ति इमे जीवा वि मृतैराववर्तिन्नभूद्भद्रा देवद्विति
नो अद्य । प्राञ्जोऽगमा नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरां दधानाः इति । जघन्यः शमीशाखया
पदानि संलोपयते मृत्योः पदं योपयन्तो यदैम द्राघीय आयुः प्रतरां दधानाः । आप्यायमानाः
प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः इति । अथाऽन्तरेणाऽग्निं च ग्रामं चाऽश्मानमुप-
दधाति इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मा नोऽनुगादपरो अर्धमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरुचींस्तिरो
मृत्युं दध्महे पर्वतेन इति । अथैताः पत्नयो नवेन सर्पिषा संमृशन्ते^९ इमा नारीरविधवाः सुपत्नी-
राजनेन सर्पिषा संमृशन्ताम् इति । कुशतरुणकैस्त्रैककुदेनाऽऽजनेनाऽऽङ्के यदाञ्जनं त्रैककुदं
जातं हिमवतस्परि । तेनाऽमृतस्य मूलेनाऽरातीर्जम्भयामसि इति । अथैतानि कुशतरुणकानि
समुच्चित्य दर्भस्तम्बे निदधाति यथा त्वमुद्गिनत्स्योषधे पृथिव्या अधि । एवमिम उद्गिन्दन्तु कीर्त्या
यशसा ब्रह्मवर्चसेन इति । प्रत्येत्य गृहानासन्दीः प्रोष्ठानित्यारोहन्ति अनश्रवो अनमीवाः

१. बौ० पितृ० १.८। २. बौ० पितृ० १.९। ३. भवत्यामिक्षया-मैसूह। ४. लोहित-
कलान्तु। ५. लोहित-कलान्तु। ६. संमृशन्ति-मैसूह।

सुरेवा आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे इति । अजं चैतदहः पचन्ते यवोदनं च । अजस्याऽश्रन्ति^१ अजोऽस्यजाऽस्मदधा द्वेषांसि इति । यवोदनस्य च प्राश्रन्ति^२ यवोऽसि यवयाऽस्मदधा द्वेषांसि इति । अथाऽस्य श्राद्धं कुर्वन्ति । एकस्यां व्युष्ट्यायां तिसृषु वा पञ्चसु वा सप्तसु वा नवसु वैकादशसु वाऽयुग्मेष्वहःस्वर्धमासेषु मासेष्वृतुषु संवत्सरे वा दद्यात् । काम-महरहः । एकादश मासान्नयन्ति । न द्वादशमासमभ्यारोहन्ति । संवत्सरेसंवत्सर एतस्मिन्नहनि दद्यात् । स एष एवं विहित एवाऽनाहिताग्नेः^३ । स्त्रियाः पुंलिङ्गपात्रचयनेष्टका-केशवपनवर्जम् । पितुर्मातुराचार्यस्य वा क्रियेत^४ । सहस्रदक्षिणो वाऽप्यन्यस्य पितृमेधः । संतिष्ठते पितृमेधः संतिष्ठते पितृमेधः ॥ १७ ॥

ब्रह्ममेधः

बौ० पितृ० [२.२]—

अथ वै भवति प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा वृत्तोऽशयत् । तं देवा भूतानां रसं तेजः संभृत्य तेनैनमभिषज्यन् इति^५ । तत्पृच्छन्ति कतमद्वाह्मणानां तेजो रसो येनैनमभिषज्यन्निति । चतुर्होतार इत्येव ब्रूयात् । तस्य सग्रहैः^६ होतृभिर्होमः । भर्तृसूक्तेन^७ भरणम् । पत्नीभिरुपसंवेशनम्^८ । दक्षिणाप्रतिग्रहैर्निर्माणः^९ । हृदयैः^{१०} हिरण्यशकलान् । संभारैः^{११} पात्रचयः । ज्योतिष्मतीभिरुपोषणम्^{१२} । नारायणाभ्यां^{१३} ब्राह्मण एकहोता^{१४} इति चोपस्थानम् । प्रयासाय स्वाहा^{१५} आयासाय स्वाहा इत्याज्याहुतीः । चित्तं संतानेन^{१६} इति हविराहुतीः । मृत्युसूक्तेनाऽनुशंसनम्^{१७} । सौम्या^{१८} संग्राहनम् । ईयुष्ट्याऽवगाहनम्^{१९} । सौर्येणाऽऽदित्यस्योपस्थानमिति^{२०} । तानेतान् परं ब्रह्मेत्याचक्षते^{२१} । तान्न साधारणे दमशाने प्रयुजीत नाऽनाचार्याय नाऽश्रोत्रियाय नाऽगुरवे ॥

बौ० पितृ० द्वितीयप्रश्नशेषः

बौ० पितृ० [२.३-५]—

अथैतेषामुदकम् । सपिण्डानां सवान्धवानां मातुश्च योनिर्बन्धेभ्यः पितुश्च

१. °स्याश्राति—कलान्त । २. प्राश्राति—कलान्त । ३. 'एव' नास्ति—मैसूब । ४. क्रियते—मैसूब । ५. तैआ १.२.६.१ । ६. तैसं १.४.१-४२ । ७. तैआ ३.१४ । ८. तैआ ३.९ । ९. दक्षिणामन्त्राः तैसं १.४.४३; प्रतिग्रहमन्त्राः तैआ ३.१० । १०. तैआ ३.११ । ११. तैआ ३.८ । १२. तैआ ३.१९ । १३. तैआ ३.१२-१३ । १४. तैआ ३.७ । १५. तैसं १.४.३५; तैआ ३.२० । १६. तैसं १.४.३६ । १७. तैआ ३.१५ । १८. तैआ ३.१७ । १९. तैआ ३.१८ । ईयुष्टे इत्यव°—कलान्त । २०. तैआ ३.१६ । २१. तैआ ३.१२.५.१ ।

आ सप्तमात् पुरुषादाचार्यान्तेवासिनोश्च सपत्नीकानां सापत्यानां सपिण्डानां दशरात्रम् । त्रिरात्रमितरेषाम् । बाले देशान्तरस्थे च सद्यःशौचमित्येके । एवं नित्योदकतर्पणे । अनुस्मरणं स्त्रीयाज्यशिष्याणाम्^१ । न प्राक् चौडात् प्रमीतानां दहनं विद्यते नाऽनुपनीतानां कन्यानां वा पितृमेधः । अनुपनीतान् कन्या वा पुनर्दहनमन्त्रेण दहेयुः । नाऽनाहिताग्नेः पात्रचयो विद्यते । नाऽपशुबन्धयाजिनां गौश्छगलाः^२ । नाऽसंनयतामामिक्षा । नाऽनग्निचित्तां चितिः । न स्त्रीणां केशवपनं विद्यते न चितिर्नैष्टका न पुनर्दाहः । दाखत् स्त्रीणां पात्राणि भवन्ति इति विज्ञायते । बह्वृचानां पितृमेधे स्त्रीणामिमान् मन्त्रानपोद्धरेत् ॥ ३ ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना, उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं, सुवर्णं हस्तादाददाना, धनुर्हस्तादाददाना, मणिं हस्तादाददाना, मैनमग्ने विदहो माऽभिशोचः, शतं यदा करसि जातवेदः, अजोऽभागस्तपसा तं तपस्व, अयं वै त्वमस्मादधि त्वमेतत्, इदं त एकं पर ऊ त एकम्, यौ ते श्वानौ, यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद, उत्तिष्ठ प्रेहि प्रद्रवौकः कृणुष्व, अस्मात्त्वमधि जातोऽसि, अपेत वीत वि च सर्पताऽतः, उच्छ्रमश्चस्व पृथिवि मा विबाधियाः इति । मृतपत्नीकः क्रतूनाहरिष्यन् जायामुपयस्याऽग्नीनादध्यात् । विज्ञायते च तस्मादेको द्वे जाये विन्दते, तस्मादेको बह्वीर्जाया विन्दते इति । मृतपत्निकाया औपासनेन पितृमेधः । न ह्यस्या अपतित्वात् पुनरग्न्याधेयं विद्यते । विज्ञायते च तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते इति ।...औपासनेनाऽनाहिताग्निमित्यविशेषाज्जायापत्योरनाहिताग्न्योरित्येवेदमुक्तं भवति । तयोर्यः पूर्वो भ्रियेत तस्यौपासनेन पितृमेधः, यः पश्चात्तस्य निर्मन्थ्येन । उत्तपनीयमेके समामनन्ति । निर्मन्थ्येन स्त्रीकुमारान् दहेयुरित्येकेषाम् । मृतपत्नीकस्याऽग्निभिर्जायायां दग्धायामौपासने का प्रतिपत्तिरिति । क्रतूश्चेदाहरिष्यन् स्याद् ब्राह्मैदनिकमेनं कुर्यात् । वनं चेदातिष्ठेदौपासनमेवोपास्यन् स्यात् । आत्मानं चेद्युज्यादात्मन्येनं समारोपयेत् । अथ चेत्संन्यस्येत् नैनमाद्रियेत ।...कथमुखलु प्राचीनावीतिना पितृमेधः कर्तव्यो यज्ञोपवीतिनेति । प्राचीनावीतिनेत्येव ब्रूयात् । विज्ञायते च पितृणां वा एष मेधो देवानां वा अन्ये मेधाः इति । निवीतिनस्त्वेवैनं वहेयुः श्रितायां चाऽऽदध्युः ॥ ४ ॥

अथ यदि नष्टाग्निरपहृताग्निर्विधुराग्निर्विच्छिन्नाग्निस्तृष्टाग्निः समारूढाग्निर्वा यजमानः प्रेयाद्यद्यस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वाऽलंकर्मणः स्यात् प्राचीनावीतं कृत्वोद्धृत्याऽवोक्ष्य यजमानायतने प्रेतं निधाय गार्हपत्यस्याऽऽयतनेऽरणी निधाय प्रेतस्य दक्षिणं बाहुमन्वारभ्य मन्थति येऽस्याऽमयोऽजुहोतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् । जानन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु इति । तूष्णीं विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय द्वादशगृहीतेन स्तुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेन मनसाऽनुदृत्याऽऽहवनीये जुहोति । एतेनैव गार्हपत्ये जुहोति । तूष्णीमन्वाहार्यपचने हुत्वाऽत ऊर्ध्वं पैतृमेधिकं कर्म प्रतिपद्यते । अथ यद्यात्मनि समारूढेष्वग्निष्वरण्योर्वा यजमानो भ्रियेत यद्यस्य पुत्रो वाऽन्तेवासी वाऽलंकर्मणः स्यात् प्राचीनावीतं कृत्वोद्धृत्याऽवोक्ष्य यजमानायतने प्रेतं निधाय गार्हपत्यायतने

लौकिकमग्निमुपसमाधाय प्रेतस्य दक्षिणं बाहुमन्वारभ्य जपति उपावरोह जातवेद इमं तं स्वर्गाय लोकाय नय प्रजानन् । आयुः प्रजां रयिमस्मासु धेहि प्रेताहुतीश्चाऽस्य जुषस्व सर्वाः इति । अपि वाऽरण्योरग्नीनुपावरोह्य मथित्वा तूष्णीं विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय द्वादशगृहीतेन स्मृचं पूरयित्वा गार्हपत्ये जुहोति हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे इत्याऽन्तादनुवाकस्य । प्रत्युचं हुत्वा सप्त ते अग्रे इति पूर्णाहुतिं हुत्वाऽत ऊर्ध्वं पैतृमेधिकं कर्म प्रतिपद्यते । अथ यद्यरण्योः समारूढः स्यान्मथ्यमानेऽन्वारभ्यैतामृचं जपेत् । अत ऊर्ध्वं पैतृमेधिकं कर्म प्रतिपद्यते ॥ ५ ॥

दहनकल्पः

बौ० पितृ० [३]—

अथाऽतो द्विजातीनां दहनकल्पं व्याख्यास्यामः । जातस्य वै मनुष्यस्य ध्रुवं मरणमिति विजानीयात् । जाते न प्रहृष्येन्मृते च न विषीदेत् ।

अकस्मादागतं भूतमकस्मादेव गच्छति ।

तस्माज्जातं मृतं चैव संपश्यन्ति सुचेतसः ॥ इति ।

तस्माज्जातस्य वै मनुष्यस्य द्वौ सः स्कारावृणभूतौ भवतो जातसः स्कारो मृतसः स्कारश्चेति । विज्ञायते जातसः स्कारेणेन लोकमभिजयति मृतसः स्कारेणाऽमुं लोकम् । तस्मान्मातरं पितरमाचार्यं पत्नीं पुत्रं शिष्यमन्तेवासिनं पितृव्यं मातुलं सगोत्रमसगोत्रं वा दायमुपयच्छेत् दहनसः स्कारेण सः स्कुर्वन्ति । त एव शवभर्तारोऽन्ये समानगोत्रा वा । राजन्यस्य पुरोहितः सहस्रदक्षिणो ब्राह्मणो वैश्यस्य सप्तगुणा वा । अथाऽऽहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च^१ । गृहस्थमौपासनेन । ब्रह्मचारिणं कपालसंतापनेन^२ । उत्तपनीयेनेतरान् । एवञ्चित्रियम् । अथ यद्याहिताग्निः^३ पौर्णमासेन हविषेष्ट्वा सायं हुत्वा वा प्रमीयेताऽथ गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्मृचं निष्ठप्य संमृज्य स्मृचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वोत्तरतो दक्षिणामुख उपविश्य गार्हपत्ये जुहोति मृत्योरधिष्ठानाय स्वाहा इति । एवमेव प्रहोऽन्वाहार्यपचने, तिष्ठन्नाहवनीये । दक्षिणतः सकृदतिवात्य कूर्चं वेद्यै दक्षिणेऽसे दक्षिणाग्रां स्मृचं निधाय प्राचीनावीतं कृत्वा दक्षिणोत्तानेन पाणिना दक्षिणतः स्मृचं संमार्ष्टि पितृभ्यस्त्वा मृत्युं जिन्व इति वा तूष्णीं वा । अथाऽप उपस्पृश्याऽङ्गुल्या सकृत्प्राश्याऽप आचम्य निर्णिज्य स्मृचं निष्ठप्याऽङ्गिः पूरयित्वा प्रेतस्य प्राणस्थानेषु निनीय यथायथं^४ स्मृचं विमुञ्चति । सैव ततः प्रायश्चित्तिरिति ब्राह्मणम् । अथ मरणसंशये यजमानायतने सिकताः संप्रकीर्य दक्षिणाग्रान् दर्भान् सस्तीर्य तेषु दक्षिणाशिरसमेन निपात्य दक्षिणे कर्णे जपति आयुषः प्राणं संतनु^५ इत्येतमनुवाकं संज्ञानं विज्ञानम्^६ इति षोडशाऽनुवाकान् । एवमुत्तरे । अथ प्राणेषूत्क्रान्तेषु हिरण्यशकलमास्थे निधायाऽध्वर्युः संभारा-

१. बौ०पितृ० १.५-७। २. संतपनाग्निना—मैसूरु। ३. यद्याहिताग्निर्भवति—मैसूरु। ४. यथायतनं—मैसूरु। ५. तैत्रा १.५.७। ६. तैत्रा ३.१०.१-१६।

नुपकल्पयते^१ सर्वौषधं चोदकुम्भं चाऽहतं च वासः समूलं बर्हिर्हिरण्यं^२ हिरण्यशकला^३श्च^४ गा^५ रोहिणीं परशुं चाऽश्मानं चोर्णासूत्रमौदुम्बरं तल्पमौदुम्बरी^६ शाखां दधि मधु घृततिल-
तण्डुला^७श्च याज्ञिकानि च काष्ठानि स्पन्ध्या^८ शङ्कूनि^९ति । एतेऽस्य संभारा उपकल्प्ता
भवन्ति । अथैषा पत्नी केशान् विस्त्रस्याऽङ्गिरेन^{१०} स्नापयति भ्राता पुत्रो वा तूष्णीम् ॥ १ ॥

अथाऽध्वर्युः प्राचीनावीती सर्वौषधेनोदकुम्भं पूरयित्वा तेन दशहोत्रा पत्तोऽग्र^{११}
स्नापयति चित्तिः सुक् इत्येतेनाऽनुवाकेन । अथ ग्राम्येणाऽलंकारेणाऽलंकृत्य नलदमालामा-
बध्नाति^{१२} । औदुम्बरं तल्प^{१३} समारोप्याऽङ्गुष्ठबन्धं करोति । अथैनमहतेनोदीचीनदशेन
वाससा समुखं^{१४} प्रच्छाद्य भर्तारो ग्रामादुपनिष्क्रम्याऽग्निभिः सह यज्ञायुधानि च
संभारा^{१५}श्च । तस्याऽग्रेण संभारान् दक्षिणतः पात्राणि पश्चादग्निमिति निधायाऽपसलैः
परिस्तीर्य तं बान्धवाः सिङ्गातेनोपवीजयन्तस्त्रिरपसलैः^{१६} परियन्ति वातास्ते बान्तु पथि
पुण्यगन्धा मनःशुभा गात्रशुभाऽनुलोमाः^{१७} । त्वचःसुखा मांससुखाऽस्थिसौख्या^{१८} बहन्तु त्वा मस्तः
सुकृतां यत्र लोकाः इति । यथेतं त्रिः पुनः प्रतिपरियन्ति । एवं पथि चितायाम् । चिताया-
मित्येके । श्मशानं नीत्वाऽऽदहनं^{१९} जोषयते दक्षिणाप्रत्यक्षप्रवणमनिरिणमसुषिरमभङ्गु-
रमवल्मीकमजागर्तिं^{२०} बहुलौषधि । गोचर्ममात्रं^{२१} स्थण्डिलं भवति^{२२} ब्राह्मणस्य । धनुष्कोटि-
मात्रं^{२३} राजन्यस्य । रथचक्रमात्रं वैश्यस्य । विमाय शङ्कुभिः परिणिहृत्य^{२४} समन्तं^{२५}
स्पन्धया परितनोति । अथैनन्मध्ये शकलेनोद्धृत्याऽवोक्ष्यौदुम्बर्या शाखया पलाशशाखया
वा^{२६} संमार्ष्टि अपेत वीत वि च सर्पताऽतो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः । अहोभिरङ्गिरक्नुभि-
र्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै इति । दक्षिणतः शाखां निरस्याऽङ्गिरवोक्षति^{२७} अदादिदं यमो-
ऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै इति । हिरण्यशकलमवदधाति अपसर्पत प्रेता ये
के चेह पूर्वजाः । खस्ति नः कृणुत माऽश्रु पाति पुनरागमिष्यामहे इति । स्फयेन वा परशुना
वा दक्षिणापवर्गास्तिस्रः कर्षूः खात्वा तिलतण्डुलानां मुष्टिं पूरयित्वा यमाय दहनपतये पितृभ्यः
स्वधा नमः इति प्रथमायां निवपति । कालाय दहनपतये पितृभ्यः स्वधा नमः इति द्वितीयायाम् ।
मृत्यवे दहनपतये पितृभ्यः स्वधा नमः इति तृतीयायाम् । प्रथमेनैव मन्त्रेण तिसृषु निव-
पेदित्येके । अथाऽतिशिष्टा^{२८}स्तिलतण्डुलान् सर्वतस्त्रिः प्रसव्यं^{२९} प्रकरोति ॥ २ ॥

यथा पिता पुत्रं पश्यति सखा वा सखिमागतम् । एवमिमं पूर्वसंस्क्रिजाः प्रेताः पश्यत

१. °ध्वर्युरूपकल्पयते—मैसूरु । दृश्यतां बौ० पितृ० १.२ । २. बर्हिर्हिरण्यं—राबमहोदयस्य
पाठः । किंतु दृश्यतां ८२१ पृष्ठे १ पङ्क्तौ 'हिरण्यमालभते' । ३. °माबद्धय—मैसूरु । ४. संमुखं—
राबमहोदयस्य पाठः । ५. एवं मैसूरु० लिखितपुस्तकेषु च । °नोपवाज०—राबमहोदयेनोद्धृतः पाठः ।
६. गात्रशुभा अहुं—मैसूरु । ७. मांससुखा अस्थि—मैसूरु । ८. नीत्वा दहनं—मैसूरुपुस्तके राब-
महोदयस्य पुस्तके च । दृश्यतां बौ० पितृ० १.११; १३ । ९. °भङ्गुरमसुषिरं—मैसूरु । °मजागर्तिं—
दृश्यतां बौ० पितृ० १.४ । १०. भवतीति—राबमहोदयस्य पाठः । ११. परिनिहृत्य—राबमहोदयस्य
पुस्तके । १२. शमीशाखया वा—मैसूरु । १३. उदसित्वाऽङ्गिं—राबमहोदयस्य पाठः । १४. अप-
सव्यं—मैसूरु ।

माऽन्यथा इति । दक्षिणाग्रान् दर्भान् स० स्तीर्य तेषु दक्षिणाग्रैर्याज्ञिकैः काष्ठैश्चितां कल्पयित्वा चितायां दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु कृष्णाजिनं दक्षिणाग्रीवमधरलोमोपस्तृणाति । तस्मिन् दक्षिणा-
शिरसमुत्तानं प्रेतं निधायामपसलैः परिस्तीर्य चितामूर्णासूत्रेणामपसलैः परिवेष्टयति ।
तमग्निमपसलैः परिस्तृणाति । दक्षिणेनाऽग्निं दक्षिणाग्रान् दर्भान् स० स्तीर्य तेष्वेकैकशो
न्यञ्चि पात्राणि सादयित्वा तूष्णीं स० स्क्रुताभिरद्भिर्भुक्तानानि पात्राणि कृत्वा प्रेतं पात्राणि
दारुचितां च प्रोक्ष्याऽऽज्यं स० स्क्रुत्य स्रुकस्रुवं निष्टप्य संमृज्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा
व्याहृतीर्जुहोति^१ । अथाऽस्य सप्तसु प्राणायतनेषु सप्त हिरण्यशकलान् प्रत्यस्यत्यास्ये
नासिकयोरक्ष्णोः कर्णयोरिति । अलाभ आज्यविन्दून् वा । मुखे प्रथममाज्यमानीय दधि
मधु घृततिलतण्डुलाश्च समुदायुत्याऽऽस्ये निवपति । अथ दशहोतारमेवाऽग्रे नासिक-
योर्द्विजपेत् । आसीत् इति सर्वेषु होतृपदेष्वनुषजत्यन्यत्र षड्होतृपदेभ्यः । आस्ताम् इति
द्विवाचिषु^२ । चतुर्होतारं मुखे । अक्षिकटयोर्द्विः पञ्चहोतारम् । कर्णयोर्द्विः षड्होतारम् ।
कीकसासु द्विः सप्तहोतारमिति । अथ स्रुक्षु ग्रहान् गृह्णाति तूष्णीम् । चतुर्जुह्वां घृतम् ।
चतुर एव दध्युपभृति । ध्रुवायां मध्वानीय सकृद्दधि च द्विघृतम् । चतुः संपादयति ।
चतुर एव पयोऽग्निहोत्रहवण्याम् । अपि वाऽऽज्यमेव सर्वासु । अत्र पात्राण्युपचिनोति ।
तस्य दक्षिणे हस्ते स्फ्यं जुह्मं च सादयति । सव्य उपभृतं पृषदाज्यग्रहणीं च । उरसि
ध्रुवामरणी च । मुखेऽग्निहोत्रहवणीमेरकां च । नासिकयोः स्रुवावाग्निहोत्रिकं पैतृयज्ञिकं
च । अक्ष्णोर्हिरण्यशकलावाज्यस्रुवौ वाऽऽश्विनकपाले च । कर्णयोः प्राशित्रहरणं भित्त्वा ।
ऊर्वोरुलूखलमुसले । दत्सु ग्राव्णो यदि ग्रावाणो भवन्ति । शिरसि कपालान्युपबर्हणं
च । ललाट एककपालम् । उदरे पिष्टसंयवनीम्^३ । नाभ्यामाज्यस्थालीम् । जठरे दारु-
पात्रीम् । पार्श्वयोः शूर्पं छित्त्वा । वङ्क्षणयोः सांनाय्यकुम्भ्यौ यदि संनयन् भवति ।
अण्डयोर्द्वेषदुपले । शिश्ने वृषारवः शम्यां च । प्रतिष्ठयोरग्निहोत्रस्थालीमन्वाहार्यस्थालीं
च । पक्ष उपावहरणीयं कूर्चम् । शिरस्त उपसादनीयं वेदम् । शिखायामिडापात्रं च
प्रणीताप्रणयनं च ॥ ३ ॥

इममे चमसं मा विजीह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् । एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्
देवा अमृता मादयन्ताम् इति चमसम् । अवशिष्टानि पत्नीसंनहनानि स्रुचोऽथेतारणि सर्वाणि
संनह्याऽन्तरेण^४ सक्थिनी निवपति । तं बान्धवाः सिग्वातेनोपवीजयन्ति^५ । अथ पत्न्युद-
कुम्भमादाय शीर्षन्नधिनिधाय त्रिरपसलैः परिविञ्चति । तमश्मना परशुना वा किञ्चिदधस्तात्
प्रहरति । तां धारामनुमन्त्रयते इमा आपो मधुमत्योऽस्मिन्स्ते लोक उपदुह्यन्ताम् इति । द्वितीयं
परिगतायां प्रहरति । तां धारामनुमन्त्रयते इमा आपो मधुमत्योऽन्तरिक्षे ते लोक उपदुह्यन्ताम्

१. 'व्याहृतीभिः'—राबमहोदयस्य पाठः । दृश्यतां बी० पितृ० १.७—'महाव्याहृतीर्हुत्वा' ।
२. द्विवाचिषु—राबमहोदयस्य पाठः । द्वित्ववाचिषु—मैसूरु । ३. पिष्टोर्द्वपनीं—मैसूरु; पिष्ट-
संयवनीं—लिखितपुस्तकान्तरे; पिष्टोर्द्वपनीं—बीश्री १.४ । ४. संनह्य बान्तरेण—मैसूरु । ५. एवं मैसूरु-
पुस्तके लिखितपुस्तकेषु च । *वाजयन्ति—राबमहोदयेनोद्धितः पाठः । उपवातयन्तः—बी० पितृ० १.३ ।

इति । तृतीयं परिगतायां प्रहरति । तां धारामनुमन्त्रयते इमा आपो मधुमत्यः स्वर्गे ते लोक उपदुहन्ताम् इति । अथाऽध्वर्युर्वा भिनत्ति कुम्भम् । यदि पुरस्तात् पतति पापीयान् भवति, यदि पश्चात् पतति वसीयान् भवतीति ब्राह्मणम् । अत्रैवोपसीदति । आर्द्रानोषधिवनस्पतीनालभ्योपोत्थाय कपालशेषा अपः प्रेतस्य प्राणस्थानेषु निनयति दिवि जाता अप्सु जाताः^१ इति । गां पश्यति । ब्राह्मणान् पश्यति । हिरण्यमालभते । अत्र गुरवे वरं ददाति । अथैनमहतेनोदीचीनदशेन वाससा कृष्णाजिनेन वा दक्षिणाग्रीवेणोत्तरलोम्ना प्रोर्णोति । अङ्गुष्ठबन्धं विस्त्रस्याऽथाऽग्नीनादीपयति । भूः पृथिवीं गच्छतु इति वायव्यां गार्हपत्यम्, भुवोऽन्तरिक्षं गच्छतु इति नैर्ऋत्यामन्वाहार्यपचनम्, सुवर्दिवं गच्छतु इत्यैन्द्रियामाहवनीयम् । पुरस्तात्सभ्यावसथ्यौ तूष्णीं वायव्यामेवोत्तरेष्वग्निषु । अथ संभारैश्च पत्नीभिश्चोपोषेत्^२ । ग्रहैर्ऋतुमुखीयेन^३ ब्राह्मण एकहोता इति चोपस्थानम्^४ । सुसमिद्धेष्वग्निषु तं धर्ममनुमन्त्रयते अयं धर्मो अग्निमभिजिहर्ति होमान् यां गतिं यान्ति सुकृतिनोऽग्निहोत्रनिष्ठाः । तनुत्यजो मोक्षविदो मनीषिणो विधूतपापा विरजा विशोकास्तान् लोकान् गच्छ सुगतिं^५ नाकपृष्ठं स्वधा नमः इति । यद्यु वा अनाहिताग्निर्भवति तं धर्ममनुमन्त्रयते अयं धर्मो अग्निमभिजिहर्ति होमान् यां गतिं यान्ति युधि युद्धशूराः । तनुत्यजो मोक्षविदो मनीषिणो विधूतपापा विरजा विशोकास्तान् लोकान् गच्छ सुगतिं^५ नाकपृष्ठं स्वधा नमः इति । अथाऽप्रतीक्षाः कनिष्ठप्रथमास्तीर्थमायान्ति । तान् गोत्रमैथुनो राजपुरुषो वा वारयति पर्णशाखया माऽवतरत इति । न पुनरागमिष्यामः^६ इत्युक्त्वा केशानोप्याऽऽतुरव्यञ्जनानि कुर्वीरन् । पा०सूतोप्यैकवाससो दक्षिणामुखाः सकृदुपमज्ज्योत्तीर्योपविशन्ति । बद्धशिखा यज्ञोपवीतिनोऽप आचम्य प्राचीनावीतं कृत्वा दक्षिणाग्रान् दर्भान् स०स्तीर्थं तेषु दूर्वाञ्जलिनोदकमादाय सव्यं जानु निपात्य दक्षिणामुखास्तिलमिश्रा अपस्तं प्रति असावेतत् उदकम् इत्युत्क्षिपन्ति । एवं द्वितीयं तृतीयं च कृत्वा स्नात्वाऽप आचम्य सं त्वा सिञ्चामि यजुषा इति शान्तिं कृत्वा ज्योतिष्मत्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते उदयं तमसस्परि इति । अथाऽप्रतीक्षाः कनिष्ठप्रथमा ग्राममायान्ति । गृहद्वारे निम्बपत्रं प्राश्याऽप आचम्य गोशकृत्सुवर्णमपोऽग्निं गौरसर्वपतिलान् स०स्पृश्याऽश्मनि तिष्ठन्तीत्येके । यत्र च प्रेतस्य प्राणा उत्क्रान्ता भवन्ति तत्रोदकमिश्रा०स्तिलतण्डुलान् संप्रकीरन्ति स्वस्त्यस्तु वो गृहाणा०^६ शेषे^६ शिवं वास्वास्ताम् इति । ज्योतिष्कृत्वाऽगारं प्रविशन्ति । एकरात्रमुपोष्य तेषामक्षारलवणभोजनमधःशयनं ब्रह्मचर्यमा दशरात्रात् । सायंप्रातस्तूष्णीमुपलेशु पिण्डं निपृणुयात्^७ । सायंप्रातः सकृदुदकक्रिया । अथैषा पत्नी नाऽश्नीयात् पक्वावस्य । दशमेऽहनि त्रिरुदकमुत्तिसञ्चन्ति सर्वेऽमात्याः । अथैकादश्यामेकोद्दिष्टं कुर्वन्ति ॥ ४ ॥०८

आपद्युक्तं प्रेतविधानम् । एव० शस्त्रविषरज्जुजलाचलमास्ततरूपाषाणहुताशना-

१. तैत्रा ३.७.१२ । २. दृश्यतां ८१६ पृष्ठे ब्रह्ममेधः । ३. ऋतुमुखीभिः—राब० । ४. सुगतिर्नां—राबमहोदयस्य पाठः । ५. न पुनः पुनरागमिष्यामहे—मैसूरु । पुनरागमिष्यामः—राबमहोदयस्य पुस्तके । न पुनरवतरिष्यामः—वैष्ण० गृह्य० ५.६ । ६. गृहाणामशेषे—मैसूरु । ७. निपृणीयात्—राबमहोदयस्य पुस्तके । ८. अत्र कण्डिकाद्वयमनाहिताभ्यादीनां संस्कारविधिप्रतिपादकं नोद्धृतम् । बौ० पितृ० २.३ मध्ये वर्तमानो विषयोऽत्र स्पष्टीकृतः ।

उच्छ्वासनादिना मृतानां शरीरसंस्कारं वर्जयेत् । देशान्तरमृते संग्रामहृते व्याघ्रहृते वा शरीरमादाय विधिना दाहयेत् । यदि तत्र विन्देतैकाङ्गदर्शनेऽपराङ्गस्य सप्त प्राणास्तदाश्रयाः इति मधुना सर्पिषा वाऽभ्यज्य विधिना दाहयेत् । अथ यजस्तकौशलैः पृथिवी-शरीरं कुर्यान्मधुना सर्पिषा वाऽभ्यज्य विधिना दाहयेत् । अथ यद्यस्थान्यानीय तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा मधुना सर्पिषा वाऽभ्यज्य विधिना दाहयेत् । यदि तानि न विन्देत पलाशवृन्तानां त्रीणि षष्टिशतान्याहृत्य तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा मधुना सर्पिषा वाऽभ्यज्य विधिना दाहयेत् । याज्ञिकानां वा वृक्षाणां कुशाग्राणां वा प्रादेश-मात्राणि तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा मधुना सर्पिषा वाऽभ्यज्य विधिना दाहयेत् । यदि जीवन् पुनरागच्छेद् घृतकुण्डे^१ निमज्ज्योत्तीर्य स्नापयित्वा जातकर्मादिसंस्कारान् (? राः) क्रियेरन्^२ । द्वादशरात्रान्तानि व्रतानि त्रिरात्रान्तानि^३ वा । अथ स्नानम् । ततस्तामेव जायां प्रतिपद्येत । तस्यामविद्यमानायामन्यां कुमारीं विन्देत । अथाऽग्नीनाधाय ब्रात्येनैन्द्राग्नेन पशुनेष्ट्वा गिरिं गत्वाऽऽयुष्मतीमिष्टिं^४ निर्वपेत् । अतः ऊर्ध्वम्^५ ईप्सितैर्यज्ञकतुभिर्यजेतेति विज्ञायते ॥ ७ ॥

आहिताग्निश्चेत् प्रवसन् म्रियेत पुनः संस्कारविधिं व्याख्यास्यामः । दर्भान् समान् संस्तीर्य तस्मिन् पलाशवृन्तैः पुरुषाकृतिं करोति । चत्वारिंशत्ता शिरः प्रकल्पयते । दशभिर्ग्रीवाम् । विंशत्योरः । त्रिंशतोदरम् । पञ्चाशतापञ्चाशतैकैकं बाहुम् । तेषामेव पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीरूपकल्पयते । सप्तत्यासप्तत्यैकैकं पादम् । तेषामेव पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीरूपकल्पयते^६ । अष्टाभिः शिश्रम् । द्वादशभिवृषणमिति । एतानि प्रोक्ष्याऽथ भूमौ हिरण्यं निधायऽरणी निधाय यां दिशं यजमानोऽगच्छतां^७ दिशं प्रेक्षमाणो जपति उपावरोह जातवेदः इति । विहारं कल्पयित्वा गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोति सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः इति । अथ प्रेतसंस्कारमर्हतीत्याह भगवान् बौधायनः ॥ ८ ॥०८

अथाऽतोऽस्थिसंचयनं व्याख्यास्यामः । निर्वृत्तेऽग्नौकरणे द्वयहे त्र्यहे चतुरहे सप्ताहे वा नवं कुम्भमादाय श्मशानं गत्वा^८ पलाशशङ्कूनौदुम्बरशङ्कून् वा निहत्याऽङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठिकया वा मध्यमया वा सर्वाभिरङ्गुलीभिर्वाऽस्थानि समुच्चित्य क्षीरेण प्रक्षाल्य कुम्भे निधाय क्षीरेण प्लावयित्वा घृतं निनयेत् इदं त आत्मनः शरीरमयं त आत्मा-

१. घृतकुम्भे—राब० । २. बौ० पितृ० २.७ । ३. व्यहान्तानि—राबमहोदयस्य पाठः । ४. गत्वाऽग्नये कामायेष्टि—मैसूह । दृश्यतां पृ० ८०९ बौ० पितृ० २.७ । ५. 'अत ऊर्ध्व' नास्ति राबमहोदयस्य पुस्तके । दृश्यतां पृ० ८०९ बौ० पितृ० २.७ । ६. अयमंशः राबमहोदयस्य पुस्तके 'द्वादशभिवृषणम्' इत्यस्यानन्तरं पठितः । ७. 'मानो गच्छेतां—राबमहोदयस्य पाठः । ८. नवम्यां कण्डिकायां गर्भिण्याः संस्कारविधिव्याख्यातः । ९. नीत्वा तं देशं गत्वा—मैसूह ।

ऽऽमनस्त आऽमानं शरीराद् ब्रह्म निर्मिनति भूर्भुवः सुवरसौ खाद्वा इति । व्याहृतीभिरपि वा । त्रिवृताऽन्नेन कुम्भमभ्यर्च्य । अथ यदि न दहेयुः^१ उल्मुकान् पुनर्दहेयुः अस्मात्त्वमधि जातोऽस्य त्वदधि जायताम् । अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय खाद्वा इति । तथैव आ अपिधानात् कृत्वाऽथाऽस्थिकुम्भमादाय नदीतीर्थे समुद्रे वाऽभ्यवहरन्ति । अपि वा पुरुषसंमितं गज-संमितं वा गर्तं खात्वा तस्मिन् कुम्भं निधाय^२ पुनरभ्यर्च्य पुरीषेण प्रच्छादयेत् । यावद्वसति तावत्स्वर्गं महीयते ॥ १० ॥^३

अथैषा पत्नी संवत्सरमधः शयीत । क्षारलवणमधुमांसानि कौशीधान्यं^४ वर्जयेदन्यत्र तिलेभ्यः । सहस्रदक्षिणो वा पितृमेधः । तस्याऽर्घं कुर्वन्ति । पतेन विधिना प्रेतं दहन्ति^५ । पश्यति पुत्रं, पश्यति पौत्रं, न शूद्रेषु जायते नाऽनपत्यः प्रमीयत^६ इति ह स्माऽऽह बौधायनः ॥ १२ ॥

इति बौ० पितृमेधे तृतीयः प्रश्नः ॥

१. बौ० पितृ० १.१३ । २. अवधाय—मैसूर । ३. एकादश्यां कण्डिकायां परिव्राजकस्य संस्कारविधिव्याख्यातः । ४. कौशिं—रावमहोदयस्य पुस्तके । ५. निर्हरति—मैसूर । ६. जायते—मैसूर ।

परिशिष्टम्

११ पृष्ठे २ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैब्रा [२.५.८]—'उपावरोह जातवेदः पुनस्त्वं देवेभ्यो हव्यं वह नः प्रजानन् ।
आयुः प्रजां रयिमस्मासु धेह्यजस्रो दीदिहि नो दुरोणे ॥

१३ पृष्ठे १० पङ्क्त्यनन्तरम्

तैआ [४.२२-२३]^१—यास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । क्षुच्च तृष्णा च । अस्नुक्
चाऽनाहुतिश्च । अशनया च पिपासा च । सेदिश्चाऽमतिश्च । एतास्ते अग्ने
घोरास्तनुवः । ताभिरमुं गच्छ । योऽस्मान् द्वेष्टि । यं च वयं द्विष्मः ॥
स्निक् च स्नीहितिश्च स्निहितिश्च । उष्णा च शीता च । उग्रा च भीमा च ।
सदाम्नी सेदिरनिरा । एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । ताभिरमुं गच्छ ।
योऽस्मान् द्वेष्टि । यं च वयं द्विष्मः ॥

३३ पृष्ठे १४ पङ्क्त्यनन्तरम्

बृहस्पते सवितर्वध्वैनं^२ ॥७.१६.१॥ इहैव ध्रुवां^३ ॥३.१२॥ एह यातु
वरुणः^४ ॥६.७३॥ यमो मृत्युरघमारः^५ ॥६.९३॥ सत्यं बृहत्^६
॥१२.१॥ सुजातं जातवेदसं^७ ॥४.२३.४॥ मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि^८
॥७.८७.२॥ व्याकरोमि हविषाऽहमेतौ^९ ॥१२.२.३२॥

५६ पृष्ठे १४ पङ्क्तौ

प्रजा ज्योतिः० अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा० सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः
स्वाहा० ॥

१२७ पृष्ठे १९ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैआ [४.२७]—खट् फट् जहि । छिन्धी मिन्धी हन्धी कट् । इति वाचः क्रूराणि ॥

३४३ पृष्ठे २ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैसं [२.३.१४]—बुध्नाद्यो अग्रमभ्यर्त्योजसा बृहस्पतिमा विवासन्ति देवाः ।
भिनद्वलं वि पुरो दर्दरीति कनिक्रदत्सुवरपो जिगाय ॥

३५७ पृष्ठे ५ पङ्क्त्यनन्तरम्

दृश्यतां 'विशे च क्षत्राय च समदं कुर्याम्' 'कल्पेन'

३५८ पृष्ठे ६ पङ्क्त्यनन्तरम्

दृश्यतां 'विड् राजानं जिज्यासेत्'

१. मन्थनसमयेऽग्नौ निर्वर्तमानेऽभिमन्त्रणार्थं विनियोज्यः । २. आधाने उपस्थानानन्तरममुं
मन्त्रभागं यजमानः पठति । ३. यजमानादीनां प्रबोधनार्थो मन्त्रः । ४. वास्तोष्पतीयानि । एतैः सह
विनियोज्यानि मातृनामानि चातनानि इतिसंस्कानि च सूक्तानि ७७३ पृष्ठे द्रष्टव्यानि । चातनैर्मातृनाम-
भिर्वास्तोष्पत्यैरनुयोजितैः शान्त्युदकं करोति । ५. जातमनुमन्त्रयते । ६. अनेन अपानति । ७. आहव-
नीयदक्षिणाग्नीं गार्हपत्यात् प्रणीयमानो अनेनानुमन्त्रयते ।

सूची

अस्मिन् पुस्तके ब्राह्मणभागे सूत्रभागे च ये देवताहविर्द्रव्यादिसंज्ञाविशेषा विषयाश्च समागतास्तेषां सूची अत्र दीयते । क्वचित् मन्त्रभागादपि संज्ञा उद्धृताः । सूत्रगतानां संज्ञानां विषयाणां च पृष्ठाङ्काः पृथक्त्वेन अवधारणार्थं सूक्ष्माक्षरैः मुद्रिताः ।

अंसेपादः ६३८

अंहरणमवेयात् ३४२

अकृष्टपच्यम् ३१५

अक्षपालिः २६८

अक्षाः २४; २५; ४२

अगस्त्यः ३५७; ४२९

अग्नयः वृथाऽग्निभिः संसृज्येरन् ११९

अग्नयः संसृज्येरन् १००

अग्नयोऽनुगच्छेयुः ९७

अग्नारुतः ४३२; ६६८

अग्नारुतमभ्युद्धरेयुः ८४; १११

अग्नारुतगौ २८; ५३; ३४३; ३४८; ४४४; ६०७

अग्नारुतविष्णु २३-२५; २७; ५१; ३२०; ३३३;

३३४; ३३७; ३४४; ३४७; ३६४; ३६७;

३९२; ४२२; ४३५; ४३८; ४६३; ४६८;

४६९; ४७८; ४८१

अग्निः २६; २९-३२; ४९; ५२; १६३; १७३;

२०३; २०९; २५५; २८६; ३०७; ३१६;

३२१; ३२४-३२६; ३२७; ३२९; ३३०;

३४३; ३४४; ३४७; ३४८; ३५९; ३६७;

३७३; ३८६; ३८८; ३९१; ३९३; ४०१;

४०२; ४१०; ४१४; ४१७; ४२१; ४२७;

४३९; ४५१; ४५२; ४६१; ४६९; ४७१;

४७२; ४७४; ४८१; ४८५; ४८६; ४९८;

५०८; ५३३; ५३९; ५४२; ५४८; ५५४;

६२१; ६२७; ६३९-६४२; ६४५; ६४७;

६४९; ६५२; ६५३; ६५६; ६६५; ६९६;

—अहोमुक् ४१८; ४७९;—अग्निमान् ८५;

—अग्निवान् ८४; १११;—अग्नीकवान्

४३६; ५०८; ५४७;—अन्नपतिः ३२८;

४६१;—अन्नवान् ३२९; ४६१;—अन्नवान्

अन्नादः अन्नपतिः ३२९;—अन्नादः ३३०;

४६२;—अन्नादः अन्नपतिः १४९;—अप्सु-

मान् १०१;—आयुष्मान् ३४९; ४६५;—

कव्यवाहनः ३०६; ३०७; ५०९;—कामः

३५०; ४६५; ८०९;—क्षमवान् ३७२;—

क्षामवान् १०१; ३२७; ३२७; ४३४; ४६१;

४७५; ४८२;—गायत्रः त्रिवृत् राथन्तरः

वासन्तः ४४६;—गृहपतिः २३२; २९२;

४४४; ६०१;—जातवेदाः ४४९; ४७७;

—ज्योतिष्मान् ९५; ९६; ११४; ३६५;

—तन्तुमान् १०९; ११६; ११९; १२०;

२९७; ३१९; ४४९; ४७६; ५५५; ६०५;

८०२;—तपस्वान् जनहान् पावकवान् ९६;

१०२;—तेजस्वान् ३६९; ४७०;—तेजस्वी

६३०; ६३१;—दाता २५३; ३००; ३८७;

४७४; ६३१;—धामच्छद् ३५१; ४६६;—

पथिकृत् ९०; ९९; ११३; ११९; २४९;

२५४; २९६; २९७; ३१९; ५५५; ६०५;—

पवमानः २२; २४-२६; ५०; २९७; ३१९;

३३९; ३६३; ३६७; ४६८; ४६९; ४७३;

५५५; ६०५;—पवित्रवान् २५५;—पावकः

२२; २४; २६; ५०; २९७; ३१९; ३६३;

३६७; ४६८; ४६९; ४७३; ५५५; ६०५;—

पुत्रवान् ३९७; ४७५;—प्रतीकवान् ४११;

४१३; ४७८;—प्रवान् ४११; ४१३; ४७८;

—भगी ४०८;—भागी ६७३;—भ्राजस्वान्

३६४; ४६८;—मरुत्वान् ४२२;—यविष्ठः

३३६; ३३७; ४४४; ४५०; ४६३; ४८४;

—रक्षोहा ३४६; ४२२; ४२४; ४८१;—

रसवान् ४२४; ४८१;—रुक्मान् ४२८;

४८२;—रुद्रवान् ३३४; ३३६; ४२९; ४६३;

—वरुणः १०२;—वसुमान् ४२९; ४४१;

४४५; ४८२; ४८३;—वाजसूत् ४३४;

४३५, ४३८, ४८२;—विबाधवान् ४११;
 ४१३, ४७८;—विभुमान् ६७३;—विभूति-
 मान् ६७२;—विविचिः १००, १०१, ११९;
 —वीतिः ९९;—वैश्वानरः २९, २४९;
 २५४, २५६, २९७, ३१७, ३२७, ३२८;
 ३३७, ३३९, ३४०, ३४३, ३४४, ३४७;
 ३५०, ३५१, ३५९, ३६३, ३६९, ३९६;
 ४०९, ४१८, ४२६, ४३१, ४३३, ४३४;
 ४३५, ४३८, ४४२, ४४३, ४४५, ४४६;
 ४४९, ४६१, ४६४, ४६५, ४६७, ४७३;
 ४७५, ४७६, ४८२, ४८३, ५५५, ६०५;
 ६२१, ६७२;—व्रतपतिः १०१, १०२;
 ११९, २५१, २६५, २९७, २९८, ३१९;
 ३२०, ३२५, ४७३, ५४२, ५५५, ६०५;
 —व्रतभृत् १०२, १२०, २५२;—शुचिः
 २२, २४-२६, ५०, १०१, १०२, २९७;
 ३१९, ३६३, ३६७, ४६८, ४६९, ४७३;
 ५५५, ६०५;—संवर्गः १००-१०२, ४११;
 ४७८;—सनिमान् ३९०;—साहन्त्यः ४४९;
 ४८४;—सुरभिमान् १०३, ३३९, ३५९;
 ३७२, ४००, ४२९, ४६७;—स्विष्टकृत्
 २०८;—हिरण्यवान् ४५३

अभिचयः ३५

अभिप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तम् ५५८, ५९०

अभिप्रणयनादियूपोच्छ्रयणान्तं हौत्रम् ५५८

अभिमानुद्धृतं सूर्योऽभिनिम्रोचति ८३, १११

अभिमानुद्धृतं सूर्योऽभ्युदेति ८४, १११

अभिमान्यनम् ७, ४४

अभिमुद्रासयिष्यन् ३२७, ४६१

अभिरपक्षायति ११४

अभिरपक्षायेत् ९९

अभिरुद्धृतोऽहुतेऽभिहोत्र उद्वायेत् ९५, ११४

अभिर्गृहान् दहति ४६१

अभिर्मथ्यमानो न जायेत ९७

अभिष्टोमः ७६०

अभिष्टः (शकटः) ६८

अभिष्टम् (अनः) ११०, २६१, २६८

अभिसंमार्जनानि २२४

अभिहोत्रं विष्यन्देत् ८९

अभिहोत्रं स्कन्दति ८७

अभिहोत्रं सवेत् ९२

अभिहोत्रं सुच्युनीतं स्कन्देत् ९१

अभिहोत्रं सुच्युनीतममेध्यमापद्येत् ९१

अभिहोत्रतपनी ७०

अभिहोत्रं दुह्यमानं स्कन्दति ११२

अभिहोत्रं दोहितममेध्यमापद्येत् ८९

अभिहोत्रं दोह्यमानममेध्यमापद्येत् ८८

अभिहोत्रप्रायश्चित्तानि ८३, १११

अभिहोत्रम् ७६०

अभिहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत् ८९

अभिहोत्रमवधेत् ९२

अभिहोत्रमहुतं सूर्योऽभ्युदेति ९३

अभिहोत्रमहुतमादित्योऽभ्यस्तमित्यात् ९३

अभिहोत्रस्य लौकिको विधिः ११८

अभिहोत्रहवणी ६६, १०५, १६०, २६७, २६८

अभिहोत्रहोमः ५५, १०४

अभिहोत्रहोमविधिः ५८, ६५, ७०, ७४, ८२

अभिहोत्री ४८, ७६, ८३, १०४, १०७

अभिहोत्री दोह्यमाना वाश्येत् ८६

अभिहोत्री दोह्यमानोपविशेत् ८५

अभिहोत्री निषीदति ११२

अभिहोत्री लोहितं दुहीत ८६

अभिहोत्रेऽधिश्रिते श्वाऽन्तरा धावति ११२

अभिहोत्रेऽधिश्रिते श्वा वा अनो वा रथो वाऽन्त-

राऽग्नी धावति ८९

अभिहोत्रोच्छेषणम् १५८, २६६

अभिहोत्रोच्छेषणात् प्रमाद्येत् ११३

अभिहोत्र्युपसृष्टा निषीदति ११२

अग्नीनन्वाधाय अनिष्ट्वा प्रयायात् २९८

अग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः ११५

अग्नीन्द्रौ ६४३

अग्नीषोमीया ऋक् ६७, ७२

अग्नीषोमौ २४, १६३, २०३, २०९, २१३;

२८६, ३२१, ३५१, ३८६, ४०१, ४०५;

४०६, ४०७, ४०९, ४४५, ४६५, ४७७;

४९०, ६१२, ६८३

अग्नेरेकदेशमपहरेयुः ११७

अग्न्याधेयप्रायश्चित्तानि ५४

अग्न्याधेयम् १; ११९; १३२; १४०; ७६०
 अग्न्युपस्थानम् ५५; ५६; ६१; ६२; ६७; ६८;
 ७२; ७३; ७५; ७७
 अग्रवती ३४२
 अघोदकम् ८०७
 अङ्गहीनः पशुः रूपतो वर्णतो वा ६०२
 अङ्गुलः ६; ४०; ८०; २७५; २८७
 अङ्गुष्ठः ७६२
 अचलः ८२१
 अच्छावाकः ३६
 अज एकपाद् ३८१
 अजः १०; ११; २४; २५; ४३; ४५; २७४;
 ६१५; ६४०; ६४१; ६४७; ६५६; ६५८;
 ७३२; ७६१; ८०३; ८०६; ८१५;—कृष्णः
 ६२७;—कृष्णग्रीवः ६३०; ६३१; ६७२;
 ६७३;—तूपरः ६४४;—तूपरः विश्वरूपः
 ६२३;—श्वेतः ६२३;—श्वेतः पिप्पलुकर्णः
 ६७१
 अजक्षीरम् ४८१
 अजग्निवांसमभिक्षासेयुः ६०६
 अजवशा ६९६
 अजस्त्राणामन्वाहितानामुद्घातानां प्रायश्चित्तिः
 २९७
 अजा ९८; ६१६; ६६३; ७६१;—वशा ६६५;
 —श्वेता मल्हा ६५३
 अज्यानयः ३१८
 अजःसवकारीरीष्टिः ४६१
 अजलिः ७६२
 अजिः ६४१
 अणवः ७६१
 अतसी २७४
 अतिक्रान्तं कर्म ३०५
 अतिथिवस्त्यौ दमूनवस्त्यौ संयाज्ये ४७३
 अतिपवितः ७१७
 अतिपुपुवानः ७२६
 अतिप्रवसेत् १२१
 अतिरात्रः ७६०
 अतिष्टायः ६०६
 अतिष्टायः स्थाम् ६०६

अतीमोक्षाः ४४
 अत्यग्निष्टोमः ७६०
 अदक्षिणेन यज्ञेन यजते २५७
 अदितिः २३-२६; ५०; ५३; २४८; ३३१;
 ३४४; ३४७; ३७५; ३८५; ३९४; ४३४;
 ४७२; ४८२; ५१०; ५५३; ६१६; ६२३;
 ६३८; ६६३; ६८५; ६९६; ७४३; ७६२;
 —विष्णुपत्नी ४४६
 अद्विजः ३०४
 अधःसंवेदी १०९
 अधिदेवनम् ४२; १२४; १४३; ७६१
 अधिद्ववणः ८१३
 अधिमन्थनः ११४
 अधिश्रितेऽग्निहोत्रे यजमानः क्रियेत ९१
 अधिश्रितेऽग्निहोत्रे सांनाय्ये वा हविःषु वा
 क्रियेत २५५
 अधीवासः ६२३; ६३५
 अधोरामा (मेघी) ६६३
 अध्याण्डाः ७९१
 अध्युद्धिः ५९८
 अधिगुमैषः ५७५
 अध्वगमनम् ११७
 अध्वरकल्पा ३२७; ४१५; ४६१; ४७८
 अध्वराहुतयः ५४३; ५९१
 अध्वर्युः ३५
 अनः ९०; १०९; १२०; १६६; ३०४; ८०३
 अनड्वान् १९; २६; २८; ३०-३३; ९०;
 ९९; २४९; २९६; ३६७; ५३३; ७५६;
 —पुराणः ७९२
 अनड्ववाहः २३; ५२; ११३; ३४३; ३४७;
 ४६९; ६०२; ८१५
 अनड्ववाही ६०७
 अनन्नमस्त्यन् ३२८
 अनन्नमद्यात् ३२८
 अनपजस्यम् ३८०
 अनभिजितमभिजयेयम् ६०६; ६९५
 अनवानन् २०१; २३१
 अनाज्ञातप्रायश्चित्तेषु ३०३
 अनाज्ञातमिव ज्योगामयेत् ६०७

अनाज्ञातयक्ष्मः ६०७
 अनाज्ञातयक्ष्मगृहीतः ६०७
 अनादिष्टेषु ३०३
 अनामयः ६१९
 अनाहिताग्निः ३११; ३१९; ८१६
 अनिष्ट्वाऽऽग्रयणेन नवाक्षं जग्ध्वा ३१९
 अनुक्या ३८
 अनुच्छ्वासनम् ८२१
 अनुनिर्वाप्यः ३१२
 अनुपस्थाय ११५
 अनुमतिः १४९; २४३; २५९; २९२; ३४५;
 ३७३; ३९२; ३९८; ३९९; ४१८; ४४६;
 ४७२
 अनुराधाः ३०; ३१; ३७८; ४७२
 अनुवत्सरः ४८७; ५३३; ५४२; ५५४
 अनुवर्त्म ३२८
 अनुष्टुप् ७६१
 अनुसृष्टः ६४२
 अनुस्तरणी ८०६
 अनूयाजसूक्तवाकशयुवाकहौत्रम् २३०; २९२
 अनूयाजसूक्तवाकशयुवाकाः २२२; २९०
 अनूयाजादि ५८३; ६००
 अनूयाजादिहौत्रम् ५८३
 अनैडक्यः (ऊर्णाः) ५०१
 अनो रथो वाऽन्तराऽग्नी याति ११३
 अन्तर्मं पर्णम् ५५२; ७६२
 अन्त्येष्टिः ७६४; ८०२
 अन्नकामः १३१; २००; ५३३
 अन्नं त्रिवृत् ८२३
 अन्नपतिः स्याम् ३२८; ४६१
 अन्नम् ३२९; ४६१; ६०७; ६९५
 अन्नवानन्नादः स्याम् ६१२; ६९५
 अन्नवानन्नादोऽन्नपतिः स्याम् ३२९
 अन्नवान् स्याम् ३२९; ४६१
 अन्नादः ३२१; ३७३
 अन्नादः स्याम् ३३०; ४६२
 अन्नाद्यकामः २६४; ३२२
 अन्नाद्यं नोपनमेत् ६१३
 अन्नाद्यम् १४४

अन्यत्र बर्हिष आर्ज्यं सानाख्यं वा स्कन्देत् ३०३
 अन्यस्याऽग्निषु यजेत अन्यो वाऽग्निषु यजेत ३०५
 अन्यैरग्निभिरग्नयः संसृज्यन्ते १०१
 अन्वाधानम् १४५; २५९
 अन्वाधाय अनिष्ट्वा प्रयायात् २५२
 अन्वारम्भः ५१
 अन्वारम्भणीया २३; ११९
 अन्वाहार्यचरुः २२१; २८९
 अन्वाहार्यपचन उद्वायेत् ११६; २९७
 अन्वाहार्यपचनः ४६; ७६१
 अन्वाहार्यस्थाली २६७
 अन्वाहिताग्नेराहवनीय उद्वायति २५०
 अपन्नदती ६६५; ६९६
 अपभरण्यः ३८३; ४७२
 अपराह्णः ५२१
 अपरुद्धोऽवगमकामः ३३२
 अपरुद्धो वा अपरुध्यमानो वा ३३०; ४६२
 अपरुद्धो वाऽपरुक्ष्यमानो वा ३३२
 अपरुध्यमानः ३३३; ४६२
 अपरुक्ष्यमानः ३३२
 अपरोधः ३६६
 अपाघ्रा ४७२
 अपां चित्राणि ४४५
 अपां नपात् ३४०; ४६४
 अपामार्गः ८०४; ८०९
 अपारका ८०४
 अपान्यानि ५९४
 अपाष्टिहः ७४१
 अपिनद्धाक्षः ३४३
 अपूपः ३२; ८११
 असौर्यामः ७६०
 अप्रक्रान्तम् ७६१
 अश्वधिरः ३८२
 अश्वलं शुल्बम् ८०६; ८१५
 अब्राह्मणः १३३
 अभयम् ३३३
 अभिगरः ३६
 अभिचरन् १२४; १२७; १३२; १४४; ३३३;
 ३६९; ४०१; ४६३; ६१३

अभिचर्यमाणः ३३४; ३३६; ३६९; ४६३
 अभिजित् ३८०; ४७२
 अभिद्योतनम् १०४
 अभिवान्यवत्सा ७६७
 अभिवान्या ५०८; ५४८; ८०७; ८११
 अभिशस्तः ३३७
 अभिशस्यमानः ३३७; ४४५; ४४८; ४६४;
 ४७९; ६१६
 अभ्यञ्जनम् ४१; ४४; ५०९; ५४८; ५५०
 अभ्यातानहोमाः ३८; ४४; १२२; १४२
 अभ्यादाव्यः १०१
 अभ्युदयेष्टिः २५३
 अभ्युदितेष्टिः २५४
 अभ्युदृष्टा २५५
 अभ्रः ६९७
 अमासाशी १०९
 अमात्यहोमाः ३८; ४४
 अमावस्या ५; २५; १४०
 अमावास्या ४; ७; ३३; ३५; ५२; ११८;
 १४७; १७३; २०७; २१३; २५९; २६७;
 २८६; ३१६; ३२१; ३२५; ३८३; ३९४;
 ४२५; ७९०
 अमावास्यां पौर्णमासीं वाऽतिपादयेत् २९६
 अमृन्मयपायी ५०
 अमेध्यः अग्निः १०१
 अमेध्यम् ८८; ११८
 अम्बरीषः ३८
 अम्बिका ५०८; ५१०
 अयस्पात्रम् १५७
 अयस्मयः कमण्डलुः ७६२
 अरत्निः ६; ३४; ७०
 अरणिगतानां प्रायश्चित्तिः ११९
 अरणी ५; ६; ९
 अरणी जीर्णे स्याताम् ११८
 अरण्योः समारूढेषु अरणिविनाशे ११९
 अरण्योः समारूढेषु कर्मलोपे ११९
 अरण्योर्व्यापत्तिः ११८
 अरुहः २६३
 अरुणस्तूपरः ६१५; ६१६

अर्कः ३२; १४४
 अर्कपर्णम् ७६२
 अर्जुनः २६२
 अर्जुनस्तम्बः ८११
 अर्यमा ३७१; ३७२; ३७६; ३९१; ४५०;
 ४७१; ४८४
 अलं श्रियै सन् सद्गु सप्तानैः स्यात् ३३९;
 ४६४
 अवगमकामः ३३२
 अवदानकल्पः ७६२
 अवमृथः २३५; ३४०; ४९८
 अवलिप्तः ६३६
 अवसर्जनीयाः आहुतयः ८०९
 अवहन्त्री २७१
 अवान्तरेडा २८८
 अवाशृङ्गः ६६८
 अविः मल्हा ७५३
 अविः वशा ६२३; ६३३; ६३५; ६४४; ६४६
 अविकः ७६१
 अविं प्रतिगृह्य ३४०; ६६४
 अन्युसवहः अश्वः ६२१
 अन्नत्यम् २५१; ३०३
 अशनिहतः ९; १०; ३४
 अशिथिलः ३८१
 अशूद्रोच्छिष्टः ५४१
 अशूद्रोच्छिष्टी ५०
 अश्मगन्धाः ७९१
 अश्मा ८०९; ८१५; ८१९
 अश्रु १०२; १२०; २५२; ३०२
 अश्वः १३; १८-२०; २३; २६; ३४; ४४;
 ४६; ११३; ११९; १३२; ३३८; ३४४;
 ३५०; ३५५; ३६९; ४२७; ४४५; ४६५;
 ४८३; ७६१;—अन्युसवहः ६२१;—कृष्णः
 ८१५;—श्वेतः ५३४
 अश्वतरः ७६१
 अश्वत्थः ३; ५; ६; ९-११; १५; ३४; ४०;
 ४८; १२४; १४३; ३३१; ४८९; ७४१;
 ७५७; ७९१
 अश्वपुङ्गुः १५४; २६२

अश्वं प्रतिगृह्णीयात् ३४०; ४६४

अश्वमेधः ७६२

अश्वयुजौ ३८२

अश्ववालाः २६२

अश्वशफः १७४; ३००; ७६२

अश्वारथवाही ७५४

अश्विनौ २५६; ३००; ३८२; ४५१; ६१७;

६१९; ६३१; ६४१; ६४३; ६६०; ६९०;

७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५३-७५५;

७५७;—आगोमुचौ ४१८;—पूषा ४५१

अषाढाः ३७९; ३८०

अष्टकाहोमः ७६०

अष्टापदी ६०४

अष्टाशुद्धि रण्यम् ६०४

असंशिता (सेना) ४३४

असंस्थिते पशौ शकुनिश्चाल उपविशेत् ६०३

असंचरः २७७; ५९६

असिदः २६२

असृक् ३०२

अस्तु स्वधा ५०९

अस्त्री ५०

अस्त्युपायी १०९

अस्थिसंचयनम् ७८१

अस्थिसंचयनं पुनर्दहनं च ८०९

अस्नातः १०२

अस्यां मे जनतायामृध्येत ३४१

अहतं वासः ८०३; ८१८

अहर्गणः ३५; ७६०

अहिः ११३; ११९;—बुध्नियः ३८२

अहीनः ३५; ७६०

अहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेत् ९५

अहुतेऽनुगते ११४

अहुतेऽभिनिष्ठुके ११५

अहुतेऽभ्युदिते ११५

अहोरात्रे ३८४

आक्षुः ३०२; ५१०

आक्षुकीचम् ७; ९

आक्षुकिरिः १०

आखूकरः ३४; ४०

आखूचवटः ५५२

आगूः ५५०

आग्नावैष्णवीष्टिः ३२०; ३२४

आग्निपावमान्यः ६१; १०७

आग्निपावमान्यौ २४६

आग्नीध्रः ३६

आग्नीध्रम् १२८

आग्नीध्रीयम् ७६१

आग्नेयात् पुरोडाशादग्नीषोमौ यजेताऽग्नीषोमीया-

द्वाऽग्निम् ३०३

आग्रयणेनाऽनिष्ट्वा नवाक्षं प्राप्नीयात् ३१७

आग्रयणेष्टिः ३१२; ३१८; ७६०

आग्रयणेष्टिप्रायश्चित्तम् ३१७; ३१९

आधारादिप्रवरान्तम् १९४; २८२

आङ्गिरसः १५

आचार्यौ ४४; ४५; ५०; २६२; २६६; २६९;

२७२; २७३; २७७; २८०; २८७; २९४;

३१८; ५४६; ५४७; ५५०; ७५७; ७५८

आज्यग्रहाः २७८

आज्यभागौ २०३; २८५

आज्यम् ८०३; ८०९

आज्यमनुत्पूतं स्कन्दति २५६

आज्यमुत्पूतं स्कन्दति २५६

आज्यस्थाली २६७; २७४

आज्यानि १३२

आज्जनम् ४१; ४४; ३०९; ५०९; ५४८;

५५०; ८१५

आजीगविः ४८; २६२; २८४; २९७; ३११;

३१८; ५३८; ६९७

आतञ्जनम् १५८

आतिथ्येष्टिः १२८

आत्मगतानामग्नीनां प्रायश्चित्तिः ११९

आत्मनि समारूढेष्वन्नस्य चरेत् ११९

आद्वाराः २६२; ७५९

आदित्यः ८४; १०४; २९५; ५२२

आदित्याः ४६२; ४७४; ६२३; ६३३; ६४४;

६८८;—धारयद्वन्तः ३३१; ३३३; ४६२;

—भुवद्वन्तः ४०१; ४०३; ४०९; ४७७;

—यागाः ५५४

आदेशकारितानि ७६१

आधानम् ११; ४६

आधानाङ्गैष्टयः २०; ४९

आधानोपकल्पनम् १; ३४

आधिराज्यम् ३२७

आनडुहं रोहितं चर्म ७५६; ८११; ८१५

आनीकवतम् ५५४

आनुजावरः ३४२; ४६४; ६१७

आन्तरकोशः ६०४

आपः २६८; ३७९; ३८७; ४७४; ४९८; ६१८;

७६१

आपतन्ताः ४४४

आपद्यमिहोत्राणां समासः ११७

आभिरूप्यम् ७६१

आमन्त्रणम् २५

आमयावी ३४३; ६१९

आमिक्षा १३७; १४०; ३२१; ३२५; ३२६;

३२९; ३४३; ४७५; ४८६; ४९७; ५३९;

५४३; ८०५

आयतनम् ४८२

आयुः ३४९; ४६५

आयुष्कामः ५५७

आयुष्मती ८०९; ८२२

आयुष्या ३९३

आरण्यः अग्निः १०२

आरण्याः १४७; ७६१

आर्द्रव्रणः ३०२

आर्द्रा ३७४

आर्भवं पवमानम् १२८; १३२

आवसथीयः ४७

आवापः ७६०

आवश्चनम् ७६१

आवायः ५५०

आश्रावितप्रत्याश्रावितवषट्काराणामत्युक्तानुक्त-

हीनेषु ३०४

आश्रावितम् ३०४

आश्रेषाः ३७५; ४७२

आश्वलायनः २०; २४२

आषाढः ३३; ५२

आर्षेयम् १९७; २००

आसन्दी २६०; ५४२; ७४३; ७५६; ७९२;

८०३; ८०५; ८१५

आसुरिः ५३४

आस्तराः २६८

आ स्वधा ५०९

आहवनीय उद्वायात् ९७

आहवनीयः ४७; ७६१

आहवनीयेऽनुद्वाते गार्हपत्य उद्वायेत् ९४; ११३

आहितः ५७४

आहिताग्निः सन्नवत्यमिव चरेत् २५१; २९८

आहिताग्निः सन्नश्च कुर्यात् १०२; १२०

आहिताग्निः सन् प्रवसेत् १०२; १२०

आहिताग्निरासन्नेषु हविःषु न्रियेत २५७

आहिताग्निरुपवसथे न्रियेत २५२

आहुतः ७६०

आहुतिर्बहिष्परिधि स्कन्दति २५७

इक्षवः २६२

इक्षुशलाका ५१२; ५४८

इडः ४९४

इडसूनः ५८७; ५९८; ८०३

इडादधः ३२२; ३२५

इडापात्रम् २६७

इडोपाह्वानम् २१४; २८७

इडोपाह्वानहौत्रम् २१९; २८८

इण्डवम् ७५६; ८०५

इदावत्सरः ४८७; ५१०; ५४२; ५५३

इध्मप्रवश्चनम् २६७

इध्मसंवृश्चनानि २३५

इध्मसंनहनानि १९७

इध्मावर्हिः १८८

इध्मावर्हिराहरणम् १५३; २६२

इध्मावर्हिषः प्रयाजानुयाजानां पाकान्ना कर्मसु

३०४

इन्द्रः २१३; २५३; २५५; २६५; २८६;

३००; ३२०; ३२१; ३२४-३२६; ३२९;

३३५, ३३९, ३४२, ३५६, ३७९, ३८६-
 ३८८, ३९१, ३९३, ४०२, ४०९, ४१०,
 ४१७, ४२१, ४३१, ४३९, ४४०, ४६४-
 ४६८, ४७४, ४८१, ५०८, ५०९, ५४८,
 ६१५, ६२०, ६२८-६२९, ६३३, ६३६,
 ६३८-६४१, ६४७-६४९, ६५४, ६५६,
 ६५८, ६६०, ६७१, ६७९, ६९१, ६९५,
 ७१७, ७३२, ७४१, ७५४, ७५५, ७५७;
 —अंहोमुक् ३४२, ३४३, ३४६, ३९५;
 ४११, ४१४, ४१८, ४७५, ४७८,—
 अधिराजः ३३०, ४०२, ४२६, ४६२,—
 अन्वृजः ३६०, ३६७, ४३९, ४६७,—
 अभिमातिषाद् ३३३,—अभिमातिहा ४३६,
 ६२१, ६३८, ६६०,—अर्कवान् ३२९,
 ३३२, ४०२, ४०८, ४६१, ४७७,—
 अर्कवान् अश्वमेधवान् ३५९, ३६६, ३८५,
 ४१०, ४१७,—अर्काश्वमेधवान् ४१७, ४७९;
 —इन्द्रियवान् ३९०, ३९२,—इन्द्रियावान्
 ३८७, ४०२, ४०८, ४१०, ४११, ४१४,
 ४७४, ४७७, ४७८,—क्षेत्रंजयः ३५८,—
 घर्मवान् ४०२, ४०४, ४०७, ४०८, ४७७;
 —घर्मवान् सूर्यवान् ३६९, ४०९,—ज्येष्ठः
 ४४४, ४४५,—त्राता ३६६, ४००, ४७६;
 —त्रैभुमः पञ्चदशः बार्हतः त्रैभुमः ४४६;
 —दाता ३७१, ४७१,—पुत्री ४७५,—
 प्रदाता २५३, ३००, ३८७, ३९०, ४००,
 ४७४, ४७६,—प्रबभ्रः ४१४, ४३६,—
 बार्हतः ३३८, ४४५, ४४८, ४८३,—
 मनस्वान् ३९६,—मनस्वान् त्विषीमान्
 ४१६,—मन्युमान् मनस्वान् ४०९, ४३४,
 ४३७, ४३८, ४८२, ४८४, ६७०,—
 मरुत्वान् ४४१, ४८३, ६२४,—राजा ३३०,
 ४०२, ४२६, ४६२,—राथन्तरः ३३८,
 ४४५, ४४८, ४८३,—रेवतः ३३९,—
 रैवतः ४४५, ४४८, ४८३,—वज्री ४१५,
 ६१६, ६४७, ६५७, ६६४,—वयोधाः
 ७४३,—विघ्नः ६२०,—विमृध् ३१२,
 —विमृधः ४०१, ४१४, ४३९,—वृत्रतः
 ४१५, ६२१, ६४७, ६६०,—वृत्रहा २५४,

४१५, ५११,—वैमृधः २८६, ४११, ४२०,
 ४३६, ४७८, ४८०,—वैराजः ३३८, ४४५,
 ४४८, ४८३,—वैरूपः ३३८, ४४५, ४४८,
 ४८३,—शाकरः ३३९, ४४५, ४४८, ४८३;
 —शुनासीरः ५३३, ५५४,—सुत्रामा ३३०,
 ३३१, ४६२, ७५३,—स्वराजा ४२६,
 ४६२,—स्वराट् ४०२

इन्द्रघोषवत्यः ५९०

इन्द्रतुरीयम् ४१३, ४३७

इन्द्रसवः ४४६

इन्द्रामी २३, ५०, ५२, २०९, २१३, २८६,
 ३१५, ३१८, ३२१, ३४१, ३५८, ३६५,
 ३६६, ३७८, ३८६, ३९७, ३९९, ४००,
 ४१२, ४१३, ४३४, ४३५, ४३७-४४०,
 ४४३, ४६९, ४७५, ४८२, ४९७, ५०८,
 ५३३, ५४३, ५४८, ५५४, ५५७, ५७४,
 ५९७, ६४१, ६४२, ६८१, ८०९, ८२२

इन्द्राणी ४३४, ४३६, ४३९, ४८२

इन्द्रानैर्कंती ६४८

इन्द्रापूर्णा ३९२, ६९३

इन्द्रावृहस्पती ४०३, ४२५, ४८१

इन्द्रामरुतः ६२३, ६२५

इन्द्रावरुणौ ३४३, ३४८, ३९५, ४७५

इन्द्राविष्णू ३६९, ४२२, ६९३

इन्द्रियकामः २००, ४४५, ४८३

इन्द्रियम् ३४९, ६२०

इरिणम् १२४, १२७, १३२, १४४

इष्टकाः ८११

ईजानः ३४९, ४६५, ४७१

ईयुष्टिः ८१६

ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न वदेत् ६२०;
 ६९५

ईषा १६६

ईषीका १७१

उक्थ्यः ७६०

उक्षवशाः ६५१

उक्षा ६४८, ६५७, ६५८

उखा १५९, २६७
उच्छिष्टम् २६०
उज्जितिः २९१
उत्करः २७५; ५४०; ५४४
उत्तपनीयः ३८; ७६१; ८१८
उत्तरवर्ग्यः ४६२; ४६६
उत्तराः अषाढाः ४७२
उत्तराः प्रोष्ठपदाः ४७२
उदकम् ७०; ३९१; ५३३
उदकमण्डलुः ५९६
उदकुम्भः ४२; ३०९; ५४८; ५५०; ८०३;
८०९; ८१८
उदशित् १४४
उदारवरकः २६५; २६८
उदुम्बरः ९; १०; १५; ३४; ४१; ४८; १२४;
१४३; १९२; ३२०; ३२४; ४६८; ५८७;
६२०; ६३३; ७४१; ७४३; ७६२; ८१९
उद्गाता ३५; ४६
उद्भूतस्य स्कन्देत् ९२; ११३
उद्भूतः ५७४
उद्गासनकाले पतनफालनादिषु ३०१
उद्भूतः ६३३
उद्भेता ३६
उन्मत्तः १२४; १४३
उपचाय्यपृष्ठं हिरण्यम् ४४०
उपधानरज्जुः ४६८
उपध्वस्तः ६७१
उपपातकम् ३५०
उपबर्हणम् २३; २४; ५०९; ५४८; ५५०
उपभृत् १८१; २६७
उपयमन्यः ४६
उपयष्टा ६००
उपरः ५९२
उपरिष्टान्मन्त्रकृतमधस्तात्त्रिपतेत् ३०४
उपला १६०; २६७; २७१
उपवती ऋक् ७५
उपवसथः २५९
उपवसथेऽशु कुर्वीत २५२
श्री.५३

उपवाकाः ७४१
उपवाजनम् ८०५
उपवीतम् २००
उपवेशः २३५; २६४
उपशयानि ७४१
उपसमिन्धनः ११४
उपस्तम्भनम् ४६५
उपांशुयाजः २०८; ४६०
उपाधाय्यपूर्व्यं वासः ३६०; ४६८
उपानहौ ४५१
उभयं हविरार्तिमार्च्छति २५५
उभयतोऽस्मौ ४०५
उभयादत् प्रतिगृह्य अश्वं वा पुरुषं वा ३५०;
४६५
उभावनुगतावभिनिम्रोचेदभ्युदियाद्वा ९७
उभे जनते ऋच्छेयम् ६२०
उर्वरा २५७
उल्लखलम् १६०; २६७; ३०९
उल्लुक् ४२; ४४; १७३
उषाः ३८४; ४७२
उषासानक्ता ४९५
उष्टारः ५३३
उष्टारौ ५३४
उष्टः ७६१
उष्णिक् ७६१
उष्णीषम् ६०४
ऊर्क ६२०
ऊर्जाहुती ४२५
ऊर्णा ५१२
ऊर्णाः ५४२; ७४१
ऊर्णासूत्रम् ७४१; ८१९
ऊर्णास्तुका ५८७; ५९०
ऊर्ध्वं समिष्टयजुषोऽन्तरितां देवतां स्मरत् ३०५
ऊर्ध्वाग्रः (वेदः) २६४
ऊर्ध्वगोहः ५७५
ऊषरम् ७९१
ऊषाः ६; ९-१०; ३४; ४०; ४५
ऊष्मा ३०६; ३१०

ऋग्वेदान्तर्गीतपञ्चयागानां षाज्यापुरोनुवाक्याः

६७५

ऋतवो मे कल्पेरन् १२८

ऋतुमुख्यः ऋचः ८२१

ऋत्विग्यम् ११५

ऋबीसम् २६

ऋषभः ३२९; ३३८; ४४५; ४८३; ५०९;

५२१; ५४७; ५५४; ६२९; ६३३; ६३९—

६४१; ६५६; ६५७; ६५९; ६६०; ६७१;

७१७; ७३२; ७४१; ७५३; ७५७;—बभ्रुः

पिङ्गलः ६६४;—बभ्रुः प्रथमकुसिन्धः ६६४;

—रोहितः ६१६; ६४७;—ललामः ६४८;

—विशालः ६२०

ऋषभो गोषु जीर्यति ६२१; ६९५

एककपालः परावर्तते ५५५

एककपालाः ५०८

एकशितिपादः ६१९

एकहायनी ३१७

एकहायनो गौः ४४३

एकाध्वर्यवप्रायश्चित्तानि २९९

एकाष्टकायां जायेत ६२१

एकोल्लुसकम् ५१०

एरकोपवर्हणे ४१; ३०९

ऐन्द्रामी ऋक् ६७; ७२

ओजस्कामः १४३

ओदनः ५; ७; २५; ४३; ४९; ६५; १३७;

१४०; २५५; २५६; ५५४

ओषध्यः ६४५; ६४६; ७६०

औदुम्बरी ७६१

औपमन्यवः ३४; ३९; ४४; ४५; ४७-५१;

५३-५४; २६०-२६२; २६४-२६७; २६९;

२७२-२७६; २८०-२८४; २८६; २८८;

२९१; २९४; २९६-२९७; ३११; ३१६;

३२४; ४६०; ४६५; ४६७; ४७५; ४७७;

४७९; ५३८; ५४०-५५०; ५५२; ५५४;

५५५; ५८९-५९१; ५९३-५९५; ६०१;

६०४; ७५७-७५८

औपमन्यवीपुत्रः ४७; ५१; २६४-२६५; २६९;

२७७; ३११; ३१८; ४६७; ५८८; ५९१;

५९३-५९४

औपासनः ७६१; ८१८

कंसः १५९; २६८; ५४०; ५४४; ५४६; ५९९

कः ४४६; ४२७; ५४३

कटः ८०३

कठिनम् ७५६

कद्रयः ३३

कद्रुः ६५०; ६९६

कनिष्ठः ६०; १०४

कन्दः २६८

कपालं नश्येत् २५६; ३००

कपालं भिद्येत् २५५; ३००

कपालसंतापनः ८१८

कपालसामान्यम् ७६३

कपालानामभिप्रथने नानाप्रथने चातिप्रथने च

३००

कपालानि १६०; १६८; २६७; २७२; २९६

कपिञ्जलः ७५३

कपित्थः २६३

कपोतः ८१०

कमण्डलुः ५९३

कयाशुभीयम् (सूक्तम्) ३५७; ४२९

करञ्जः २६३

करणः २७५

करम्मः ३७५; ५५०

करम्मपात्राणि ४२७; ५४२

करीरसक्तवः ४६५; ५४२

करीराणि ३५१; ४२७

कर्कशं ७१७; ७३२; ७४१; ७५५

कर्कशु ७२६

कर्णलोभाभि ८०६

कर्माभ्यावर्ति ७६१

कर्षः ८०७; ८१५
 कलविष्कः ७५३
 कल्पेरन् ३५०; ४६५
 कव्यवाहनः २७२
 कशिपु ५०९; ५४८; ५५०
 कस्तम्भी १६६
 काकः ३०४
 काजवानि ४४
 काठकसंहितान्तर्गतमन्त्राणां परिशिष्टम् ४५३
 कात्यः ३९; ४२; ४३; २६६; २६९
 कानान्धयज्ञः ७६२
 कानिष्ठिनेयः ६०; १०४
 कामः ३७८; ३७९; ३८३; ६२२
 कामो नोपनमेत् ३५०; ४६५
 काम्यहोमाः १२२; १४२
 काम्या इष्टयः ३२७; ४६०
 काम्याः पशवः ६०६; ६९५
 काम्या दर्शपूर्णमासाः ३२०; ३२४
 कारीरीष्टिः ३५१; ४६५
 कारोतरः ७५६
 कार्पर्यः १९२; ५३९; ५८७; ५९१
 काला ८०४
 कालातिक्रमेषु ११८
 काशस्तम्बः ८११
 कासः ३०२
 कीटः ३०२
 कीटोऽवपयेत् ८८
 कुक्कुटः ३०२
 कुतपाः २६२
 कुनखम् ३०२
 कुपः ५२०
 कुम्भः ६३६
 कुमारः ५४८
 कुमारी ५२०
 कुम्भः ४३२; ७५६; ८१०
 कुम्भी ८०३;—वातातृणा ८११
 कुम्बिन्वाः ७६१
 कुलथः ७६१
 कुवलम् ७२६; ७३२; ७४१

कुशतरुणकानि ८१५
 कुशस्तम्बः ८११
 कुशाः १४२; २६२
 कुशोर्णाः ५०१
 कुसुम्माः २७४
 कुहूः १४९; २४२; २५९; २९२; ३४६; ३९२;
 ३९८; ३९९
 कूटम् ४२८
 कूर्चः ४८; १०४
 कूर्मः १७३; २०९; २७३
 कूर्माण्डहोमाः १३३
 कूर्माण्डानि ४४; १३७; १४०
 कृच्छ्रद्वादशाहः १४०
 कृत्तिकाः ३-५; ७; ३४; ३७३; ४७१
 कृत्तिवासाः ५०८
 कृषमाणः प्रतिष्ठाकामः ६२३; ६९६
 कृष्णं वासः ३२८; ४६५
 कृष्णं संदानम् ४६५
 कृष्णः ६६८;—अजः ६०९; ६२७;—अश्वः
 ४६५; ८१५;—एकशितिपाद् ६६५;—
 पेतवः ६१५; ६१९; ६४७; ६७२;—वर्षाहू-
 स्तम्बः ४६५;—वृष्णिः ६१६
 कृष्णकर्णी ६६८
 कृष्णग्रीवः अजः ६२७; ६३०; ६३१; ६३९;
 ६४२; ६४५; ६५३; ६७२; ६७३
 कृष्णग्रीवी ६४९
 कृष्णातूलः २६२
 कृष्णातृषम् ३५१; ४६५
 कृष्णामधु ४६५
 कृष्णम् अनः ४६५
 कृष्णमृगाः २७५
 कृष्णलम् ४०५
 कृष्णललामः ६१७; ६१९; ६६०
 कृष्णलानि ३४९; ४०७; ४२०; ४७७; ४८०
 कृष्णशाबली ६११
 कृष्णा अविः ४६५
 कृष्णा कुम्भी ४६५
 कृष्णाजिनपुटम् ७६२
 कृष्णाजिनम् १६०; १६७; २३९; २६७; २७०;

२७३; ३२३; ३३२; ३५२; ४६३; ४६५;
 ७४३; ७७२; ८०३; ८०५; ८०७
 कृष्णा वशा ६१३
 केशः ३०२
 केशान्तः ४१
 केशियज्ञः ३२६
 कोद्रवाः २६८
 कोविदारः २६३
 कोशः ६०४
 कोष्ठः २६९
 कौकिलसौत्रामणी ६९८; ७१८; ७२७; ७३४;
 ७५५;—हौत्रम् ७०४; ७२१; ७३०; ७४४
 कौणपतन्त्रिः २८६
 कौण्डपायिन्यम् ५३८; ७६०
 कौशीधान्यम् ५०; २६०; ५४२; ८२३
 कौषीतकम् १४९
 क्रैडिनः ५५४
 क्रौञ्चम् २००
 क्लीबः ७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५६
 क्लैव्याक्षिभीयात् ३५६; ४६६
 कलम् ७१७; ७५७
 कलाः १५७
 क्षत्रम् ४३१
 क्षत्रस्य संवर्गः ४१४
 क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम् ३५६; ४६६
 क्षत्रियं विण् निर्वाधे कुर्वीत ३५६
 क्षत्रियः ७; ७९२
 क्षत्रियाद्विडम्यर्धश्चरेत् ३५७; ६२३
 क्षत्रियो विशो ज्यान्या बिभीयाद् ब्राह्मणो वा
 ३५७
 क्षवथुः ३०२
 क्षामकाषः ३९; ५४७
 क्षारः ८०७; ८०८; ८२१; ८२३
 क्षीरपानम् ४२
 क्षीरम् ७०; १२४; ४२८; ४७१; ८०९
 क्षीरवृक्षाः २६२
 क्षीरहोता ७५
 क्षीरिण्याः (जीवक्षयः) ८०४
 क्षुद्रकीटः ३०२

क्षुरः ४८९; ५०२; ५२०; ५३८; ५४२; ५४६;
 ५५३; ५५४
 क्षेत्रपतिः ३६६; ४६९
 क्षेत्रम् ४५०; ४८४; ६३८
 क्षेत्रमध्यवस्यन् ३५८
 क्षेत्रवितृष्णी ८११
 क्षेत्रस्य पतिः ३४१; ३५८
 क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत् ३५८; ६२३
 क्षौमम् १०; २४
 खदिरः ३; १९२; २६३; ४६९
 खरः ३०४; ७५७
 खारी ८०५
 गणवती याज्यानुवाक्ये ३६१; ४४०; ४६८
 गतश्रीः ६०; १०४; २०१; २६५; ३२०; ३५९;
 ६४७
 गधा ४६६
 गन्धाः ४६७
 गर्दभः ७६१;—कर्णः ४२८
 गर्भयागः ६०४
 गर्भुतः ३८८; ३९०; ३९२; ३९८; ४७४;
 ४७६; ७६१
 गवामथनम् ७६०
 गवीधुकाः ४४५; ७६१
 गादोहसंनेजनम् ६५
 गायत्री ४११; ४१४; ४२७; ७६१
 गायत्रीष्टिः ३३०; ३५९
 गार्हपत्यः ४६; ७६१
 गार्हपत्यमनाहितमादित्योऽभ्युदियात् ५४
 गार्हपत्याहवनीयाबुद्धायेताम् अभिनिज्रोचेदभ्यु-
 दियाद्वा ११४
 गार्हपत्याहवनीयौ मिथः संसृजयेयाताम् ९९
 गावः १५२; २६५
 गावो वा पुरुषा वा प्रमीयेरन् यो वा बिभीयात्
 ३५९; ४६७
 गावी ५०३
 गिरिः ३५९; ८०९; ८२३
 गुहः ५९८

गुल्फुलवासः ११७
 गुल्फुल ५८७; ५९०
 गृष्टिः ३७७; ४७२
 गृहमेधीयः ५५४
 गृहाः ३२७
 गोत्रमैथुनः ८२१
 गोधूमाः ७४१; ७६१
 गोपितृयज्ञः ४१
 गोमयानि ७७२
 गोमूत्रम् ३६२; ३९०; ३९२
 गोमृगाः ६०६; ६१७
 गोमृगकण्ठः ७६२
 गोशकृत् ८२१
 गौः २४; २५; ४१; ११३; ११९; १३२;
 २७४; ३४४; ३५२; ४२२; ४४२; ४८३;
 ५२०; ६०२; ७६१;—एकहायनः ४४३;
 —नपुंसकः ७५४;—प्रथमजः ४९०;—
 प्रथमजा ४८९;—रोहिणी ८१९;—श्वेतः
 ५३४;—श्वेतवत्सा ४०५; ४०७; ४७७;—
 श्वेता ३६४; ४०५-४०७; ४७७;—सिध्मा
 ३९३
 गौतमः २९४; ५४७; ६९७
 गौरसर्षपाः ८२१
 गौष्ठः ४६९
 ग्रहणम् ३०५
 ग्रहाः ७१७; ७४१
 ग्रामः ३५९; ४६७; ६२४
 ग्रामकामः १२४; १४३; ३४३; ४७१; ५३३;
 ६२४
 ग्रामणीः २६५; ३२०; ४२६
 ग्राममर्यादां नदीं वाऽमीनतिहरेयुः १२१
 ग्राम्यः (अभिः) १०१
 ग्राम्यवादी ३३१; ४६२
 ग्राम्याः १४७; ७६०
 ग्रावस्तुत् ३६
 ग्रीष्मः ३-५; ७; ३४; ६४८-६५०; ६५३
 घटः ८०८
 घर्मशिरः ५२

घृतम् १३७; १४०; ३६७; ३८७; ३९१; ३९३;
 ४०६; ४७४; ८१९
 चक्षुः ३६३; ४६८
 चक्षुषी २०३
 चतुःशरावः १२४; १४४
 चतुरवत्तम् २०९; २६९
 चतुर्मास्यानि १४०
 चतुर्होता ५१; ११६; १४०; ८२०
 चतुर्होतारः ११५; १२५; ८१६
 चतुश्चक्रः ३२६
 चतुष्पथः ५२०; ५५२; ७६१
 चत्वारिंशन्मानम् २४; २६; ५०
 चन्द्रमाः १४८; २५३; २५९; २९९; ३८३;—
 प्रतीदृश्या ४७२
 चप्पम् ७४१
 चमसः २६८; ५४०; ५४४; ५४६; ५९९
 चमसाध्वर्युः ३६
 चरकसौत्रामणी ७१६; ७२५; ७३२; ७५३;
 ७५६;—हौत्रम् ७१७; ७२७; ७३३; ७५५
 चरुः २३-२५; ५०; ८३; ८४; ९३; ९६;
 १११; २४८; २५३; ३००; ३१०; ३१५;
 ३१८; ३२९; ३३१; ३३३-३३७; ३४०;
 ३४१; ३४३; ३४४; ३४७; ३४९; ३५६-
 ३५९; ३६१; ३६५-३६७; ३६९; ३७१;
 ३७२; ३७४; ३७५; ३७९; ३८०; ३८२;
 ३८४; ३८५; ३८७; ३८८; ३९०; ३९३;
 ३९४; ३९६; ३९८; ४०१-४०३; ४०७-
 ४१०; ४१५; ४१८; ४२२; ४२४; ४२५;
 ४२८; ४३२-४३४; ४३६; ४३९-४४१;
 ४४४; ४४६; ४५२; ४६२-४६४; ४६६;
 ४६८-४६९; ४७१-४७२; ४७४; ४७६-
 ४७८; ४८१; ४८३-४८५; ४८६; ५०८;
 ५१०; ५३३; ५३९; ५४७; ५४८; ६३८;
 ७४३; ७५४; ८०३; ८११
 चर्म ५; ३०९; ६११;—आनङ्गहम् ३४;—
 रोहितम् आनङ्गहम् ३६
 चषालः ५८८; ६०३
 चाण्डालः ११८

चातुर्मास्यप्रायश्चित्तानि ५३७; ५५५
 चातुर्मास्यानि ३५; १३२; ४८६; ५३८; ७६०
 चातवालः ५८९; ५९६
 चित्रम् २५६
 चित्रा ३-५; ७; ३४; २५६; ३७७; ३८८;
 ४७४
 चित्रेष्टिः ३६५
 चैत्रः ५३४
 चैलयूका ३०२

छागलाः ८०३
 छन्दांसि ७६१
 छेददाहोपघातेषु नाशे विनाशे वा ३०१

जगती ७६१
 जर्तिलाः २७४; ७६१
 जनता ३४१; ४८४
 जनतामभिप्रयान् ३६५
 जनतामागत्य ३६६; ४६९
 जनतामेष्यन् ३६६; ४६९
 जने म ऋध्येत ३६६
 जयहोमाः १२३; १४२
 जयाः २५; ३८; ४४; ५४
 जरत्कोशविलम् ५५२
 जलम् ८२१
 जाघनी ५९८; ६०१
 जारः ४९८; ५४४
 जिह्वा ५९७; ८०६
 जीर्णस्याऽशक्तस्य च ११६
 जीवनवन्तौ आज्यभागौ ५२१
 जीवतण्डुलः २५६
 जीवपिता ३१०; ८०८
 जीवपितामहः ३१०
 जीवे मृतशब्दं शृण्वीत १०२
 जुहूः १८१; २६७
 जोष्ट्री ४९५
 ज्यान्या मारणादपरोधाद्वा बिभीयात् ३६६
 ज्यायान् कात्यायनः ६९६
 ज्येष्ठः ६०; १०४

ज्येष्ठबन्धुः ३६७
 ज्येष्ठा ३७९
 ज्यैष्ठिनेयः ६०; १०४
 ज्यैष्ठ्यम् ३७९
 ज्योगपरुद्धः ६२६; ६९६
 ज्योगामयावी ३६७-३६९; ४६९; ४७१; ६२७;
 ७२६
 ज्योतिषामयनम् ४७२
 ज्योतिष्मती ११४; ३९६
 ज्योतिष्मत्यः ऋचः ८१६

तक्षा ५८७
 तण्डुलाः १५७; २७१; ३९३; ८१९
 ततिः ७६०
 तनिम ५९८
 तनूनपात् ४९५
 तन्तुमती ११५; ११७-११८; ३०२; ३०५
 तन्त्रम् ७६०
 तन्त्राणि ७६३
 तन्त्रः ४८; ५३;—घोराः ४८
 तमिषुः ५०९; ५५१; ५५३
 तरुः ८२१
 तर्यः ७५६
 तक्ष्यः ८०३
 ताप्याणि ३६९; ३७१; ४७०; ६२३; ६३५
 तित्तिरिः ७५३
 तिलकः २६३
 तिलाः ५०; २६०; ५४२; ७६१; ८१९
 तिल्वकः ७९१
 तिल्वका ८०४
 तिस्रधन्वम् २५४
 तिस्रो देवीः ४९५
 तिष्यम् ३७५
 तिष्यापूर्णमासः ४०५; ४०६; ४०८; ४७७
 तुरायणम् ३२३
 तुषाः ४९८; ५४६
 तुस्तूर्धमाणः ३२२
 तूपरः ६०७; ६१३; ६३३; ६३५; ६४४;—
 अरुणः ६१५; ६१६;—विश्वरूपः ६२३

तेजः ३६९, ४७०

तेजस्कामः २६४

तेजस्वी ३८१

तैलम् २७४

तोक्मानि ७२२, ७४१, ७५६

त्रिशन्मानम् २४, २६, ५०

त्रिकुक्त् ८१५

त्रिगधम् ४६५

त्रिच्छदिष्कम् ४६६

त्रिधातु ४०२

त्रिवती ऋक् ४०२, ४७१

त्रिवलीकम् ४६५

त्रिवृच्छाखापवित्रम् २६४

त्रिवृत् अन्नम् ८२२

त्रिवृत् (वेदः) २६४

त्रेणी ५३८, ५४२, ५४६, ५५३, ५५४

त्रेता ६२०

त्रैतः ६३३, ६३४, ६९६

त्रैधातवीयम् ३३४, ३८९

त्रैधातवीयेष्टिः ३६९, ४७०

त्र्यम्बकः ५०८, ५०९, ५५२

त्र्येणी (-नी) ४८७, ५०२, ५२०

त्वष्टा २३२, २९२, ३७७, ३८८, ४१७, ४७४,

४९५, ६०१, ६३४, ६३६, ६३८, ६४७,

६७४, ६८७, ६९५, ६९६, ७५३

दक्षिणा २५, २६, २८, ३२, ८३, ८५, ९०,

९९, १०७, १०९, ११८, १२०, १२८,

१३२, २२१, २४८, २४९, २५४, ३१५,

३२८, ३२९, ३३२, ३३७, ३३८, ३४५,

३५०, ३५९, ३६६, ३८५, ३९२, ३९८,

३९९, ४०१, ४०३, ४१३, ४१८, ४२२,

४२५, ४२७, ४३६, ४३७, ४४३, ४४५,

४४९, ४५१, ४८६, ५३३, ५३४, ५५४,

६२१, ६२३, ६३३, ६४७, ७१७, ७२६,

७३२, ७४०, ७४३, ७५५, ७९२, ८०२

दक्षिणाकारो राथीतरः २८०

दक्षिणामिरुद्धायात् ९७

दक्षिणाप्रतिग्रहाः ८१६

दण्डः २५४, ४५१

दण्डोपानहम् २५५

दधि १५८, २०९, २५३, २५९, २६६, २७४,

२८१, २८६, ३००, ३२२, ३८७, ३९१,

३९३, ४७४, ४७५, ५३८, ५४२, ५५४,

५८७, ५९१, ८०३, ८११, ८१९

दधिक्रावती ऋक् ६७

दधिक्रावा ३३७, ३३९, ४४९, ४६४, ४७३,

४७५

दर्भकुलायम् ५२

दर्भस्तम्भः २६२, ७६१, ८१५

दर्वी ४१, ५११

दर्शपूर्णमासप्रायश्चित्तानि २४९, २९६

दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्या वा पौर्णमासी

वाऽतिपादयेत् २४९

दर्शपूर्णमासयोरेक एव ऋत्विक् स्यात् २९९

दर्शपूर्णमासलोपे ११८

दर्शपूर्णमासौ ३५, १३२, १४०, १४५, २५९,

७६०

दर्शहोता ४९, १०५, ११५, १२७, १२८,

१४०, २६८, ८२०

दर्शा ३०६, ३०९, ५१२, ५४८, ५५०

दहनकल्पः ८१८

दाक्षायणयज्ञः ३२१, ३२५, ५३८, ७६०

दानकामाः प्रजाः ३७१, ४७१

दाम ३५५, —हिरण्यम् ४२५, ४८१

दायः ३१०

दारुपात्रम् १५७, ३२०, ३२४

दारुपात्री २६७

दाशतयम् ८०८

दिवत्थः पुरोनुवाक्याः ४४६

दित्यवाद् २४

दित्यौही २४

दिड्यः (अभिः) १०१

दिशामवेष्टिः ३२९, ४६०, ८०९

दीक्षा १३२

दीप्यमानेष्वह्यमानेषु ११६

दीर्घवंशः ७५६

दीर्घवात्स्यः २७७
 दुग्धम् ५०८; ८११
 दुरः ४९५
 दुर्गा ३०४; ८०९
 दुर्वाहणः सोमं पिपासेत् ६३१
 दुर्वराहः ९०
 दुश्चर्मा भविष्यामि ३७२; ४७१; ६३२
 दुष्टमानाऽवभिन्धात् ८७
 दूर्वाः २६२
 दूर्वास्तम्बः ८११
 दृढः ३८१
 दृषत् १६०; २६७; २७१
 देवः प्रजा अभिमन्येत ३७२
 देवताभ्यावर्ति ७६१
 देवतासामान्यम् ७६३
 देवयजनम् ३७
 देवस्वः ४४५
 देवा आज्यपाः २०३
 देवानां पत्न्यः २३२; २९२; ६०१
 देविकाः ३४९; ३७२; ३९२; ३९४; ३९८-
 ४००; ४२२; ४४९; ४६८; ४७१; ४७४
 देशकालद्रव्यानुपपत्तिः ११७
 दैव्या होतारा ४९५
 दोः ५९८
 दोहनम् २६४
 द्यावापृथिवी २५६; ३००; ३१५; ३१८; ३८६;
 ४८६; ५३९; ६११; ६१२; ६२३; ६२६;
 ६३२; ६६३; ६८८;—अहोमुचौ ४१८
 द्यौर्होमे पूर्वां श्रेष्ठं नीयात् ११२
 द्वादशागवं सीरम् ५३३
 द्वादशायोगं सीरम् ५३३
 द्वादशाहः १३२; ५३८; ७६०
 द्विचुराः ७६१
 द्वितीयतायै ३७२; ४१०
 द्वितीयमस्य लोके जनेयम् ३७२
 द्विरात्रः ७६०
 द्विरूपा ६३७; ६४६; ६४७; ६६७
 द्विवृद्धिरण्यम् ४०३
 द्विषत् ३२३

द्वीपम् ६१९; ६२८

धनुः ३८६
 धाता ३४६; ३४९; ३६२; ३६८; ३९२;
 ३९८-४००; ४२२; ४२८; ४७१
 धानाः १३७; १४०; ३८७; ३९१; ३९३;
 ५०८; ५५०; ८११
 धाव्ये २०१; ४६०; ४७२; ४७३; ४७७; ४७९
 धूः १६२; २६८
 धूम्रः ७१७; ७४१; ७५७
 धूम्रललामः ६३१
 धृष्टिः २६७; २७२
 धेनुः २०; २३-२६; २७१; ३५९; ३६९;
 ३७१; ४७०; ५५४; ६०२; ६२३; ६२६;
 ७४३; ८०९;—अनङ्वाही ४१३; ४३७;
 —पर्यारिणी ६३२; ६६३;—पुरुषी ३५९

धेनुवरः ८०८

धेनुदरी ६०६; ६२३; ६३८; ६६०

धेनु संमातरे ६११; ६१२

धौरेयशम्या ५८९

ध्रुवगोपः ३६

ध्रुवा १८१; २६७

ध्वाङ्क्षः ३०२

नकुलः ३०२

नक्षत्रम् ३८४; ४७२

नक्षत्रसत्रम् ३७३; ४७१

नक्षत्राणि ३८५; ४७२

नमहुः ७५६

नडाः १७१

नलेषीका ८१३

नदी १२१

नपुंसकः ६३२; ६३६; ६४०;—गौः ७५४

नमस्काराः ४४; ३०६; ३१०; ५५२

नराचांसः ४९५

नलदः ३८

नलदमाला ८०३

नलाः २६२

नवनीतम् ४६९
 नववितृष्णः (कुम्भः) ७५४
 नाको मौद्गल्यः ७७१
 नाऽभि जनयितुं शक्नुयुर्न कुतश्चन वातो वायात्
 ९८
 नाडी १२४
 नादेयाः ७६१
 नाम्बाः ४४५
 नारायणौ ८१६
 नाराशंसी ऋक् ४०६; ४०८
 नारिष्ठौ २९२
 निगदः २०२; ५२१
 निदाघः ७९०
 निधनम् ७४३
 निम्बः २६३
 निम्बपत्रम् ८२१
 नियुत्वती ऋक् २१२
 नियुत्वती याज्यानुवाक्ये ६१९; ६२५; ६३५
 निरुद्धः ३८५
 निरुद्धो ज्योङ् निरुद्धः ६३२
 निरुद्धपञ्चबन्धः ५५६; ५८७
 निरुक्तिगृहीत इव मन्येत ६३२
 निवान्यवत्सा ७७१
 निवान्या ५१६
 निवीतम् २००
 निषादस्थपतिः ४२८
 निष्कासः ४९८; ५०९; ५४६
 निष्ठया ३७७
 नीपः २६३
 नीलमक्षिका ३०२
 नीललोहितम् ५५२; ८०९
 नीवाराः २६८; ३७५; ४४१; ४४४; ७६१
 नीविः ३०८; ५१९
 नृज्यायम् ३८६
 नेमपिष्टः ३९०
 नेष्टा ३६
 न्यग्रोधः १२४; १४३; ७४१; ७५७; ७९१
 पक्षिणः ३०४; ७६१

पङ्क्तिः ७६१
 पञ्चहोता ११६; १२७; १२८; १४०; ५९९;
 ८२०
 पञ्चारत्निः ५८८
 पञ्चावत्तम् २०९; २६९; २७०; २८६; ५७४
 पण्डकः ६३२
 पतिकामा ५१२; ५५३
 पतितः ११८
 पत्नी ११८; ४९७; ५०९; ५२१; ५३९;
 ५४४; ५९६
 पत्नीमृत्विष्यं विन्देत ५४; ११५; २९८
 पत्नीसंयाजहौत्रम् २४२; २९५
 पत्नीसंयाजाः २३२; २९२
 पत्नीसंनहनम् २७७
 पत्न्यः १२८; ६३६; ८१६;—देवानाम् ६०१
 पत्न्यां बहिः सीमां गतायामभिनिष्ठोचेदभ्युदि-
 याद्वा १२१
 पत्न्या विहृतम् १११
 पदपांसवः ४६२
 पदम् ३३१; ७६१
 पन्थाः ५२०
 पयः ७०; ७९; १३७; १४०; ४७५; ५३३;
 ५३८; ५३९; ५४२; ५५४; ७४१
 पयस्या ३२१; ३४३; ३४८; ३९३; ३९५;
 ४०४; ४४०; ४४६; ४७५; ७४३
 परमेष्ठी ३८६
 परशुः ५८७; ८१९
 परिकर्मी १११; २७३
 परिधयः १८८; २७९
 परिभाषा ७५९
 परित्तः ३८७
 परियष्टा ११९; १२०
 परिवत्सरः ४८७; ४९८; ५४२; ५४६
 परिवित्तः ११९; १२०
 परिविन्नः ११९; १२०
 परिविविदानः ११९; १२०
 परिश्रयणम् ५०९; ५४८; ५५०
 परिश्रितम् ४०५; ४०६; ४०८; ४२२; ४७७;
 ४८१

परिहारसूः ६९६
 परीष्टः ११९; १२०
 पर्जन्यः ३८७; ५३८
 पर्णः ३; ९; १०; ३४; ४०; ४८; १४२; ७५६;
 ८११; ८१५
 पर्णत्सरुः ८०७
 पर्णमयः कुवः ७६२
 पर्णवल्काः १५७
 पर्णशाखा १५२; २६१; ८०३; ८०९; ८१२;
 ८१५
 पर्णसेवः ५४८; ५५१
 पर्याभिकरणान्तम् ५६१; ५९३;—हौत्रम् ५६१;
 ५९५
 पर्यागिणी ६२६; ६९६
 पर्यागिणी धेनुः ६३२; ६६३
 पलाण्डुः २६३
 पलाशः ८०; १९२; २६१; २६३; ५२०; ५५६;
 ५८८; ७४१; ७९२; ८०३
 पलाशवृन्ताः ८२२
 पलाशशाखा ७९१; ८१९
 पल्लनम् ५०; ३२१; ३२५; ५४१
 पल्वम् २६९
 पवित्रम् १५३; १५८; २६४; २६७; ७४१
 पवित्रं नश्येत् २५५
 पवित्रेष्टिः १२१; ४७२
 पशवः १२८; ३०४; ३२१; ३५८; ३७५;
 ३८७; ४७४; ६२३; ६३३; ६९६; ७६१
 पशुः यदि निषीदेत् ६०३
 पशुकामः १३१; १३२; २००; २६४; ३२०;
 ३२२; ३६२; ३६९; ४०८; ४७१; ५५७
 पशुपुरोडाशः ५९७
 पशुप्रायश्चित्तानि ६०२
 पशुबन्धः ३५; १४०
 पशुबन्धो लुप्येत ६०४
 पशुमान् १२८; ३७४; ३७६; ३८२
 पशुरुपाकृतः पलायेत ६०३;—मूत्रं कुर्यात् ६०३;
 —अग्नयेत ६०३;—वाहयेत ६०२;—वेपेत
 ६०३;—शकृत् कुर्यात् ६०३
 पशुषु विवदेत् ३९४; ६३८

पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति २५४
 पशौही ३४५; ३४९; ३५०; ३९२-३९४;
 ३९९; ४००; ४४९
 पाकयज्ञसंस्थाः ७६०
 पाजकः ७५६
 पाटवः चाक्रः ७४२
 पात्रम् ४८०
 पात्रासादनप्रणीताप्रणयने १६०; २६६
 पाथिकृतीष्टिः ११९; ४७२
 पापनामानः वृक्षाः ७९१
 पापयक्ष्मगृहीतः ३९४; ४७४
 पाप्मना गृहीतः ३९५; ४७५; ६३८
 पार्जन्यम् (हविः) ५५४
 पार्श्वं ५९८
 पावकवत्यौ धारये ४७३; ४७९
 पावकवन्तौ आज्यभागौ ४७३; ४७९
 पावमानी ११९
 पाषाणः ८२१
 पिङ्गलः ६३४; ६५६;—बभ्रुः ऋषभः ६६४
 पिण्डपितृयज्ञः २६४; ३०६; ३०९
 पिण्डपितृयज्ञप्रायश्चित्तम् ३११
 पिण्डाः ३०९
 पिण्डी ४६१
 पितरः ३७६;—अभिष्वात्ताः ५०८;—अन्त-
 रिक्षसदः ३०६; ३१०;—दिविषदः ३०६;
 ३१०;—पृथिवीषदः ३०६; ३१०;—बर्हि-
 षदः ५०८;—सोमवन्तः ५१७; ५२१
 पिता पितामहः पुण्यः स्यादथ तन्न प्राप्नुयात्
 ६४१
 पितृमेघः ७६४; ८००
 पितृयज्ञः १२८; ५०९
 पितृयज्ञलोपे ३११
 पितृव्यः ३१०
 पिनाकहस्तः ५०८
 पिपीलिका ३०२
 पिशङ्गः ३२९
 पिशीलम् ५१५
 पिष्टानि २७२
 पिष्टोद्वपनी २६७

पुण्यः स्यामनाध्व्यः ३९६
 पुण्यश्लोकः ३८०
 पुत्रकामः १३२
 पुत्रकामेष्टिः ३९६
 पुत्रिकापुत्रः ३१०
 पुत्रे जाते ३९६; ४७५
 पुनराधानम् २७; १२१
 पुनराधेयं तृतीयाधानं च ५१
 पुनरुत्सृष्टः ६४१; ६४२
 पुनर्दातृमती याज्यानुवाक्ये ४००
 पुनर्वसू ३; २८; ३०; ३१; ३४; ५२; ३७५
 पुनस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति २५३
 पुराणः अनङ्गवान् ७९२
 पुराणसर्पिः ८१०
 पुरा पुण्यः सन् पश्चात् पापत्वं गच्छेत् ६४२
 पुरा प्रयाजेभ्यः प्राङ्ङारः स्कन्देत् २५७
 पुरा प्रयाजेभ्यो बहिःपरिध्यङ्गारा अभिपर्यावर्तेरन्
 ३०३
 पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत् २५७
 पुरीषम् ३०२
 पुरुषः ११९; ३५०; ४६५; ७६१
 पुरुषमेधः ७६२
 पुरुषाः प्रमीयेरन् ३५९; ३९६; ४६७
 पुरुषो रथो...अन्तराग्नीन् गच्छेत् ११३
 पुरोडाशः २८१; ७६२
 पुरोडाशयागहविर्यागहौत्रम् ५७८
 पुरोडाशयागहविर्यागौ ५७८; ५९७
 पुरोडाशाश्रपणम् १७२; २७३
 पुरोडाशीयाः २६८
 पुरोडाशौ क्षायतः २५६
 पुरोडाशौ दुःशुतौ भवतः २५६
 पुरोधा ३९६; ६४२
 पुष्करपर्णम् ३४; ४०
 पुष्टिः ६४३
 पुष्टिमन्तौ ४१८
 पृतिद्विप्लवः ३०२
 पृतीकाः १५७
 पृतुद्रः ५८७; ५९०
 पूर्णद्वयः ५१; ५१६

पूर्णद्वयः ५५४
 पूर्णद्वयम् ५४७
 पूर्णपात्रम् २३५; २५७; २९४
 पूर्णमासः ५; १४७; ३१२; ३२५
 पूर्वस्यामाहुतौ हुतायां यजमानो म्रियेत ९८;
 —अभिरनुगच्छेत् ९८;—आहवनीयोऽनु-
 गच्छेत् ११४;—उत्तराऽऽहुतिः स्कन्देत् ९८
 पूर्वापरा अन्वक्षः प्रमीयन्ते ३९७; ४७५
 पूषा ३४१; ३५८; ३६५; ३६६; ३८२; ३९२;
 ४१७; ४४३; ४६९; ४८६; ४९८; ५०८;
 ५३३; ५३९; ६०७; ६७७
 पृथिवीशरीरम् ८२२
 पृथिसवः ७६२
 पृथिः ३६१; ३९०; ४४०; ४६८; ६०८; ६६८
 पृथिपर्णी ७९१; ८०४
 पृथिसक्थः ६२३-६२५
 पृषदाज्यम् ४८६; ५३८; ५८७
 पृष्टिः ६३८
 पेतवः ५८७; ६५६; ६५८;—कृष्णः ६१५;
 ६१९; ६४७; ६७२;—वलक्षः ६५३
 पैङ्गलायनिब्राह्मणम् ४९
 पैङ्ग्यम् १४९
 पोता ३६
 पोषवन्तौ आज्यभागौ ५२१
 पौत्तिकम् ४६५
 पौर्णमासी ४; २६; १४०; १७३; २०७; २१३;
 २५९; २८६; ३१६; ३२१-३२३; ३७८;
 ४९०
 पौरुषकामः ३२०
 प्रउगम् २६८
 प्रक्रमः ४; ५; २६२
 प्रक्रान्तम् ७६१
 प्रजा ३२३; ३७१; ३७५; ३७७; ३७९; ३९७;
 ४७५; ६४३; ७५५
 प्रजाकामः १३०; १३१; २४२; ३२१; ४७१;
 ५५७
 प्रजातयः ५९३
 प्रजातिकामः ३२२
 प्रजापतिः ३८; २८६; ३१६; ३४९; ३५९;

३७४; ३७९; ३९०; ३९२; ४२०; ४७६;
४८०; ५७४; ६०६; ६०७; ६२३; ६२९;
६३३; ६३५; ६३७; ६४४; ६४८; ६५०;
६६८; ६८३; ६९५; ६९६

प्रणीताः २३९; २६७

प्रणीतानां विप्रुषो विपतेयुः २९९

प्रणीताप्रणयनम् १६०; २६७

प्रतिधुक् ४५२; ५३३

प्रतिपद् ११७

प्रतिप्रस्थाता ३६; ४९७

प्रतिवेशः ५०९; ५४७

प्रतिष्ठा ३८२; ३८५; ६४७

प्रतिष्ठाकामः २००

प्रतिहतां ३६

प्रतीहत्या ३८३

प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेत ४००; ४७६

प्रत्नवती ऋक् ७५

प्रत्यभिचरन् ४००

प्रत्यवरोहणम् ७६०

प्रत्याश्राधितम् ३०४

प्रथमकुसिन्धः ६१६; ६४७;—ऋषभः बभ्रुः
६६४

प्रथमजः गौः ४९०

प्रथमजः वत्सः ४८६; ५४१

प्रथमजा गौः ४८९

प्रदरम् १२४; १२७; १३२; १४४

प्रदान्यः ६०१

प्रदेशिनी २२०

प्रधानं स्विष्टकृच्च २०८; २८५

प्रधानस्विष्टकृद्धौत्रम् २१०

प्रमीतं शृणुयुः ४००

प्रयाजा आज्यभागौ च २०३; २८४

प्रयाजाज्यभागहौत्रम् २०६; २८५

प्रवरः १९५; २८२; ५४४; ५५०; ५९४

प्रवर्यः ३२१

प्रवर्तः ४६९

प्रवसति यजमाने न पत्नी प्रवसति १२०

प्रवसति यजमाने पत्न्याः प्रवासनिमित्तं स्यात्

१२०

प्रवसथाहुतिः १०९

प्रवासोपस्थानम् ५८; ६२; ६४; ६७; ७०;
७२; ७४; ७६; ७८

प्रसूमयः प्रस्तरः ५३८

प्रस्तरः १८८; २६२

प्रस्तोता ३६

प्रस्वः ४८९

प्रहुतः ७६०

प्रहतः ५७४

प्राक् पर्थमिकरणात् त्रियेत ६०३

प्रागुद्भुतममेध्यमापद्येत ९३

प्राचीनावीतम् २००; ३०९

प्राचीनावीती ३७; ५०९; ५१८; ५५०; ७७१

प्राच्युद्भुते यजमानो त्रियेत ९३

प्राजापत्यस्तृचः ७२

प्राजापत्या ऋक् २००; ३०५

प्रातरस्नातोऽभिहोत्रं जुहुयात् १०२

प्रातराहुतिकालोऽस्तीयात् ११५

प्रातर्दुग्धं सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा २५५

प्रातर्दोहश्चेदार्तिमाच्छेत् ३००

प्रादेशः ६; ७; ३४; ८०; २६३; २६४; २६७;
२८३; ३४६; ३४७; ४०१; ५८९

प्रायणीयेष्टिः १२८

प्रायश्चित्तानि २९३

प्रावृद् ६५२

प्राशिन्नम् २१७

प्राशिन्नहरणम् २६७

प्राशृङ्गः ललामः ६३८; ६४७; ६६४; ६७०

प्रियः ३८४

प्रियङ्गवः २६८; ३६१; ३७४; ४४०; ४६८;
७६१

प्रियवती (याज्यानुवाक्ये) ३६१; ४४०; ४६८

प्रोष्ठः ८१५

प्रोष्ठपदाः ३८१; ३८२

प्रौहः ७६१

प्लक्षः १२४; १४३

प्लक्षशाखा ५८७; ५९८

फलम् २६८; ६०२

फलीकरणहोमः २३५; २९३

फल्गुनः ५३४

फल्गुनी ३७६

फल्गुनी (उत्तरा) ३-५; ७; ३४

फल्गुनी (पूर्वा) ३; ४; ५; ७; ३४

फल्गुनीपूर्णमासः ४; ५

फाल्गुनः ३२१-३२२; ४२०; ५३८

फाल्गुनानि ७५९

बदरम् ७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५७

बद्धो वा परियत्तो वा ४००; ४७६

बधकः १४२

बभ्रुः ६०७; ६२७; ६३४; ६४२; ६४५; ६५३;

६५६; ६६३;—ऋषभः पिङ्गलः ६६४;—

ऋषभः प्रथमकुसिन्धः ६६४;—वशा ६१५

बभ्रुकर्णी ६१४

बभ्रुः ६१६

बरासी १३०

बर्हिः १५४; १८८; ४९५;—पथोऽन्तिकात्

२९६;—शरमयम् ३३५; ४१०; ६१३;—

सकृदाच्छिन्नम् ३०९

बर्हिरास्तरणं सुगासादनं च १८६; २७९

बलिहरणम् ७६०

बल्लकशः ७५८

बल्लजः २६२; ४३४; ४३६; ४३९; ४८२

बस्तः ३३८; ४४५; ४८३

बहिष्पवमानम् १२८; १३२

बहुपत्रिका ८०४

बहुरूपः (—पा) ६०८; ६०९; ६२२; ६२३;

६२५; ६३७

बहोभूयान् स्याम् १२८

बार्हती ऋक् २००

बालैर्हुतम् ११८

बाहुः ३४

बिडालः ३०४

बिभीयात् ३५९; ४०१

बिल्वः १२२; ६५१

बुधवती अश्विनी याज्यामुवाच्ये ३४२; ४६४

बुधवत् ३७१; ४०१; ६१६; ६४७; ७३२

बृहत् १३; १८; ४७

बृहती ७४३; ७६१

बृहतीफलम् ८०९

बृहस्पतिः ३२९; ३३३; ३३५; ३४२; ३४४;

३४७; ३६२; ३७५; ३९०; ३९७; ४०२;

४१०; ४१५; ४१७; ४२७; ४४०; ४६३;

४६४; ४७८; ६१६; ६२५; ६४८; ६४९;

६५१-६५३; ६७८; ७१७; ७५७;—पाङ्क्तः

त्रिणवः शाकरः हैमन्तिकः ४४६;—वाच-

स्पतिः ४४४

बृहस्पतिवती ऋक् २८

बौधायनः ३४; ३८; ३९; ४३; ४७; ४८;

४९-५१; ५३; ५४; २५९-२६४; २६६-

२६८; २७०-२८७; २८९-२९८; ३००;

३०१; ३०९-३१२; ३१८; ३२४; ३२५;

४६०; ४६२; ४६३; ४६५-४६९; ४७१;

४७२; ४७४; ४७५; ४७७-४८३; ५३८-

५४५; ५४७-५५०; ५५२-५५५; ५८७-

६०२; ६०४; ६९६; ६९७; ७५६-७५८

बौधायनपितृमेधे द्वितीयप्रश्नशेषः ८१६

ब्रह्म ६४२

ब्रह्मणस्पतिः ३६१; ४०७; ४३६; ४६८; ४७६;

६०६; ६१३-६१६; ६५७

ब्रह्मन् विशं विनाशयेयम् ४०४; ४७६

ब्रह्मबलम् ४०४

ब्रह्मभागः २१७

ब्रह्ममेघः ७९८; ८१६

ब्रह्मलीकः ३८०

ब्रह्मवर्चसकामः ३६३

ब्रह्मवर्चसम् २००; ४०४; ४७७; ६४२; ६९६

ब्रह्मवर्चस्वी ३७५; ३८१

ब्रह्मसदनम् २६७

ब्रह्मा ३५; ४७; २६७; ३८०

ब्रह्मौदनः ३; ५; ७; ९; ३८; ५२; १२४;

१४४

ब्राह्मणः ३-५; ७; १३; १५; १८; २६; ३४;

३९; ४४; ६६; ७१; ८३; ८५; ८६; ९६;

९८; १०४; १११; ११२; १२७; १३२;

१३७; १४०; १७१; २६०; २७१; ३२९;

३४२; ३४३; ३४८; ३५१; ४०७; ४०९;
४६४; ६५७; ७१७; ७२६; ७३२; ७५६;
७९२; ८०५; ८१३; ८१८; ८१९

ब्राह्मणस्पत्या ऋक् ६७; ७२

ब्राह्मणस्य दक्षिणः हस्तः ७६१

ब्राह्मणाच्छंसी ३६

ब्राह्मणो विद्यामनूय न विरोचेत ६५३

ब्राह्मौदनिके पाकादूर्ध्वमुद्राते ५४

भक्षरहितः ११९

भक्षान्तरितः ११९

भक्ष्यम् ६०२

भगः ३७६; ६५३

भगी अज्ञादः स्याम् ४०८

भयम् ४०१

भयमागच्छेत् ४०८

भर्तृसूक्तम् ८१६

भस्म ८८-९०; ९२-९६; ११२; ११३; १७३;
२७४; ३०२; ३६३; ६०४; ७७१

भस्मपिण्डः ८१०

भागिनीं देवतामनावाहयित्वा अन्यामावाहयेत्
३०२

भागिनीं देवतामनुच्चारयित्वा अन्यामुच्चारयेत्
२९९

भार्गवः ४४५

भार्या ४२२

भूतिः ४०८; ४७७; ६५४; ६९६

भृतिकामः ३४३; ३६३; ४४७; ७२६

भूमिः ४५१; ४५२; ४८५; ६११

भूमिकपालम् ३८२; ४७२

भूर्जः ५००

भृग्वक्त्रिरसः १३; ४६

भृजनः १८

भेषजानि ३८१

भैक्ष्यम् १४०

भ्रष्टः १६

भ्रातृव्यः ३२३

भ्रातृव्यतायै ३७२

भ्रातृव्यं जनयेयम् ४१०; ४७८

भ्रातृव्यवान् १२३; १३१; ३२०; ३२६; ६५८

भ्रातृव्यवान् स्पर्धमानः ४११; ४७८

भ्रातृव्ये यजमाने ४१५; ४७८

भ्रूणघ्नः ३०२

भक्षिका ३०२

भघाः ३७६

मतस्त् (—स्त्री) ४३; ५९८; ८०६

मत्कुणः ३०२

मदन्ती २६७

मधु ३५१; ३८७; ३९१; ३९३; ४७४; ८१९

मधुपानम् ४२

मध्यमः पलाशः ५२०

मध्यमं पर्णम् ५१०; ७६२

मध्ये चेदमिविनाशः ५४

मनस्वती ११५; ११७; २९७; ३०२-३०५;
८०९

मनस्वत्यः ऋचः ५१२

मनस्वी त्विषीमान् स्याम् ४१६

मनुः ४०६; ४०८

मनुसवः ४४६

मनोता ५९९

मन्थः ४९; ५०८; ५५४

मन्थनः ११४

मन्थनम् १०; १६; १९

मन्द्रम् २००

मन्थुकः १२४; १४३

मन्युः ४३७

मन्युखाः ३३१; ४०३; ४६३

मरुतः ३३५; ३५१; ३५७; ३५९; ३६१;

४०४; ४०९; ४२२; ४२९; ४३१; ४४०;

४६५-४६८; ४८६; ४९७; ५३९; ५४३;

६०८; ६८०;—एनोमुचः ४१८;—क्रीडिनः

५०८; ५४७;—गृहमेधिनः ५०८; ५४७;—

सान्त्तपनाः ५०८; ५४७;—स्वतवसः ४९०

मर्कटः ३०२; ७६१

मल्हा ६४९; ६६३; ६९६;—अविः ७५३;

—वेता ६५२;—वेता अजा ६५३

महापवित्रेष्टिः ४८०

महापितृयज्ञः २६३; ५४८
महायज्ञो नोपनमेत् ४१७; ४७९
महान्याहृतयः ३०४; ३०५
महावीहयः ३७९
महाहविः ५१७; ५५४
महिषः (-षी) ११३; ११९; २७४
महेन्द्रः २५५; २६५; २८६; ३२०; ३२४;
५२१

मांसम् ५०; १३७; ३२१; ३२५; ५४१
माघः ७९०
माध्यंदिनं पवमानम् १२८; १३२
मानवी ऋचौ ४०५; ४६०; ४७७
मारणम् ३६६
मारुतः ८२१
मार्जारः ३०२
माषाः १४८; ७५६; ७६१
मासरः ७५६
मित्रः ८४; ९३; १११; ३७८; ४१७; ४७२;
६०९; ६२७; ६७१;—सत्यस्य पतिः ४४५

मित्रधेयम् ३७८
मित्रविन्देष्टिः ४१७
मित्रावृहस्पती ४२७
मित्रावरुणौ ३६; ३२१; ३२५; ३२९; ३४३;
३४७; ४१५; ४७९; ६३७; ६४६; ६४७;
६६७; ६६८; ६८३; ७४३; ७५५;—आगो-
मुचौ ४१८;—आनुष्टुभौ एकविंशौ वैराजौ
शारदौ ४४६

मिथुनौ गावौ २३; २६
मिन्दाहुती ११५; २९७; ३०२; ३०३; ३०५
मुग्धैर्वा बालैर्हुतम् ११७
मुजकुलायम् ३४; ४६
मुजाः २६२
मुन्ययनम् ३२३
मुसलम् १६०; २६७; २७०; ३०९
मुष्टयः २६२
मूजवाक् ५०८
मूतः ५१०; ५५३
मूतकः ५२०
मूतकार्यम् २६४

मूर्धन्वती ऋक् २१२
मूलम् २६८; ३७९; ६०२
मृगः ११३; ११९; ३०४
मृगशीर्षम् ७; ३७४
मृगारेष्टिः ४१८; ४७९
मृत् ४३२
मृतनखम् ३०२
मृत्युः ६६०
मृत्युसवः ७६२
मृत्युसूक्तम् ८१६
मृत्योर्विभीयात् ४२०; ४८०
मृधोऽभि प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुः
४२०; ४८०

मृन्मयम् १५७
मेक्षणम् २६७; २८७; ३०९; ५४०
मेथी ८११
मेघाकामः ४७१
मेघा नोपनमेत् ४२१; ४८१
मेघौदनः ५२०
मेघः ४३; ४९७; ७१७; ७४१; ७५७
मेघी ४९७; ५४२; ६१६; ६६३; ६६५; ७३२;
—अधोरात्रा ६६३

मैत्रावरुणदण्डः ५८७
मैत्री ऋक् ६७
मैत्रेयः २६०; २८७
मौदिल्यः २६०; २८६; ३११

यक्ष्मः ६६१
यक्ष्य ह्युक्त्वा न यजते ४२१; ४८१
यक्ष्यमाणः ४७१
यजमानभागः २१५
यजमानश्च पत्नी चोभौ निष्कामतः १२१
यजमानो याजमानेषु मुह्येत २९९
यज्ञदोहः २९१
यज्ञभेष आगच्छेत् ३०३
यज्ञभेषे २५८
यज्ञविभ्रष्टः स्यात् ४२१; ४८१
यज्ञसमुद्धयः २९३
यज्ञस्य पुनरालम्भः २९६

यज्ञस्य विधुरम् २५८

यज्ञस्य संस्थामनु पापीयान्स्यात् १३२

यज्ञस्य संस्थामनु पापीयान् मन्येत १३१

यज्ञायज्ञियम् १६; १२८

यज्ञायुधानि २६७

यज्ञो नोपनमेत् ४२२; ४८१; ६६१

यज्ञोपवीतम् ३०९

यज्ञोपवीती ३७; २६०; ५१७; ५१९; ५५२

यदि अभिर्युहान् दहति ३२७

यद्येकपालः स्कन्देत् परि वा वर्तेत ५३७

यमः ३८३; ६१९; ६६२;—अङ्गिरस्वान् ३०६

यमलोक ऋधुयाम् ६६२

यमी वशा ६४३

यमौ पुत्रौ गावौ वा ४२२

यमौ श्वेतं कृष्णं चैकयूपे ६६२

यं पर्यम्युः ६६३

यवपिष्टानि २७४

यवसस्यम् ३१६

यवाः १५; ३२; ९६; २६८; ३१९; ४०१;

४०९; ४२६; ४४१; ४४५; ४७४; ५८७;

७५४; ७५६; ७६१; ७९२; ८१२; ८१५

यवागूः ७०; ९९; १३७; १४०; १५३; २५२;

२९८; ३१६; ३१९; ४५२; ५१६; ५३३

यवोदनः ८१६

यशः ३२१

याम्यं सूक्तम् ८०७

यावकम् १४०

युगलाङ्गलम् ८१२

यूः ५९८

यूका ३०२

यूपच्छेदनमुत्तरवेदिनिवपनं च ५८७

यूपनिर्माणम् ५५६

यूपशकलम् ५९२

यूपावटः ५८९

यूपाहुतिः ५८७; ५८८

योक्त्रम् १८१; २६७

योगः २८०

रक्षांसि सचेरन् ४२२; ४८१

रक्षोघ्नी ४२२

रक्षोभ्यो विभीयात् ४२४

रजतम् ३४; ४६; ८४; ३५९; ३६३; ४०७;

४७७; ५४२; ७४३

रजस्वला ११८; ३०२

रज्जुः ४४२; ४८३; ८११; ८२१

रथः २०; २६; २८; ३०; ३१; ५१; ९०;

११३; ११९; १२४; १२८; १४३

रथकारः १३; ३४; ४६

रथचक्रचितिः ३००

रथचक्रम् १३; १५; ३४; ४८

रथनाडी १४३; ७६१

रथन्तरम् १३; १८; ४६

रथमुखम् १२४; १४३; ७६१

रथवाही अश्वा ७५४

रथिमन्तौ पुष्टिमन्तौ आज्यभागौ ४७२

रत्नाना ५८७; ५९६

रसवान् स्याम् ४२४; ४८१

रहस्येष्टिः ४७९

राका १४९; २४२; २५९; २९२; ३४६; ३९२;

३९८; ३९९

राक्षोघ्नं (सूक्तम्) ३४६

राजगावी ८०३; ८०४

राजनीष्टिः ३६५; ४२४

राजन्यः ३-५; १३; १५; १८; २४; ३४; ३९;

४६; ६६; ६७; ७१; १३७; १४०; २००;

२६५; २७१; ३२०; ३२९; ३४२; ३४३;

३४८; ४०१-४०३; ४०९; ४६४; ६१६;

६२५; ६६७; ६५६; ६५७; ६६३; ७३२;

८०५; ८१३; ८१८; ८१९

राजन्यबन्धुः १७१

राजन्याय बुभूषते ६६३

राजन्यायाऽभिचरते वा बुभूषते वा ४२४; ६६३

राजन्योऽनपोन्वो जायेत वृत्रान् ज्वंश्चरेत् ४२५;

४८१

राजन्यो भूतिकामः ६६३

राजन्योऽभ्यर्धो विशाक्षरेत् ६६३

राजपुरुषः ८२१

राजयक्ष्मः ४२५

राजयज्ञाः ७६२
 राजवृक्षः २६३
 राजवृक्षपर्णी ८०४
 राजसूयः ३१५; ४८६; ५३८; ७२६; ७३२;
 ७५३; ७६२
 राजा १३; ४६; १३२; ४२९
 राजानः सदृशा इव स्युः ४२६
 राज्ञा यवान् ब्रीहीन् वा आदधीय ४२६
 राज्ञा वा ग्रामण्या वा इदं सस्यमाददीय ४२६
 राज्यं स्वाराज्यमाधिराज्यं च ४२६
 राज्यं नोपनमेत् ६६३
 राज्यम् ३८३
 रात्री ६९४
 राथन्तरी ऋक् २००
 राथीतरः २६१; २६७; २८६; ५९४
 राथीतराः ३४
 राष्ट्रं शिथिरमिव स्यात् ४२७
 राष्ट्रकामः १२४; १४३
 राष्ट्रभृतः ३८; ४४
 राष्ट्रभृद्धोमाः १२३; १४३
 राष्ट्रम् १२३
 राष्ट्रविभ्रमः ११७
 राष्ट्राणि ४२०; ४८०
 राष्ट्रादपभृतः स्यात् १४३
 राष्ट्रीयो नेव प्रस्तिङ्गुयात् ४२७
 राष्ट्रे स्पष्टं ३३०; ४२७
 रासभः ११८
 रुक्मः ४७१
 रुक्मः ३५९; ४०७; ४७७; ७४३
 रुक् ४२८; ४८२; ६६५
 रुद्रः ३७४; ४२८; ५०९; ६८९;—पञ्चपतिः
 ४४५;—प्रजाः शमायेत ४२८
 रुद्राय अस्य पञ्चनपिद्व्याम् ४२९
 रेतोविसर्गः १२०
 रेवती ३३९; ३८२; ३९३; ४०२; ४४८;
 ४६४
 रेवोत्तरा स्थपतिः ७४२
 रोहिणी ३-५; ७; ३४; १४०; ३७४; ६१४;
 ६५२; ६५३
 श्री. ५४

रोहिणी गौः ८१९
 रोहितः ऋषभः ६१६; ६४७
 रोहितं चर्म आनडुहम् ७५६; ८११; ८१५
 रोहितैताः ७६३
 रौद्री ६१४
 ललामः ६२९; ६५०;—ऋषभः ६४८;—
 प्राशृङ्गः ६३८; ६४७; ६६४; ६७०
 लवणम् ५०; ५४२; ८०७; ८०८; ८२१; ८२३
 लाजाः ७४२; ७५६
 लोकपृष्ठाः ८११
 लोकामयः ५८९
 लोम ३०६
 लोमशः ६३४
 लोमशकः २६१
 लोमानि ७१७; ७४१; ७५६; ८०३
 लोष्टचित्तिः ७८४; ८११
 लोष्टाः ८११
 लोहः ४८९; ५०२; ५२०
 लोहितम् ४३; ८६
 लोहितवाससः ४६३
 लोहितायसम् ४८७; ५३८; ५४२; ५४६; ५५३;
 ५५४
 लोहितोष्णीषाः ४६३
 लौक्ये हुतम् ११८
 वक्षः ५९७
 वडवः (—वा) ६३४; ६९६; ७१७; ७२६;
 ७५७
 वडवः (—वा) ३५९; ६४७; ७३२
 वडवा अनुशिञ्जुः ७४१
 वत्सः ६७; ७२; ८१; ९९; १०७; १४७; २५२;
 २६७; ६११; ६१२; ६२६; ६३२; ६६३;
 —प्रथमजः ३१५; ३१८; ४८६; ५४१
 वत्सञ्जुः २६४
 वत्सतरः (—री) ३९
 वत्साः सांनाय्यदुहो धयेयुः २९८
 वत्सापाकरणम् १५१; २६१

वनस्पतिः ४९५; ६००
 वनिष्ठः ५९८
 वपा ४३; ५९६
 वपामाह्वयमाणां इयेनोऽपहरेन्नइयेद्वा ६०४
 वपायागः ५७४; ५९५
 वपायागहौत्रम् ५७५
 वपाश्रपणी ४१; ५८७
 वपा हविरवदानं वा स्कन्देत् ६०४
 वयांसि ३९३
 वरः ८३; १२७; १३२; २५६; ३०२; ३४४;
 ३९३; ४०१; ४७२; ४८७; ६०२
 वरणः ७९२; ८११; ८१५
 वरासी १३२
 वराहः ११३; ११९
 वराहविहृतम् ९; १०; ३४; ४०
 वरुणः ८३; ९६; १११; ३१६; ३३१; ३३७;
 ३४०; ३४३; ३४४; ३४७; ३६७; ३६९;
 ४०१; ४०३; ४०९; ४१७; ४६२; ४६४;
 ४६९; ४७६; ४९७; ५४३; ६०९; ६१३—
 ६१६; ६१९; ६२७; ६२८; ६४७; ६५६;
 ६५८; ६८२; ७१७; ७४१; ७५४;—
 आदित्यवान् ४४१; ४८३;—एकशितिपाद्
 ६६५;—धर्मस्य पतिः ४४५;—शतभिषक्
 ३८१
 वरुणगृहीतः ६६५
 वरुणप्रवासपर्व ४९७; ५४२;—हौत्रम् ५०४
 वरुणप्रवासहवींषि ५५४
 वर्त्म ७६१
 वर्षाः ७; ३२; ३३; ३४; ३१६; ३१८
 वलक्षः पेतवः ६५३
 वल्लीकः ५२०
 वल्लीकवपा ९; १०; ३४; ४०; ८९; ७१७;
 ७५६; ७६१
 वशा ३२९; ३३२; ३६६; ३८५; ४१५; ६०४;
 ६५८—६६०;—अजा ६६५;—अविः ६२३;
 ६३३; ६३५; ६४४; ६४६;—कृष्णा ६१३;
 —बभ्रुः ६१५;—यमी ६४३;—श्वेता
 ६५१
 वषट्काराः ३०४

वसन्तः ३; ५; ७; ३४; ३१६; ३१९; ४०६;
 ४०७; ६४८—६५०; ६५२; ६५३
 वसवः ३८१
 वसा ७४३
 वसाहोमः ५९९
 वसिष्ठयज्ञः ३२१; ३२२; ३२६
 वसीयान् १२८
 वसीयान् स्याम् ४२९
 वसुमान् स्याम् ४२९; ४८२
 वही २४९
 वाक् ६६५; ६९१
 वाचस्पतिः ४३३
 वाजपेयः ७६०
 वाजवत्यौ ऋचौ ५४६
 वाजिनः ३२१; ४९५; ४९८
 वाजिनम् ३२१; ३२५; ४८६; ४९८; ५४०;
 ५४४; ८११
 वातहोमाः ३५३
 वातनामानि ३५५; ३६६
 वात्सप्रम् ८१
 वाधकः २६३
 वामदेवः ३४६
 वामदेव्यम् १३; १६; १८; ४७
 वामनः ४२२; ६३३; ६३६; ६३८; ६५९—
 ६६१; ६७२; ६७५
 वायसः ११८
 वायुः २५२; २९८; ३७७; ४५२; ५३३; ५५४;
 ६०६; ६११; ६१२; ६१५—६१७; ६२३;
 ६२६; ६३४; ६४७—६४८; ६५४; ६५८;
 ६६३; ६८५;—नियुत्वान् ४७३; ५३४;
 ६१९; ६२४; ६२५; ६२७; ६३५; ६४३;
 ६७१; ६८४;—निष्ठया ४७२
 वायूसवितारौ आगोमुचौ ४१८
 वारवन्तीयम् १३; १६; ४७
 वारुणी ऋक् २४; ८७; ३०५
 वार्क्ष्मेहः २७४
 वार्त्रज्ञौ आज्यभागौ २०७; ४६०
 वालः ७४१; ७५६
 वालः २३; २५; २८; ३०; ३१; ४१; ५१;

१३०; १३२; ३१८; ३२१; ३२५; ३४४;
 ५४१; ५४६; ६०२; ६०४; ७४३; ८११;
 —अहतम् ३२५; ८१८;—उपाध्यायपूर्वयम्
 ३६०; ४६८;—कृष्णम् ३२८; ३५१; ४६५
 वासांसि ४४; ४९; ३१०; ५५४
 वास्तु: ६८
 वास्तोष्पतीयः ५१; १०९; ११०; १२०
 वास्तवमयः ४२८
 वास्तवानि ७६१
 विककृतः ३; ९; ३४; ४८; १९२
 विक्रामः ३
 विच्छिन्नाग्निहोत्रः ११६
 विजितीष्टिः ४१४; ४२९
 विड् ३५७; ६२३
 विड् राजानं जिज्यासेत् ४२९
 वितते यज्ञकर्मणि जन्यं भयमागच्छेत् ३०५;
 —यज्ञश्रेष्ठ आगच्छेत् ३०४;—सूर्यो नाऽऽ-
 विर्भवति ३०५
 विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वा ४३१; ४८२
 विन्दद्वती (याज्यानुवाक्ये) ३९९
 विपुंसकः ६३३; ६३८; ६४७; ६४८
 विभीतकः २६३; ३३६; ४१०; ७९१
 विभीदकः १४२; ३३५; ६१३
 विराजक्रमाः ४८; १०९
 विराट् ७५५
 विश ३५६
 विशयः ५४०; ५४४
 विशाखः ६०९
 विशाखा ५५३
 विशाखे ३७८
 विशाल्यौ ७५६
 विशालः ऋषभः ६२०
 विशे च क्षत्राय च समदं कुर्याम् ४३१
 विश्वकर्मा ५०८; ५४८; ६८६
 विश्वरूपः ६२३
 विश्वे देवाः ३१५; ३१८; ३२९; ३४९; ३६०;
 ३६१; ३८०; ४१२; ४२५; ४४०; ४६८;
 ४८६; ५३३; ५१९; ५५४; ६०८; ६०९;
 ६२२; ६२३; ६२५; ६७९;—एनोमुचः

४१८;—जागताः सप्तदशाः वैरूपाः वार्षिकाः
 ४४६
 विषम् ८२१
 विषहेयाऽभयं मे स्यात् ४३२
 विष्णुः ३५९; ३८०; ३८५; ४२२; ४३६;
 ४७२; ६३३; ६३६; ६३८; ६५९-६६१;
 ६७२; ६७५; ६८६;—शिपिविष्टः २४;
 २५३; ३००; ३९०; ४७३
 विष्णुक्रमः २४४; २९५
 विष्णुवरूपा ६५८-६६०
 विसंक्षिप्ता ७६२; ८०४
 विहव्यम् ६७; १५१
 विहव्या ऋचः २६०
 विहृतः ५७४
 वीरवती वयस्वती (याज्यानुवाक्ये) ४३६
 वीरो म आज्ञयेत् १२८
 वीर्यकामः ४४५; ४८३
 वीर्यम् ४३२
 वृकः ७१७; ७२६; ७३२; ७५३; ७५७
 वृकलोमानि ७४१
 वृक्षौ ५९९
 वृक्षः ५२०
 वृत्रशङ्कुः ७९२
 वृधन्वन्तौ २०७; ४६०
 वृषभः ६१५; ६५८
 वृषलः ४६
 वृषारवः २७१
 वृष्टिः ४३२; ६६७
 वृष्टिकामः ५३३
 वृष्टिः ३३८; ४४५; ४८३; ६१५; ६५८;
 ७३२;—कृष्णः ६१६
 वेणुः १७१; ५२०
 वेणुयवाः २६८; ३१६; ७६१
 वेणुयष्टिः ५२०
 वेतसः ४६५; ७४३; ८१२
 वेतसशाखा ८०९; ८१०
 वेदः १७३; २३५; २६४; २६७
 वेदपरिवासनम् २६७
 वेदपरिवासनानि २७६

वेदिकरणम् १७५; २७४

वेहत् ६४५; ६४६; ६६९; ६९६

वैद्युतः १०१

वैमृधेष्टिः ३१२

वैराजम् १०९

वैशाखः ७

वैश्यः ३-५; ७; १३; १५; १८; ३४; ३९;
४६; १३७; १४०; १७१; २००; २७१;
३२९; ३४३; ३४८; ७९२; ८०५; ८१८;
८१९

वैश्वदेवः ५५४

वैश्वदेवपर्व ४८६; ५३८;—हौत्रम् ४९१

वैश्वानरः १५; २९७; ३१९; ५५४

वैश्वानरीष्टिः ११९; ६०४

वैश्वानर्यं सूक्तम् १४०

वैष्णवी ऋक् ९०; १७१

वैष्णवावृणी ऋक् ८९

व्याघ्रः ३३९; ७२६; ७४१; ७५७; ८२१

व्याहृतयः ३०३

व्येमानं यक्ष्मो गृह्णीयात् ६६९

व्रततिः २६१

व्रतम् १४७; १५२; ५४१

व्रतलोपे ११८

व्रतोपायनम् २५९

व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्भुका भवति २५१; २९७

व्रीहयः १५; ३२; २५३; २६८; ३०९; ३१८;
४२६; ७४१; ७५६; ७६१;—उद्विष्य-

विचिताः ३७२;—कृष्णाः ३३१; ३३५;

३८४; ४०३; ४१०; ४६२; ४७२; ८०३;

—गुह्याः ३३१; ३८४; ४०३; ४०६; ४०७;

४१०; ४६२; ४७२

व्रीहिपिष्टानि २७४

व्रीहिसस्यम् ३१६

वायुः २३१

वायुवाकः २९१

वाकटः २६९

वाकुनिः ६०३

वाकरी ३३९; ३९३; ४०२; ४४८; ४६४

वाङ्मुकः ८१९

वातकृष्णलः चरुः ३४९

वातकृष्णला इष्टिः ४२०; ४८०; ८०९

वातमानम् २४; २६; ३०; ३१; ३६५; ३६७;
४०७; ७१७; ७४१; ७५६

वातवितृष्णः ७५४

वातातृष्णा (कुम्भी) ७१७; ७४१; ७५६;
८११

वाफाः ७४३

वाबलः ६६८

वामिता ५९७

वामी ९; १०; १५; १६; ३४; ४८; ७९२;
८१२

वामीगर्मः (अश्वत्थः) ६; ९

वामीपर्णानि ४२७; ५४२

वामीशाखा १५२; ८१५

वाम्या ९९; ११४; १६०; १६९; २६७; २७१;
५८९

वाम्यापरिधयः १४३

वाम्याप्रासः १०९

वाराः १४३; २६२; ३३५; ४१०; ६१३

वारव् ३-५; ३४; ३१८; ६४८-६५०; ६५३;
७९०

वारावः १०९; ११९; १२०; ५५२; ८०२

वार्कराः ७; ९; १०; ३४; ४०

वालली ४८७; ५०२; ५२०; ५३८; ५४२;
५४६; ५५३

वालमलिः २६३

वावाभिः १०२

वाष्पाणि ७१७; ७४१; ७५६

वाखम् ८२१

वाखा (औदुम्बरी) ८१९

वाखापवित्रम् २६४

वाङ्मायनः २०

वातिका ३०२

वामिन्नः ७६१

वामिन्नदेशः ५८४

वावूलः ७१७; ७३२; ७५३

शालीकिः ३४; ३८-३९; ४३; ४७-५१;
५३-५४; २५९-२८७; २८९-२९८; ३००;
३०९-३१२; ३१८; ३२४-३२५; ४६०;
४६२; ४६३; ४६५-४६९; ४७१; ४७४-
४७५; ४७७-४८३; ५३८-५४५; ५४७-
५५०; ५५२-५५५; ५८७-६०२; ६०४;
६९६; ६९७; ७५६-७५८

शासः ५९४; ८०३

शिक्ष्यम् ७५६

शितिककुद् ६२९; ६४८

शितिपृष्ठः ३२९; ४२७; ६२५; ६५०; ६५३

शितिपृष्ठा ६५१

शितिभसद् ६४८

शितिवारः ६५०

शिरोयूका ३०२

शिशिरः ५; ६५२

शुकहरिः ६६२

शुकहरितः ६१९

शुचिः ११९

शुण्ठः ६१९; ६६२; ६७४

शुनस्कण्यज्ञः ७६२

शुनासीरीयपर्व ५३३; ५५४;—हौत्रम् ५३५

शुम्बलानि ७७२

शुल्बम् १८९; २६२; ८०३; ८०९; ८१२

शुश्री (?) ८०४

शुश्रुवान् २६५; ३२०

शुष्कदतिः ४५१

शुष्कशुण्ठिः २६२

शृङ्गः ११८; १५७; १७१; २६०; ७९२; ८२३

शृपम् १६०; २६७; २६८; ३०९; ४९८;

५४२; ७६२

शृलगवः ७६०

शृत्तम् २०९; २५३; २७४; २८१; २८६; ३००

शौनकयज्ञः ३२२

इमशानम् ७९०

इयामः ३९२; ६०७; ६३२

इयामाकपिष्टानि १७४

इयामाकसस्यम् ३१६

इयामाकाः २६२; २६८; ३१८; ३५६; ३७४;

४०५-४०७; ४४१; ४४४; ४६६; ४७७;

७४१; ७६१

इयेतः ७५३

इयेनः ६०४

इयेनचित् ७६०

इयेनपत्रम् ७५६

इयैतम् १३; ४७

अद्वा ६६९

अविष्टाः ३८१

श्रीः ३२१; ४३३; ७५५

श्रीमत्यौ धाव्ये ४७२

श्रीवती (याज्या) ४४०

श्रेष्ठी समानानाम् ३७६

श्रेष्ठयकामः ३२०

श्रेष्ठयम् ३७८

श्रोणा ३८०; ४७२

श्रोणिः ५९८

श्रोत्रस्वी ३८२

श्लक्ष्णकः २६१

श्लेष्मातकः २६३

श्वा ८९; ११२; ११३; ११८; ११९; ३०२;

३०४

श्वापदानि ७६१

श्वा वा अनो वा रथो वाऽन्तराऽग्नी धावति

२५५

श्वेतः (अजः) ६०९; ६१९; ६२३; ६२५;

६२७; ६३५; ६४७; ६५४; ६७०;—

पिप्लुकर्णः ६७१

श्वेतः (अश्वः) ५३४

श्वेतः (गौः) ५३४

श्वेतवत्सा गौः ४७७

श्वेता ६६३; ६६५

श्वेता (अजा) ६४९; ६५२

श्वेता गौः ४७७

श्वेता दक्षिणा ५३४

श्वेतानूकाशः ६२९

श्वेता मल्हा ६५२

श्वेता मल्हा अजा ६५३

श्वेता वशा ६५१

षड्ढोता १२७; १४०; ५५६; ५८८; ८२०
 षण्मासान्...अनिष्ट्वा चातुर्मास्यैः ५५५;—
 पशुबन्धेन ६०५;—आग्रयणैः ३१९
 षण्मासान्द्रुतेऽभिहोत्रे ११६;—दर्शपूर्णमासाम्या-
 मनिष्ट्वा...२९७
 षोडशी ७६०

संवत्सरः ४८७; ५४२
 संवत्सरम्...अनिष्ट्वाऽऽग्रयणैः ३१९;—चातु-
 र्मास्यैः ५५५;—पशुबन्धेन ६०५
 संवत्सरमद्रुतेऽभिहोत्रे ११६;—दर्शपूर्णमासाम्या-
 मनिष्ट्वा...२९७
 संवर्गोष्टिः ४११; ४२७; ४३३
 संश्रावः ३६
 संहिता ६४९
 सकवः १३७; १४०; ५८७; ६०१; ७१७;
 ७३२; ७५६

सक्तुः २६८
 सक्तुपानम् ४२
 संख्याम्यावर्ति ७६१
 सगोत्रः ३१०
 संग्रहीता ४५१
 संग्रामः १२४; ३८६; ४३४; ४८२; ६७०
 संग्रामी १३०
 संग्रामे संयत्ते १३२; १४३
 संग्रामो न विजयेतेति ६७१
 सजातकामः ४३९; ६७१
 सजाताः ४५०; ४८४
 सजाता वीयायुः ४४०
 संज्ञसाहुतिः ५९५
 संज्ञानीष्टिः ४४१; ४८३
 संचरम् ४७२; ५०३; ५२१; ५३४; ५४२;
 ५४३; ५४८; ५५४
 सतः (—तम्) ५५२; ७४१; ७५६; ८०९
 सतीनाः ४४१; ४४४; ४५१
 सत्यदूताः ४५१
 सत्रम् ७६०
 सवस्यः ३५

सद्वन्तौ आज्यभागौ २६; ४९०; ५०३; ५२१;
 ५३४
 सनिः ६७१
 सनिमेव्यन् ४४२; ४८३
 संदंशः ६०४
 संधिनीक्षीरम् ५४७
 संततम् २००
 संतनी १०९; ११७-१२०; २९७; ३००
 सपत्नवान् ६५९; ६७२
 सप्तहोता १२८; १४०; ८२०
 सभा १४४
 सम्यः ४७
 समदः ३५६; ४६६
 सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्य ४४३; ४८३
 समस्तहोमाः १४२
 समानैर्मियो विप्रियः स्यात् ४४४; ४८३
 समान्तमभिद्रुह्य ३४३
 समान्तमभिद्रुह्येत् ४४४
 समान्तमभिद्रुह्येदभिद्रुक्षेत् वा ६७२
 समिधः ४९४
 समिष्टयजुः २३९; २९०; २९४
 समृतयज्ञे १३१
 समृतलोमे १३२; ४४४
 समृद्धिकामः ७४१
 संपाकः २६८
 संपाराः ६; ९; १०; १२८; ८१६
 संपातरी धेनू ६१२
 सरस्वती २३; २५; २७; ५१; ३२०; ३२६;
 ३३३-३३५; ३४४; ३४७; ३६७; ३८८;
 ४१५; ४१७; ४३५; ४६३; ४६९; ४७४;
 ४७८; ४८६; ४९८; ५०८; ५३९; ६०६;
 ६१६; ६२३; ६३८; ६६०; ६६३; ६६५;
 ६७६; ७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५३;
 ७५५; ७५७;—प्रिया ४७२;—सत्यवाक्
 ४५१
 सरस्वान् २३; २५; २७; ५१; ३२०; ३८८;
 ४७४; ५३३; ६९२
 सरीसृपः (—पम्) ३०४; ७६१
 सर्पराज्ञी क्रक् २०; २८; ५२; १२८; १३२

सर्पः ३७५; ४७२
 सर्पिः ८०३; ८१५
 सर्व एवाऽग्नय उपशाम्येरन् १०२
 सर्वकामः ३२३; ४४४
 सर्वत्र विभवेयम् ६७२
 सर्वत्राऽपिभागः स्यात् ६७३
 सर्वपृष्ठेष्टिः ४४५; ४८३
 सर्वमेधः ७६२
 सर्वमौपासनमभिप्रव्रजेयुः ५४
 सर्वयज्ञानां प्रायश्चित्तानि ३०४
 सर्ववेदसी प्रथमाभिष्टिमालभेत ४४९
 सर्वाणि हवींषि दुष्येयुर्नश्येयुरपहरेयुर्वा २५६;
 ३०२
 सर्वास्वेवाऽग्निहोत्रस्याऽऽर्तिषु ११७
 सर्वेष्वग्न्युपघातेषु १२०
 सर्वेष्वव्रत्येषु ३०३
 सर्वौषधम् ३४; ३८; ४८; ८१८
 सर्वौषध्यः ८१२
 सर्वपः २७४
 सलोकता ३८३
 सवत्यौ ४५१
 सवनेष्टिः ५५५
 सवात्या ३८४; ४७२; ५४७
 सविता ३७७; ४१७; ४५१; ४५२; ४८५;
 ४८६; ४९८; ५०८; ५३३; ५३९; ६४२;
 ६७१; ६८१; ७१७; ७४१; ७५४;—
 आतिच्छन्दसः त्रयस्त्रिंशः रैवतः शैशिरः
 ४४६;—प्रसविता ४४४; ४५१;—सत्य-
 प्रसवः ४७३
 सविता समानानाम् ३७७
 सस्यम् ४२६
 सहस्रवत्यौ ४१८
 सहस्रेण यक्ष्यमाणः ३६९; ४४९; ४८४
 सहस्रेणेजानः ३६९; ४४९; ४८४
 साकमेधपर्व ५०७; ५४६;—हौत्रम् ५२४
 साकंप्रस्थायीयेष्टिः ३२०; ३२४
 सांप्रहणीष्टिः ३६१; ४६८
 सांतपनं (हविः) ५५४
 सांनाय्यतपनी २६४

सांनाय्यदुहः २९८
 सांनाय्यम् २०९; २५३; २५५; २८१; ३०३;
 ३२१; ३२४; ३२५
 सांनाय्ये प्रवृत्तायां पयो न स्यात् २९९
 साम ५४६; ७४३; ७५९
 सामिधेन्यः २००
 सामिधेन्यादिप्रवरान्तं हौत्रम् १९८; २८३
 सायं दुग्धं हविरार्तिमार्त्तं २५३; २९८
 सायंदोहः १५६; २६४
 सायमाहुतिकालोऽस्तीयात् ११५
 सायुज्यम् ३८३
 सार्वसेनियज्ञः ३२२; ३२६
 सिंहः ७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५३; ७५७
 सिकताः ९; ३४; ४०; ८०३; ८०९; ८१२
 सिक्पदः ३०२
 सिंग्वातः ८२०
 सिनीवाली १४९; २४२; २५९; २९२; ३४६;
 ३८८; ३९२; ३९८; ३९९; ४७४
 सीक्षमाणः ४४९; ४८४
 सीता ८१२
 सीरम् ७९१;—द्वादशगवम् ५३३;—द्वादशा-
 योगम् ५३३
 सीसम् ३२८; ७१७; ७२६; ७३२; ७४१; ७५६
 सुगन्धिभोजनम् २६२; ५८७; ५९०
 सुब्रह्मण्यः ३६
 सुभगः ३८४
 सुमना नामेष्टिः ३२०; ३२४
 सुरभिमतौष्टिः ३०२; ४४९
 सुरा ७१७; ७२६; ७३२; ४४१
 सुवर्गकामः (हृदयतां 'स्वर्गकामः')
 सुवर्णम् १५; ३४; ८४; ४७७; ५४२; ७४३;
 ८०५;—हिरण्यम् ७४१
 सूक्तवाकः २२८; २९१
 सूतकानं प्राश्नीयात् ४४९
 सूतवशा ६२८; ६४७; ६५४; ६५६
 सूत्रम् ४१; ५५२; ७४१;—नीललोहितम्
 ८०९
 सूदः ९; ३४; ४०
 सूना ४८; १०४

सूपकाशो मे पुत्रो जायेत ६७४

सूर्यः ८३; ९३; १११; ३४०; ३५१; ३५९;
३६४; ३८५; ४०५; ४०७; ४६४; ४६६;
४६८; ४७२; ४७७; ५३३; ५५४; ५७४;
६५१-६५३; ६६५; ६८४; ८१६

सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं विद्यते ३०५

सूर्याचन्द्रमसौ ६७४

सूर्यावरुणौ ३४०

सेनायामुत्तिष्ठन्त्याम् ४५०

सेनायामुत्थितायाम् ४५०

सेनाऽसंशितेव स्यात् ४५०

सोमः ३५; १४०; २०३; २३२; २९२; ३०६;
३१६; ३१८; ३४४; ३४७; ३६७; ३७४;
३८८; ४१७; ४२१; ४६९; ४७४; ४८१;
४८६; ४९८; ५०८; ५३३; ५३९; ६०१;
६०७; ६२७; ६३१; ६३४; ६४१; ६४२;
६४४; ६५३; ६५६; ६६३; ६६४; ६७७;
—पितृपीतः ३०६;—पितृमान् ३०६; ५०८;
—रुद्रवान् ४४१; ४८३;—वनस्पतिः ४४४;
वाजी ३५६; ४६६

सोमपः सोमयाजी स्यात् १२८

सोमवामी ११९; ७४१

सोमसंस्थाः ७६०

सोमसवः ७६२

सोमातिपवितः ११९; ७५८

सोमातिपूतः ७५३

सो(सौ)मापूषणौ ३७२; ३८८; ३९०; ३९२;
३९३; ४०८; ४७१; ४७४; ६३२-६३४;
६३८; ६४६; ६८७; ६९६

सो(सौ)मारुद्रौ ३३४-३३६; ३४३; ३४७;
३६७; ३७२; ३९३; ३९८; ४०५-४०७;
४१०; ४६३; ४६९; ४७६-४७८

सोमेन्द्रौ ३९६

सौत्रामणिः (—णी) ५३८; ६९८; ७६०

सौमी ८१६

स्कन्नम् २५२

स्कन्ना नामाऽऽहुतिः ३५६

स्कन्ने भिन्ने छिन्ने भग्ने नष्टे क्षामे विपर्यास उद्वाह

ऊनातिरिक्ते वा ३०४

स्तम्बयजुः १७६

स्तम्बाः ८११

स्तेनाभिश्चास्तः ४७९

स्तोकीयाः ५७५

स्त्री १३७; १५७; २६०; ३२१; ३२५; ५११;
५४१; ५४७; ७९२

स्थण्डिलः ५४९

स्थाणुः ५२०; ५५३

स्थाली ३०९

स्थालीपाकः ३०९

खेहः ३०२

स्पन्धा ८१९

स्पर्धमानः ४५०; ४८४; ६७५

स्फूर्जकः ७९१

स्फ्यः ४१; १६०; १७७; २६७; ३०९; ६१३

स्रक्तिः ५०९; ५५१

सुक् ७६२

सुकूसंमार्गः पत्नीसंनहनमाज्यग्रहणं च १८०;
२७६

सुगादापनम् २०३

सुवः १८१; २६७

स्वधा ५५०

स्वधा नमः ५०९

स्वधितिः ८०३

स्वप्ने रेतोविसर्गः स्यात् १२०

स्वयंचितिः ८१३

स्वयंपाप इव स्यात् ४८४

स्वयंपापः ४५१

स्वराक्षरपदवृत्तश्रेषु ३०३

स्वरारा ३३०

स्वरः ५९२; ५९४

स्वर्गः ४५०; ४८४

स्वर्गकामः १२८; १३१; १३२; २६४; ३२१;
३२३; ३२५

स्वस्ति ४५१

स्वस्ति जनतामियाम् ४५१; ४८४

स्वाराज्यम् ४५१

स्विष्टकृत् २८७

स्विष्टवत्यौ संयाज्ये ४७२; ४७६

स्वेदः ३०२

हंससाचिः ७६३

हतमना इव स्यात् ४८५

हतमनाः स्वथं पाप इव स्यात् ४५१

हरितः (—तम्) ८४; ३५९; ३६३; ४०७

हरिद्रुः ७९१

हविः १७३

हविःकण्डनादिकपालोपधानान्तम् १६६; २७०

हविःपेषी २७३

हविःसामान्यम् ७६३

हविरातञ्जनम् २५९; ५६८

हविरासादनम् १९३; २८०

हविर्देवतायाज्यापुरोनुवाक्याहुतीनां हुताहुत-

अथेष्वन्तरिते विपर्यासे च ३०२

हविर्दोषाः ३०२

हविर्निरुसं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति २९९

हविर्निर्वापः १६२; २६८

हविर्यज्ञसंस्थाः ७६०

हविषामशृतद्रवदाहोत्सेकनिज्ञावे ३०१

हविषे वत्सा अपाकृता धयन्ति २५२; २९८

हविष्कृत् १६७

हस्तः ७; ३७७;—दक्षिणः ब्राह्मणस्थ ७६१

हस्तकौशलम् ८२२

हस्ती ७६१

हायनाः ४४५

हिरण्यमं दाम ४२५; ४८१

हिरण्यकृष्णलानि ३५९

हिरण्यगर्भवती ऋक् ६२३; ६३५

हिरण्यशकलः (—लम्) ५७४; ७७२; ८०५;

८१८

हिरण्यशकलः (—लम्) ३४; ४०; ४६

हिरण्यम् ६; ९; १५; १८; २०; २४; २६;

३०—३३; ५१; ८३; ८४; ९८; १११;

११४; १३०; १३२; ३२९; ३३७; ३४४;

३४७; ३६३; ३६५; ३६७; ३६९; ३७१;

३९८; ४५१; ४६४; ४६९; ४७०; ४७३;

४८०; ४८५; ५५४; ५८७; ५९०; ६०२;

६०४; ६२३; ७१७; ७५६; ८०३; ८१८;

—अष्टाशुद्धि ६०४;—उपचाय्यपृष्ठम् ४४०

हुतः ७६०

हुतानुमन्त्रणानि ७६३

हुताशनः ८२१

हृदयम् ४३; ५९७; ८०६

हृदयशूलः ५८७

हृदयानि ८१६

होता ३५

होता याज्यापुरोनुवाक्यासु मुख्ये ३०३

होतारः ३०३

होतृषदनम् २०२

शुद्धिपत्रम्

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-----------------------|---------------------------------------|
| ३ | १९ | त्रिष्टुम्भी | त्रिष्टुम्भी |
| ८ | १४ | यमो वसानं | यमोऽवसानं |
| ९ | ५ | यदद० | तदद० |
| १० | ११ | आसीरदो | आसीः... ॥ अदो |
| १३ | २८ | ०ममिहोत्राम् ३ | ०ममिहोत्रां ३ |
| १६ | ८ | अथामिहोत्रै... कर्तवै | (अयमंशो माऽस्तु) |
| १६ | २२ | लोके | लोके ॥ |
| २५ | २४ | संवत्सरे अनु० | संवत्सरेऽनु० |
| २८ | १३ | सप्त ऋषयः | सप्तर्षयः |
| २९ | २६ | कर्तव्यमिति० | कर्तव्यमिति । |
| ३० | ८ | पृथिव्या | पृथिव्यां |
| ३१ | २५ | सूक्ष्मं० | सूक्ष्मम् । |
| ३१ | २२ | नानामेय | नाऽनामेयं |
| ३३ | १९ | ७.१०९.१ | ७.११४.१ |
| ३३ | २० | ७.६८.१ | ७.७०.१ |
| ३३ | २१ | ७.४०.१ | ७.४१.१ |
| ३३ | २२ | ७.६.१ | ७.७.१ |
| ३३ | २३ | ७.२९.१ | ७.३०.१ |
| ३५ | ३१ | वैश्वामित्रो | वैश्वामित्रो |
| ४० | १२ | स्थोनमाविशान्तु | स्थोनमाविशान्तु |
| ४१ | २१ | समभरं जात० | समभरजात० |
| ४९ | २ | द्विर्जुहोति | द्विर्जुहोति । |
| ५१ | १० | ३.१७ | (एतन्माऽस्तु) |
| ५१ | २९ | ०स्त्वैवे० | ०स्त्वैवै० |
| ५२ | १४ | त्वाष्ट्रो | त्वाष्ट्रो |
| ५२ | २२ | ०ष्टापदी | ०ष्टापदी |
| ५३ | ३३ | द्रष्टव्यम् । | द्रष्टव्यम् । ७. 'गर्भयागः' (पृ. ६०४) |
| ५३ | २० | ब्रह्मोदनेनैव | द्रष्टव्यः । |
| ५३ | २३ | २०.१९ | ब्रह्मोदनेनैव |
| ५८ | १० | अषाढोऽग्नि० | २०.१९; २४.१९ |
| | | | अषाढो अग्नि० |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------------------|-----------------------|
| ६१ | १० | उद्धति | उद्धति । |
| ६२ | १४ | स्थ । | स्थ० |
| ६४ | १८ | चक्षुश्च विचक्षुश्च | चक्षश्च विचक्षश्च |
| ७४ | १८ | पुराऽदित्य० | पुराऽऽदित्य० |
| ७५ | २ | नवावसथे | नवावसिते |
| ७८ | १२ | ०श्चाकश्यन्त | ०श्चाकश्यन्त |
| ७९ | २१ | नाहरेऽत् इति । | नाऽऽहरेऽत् । |
| ८० | ११ | स्वेन वै० | स्वेनैव |
| ८१ | ३ | द्वितीयम् । | द्वितीयम्० |
| ८१ | १ | निलिम्पति | निलिम्पति० |
| ८१ | १० | गौतमेति इति । | गौतमेति । |
| ८१ | १८ | निर्माक्षीः | निरमाक्षीः |
| ८१ | २७ | विष्यन्नं | विष्यण्णं |
| ८३ | २४ | दर्भेणं | दर्भेण |
| ८६ | ७ | [७.३] | [५.२७; ७.३] |
| ८६ | १९ | [७.३] | [५.२७; ७.३] |
| ८७ | २० | भूयात् | भूयाः |
| ८७ | १६ | [७.३] | [५.२७; ७.३] |
| ८८ | २८ | उडुयात्० | उडुयात् । |
| ८९ | १५-१६ | मनुष्याद्यज्ञो | मनुष्यान् यज्ञो |
| ९४ | ११ | तदनु । | तदनु |
| ९५ | २८ | गायत्र्या | गायत्रिया |
| ९६ | ८ | यस्याऽभिहोत्रे | यस्याऽहुतेऽभिहोत्रे |
| १०६ | ४ | दिवः | दिवः । |
| १०६ | ५ | प्रातः | प्रातः । |
| १०६ | ८ | स्वाहाः | स्वाहा |
| ११० | ३२ | लुचमङ्गिः | लुचं निष्टप्याऽङ्गिः |
| ११० | १७ | ०प्रत्याच्छेद्यां | ०प्रत्याच्छेद्यायां ? |
| ११० | २७ | स्वं | स्वां |
| ११० | २९ | नो | नो |
| ११६ | १६ | सुगमप्रचार्यं | सुगमप्रचार्यं |
| ११६ | १८ | दीद्यन्तं | दीद्यतं |
| ११६ | २६ | पुरोडाशिरूप्या० | पुरोडाशाशिरूप्या० |
| १२० | ६ | सर्वेष्व० | सर्वेष्व० |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-----------------------|----------------------|
| १२३ | १६ | आयुवः | आयुवो नाम |
| " | १८ | बेकुरयः । | बेकुरयो नाम |
| " | १९ | स्तवाः । | स्तवा नाम |
| " | २० | वह्वयः । | वह्वयो नाम |
| " | २१ | मुदाः । | मुदा नाम |
| " | २४ | भुवः । | भुवो नाम |
| " | २५ | रुचः । | रुचो नाम |
| " | २६ | भीरुवः । | भीरुवो नाम |
| १२४ | २३ | ०व्यायणस्य अन्नाद्यः | ०व्यायणस्याऽन्नाद्यः |
| १२८ | २० | यत्किञ्चित् | यत्किञ्च |
| १२९ | ११ | ०ऽभिगरः | ०ऽभिगरौ ? |
| " | १८ | अनुष्टुम्भित्रस्य | अनुष्टुब् मित्रस्य |
| १३३ | १२ | ०मस्याज्जात° | ०मस्याज्जात° |
| १३४ | ६ | मृळय | मृळय |
| " | ८ | अहेळमानो | अहेळमानो |
| " | ९ | हेडोऽव | हेळोऽव |
| " | १२ | मृडीकः | मृळीकः |
| १३६ | २१ | चेच्छक्रवाः स | चेच्छक्रवाः सः |
| २३९ | १९ | वर्चसे | वर्चसा |
| १४३ | १ | [१४.१७] | [१४.१७-१८] |
| १४५ | १० | हव्या आकृतिः | हव्याऽऽकृतिः |
| १५० | १० | ७.७४.४ | ७.७८.४ |
| १५३ | १९ | जुष्टमिह | जुष्टम् ॥ इह |
| १५३ | २३ | माऽऽस्थात् । | माऽऽस्थात् ॥ |
| १५५ | ८ | ०मन्त्रयते । | ०मन्त्रयते० |
| १५६ | ७ | ०मधुमत्तमा । | ०मधुमत्तमा |
| १५८ | २४ | सातयः | सातये |
| १६० | १७ | प्रणयति | प्र णयति |
| " | १८ | ०हवणीं | ०हवणी |
| १६१ | २८ | तावद् ब्रह्माऽऽसीत् । | तावद् ब्रह्माऽऽसीत्० |
| १६२ | २ | तस्य | तस |
| १६३ | ३ | ख्येषम् ॥ | ख्येषं |
| १६९ | १३ | शमीष्व...शमीष्व | शमीष्व...शमीष्व |
| " | २४ | देवयजं | देवयजनं |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-------------------------------------|--|
| १७० | २ | हविष्करोति० | हविष्करोति |
| १७२ | २४ | त्वाऽग्नी० | त्वा ॥ अग्नी० |
| १७३ | ९-१० | शृतं कृत्यः | शृतंकृत्यः |
| १७५ | १२-२६ | | (अयमंशो माऽस्तु) |
| १७६ | २२ | तपस्वी अन्त० | तपस्यन्त० |
| १७७ | १९ | शान्त्यै० | शान्त्यै । |
| १८१ | २१ | यजमानस्य | यजमानस्य ॥ |
| " | ३० | ग्रथ्नाति० | ग्रथ्नाति० ऊनेऽतिरिक्तं धीयाता इति प्रजात्यै० |
| १८२ | २ | ०मपः । | ०मपः० |
| " | " | यद्यजुषाऽऽज्यं यजुषाऽप उत्पुनीयात्० | छन्दसाऽप उत्पुनाति० |
| " | २५ | प्रदधाति | प्रदधाति० |
| १८६ | ६ | २०.३४.१४ | २०.३४.१० |
| १८७ | २२ | दोहं | दोहै |
| १८९ | ७ | गृह्णाति । | गृह्णाति० |
| १९२ | १४ | सदन्विति । | सदन्विति० |
| " | १५ | भवति० | भवति । |
| २०१ | ४ | अनुब्रूयात्० | अनुब्रूयात् । |
| २०७ | २ | आज्यपान् | आज्यपान् |
| " | २० | होत्रादित्याह । | होत्रादित्याह० |
| " | २२ | ब्रूयात्० | ब्रूयात् । |
| " | २८ | स्वाहेन्द्राग्नी | स्वाहा प्रजापतिश्च स्वाहेन्द्राग्नी |
| " | " | स्वाहेन्द्रश्च | स्वाहा प्रजापतिश्च स्वाहेन्द्रश्च |
| " | २९ | स्वाहा | स्वाहा प्रजापतिश्च स्वाहा |
| २१३ | १५ | सोऽध्वरा | सो अध्वरा |
| २१५ | २३ | धारयेत्० | धारयेदुभयतः सश्चाथि कुर्यात् । |
| २१९ | २० | पृथिव्या उप | पृथिव्योप |
| २१९ | २४ | ०मुपहृताश्च ३हो | ०मुपहृताश्च ३हो |
| २२० | ९ | निलिम्पति० | निलिम्पति । |
| २२८ | ८ | हारयति० | हारयति । |
| " | " | व्यूहति | व्यूहति । |
| २३२ | " | वदतीळायां | वदतीळायां |
| २३३ | १६ | [१.६.४] | [१.६.५] |
| २३४ | १९ | [३.७.५-६] | [३.७.५] |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् |
|--------|---------|------------------------|
| २३४ | २९ | [१.६.४] |
| २३५ | १२ | यदुपवेशः । |
| २३७ | १६ | मार्जयन्ताम् । |
| २४१ | ७ | सुगार्हपत्यो |
| " | २० | । यद्देवानां |
| २४४ | ५ | ०मुपहृताः ३हो |
| " | ११ | तस्मिन्नुपहृता । |
| २४५ | १ | तपस्तस्मै |
| " | १२ | तन्मे राधि ॥ |
| २४९ | ९ | नस्कृधि ॥ ७.२६.३ |
| २५५ | ३ | पुरोडाशं |
| २५८ | १० | स्वाहेति । |
| " | ११ | स्वाहेति । |
| " | १२ | स्वाहेति । |
| २७३ | ३ | अथैनान्यङ्गारैः |
| " | १८ | प्रेषकारः |
| " | २५ | ०देवैक० |
| २७४ | १७-१८ | गार्हपत्याङ्गारेणा० |
| " | २७ | ३.२३ |
| २७६ | १९ | समस्ते० |
| " | २१ | मूले० |
| " | २६ | तथैव |
| २७७ | २८ | प्रेहीति |
| २७८ | १९ | [अष्टाभि० |
| " | २६ | भूरस्माकम् ...यजमानस्य |
| २८० | ४ | याजमानैश्च |
| २८९ | २४ | याचति१ |
| २९२ | ९ | २०.१५ |
| ३०५ | ४ | आज्यस्यवा० |
| " | १७ | पृढाया |
| ३०६ | ११ | ०जुहीति०१ |

| शुद्धम् |
|------------------------------------|
| [१.६.५] |
| यदुपवेशः० |
| मार्जयन्ताम् ॥ |
| ...सुगार्हपत्यो |
| ॥ ...यद्देवानां |
| ०मुपहृताः ३हो |
| तस्मिन्नुपहृता |
| तपस्तस्मै |
| तन्मेऽराधि॥ वायो व्रतपते...॥आदित्य |
| व्रतपते...॥ व्रतानां व्रतपते...॥ |
| नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र |
| यज्ञपतिं तिर ॥ ७.२७.३ |
| पुरोडाशं |
| स्वाहेति० |
| स्वाहेति० अथ |
| स्वाहेति० |
| अथैनान्यङ्गारैः |
| प्रेषकारः |
| ०देवैक० |
| गार्हपत्याङ्गारेणा० |
| ३.२४ |
| समस्ते० |
| मूले० |
| तथैव |
| प्रेहि इति |
| अष्टाभि० |
| भूरस्माकम् । हविर्देवानाम् । आशिषो |
| यजमानस्य । |
| याजमानैश्च |
| याचति |
| २०.१४-१५ |
| आज्यस्यैवा० |
| आ हृदाया |
| ०जुहीति१ । |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|------------------------------------|--|
| ३२० | २-९ | आम्नावैष्णवीष्टिः...नाऽऽप्याययति ॥ | (अयमंशः ४११ पृष्ठे २० पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयः) |
| ३२० | ११ | २.५.४-५ | २.५.४ |
| ३२४ | २-१४ | आम्नावैष्णवीष्टिः...वेति ॥ | (अयमंशः ४७८ पृष्ठे २८ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयः) |
| ३२७ | ११ | यद्यमि० | अमि० |
| " | २२, २३ | अधिराज्यम् | आधिराज्यम् |
| ३३१ | ९ | गच्छति० | गच्छति । |
| ३४७ | ६ | ०रसीति० | ०रसीति |
| ३४९ | ६ | ' ज्योगामयावी ' | ' ज्योगामयावी ' ' पाप्मना गृहीतः ' |
| ३६१ | ४ | तुराणामा | तुराणाम् । आ |
| ३६२ | ६ | ०वाक्ये भवतः । | ०वाक्ये भवतः० |
| ३६७ | ११ | अस्त्युक्त्यं | अस्त्युक्त्यं |
| ३६९ | २५ | भवति० | भवति । |
| ३७६ | २४ | ०राविवेश ॥ | ०राविवेश । |
| ३८५ | ४ | सूर्यम् । | सूर्यम् ॥ |
| ३८६ | २६ | समन्वैतीति | समन्वैतीति |
| ३८९ | १५ | यजताऽऽगन्तु यज्ञम् ॥ | यजता गन्तु यज्ञम् । |
| ३९६ | १९ | पुरोधाः | पुरोधा |
| ४०४ | १३ | नाशयेयमिति० | नाशयेयमिति । |
| ४१८ | १८ | ०नोऽमीवहा | ०नो अमीवहा |
| ४४२ | १५ | संयाज्ये । | संयाज्ये० |
| ४४६ | २६ | आवश्यकाः | आवश्यकः |
| ४४८ | २४ | यजेत् । | यजेत्० |
| ४६२ | २१ | १३.२१ | १३.२१.२२ |
| ४५७ | ८ | वाऽरसम् | वासरम् |
| ४७३ | ६ | मां | मा |
| ४७९ | २६ | मां | मा |
| ४९० | ९-१० | अथ यत्...ददाति० | अथ यत् प्रथमजं गां ददाति० अथ यत् पुरस्ताद्वोपरिष्ठाद्वा शंयोर्वाकस्याऽऽवाहितान् वाजिनो यजति० |
| ४९१ | १७ | विश्वे देवाः | ...विश्वे देवाः |
| " | " | अर्वाचीनं | ...अर्वाचीनं |
| ४९९ | ७ | भवति । | भवति० |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-----------------------|---|
| „ | २० | ग्रामे... ॥ | ग्रामे... । |
| ५०० | १ | - यातयेत्० | यातयेत् । |
| ५०४ | „ | । ईशे | ॥ ... । ईशे |
| ५०९ | १८ | प्रीणाति० | प्रीणाति । |
| ५२३ | ७ | १६.७९.१३ | १६.६९.१३ |
| ५३४ | ११ | यजेत० | यजेत । |
| ५४३ | १४ | जपत्युद्धते । | जपति । उद्धतः । |
| ५४४ | १४ | निर्मन्थेन | निर्मन्थेन |
| ५४६ | २७ | २१.३-५ | २१.३-६ |
| ५७६ | १ | घृतञ्चुताऽग्ने | घृतञ्चुतोऽग्ने |
| ५८७ | ३ | ४.१-२; २०.२५ | ४.१-३; २०.२५-२६ |
| ५९९ | २० | पशुबन्धे | पशुबन्धे |
| ६२० | ४ | वृत्रमनु | विश्वमनु |
| ६२५ | ९ | दीय | दीया |
| ६२६ | १६ | सुमेकेऽव१शे | सुमेके अव१शे |
| ६२७ | २२ | ०न्तरिक्ष१स्त्वं | ०न्तरिक्षं त्वं |
| ६२९ | ७ | आलुभ्यन्ते | आलुभ्यन्ते |
| ६३९ | २० | देवद्रीची | देवद्रीचीं |
| ६४७ | २२ | श्वेतमा० | श्वेतमजमा० |
| ६४८ | २१ | रथिष्ठा पृथिव्यां सीद | रथिष्ठाः पृथिव्यां सीद । |
| ६५० | ११ | दीय | दीया |
| ६५१ | १०, १५ | दीय | दीया |
| „ | १९ | रोचमानां | रोचमाना |
| ६५९ | २५ | यजध्वं... ॥ | यजध्वं... । |
| ६६५ | १२ | पृथिव्या | पृथिव्याः |
| ६६७ | २२ | विश्व ऋतेन | विश्वर्तेन |
| ६६८ | १ | घृत० | घृतै० |
| ६६९ | २१ | वायुर्गोपा | वायुर्गोपा |
| ७०० | १४-१५ | अक्षन्... ०तीतृपन्त | अक्षन् पितरः । अमीमदन्त पितरः । अतीतृपन्त |
| ७०४ | २७ | वपायागात् पूर्व | वपाश्रपणानन्तरम् (एवमग्नेऽपि बोद्धव्यम्) |
| ७११ | १४ | ०पर्णोऽश्विभ्याम् | ०पर्णो अश्विभ्याम् |
| ७१३ | २५ | अमर्त्याः | अमर्त्याः |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-----------------------------|-------------------|
| ७३३ | २२ | चतुर्थं सोमाति° | चतुर्थमति° |
| ७४३ | २३ | इत्यनपेक्ष° | इति° अनपेक्ष° |
| ७५४ | २ | प्रचरति° | प्रचरति । |
| ७५६ | १७ | सौत्रामणिकी | अथेयः सौत्रामणिकी |
| ७५८ | २९ | °निष्कामन्ति । | °निष्कामन्ति |
| ७६७ | १७ | भरध्व° | रभध्व° |
| ७७३ | १५ | ८.३.१ | ८.३ |
| ७८७ | ११ | नाऽभवान् | नाऽभवान् |
| ८०८ | ३२ | जीवपितुश्चेत् | जीवपिता चेत् |
| ८०९ | ७ | °गर्भसंभूतो | °गर्भः संभूतो |
| ८१२ | २५ | नराः | नाराः |
| ८१४ | ८ | नाऽभवान् | नाऽभवान् |
| ८१६ | २४ | तैसं १.४.१-४२ | (एतन्माऽस्तु) |
| " | २५ | दक्षिणामन्त्राः तैसं १.४.४३ | (एतन्माऽस्तु) |
| " | २६-२७ | तैसं १.४.३५ | (एतन्माऽस्तु) |
| " | २७ | तैसं १.४.३६ | तैआ ३.२१ |

| | | | |
|-----|----|--------------------------|--------------------------------|
| ७० | ३ | उदीची | प्रतीची दिक् सोमो देवता सोमं स |
| " | १९ | द्रायू | ऋच्छतु... ॥ उदीची |
| ९६ | १२ | अग्ने बृहत्... | द्वा यू |
| ११३ | १५ | ततो हुत्वा | अग्ने बृहन्... |
| " | ३० | समिन्धातां... , सम्राडसि | ततोऽहुत्वा |
| | | विराडसि... | समिन्धाताम् , सम्राडसि |
| २६८ | ३१ | यजमानः | विराडसि |
| २७१ | ४ | सःस्कारी | ब्रह्मा |
| ३८६ | १७ | अग्नीषोमाभ्याम् इति । | सःस्कारिण |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------------------------|--|
| २८९ | २५ | याचति | याचति ^२ |
| " | २६ | मामहुताद्यः | मामहुताद्य |
| " | २९ | °नुमन्त्रयते ^१ | °नुमन्त्रयते ^२ |
| " | ३१ | | २. ब्रह्मा |
| २९७ | १८ | अजस्त्राणामन्वाहिताना° | अन्वाहिताना° |
| ३१० | १० | मम प्रपितामह | मम प्रप्रपितामह |
| ३४९ | १८, २२ | निमिषतो | निमिषतश्च |
| ३७० | २० | तस्मादैन्द्रावैष्णवम्° | तस्मादैन्द्रावैष्णवम् । त्रिरात्रस्य वा उपेप्सायै त्रैधातव्याहियते° |
| ३९१ | ५ | इन्द्र ॥ | इन्द्र । |
| ४०१ | ४ | मैसं [४.३.१] | मैसं [२.६.१ ; ४.३.१] |
| ४१० | १२ | याजयेत्° । | याजयेत्° ऐन्द्र इतरा अभिस- श्लेषयन्ति सेन्द्रियत्वाय । |
| ४३१ | २७ | पुरोडाशस्याऽवद्येत्° | पुरोडाशस्याऽवद्येद्यतराम् कामयेत पराजयेरन्नित्युभयत एव विशमुप- दीपयति ताजक् पराजयन्त |
| ४३५ | २० | यजेत्° | यजेत्° यदि मन्येत प्रतिपुरस्ता- च्चरन्तीति° |
| ६११ | १८ | वाम् ॥ | वाम् । |
| ६२८ | २० | चित् ॥ | चित् । |

ग्रन्थशेषः

बौधायनीयं शुल्बसूत्रम्

बौधायनश्रौ० [३०.१-३]—

अथेमेऽग्निचयाः^१। तेषां भूमेः परिमाणविहारान् व्याख्यास्यामः। अथाऽङ्गुलप्रमाणम्। चतुर्दशाऽणवः। चतुस्त्रिंशत्तिलाः पृथुसः^२श्लिष्टा इत्यपरम्। दशाङ्गुलं क्षुद्रपदम्। द्वादश प्रादेशः। पृथोत्तरयुगे त्रयोदशिके। पदं पञ्चदश। अष्टाशीतिशतमीषा। चतुःशतमक्षः। षडशीतिर्युगम्। द्वात्रिंशज्जानुः। षट्त्रिंशच्छम्याबाहू। द्विपदः प्रकमः। द्वौ प्रादेशावरत्निः। अथाऽप्युदाहरन्ति पदे युगे प्रकमेऽरत्नावियति शाश्वत्यां च मानार्थेषु याथाकामीति। पञ्चावरत्निः पुरुषो व्यामश्च। चतुररत्निर्व्यायामः। चतुरश्रं चिकीर्षन् यावच्चिकीर्षेत्तावतीं रज्जुमुभयतःपाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति। लेखामालिख्य तस्या मध्ये शङ्कुं निहन्त्यात्। तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन मण्डलं परिलिखेत्। विष्कम्भान्तयोः शङ्कू निहन्त्यात्। पूर्वस्मिन् पाशं प्रतिमुच्य पाशेन मण्डलं परिलिखेत्। एवमपरस्मिन्। ते यत्र समेयातां तेन द्वितीयं विष्कम्भमायच्छेत्। विष्कम्भान्तयोः शङ्कू निहन्त्यात्। पूर्वस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन मण्डलं परिलिखेत्। एवं दक्षिणत एवं पश्चादेवमुत्तरतः। तेषां येऽन्त्याः सःसर्गास्तच्चतुरश्रं संपद्यते। अथाऽपरम्। प्रमाणाद् द्विगुणां रज्जुमुभयतःपाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति। स प्राच्यर्थः। अपरस्मिन्नर्थे चतुर्भांगेने लक्षणं करोति। तन्न्यञ्चनम्। अर्धेऽसार्थम्। पृष्ठान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य न्यञ्चनेन दक्षिणाऽपायस्याऽर्धेन श्रोण्यः सान्निर्हरेत्। दीर्घचतुरश्रं चिकीर्षन् यावच्चिकीर्षेत् तावत्यां भूम्यां द्वौ शङ्कू निहन्त्यात्। द्वौ द्वावेकैकमभितः समौ। यावती तिर्यङ्मानी तावतीं रज्जुमुभयतःपाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति। पूर्वेषामन्त्ययोः पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन दक्षिणाऽपायस्य लक्षणे लक्षणं करोति। मध्यमे पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणस्योपरिष्ठादक्षिणाऽपायस्य लक्षणे शङ्कुं निहन्त्यात्। सोऽसः। एतेनोत्तरोऽसो व्याख्यातः। तथा श्रोणी। यत्र पुरस्तादः^३हीयसीं मिनुयात् तत्र तदर्थं लक्षणं करोति। अथाऽपरम्। प्रमाणादध्यर्धां रज्जुमुभयतःपाशां कृत्वाऽपरस्मिंस्तृतीये षड्भागोने लक्षणं करोति। तन्न्यञ्चनम्। इष्टेऽसार्थम्। पृष्ठान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य न्यञ्चनेन दक्षिणाऽपायस्येष्टेन श्रोण्यः सान्निर्हरेत्। समचतुरश्रस्याऽक्ष्णयारज्जुर्द्विस्तावतीं भूमिं करोति। प्रमाणं तिर्यक्। द्विकर्ण्यायामः। तस्याऽक्ष्णयारज्जुस्त्रिकरणी। तृतीयकर्ण्येतेन व्याख्याता। नवमस्तु भूमेर्भागो भवतीति। दीर्घचतुरश्रस्याऽक्ष्णयारज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति। तासां त्रिकचतुष्कयोर्द्वादशिकपञ्चिकयोः पञ्चदशिकाष्टिकयोः सप्तिकचतुर्विंशिकयोः द्वादशिकपञ्चत्रिंशिकयोः पञ्चदशिकषट्त्रिंशिकयोः रित्येतासूपलब्धिः ॥ १ ॥

नानाचतुरश्रे समस्यन् कनीयसः करण्या वर्षीयसो वृध्रमुल्लिखेत् । वृध्रस्या-
ऽक्षण्यारज्जुः समस्तयोः पार्श्वमानी भवति । चतुरश्राच्चतुरश्रं निर्जिहीर्षेन् यावन्निर्जिहीर्षेत्तस्य
करण्या वर्षीयसो वृध्रमुल्लिखेत् । वृध्रस्य पार्श्वमानीमक्षणेतरत्पार्श्वमुपसङ्गरेत् । सा यत्र
निपतेत् तदपच्छिन्द्यात् । छिन्नया निरस्तम् । समचतुरश्रं दीर्घचतुरश्रं चिकीर्षेत्स्तदक्षण्या-
ऽपच्छिद्य भागं द्वेधा विभज्य पार्श्वयोरुपदध्याद् यथायोगम् । अपि वैतस्मिञ्चतुरश्रं समस्य
तस्य करण्याऽपच्छिद्य यदतिशिष्यते तदितरत्रोपदध्यात् । दीर्घचतुरश्रं समचतुरश्रं
चिकीर्षेत्स्तिर्यङ्मानीं करणीं कृत्वा शेषं द्वेधा विभज्य पार्श्वयोरुपदध्यात् । खण्डमावापेन
तत्संपूरयेत् । तस्य निर्हार उक्तः । चतुरश्रमेकतोऽणिमच्चिकीर्षन्नणिमतः करणीं
तिर्यङ्मानीं कृत्वा शेषमक्षण्या विभज्य विपर्यस्येतरत्रोपदध्यात् । चतुरश्रं प्रउगं चिकीर्षन्
यावच्चिकीर्षेद् द्विस्तावतीं भूमिं समचतुरश्रां कृत्वा पूर्वस्याः करण्या मध्ये शङ्कुं
निहन्यात् । तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य दक्षिणोत्तरयोः श्रोण्योर्निपातयेत् । बहिस्पन्ध-
मपच्छिन्द्यात् । चतुरश्रमुभयतः प्रउगं चिकीर्षन् यावच्चिकीर्षेद् द्विस्तावतीं भूमिं दीर्घ-
चतुरश्रां कृत्वा पूर्वस्याः करण्या मध्ये शङ्कुं निहन्यात् । तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य
दक्षिणोत्तरयोर्मध्यदेशयोर्निपातयेत् । बहिस्पन्धमपच्छिन्द्यात् । एतेनाऽपरं प्रउगं व्याख्यातम् ।
चतुरश्रं मण्डलं चिकीर्षन्नक्षण्याऽर्धं मध्यात्पाचीमभ्यापातयेत् । यदतिशिष्यते तस्य सह
तृतीयेन मण्डलं परिलिखेत् । मण्डलं चतुरश्रं चिकीर्षन् विष्कम्भमष्टौ भागान् कृत्वा
भागमेकोनत्रिंशद्वा विभज्याऽष्टाविंशतिभागानुद्धरेत् भागस्य च षष्ठमष्टमभागोनम् ।
अपि वा पञ्चदश भागान् कृत्वा द्वाबुद्धरेत् । सैवा नित्या चतुरश्रकरणी । प्रमाणं तृतीयेन
वर्धयेत् तच्चतुर्थेनाऽऽत्मचतुस्त्रिंशोनेन । सविशेषः ॥ २ ॥

अथाऽऽन्याधेयिके विहारे गार्हपत्यादाहवनीयस्याऽऽयतनम् । विज्ञायतेऽष्टासु
प्रक्रमेषु ब्राह्मणोऽग्निमादधीतैकादशसु राजन्यो द्वादशसु वैश्य इति । आयामतृतीयेन त्रीणि
चतुरश्राण्यनूचीनानि कारयेत् । अपरस्योत्तरस्यां श्रोण्यां गार्हपत्यः । तस्यैव दक्षिणेऽसे-
ऽन्वाहार्यपचनः । पूर्वस्योत्तरेऽसौ आहवनीयः । अपि वा गार्हपत्याहवनीययोरन्तरालं पञ्चधा
षोढा वा संभुज्य षष्ठं सप्तमं वा भागभागान्तुकमुपसमस्य समं त्रैधं विभज्य पूर्वस्मादन्ताद्
द्वयोर्भागयोर्लक्षणं करोति । गार्हपत्याहवनीययोरन्तौ नियम्य लक्षणेन दक्षिणाऽपायम्य
लक्षणे शङ्कुं निहन्ति । तद्दक्षिणाग्रेरायतनं भवति । अपि वा प्रमाणं पञ्चमेन वर्धयेत् ।
तत्सर्वं पञ्चधा संभुज्याऽपरस्मादन्ताद् द्वयोर्भागयोर्लक्षणं करोति । पृष्ठयान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य
लक्षणेन दक्षिणाऽपायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्ति । तद्दक्षिणाग्रेरायतनं भवति । विपर्यस्तै-
तेनोत्करो व्याख्यातः । अपरेणाऽऽहवनीयं यजमानमात्री भवतीति दार्शपौर्णमासिकाया
वेदेविज्ञायते । तस्यास्त्रिभागोनं पश्चात्तिरश्ची । तस्या एवार्धं पुरस्तात्तिरश्ची । एवं दीर्घ-
चतुरश्रमेकतोऽणिमद्विहृत्य स्रक्तिषु शङ्कून्निहन्यात् । यावती पार्श्वमानी द्विरभ्यस्ता तावती
रज्जुमुभयतःपाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति । दक्षिणयोः पार्श्वयोः पाशौ प्रतिमुच्य
लक्षणेन दक्षिणाऽपायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्यात् । तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन

दक्षिणं पार्श्वं परिलिखेत् । एतेनोत्तरं पार्श्वं व्याख्यातम् । पूर्वं पार्श्वं तथा द्विरभ्यस्तया परिलिखेत् । एवमपरम् । दशपदा पञ्चात्तिरश्ची द्वादशपदा प्राच्यष्टापदा पुरस्तात्तिरश्चीति पाशुबन्धिकाया वेदेर्विज्ञायते । मानयोगस्तस्या व्याख्यातः । रथसंमितेत्येकेषाम् । विराट्-संपन्नेत्येकेषाम् । शम्भ्यामात्री चतुःशक्तिर्भवतीत्युत्तरवेदेर्विज्ञायते । समचतुरश्राविशेषात् । चितृतीया वेदिर्भवतीति पैतृक्या वेदेर्विज्ञायते । महावेदेऽस्तृतीयेन समचतुरश्रकृतायास्तृतीय-करणी भवतीति । नवमस्तु भूमेर्भागो भवति । यजमानमात्री चतुःशक्तिर्भवतीत्येकेषाम् । दिक्षु सक्तयो भवन्ति । वेदिचतृतीये यजेतेति सौत्रामणिकीं वेदिमभ्युपदिशन्ति । महावेदे-स्तृतीयेन समचतुरश्रकृताया अष्टादशपदा पार्श्वमानी भवति । तस्यै दीर्घकरण्यामेकतोऽणिमत्-करण्यां च याथाकामीति ॥ ३ ॥

बौधायनीयं प्रवरसूत्रम्

अथाऽतः प्रवरान् व्याख्यास्यामः । सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां पक्षा भवन्ति । त्रयः पक्षा भृगूणां पञ्चार्षेया वत्सा विदा आर्क्षिषेणाः । चत्वार एवाऽङ्गिरसः कौमण्डा दीर्घतमा रौक्षायणा गर्गाश्च । गर्गाणां त्र्यार्षेयो विकल्पः । विश्वामित्रपक्षे पूरणा द्व्यार्षेयाः । शुनकवसिष्ठा एकार्षेयाः । अतोऽन्ये त्रिप्रवरा भवन्ति । एतेषु भृग्वङ्गिरसो भिन्नविवाहं कुर्वन्ते न चेत्समानार्षेया बहवः स्युरिति मतं बौधायनस्य इति ॥ १ ॥

अथाऽत ऊर्ध्वानध्वर्युर्बृणोतेऽमुतोऽर्वाचो होतेत्येष एवोभयोः सर्वत्रोद्देशः । द्व्यार्षेयसंनिपातेऽविवाहस्यार्षेयाणाम् । त्र्यार्षेयसंनिपातेऽविवाहः पञ्चार्षेयाणाम् । असमान-प्रवरैर्विवाहः । एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत् समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वङ्गिरसां गणादिति ॥ पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः । भृग्वङ्गिरोगणेष्वेव शेषेष्वेकोऽपि वारयेदिति ॥ २ ॥

भृगूणामेवाऽऽदितो व्याख्यास्यामः । मार्कण्डेया माण्डूका माण्डव्याः का५ सय आलेखना दार्भायणाः शार्कराक्षा दैवतायनाः शौनकायना माण्डूकेयाः पार्षिकाः साङ्गाः प्रान्तायनाः पैलाः पैङ्गलायना दाम्रेषयो बाह्यकयो वैश्वानरयो वैहीनरयो विरोहिता बार्हा गौड्रायणा ऐष्टेयः काशकृत्स्ना वाग्भूतया ऋतभागा पेटिशायना जानायनाः पाणिनिर्वाल्मीकिः स्थौलपिण्डयः शैखावता जिहीतयः सावर्णिर्वाकायना बालायनाः सौकृतयो मण्डवित् सौविष्टयो हस्त्याग्रयः शौद्धकयो वैकर्णा औपजिह्वय औरशयः काम्बलोदरयः काठोरकृद्बैहलिर्विरूपाक्षा वृकाश्वा उच्चैर्मन्यवो दैवमत्या आर्कायणा मार्कायणाः काह्वायना वायवायनिनः शाङ्करवाः कारबवश्चान्द्रमसा गाङ्गेया अनुपेया याज्ञिका जाबालिर्बाहुमित्रायणा आपिशलयो वैष्टपुरेया लौहितायना उष्माक्षा नाडायनाः शारद्वतायना राजितवाहा वत्सा वात्स्यायना इत्येते वत्साः । तेषां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव च्यावनाऽऽज्वानौर्व जामदग्न्येति होता । जमदग्निवदूर्ध्वदप्नवानवच्छयवनवद् भृगुवदित्यध्वर्युः ॥ ३ ॥

विदाः शैला अवराः शैलाः प्राचीनयोग्या अभयजाताः काण्डरथयो वैदभृताः पुलस्तय आर्कायणा मार्कायणा नाह्यायणाः क्रौञ्चायना भुञ्जायना जामलायना इत्येते विदाः । तेषां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव च्यावनाऽऽप्नवानौर्व वैदेति होता । विदवदूर्ववदप्नवानवच्छयवनवद् भृगुवदित्यध्वर्युः ॥ ४ ॥

आर्हिषेणा नैरथयो ग्राम्यायणाः काण्वयश्चान्द्रायणाः प्रौढकलायनाः सिद्धाः सुमनायना गौराम्भिराम्भिरित्येत आर्हिषेणाः । तेषां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव च्यावनाऽऽप्नवानाऽऽर्हिषेणाऽऽनूपेति होता । अनूपवदृष्टिषेणवदप्नवानवच्छयवनवद् भृगुवदित्यध्वर्युः । वत्सा विदा आर्हिषेणा इत्येतेषामविवाहः । एते पञ्चावत्तिनः ॥ ५ ॥

यस्का मौनो मूको वाधूलो वर्षपुष्पो बालेयो राजिततायिनो दुर्दिनो भास्करो दैवन्तायनो बाष्कलेयो माध्यमेया वाशयः कौशाम्बेयाः कौटिल्याः सत्यकश्चित्रसेना भागन्तयो वार्काश्वकय औक्था औग्रचितयो भागुरित्थय इत्येते यस्काः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव वैतहव्य सावेतसेति होता । सवेतोवद्रीतहव्यवद् भृगुवदित्यध्वर्युः ॥ ६ ॥

मित्रयुवो रौह्यायनाः शायण्डिनाः सापिण्डनाः सुराम्भिना माल्या बाल्या महाबाल्यास्ताक्ष्यायणा औरुक्ष्यायणा वाजायना मादाघयः कैतवायना इत्येते मित्रयुवः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव वाध्यश्व दैवोदासेति होता । दिवोदासवद्वध्यश्ववद् भृगुवदित्यध्वर्युः ॥ ७ ॥

वैन्याः पार्था बाष्कलास्तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । भार्गव वैन्य पार्थेति होता । पृथुवद्वेनवद् भृगुवदित्यध्वर्युः ॥ ८ ॥

शुनका गार्त्समदा यज्ञपयः सौगन्धयः खार्दमायना गाङ्गायना मत्स्यगन्धाश्रौक्षाः श्रोत्रियास्तैत्तिरीयाः परपूला इत्येते शुनकाः । तेषामेकार्षेयः प्रवरो भवति । शौनकेति होता । शुनकवदित्यध्वर्युः । गार्त्समदेति होता गृत्समदवदित्यध्वर्युर्वा ॥ ९ ॥

अङ्गिरसो व्याख्यास्यामः । आयास्या आणीवेयाः काचाक्षयो मूढाः सात्यकयस्तैदेहाः कौमारवत्यास्तौण्डर्दाभिर्देवकिः सात्यमुग्रिः कौबाह्या बौध्या नैकरिः स्वस्तैषकिः कीलालयः कारुणिः काठोरिः काशीवाजाः पार्थिवा इत्येत आयास्या गौतमाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसाऽऽयास्य गौतमेति होता । गौतमवदयास्यवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १० ॥

शारद्वता अभिजिता रौहिण्याः क्षीरकरम्भाः सौमुचयः सौयमुना औपबिन्दवो राहूगणा राणयो मार्षण्या इत्येते शारद्वता गौतमाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस गौतम शारद्वतेति होता । शारद्वद्रोतमवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ ११ ॥

कौमण्डा मामन्थरेषणा मासुराक्षाः काष्ठरेषय ऊर्जायना वानजायना वाशय इत्येते कौमण्डा गौतमाः । तेषां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसौचथ्य काक्षीवत गौतम कौमण्डेति होता । कुमण्डवद्रोतमवत्कक्षीवद्रुचथ्यवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १२ ॥

दीर्घतमसां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसौचथ्य काक्षीवत गौतम दीर्घतमसेति होता । दीर्घतमोवद्गौतमवत्काक्षीवद्रदुचथ्यवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १३ ॥

औशनसा दिश्याः प्रशस्ताः सुरूपाक्षा महोदरा विगद्रकाः सुबुध्या निहिता गुहा इत्येत औशनसा गौतमाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस गौतमौशनसेति होता । उशनसवद्गौतमवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १४ ॥

कारेणुपालयो वास्तव्याः श्वेतीयाः पौञ्जिष्ठ्य औदज्ञायना बान्धुक्या आजगन्धय इत्येते कारेणुपालयो गौतमाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस गौतम कारेणुपालेति होता । कारेणुपालवद्गौतमवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १५ ॥

वामदेवानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस गौतम वामदेवेति होता । वामदेववद्गौतमवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः । गौतमानां सर्वेषामेवाऽविवाहः ॥ १६ ॥

भरद्वाजाः क्षाम्यायणा मामण्डा देवाश्वा उद्वहव्याः प्राग्वक्षयो वाहलया बाह्योगा वासिनायनास्तैदेहा आज्ञा औक्षा भूरयः पारिणद्वेयाः शौखेयाः शौद्रक्य ऊरुढाः खारिग्रीवय औपशयो वयोक्षिमेदा अग्निवेश्या वेधाः शंठा गौरिवायनाश्चेलकाः स्तनकर्णा ऊरुक्षा माणभिन्दव्याः काहोदङ्कास्तौज्वलयो वैलाः खारणादयो भारुण्डेया माद्रपथयः सौरोभङ्गाः शुक्ला दैवमतय इषुमता औदमेघयः प्रवाहणेयाः कल्माषा राजस्तम्भिः सुधूप-कृद्वाराहयो वलभिक्य उग्रांगता शालाहलयो देववेला महावेला निविञ्च्यायना धन्यायनाः शालालयः शार्दूलयः कात्कला वाक्कलाः सैह्यकेलाः क्रौडायणाः क्रौडिल्या ब्रह्मस्तम्भा राजस्तम्भा अग्निस्तम्भा वायुस्तम्भाः सूर्यस्तम्भाः सोमस्तम्भा यमस्तम्भा इन्द्रस्तम्भा विष्णुस्तम्भा यज्ञस्तम्भा आपस्तम्भा ये चाऽन्ये स्तम्भशब्दाः स्विष्टा आरुणसिन्धुः कौमुद-गन्धिः शक्तिः कौशिवायना आज्ञेयायणा भामण्या धूमगन्धाः कुकाः कौकाक्षयो नैतुन्दयो दार्भयः श्यामेया मत्स्यक्राथाः कौकायनाः कारुपथयः कारीषायणाः काम्बल्या इत्येते भरद्वाजाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस बार्हस्पत्य भारद्वाजेति होता । भरद्वाज-वद् बृहस्पतिवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १७ ॥

रौक्षायणानां पञ्चार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज बान्दन मातवचसेति होता । मतवचोवद्बान्दनवद्भरद्वाजवद् बृहस्पतिवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ १८ ॥

गर्गाः सांभरायणाः सखीनयो गन्धरायणा बाहुलकयो भ्रष्टका भ्राष्टृबिन्दवः क्रौष्टुक्यः सौथामुनिभ्राजिनाक्षत्रेया होत्रापचयः सत्यापचयः काणायना औपमत्कटायना जाणवत्पलाशशाखावन्तयः संग्रहतुल्या वैडुहा निस्त्रोहताः कारिरौतिः कैवल्या राजयः पौलय इत्येते गर्गाः । तेषां पञ्चार्षेयस्त्र्यार्षेयो वा प्रवरो भवति । आङ्गिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज शैव्य गार्ग्येति होता । आङ्गिरस शैव्य गार्ग्येति वा । गर्गवच्छिनिवद्भरद्वाज-वद् बृहस्पतिवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युर्गर्गवच्छिनिवदङ्गिरोवदिति वा । भारद्वाजानां सर्वेषामेवाऽविवाहः ॥ १९ ॥

विष्णुवृद्धाः शठमर्षणा भद्रणा मद्रणाः शाम्बुरायणा बादरायणा वात्सप्रायणाः सात्यकिः सात्यकायना नैतुन्धाः स्तुत्या भारुण्या वैहोढा दैवस्थानय इत्येते विष्णुवृद्धाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस पौरुकुत्स त्रसदस्येति होता । त्रसदस्युवत्पुरुकुत्स-वदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २० ॥

कण्वा औपमर्कटायना बाष्कलाः शैलाहलिनो मौञ्जिमौञ्जयो मौञ्जिगन्धा वाजिर्वाजयो वाजश्रवसा इत्येते कण्वाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसाऽऽजमीढ काण्वेति होता । कण्ववदजमीढवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २१ ॥

हरिताः कौत्साः शाङ्ख्या दार्थ्या शैमङ्गो भैमगवो मनायुर्लम्बोदरो महोदरो नैमिश्रयो मिश्रोदनाः कौठपाः कारीषयः कौलयः पौलयः पौण्डलो मान्धूपो मान्धातुर्माद्र-कारय इत्येते हरिताः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसाऽऽम्बरीष यौवनाश्वेति होता । युवनाश्ववदम्बरीषवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २२ ॥

संस्कृतयो लमकाः पौत्यस्तण्डिः शम्भुः शैवगवः परिभवस्तारकाद्या हारिग्रीवा वैतलेयाः श्रौतायनाश्चारायणा आग्रायणा आर्षयश्चान्द्रायणा आपघ्रापयः पूतिमाषा इत्येते संस्कृतयः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस सांकृत्य गौरिवीतेति होता । गौरिवीतवत् संकृतिवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २३ ॥

रथीतरा हास्तिदासिः काण्वायना नैतिरक्षयः शैलालयो भैलिर्भिल्लिभायनाः सावहवा भैक्षवाहा हैमगवा इत्येते रथीतराः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस वैरूप रथीतरेति होता । आङ्गिरस वैरूप पार्षदश्वेति वा । रथीतरवद्विरूपवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः । पृषदश्ववद्विरूपवदङ्गिरोवदिति वा ॥ २४ ॥

मुद्रला हिरण्याक्षा ऋषभा मिताक्षा ऋश्या ऋश्यायणा दीर्घजङ्घाः प्रलम्बजङ्घा-स्तरुणा भिन्दवा इत्येते मुद्रलाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरस भार्ग्यश्व मौद्रत्येति होता । मुद्रलवद् भृग्यश्ववदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २५ ॥

कपयो वैतलानामैतिशायनानां पतञ्जलानां तरस्विनां ताण्डिनां भोजसिनाः शाङ्करवाणां करशिखण्डानां मौषीतकिञ्छागलयः पौष्पय इत्येते कपयः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आङ्गिरसाऽऽमहय्य वौरुक्षयेति होता । उरुक्षयवदमहय्यवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः ॥ २६ ॥

अत्रीन् व्याख्यास्यामः । अत्रयो भूरयश्छान्दिञ्छान्दोगिः पौष्टिका माङ्गलयः शैवाञ्छागलास्तृणबिन्दवो भागन्तयो मालकुजो व्याडलः शाम्बव्यायनाः कर्मर्यायणयो दाक्षिस्तैदेहा गाणिस्पतय औहालकिर्द्रोणभावा गौरिग्रीवयो गाविष्टिराः शिशुपालाः कृष्णा-त्रेया गौरात्रेया अरुणात्रेया नीलात्रेयाः श्वेतात्रेयाः श्यामात्रेया महात्रेया आत्रेया हालेया बालेयाः शौभ्रेया वामरथीनां वैतभावयः शौद्रेयाः कौद्रेया गोपवनाः कालपवय आनीषायणा आनङ्गिर्मानङ्गिर्दौरङ्गिः सौरङ्गिः पुष्पयः शैखयः साकेतायना भारद्वाजायना इन्द्रातिथि-रित्येतेऽत्रयः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आत्रेयाऽऽर्चनानस श्यावाश्वेति होता । श्यावाश्ववदर्चनानसवदत्रिवदित्यध्वर्युः ॥ २७ ॥

वाङ्मृतकानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आत्रेयाऽऽर्चनानस वाङ्मृतकेति होता ।
वङ्मृतकवदर्चनानसवदत्रिवदित्यध्वर्युः ॥ २८ ॥

गविष्ठिराणां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आत्रेयाऽऽर्चनानस गविष्ठिरेति होता ।
गविष्ठिरवदर्चनानसवदत्रिवदित्यध्वर्युः ॥ २९ ॥

मुद्गलाः शालिसंघय और्णनाभयो दाक्षिर्वैतवाहाः शिरीषयः शालिमतो व्रीहिमतो
गौरीषितो गौरिकयो वायवना वायुपूटा इत्येते मुद्गलाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति ।
आत्रेयाऽऽर्चनानस पौर्वातिथेति होता । पूर्वार्तिथिवदर्चनानसवदत्रिवदित्यध्वर्युः ॥ ३० ॥

विश्वामित्रान् व्याख्यास्यामः । कुशिकाः पार्णजङ्घा वारक्या औदरिर्माणिर्बृह-
दशिरालविराघट्टिरापद्यपा अन्तकाः कामन्तका बाष्पकयश्चिकिता लामकायनाः शालङ्कायनाः
शाङ्कायना लौका गौराः सौगन्तयो यमदूता अनभिम्लातास्तारकायणाश्चौवला जाबालयो
यज्ञवल्का विदण्डा भौवनयः सौबभ्रवय औपदहनय औदुम्बरिभारिष्टिकयः श्यामेयाश्चैत्रेयाः
शालावता मयूराः सौमत्याश्चित्रतन्तवो मनुतन्तवो मान्तवो ये चाऽन्ये तन्तुशब्दा बाभ्रव्याः
कलापा उत्सरय इत्येते कुशिकाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र दैवरातौदलेति
होता । उदलवद्देवरातवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३१ ॥

लोहिता दाण्डकयश्चाक्रवर्मायणा शर्झायना वाञ्जायना मादाघयः कैतवायनयो
वाशय इत्येते लोहिताः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्राऽऽष्टक लौहितेति होता ।
लोहितवदष्टकवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३२ ॥

विश्वामित्रदेवश्रवसदेवतरसः श्रौमतकामकायनाः कामकायनिनः । तेषां त्र्यार्षेयः
प्रवरो भवति । वैश्वामित्र दैवश्रवस दैवतरसेति होता । देवतरसवद्देवश्रवसवद्विश्वामित्र-
वदित्यध्वर्युः ॥ ३३ ॥

रौक्षकाश्चौद्गहला रैणवाश्च । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र रौक्षक
रैणवेति होता । रेणुवदुक्षकवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३४ ॥

कताः सैरिन्धाः करभा वाजायनाः सांहितेयाः कौकृत्याः शैशिरेया औदुम्बरा-
यणाः पिण्डग्रीवा नारायणा नाराट्या इत्येते कताः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र
कात्याऽऽत्कीलेति होता । अत्कीलवत् कतवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३५ ॥

धनंजयाः कारीषय आश्ववतास्तुलभ्याः सैन्धवायना उष्ट्राक्षा महाक्षा इत्येते
धनंजयाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र माधुच्छन्दस धानंजयेति होता ।
धनंजयवन्मधुच्छन्दोवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३६ ॥

अजानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र माधुच्छन्दसाऽऽजेति होता ।
अजवन्मधुच्छन्दोवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३७ ॥

अघमर्षणाः कुशिकाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्राऽऽघमर्षण
कौशिकेति होता । कुशिकवदघमर्षणवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३८ ॥

इन्द्रकौशिकाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र्यैन्द्र कौशिकेति होता ।
कुशिकवदिन्द्रवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ३९ ॥

पूरणा वारिधापयन्ताः । तेषां द्व्यार्षेयः प्रवरो भवति । वैश्वामित्र पौरणेति होता ।
पूरणवद्विश्वामित्रवदित्यध्वर्युः ॥ ४० ॥

कश्यपान् व्याख्यास्यामः । कश्यपाः छागरयो मठरा ऐतिशायना आभूत्या
वैशिष्या धूम्रा धूम्रायणा धौम्या धार्म्यायणा औद्वजिरात्रायणा बैम्बकयः प्रावाहार्या हृद्रोगाः
काश्यातपा आपास्वानिका मौषीतकिः छागसयो माषशरावयः सौधवयः सायस्या आसुरा-
यणाः छागव्याः सौनद्याः स्थौलकेशयो वार्षक्य औपव्या लाक्ष्मणयः क्रोष्टा जीवनयः
खार्दमायणा लोहितायना मितकुम्भाः पिङ्गाक्षय औडलयो मारायणा --- वैकर्ण्यः कौषीतकेया
धूमलक्ष्मणयः सुरा गौरिवायणा विमत्स्या आग्निशर्मायणा औक्थ्यायनाः काम्बरोदरयो
देवयाता वैदोऽम्बा वेलया महाचक्रेयाः पैठीनसाः पानस्या विषगणा दाक्षायणयो भालन्दनाः
शाङ्खमित्रेया हरित्याः पाञ्चाला जारमाण्यो वार्षगाणिः सौविश्रवसो वैशंपायनाः स्वैरकिः
कालशय औक्त्रायणिर्माज्यायनाः कांसायना दैवो होता शुचयः खरेभा आयस्थूणा भागुरयः
पाथिकार्या गौमायना हिरण्यपापा आग्निदेविस्तथा सूर्या मुसला आविश्रेण्या उत्तरतोगण्ड-
माना मन्त्रिता वैकर्ण्यः स्थूलबिन्दव इत्येते निध्रुवाः कश्यपाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो
भवति । काश्यपाऽऽवत्सार नैध्रुवेति होता । निध्रुववदवत्सारवत् कश्यपवदित्यध्वर्युः ॥ ४१ ॥

रेभाणां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । काश्यपाऽऽवत्सार रैमेति होता । रेभवदवत्सार-
वत् कश्यपवदित्यध्वर्युः ॥ ४२ ॥

शण्डिलाः कौहडाः पावकाः पार्यका औदमेघाः सौदानवः सावचसः कारेयाः
कौकुण्डेया ऐषिकयो महोदकयः कौश्रयो कामशयो मौञ्जायना जाणवत्साः खार्दमायना
गाङ्गायना वात्सभालयो गोभिला वैदायना वात्स्यायना वाह्यायनयो बहूदरयो भागुरि-
गार्दभीमुखा हिरण्यबाहुस्तैदेहा गोमूत्रा वार्कखण्डा जानन्तरिर्जालन्धरिर्धन्वन्तरिरित्येते
शण्डिलाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । काश्यपाऽऽवत्सार शण्डिलेति होता । काश्यपा-
ऽऽवत्सार दैवलेति वा । काश्यपाऽऽवत्साराऽऽसितेति वा । शण्डिलाऽऽसित दैवलेति
वा । शण्डिलवदवत्सारवत् कश्यपवदित्यध्वर्युः । देवलवदवत्सारवत् कश्यपवदिति वा ।
असितवदवत्सारवत्कश्यपवदिति वा । देवलवदवत्सारवच्छण्डिलवदिति वा ॥ ४३ ॥

लौकाक्षयो दार्भायणा मैत्रवादिर्वैदेहाः कालेयाः कापुटिस्तथा कलयः काऽस-
पात्रयश्च भालकायनिर्नित्यरसोविरोदकिः कौनामिः सौतयः सैतकिः सांभरिरानिष्टिरैषिकि-
मौसुकिश्चैरन्दिः पशुभिश्चोलपला यौथकालकिर्लोकाक्षयो यौथपालाजपाला इत्येते
लोकाक्षयः । अहर्वसिष्ठा नक्तं कश्यपाः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । काश्यपाऽऽवत्सार
वासिष्ठेति होता । काश्यपाऽऽवत्साराऽऽसितेति वा । वसिष्ठवदवत्सारवत् कश्यप-
वदित्यध्वर्युः । असितवदवत्सारवत् कश्यपवदिति वा । एतेषामेवाऽविवाहः ॥ ४४ ॥

वसिष्ठानेकार्षेयान् व्याख्यास्यामः। वैकलिर्वाराटकिः साखला गौरिश्रवसा
आश्वलायनाः कापिष्ठाः शौचिवृक्षा वैयाघ्रपद्या बाह्यकायनिर्वाटव्या जातूकर्णा औडुलोमिः
कौभोजिः कौलायनाः सुन्दरहरिताः काण्ठेविद्धिः सौयवसायना आलम्भायना लौमायन्याः
स्वस्त्याः कार्षिताः पार्णकायनाश्चौडकायनाः पार्णवल्का देवना गौरव्याः श्राविष्ठायना
बाह्वकथय आविक्षितयोऽश्वयाजयाः पूतिमाषाः सप्तवैला वासिष्ठा इत्येते वसिष्ठाः।
तेषामेकार्षेयः प्रवरो भवति। वासिष्ठेति होता। वसिष्ठवदित्यध्वर्युः ॥ ४५ ॥

कुण्डिना लोहायना गुग्गुलिरौपवस्तिर्वैकर्णयोऽश्मरथा बाह्वः कौञ्चोक्याः
सामङ्गलिनः कापटवः पैठका नवग्रामा हिरण्याक्षायणाः पैप्पलादयो भाक्षिर्माध्यंदिनाः
शान्तिः सौपतिथिरित्येते कुण्डिनाः। तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति। वासिष्ठ मैत्रावरुण
कौण्डिन्येति होता। कुण्डिनवन्मित्रावरुणवद्वसिष्ठवदित्यध्वर्युः ॥ ४६ ॥

उपमन्यव औपगवा माण्डलेखयः कापिञ्जला जालागतास्तपोलोकास्त्रैवर्णाश्चैव
पार्णागारिः सुराक्षराः शैलालयो महाकर्णायना वालशिखा औद्वाहमानयो बालायना
भागुरिस्थायना कुण्डोदरायणा लाक्ष्मणेयाः काचान्तयो वार्काश्वक्य आनृक्षरायणा
आलववाः कपिकेशा इत्येत उपमन्यवः। तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति। वासिष्ठेन्द्रप्रमदाऽऽभर-
द्वसवेति होता। आभरद्वसुवद्विन्द्रप्रमदवद्वसिष्ठवदित्यध्वर्युः ॥ ४७ ॥

पराशराः—

काण्डूशया वाजयो वाजन्तयो वैमतायनाः।

गोपालिरेषां पञ्चम एते कृष्णाः पराशराः ॥

प्रारोहयो वैकलयः प्लाक्षयः कौमुदादयः।

हार्यश्विरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥

खल्वायनयो गोपयः काल्कयः श्यातयातयः।

वारुणिरेषां पञ्चम एतेऽरुणाः पराशराः ॥

भालुक्या बादरिश्चैव काह्वायनाः कौकुशालयः।

क्षैमितिरेषां पञ्चम एते नीलाः पराशराः ॥

कृष्णाजिनाः कापिशुभ्राः श्यामायनयः श्वेतयूपयः।

पौष्करसादिरेषां पञ्चम एते श्वेताः पराशराः ॥

वाश्यायनयो वाष्णेयाः श्यामेयाः श्रौतिभिः सह।

चौलिरेषां पञ्चम एते श्यामाः पराशराः ॥

कृष्णा गौरा अरुणा नीलाः श्वेताः श्यामा ये पराशराः। तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो
भवति। वासिष्ठ शाक्य पराशर्येति होता। पराशरवच्छक्तिवद्वसिष्ठवदित्यध्वर्युः ॥ ४८ ॥

अगस्तीन् व्याख्यास्यामः । अगस्तयो विशालाद्याः स्कालायना औपदहनयः कल्माषदण्डिर्धावर्णिर्लावर्णिर्लव्यार्बुदो बैरिणयो बुद्रुदोदरयः शैवपथयः शालावता मौञ्जकयः पाण्डुहृदा हारिग्रीवयो रौहिष्या मौसलय इत्येतेऽगस्तयः । तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आगस्त्य दार्ढच्युतैध्मवाहेति होता । इध्मवाहवद् दृढच्युतिवदगस्तिवदित्यध्वर्युः ॥ ४९ ॥

सोमवाहानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आगस्त्य दार्ढच्युत सौमवाहेति होता । सोमवाहवद् दृढच्युतिवदगस्तिवदित्यध्वर्युः ॥ ५० ॥

यज्ञवाहानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । आगस्त्य दार्ढच्युत याज्ञवाहेति होता । यज्ञवाहवद् दृढच्युतिवदगस्तिवदित्यध्वर्युः ॥ ५१ ॥

क्षत्रियाणां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । मानवैडपौरुरवसेति होता । पुरुरवोवदिडा-
वन्मनुवदित्यध्वर्युः ॥ ५२ ॥

वैश्यानां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति । भालन्दन वात्सप्र माङ्किलेति होता । मङ्किलवद्वत्सप्रवद्भालन्दनवदित्यध्वर्युः ॥ ५३ ॥

नाराशंसान् व्याख्यास्यामः । आत्रेयवाध्वश्ववाधूलवसिष्ठकण्वशुनकसंकृति-
यस्कराजन्यवैश्या इत्येते नाराशंसाः प्रकीर्तिताः । तनूनपादितरेषाम् । क्षत्रियवैश्यानां पुरोहितप्रवरो भवतीति विज्ञायते । मनुवदिति वा सर्वेषां गोत्राणाम् । मानव्यो हि प्रजा इति विज्ञायते । सगोत्रां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् । व्रते परिनिष्ठिते ब्राह्मणीं न त्यजेन्मातृ-
वद्भगिनीवत् । गर्भो न दुष्यति कश्यप इति विज्ञायते । अथ संनिपाते विवाहस्तदध्यायं वर्जयेद्वैधायनस्य तत्प्रमाणं हि कर्तव्यम् । मानव्यो हि प्रजा इति च विज्ञायते ।

गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।

ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ॥

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।

अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः ॥

तेषां सप्तर्षीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्वोत्रमित्युच्यते । न भवत्ययाजनीयो यः प्रवरान् स्वान् परांश्च विजानाति । मन्त्रो ब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते । तस्मात् प्रवरज्ञाने यत्नो महान् द्विजैः कार्यः । श्राद्धविवाहऋत्विजो देवाः स्तोत्रं गोत्रमूलानि च महाप्रवरे संतिष्ठते । नित्यं पर्वणि पर्वणि स्वाध्यायी ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति ॥ ५४ ॥

॥ इति प्रवरसूत्रम् ॥

उक्तानुक्तचिन्ता

२४ पृष्ठे ३-५ पङ्क्तिभ्योऽधोलिखितं निरसनीयम्

अग्निः प्रत्नेन मन्मना.... ॥ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं.... ॥

प्रेद्धो अग्ने.... ॥ इमो अग्ने.... ॥

३३ पृष्ठे २३ पङ्क्त्यनन्तरम्

बृहस्पते सवितर्.... ७.१७.१ ॥ सुजातं जातवेदसम्.... ४.२३.४ ॥ मय्यग्ने

अग्निं गृह्णामि.... ७.८७.२ ॥ व्याकरोमि.... १२.२.३२ ॥

शौनकशाखोक्ता मन्त्राः प्रदर्शिताः । पैप्पलादशाखोक्तमन्त्राणां स्थलनिर्देशोऽत्र क्रियते—

| असं | अपैसं | असं | अपैसं |
|---------|------------|---------|-----------|
| ६.३१.१ | = १९.४५.११ | ६.१९.२ | = १९.७.१२ |
| १२.२.५ | = १७.३०.५ | ८.३.२६ | = १६.८.४ |
| ३.१६.६ | = ४.३१.६ | ७.७.१ | = २०.१.५ |
| ६.१२५.३ | = १५.११.७ | ७.३०.१ | = २०.७.२ |
| ६.१२५.१ | = १५.११.८ | ७.१७.१ | = २०.६.३ |
| ७.११४.१ | = ४.९.२ | ४.२३.४ | = ४.३३.२ |
| ७.७०.१ | = २०.२६.१० | ७.८७.२ | = २०.३२.३ |
| ७.४१.१ | = २०.९.६ | १२.२.३२ | = १७.३३.३ |

५६ पृष्ठे १० पङ्क्त्यनन्तरम्

प्रवासोपस्थानम्

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

माऽन्तः स्थुर्नो अरातयः ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि ॥

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य द्यौ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥

१०.५७. १-६

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।

येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ ६.५१.१६

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यस्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ७.५४.१

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७.५४.३

५८ पृष्ठे २० पङ्क्त्यनन्तरम्

तैत्रा [२.५.८]—

इहैव संस्तत्र सन्तं त्वाऽग्ने । प्राणेन वाचा मनसा विभर्मि ।

तिरो मा सन्तमायुर्मा प्रहासीत् । ज्योतिषा त्वा वैश्वानरेणोपतिष्ठे ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियः । यतो जातो अरोचथाः ।

तं जानन्नग्न आरोह । अथा नो वर्धया रयिम् ॥

या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहाऽऽत्मानम् । अच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे
नर्या पुरुणि । यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिम् । जातवेदो भुव
आजायमानः सक्षय एहि ॥

९९ पृष्ठे १७ पङ्क्त्यनन्तरम्

अरण्योः समारूढो नश्येत्

तैसं [३.४.१०]—अथो खल्वाहुर्दरण्योः समारूढो नश्येदुदस्याऽग्निः सीदेत्
पुनराधेयः स्यादिति ।

१०२ पृष्ठे २६ पङ्क्तिर्माऽस्तु । २७ पङ्क्तिभारभ्य १०३ पृष्ठे ६ पङ्क्तिं यावन्मुद्रितो ग्रन्थः
उद्धृत्य २५२ पृष्ठे १ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयः ।

११९ पृष्ठे १६ पङ्क्त्यनन्तरम्

बौधायनश्रौ० [१४. १९]—अथो खल्वाहुर्दरण्योः समारूढो नश्येदुदस्याऽग्निः
सीदेत् पुनराधेयः स्यादिति ।

अजस्राणामग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः

बौधायनश्रौ० [२७.५]—दृश्यताम् ‘अरणिगतानां...प्रायश्चित्तिः’ । बौधायनश्रौ०
[२७.११]—दृश्यताम् ‘अग्नीनामुद्रातानां प्रायश्चित्तिः’ ।

१२० पृष्ठगताः ८-१२ पङ्क्तय उद्धृत्य २९८ पृष्ठे १० पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयाः ।

१२१ पृष्ठे ८ पङ्क्तिर्माऽस्तु । ९-१० पङ्क्ती उद्धृत्य १०९ पृष्ठे १७ पङ्क्तौ पठनीये ।

१५५ पृष्ठात् २४-२८ पङ्क्तयो निरसनीयाः ।

१५७ पृष्ठे १७ पङ्क्तेः स्थाने

तैसं [२.५.४-६]—नाऽगतश्रीर्महेन्द्रं यजेत । त्रयो वै गतश्रियः शुश्रुवान्
ग्रामणी राजन्यस्तेषां महेन्द्रो देवता० संवत्सरमिन्द्रं यजेत । संवत्सरः हि व्रतं नाऽति । स्वैवैनं
देवतेज्यमाना भूत्या इन्धे । वसीयान् भवति । संवत्सरस्य परस्तादग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टा-
कपालं निर्वपेत्० ततोऽधि कामं यजेत । नाऽसोमयाजी सं नयेत्० ॥

१६२ पृष्ठात् १०-१३ पङ्क्तयो निरसनीयाः ।

१७५ पृष्ठात् १२-२६ पङ्क्तयो निरसनीयाः ।

१८१ पृष्ठे २२ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैब्रा [३.७.५]—

इन्द्राणीवाऽविधवा भूयासमदितिखि सुपुत्रा ।

अस्थूरि त्वा गार्हपत्योपनिषदे सुप्रजास्त्वाय ॥

१८७ पृष्ठ आदौ

तैब्रा [३.७.४]—

अयं प्राणश्चाऽपानश्च यजमानमपिगच्छताम् ।

यज्ञे ह्यभूतां पोतारौ पवित्रे हव्यशोधने ॥

१९६ पृष्ठे ५ पङ्क्त्यनन्तरम्

[१.४.११]—अग्नये समिध्यमानायाऽनुब्रूहि० तत्प्रवरे प्रवर्यमाणे ब्रूयात् ।

देवाः पितरः पितरो देवा योऽस्मि स सन् यजे योऽस्मि स सन् करोमि शुनं म
इष्टं शुनं शान्तं शुनं कृतं भूयात् इति० ॥

२०३ पृष्ठगताः ६-९ पङ्क्तय उद्धृत्य १९८ पृष्ठे १७ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयाः ।

२३४ पृष्ठे १८ पङ्क्त्यनन्तरम्

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि । मैषां नु गादपरो अर्धमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीः । तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

२३४ पृष्ठे २५ पङ्क्त्यनन्तरम्

समङ्क्तां बर्हिर्हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सं मरुद्भिः ।

समिन्द्रेण विश्वेभिर्देवेभिरङ्क्तां दिव्यं नमो गच्छतु यत्स्वाहा ॥

२३६ पृष्ठ आदौ

मैसं [१.१.१३]—देवा गातुविदो गातुं विच्चा गातुमित ।

मनसस्पते सुधात्विमं यज्ञं दिवि देवेषु वाते धाः स्वाहा ॥

२४९ पृष्ठे १३ पङ्क्त्यनन्तरम्

अयं नो अग्रिर् (अ) व्यक्षो अयं नो वसुवित्तमः ।

अस्योपसद्ये मा रिषामाऽयं वहतु नः प्रजाम् ॥

अस्मिन् सहस्रं पुष्यास्मैधमानाः स्वे गृहे ।

इमं समिन्धिषीमह्यायुष्मन्तः सुवर्चसः ॥ २०. ५६. ७-८

२५० पृष्ठात् ६-७ पङ्क्ती उद्धृत्य ४३१ पृष्ठे २३ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीये ।

२५२ पृष्ठे २१ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैसं [२.६.६.३]—भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहेति
स्कनमनुमन्त्रयेत ।

२५३ पृष्ठे २३ पङ्क्तेरधोलिखितं निरसनीयम्

घृतं न पूतं.... ॥ उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो.... ॥

२५४ पृष्ठ आदौ

[४.१२.२]—अग्रे दा दाशुषे रयि०....॥ दा नो अग्रे शतिनो दाः.... ॥

२५४ पृष्ठे २ पङ्क्तेः आदितः २ मन्त्रौ निरसनीयौ ।

२९७ पृष्ठे ७ पङ्क्त्यनन्तरम्

बौधायनश्रौ० [१३.८]—वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदमावास्यां वा पौर्ण-
मासीं वाऽतिपाद्य । तस्या एते भवतः वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्ठो दिवि इति ।

बौधायनश्रौ० [२७.६]—दृश्यतामभिहोत्रप्रायश्चित्तेषु ' अरण्योः समारूढेषु कर्मलोपे ' ।

३१३ पृष्ठे ३ पङ्क्त्यनन्तरम्

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १.९१.१०

३१५ पृष्ठे ४ पङ्क्त्यनन्तरम्

मैसं [२.६.२]—ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेदाग्नेन्द्रं वा । वैश्वदेवश्चरुः ।
सौम्यः श्यामाकश्चरुः । बावापृथिवीया एककपालः । वत्सः प्रथमजो दक्षिणा । सीरं द्वादशयोगं
दक्षिणोद्यारो वाऽनड्वान् ।

३१६ पृष्ठे २५ पङ्क्त्यनन्तरम्

असं—

इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६.५५.३

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥ ७.११५.१

इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावतीम् ॥ १०.१.२१

यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।

यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ ६.११५.१

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २.१६.२

सोमो वीरुधामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ५.२४.७

अपैसं—

इदावत्सराय.... ॥ १९.९.१ ॥ अग्निमिन्द्रं वयद (१) युवं हथो.... । उग्रा
हि.... ॥ २०.१४. ७ ॥ इन्द्राग्नी एनान् वृश्चतां यौ.... १६.३७.१ ॥
यद्विद्वांसो.... । तस्मान्नो ह्यमुञ्चत.... ॥ १६.४९.४ ॥ द्यावापृथिवी
उपश्रुतेर्मा.... ॥ २.४३.१ ॥ सोमः पयसामध्यक्षः । स माऽवत्वस्मिन्
ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां देवहूत्यामस्यामाकृत्यामस्यामा-
शिषि स्वाहा ॥ १५.८.४

३२८ पृष्ठे २ पङ्क्त्यनन्तरम्

सीसं दक्षिणा कृष्णं वा वासः ।

३३२ पृष्ठे १९ पङ्क्तौ 'निरुद्धः' इति पठनीयम् ।

३३९ पृष्ठे १६ पङ्क्त्यनन्तरम्

यच्चिद्धि ते.... ॥ महश्चिदग्रा एनसो अभीक ऊर्वाधिवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ दधिक्राव्णो
अकारिषं.... ॥ दधिक्रावाणं.... ॥ वैश्वानरो न.... ॥ पृष्ठो दिवि.... ॥
[४.१०.१]—अग्रा आयूषि पवसे.... ॥ अग्निर्ऋषिः पवमानः.... ॥

३४१ पृष्ठगताः ४-७ पङ्क्तय उद्धृत्य ३६३ पृष्ठे १४ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयाः ।

३४३ पृष्ठे १०-११ पङ्क्तयोः स्थाने

[४.११.१]—वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ पृष्ठो दिवि पृष्ठो.... ॥

[४.१०.२]—इमं मे वरुण.... ॥ तत्त्वा यामि.... ॥

३४५ पृष्ठे १७ पङ्क्त्यनन्तरं

तथा च ३५०, ३९३ पृष्ठयोरावौ, ३९९ पृष्ठे २० पङ्क्त्यनन्तरं च

[२.६.४]—अनुमत्यै चरुं राकायै चरुः सिनीवात्यै चरुः कुह्वै चरुधात्रे
द्वादशकपालः पष्ठौही दक्षिणा ।

३५१ पृष्ठे १४-१९ पङ्क्तिभ्य आदितः ८ मन्त्रा निरसनीयाः ।

३६६ पृष्ठे १४ पङ्क्त्यनन्तरम्

तैसं [४.२.११]—इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ श्रथद्वत्रमुत सनोति.... ॥

३८६ पृष्ठे १२ पङ्क्त्यनन्तरम्

दृश्यताम् ' अपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वा ' ।

३९० पृष्ठे ११ पङ्क्तिस्थाने

मैसं [२.२.४]—सौमापौष्णं चरुं निर्वपेद्गार्मुतं पशुकामः ० ॥

३९० पृष्ठे १९ पङ्क्तिस्थाने

[४.११.२]—बृहस्पते जुषस्व.... ॥ एवा पित्रे.... ॥

४०१ पृष्ठे ३ पङ्क्त्यनन्तरम्

मैसं [२.६.१]—आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यो घृते चरुर्वरो दक्षिणा ।

४०६ पृष्ठे २३ पङ्क्त्यनन्तरम्

सौमापौष्णं चरुं निर्वपेन्नेमपिष्टं पशुकामः ०॥

४०७ पृष्ठे २ पङ्क्त्यनन्तरम्

सोमापूषणा जनना रयीणां.... ॥ इमौ देवौ जायमानौ.... ॥

४०८ पृष्ठे १५ पङ्क्त्यनन्तरम्

[४.१०.१]—अग्निः प्रत्नेन मन्मना.... ॥ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं.... ॥
त्वमग्ने वीरवद्यशः.... ॥ त्वं भगो ना आ हि ॥ प्रेद्धो अग्ने.... ॥ इमो
अग्ने.... ॥

४०९ पृष्ठे १६-१८ पङ्क्तिभ्य आदितः ८ मन्त्रा निरसनीयाः ।

४१३ पृष्ठे १२ पङ्क्त्यनन्तरम् ४३७ पृष्ठे १३ पङ्क्त्यनन्तरं च

मैसं [२.६.३]—आग्नेयोऽष्टाकपालो वारुणो यवमयश्चरु रौद्रो गावीधुकश्चरुर्नैन्द्रं
दधि घेनुरनद्वाही दक्षिणा ।

४२६ पृष्ठे ११-१२ पङ्क्तयोः स्थाने

[४.११.१] वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो.... ॥

४३२ पृष्ठे ९ पङ्क्तौ ' कल्पेरन् ' इति पठनीयम् ।

४३४ पृष्ठे १७ पङ्क्तिस्थाने

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ ऋतावानं वैश्वानरं.... ॥ वैश्वानरस्य दक्षिणा-
भ्यो.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः.... ॥ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः.... ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान.... ॥ अस्माकमग्ने मधवत्सु.... ॥ वैश्वानरस्य
सुमतौ स्याम.... ॥

४३५ पृष्ठे ६, ८ पङ्क्तयोः स्थाने

[४.११.१]—इन्द्राग्नी नवर्ति.... ॥ श्रथद्वृत्रमुत.... ॥

४३५ पृष्ठे १० पङ्क्तिस्थाने

[४.११.१]—इन्द्राग्नी रोचना दिवः.... ॥ प्र चर्षणिभ्यः.... ॥

४३५ पृष्ठे १७ पङ्क्त्यनन्तरम्

[४.११.१]—विश्वं विव्याच.... ॥ स जायमानः.... ॥ यथा ह
त्यत्.... ॥ त्रीण्यायूषि.... ॥

४३७ पृष्ठे ८ पङ्क्त्यनन्तरम्

यं जीवग्राहं गृहीयुस्तं विकृन्तेयुः० ॥

४४१ पृष्ठे २० पङ्क्त्यनन्तरम्

अत इन्द्रमेवाऽभिसमावर्तन्तेन्द्रमभिसमजानत । तद्य एतया यजते तमेवाऽभिसमावर्तन्ते
तमभिसंजानते । तदाहुरैन्द्र एकादशकपालः कार्या इति । इन्द्रं हि तेऽभिसमावर्तन्तेन्द्रमभि-
समजानत ॥

४४३ पृष्ठे ७-८ पङ्क्तयोः “ विश्वं विव्याच... ” इत्यादयः ४ मन्त्रा निरसनीयाः

४४४ पृष्ठे ९-१४ पङ्क्तिस्थाने

वैश्वानरो न ऊत्या.... ॥ पृष्टो दिवि पृष्टो.... ॥

४५१ पृष्ठे १ पङ्क्त्यनन्तरम्

मैसं [२.६.५]—आश्विनो द्विकपालः संप्रहीतुर्गृहे सवत्यौ दक्षिणा ॥

५५७ पृष्ठे १४-१८ पङ्क्तिगतास्त्रयो मन्त्राः २१-२२ पङ्क्तिगतौ ‘ एकया च ’ इत्यादिकौ
द्वौ मन्त्रौ चोद्धृत्य ५३५ पृष्ठ आदौ पठनीयाः ।

५५८ पृष्ठे १४ पङ्क्त्यनन्तरम्

यस्यां सदोहविधानि यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः
साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ १२.१.३८

५५८ पृष्ठे २१ पङ्क्तौ १७.३७.५ ॥ इत्यनन्तरम्

ब्रह्माणो यस्याम्.... ॥ १४.४.९ ॥

५७३ पृष्ठे २५ पङ्क्तिमारभ्य ५७४ पृष्ठे ६ पङ्क्तिपर्यन्तो ग्रन्थः उद्धृत्य ५९१
पृष्ठे ४ पङ्क्त्यनन्तरं पठनीयः ।

५९१ पृष्ठे ६ पङ्क्त्यनन्तरम्

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥
अच्छाऽयमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥
अग्निः सुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चाऽतिष्ठन् वसुधातरश्च ॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुध्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥
दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाऽभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बहिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि प्य नाभिमस्य ॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥
५.२७.२-१२

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥९.५.१

५९१ पृष्ठे ८ पङ्क्त्यनन्तरम्

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो । पथोऽयुक्त (?) मध्वा घृतेन मध्वा यज्ञं
नक्षति प्रीणानः ॥ नराशंसोऽग्निः सुकृद् । अच्छाऽयमेति शवसा घृतेन ॥
ईडे वह्नि नमसाऽग्निं सुचोऽध्वरेषु प्रयत्सु । सुवे (?) यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥
स्वेनमिन्द्रसुप्रयत्सु (?) । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ द्वारो देवीरन्वस्य
विश्वेद् व्रता ददन्तेऽग्नेः । उरुव्यचसा धाम्ना पत्यमानाः ॥ ते [अ]स्य
वृषाणो (?) दिव्या न योना उपसानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ दैवा
होतार इममध्वरं नो अग्नेर्जिह्वयाऽभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ तिस्रो
देवीर्बहिरेदं सदन्तिवडा सरस्वती महाभारती गृणानाः ॥ तन्नस्तुरीपमद्भुतं
पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि प्यतु नाभिमस्मे ॥ वनस्पतेऽव सृजा
रराणः सुमना देवेभ्यः । अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयाति ॥ अग्ने स्वाहा

कृणुहि जातवेद इन्द्राय भागम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥
९.१.२-१२ ॥ आनयैतमा.... ।.... बहुधा विपश्यन्नजो.... ॥ १६.९७.१

५७४ पृष्ठे १९ पङ्क्त्यनन्तरम्

असं—

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वाऽनागसो यजमानस्य वीराः ॥
प्र पदोऽव नेनेग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ९.५.२-३
य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामृत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात्प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥
ये बध्यमानमनु दीप्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुवैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥ २.३४.१-५

अपैसं—

इन्द्राय भागं शमिता कृणोतु यज्ञं यज्ञपतिश्च सूरिः ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् द्रवस्वाऽरिष्टा वीरा यजमानस्य सर्वे ॥ १६.१००.३ ॥
प्रपदो [ऽव] नेनेग्धि.... । प्र (?) ज्योतिष्मन्तं सुकृतां लोकमीप्सन् तृतीये
नाके अधि वि क्रमस्व ॥ १६.९७.२ ॥ येषामीशे.... उत वा ये द्विपादः ।
निष्क्रीतास्ते यज्ञियं यन्तु लोकं.... ॥ प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य गोपा गातुं देवा
यजमानाय धत्त । उपाकृतं.... अप्येति पाथः ॥ ये बध्यमानमनु.... ।
देवः प्रजापतिः प्रजाभिः संविदानः ॥ ३.३२.२-४ ॥

य आरण्याः पशवो विश्वरूपा [विरूपा] उत य एकरूपाः । प्रजाभिः
संविदानः ॥ प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु देवाः । द्यां गच्छ शिवेभिः ॥
३.३२.६-७

५७८ पृष्ठे ९ पङ्क्त्यनन्तरम्

असं—

अनु च्छद्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माऽभि मंस्थाः ।
माऽभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताऽग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥
उत्क्रामास्तः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ९.५.४-६
अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकपुत्तमम् ॥ ४.१४.६
अपैसं—

अनु च्छद्य श्यामेन सुकृतां मध्ये ॥ भूम्यां [त्वा] भूमिमधि
धारयाम्या ॥ उत्क्रामास्तः परि । अग्नेरग्निरपि सं बभूविथ
ज्योतिष्मान् गच्छ सुकृतां यत्र लोकः ॥ १६.९७.३-५ ॥ अग्निं युनज्मि
शवसा घृतेन दिव्यं समुद्रं पयसं रुहन्तम् । स्वो रुहाणा अधि ॥
३.३८.५

६३० पृष्ठात् ४-१३ पङ्क्तयो निरसनीयाः ।

७५५ पृष्ठे १६ पङ्क्त्यनन्तरम्

असं—

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृथ्वयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥ ८.७.१
वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६.५१.१
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्ति न जग्मुः ॥ २०.१२५.२

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
 विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥
 पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्राऽवधुः काव्यैर्दसनाभिः ।
 यत्सुरामं व्यपिवः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णाक् ॥
 इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
 बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
 स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराचिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
 तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

३०. १२५.४-७

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
 पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥ ६.१९.१
 गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः ।
 सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥ ६.६९.१
 यद्गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
 सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयि ॥ ९.१.१८
 उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
 असुं य ईशुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥
 आऽहं पितृन्तुसुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
 बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहाऽऽगमिष्ठाः ॥

१८.१.४४-४५

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
 त आ गताऽवसा शंतमेनाऽधा नः शं योररपो दधात ॥ १८.१.५१
 उपहृता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
 त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ १८.३.४५
 अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
 अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयि च नः सर्ववीरं दधात ॥ १८.३.४४

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चक्रमा वयम् ।

आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥ ६.११४.१

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।

पूतं पवित्रेणेवाऽऽज्यं विश्वे शुम्भन्तु मेनसः ॥ ६.११५.३

दूरे चित्सन्तमरुषास इन्द्रमा व्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।

यद्गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥ ३.३.२

अपैसं—

या बभ्रवो याश्च.... ॥ १६.१२.१ ॥ वायुः पूतः.... अधि सुतः ।

इन्द्रस्य.... ॥ १९.४३.४ ॥ पुनन्तु मा.... माम् ॥ १९.७.११ ॥

यद्गिरिषु.... कीलाले मधु तन्मयि ॥ २.३५.२ ॥ यद्देवा देवहेडनं....

ऋतस्य ऋतेन मुञ्चत ॥ १६.४९.१ ॥ द्रुपदादिव मुमुचानः सिन्धौ....

विश्वान्मुञ्चन्तु मेनसः ॥ १६.४९.६ ॥ दूरे चित्सन्तमरुषास.... ॥ २.७४.२

इति प्रथमो भागः